



श्री भगवत्-पुरुषदन्त-भूतचलि-प्रणीतः

# षट्खंडागमः

क. १३८८८ B

श्रीवीरसेनाचार्य-विरचित-ध्वला-टीका-सम्बन्धितः ।

23/1/10

तस्य

प्रथम-खंडे जीवस्थाने

हिन्दीभाषानुवाद-तुलनात्मक-टिप्पण-प्रस्तावनेनेकपरिशिष्टेः सम्पादिताः

## अन्तर-भावाल्यबहुत्वानुगमाः ५

सम्पादकः

अमरावतीस्थ-किंग-एडवर्ड-कॉलेज-संस्कृताध्यापक, एम. ए., एल्. एल्. बी., इत्युपाधिविधारी

हीरालालो जैनः

सहसम्पादकः

पं. हीरालालः सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थः

संशोधने सहायको

व्या. बी., सा. सू., पं. देवकीनन्दनः

सिद्धान्तशास्त्री

डा. नेमिनाथ-तनय-आदिनाथः

उपाध्याय, एम. ए., डी. लिट्.

प्रकाशकः

श्रीमन्त सेठ शितावराय लक्ष्मीचन्द्र

जैन-साहित्योद्धारक-फंड-कार्यालय.

अमरावती ( वरार )

वि. सं. १९९९ ]

वीर-निर्वाण-स्वत् २४६८

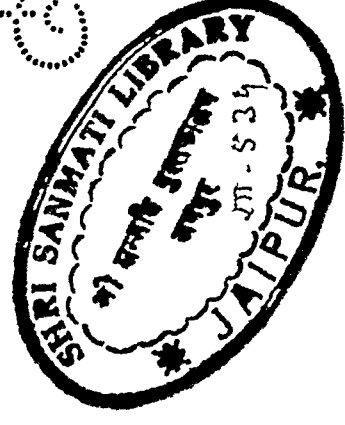
[ ई. सं. १९४२

मूल्यं रूप्यक-द्वादशकम्

खंड १

भाग ६, ७, ८,

पुस्तक ५



प्रकाशन—

श्रीमन्त सेठ शिवाभराय लक्ष्मीचन्द्र,  
जैन-साहित्योद्धारक-फंड कार्यालय,  
अमरावती ( बरार ).



मुद्रक—

टी. एम्. पाटील,  
मैनेजर

सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, अमरावती ( बरार ).

## विषय सूची

पृष्ठ	पृष्ठ
१-३	२
१-३	१-३५०
१-२८	१-१७९
२९-३०	१८१-२३८
३०-३६	२३९-३५०
३६-४३	
४४-५९	
६०-६३	

परिशिष्ट	१-३८
१ अन्तरप्ररूपणा-सूत्रपाठ	१
२ अन्तरप्ररूपणा-सूत्रपाठ	१७
३ अन्तरप्ररूपणा-सूत्रपाठ	२१
४ अन्तरप्ररूपणा-सूत्रपाठ	३३
५ अन्तरप्ररूपणा-सूत्रपाठ	३४
६ अन्तरप्ररूपणा-सूत्रपाठ	३४
७ अन्तरप्ररूपणा-सूत्रपाठ	३५-३८

## प्रारम्भिक कथञ्च

पटुखंडागमका चौथा भाग इसी वर्ष जनवरीमें प्रकाशित हुआ था। उसके दृढ़ माह पश्चात् ही यह पाचवां भाग प्रकाशित हो रहा है। सिद्धान्त ग्रन्थोंके प्रकाशनके विरुद्ध जो आन्दोलन उठाया गया था वह, हर्ष है, अधिकांश जैनपत्र-सम्पादकों, अन्य जैन विद्वानों तथा पूर्व भागकी प्रस्तावनामें प्रकाशित हमारे विवेचनके प्रभावसे बिल्कुल ठंडा हो गया और उसकी अब कोई चर्चा नहीं चल रही है।

प्राचीन ग्रन्थोंके सम्पादन, प्रकाशन व प्रचारकी चार मंजिलें हैं— (१) मूल पाठका संशोधन (२) मूल पाठका शब्दशः अनुवाद (३) ग्रन्थके अर्थको सुस्पष्ट करनेवाला सुविस्तृत व स्वतंत्र अनुवाद (४) ग्रन्थके विषयको लेकर उसपर स्वतंत्र लेख व पुस्तकें आदि रचनावें। प्रस्तुत सम्पादन-प्रकाशनमें हमने इनमेंसे केवल प्रथम दो मंजिलें तय करकेका निश्चय किया है। तदनुसार ही हम यथाशक्ति मूल पाठके निर्णयका पूरा प्रयत्न करते हैं और फिर उसका हिन्दी अनुवाद यथाशक्य मूल पाठके क्रम, शैली व शब्दावलीके अनुसार ही रखते हैं। विषयको मूल पाठसे अधिक स्वतंत्रतापूर्वक खोलनेका हम साहस नहीं करते। जहां इसकी कोई विशेष ही आवश्यकता प्रतीत हुई वहां मूलानुगाभी अनुवादमें विस्तार न करके अलग एक छोटा मोटा विशेषार्थ लिख दिया जाता है। किन्तु इस स्वतंत्रतामें भी हम उत्तरोत्तर कमी करते जाते हैं, क्योंकि, वह यथार्थतः हमारी पूर्वोक्त सीमाओंके बाहरकी बात है। हम अनुवादको मूल पाठके इतने समीप रखनेका प्रयत्न करते हैं कि जिससे वह कुछ अंशमें संस्कृत छायाके अभावकी भी पूर्ति करता जाय, जैसा कि हम पहले ही प्रकट कर चुके हैं। जिन शब्दोंकी मूलमें अनुवृत्ति चली आती है वे यदि समीपवर्ती होनेसे सुज्ञेय हुए तो उन्हें भी वार वार दुहराना हमने ठीक नहीं समझा।

हमारी इस सुस्पष्ट नीति और सीमाको न समझ कर कुछ समालोचक अनुवादमें दोष दिखानेका प्रयत्न करते हैं कि अमुक वाक्य ऐसा नहीं, ऐसा लिखा जाना चाहिये था, या अमुक विषय स्पष्ट नहीं हो पाया, उसे और भी खोलना चाहिये था, इत्यादि। हमें इस बातका हर्ष है कि विद्वान् पाठकोंकी इन ग्रंथोंमें इतनी तीव्र रुचि प्रकट हो रही है। पर यदि वह रुचि सच्ची और स्थायी है तो उसके बलपर उपर्युक्त चार मंजिलोंमेंसे शेष दो मंजिलोंकी भी पूर्तिका अलगसे प्रयत्न होना चाहिये। प्रस्तुत प्रकाशनके सीमाके बाहरकी बात लेकर सम्पादनदिमें दोष दिखानेका प्रयत्न करना अनुचित और अन्याय है। जो समालोचनादि प्रकट हुए हैं उनसे हमें अपने कार्यमें आशातीत सफलता मिली हुई प्रतीत होती



है, क्योंकि, उनमें मूल पाठके निर्णयकी त्रुटिया तो नहीं के बराबर मिलती हैं, और अनुवादके भी मूलानुगमित्वमें कोई दोष नहीं दिखाये जा सके। हां, जहाँ शब्दोंकी अनुवृत्ति आदि जोड़ी गई है वहाँ कहीं कुछ प्रमाद हुआ पाया जाता है। पर एक ओर हम जब अपने अल्प ज्ञान, अल्प साधन-सामग्री और अल्प समयका, तथा दूसरी ओर इन महान् ग्रन्थोंके अतिगहन विषय-विवेचनका विचार करते हैं तब हमें आश्चर्य इस बातका बिल्कुल नहीं होता कि हमसे ऐसी कुछ मूलें हुई हैं, बल्कि, आश्चर्य इस बातका होता है कि वे मूले उक्त परिस्थितिमें भी इतनी अल्प हैं। इस प्रकार उक्त छिद्रान्वेषी समालोचकोंके लेखोंसे हमें अपने कार्योंमें अधिक दृढता और विश्वास ही उत्पन्न हुआ है और इसके लिये हम उनके हृदयसे कृतज्ञ हैं। जो अल्प भी त्रुटि या स्वल्पन जब भी हमारे दृष्टिगोचर होता है, तभी हम आगामी भागके छुद्धिपत्र व शका-समाधानमें उसका समावेश कर देते हैं। ऐसे स्वल्पनादिकी सूचना कानेवाले सज्जनोंके हम सदैव आभारी हैं। जो समालोचक अत्यन्त छोटी मोटी त्रुटियोंसे भी बचनेके लिये बड़ी बड़ी योजनाये सुझाते हैं, उन्हें इस बातका ध्यान रखना चाहिये, कि इस प्रकाशनके लिये उपलब्ध फंड बहुत ही परिमित है और इससे भी अधिक कठिनाई जो हम अनुभव करते हैं, वह है समयकी। दिनों दिन काल बड़ा कराल होता जाता है और इस प्रकारके साहित्यके लिये रुचि उत्तरोत्तर हीन होती जाती है। ऐसी अवस्थामें हमारा तो अब मत यह है कि जितने शीघ्र हो सके इस प्राचीन साहित्यको प्रकाशित कर उसकी प्रतिया सब ओर फैला दी जाय, ताकि उसकी रक्षा तो हो। छोटी मोटी त्रुटियोंके सुधारके लिये यदि इस प्रकाशनको रोका गया तो समभव है उसका फिर उद्धार ही न हो पावे और न जाने कैसा सकट आ उपस्थित हो। योजनाए सुझाना जितना सरल है, स्वीयसाग करके आजकल कुछ कर दिखाना उतना सरल नहीं है। हमारा समय, शक्ति, ज्ञान और साधन सब परिमित हैं। इस कार्यके लिये इससे अधिक साधन-सम्पन्न यदि कोई संस्था या व्यक्ति-विशेष इस कार्य-भारको अधिक योग्यताके साथ सहाय्यताके प्रस्तुत हो तो हम सहर्य यह कार्य उन्हें सौंप सकते हैं। पर हमारी सीमाओंमें फिर हाल और अधिक विस्तारकी गुंजाइश नहीं है।

प्रस्तुत खबराहमें जीवस्थानकी आठ प्ररूपणाओंमेंसे अन्तिम तीन प्ररूपणाए समाविष्ट हैं—अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व। इनमें क्रमशः ३९७, ९३ व ३८२ सूत्र पाये जाते हैं। इनकी टीकामें क्रमशः लगभग ४८, ६५ तथा ७६ शका-समाधान आये हैं। हिन्दी अनुवादमें अर्थको स्पष्ट कानेके लिये क्रमशः १, २ और ३ विशेषार्थ लिखे गये हैं। तुलनात्मक व पाठभेद सन्धी टिप्पणियोंकी सख्या क्रमशः २९९, ९३ और १४४ है। इस प्रकार इस ग्रन्थ-भागमें लगभग १८९ शका-समाधान, ६ विशेषार्थ और ५३६ टिप्पण पाये जावेंगे।

सम्पादन-व्यवस्था व पाठ-शोधनके लिये प्रतियोंका उपयोग पूर्ववत् चाल रहा।  
 पं. हीरालालजी शास्त्री यह कार्य नियतरूपसे कर रहे हैं। इस भागके मुद्रित फार्म

श्री पं. देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्रीने विशेषरूपसे गभीरके विराम-कालमें अत्रलेकन कर सशोचन भेजेनेकी कृपा की है, जिनका उपयोग शुद्धिपत्रमें किया गया है। कन्नडप्रशस्तिका सशोधन पूर्ववत् डा. ए. एन. उपाध्येजीने करके भेजा है। प्रति-मिलानमें पं. बालचन्द्रजी शास्त्रीका सहयोग रहा है। इस प्रकार सब सहयोगियोंका साहाय्य पूर्ववत् उपलब्ध है, जिसेके लिये मैं उन सबका अनुगृहीत हूँ।

इस भागकी प्रस्तावनामें पूर्वप्रतिबानुसार डा. अवधेशनारायणजीके गणितसम्बन्धी लेखका अविकल हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है। इसका अनुवाद भरे पुत्र चिरंजीव प्रफुल्ल-कुमार बी. ए ने किया था। उसे मैंने अपने सहयोगी प्रोफेसर काशीदत्तजी पांडेके साथ मिलाया और फिर डा. अवधेशनारायणजीके पास भेजकर सशोधित करा लिया है। इसके लिये इन सज्जनोंका मुझपर आभार है। चौथे भागके गणितपर भी एक लेख डा. अवधेशनारायणजी लिख रहे हैं। खेद है कि अनेक कौटुंबिक विपत्तियों और चिन्ताओंके कारण वे उस लेखको इस भागमें देनेके लिये तैयार नहीं कर पाये। अतः उसके लिये पाठकोंको अगले भागकी प्रतीक्षा करना चाहिये।

आजकल कागज, जिल्द आदिका सामान व मुद्रणादि सामग्रीके मिलनेमें असाधारण कठिनाईका अनुभव हो रहा है। कीमतेँ बेहद बढ़ी हुई हैं। तथापि हमारे निरन्तर सहायक और अद्वितीय साहित्यसेवी पं. नाथूरामजी प्रेमीके प्रयत्नसे हमें कोई कठिनाईका अनुभव नहीं हुआ। इस वर्ष उनके ऊपर पुत्रवियोगका जो कठोर वज्रपात हुआ है उससे हम और हमारी संस्थायेंके समस्त टस्टी व कार्यकर्त्तागण अत्यन्त दुखी हैं। ऐसी अपूर्व कठिनाइयोंके होते हुए भी हम अपनी व्यवस्था और कार्यप्रगति पूर्ववत् कायम रखनेमें सफल हुए हैं, यह हम इस कार्यके पुण्यका फल ही समझते हैं। आगे जब जैसा हो, कहा नहीं जा सकता।

फ्रिग एडवर्ड कैलेज

अमरावती

२०-७-४२

हीरालाल जैन



श्रीगणेशाय नमः



# INTRODUCTION

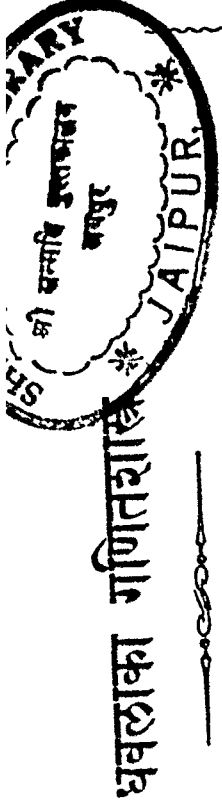
This volume contains the last three prarūpanās, namely Antara, Bhāva and Alpa-bahutva, out of the eight prarūpanās of which the first five have been dealt with in the previous volumes. The Antara prarūpanā contains 397 Sūtras and deals with the minimum and maximum periods of time for which the continuity of a single soul (*eka jīva*) or souls in the aggregate (*nānā jīva*) in any particular spiritual stage (Guṇa-ssthāna) or soul-quest (Mārgaṇā-ssthāna) might be interrupted. It is, thus, a necessary counterpart of Kāla prarūpanā which, as we have already seen, devotes itself to the study of similar periods of time for which continuity in any particular state could uninterruptedly be maintained. The standard periods of time are, therefore, the same as in the previous prarūpanā. The first Guṇasthāna is never interrupted from the point of view of souls in the aggregate; i. e. there is no time when there might be no souls in this Guṇasthāna—some souls will always be at this spiritual stage. But a single soul might deviate from this stage for a minimum period of less than 48 minutes (Antara-muhūrta) or for a maximum period of slightly less than 192 Sāgaropamas. The second Guṇasthāna may claim no souls for a minimum period of one instant (*eka samaya*) or for a maximum period of an innumerable fraction of a palyopama, while a single soul might deviate from it in the minimum for an innumerable fraction of a palyopama and at the maximum for slightly less than an Ardhapudgala-parivartana. And so on with regard to all the rest of the Guṇasthānas and the Mārgaṇāsthānas. The commentator has explained at length how these periods are obtained by changes of attitude and transformations of life of the souls.

The Bhāva prarūpanā, in 93 Sūtras, deals with the mental dispositions which characterise each Guṇasthāna and Mārgaṇāsthāna. There are five such dispositions of which four arise from the Karmas heading for fruition (*udaya*) or pacification (*upaśama*) or destruction (*kshaya*) or partly destruction and partly pacification (*kshayopāśama*),

while the fifth arises out of the natural potentialities inherent in each soul (*pāriṇāmika*). Thus, the first Guṇasthāna is *audāryika*, the second *pārenāmika*, the third, fifth, sixth and seventh *kshāyopāśamika*, the fourth *upaśamika*, *kshūryika* or *kshāyopāśamika*, eighth, ninth and tenth *upaśamika* or *kshāyika*, eleventh *Upāśamika* and the twelfth, thirteenth and fourteenth *kshāyika*. The commentary explains these at great length.

The eighth and last prarūpanā is Alpa-bahutva which, as its very name signifies, shows, in 382 Sūtras, the comparative numerical strength of the Guṇasthānas and the Mārgaṇāsthānas. It is here shown that the number of souls in the 8th, 9th and 10th *Upāśamika* Guṇasthānas as well as in the 11th is the least of all and mutually equal. In the same three *Kshāyika* Guṇasthānas and in the 12th, 13th and 14th, they are several times larger and mutually equal. This is the numerical order from the point of view of entries (*praveśa*) into the Guṇasthānas. From the point of view of the aggregates (*samcaya*) the souls at the 13th stage are several times larger than the last class, and similarly larger at each successive stage are those at the 7th and the 6th stage respectively. Innumerable larger than the last at each successive stage are those at the 5th and the 2nd stage, and the last is exceeded several times by those at the 3rd stage. At the 4th stage they are innumerable larger and at the 1st infinitely larger successively. The whole discussion shows how the exact sciences like mathematics have been harnessed into the service of the most speculative philosophy before, and added them to the Hindi introduction





( पुस्तक ४ में प्रकाशित डा. अवधेश नारायण सिंह,  
लखनऊ यूनीवर्सिटी, के लेखका अनुवाद )

यह विदित हो चुका है कि भारतवर्षमें गणित-अंकगणित, बीजगणित, क्षेत्रमिति आदिना अध्ययन अति प्राचीन कालमें किया जाता था। इस बातका भी अच्छी तरह पता चल गया है कि प्राचीन भारतवर्षीय गणितज्ञोंने गणितशास्त्रमें ठोस और सारगर्भित उन्नति की थी। यथार्थतः अर्वाचीन अंकगणित और बीजगणितके जन्मदाता वे ही थे। हमें यह सोचनेका अभ्यास होगा है कि भारतवर्षकी विशाल जनसंख्यामेंसे केवल हिंदुओंने ही गणितका अध्ययन किया, और उन्हें ही इस विषयमें रुचि थी, और भारतवर्षीय जनसंख्याके अन्य भागों, जैसे कि बौद्ध व जैनोंने, उसपर विशेष ध्यान नहीं दिया। विद्वानोंके इस मतका कारण यह है कि अभी अभी तक बौद्ध वा जैन गणितज्ञोंद्वारा लिखे गये कोई गणितशास्त्रके ग्रन्थ ज्ञात नहीं हुए थे। किन्तु जैनियोंके आगमग्रन्थोंके अध्ययनसे प्रकट होता है कि गणितशास्त्रका जैनियोंमें भी गूढ़ आदर था। यथार्थतः गणित और ज्योतिष विद्याका ज्ञान जैन मुनियोंकी एक मुख्य सामाना ममभी जाती थी।

अब हमें यह विदित हो चुका है कि जैनियोंकी गणितशास्त्रकी एक शाखा दक्षिण भारतमें थी, और इस शाखाका कर्मसे कम एक ग्रन्थ, महावीरार्च्य-कृत गणितसारसंग्रह, उस समयकी अन्य उपलब्ध कृतियोंकी अपेक्षा अनेक बातोंमें श्रेष्ठ है। महावीरार्च्यकी रचना सन् ८५० की है। उनका यह ग्रन्थ सामान्य रूपरेखामें ब्रह्मगुप्त, श्रीधराचार्य, भास्कर और अन्य हिन्दु गणितज्ञोंके ग्रन्थोंके समान होते हुए भी विशेष बातोंमें उनसे पूर्णतः भिन्न है। उदाहरणार्थ— गणितसारसंग्रहके प्रश्न (problems) प्रायः सभी दूसरे ग्रन्थोंके प्रश्नोंसे भिन्न हैं।

वर्तमानकालमें उपलब्ध गणितशास्त्रसंबंधी साहित्यके आधारपरसे हम यह कह सकते हैं कि गणितशास्त्रकी महत्वपूर्ण शाखाएँ पाटलिपुत्र (पटना), उज्जैन, मैसूर, मलाबार और संभारतः बनारस, तद्विशिला और कुछ अन्य स्थानोंमें उन्नतिशील थीं। जब तक आगे प्रमाण प्राप्त न हों, तब तक यह निश्चयपूर्णक नहीं कहा जा सकता कि इन शाखाओंमें परस्पर क्या

संबंध था। फिर भी हमें पता चलता है कि भिन्न भिन्न शाखाओंसे आये हुए ग्रन्थोंकी सामान्य रूपरेखा तो एकसी है, किन्तु विस्तारसंबंधी विशेष बातोंमें उनमें विभिन्नता है। इससे पता चलता है कि भिन्न भिन्न शाखाओंमें आदान-प्रदानका संबंध था, छात्रागण और विद्वान एक शाखासे दूसरी शाखामें गमन करते थे, और एक स्थानमें किये गये आविष्कार शीघ्र ही भारतके एक कोनेसे दूसरे कोने तक विज्ञापित कर दिये जाते थे।

प्रतीत होता है कि बौद्ध धर्म और जैन धर्मके प्रचालने विविध विज्ञानों और कलाओंके अध्ययनको उत्तेजना दी। सामान्यतः सभी भारतवर्षीय धार्मिक साहित्य, और मुख्यतया बौद्ध व जैनसाहित्य, बड़ी बड़ी संख्याओंके उल्लेखोंसे परिपूर्ण है। बड़ी संख्याओंके प्रयोगने उन संख्याओंको लिखनेके लिये सरल संकेतोंकी आवश्यकता उत्पन्न की, और उसीसे दाशमिक क्रम (The place-value system of notation) का आविष्कार हुआ। अब यह बात निस्संशयरूपसे सिद्ध हो चुकी है कि दाशमिक क्रमका आविष्कार भारतमें इसी सन्के प्रारम्भ कालके लगभग हुआ था, जब कि बौद्धधर्म और जैनधर्म अपनी चरमोन्नति पर थे। यह नया अंक-क्रम बड़ा शक्तिशाली सिद्ध हुआ, और इसीने गणितशास्त्रको गतिप्रदान करे। यह नया अंक-क्रम प्रायः वेदकालीन प्रारम्भिक गणितको विकासकी ओर बढ़ाया, और ब्राह्मिहिरके ग्रंथोंमें प्राप्त वेदकालीन प्रारम्भिक गणितशास्त्रमें परिवर्तित कर दिया।

एक बड़ी महत्वपूर्ण बात, जो गणितके इतिहासकारोंकी दृष्टिमें नहीं आई, यह है कि यद्यपि हिन्दुओं, बौद्धों और जैनियोंका सामान्य साहित्य ईसासे पूर्व तीसरी व चौथी शताब्दीसे लगा-कर मध्यकालीन समय तक अविच्छिन्न है, क्योंकि प्रत्येक शताब्दीके ग्रंथ उपलब्ध हैं, तथापि गणितशास्त्रसंबंधी साहित्यमें विच्छेद है। यथार्थतः सन् ४९९ में रचित आर्यभटीयसे पूर्वकी गणितशास्त्रसंबंधी रचना कदाचित् ही कोई हो। अपवादमें बह्मशास्त्रि प्रति (Brahmagosa-Manuscript) नामक वह अपूर्ण हस्तलिखित ग्रंथ ही है जो संभवतः दूसरी या तीसरी शताब्दीकी रचना है। किन्तु इसकी उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियें हमें उस कालके गणित-ज्ञानकी स्थितिके विषयमें कोई विस्तृत वृत्तान्त नहीं मिलता, क्योंकि यद्यपि वह आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त अथवा श्रीधर आदिके ग्रंथोंके सदृश गणितशास्त्रकी पुस्तक नहीं है। वह कुछ चुने हुए गणितसंबंधी प्रश्नोंकी व्याख्या अथवा टिप्पणीसी है। इस हस्तलिखित प्रतियें हम केवल इतना ही अनुमान कर सकते हैं कि दाशमिकक्रम और तत्संबंधी अंकगणितकी मूल प्रक्रियायें उस समय अच्छी तरह विदित थीं, और पछि गणितज्ञोंद्वारा उल्लिखित कुछ प्रकारके गणित प्रश्न (problems) भी ज्ञात थे।

यह पूर्व ही बताया जा चुका है कि आर्यभटीयमें प्राप्त गणितशास्त्र विशेष उन्नत है, क्योंकि उसमें हमको निम्न लिखित विषयोंका उल्लेख मिलता है—वर्तमानकालीन प्राथमिक



अंकगणितके सत्र भाग जिनमें अनुपात, विनियम और व्याजके नियम भी सम्मिलित हैं, तथा सरल और वर्ग समीकरण, और सरल कुडक ( indeterminate equations ) की प्रक्रिया तकका बीजगणित भी है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या आर्यभट्टने अपना गणितज्ञान विदेशसे ग्रहण किया, अथवा जो भी कुछ सामग्री आर्यभट्टीयमें अन्तर्हित है वह सब भारतवर्षकी ही मौलिक सम्पत्ति है ? आर्यभट्ट लिखते हैं “ ब्रह्म, पृथ्वी, चंद्र, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शनि और नक्षत्रोंको नमस्कार करके आर्यभट्ट उस ज्ञानका वर्णन करता है जिसका कि यहा कुसुमपुरमें आदर है। ” इससे पता चलता है कि उसने विदेशसे कुछ ग्रहण नहीं किया। दूसरे देशोंके गणितशास्त्रके इतिहासके अध्ययनसे भी यही अनुमान होता है, क्योंकि आर्यभट्टीय गणित संसारके किसी भी देशके तत्कालीन गणितसे बहुत आगे बढ़ा हुआ था। विदेशसे ग्रहण करनेकी संभावनाको इस प्रकार दूर कर देने पर प्रश्न उपस्थित होता है कि आर्यभट्टसे पूर्वकालीन गणितशास्त्रसंबन्धी कोई ग्रन्थ उपलब्ध क्यों नहीं है ? इस शकाका निवारण सरल है। दाशमिकक्रमका आविष्कार ईसवी सन्के प्रारंभ कालके लगभग किसी समय हुआ था। इसे सामान्य प्रचारमें आनेके लिये चार पाँच शताब्दियां लग गईं होगी। दाशमिकक्रमका प्रयोग करनेवाला आर्यभट्टका ग्रन्थ ही सर्वप्रथम अच्छा ग्रन्थ प्रतीत होता है। आर्यभट्टके ग्रन्थके पूर्वमें या तो पुरानी सख्यापद्धतिका प्रयोग था, अथवा, वे समयकी कसौटी पर ठीक उतले लायक अच्छे नहीं थे। गणितकी दृष्टिसे आर्यभट्टकी विस्तृत ख्यातिका कारण, भरे मतानुसार, बहुतायतसे यही था कि उन्होंने ही सर्वप्रथम एक अच्छा ग्रन्थ रचा, जिसमें दाशमिकक्रमका प्रयोग किया गया था। आर्यभट्टके ही कारण पुरानी पुस्तके अप्रचलित और विलीन हो गईं। इससे साफ पता चल जाता है कि सन् ४९९ के पश्चात् लिखी हुईं तो हमें इतनी पुस्तकें मिलती हैं, किन्तु उसके पूर्वके कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

इस प्रकार सन् ५०० ईसवीसे पूर्वके भारतीय गणितशास्त्रके विकास और उन्नतिका चित्रण करनेके लिये वास्तवमें कोई साधन हमारे पास नहीं है। ऐसी अवस्थामें आर्यभट्टसे पूर्वके भारतीय गणितज्ञानका बोध करानेवाले ग्रंथोंकी खोज करना एक विशेष महत्वपूर्ण कार्य हो जाता है। गणितशास्त्रसंबन्धी ग्रन्थोंके नष्ट हो जानेके कारण सन् ५०० के पूर्व-कालीन भारतीय गणितशास्त्रके इतिहासका पुनः निर्माण करनेके लिये हमें हिंदुओं, बौद्धों और

१ नन्दकुशाशिशुभ्रयुगविक्रमपुरकेणमगणानामस्कृत ।

आर्यभट्टस्वरि निगदति कुसुमपुरेऽन्यचित्तं ज्ञानम् ॥ आर्यभट्टीय २, १

महामूर्तिमन्त्रगणानामस्कृत कुसुमपुरे कुसुमपुरास्त्रेऽस्मिन्देवे अन्यचित्तं ज्ञानं कुसुमपुरास्त्रासिद्धिं पृजितं महामूर्तिमानसाधनभूतं तन्मार्गमतेो निगदति । ( परमेश्वरार्च्यकृत टीका )

जैनियोंके साहित्यकी, और विशेषतः धार्मिक साहित्यकी, छानबीन करना पड़ती है। अनेक पुराणोंमें हमें ऐसे भी खंड मिलते हैं जिनमें गणितशास्त्र और ज्योतिषविद्याका वर्णन पाया जाता है। इसी प्रकार जैनियोंके अधिकांश आगमग्रन्थोंमें भी गणितशास्त्र या ज्योतिषविद्याकी कुछ न कुछ सामग्री मिलनी है। यही सामग्री भारतीय परम्परागत गणितकी स्रोतक है, और वह उस ग्रन्थसे जिसमें वह अन्तर्भूत है, प्रायः तीन चार शताब्दियां पुरानी होती है। अतः यदि हम सन् ४०० से ८०० तककी किसी धार्मिक या दार्शनिक कृतिमी परीक्षा करें तो उसका गणितशास्त्रीय विवरण ईसवीके प्रारंभसे सन् ४०० तकका माना जा सकता है।

उपर्युक्त निरूपणके प्रकाशमें ही हम इस नौवीं शताब्दीके प्रारंभकी रचना षट्खंडागमकी टीका धवलाकी खोजको अत्यन्त महत्वपूर्ण समझते हैं। श्रियुत हीरालाल जैनने इस ग्रन्थका सम्पादन और प्रकाशन करके विद्वानोंको स्थायीरूपसे कृतज्ञताका ऋणी बना लिया है।

### गणितशास्त्रकी जैनशाखा

सन् १९१२ में रगाचार्यद्वारा गणितसारसग्रहकी खोज और प्रकाशनके समयसे विद्वानोंको आभास होने लगा है कि गणितशास्त्रकी ऐसी भी एक शाखा रही है जो कि पूर्णतः जैन विद्वानोंद्वारा चलाई जाती थी। हालहीमें जैन आगमके कुछ ग्रन्थोंके अध्ययनसे जैन गणितज्ञ और गणितग्रन्थोंसंबन्धी उल्लेखोंका पता चला है। जैनियोंका धार्मिक साहित्य चार भागोंमें विभाजित है जो अनुयोग, ( जैनधर्मके ) तत्वोंका स्पष्टीकरण, कहलते हैं। उनमेंसे एकका नाम करणानुयोग या गणितानुयोग, अर्थात् गणितशास्त्रसंबन्धी तत्वोंका स्पष्टीकरण, है। इसीसे पता चलता है कि जैनधर्म और जैनदर्शनमें गणितशास्त्रको कितना उच्च पद दिया गया है।

यद्यपि अनेक जैन गणितज्ञोंके नाम ज्ञात हैं, परतु उनकी कृतियां लुप्त हो गईं हैं। उनमें सबसे प्राचीन भद्रबाहु हैं जो कि ईसासे २७८ वर्ष पूर्व स्वर्ग सिधारे। वे ज्योतिष विद्याके दो ग्रन्थोंके लेखक माने जाते हैं (१) सूर्यप्रज्ञप्तिकी टीका, और (२) भद्रबाहुवी सहिता नामक एक मौलिक ग्रन्थ। मलयगिरि ( लगभग ११५० ई. ) ने अपनी सूर्यप्रज्ञप्तिकी टीकामें इनका उल्लेख किया है, और भट्टोल्ल ( ९६६ ) ने उनके ग्रन्थावतरण दिये हैं। सिद्धसेन नामक एक दूसरे ज्योतिषके ग्रन्थावतरण वराहमिहिर ( ५०५ ) और भट्टोल्ल द्वारा दिये गये

१ देवो- रगाचार्य द्वारा सम्पादित गणितसारसग्रहकी प्रस्तावना, बी. ई. स्मिथद्वारा लिखित, मद्रास, १९१२

२ वीं वृत्तः गणितशास्त्रीय जैन शाखा, बुलेटिन क्लकवा गणितसोसायटी, लिब्द २१ ( १९१९ ), पृष्ठ ११५ से १४५.

३ बृहत्संहिता, एत द्विवेदीद्वारा सम्पादित, बनारस, १८९५, पृ. २२६

है। अभाग्यी और प्राज्ञ भाग्यमें लिये हुए गणितसम्बन्धी उल्लेख अनेक ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं। प्राञ्चमें इसप्रकारके बहुमूल्यक अवतरण नियमान हैं। इन अवतरणोंपर यथास्थान विचार किया जायगा। किन्तु यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि ये अवतरण निःसशयरूपसे सिद्ध करते हैं कि जैन विद्वानोंद्वारा लिये गये गणितग्रंथ थे जो कि अब लुप्त हो गये हैं। क्षेत्रसमाप्त और सृणभानुनोक नामसे जैन विद्वानोंद्वारा लिखित ग्रंथ गणितशास्त्रसम्बन्धी ही थे। पर अब हमें ऐसे कोई ग्रंथ प्राप्य नहीं हैं। हमारा जैन गणितशास्त्रसम्बन्धी अत्यन्त खडित ज्ञान स्थानांग सूत्र, उमास्वतिशुत तन्त्रार्थधिगमसूत्रग्रन्थ, सूर्यप्रज्ञप्ति, अनुयोगद्वारसूत्र, शिल्पोत्सृष्टि, शिल्पोत्सृष्टार आदि गणितेतर ग्रन्थोंमें संकलित है। अब इन ग्रन्थोंमें घबलाका नाम भी जोड़ा जा सकता है।

#### घबलाका महत्त्व

धबला नौवीं सदीके प्रारंभमें वीरसेन द्वारा लिखी गई थी। वीरसेन तत्वज्ञानी और धार्मिक दिग्गुरुपुत्र थे। ये रसुतनः गणितज्ञ नहीं थे। अतः जो गणितशास्त्रीयसामग्री घबलाके अन्तर्गत है, वह उनसे पूर्ववर्ती लेखकोंकी कृति कही जा सकती है, और मुख्यतया पूर्वगत टीकाकारोंकी, जिनमेंसे पांचना इन्द्रनन्दिने अपने श्रुतावतारमें उल्लेख किया है। ये टीकाकार कुदकुंद, शामकुंद, तुमुल्लर, समन्तभद्र और वणपदेव थे, जिनमेंसे प्रथम लगभग सन् २०० के और अन्तिम सन् ६०० के लगभग हुए। अतः घबलाकी अधिकांश गणितशास्त्रीयसामग्री सन् २०० से ६०० तकके बीचके समयकी मानी जा सकती है। इस प्रकार भारतवर्षीय गणितशास्त्रके इतिहासकारोंके लिये घबला प्रथम श्रेणीका महत्वपूर्ण ग्रंथ हो जाता है, क्योंकि उसमें हमें भारतीय गणितशास्त्रके इतिहासके सबसे अधिक अधकारपूर्ण समय, अर्थात् पाचवी शताब्दीसे पूर्वकी बातें मिलती हैं। विशेष अयनसे यह बात और भी पुष्ट हो जाती है कि घबलाकी गणितशास्त्रीय सामग्री सन् ५०० से पूर्वकी है। उदाहरणार्थ— घबलामें वर्णित अनेक प्रक्रियायें किसी भी अन्य ज्ञात ग्रंथमें नहीं पाई जातीं, तथा इसमें कुछ ऐसी स्थूलताका आभास भी है जिससे स्पष्टक पश्चात्के भारतीय गणितशास्त्रसे परिचित विद्वानोंको सरलतासे मिल सकती है। घबलाके गणितभागमें यह परिपूर्णता और परिष्कार नहीं है जो आर्यभटीय और उसके पश्चात्के ग्रंथोंमें है।

#### घबलान्तर्गत गणितशास्त्र

संख्याएं और संकेत—घबलाकार दाशमिकक्रमसे पूर्णतः परिचित हैं। इसके प्रमाण

१ श्लोकमें स्पष्टनाम्नर, स्थाययत अनुयोगद्वार, श्लोक २८, पर अपनी टीकामें सगसबधी (regarding permutations and combinations) तीन नियम उद्धृत किये हैं। ये नियम किसी जैन गणित ग्रन्थमें लिये गये जान पड़ते हैं।

सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। हम यहाँ घबलाके अन्तर्गत अवतरणोंसे ली गई संख्याओंको व्यक्त करनेकी कुछ पद्धतियोंको उपस्थित करते हैं—

( १ ) ७९९९९९९८ को ऐसी संख्या कहा है कि जिसके आदिमें ७, अन्तमें ८ और मध्यमें छह बार ९ की पुनरावृत्ति है।

( २ ) ४६६६६६६६४ व्यक्त किया गया है—चौसठ, छह सौ, छयासठ हजार, छयासठ लाख, और चार करोड़।

( ३ ) २२७९९४९८ व्यक्त किया गया है—दो करोड़, सत्ताइस, नित्यान्वे हजार, चारसौ और अठान्वे।

इनमेंसे ( १ ) में जिस पद्धतिका उपयोग किया है वह जैन साहित्यमें अन्य स्थानोंमें भी पायी जाती है, और गणितसासंग्रहमें भी कुछ स्थानोंमें है। उससे दाशमिकक्रमका सुपरिचय सिद्ध होता है। ( २ ) में छोटी संख्याएं पहले व्यक्त की गई हैं। यह संस्कृत साहित्यमें प्रचलित साधारण रीतिके अनुसार नहीं है। उसी प्रकार यहाँ संकेत-क्रम सौ है, न कि दश जो कि साधारणतः संस्कृत साहित्यमें पाया जाता है। किन्तु पाली और प्राकृतमें सौ का क्रम ही प्रायः उपयोगमें लाया गया है। ( ३ ) में सबसे बड़ी संख्या पहले व्यक्त की गई है। अवतरण ( २ ) और ( ३ ) स्पष्टतः भिन्न स्थानोंसे लिये गये हैं।

बड़ी संख्यायें—यह सुविदित है कि जैन साहित्यमें बड़ी संख्यायें बहुतायतसे उपयोगमें आई हैं। घबलामें भी अनेक तरहकी जीवराशियों (द्रव्यप्रमाण) आदि पर तर्क वितर्क है। निश्चितरूपसे लिखी गई सबसे बड़ी संख्या पर्याप्त मनुष्योंकी है। यह संख्या घबलामें दो के छठे वर्ग और दो के सातवें वर्गके बीचकी, अथवा और भी निश्चित, कोटि-कोटि-कोटि और कोटि-कोटि-कोटि-कोटिके बीचकी कही गई है। याने—

२२<sup>६</sup> और २२<sup>७</sup> के बीचकी। अथवा, और अधिक नियत—( १,००,००,००० )<sup>३</sup> और ( १,००,००,००० )<sup>४</sup> के बीचकी। अथवा, सर्वथा निश्चित—२२<sup>५</sup> × २२<sup>६</sup>। इन जीवोंकी संख्या अन्य मतानुसार ७९२२८१६२४१४२६४३७५९३५४३५५०३३६ है।

१. ध माग ३, पृष्ठ ९८, गाथा ५१। देखो गोमटसार, जीवकांड, पृष्ठ ६३३.

२. ध माग ३, पृ. ९९, गाथा ५२. ३ ध माग ३, पृ. १००, गाथा ५३.

४ देखो—गणितसासंग्रह १, २७. और मी देखो—दत्त और सिद्धना हिन्दूगणितशास्त्रका इतिहास, खिन्ड १, लाहौर १९३५, पृ १६.

६ ध माग ३, पृ. २५३. ७ गोमटसार, जीवकांड, (मे. उ. जे. सीरीज) पृ. १०५.

यह संख्या उन्तीस अंक ग्रहण करती है। इसमें भी उतने ही स्थान हैं जितने कि ( १,००,००,००० ) में, परन्तु है वह उससे बड़ी संख्या। यह बात धवलाकारको ज्ञात है, और उन्होंने मनुष्यक्षेत्रका क्षेत्रफल निकालकर यह सिद्ध किया है कि उक्त संख्याके मनुष्य मनुष्यक्षेत्रमें नहीं समा सकते, और इसलिये उस संख्यावाला मत ठीक नहीं है।

### मौलिक प्रक्रियायें

धवलायें जोड़, बाकी, गुणा, भाग, वर्गमूल और घनमूल निकालना, तथा संख्याओंका घात निकालना (The raising of numbers to given powers) आदि मौलिक प्रक्रियाओंका कथन उपलब्ध है। ये क्रियाएं पूर्णांक और भिन्न, दोनोंके संबंधमें कही गई हैं। धवलायें वर्णित घातांकका सिद्धान्त ( Theory of indices ) दूसरे गणित ग्रंथोंसे कुछ कुछ भिन्न है। निम्नतः यह सिद्धान्त प्राथमिक है, और सन् ५०० से पूर्वका है। इस सिद्धान्तसंबन्धी मौलिक विचार निम्नलिखित प्रक्रियाओंके आधारपर प्रतीत होते हैं:—(१) वर्ग, (२) घन, (३) उत्तरोत्तर वर्ग, (४) उत्तरोत्तर घन, (५) किसी संख्याका संख्यातुल्य घात निकालना ( The raising of numbers to their own power ), ( ६ ) वर्गमूल, ( ७ ) घनमूल, ( ८ ) उत्तरोत्तर वर्गमूल, ( ९ ) उत्तरोत्तर घनमूल, आदि। अन्य सब घातांक इन्हीं रूपोंमें प्रगट किये गये हैं।

उदाहरणार्थ—अ<sup>३</sup> को अ के घनका प्रथम वर्गमूल कहा है। अ<sup>१</sup> को अ का घनका घन कहा है। अ<sup>१</sup> को अ के घनका वर्ग, या वर्गका घन कहा है, इत्यादि<sup>१</sup>। उत्तरोत्तर वर्ग और घनमूल नीचे लिखे अनुसार हैं—

अ का प्रथम वर्ग	याने ( अ ) <sup>२</sup> = अ <sup>२</sup>
”	द्वितीय वर्ग ” ( अ <sup>२</sup> ) <sup>२</sup> = अ <sup>४</sup> = अ <sup>२</sup> <sup>२</sup>
”	तृतीय वर्ग ” अ <sup>३</sup>
”	न वर्ग ” अ <sup>२</sup>
उसी प्रकार—अ का प्रथम वर्गमूल	याने अ <sup>१/२</sup>
”	द्वितीय ” अ <sup>१/४</sup>
”	तृतीय ” अ <sup>१/३</sup>
”	न ” अ <sup>१/१</sup>

<sup>१</sup> धवला, भाग ३, पृष्ठ, ५३

### वर्णित-संवर्णित

परिभाषिक शब्द वर्णित-संवर्णितका प्रयोग किसी संख्याका संख्यातुल्य घात करनेके अर्थमें किया गया है।

उदाहरणार्थ—न<sup>३</sup> न का वर्णितसंवर्णितरूप है।

इस सम्बन्धमें धवलायें विरलन-देय 'फैलाना और देना' नामक प्रक्रियाका उल्लेख आया है। किसी संख्याका 'विरलन' करना व फैलाना अर्थात् उस संख्याको एकएकमें अलग करना है। जैसे, न के विरलनका अर्थ है—

१ १ १ १ १ . .... न बार

'देय' का अर्थ है उपर्युक्त अकोंमें प्रत्येक स्थान पर एककी जगह न ( विवक्षित संख्या ) को रख देना। फिर उस विरलन-देयसे उपलब्ध संख्याओंको परस्पर गुणा कर देनेसे उस संख्याका वर्णित-संवर्णित प्राप्त हो जाता है, और यही उस संख्याका प्रथम वर्णित-संवर्णित कहलाता है। जैसे, न का प्रथम वर्णित-संवर्णित न<sup>३</sup>।

विरलन-देयकी एकवार पुनः प्रक्रिया करनेसे, अर्थात् न<sup>३</sup> को लेकर वही विधान फिर करनेसे, द्वितीय वर्णित-संवर्णित ( न<sup>३</sup> )<sup>३</sup> प्राप्त होता है। इसी विधानको पुनः एकवार करनेसे

न का तृतीय वर्णित-संवर्णित { ( न<sup>३</sup> )<sup>३</sup> } ( न<sup>२७</sup> ) प्राप्त होता है।

धवलायें उक्त प्रक्रियाका प्रयोग तीन बारसे अधिक अपेक्षित नहीं हुआ है। किन्तु, तृतीय वर्णितसंवर्णितका उल्लेख अनेकवार<sup>२</sup> बड़ी संख्याओं व असंख्यात व अनन्तके संबंधमें किया गया है। इस प्रक्रियासे कितनी बड़ी संख्या प्राप्त होती है, इसका ज्ञान इस बातसे हो सकता है कि २ का तृतीयवार वर्णितसंवर्णित रूप २<sup>२५६</sup> हो जाता है।

### घातांक सिद्धान्त

उपर्युक्त कथनसे स्पष्ट है कि धवलाकार घातांक सिद्धान्तसे पूर्णतः परिचित थे। जैसे—

( १ ) अ<sup>३</sup> . अ<sup>३</sup> = अ<sup>६</sup> + न

( २ ) अ<sup>३</sup> / अ<sup>३</sup> = अ<sup>०</sup> - न

( ३ ) ( अ<sup>३</sup> )<sup>३</sup> = अ<sup>२७</sup> न

उक्त सिद्धान्तोंके प्रयोगसमर्थी उदाहरण ध्वलामें अनेक हैं। एक रोचक उदाहरण निम्न प्रयोगका है— कहा गया है कि २ के ७ वें वर्गमें २ के छठों वर्गका भाग देनेसे २ का छठा वर्ग ल-न आता है। अर्थात्—

$$2^{2^7} / 2^{2^6} = 2^{2^6}$$

जा ताजमिस्लमका ज्ञान नहीं हो पाया था तब द्वियुगक्रम और अर्धतमकी प्रक्रियाए (The operations of duplation and mediation) महत्वपूर्ण समझी जाती थीं। भारतीय गणितशास्त्रके प्रयोगोंमें इन प्रक्रियाओंका कोई चिह्न नहीं मिलता। किन्तु इन प्रक्रियाओंको मिश्र और यूनानके निवासी महत्वपूर्ण गिनते थे, और उनके अरुगणितसक्धी प्रयोगों में वे तदनुसार स्वीकार की जाती थीं। ध्यानमें इन प्रक्रियाओंके चिह्न मिलते हैं। दो या अन्य संख्याओंके उत्तरोत्तर वर्गीकरणका विचार निश्चयतः द्वियुगक्रमकी प्रक्रियासे ही परिष्कृतित हुआ होगा, और यह द्वियुग तमकी प्रक्रिया दाशमिकक्रमके प्रचारसे पूर्व भारतवर्षमें अवश्य प्रचलित रही होगी। उसी प्रकार अर्धतम पद्धतिता भी पता चलना है। ध्वलामें इस प्रक्रियाको हम २, ३, ४ आदि आधार-वाले लघुरिक्थ सिद्धान्तमें सावधानीकृत पाते हैं।

### लघुरिक्थ ( Logarithm )

ध्वलामें निम्न पारिभाषिक शब्दोंके लक्षण पाये जाते हैं—

- ( १ ) अर्धच्छेद— जितनी बार एक संख्या उत्तरोत्तर आधी की जा सकती है, उतने उस संख्याके अर्धच्छेद कहे जाते हैं। जैसे— २<sup>m</sup> के अर्धच्छेद = m अर्धच्छेदका समेत अछे मान कर हम इसे आधुनिक पद्धतिमें इस प्रकार रख सकते हैं—  
क का अछे ( या अछे क ) = लरि क। यहा लघुरिक्थका आधार २ है।
- ( २ ) वर्गशालाका— किसी संख्याके अर्धच्छेदोंके अर्धच्छेद उस संख्याकी वर्ग-शालाका होती है। जैसे— क की वर्गशालाका = क का अछे क = अछे क = लरि क। यहा लघुरिक्थका आधार २ है।
- ( ३ ) त्रिकच्छेद— जितने बार एक संख्या उत्तरोत्तर ३ से विभाजित की जाती है, उतने उस संख्याके त्रिकच्छेद होते हैं। जैसे— क के त्रिकच्छेद = त्रिछे क = लरि ३क। यहा लघुरिक्थका आधार ३ है।

१ ध्वला माग ३, पृ. २५३ आदि  
३ शाला माग ३, पृ. ५६  
२ ध्वला माग ३, पृ. २१ आदि

( ४ ) चतुर्थच्छेद— जितने बार एक संख्या उत्तरोत्तर ४ से विभाजित की जा सकती है, उतने उस संख्याके चतुर्थच्छेद होते हैं। जैसे— क के चतुर्थच्छेद = चछे क = लरि ४ क। यहा लघुरिक्थका आधार ४ है।

ध्वलामें लघुरिक्थसबधी निम्न परिणामोंका उपयोग किया गया है—

- ( १ ) लरि ( म.न ) = लरि म - लरि न  
( २ ) लरि ( म. न ) = लरि म + लरि न  
( ३ ) लरि म = म। यहा लघुरिक्थका आधार २ है।  
( ४ ) लरि ( क<sup>क</sup> )<sup>२</sup> = २ क लरि क  
( ५ ) लरि लरि ( क<sup>क</sup> )<sup>२</sup> = लरि क + १ + लरि लरि क,  
( वाई ओर ) = लरि ( २ क लरि क )  
= लरि क + लरि २ + लरि लरि क  
= लरि क + १ + लरि लरि क।

चूकि लरि २ = १, जब कि आधार २ है।

- ( ६ ) लरि ( क<sup>क</sup> ) = क<sup>क</sup> लरि क<sup>क</sup>  
( ७ ) मानलो अ एक संख्या है, तो—  
अ का प्रथम वर्णित-सर्वर्णित = अ<sup>अ</sup> = व ( मानलो )  
" द्वितीय " = व<sup>व</sup> = म " "  
" तृतीय " = म<sup>म</sup> = म " "

ध्वलामें निम्न परिणाम दिये गये हैं—

- ( क ) लरि व = अ लरि अ  
( ख ) लरि लरि व = लरि अ + लरि लरि अ  
( ग ) लरि म = व लरि व

१ मला, माग ३, पृ. ५६. २ ध्वला, माग ३, पृ. ६०. ३ ध्वला, माग ३, पृ. ५५.  
४ ध्वला, माग ३, पृ. २१ आदि ५ पूर्ववत्.

६ पूर्ववत्। यहा यह बात उल्लेखनीय है कि प्रथममें ये लघुरिक्थ पूर्णकों तक ही परिमित नहीं हैं। संख्या क कोई भी संख्या हो सकती है। क<sup>क</sup> प्रथम वर्णितसर्वर्णित राशि और ( क<sup>क</sup> )<sup>क<sup>क</sup></sup> द्वितीय वर्णित-सर्वर्णित राशि है।  
७ ध्वला, माग ३, पृ. २१-२४.

(घ) लरि लरि म = लरि व + लरि लरि व  
= लरि अ + लरि लरि अ + अ लरि अ

(ङ) लरि म = म लरि म

(च) लरि लरि म = लरि म + लरि लरि म । इत्यादि

(८) लरि लरि म < व'

इस असाध्यतासे निम्न असाध्यता आती है—

व लरि व + लरि व + लरि लरि व < व'

**भिन्न**— अङ्गगणितमे भिन्नोक्ती मौलिक प्रक्रियाओ, जिनका ज्ञान धवलामें ग्रहण कर लिया गया है, के अतिरिक्त यहा हम भिन्नसंबन्धी अनेक ऐसे रोचक सूत्र पाते है जो अन्य किसी गणितसंबन्धी ज्ञात ग्रन्थमें नहीं मिलते । इनमें निम्न लिखित उल्लेखनीय है—

$$(१) \frac{न'}{न \pm (न/प)} = न \mp \frac{न}{प \pm १}$$

(२) मान लो कि किसी एक सख्या म में द, द' ऐसे दो भाजको का भाग दिया गया और उनसे क्रमशः क और क' ये दो लब्ध (या भिन्न) उत्पन्न हुए । निम्न लिखित सूत्रमे म के द + द' से भाग देने का परिणाम दिया गया है—

$$\frac{म}{द + द'} = \frac{क'}{(क/क) + १}$$

अथवा =  $\frac{क}{१ + (क/क')}$

(३) यदि  $\frac{म}{द} = क$ , और  $\frac{म'}{द} = क'$ , तो— द (क-क') + म' = म

(४) यदि  $\frac{अ}{व} = क$ , तो—  $\frac{अ}{व + \frac{क}{न}} = क - \frac{क}{न + १}$  ;

१ धवला, भाग ३, पृ. २४

२ धवला, भाग ३, पृ. ४६

५ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २४

३ धवला, भाग ३, पृ. ४६

४ धवला, भाग ३, पृ. ४७, गाथा २७.

और  $\frac{अ}{व - \frac{क}{न}} = क + \frac{क}{न - १}$

(५) यदि  $\frac{अ}{व} = क$ , तो—  $\frac{अ}{व + स} = क - \frac{क}{व + १}$  ;

और  $\frac{अ}{व - स} = क + \frac{क}{व - १}$

(६) यदि  $\frac{अ}{व} = क$ , और  $\frac{अ}{व'} = क + स$ , तो—

$$व' = व - \frac{क}{स} + १ ;$$

और यदि  $\frac{अ}{व'} = क - स$ , तो—  $व' = व + \frac{क}{स} - १$

(७) यदि  $\frac{अ}{व} = क$ , और  $\frac{अ}{व'}$  दूसरा भिन्न है, तो—

$$\frac{अ}{व} - \frac{अ}{व'} = क \left( \frac{व' - व}{व'} \right)$$

(८) यदि  $\frac{अ}{व} = क$ , और  $\frac{अ}{व + ख} = क - स$ , तो—  $ख = \frac{व स}{क - स}$

(९) यदि  $\frac{अ}{व} = क$ , और  $\frac{अ}{व - ख} = क + स$ , तो—  $ख = \frac{व स}{क + स}$

(१०) यदि  $\frac{अ}{व} = क$ , और  $\frac{अ}{व + स} = क'$ , तो—  $क' = क - \frac{क स}{व + स}$

१ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २४

३ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २८.

५ भाग ३, पृ. ४९, गाथा ३०

२ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २५.

४ भाग ३, पृ. ४८, गाथा २९.

६ भाग ३, पृ. ४९, गाथा ३१

$$( ११ ) \text{ यदि } \frac{अ}{ब} = क, \text{ और } \frac{अ}{ब-स} = क', \text{ तो- } क' = क + \frac{क स}{ब-स}$$

ये सब परिणाम वाक्योंके अन्तर्गत अवतरणोंमें पाये जाते हैं। वे किसी भी गणित-संज्ञाकी उक्त ग्रंथोंमें नहीं मिलते। ये अवतरण अर्धमागधी अथवा प्राकृत ग्रंथोंके हैं। अनुमान यही होता है कि वे मत्र किन्हीं गणितसम्बन्धी जैन ग्रंथोंसे, अथवा पूर्ववर्ती टीकाओंसे लिखे गये हैं। ये अंगगणितकी किसी सारभूत प्रक्रियाका निरूपण नहीं करते। वे उस कालके स्मारकप्रदेशमें हैं न कि भाग एक कठिन और श्रमसाध्य विधान समझा जाता था। ये नियम निश्चिततः उस काल के हैं जब कि दाशमिक-क्रमका अन्तर्गतिकी प्रक्रियाओंमें उपयोग सुप्रचलित नहीं हुआ था।

**त्रैराशिक**— त्रैराशिक क्रियाका ध्वलमें अनेक स्थानों पर उल्लेख और उपयोग किया गया है। इस प्रक्रियासंबन्धी परिभाषिक शब्द हैं— फल, इच्छा और प्रमाण— ठीक वही जो उक्त प्रयोग मिलते हैं। इससे धनुमान होता है कि त्रैराशिक क्रियाका ज्ञान और व्यवहार भारतमें दाशमिक क्रमके आविष्कारसे पूर्व भी वर्तमान था।

### अनन्त

बड़ी संख्याओंका प्रयोग— 'अनन्त' शब्दका विविध अर्थोंमें प्रयोग सभी प्राचीन जातियोंके साहित्यमें पाया जाता है। किन्तु उसकी ठीक परिभाषा और समझदारी बहुत पछि आई। यह स्वाभाविक ही है कि अनन्तकी ठीक परिभाषा उन्हीं लोगोंद्वारा विज्ञापित हुई जो नयी संख्याओंका प्रयोग करते थे, या अपने दर्शनशास्त्रमें ऐसी संख्याओंके अभ्यस्त थे। निम्न पीछत्से यह प्रकट हो जायगा कि भारतमें जैन दार्शनिक अनन्तसे सत्रय रखनेवाली विविध भाषाओंको श्रेणीबद्ध करने तथा गणनासबधी अनन्तकी ठीक परिभाषा निम्नलिखितमें सफल हुए।

बड़ी संख्याओंको व्यक्त करनेके लिये उचित संकेतोंका तथा अनन्तकी कल्पनाका विकास तभी होता है जब निर्यूह तर्क और विचार एक विशेष उच्च श्रेणीपर पहुँच जाते हैं। युरोपमें आर्किमिडीजने समुद्र-तटकी रेतके कणोंके प्रमाणके अदाल लगानेका प्रयत्न किया था और यूनानके दार्शनिकोंने अनन्त एव सीमा (limit) के विषयमें विचार किया था। किन्तु उनके पास बड़ी संख्याओंको व्यक्त करनेके योग्य संकेत नहीं थे। भारतवर्षमें हिन्दू, जैन और बौद्ध दार्शनिकोंने बहुत बड़ी संख्याओंका प्रयोग किया और उस कार्यके लिये उन्होंने उचित संकेतोंका

१ भाग ३, पृ. ४९, गाथा ३२

२ धाला भाग ३, पृ. ६९ और १०० आदि

भी आविष्कार किया। विशेषतः जैनियोंने लोकरके समस्त जीवों, काल-प्रदेशों और क्षेत्र अथवा आकाश-प्रदेशों आदिके प्रमाणका निरूपण करनेका प्रयत्न किया है।

बड़ी संख्यायें व्यक्त करनेके तीन प्रकार उपयोगमें लाये गये—

(१) दाशमिक-क्रम (Place-value notation)— जिसमें दशमानका उपयोग किया गया। इस संबन्धमें यह बात उल्लेखनीय है कि दशमानके आधारपर १०<sup>१४</sup> जैसी बड़ी संख्याओंको व्यक्त करनेवाले नाम कल्पित किये गये।

(२) घातांक नियम (Law of indices वर्ग-संवर्ग) का उपयोग बड़ी संख्याओंको सूक्ष्मतासे व्यक्त करनेके लिये किया गया। जैसे—

$$(अ) २^३ = ४$$

$$(ब) (२^३)^३ = ४^३ = २५६$$

$$(स) \{(२^३)^३\} = २५६^{३०६}$$

जिसको २ का तृतीय वर्गित-सवर्गित कहा है। यह संख्या समस्त विश्व (universe) के विद्युत्कणों (protons and electrons) की संख्यासे बड़ी है।

(३) लघुरिक्थ (अर्धच्छेद) अथवा लघुरिक्थके लघुरिक्थ (अर्धच्छेदशालाका) का उपयोग बड़ी संख्याओंके विचारको छोटी संख्याओंके विचारमें उतारनेके लिये किया गया। जैसे—

$$(अ) \text{ लरि } २ \quad २^३ = २$$

$$(ब) \text{ लरि } २ \quad ४^३ = ३$$

$$(स) \text{ लरि } २ \quad २५६^{३०६} = ११$$

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि आज भी संख्याओंको व्यक्त करनेके लिये हम उपर्युक्त तीन प्रकारोंमें किसी एक प्रकारका उपयोग करते हैं। दाशमिकक्रम समस्त देशोंकी साधारण सम्पत्ति बन गई है। जहाँ बड़ी संख्याओंका गणित करना पड़ता है, वहाँ लघुरिक्थोंका उपयोग किया जाता है। आधुनिक पदार्थविज्ञानमें परिमाणों (magnitudes) को व्यक्त करनेके

१ बड़ी संख्यायें तथा संख्या-नामोंके सर्वथम विशेष जाननेके लिये देखिये दच और सिंह रूत हिन्दू गणितशास्त्रका इतिहास (History of Hindu Mathematics), मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर, द्वारा प्रकाशित, भाग १, पृ. ११ आदि.

लिये घातांक नियमोंका उपयोग सर्वसाधारण है। उदाहरणार्थ—विश्वभरके विद्युत्कणोंकी गणना करके उसकी व्यक्तिके इस प्रकार की गई है— १३६२<sup>५६</sup> तथा, रूढ संख्याओंके विकलन (distribution of primes) को सूचित करनेवाली स्पर्ज संख्या (Skewes' number) निम्न प्रकारसे व्यक्त की जाती है—

$$10^{10^{34}}$$

संख्याओंको व्यक्त करनेवाले उपर्युक्त समस्त प्रकारोंका उपयोग ध्वलाभे किया गया है। इससे स्पष्ट है कि भारतवर्षमें उन प्रकारोंका ज्ञान सातवीं शताब्दिसे पूर्व ही सर्व-साधारण हो गया था।

#### अनन्तता वर्गीकरण

ध्वलाभे अनन्तता वर्गीकरण पाया जाता है। साहित्यमें अनन्त शब्दका उपयोग अनेक अर्थोंमें हुआ है। जैन वर्गीकरणमें उन सबका ध्यान रखा गया है। जैन वर्गीकरणके अनुसार अनन्तके ग्यारह प्रकार हैं। जैसे—

( १ ) नामानन्त — नामका अनन्त। किसी भी वस्तु-समुदायके यथार्थतः अनन्त होने या न होनेका विचार किये बिना ही केवल उसका बहुल प्रगट करनेके लिये साधारण बोलचालमें अथवा अवोध मनुष्यों द्वारा या उनके लिये, अथवा साहित्यमें, उसे अनन्त कह दिया जाता है। ऐसी अवस्थामें 'अनन्त' शब्दका अर्थ नाममात्रका अनन्त है। इसे ही नामानन्त कहते हैं।

१ संख्या १३६ २<sup>५६</sup> को दशमिक क्रमसे व्यक्त करने पर जो रूप प्रकट होता है वह इस प्रकार है—  
१५,७४७,७२४,१३६,३७५,००२,५७७,६०५,६५३,९६२,१८१,५५५,४६८,०४४,७१७,९१४,५७२,  
१२६,७०९,३६६,२३१,४२५,०७६,१८५,६३१,०३२,२९६,

इससे देखा जा सकता है कि २ का तृतीय वर्णित स्वर्णित अर्थात् २<sup>५६</sup> विश्वभरके समस्त विद्युत्-कणोंकी संख्यासे अधिक होता है। यदि हम समस्त विश्वको एक शतरजका फलक मान लें और विद्युत्कणोंको उसकी गोदियां, और दो विद्युत्कणोंकी किसी भी परिच्छित्तिको इस विश्वके खेलकी एक 'चाल' मान लें, तो समस्त समव 'चालों' की संख्या—

$$10^{10^{34}}$$

यह संख्या रूढ संख्याओं (primes) के विभाग (distribution) से भी सन्ध रहती है।

२ नीत्राजीनमिस्तद्वत्स कारणभित्तिका सण्णा अण्णा । ध्वला ३, पृ ११.

( २ ) स्थापनानन्त — आरोपित या आनुवंशिक, या स्थापित अनन्त। यह भी यथार्थ अनन्त नहीं है। जहां किसी वस्तुमें अनन्तता आरोपण कर लिया जाता है वहां इस शब्दका प्रयोग किया जाता है।

( ३ ) द्रव्यानन्त — तत्काल उपयोगमें न आते हुए ज्ञानकी अपेक्षा अनन्त। इस संज्ञाका उपयोग उन पुरुषोंके लिये किया जाता है जिन्हें अनन्त-विषयक शास्त्रका ज्ञान है, जिसका वर्तमानमें उपयोग नहीं है।

( ४ ) गणनानन्त — सख्यात्मक अनन्त। यह संज्ञा गणितशास्त्रमें प्रयुक्त वास्तविक अनन्तके अर्थमें आई है।

( ५ ) अप्रदेशिकानन्त — परिमाणहीन अर्थात् अत्यन्त अल्प परमाणुरूप।

( ६ ) एकानन्त — एकदिशात्मक अनन्त। यह वह अनन्त है जो एक दिशाओं की सीधी एक रेखारूपसे देखनेमें प्रतीत होता है।

( ७ ) विस्तारानन्त — द्विविस्तारात्मक अथवा पृष्ठदेशीय अनन्त। इसका अर्थ है प्रतारात्मक अनन्ताकाश।

( ८ ) उभयानन्त — द्विदिशात्मक अनन्त। इसका उदाहरण है एक सीधी रेखा जो दोनों दिशाओंमें अनन्त तक जाती है।

( ९ ) सर्वानन्त — आकाशात्मक अनन्त। इसका अर्थ है त्रिधा-विस्तृत अनन्त, अर्थात् घनाकार अनन्ताकाश।

( १० ) भावानन्त — तत्काल उपयोगमें आते हुए ज्ञानकी अपेक्षा अनन्त। इस संज्ञाका उपयोग उस पुरुषके लिये किया जाता है जिसे अनन्त-विषयक शास्त्रका ज्ञान है और जिसका उस ओर उपयोग है।

( ११ ) शाश्वतानन्त — निरवस्थायी या अविनाशी अनन्त।

पूर्वोक्त वर्गीकरण खूब व्यापक है जिसमें उन सब अर्थोंका समावेश हो गया है जिन अर्थोंमें कि 'अनन्त' संज्ञाका प्रयोग जैन साहित्यमें हुआ है।

१ जं ङ इवणाणत गाम त वट्टकम्मेष वा चिचकम्मेष वा पोत्तकम्मेष वा अनखी वा नराड्यो

वा जे च अण्णे इवणाए इविदा अणतमिदि त सब्ब इवणाणत गाम । ध ३, पृ. ११ से १२.

२ ज त दवणाणत त इमिह आगमदो णोआगमदो य । ध ३, पृ. १२

गणनानन्त ( Numerical infinite )

यन्त्रमें यह स्पष्टरूपसे कह दिया गया है कि प्रकृतमें अनन्त संज्ञाका प्रयोग गणना-नन्तके अर्थमें ही किया गया है, अन्य अनन्तके अर्थमें नहीं, ' क्योंकि उन अन्य अनन्तोंके द्वारा प्रमाणका प्ररूपण नहीं पाया जाता ' । यह भी कहा गया है कि ' गणनानन्त बहुवर्णनीय और सुगम है ' । इस कथनका अर्थ समयतः यह है कि जैन-साहित्यमें अनन्त अर्थात् गणना-नन्तकी परिभाषा अधिक विशदरूपसे मिल मिल लेखकों द्वारा कर दी गई थी, तथा उसका प्रयोग और जान भी सुप्रचलित हो गया था। किन्तु ध्वलामें अनन्तकी परिभाषा नहीं दी गई। तो भी अनन्तमंथी प्रक्रियाएँ सत्यात और असत्यात नामक प्रमाणोंके साथ साथ बहुत धार उद्भिगित हुई हैं ।

संस्यात, असत्यात और अनन्त प्रमाणोंका उपयोग जैन साहित्यमें प्राचीनतम ज्ञात-कालमें किया गया है। किन्तु प्रतीत होता है कि उनका अभिप्राय सदैव एकसा नहीं रहा। प्राचीनतर ग्रंथोंमें अनन्त सचमुच अनन्तके उसी अर्थमें प्रयुक्त हुआ था जिस अर्थमें हम अब उसी परिभाषा करते हैं। किन्तु पीछे के ग्रंथोंमें उसका स्थान अनन्तानन्तने ले लिया। उदाहरणार्थ— नेमिचन्द्र द्वारा दशवीं शताब्दिमें लिखित ग्रंथ त्रिलोकसारके अनुसार परीतानन्त, युक्तानन्त ए। जगन्य अनन्तानन्त एत वड़ी भारी संख्या है, किन्तु है वह सान्त। उस ग्रंथके अनुसार संख्याओंके तीन मुख्य भेद किये जा सकते हैं—

- ( १ ) संख्यात—जिसका संकेत हम स मान लेते हैं ।
- ( २ ) असंख्यात—जिसका संकेत हम अ मान लेते हैं ।
- ( ३ ) अनन्त—जिसका संकेत हम न मान लेते हैं ।

उपर्युक्त तीनों प्रकारके संख्या-प्रमाणोंके पुनः तीन तीन प्रभेद किये गये हैं जो निम्न प्रकार हैं—

- ( १ ) संख्यात— ( गणनीय ) संख्याओंके तीन भेद हैं—  
 ( अ ) जगन्य-सत्यात ( अक्षयतम संख्या ) जिसका संकेत हम स ज मान लेते हैं ।  
 ( ब ) मध्यम-संख्यात ( बीचकी संख्या ) जिसका संकेत हम स म मान लेते हैं ।

१ धाला ३, पृ १६.

२ 'ण च संसथत्ताणि पमाणपल्लणाणि, तस्य तथादसणदो' । ध ३, पृ १७.

३ 'ज त गणणात् त बहुवर्णनीय सुगमं च' । ध ३, पृ १६

( स ) उच्छ्रष्ट-संख्यात ( सबसे बड़ी संख्या ) जिसका संकेत हम स उ मान लेते हैं ।

( २ ) असंख्यात ( अगणनीय ) के भी तीन भेद हैं—

- ( अ ) परीत-असंख्यात ( प्रथम श्रेणीका असंख्य ) जिसका संकेत हम अ प मान लेते हैं ।
- ( ब ) युक्त-असंख्यात ( बीचका असंख्य ) जिसका संकेत हम अ यु मान लेते हैं ।
- ( स ) असंख्यातासंख्यात ( असंख्य-असंख्य ) जिसका संकेत हम अ अ मान लेते हैं ।

पूर्वोक्त इन तीनों भेदोंमेंसे प्रत्येकके पुनः तीन तीन प्रभेद होते हैं। जैसे, जगन्य ( सबसे छोटा ), मध्यम ( बीचका ) और उच्छ्रष्ट ( सबसे बड़ा ) । इस प्रकार असंख्यातके भीतर निम्न संख्याएँ प्रविष्ट हो जाती हैं—

१	जगन्य-परीत-असंख्यात	.. . . .	अ प ज
२	मध्यम-परीत-असंख्यात	.. . . .	अ प म
३	उच्छ्रष्ट-परीत-असंख्यात	.. . . .	अ प उ
१	जगन्य-युक्त-असंख्यात	.....	अ यु ज
२	मध्यम-युक्त-असंख्यात	.. . . .	अ यु म
३	उच्छ्रष्ट-युक्त-असंख्यात	.....	अ यु उ
१	जगन्य-असंख्यातासंख्यात	.....	अ अ ज
२	मध्यम-असंख्यातासंख्यात	.....	अ अ म
३	उच्छ्रष्ट-असंख्यातासंख्यात	.....	अ अ उ

( ३ ) अनन्त— जिसका संकेत हम न मान चुके हैं । उसके तीन भेद हैं—

- ( अ ) परीत-अनन्त ( प्रथम श्रेणीका अनन्त ) जिसका संकेत हम न प मान लेते हैं ।
- ( ब ) युक्त-अनन्त ( बीचका अनन्त ) जिसका संकेत हम न यु मान लेते हैं ।
- ( स ) अनन्तानन्त ( निःसीम अनन्त ) जिसका संकेत हम न न मान लेते हैं ।

असंख्यातके समान इन तीनों भेदोंके भी प्रत्येकके पुनः तीन तीन प्रभेद होते हैं। जगन्य, मध्यम और उच्छ्रष्ट । अतः अनन्तके भेदोंमें हमें निम्न संख्याएँ प्राप्त होती हैं—

१	जगन्य-परीतानन्त	.....	न प ज
२	मध्यम-परीतानन्त	.....	न प म
३	उच्छ्रष्ट-परीतानन्त	.....	न प उ





अ प ज का प्रमाण ७" में समानेवाले सरसप बीजोंकी सख्याके बराबर होगा और उच्छुट-सरयात = स उ = अ प ज - १.

**पर्यालोचन**— सख्याओंको तीन भेदोंमें विभक्त करनेका मुख्य अभिप्राय यह प्रतीत होता है— सख्यात अर्थात् गणना कहा तक की जा सकती है यह भाषामें सख्या-नामोंकी उपलब्धि। अथा संख्यायुक्तिके अन्य उपायोंकी प्राप्ति पर अवलम्बित है। अतएव भाषामें गणनाका क्षेत्र बढ़ानेके लिये भारतवर्षमें प्रधानतः दश-मानके आधार पर सख्या-नामोंकी एक टक्की श्रेणी तनई गई। हिन्दू १०<sup>१</sup> तककी गणनाको भाषामें व्यक्त कर सकनेवाले अठारह नामोंसे सतृष्ट होगये। १०<sup>१</sup> से ऊपरकी सख्याएँ उन्हीं नामोंकी पुनरावृत्ति द्वारा व्यक्त की जा सकती थी, जैसा कि अत्र हम दश दश-लाख (million million) आदि कह कर करते हैं। किन्तु उस बातका अनुभव होगया कि यह पुनरावृत्ति भारभूत (cumbersome) है। बोद्धों और जैनियोंको अपने दर्शन और विश्वरचना संबंधी विचारोंके लिये १०<sup>१</sup> से बहुत बड़ी सख्याओंकी आवश्यकता पड़ी। अतएव उन्होंने और बड़ी बड़ी सख्याओंके नाम कल्पित कर लिये। जैनियोंके संख्यानामोंका तो अब हमें पता नहीं है, किन्तु बौद्धोंद्वारा कल्पित सख्या-

१ जैनियोंके गौरीन महिलोंमें दक्षिण-प्रमाणोंके सूचक नामोंकी तालिका पाई जाती है जो एक नई प्रणालीके शास्त्र श्रुती है। यह नाममात्रों श्य प्रकार है—

१ नं	= ५ नं	१७ अट्यांग	= ८४ युक्ति
२ युग	= ८४ लाख नं	१८ अट्ट	= " लाख अट्टांग
३ पूर्वांग	= " लाख पूर्वांग	१९ अममांग	= " अट्ट
४ पूर्व	= " पूर्व	२० अपम	= " लाख अपममांग
५ न्युत्तांग	= " लाग न्युत्तांग	२१ हाहांग	= " अमम
६ न्युत्त	= " न्युत्त	२२ हाहा	= " लाख हाहांग
७ स्यांग	= " लाख कुमुटांग	२३ इहांग	= " हाहा
८ समद	= " कुमुद	२४ इद	= " लाख इहांग
९ पमांग	= " लाग पमांग	२५ लतांग	= " इद
१० पय	= " पय	२६ लता	= " लाख लतांग
११ नरिन्नांग	= " लाग नरिन्नांग	२७ महालतांग	= " लता
१२ नरिन	= " लाग नरिन्नांग	२८ महालता	= " लाख महालतांग
१३ मालांग	= " नरिन	२९ शीन्प	= " लाग महालता
१४ सान	= " लाग मालांग	३० हस्तहेलित	= " लाख शीन्प
१५ युक्तिंग	= " माल	३१ अचलप	= " लाख हस्तयहेलित
१६ युक्ति	= " लाख युक्तिंग		

यह नामाली त्रिलोत्पत्ति (४-६ वीं शताब्दि) हविशपुराण (८ वीं शताब्दि) और राज-वार्तिक (८ वीं शताब्दि) में कुछ नाममोक्षोंके साथ पाई जाती है। त्रिलोत्पत्तिके एक उल्लेखानुसार अचलपका प्रमाण ८४ को ३१ बार परस्पर उणा मनेसे प्राप्त होता है—अचलप = ८४<sup>३१</sup> तथा यह सख्या ९० अंक प्रमाण श्रेणी। किन्तु उगुरीस तालिका (Logarithmic tables) के अनुसार ८४<sup>३१</sup> संख्या ९० अंक प्रमाण ही प्राप्त होती है। देगिने धवला, मांग ३, प्रस्तावना व फुट नोट, पृ ३४—सम्पादक.

नामोंकी निम्न श्रेणिका चिन्ताकर्षक है—

१ एक	= १	१५ अब्युद	= (१०,०००,०००) <sup>८</sup>
२ दस	= १०	१६ निरब्युद	= (१०,०००,०००) <sup>९</sup>
३ सत	= १००	१७ अहह	= (१०,०००,०००) <sup>१०</sup>
४ सहरस	= १,०००	१८ अत्रव	= (१०,०००,०००) <sup>११</sup>
५ दससहरस	= १०,०००	१९ अट्ट	= (१०,०००,०००) <sup>१२</sup>
६ सतसहरस	= १००,०००	२० सोगन्धिक	= (१०,०००,०००) <sup>१३</sup>
७ दससतसहरस	= १,०००,०००	२१ उणल	= (१०,०००,०००) <sup>१४</sup>
८ कोटि	= १०,०००,०००	२२ कुमुद	= (१०,०००,०००) <sup>१५</sup>
९ पकोटि	= (१०,०००,०००) <sup>२</sup>	२३ पुडरीक	= (१०,०००,०००) <sup>१६</sup>
१० कोटिपकोटि	= (१०,०००,०००) <sup>३</sup>	२४ पदुम	= (१०,०००,०००) <sup>१७</sup>
११ नहुत	= (१०,०००,०००) <sup>४</sup>	२५ कथान	= (१०,०००,०००) <sup>१८</sup>
१२ निबहुत	= (१०,०००,०००) <sup>५</sup>	२६ महाभयान	= (१०,०००,०००) <sup>१९</sup>
१३ अबोभिनी	= (१०,०००,०००) <sup>६</sup>	२७ असख्येय	= (१०,०००,०००) <sup>२०</sup>
१४ विन्दु	= (१०,०००,०००) <sup>७</sup>		

यहां देखा जाता है कि श्रेणिकांमें अन्तिम नाम असंख्येय है। इसका अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि असंख्येयके ऊपरकी संख्याएं गणनातीत हैं।

असंख्येयका परिमाण समय पर अवश्य बदलता रहा होगा। नेमिचन्द्रका असख्यात उपर्युक्त असंख्येयसे, जिसका प्रमाण १०<sup>१४</sup> होता है, निश्चयतः भिन्न है।

**असंख्यात**— ऊपर कहा ही जा चुका है कि असख्यातके तीन मुख्य भेद हैं और उनमेंसे भी प्रत्येकके तीन तीन भेद हैं। ऊपर निर्दिष्ट संकेतोंके प्रयोग करनेसे हमें नेमिचन्द्रके अनुसार निम्न प्रमाण प्राप्त होते हैं—

असंख्येय-परीत-असख्यात (अ प ज) = स उ + १  
 मध्यम-परीत-असख्यात (अ प म) है > अ प ज, किन्तु < अ प उ.  
 उच्छुट-परीत असख्यात (अ प उ) = अ यु ज - १

जहां—

असंख्येय-युक्त-असख्यात (अ यु ज) = (अ प ज) <sup>अ प ज</sup>  
 मध्यम-युक्त-असख्यात (अ यु म) है > अ यु ज, किन्तु < अ यु उ.

उक्त-युक्त असंख्यात ( अ यु उ = अ अ ज - १.

जहाँ—

जघन्य-असंख्यातासंख्यात ( अ अ ज ) = ( अ यु ज )<sup>१</sup>

मध्यम-असंख्यातासंख्यात ( अ अ म ) है > अ अ ज, किंतु < अ अ उ.

उक्त-असंख्यातासंख्यात ( अ अ उ ) = अ प ज - १.

जहाँ—

न प ज जघन्य-परित-अनन्तका बोधक है ।

अनन्त— अनन्त श्रेणीकी संख्याएँ निम्न प्रकार है—

जघन्य-परित-अनन्त( न प ज ) निम्न प्रकारसे प्राप्त होता है—

$$क = \left[ \left\{ \left\{ \begin{array}{l} (अअज) \\ (अअज) \end{array} \right\} \right\} \left\{ \left\{ \begin{array}{l} (अअज) \\ (अअज) \end{array} \right\} \right\} \right] \left\{ \left\{ \begin{array}{l} (अअज) \\ (अअज) \end{array} \right\} \right\}$$

मानलो ख = क + छह द्रव्य<sup>२</sup>

$$मानलो ग = \left\{ \left\{ \begin{array}{l} खख \\ (खख) \end{array} \right\} \right\} \left\{ \left\{ \begin{array}{l} खख \\ (खख) \end{array} \right\} \right\} + ४ राशियाँ<sup>३</sup>$$

तत्र—

$$जघन्य-परित-अनन्त ( न प ज ) = \left\{ \left\{ \begin{array}{l} गग \\ (गग) \end{array} \right\} \right\} \left\{ \left\{ \begin{array}{l} गग \\ (गग) \end{array} \right\} \right\}$$

मध्यम-परित-अनन्त ( न प म ) है > न प ज, किंतु < न प उ

उक्त-परित-अनन्त ( न प उ ) = न यु ज - १,

<sup>१</sup> छह द्रव्य ये हैं— (१) धर्म, (२) अक्षर, (३) एक जीव, (४) लोकाकाश, (५) अप्रतिष्ठित (वनस्पति जीव), और (६) प्रतिष्ठित (वनस्पति जीव)

<sup>२</sup> चार सदुदाय ये हैं— (१) एक कल्पकालके समय, (२) लोकाकाशके प्रदेश, (३) अतुभागावध-अधस्तात्पश्चात्, और (४) योगके अविभाग प्रतिच्छेद

जहाँ—

जघन्य-युक्त-अनन्त ( न यु ज ) = ( अ प ज )

मध्यम-युक्त-अनन्त ( न यु म ) है > न यु ज, किंतु < न यु उ

उक्त-युक्त-अनन्त ( न यु उ ) = न न ज - १

जहाँ—

जघन्य-अनन्तानन्त ( न न ज ) = ( न यु ज )<sup>१</sup>

मध्यम-अनन्तानन्त ( न न म ) > है न न ज, किंतु < न न उ

जहाँ—

न न उ उक्त-अनन्तानन्तके लिये प्रयुक्त है, जो कि नेमिचन्द्रके अनुसार निम्न प्रकारसे प्राप्त होता है—

$$क्ष = \left[ \left\{ \left\{ \begin{array}{l} ननज \\ (ननज) \end{array} \right\} \right\} \left\{ \left\{ \begin{array}{l} ननज \\ (ननज) \end{array} \right\} \right\} \right] \left\{ \left\{ \begin{array}{l} ननज \\ (ननज) \end{array} \right\} \right\}$$

+ छह राशियाँ<sup>२</sup>

$$त्र = \left\{ \left\{ \begin{array}{l} क्षक्ष \\ (क्षक्ष) \end{array} \right\} \right\} \left\{ \left\{ \begin{array}{l} क्षक्ष \\ (क्षक्ष) \end{array} \right\} \right\} + दो राशियाँ<sup>३</sup>$$

$$ज्ञ = \left\{ \left\{ \begin{array}{l} त्रत्र \\ (त्रत्र) \end{array} \right\} \right\} \left\{ \left\{ \begin{array}{l} त्रत्र \\ (त्रत्र) \end{array} \right\} \right\}$$

अत्र, केवलज्ञान राशि ज्ञ से भी बड़ी है और—

न न उ = केवलज्ञान - ज्ञ + ज्ञ = केवलज्ञान.

पर्यालोचन— उपर्युक्त विवरणका यह निष्कर्ष निकलता है—

( १ ) जघन्य-परित-अनन्त ( न प ज ) अनन्त नहीं होता जबतक उसमें प्रसिद्ध किये गये छह द्रव्यों या चार राशियोंसे एक या अधिक अनन्त न मान लिये जाय ।

<sup>१</sup> छह राशिया ये हैं— [ १ ] सिद्ध, ( २ ) साधारण वनस्पति सिंगोद, ( ३ ) वनस्पति, ( ४ ) पुद्गल, ( ५ ) न्यवहारमल और ( ६ ) अलोनाकाश

<sup>२</sup> ये दो राशिया हैं— ( १ ) धर्मद्रव्य, ( २ ) अधर्मद्रव्य, ( ३ ) अतुभागावध गुणके अविभाग-प्रतिच्छेद

( २ ) उद्घृष्ट-अनन्त-अनन्त ( न न उ ) केन्द्रज्ञानराजिके समप्रमाण हे । उपर्युक्त विचारसे यह अभिप्राय निरूढता है कि उल्लूक अनन्तानन्त अमृगणितम् किसी प्रक्रियाद्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता, चाहे वह प्रक्रिया कितनी ही दूर क्यों न ले जाई जाय । यथार्थतः यह नक्षत्रगणितद्वारा प्राप्त न की किसी भी सख्यासे अधिक ही रहेगा । अतः मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि केन्द्रज्ञान अनन्त छ, और डमीट्रिय उल्लूक-अनन्तानन्त भी अनन्त है ।

इस प्रकार त्रिचोक्रसारान्तर्गत विचार हमें कुछ सखयोंमें ही छोड़ देता है कि परितानन्त और युक्तानन्तके तीन तीन प्रकार तथा जषय्य अनन्तानन्त सचमुच अनन्त है या नहीं, क्योंकि ये सम अनन्तयत्तके ही गुणनफल कहे गये हैं, और जो राशिया उनमें जोड़ी गईं हैं वे भी असत्यातमत्र ही हैं । किन्तु धनयत्ता अनन्त सचमुच अनन्त ही है, क्योंकि यहाँ यह स्पष्टतः यह दिया गया है कि 'न्यय होनेसे जो राशि नष्ट हो वह अनन्त नहीं कही जा सकती' । धात्योंमें यह भी कह दिया गया है कि अनन्तानन्तसे सर्वत्र तात्पर्य मध्यम-अनन्तानन्तसे है । अतः वाक्यानुसार मध्यम-अनन्तानन्त अनन्त ही है । धयलोंमें उल्लिखित दो राशियोंके भिन्नानती भिन्न रीति बड़ी रोचक हैं—

एक ओर गतज्ञानत्री समस्त अनसर्पिणी और उत्सर्पिणी अर्थात् कल्पकालके समयोंको ( time instants ) स्थापित करो । ( इनमें अनादि-सातत्य होनेसे अनन्तत्व है ही । ) दूसरी ओर भिव्याट्टि जीराशि रखो । अब दोनों राशियोंमेंसे एक एक रूप बराबर उठा-उठा कर फेरते जाओ । इस प्रकार करते जानेसे कालराशि नष्ट हो जाती है, किन्तु जीवन-राशिका आधार नहीं होता । धात्योंमें इस प्रकारसे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि भिव्या-रट्टि राशि अतीत कल्पोंके समयोंसे अधिक है ।

यह उपर्युक्त रीति और कुछ नहीं केवल एकसे-एककी संगति ( one-to-one correspondence ) का प्रकार है जो आधुनिक अनन्त गणनांकोके सिद्धान्त ( Theory of infinite cardinals ) का मूलधार है । यह कहा सकता है कि वह रीति परिमित गणनांकोके मिलानमें भी उपयुक्त होती है, और इसीलिये उसका आलम्बन दो बड़ी परिमित राशियोंके मिलानके लिये किया गया था— रतनी बड़ी राशिया जिनके अगों ( elements )

१ 'रते गर पदुतस्र षण्णेषारिषरो' । प. ३, पृ. २५.  
२ धयला ३, पृ. २८.

३ 'अणताणताहि ओतपिणि उरसपिणीहि ण अवहरिती कलेण' । प. ३, पृ. २८ वर ३, देखो टीका,  
पृ. २८, 'कम कलेण मिण्णित्ते मिञ्जण्डी जीवा' । आदि ।

की गणना किसी संख्यात्मक संज्ञा द्वारा नहीं की जा सकती । यह दृष्टिकोण इस बातसे और भी पुष्ट होता है कि जैन-ग्रंथोंमें समयके अध्यायका भी निश्चय कर दिया गया है, और इसलिये एक कल्प ( अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी ) के कालप्रदेश परिमित ही होना चाहिये, क्योंकि, कल्प स्वयं कोई अनन्त कालमान नहीं है । इस अन्तिम मतके अनुसार जषय्य-परित-अनन्त, जो कि परिभाषानुसार कल्पके कालप्रदेशोंकी राशिसे अधिक है, परिमित ही है ।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, एकसे-एककी संगतिकी रीति अनन्त गणनांकोके अध्ययनके लिये सबसे प्रबल साधन सिद्ध हुई है, और उस सिद्धान्तके अन्वेषण तथा सर्व-प्रथम प्रयोगका श्रेय जैनियोंको ही है ।

सख्याओंके उपर्युक्त वर्गीकरणमें मुझे अनन्त गणनांकोके सिद्धान्तको विकसित करनेका प्राथमिक प्रयत्न दिखाई देता है । किन्तु इस सिद्धान्तमें कुछ गभीर दोष हैं । ये दोष विरोध उत्पन्न करेंगे । इनमेंसे एक स— १ की संख्याकी कल्पनाका है, जहाँ स अनन्त है और एक वर्गकी सीमाका नियामक है । इसके विपरीत जैनियोंका यह सिद्धान्त कि एक सख्या स का वर्गित-सर्वर्गित रूप अर्थात् स<sup>२</sup> एक नवीन संख्या उत्पन्न कर देता है, युक्तपूर्ण है । यदि यह सच हो कि प्राचीन जैन साहित्यका उल्लूक-असंख्यात अनन्तसे भेळ खाता है, तो अनन्तकी सख्याओंकी उत्पत्तिमें आधुनिक अनन्त गणनांकोके सिद्धान्त ( Theory of infinite cardinals ) का कुछ सीमा तक पूर्वनिरूपण हो गया है । गणितशास्त्रीय विम्वसके उत्तने प्राचीन काल और उस प्रारम्भिक स्थितिमें इस प्रकारके किसी भी प्रयत्नकी असफलता अवश्यभावी थी । आश्चर्य तो यह है कि ऐसा प्रयत्न किया गया था ।

अनन्तके अनेक प्रकारोंकी सत्ताको जार्ज केन्टरेने उन्नीसवीं शताब्दिके मध्यकालके लगभग प्रयोग-सिद्ध करके दिखाया था । उन्होंने सीमातीत ( transfinite ) सख्याओंका सिद्धत स्थापित किया । अनन्त राशियोंके क्षेत्र ( domain ) के विषयमें केन्टरेके अन्वेषणोंसे गणितशास्त्रके लिये एक पुष्ट आधार, खोजके लिये एक प्रबल साधन और गणितसवधी अत्यन्त गूढ विचारोंको ठीक रूपसे व्यक्त करनेके लिये एक भाषा मिल गई है । तो भी यह सीमातीत संख्याओंका सिद्धान्त अभी अपनी प्राथमिक अवस्थामें ही है । अभी तक इन संख्याओंका कलन ( Calculus ) प्राप्त नहीं हो पाया है, और इसलिये हम उन्हें अभी तक प्रबलतासे गणितशास्त्रीय विश्लेषणमें नहीं उतार सके हैं ।

## शब्द-सूची

\*~\*~\*

‘ ध्वलाका गणितशास्त्र ’ शीर्षक लेखमें जो गणितसे सम्बन्ध रखनेवाले विशेष हिन्दी शब्दोंका उपयोग किया गया है उनके समरूप अंग्रेजी शब्द निम्न प्रकार हैं—

अनन्त-Infimite	घनमूल-Cube root
अनन्त गणनक सिद्धान्त-Theory of infinite cardinals.	घात निकालना, °कला-Raising of numbers to given powers.
अनुपात-Proportion.	घातक-Powers
अर्थक्रम-Operation of mediation.	घातक सिद्धान्त-Theory of indices
अर्धच्छेद-Number of times a number is halved, mediation, logarithm.	चतुर्धरेद-Number of times that a number can be divided by 4
असंख्यत-Innumetable.	चिह्न-Trace.
असाम्यता-Inequalty.	जोड़-Addition.
अक्ष-Notational place	ज्योतिषविद्या-Astronomy.
अंकाणित-Arithmetic.	टिप्पणी-Notes
अग-Element	त्रिकच्छेद-Number of times that a number can be divided by 3.
आधार-Base (of logarithm ).	त्रिज्या-Radius.
आविष्कार-Discovery, invention.	त्रैशिक-Rule of three.
उत्तरोत्तर-Successive.	दशमान-Scale of ten.
एकदिशात्मक-One directional.	दशमिच्छेद-Decimal place-value notation.
एकसे एककी सगति-One-to-one pondence	द्विगुणक्रम-Operation of duplation
कला-Art.	द्विविस्तारत्मक-Two-dimensional, superficial.
कालप्रदेश-Time-instant	नियम-Rule.
कुट्टक-Indeterminte equation	पद्धति-Method
केन्द्रवर्ती वृत्त-Initial circle, central core	परिणाम-Result
क्रिया-Operation.	परिमाण-Magnitude
क्षेत्रप्रदेश-Locations, points or places.	परिमाणहीन-Dimensionless
क्षेत्रमिति-Mensuration	परिमित गणनक-Finite cardinals.
गणित, °शास्त्र-Mathematics.	
गणितज्ञ-Mathematician	
शुणा-Multiplication	

( २८ )

शब्द-सूची

पूर्णक-Integer	विज्ञान-Science
प्रक्रिया-Process, operation.	विद्युत्कण-Protons and electrons.
प्रतरात्मक अनन्त आकाश-Infinite plane area.	विनिमय-Barter and exchange
प्रश्न-Problem.	वितरन-Distribution; spreading.
प्राथमिक-Elementary, primitive.	वितरन देय-Spread and give.
नाकी-Subtraction	विक्षेपण-Analysis
नीजगणित-Algebra	विस्तार-Details
नेलनाकार-Cylindrical	वृत्त-Circle.
भाग-Division.	व्याज-Interest
भाजक-Divisor	व्यास-Diameter
भित्त-Fraction.	शकामार शिखा-Super-incumbent cone.
मूल, °भौतिक प्रक्रिया-Fundamental operation	शाखा-School.
राशि-Aggregate.	श्रेणीबद्ध करना-Classify
रूढ़ सख्या-Prime.	समकेन्द्रीय-Concentric.
रूपरेखा-General outline.	सरल समीकरण-Simple equation.
लघुस्विय-Logarithm.	संकेत-Symbol, notation
लघु-Quotient	संकेतक्रम-Scale of notation
वर्ग-Square.	सख्या-Number.
वर्गमूल-Square root	सख्यात-Numberable
वर्गरेखा-Logarithm of logarithm	सख्यातुल्य घात-Raising of a number to its own power
वर्गसमीकरण-Quadratic equation	सातत्य-Continuum.
वर्णित-सर्वर्णित-Raising a number to its own power ( सख्यातुल्य घात ).	साधारणीकृत-Generalised.
वलय-Ring	सीमा-Boundary
विक्षेपण-Distribution	सीमातीत सख्या-Transfinite number.
	सूत्र-Formula.

## २ कन्नड प्रशस्ति

अन्तर-प्ररूपणके पश्चात् और भाव-ग्रहणसे पूर्व प्रतियोंमें दो कन्नड पद्योंकी प्रशस्ति पाई जाती है जो इस प्रकार है—

पोढनियोलु मछिदेवन  
पडेदुर्थवदर्थिनकनाश्रितजनकं ।  
पडेयोडमेयादुदिनी  
पडेवल्लनौदाय्यबोलनने वण्णिपुदो ॥  
कडुचोयवादान  
नेउगुनडेदेवेव जिनगृहगडुन ता ।  
नेउगसियदे माडिसुन  
पडेनलनी मछिदेनैय रिप्यात ॥

ये दोनों पद्य कन्नड भाषाके कंददृत्तमें हैं। इनका अनुवाद इस प्रकार है—

“ इस संसारमें मछिदेव द्वारा उपासित वन अर्था और आश्रित जनोंकी सम्पत्ति हो गया। अग सेनापतिकी उदारताका यथार्थ वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है ? ”

“ उनका अन्नदान बड़ा आश्चर्यजनक है। ये सेनापति मछिदेव नामके विधाता विना किसी स्थानके भेदभाषके सुन्दर और महान् जिनगृह निर्माण करा रहे हैं। ”

इन पद्योंमें मछिदेव नामके एक सेनापतिके दान-धर्मकी प्रशंसा की गई है। उनके विषयमें यहाँ केवल इतना ही कहा गया है कि ये बड़े दानशील और अनेक जैन मन्दिरोंके निर्माता थे। तेरहवीं शताब्दिके प्रारम्भमें मछिदेव नामके एक सिन्द-नरेश हुए हैं। उनके एवण नामके मंत्री थे जो जैनधर्म पाठते थे और उन्होंने अनेक जैन मन्दिरोंका निर्माण भी कराया था। उनकी पत्नीका नाम सेविल्लेदी था। (ए. क. ७, लेख नं. ३१७, ३२० और ३२१)।

कर्नाटकमें लेखोंमें तेरहवीं शताब्दिके एक मछिदेवका भी उल्लेख मिलता है जो होयसलनरेश नरसिंह तृतीयके सेनापति थे। किन्तु इनके विषयमें यह निश्चय नहीं है कि ये जैनधर्मीलम्बी थे या नहीं। श्रवणबेलगोलके शिलालेख नं. १३० (३३५) में भी एक मछि-नरेश उल्लेख आया है जो होयसलनरेश वरिखल्लके पट्टणस्वामी व सचिव नागदेव और उनकी भार्या चन्दबे ( मछिसिद्धिकी पुत्री ) के पुत्र थे। नागदेव जैनधर्मावलम्बी थे

इसमें कोई संदेह नहीं, क्योंकि, उक्त लेखमें ये नयकीर्ति सिद्धान्तचक्रतीके पदभक्त शिष्य कहे गये हैं और उन्होंने नगरजिनालय तथा कमठपार्श्वदेव वस्तिके सम्मुख शिखरकुट्टम और रंगशाला निर्माण कराई थी तथा नगर जिनालयको कुछ भूमिका दान भी किया था। मल्लिदेवकी प्रशंसामें इस लेखमें जो एक पद्य आया है वह इस प्रकार है—

परमानन्ददिनेन्दु नाकपतिग पौलोमिग पुट्टिदो  
वरसौन्दर्यजयन्तनन्ते तुहिन-शरीरोद क्खोल भा-  
सुरकीर्त्तिप्रियनागदेवविभुग चन्दबेगं पुट्टिदो  
स्थिरनीपट्टणसामिविभ्वविभुत श्रीमछिदेवाहं ॥ ३० ॥

अर्थात् ‘ जिस प्रकार इन्द्र और पौलोमी ( इन्द्राणी ) के परमानन्द पूर्वक सुन्दर जयन्तकी उत्पत्ति हुई थी, उसी प्रकार तुहिन ( वर्ण ) तथा क्षीरोदधिकी क्खोलोंके समान भास्वर कीर्तिके प्रेमी नागदेव विभु और चन्दबेसे इन स्थिरबुद्धि विभ्वविभुत पट्टणस्वामी मछिदेवकी उत्पत्ति हुई।’ इससे आगेके पद्यमें कहा गया है कि वे नागदेव क्षितिलपर शोभायमान है जिनके वम्मदेव और जोगल्ले माता-पिता तथा पट्टणस्वामी मछिदेव पुत्र हैं। यह लेख श.क स. १११८ ( ईस्वी ११९६ ) का है, अतः यही काल पट्टणस्वामी मछिदेवका पड़ता है। अभी निश्चयतः तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु संभव है कि यही मछिदेव हों जिनकी प्रशंसा धवला प्रतिके उपर्युक्त दो पद्योंमें की गई है।

## ३ शंका-समाधान

पुस्तक ४, पृष्ठ ३८

१ शंका—पृष्ठ ३८ पर लिखा है— ‘ मिच्छाहटिस्स सेस-विण्णिण्णि त्रिसेसणाणि ण सम्भवंति, तत्कारणसहमादिगुणणमभावादो ’ यानी तैजससमुद्धात प्रमत्तगुणस्थान पर ही होता है, सो इसमें कुछ शंका होती है। क्या अशुभ तैजस भी इसी गुणस्थान पर होता है? प्रमत्तगुणस्थान पर ऐसी तीव्र कपाय होना कि सर्वस्व भस्म कर दे और स्वयं भी उससे भस्म हो जाय और नरक तक चला जाय, ऐसा कुछ समझमें नहीं आता ?

समाधान— मिय्यादट्टिके शेष तीन विशेषण अर्थात् आहारकसमुद्धात, तैजससमुद्धात और केवलिसमुद्धात संभव नहीं हैं, क्योंकि, इनके कारणभूत सयमादि गुणोंका मिय्यादट्टिके अभाव है। इस पंक्तिका अर्थ स्पष्ट है कि जिन सयमादि विशिष्ट गुणोंके निमित्तसे आहारकऋद्धि

आदिकी प्राप्ति होती है, वे गुण मिथ्यादृष्टि जीवके संभव नहीं है। शंकाकारके द्वारा उठाई गई आपत्तिका परिहार यह है कि नैजसशक्तिकी प्राप्तिके लिये भी उस समय-विशेषकी आवश्यकता है जो कि मिथ्यादृष्टि जीवके हो नहीं सकता। किन्तु अशुभतैजसका उपयोग प्रमत्तसयत साधु नहीं करते। जो करते हैं, उन्हें उस समय भावलिगी साधु नहीं, किन्तु द्रव्यलिगी समझना चाहिए।

### पुस्तक ४, पृष्ठ ४५

२ शंका—विदेहमें सयतराशिका उत्सेध ५०० धनुष लिखा है, सो क्या यह विशेषताकी अपेक्षासे कथन है, या सर्वथा नियम ही है? (नानकचन्द्र जैन, खतौली, पत्र ता. १-४-४२)

समाधान—विदेहमें सयतराशिका ही उत्सेध नहीं, किन्तु वहा उत्पन्न होनेवाले मनुष्यमात्रका उत्सेध पांचसौ धनुष होता है, ऐसा सर्वथा नियम ही है जैसा कि उसी चतुर्थ भागके पृ. ४५ पर आई हुई “एदाको दो नि ओगाहणाओ भरह-इरायसु चैव होति ण निदेहेसु, तथ पचयसुसुद्धेधणियमा” इस तीसरी पक्तिसे स्पष्ट है। उसी पक्ति पर तिलोयपणत्तीसे दी गई टिप्पणीसे भी उक्त नियमकी पुष्टि होती है। विशेषके लिए देखो तिलोयपणत्ती, अधिकार ४, गाथा २२५५ आदि।

### पुस्तक ४, पृष्ठ ७६

३ शंका—पृष्ठ ७६ में मूलमें ‘मारणतिय’ के पहलेका ‘मुक्क’ शब्द अर्भी विचारणीय प्रतीत होता है? (जैनसन्देश, ता. २३-४-४२)

समाधान—मूलमें ‘मुक्कमारणतियरसी’ पाठ आया है, जिसका अर्थ—“किया है मारणात्तिकसमुद्रात जिन्होंने” ऐसा किया है। प्रकरणको देखते हुए यही अर्थ समुचित प्रतीत होता है, जिसकी कि पुष्टि गो. जी. गा ५४४ (पृ. ९५२) की टीकामें आए हुए ‘क्रियमाण-मारणान्तिकदडस्य’, ‘तियर्कीवमुक्कोपपादडस्य’, तथा, ५४७ वीं गाथाकी टीकामें (पृ. ५६७) आये हुए ‘अष्टमपृथ्वीसवधिवावरपर्योत्पृथ्वीकारेणु उप्पत्तु मुक्कत्तसुद्धात्तदडाना’ आदि पाठोंसे भी होती है। ध्यान देनेकी बात यह है कि द्वितीय व तृतीय उद्धरणमें जिस अर्थमें ‘मुक्क’ शब्दका प्रयोग हुआ है, प्रथम अवतरणमें उसी अर्थमें ‘क्रियमाण’ शब्दका उपयोग हुआ है और यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है कि प्राकृत ‘मुक्क’ शब्दकी संस्कृतच्छाया ‘मुक्क’ ही होती है। पंडित टोडरमल्लजने भी उक्त स्थलपर ‘मुक्क’ शब्दका यही अर्थ किया है। इस प्रकार ‘मुक्क’ शब्दके किये गये अर्थमें कोई शंका नहीं रह जाती है।

### पुस्तक ४, पृष्ठ १००

४ शंका—पृ १०० पर मूल पाठमें कुछ पाठ छूटा हुआ प्रतीत होता है :  
(जैनसन्देश ३०-४-४२)

समाधान—शंकाकारने यद्यपि पृष्ठका नाममात्र ही दिया है, किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया कि उक्त पेजपर २४ वें सूत्रकी व्याख्यामें पाठ छूटा हुआ उन्हे प्रतीत हुआ या २५ वें सूत्रकी व्याख्यामें। जहां तक हमारा अनुमान जाता है २४ वे सूत्रकी व्याख्यामें ‘वाद्दरवाउ-अपज्जत्तेसु अत्तमावादो’ के पूर्व कुछ पाठ उन्हे स्थलित जान पडा है। पर न तो उक्त स्थलपर काममें ली जानेवाली तीनों प्रतियोंमें ही तदलिकरि कोई नवीन पाठ है, और न मुडनिद्रासे ही कोई सशोधन आया है। फिर मौजूदा पत्तिका अर्थ भी वहा बैठ जाता है।

### पुस्तक ४, पृ. १२५

५ शंका—उपशमश्रेणीसे उतनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके अतिरिक्त अन्य उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके मरणका निषेध है, इससे यह ध्वनित होता है कि उपशमश्रेणीमें चढ़नेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका मरण नहीं होता। परन्तु पृष्ठ ३५१ से ३५४ तक कई स्थानोंपर स्पष्टतासे चढ़ते हुए भी मरण लिखा है, सो क्या कारण है?

(नानकचन्द्र जैन, खतौली, पत्र ता. १-४-४२)

समाधान—उक्त पृष्ठपर दी गई शंका-समाधानके अभिप्राय समझनेमें भ्रम हुआ है। यह शंका-समाधान केवल चतुर्थ गुणस्थानवर्ती उन उपशमसम्यग्दृष्टियोंके लिये है, जो कि उपशमश्रेणीसे उतरकर आये हैं। इसका सीधा अभिप्राय यह है कि सर्वसाधारण उपशमसम्यग्दृष्टि असयतोंका मरण नहीं होता है। अपवादरूप जिन उपशमसम्यग्दृष्टि असयतोंका मरण होता है उन्हें श्रेणीसे उतरे हुए ही समझना चाहिए। आगे पृ. ३५१ से ३५४ तक कई स्थानोंपर जो श्रेणीपर चढ़ते या उतरते हुए मरण लिखा है, वह उपशमसम्यग्दृष्टि असयतोंकी अपेक्षा लिखा है, न कि असयतगुणस्थानकी अपेक्षा।

### पुस्तक ४, पृष्ठ १७४

६ शंका—पृष्ठ १७४ में ‘एक्कग्घि इदए सेहीनद्ध पइण्णए च सट्ठिदगामागारवहुविचविल-का अर्थ-‘एक ही इन्द्रक, श्रेणीबद्ध या प्रकीर्णक नरकमें विद्यमान ग्राम, घर और बहुत प्रकारके विलोमें’ किया है। क्या नरकमें भी ग्राम घर होते हैं? विले तो जरूर होते हैं। असलमें ‘गामागार’ का अर्थ ‘ग्रामके आकारवाले अर्थात् गावके समान बहुत प्रकारके विलोमें’ ऐसा होना चाहिए? (जैनसन्देश, ता. २३-४-४२)

गमाधान—सुझाया गया अर्थ भी माना जा सकता है, पर किया गया अर्थ गलत नहीं है, क्योंकि, धर्मके समुदायको ग्राम कहते हैं। समालोचकके कथनानुसार 'ग्रामके आकार-वाले अर्थात् ग्रामके समान' ऐसा भी 'गामागार' पदका अर्थ मान लिया जाय तो भी उन्हें किंवा उठाई गई शब्दा तो व्योम की लों ही पडी रहती है, क्योंकि, ग्रामके आकारवालोंको ग्राम कहनेमें कोई असंगति नहीं है। इसलिए इस सुझाए गए अर्थमें कोई विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती।

पुस्तक ४, पृ. १८०

७ शंका—पृ. १८० में मूलमें एक पंक्तिमें 'व' और 'ण' ये दो शब्द जोड़े गये हैं। किन्तु ऐसा गलत होता है कि 'घणञ्च' में जो 'घण' शब्द है वह अधिक है और लेखकोंकी मरामतसे 'ण' का 'घण' हो गया है? (जैनसन्देश ता २३-४-४२)

समाधान—प्रस्तुत पाठके संशोधन करते समय हमें उपलब्ध पाठमें अर्थकी दृष्टिसे 'ण' पाठका स्थान प्रतीत हुआ। अतएव हमने उपलब्ध पाठकी रक्षा करते हुए हमारे नियमानुसार 'व' और 'ण' को यथास्थान कोष्ठकके अन्दर रख दिया। शंकाकारकी दृष्टि इसी संशोधनके आधारसे उक्त पाठपर अटकी और उन्होंने 'व ण' पाठकी बहा आवश्यकता अनुभव की। इससे हमारी कल्पनाकी पूरी पुष्टि होगई। अब यदि 'व ण' पाठ की पूर्ति उपलब्ध पाठके 'घण' को 'व ण' बनाकर कर ली जाय तो भी अर्थका निर्वाह हो जाता है और भिन्न गये अर्थमें कोई अन्तर नहीं पडता। वात इतनी है कि ऐसा पाठ उपलब्ध प्रतियोंमें नहीं मिलता और न मूडविद्विसे कोई सुधार प्राप्त हुआ।

पुस्तक ४, पृ. २४०

८ शंका—पृ. २४० में ५७ वें सूत्रके अर्थमें एकेन्द्रियपर्याप्त एकेन्द्रियअपर्याप्त भेद गलत किन्ते हैं, ये नहीं होना चाहिए, क्योंकि, इस सूत्रकी व्याख्यामें इनका उल्लेख नहीं है? (जैनसन्देश, ता. ३०-४-४२)

समाधान—यद्यपि यहां व्याख्यामें उक्त भेदोंका कोई उल्लेख नहीं है, तथापि द्रव्य-प्रमाणानुगम (भाग ३, पृ. ३०५) में इन्हीं शब्दोंसे रचित सूत्र नं. ७४ की टीकामें धवला-कारे उन भेदोंका स्पष्ट उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—“पृथ्वीयावादेइदिया सुदुमेइदिया पञ्जता जपञ्जता च णे णव वि रासीओ ”। धवलाकारके इसी स्पष्टीकरणको ध्यानमें रखकर प्रस्तुत स्थल पर भी नी भेद गिनाये गये हैं। तथा उन भेदोंके यहां ग्रहण करने पर कोई दोष भी नहीं दिखता। अतएव जो अर्थ किया गया है वह सप्रमाण और शुद्ध है।

पुस्तक ४, पृष्ठ ३१३

९ शंका—पृ. ३१३ में— 'स-परस्पयासयस्यमाणपडिवादीण-' पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है, इसके स्थानमें यदि 'सपरस्पयासयस्यमाणपड्वीण-' पाठ हो तो अर्थकी संगति ठीक बैठ जाती है? (जैनसन्देश, ३०-४-४२)

समाधान—प्रस्तुत स्थलपर उपलब्ध तीनों प्रतियोंमें जो विभिन्न पाठ प्राप्त हुए और मूडविद्विसे जो पाठ प्राप्त हुआ उन सबका उल्लेख वहीं टिप्पणीमें दे दिया गया है। उनमें अधिक हेर-फेर करना हमने उचित नहीं समझा और यथाशक्ति उपलब्ध पाठोंपरसे ही अर्थकी संगति वैधा दी। यदि पाठ बदलकर और अधिक सुसंगत अर्थ निकालना ही अभीष्ट हो तो उक्त पाठको इस प्रकार रखना अधिक सुसंगत होगा—स-परस्पयासयस्यमाण-पडीवादीणसुवलंगा। इस पाठके अनुसार अर्थ इस प्रकार होगा—“क्योंकि स्व-परप्रकाशक प्रमाण व प्रदीपादिक पाये पाये जाते हैं ( इसलिये शब्दके भी स्वप्रतिपादकता बन जाती है )”।

पुस्तक ४, पृष्ठ ३५०

१० शंका—धवलराज खड ४, पृष्ठ ३५०, ३६६ पर सम्मूर्च्छन जीवके सम्यग्दर्शन होना लिखा है। परन्तु लब्धिसार गाथा २ में सम्यग्दर्शनकी योग्यता गर्भजके लिखी है, सो इसमें विरोधसा प्रतीत होता है, खुलासा करिए। (नानकचन्द्र जैन, खतोली, पत्र १६-३-४२)

समाधान—लब्धिसार गाथा दूसरीमें जो गर्भजका उल्लेख है, वह प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी प्राप्तिकी अपेक्षासे है। किन्तु यहां उपर्युक्त पृष्ठोंमें जो सम्मूर्च्छिम जीवके सयमांसयम पानेका निरूपण है, उसमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वका उल्लेख नहीं है, जिससे ज्ञात होता है कि यहां वह कथन वेदकसम्यक्त्वकी अपेक्षासे किया गया है। अतएव दोनों कथनोंमें कोई विरोध नहीं समझना चाहिए।

पुस्तक ४, पृष्ठ ३५३

११ शंका—आपने अर्द्धकरण उपशमकको मरण करके अनुत्तर विमानोंमें उरण होना लिखा है, जब कि मूलमें 'उत्तमो देवो' पाठ है। क्या उपशमत्रेणोंमें मरण करनेवाले जीव नियमसे अनुत्तरमें ही जाते हैं? क्या प्रमत्त और अप्रमत्तवाले भी सर्वार्थसिद्धिमें जा सकते हैं? (नानकचन्द्र जैन खतोली, पत्र ता १-४-३२)

समाधान—इस शंकाके तीन शंकायें गर्भित हैं जिनका समाधान क्रमशः इस प्रकार है—  
(१) मूलमें 'उत्तमो देवो' पाठ नहीं, किन्तु 'ल्यसत्तमो देवो' पाठ है। ल्यसत्तमका अर्थ अनुत्तर विमानवासी देव होता है। यथा—ल्यसत्तम-पुं०। पचात्तरनिमातर-



देवेसु । सूत्रं १ श्रु. ६ अ. । सम्प्रति लवसमदेवस्वरूपमाह—

सत्त लवा जह् भाउ पडु पमाण ततो उ सिञ्जतो ।

तत्तियमेत्त न डु त तो ते लवसत्तमा जाया ॥ १३२ ॥

सम्बट्टसिद्धिनामे उक्कोत्तिहं य विज्जयमाहीसु ।

एगावसेसगम्भा भवति लवसत्तमा देवा ॥ १३३ ॥ व्य ५ उ

अभिधानराजन्द्र, लवसत्तमशब्द.

(२) उपशमश्रेणीमें मरण करनेवाले जीव नियमसे अनुत्तर विमानोंमें ही जाते हैं, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु त्रिलोकप्रज्ञप्तिकी निम्न गाथासे ऐसा अवश्य ज्ञात होता है कि चतुर्दशपूर्वधारी जीव लान्तव-कापिष्ठ करणसे लगाकर सर्वार्थसिद्धिपर्यंत उत्पन्न होते हैं । चूँकि 'शुद्धे चाधे पूर्वविद्' के नियमानुसार उपशमश्रेणीवाले भी जीव पूर्वविद् हो जाते हैं, अतएव उनकी लान्तवकरणसे ऊपर ही उत्पत्ति होती है नीचे नहीं, ऐसा अवश्य कहा जा सकता है । वह गाथा इस प्रकार है—

दसपुण्वधरा सोहम्मण्हुदि सम्बट्टसिद्धिपरियत्त

चौरसपुण्वधरा तह लतवक्कप्पादि वचते ॥ ति प पत्र २३७, १६

(३) उपशमश्रेणीपर नहीं चढ़नेवाले, पमत्त अप्रमत्तस्यत्त गुणस्थानोंमें ही परिवर्तन-सहस्रोंको करनेवाले साधु सर्वार्थसिद्धिमें नहीं जा सकते हैं, ऐसा स्पष्ट उल्लेख देखनेमें नहीं आया । प्रसुत इसके त्रिलोकसार गाथा न. ५४६ के 'सम्बट्टो त्ति सुद्धिदी महब्बई' पदसे द्रव्य-भाररूपसे महाव्रती संयतोंका सर्वार्थसिद्धि तक जानेका स्पष्ट विधान मिलता है ।

पुस्तक ४, पृष्ठ ४११

१२ शंका—योग-परिवर्तन और व्याघात-परिवर्तनमें क्या अन्तर है ?

( नानकचन्द्र जैन, खतौली, पत्र ता १-४-४२ )

समाधान—विवक्षित योगका अन्य किसी व्याघातके बिना काल-क्षय हो जाने पर अन्य योगके परिणमनको योग-परिवर्तन कहते हैं । किन्तु विवक्षित योगका कालक्षय होनेके पूर्व ही क्रोधादि निमित्तसे योग-परिवर्तनको व्याघात कहते हैं । जैसे—कोई एक जीव मनोयोगके साय विद्यमान है । जब अन्तर्मुहूर्तप्रमाण मनोयोगका काल पूरा हो गया तब वह वचनयोगी या काययोगी हो गया । यह योग-परिवर्तन है । इसी जीवके मनोयोगका काल पूरा होनेके पूर्व ही कषाय, उपद्रव, उपसर्ग आदिके निमित्तसे मन चंचल हो उठा और वह वचनयोगी या काययोगी हो गया, तो यह योगका परिवर्तन व्याघातकी अपेक्षासे हुआ । योग-परिवर्तनमें काल प्रधान है, जब कि व्याघात-परिवर्तनमें कषाय आदिका आघात प्रधान है । यही दोनोंमें अन्तर है ।

पुस्तक ४, पृष्ठ ४५६

१३ शंका—पृष्ठ ४५६ में 'क्षणलेस्सागमणासम्भवा' का अर्थ 'अन्य लेश्याका आगमन असम्भव है' किया है, होना चाहिए—अन्य लेश्यामें गमन असंभव है ?

( जैनसन्देश, ता. ३०-४-४२ )

समाधान—किये गये अर्थमें और सुझाये गये अर्थमें कोई भेद नहीं है । 'अन्य लेश्याका आगमन' और 'अन्य लेश्यामें गमन' कहनेसे अर्थमें कोई अन्तर नहीं पडता । मूलमें भी दोनों प्रकारके प्रयोग पाये जाते हैं । उदाहरणार्थ—प्रस्तुत पाठके ऊपर ही वाक्य है—'दीयमाण-बहुमाणकिण्हलेस्साए काउलेस्साए वा अच्छिदस्स गीलेस्सा आगदा' अर्थात् हीयमान कृष्ण-लेश्यामें अथवा वर्धमान कापोतलेश्यामें विद्यमान किसी जीवके नीलेलेश्या आ गई, इत्यादि ।

## ४ विषय-परिचय



जीवस्थानकी आठ प्ररूपणाओंमेंसे प्रथम पाच प्ररूपणाओंका वर्णन पूर्व-प्रकाशित चार भागोंमें किया गया है । अब प्रस्तुत भागमें अवशिष्ट तीन प्ररूपणाएँ प्रकाशित की जा रही हैं—अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम ।

### १ अन्तरानुगम

विवक्षित गुणस्थानवर्ती जीवका उस गुणस्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानमें चले जाने पर पुनः उसी गुणस्थानकी प्राप्तिके पूर्व तकके कालको अन्तर, न्युच्छेद या विरहकाल कहते हैं । सबसे छोटे विरहकालको जघन्य अन्तर और सबसे बड़े विरहकालको उच्छेद अन्तर कहते हैं । गुणस्थान और मार्गणास्थानोंमें इन दोनों प्रकारोंके अन्तरोंके प्रतिपादन करनेवाले अनुयोगद्वाराको अन्तरानुगम कहते हैं ।

पूर्व प्ररूपणाओंके समान इस अन्तरप्ररूपणामें भी ओष और आदेशकी अपेक्षा अन्तरका निर्णय किया गया है, अर्थात् यह बतलाया गया है कि यह जीव किस गुणस्थान या मार्गणास्थानसे कमसे कम कितने काल तक के लिए और अधिकसे अधिक कितने काल तक के लिए अन्तरको प्राप्त होता है ।

उदाहरणार्थ—ओषकी अपेक्षा मिय्याष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? इस प्रश्नके उत्तरमें बताया गया है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ।

तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तर होता है। इस प्रकार नानाजीवोंकी अपेक्षा कभी भी त्रिहको नहीं प्राप्त होनेवाले छह गुणस्थान हैं— १ मिथ्यादृष्टि, २ असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, ४ प्रमत्त-सयत, ५ अप्रमत्तसयत और ६ सयोगिकेवर्ती। इन गुणस्थानोंमें केवल एक जीवकी अपेक्षा जवन्व्य और उच्छृष्ट अन्तर बतलाया गया है, जिसे प्रन्थ-अध्यनसे पाठक भली भांति जान सकेगा।

जिस प्रकार ओवसे अन्तरका निरूपण किया गया है, उसी प्रकार आदेशकी अपेक्षा भी उन-उन मार्गणओंमें सम्यगुणस्थानोंका अन्तर जानना चाहिए। मार्गणओंमें आठ सान्तरमार्गणएँ होती हैं, अर्थात् जिनका अन्तर होता है। जैसे— १ उपजामसम्यक्त्वमार्गणा, २ सूक्ष्मसम्प्रायसममार्गणा, ३ आहारकक्राययोगमार्गणा, ४ आहारकमिश्रक्राययोगमार्गणा, ५ वैन्नियिकमिश्रक्राययोगमार्गणा, ६ लब्धपर्याप्तमनुष्यगतिमार्गणा, ७ सासादनसम्यक्त्वमार्गणा और सम्यगिध्यात्वमार्गणा। इन आठोंका उच्छृष्ट अन्तर काल क्रमशः १ साल दिन, २ छह मास, ३ वर्षपुण्यक्त्व, ४ वर्षपुण्यक्त्व, ५ बारह मुहूर्त, और अन्तिम तीन सान्तर मार्गणोंका अन्तरकाल पृथक् पृथक् पल्योपमका असह्यतावा भाग है। इन सब सान्तर मार्गणोंका जवन्व्य अन्तरकाल एक समयप्रमाण ही है। इन सान्तर मार्गणोंके अतिरिक्त शेष सब मार्गणएँ नानाजीवोंकी अपेक्षा अन्तर-रहित हैं, यह ग्रन्थके स्वाध्यायसे सरलतापूर्वक हृदयंगम किया जा सकेगा।

## २ भावानुभव

कर्मोंके उपशम, क्षय आदिके निमित्तसे जीवके जो परिणामविशेष होते हैं, उन्हें भाव कहते हैं। वे भाव पाच प्रकारके होते हैं— १ औदयिकभाव, २ औपशमिकभाव, ३ क्षायिकभाव, ४ क्षायोपशमिकभाव और परिणामिकभाव। कर्मोंके उदयसे होनेवाले भावोंको औदयिक भाव कहते हैं। इसके इक्कीस भेद हैं— चार गतिया ( नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवगति ), तीन लिंग ( स्त्री, पुरुष, और नपुंसकलिंग ), चार कर्माय ( क्रोध, मान, माया और लोभ ), मिथ्यादर्शन, असिद्धत्व, अज्ञान, छह लेख्याएँ ( कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्लेख्या ), तथा असयम। मोहनीयकर्मके उपशमसे ( व्योक्ति, शेष सात कर्मोंका उपशम नहीं होता है ) उत्पन्न होनेवाले भावोंको औपशमिक भाव कहते हैं। इसके दो भेद हैं— १ औपशमिकसम्यक्त्व और २ औपशमिकचारित्र। कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होनेवाले भावोंको क्षायिकभाव कहते हैं। इसके नौ भेद हैं— १ क्षायिकसम्यक्त्व, २ क्षायिकचारित्र, ३ क्षायिकज्ञान, ४ क्षायिकदर्शन, ५ क्षायिकदान, ६ क्षायिकलाभ, ७ क्षायिकभोग, ८ क्षायिकउपभोग और ९ क्षायिकवीर्य। कर्मोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेवाले भावोंको क्षायोपशमिकभाव कहते हैं। इसके अष्टारह भेद हैं— चार ज्ञान ( मति, श्रुत, अविभि और मनःपर्ययज्ञान ), तीन अज्ञान

इसका अभिप्राय यह है कि मिथ्यात्वपर्यायसे परिणत जीवोंका तीनों ही कालोंमें व्युच्छेद, विरह या अभाग नहीं है, अर्थात् इस ससारमें मिथ्यादृष्टि जीव सर्वकाल पाये जाते हैं। किन्तु एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्वका जवन्व्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण है। यह जवन्व्य अन्तरकाल इस प्रकार घटित होता है कि कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव परिणामोंकी त्रिभुद्धिके निमित्तसे सम्यग्ज्ञानको प्राप्तकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती हुआ। वह चतुर्थ गुणस्थानमें सबसे छोटे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण सम्यक्त्वके साथ रहकर सकेय आदि के निमित्तसे गिरा और मिथ्यात्वको प्राप्त होगया, अर्थात् पुनः मिथ्यादृष्टि होगया। इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानको प्राप्त होकर पुनः उसी गुणस्थानमें आनेके पूर्व तक जो अन्तर्मुहूर्तकाल मिथ्यात्वपर्यायसे परिणत रहा, यही उस एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जवन्व्य अन्तर माना जायगा।

इसी एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्वका उच्छृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ अर्थात् एक सौ त्तीस ( १३२ ) सागरोपम काठ है। यह उच्छृष्ट अन्तरकाल इस प्रकार घटित होता है कि कोई एक मिथ्यादृष्टि तिर्यच अथवा मनुष्य चौदह सागरोपम आयुस्थितिवाले लान्तवन्नाधि कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहा वह एक सागरोपम कालके पश्चात् सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। तेरह सागरोपम काल वहा सम्यक्त्वके साथ रहकर च्युत हो मनुष्य होगया। उस मनुष्यभवमें समयको, अथवा समयासयमको पालन कर वाईस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले आण-अयुत कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहासे च्युत होकर पुनः मनुष्य हुआ। इस मनुष्यभवमें समय धारण कर मरा और इक्कीस सागरोपमकी आयुवाले उपरिम श्रेयकके अह-नीस, नाईरा और चौबीस सागरोपमकी आयुवाले देवों और अहमिन्द्रोंमें क्रमशः उत्पन्न हुआ। इस प्रकार वह पूरे एक सौ त्तीस ( १३२ ) सागरोत्तक सम्यक्त्वके साथ रहकर अन्तमें पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस तरह मिथ्यात्वका उच्छृष्ट अन्तर सिद्ध होगया। उक्त विवेचनमें यह बात ध्यान रानेकी है कि वह जीव जिन्ने चार मनुष्य हुआ, उतने चार मनुष्यभवसम्यक्वी आयुसे कम ही देवायुको प्राप्त हुआ है, अथवा बतलाए गए कालसे अधिक अन्तर हो जायगा। कुछ कम दो छयासठ सागरोपम कहनेका अभिप्राय यह है कि वह जीव दो छयासठ सागरोपम कालके प्रारभमें ही मिथ्यात्वको छोड़कर सम्यक्वी बना और उसी दो छयासठ सागरोपमकालके अन्तमें पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया। इसलिए उतना काल उनमेंसे घटा दिया गया।

यहां ध्यान रानेकी बात यह है कि काल-प्रत्युणामें जिन-जिन गुणस्थानोंका काल नानाजीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल बतलाया गया है, उन-उन गुणस्थानवर्ती जीवोंका नानाजीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता है। किन्तु उनके सिवाय शेष सभी गुणस्थानवर्ती जीवोंका नानाजीवोंकी

यहां यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि चौथे गुणस्थान तक भावोंका प्ररूपण दर्शन-मोहनीय कर्मकी अपेक्षा किया गया है। इसका कारण यह है कि गुणस्थानोंका तारतम्य या विकास-क्रम मोह और योगके आश्रित है। मोहकर्मके दो भेद हैं— एक दर्शनमोहनीय और दूसरा चारित्रिमोहनीय। आत्माके सम्यक्त्वगुणको घातनेवाला दर्शनमोहनीय है जिसके निमित्तसे आत्मा वस्तुस्वभावको या अपने हित-अहितको देखता और जानता हुआ भी श्रद्धान नहीं कर सकता है। चारित्रिगुणको घातनेवाला चारित्रिमोहनीयकर्म है। यह वह कर्म है जिसके निमित्तसे वस्तुस्वरूपका यथार्थ श्रद्धान करते हुए भी, समागिको जानते हुए भी, जब उसपर चल नहीं पाता है। मन, वचन और कायकी चंचलताको योग कहते हैं। इसके निमित्तसे आत्मा सदैव परिस्पन्दनयुक्त रहता है, और कर्मश्रवका कारण भी यही है। प्रारम्भके चार गुणस्थान दर्शन-मोहनीय कर्मके उदय, उपशम, क्षयोपशम आदिसे उत्पन्न होते हैं, इसलिए उन गुणस्थानोंमें दर्शनमोहकी अपेक्षासे ( अन्य भावोंके होते हुए भी ) भावोंका निरूपण किया गया है। तथापि चौथे गुणस्थान तक रहनेवाला असयमभाव चारित्रिमोहनीयकर्मके उदयकी अपेक्षासे है, अतः उसे औदयिकभाव ही जानना चाहिए। पाचवेंसे लेकर बारहवें तक आठ गुणस्थानोंका आधार चारित्र-मोहनीयकर्म है अर्थात् ये आठो गुणस्थान चारित्रिमोहनीयकर्मके क्रमशः, क्षयोपशम, उपशम और क्षयसे होते हैं, अर्थात् पाचवें, छठे और सातवें गुणस्थानमें क्षयोपशमिकभाव, आठवें, नवें, दशवें और ग्यारहवें, इन चारो उपशमक गुणस्थानोंमें औपशमिकभाव, तथा क्षयकश्रेणीसम्बन्धी चारो गुणस्थानोंमें, तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानमें क्षायिकभाव कहा गया है। तेरहवें गुणस्थानमें मोहका अभाव हो जानेसे केवल योगकी ही प्रधानता है और इसीलिए इस गुणस्थानका नाम सम्योगिकेवली रखा गया है। चौदहवें गुणस्थानमें योगके अभावकी प्रधानता है, अतएव अयोगि-केवली ऐसा नाम सार्थक है। इस प्रकार थोड़ेमें यह फलितार्थ जानना चाहिए कि विवक्षित गुणस्थानमें समग्र अन्य भाव पाये जाते हैं, किन्तु यहाँ भावप्ररूपणमें केवल उन्हीं भावोंको बताया गया है, जो कि उन गुणस्थानोंके मुख्य आधार हैं।

आदेशकी अपेक्षा भी इसी प्रकारसे भावोंका प्रतिपादन किया गया है, जो कि प्रथाबले-कनसे व प्रस्तावनामें दिये गये नकशोंके सिंहावलोकनसे सहजमें ही जाने जा सकते हैं।

### ३ अल्पबहुत्वानुगम

द्रव्यप्रमाणानुगममें वतलये गये सख्या-प्रमाणके आधार पर गुणस्थानों और मार्गणा-स्थानोंमें समग्र पारस्परिक सख्याकृत हीनता और अधिकताका निर्णय करनेवाला अल्पबहुत्वानुगम नामक अनुयोगद्वारा है। यद्यपि व्युत्पन्न पाठक द्रव्यप्रमाणानुगम अनुयोगद्वारेके द्वारा ही उक्त अल्पबहुत्वका निर्णय कर सकते हैं, पर आचार्यने विस्ताररुचि शिष्योंके लाभार्थ इस नामका

( कुमति, कुश्रुत और विभागवधि ), तीन दर्शन ( चक्षुदर्शन, वचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन ), पाच लक्षिध्या ( क्षायोपशमिक दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य ), क्षायोपशमिकसम्यक्त्व, क्षायोपशमिकचरित्र और सयमांसयम। इन पूर्वोक्त चारों भावोंसे विभिन्न, कर्मोंके उदय, उपशम आदिकी अपेक्षा न रखते हुए स्वतः उत्पन्न भावोंको परिणामिकभाव कहते हैं। इसके तीन भेद हैं— १ जीवत्व, २ भव्यत्व और ३ अभव्यत्व।

इन उपर्युक्त भावोंके अनुगमको भावानुगम कहते हैं। इस अनुयोगद्वारमें भी ओष और आदेशकी अपेक्षा भावोंका विवेचन किया गया है। ओषनिर्देशकी अपेक्षा प्रश्न किया गया है कि 'मिथ्यादृष्टि' यह कौनसा भाव है? इसके उत्तरमें कहा गया है कि मिथ्यादृष्टि यह औदयिकभाव है, क्योंकि, जीवोंके मिथ्या दृष्टि मिथ्यात्वकर्मके उदयसे उत्पन्न होती है। यहाँ यह शक्य उठाई गई है कि, जब मिथ्यादृष्टि जीवके मिथ्यात्वभावके अतिरिक्त ज्ञान, दर्शन, गति, लिंग, कर्णय भव्यत्व आदि और भी भाव होते हैं, तब यहाँ केवल एक औदयिकभावको ही वतानेका क्या कारण है? इस शक्यके उत्तरमें कहा गया है कि यद्यपि मिथ्यादृष्टि जीवके औदयिकभावके अतिरिक्त अन्य भाव भी होते हैं, किन्तु वे मिथ्यादृष्टिके कारण नहीं हैं, एक मिथ्यात्वकर्मका उदय ही मिथ्यादृष्टिके कारण होता है, इसलिए मिथ्यादृष्टिको औदयिकभाव कहा गया है।

सासादनगुणस्थानमें परिणामिकभाव बताया गया है, और इसका कारण यह कहा गया है कि जिस प्रकार जीवत्व आदि परिणामिक भावोंके लिए कर्मोंका उदय आदि कारण नहीं है, उसी प्रकार सासादनसम्यक्त्वके लिए दर्शनमोहनीयकर्मका उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम, ये कोई भी कारण नहीं हैं, इसलिए इसे यहाँ परिणामिकभाव ही मानना चाहिए।

सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानमें क्षायोपशमिकभाव होता है। यहाँ शक्य उठाई गई है कि प्रतिवधीकर्मके उदय होनेपर भी जो जीवके स्वामधिक गुणका अंश पाया जाता है, वह क्षायो-पशमिक कहलाता है, किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय रहते हुए तो सम्यक्त्वगुणकी कणिका भी अवशिष्ट नहीं रहती है, अन्यथा सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके सर्वधातीपना नहीं बन सकता है। अतएव सम्यग्मिथ्यात्वभाप क्षायोपशमिक सिद्ध नहीं होता है? इसके उत्तरमें कहा गया है कि सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय होनेपर श्रद्धानाश्रद्धानालम्ब एक मिश्रभाव उत्पन्न होता है। उसमें जो श्रद्धानांश है, वह सम्यक्त्वगुणका अंश है। उसे सम्यग्मिथ्यात्वकर्मका उदय नष्ट नहीं करता है, अतएव सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षायोपशमिक है।

असयत्सम्यग्दृष्टिगुणस्थानमें औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक, ये तीन भाव पाये जाते हैं, क्योंकि, यहाँपर दर्शनमोहनीयकर्मका उपशम, क्षय और क्षयोपशम, ये तीनों होते हैं।

एक पृथक् ही अतुनोगद्दार बनाया, क्योंकि, संश्लेषरुचि शिष्योंकी जिज्ञासाको वृत्त करना ही शास्त्र-प्रणयनका फल व्रतयया गया है ।

अन्य प्ररूपणाओंके समान यहा भी ओषनिर्देश और आदेशनिर्देशकी अपेक्षा अल्प-वहु रत्ता निर्णय किया गया है । ओषनिर्देशसे अर्ध्वन्तरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक नीप प्रवेशकी अपेक्षा परस्पर तुल्य हैं, तथा शेष सब गुणस्थानोंके प्रमाणसे अल्प हैं, क्योंकि, इन तीनों ही गुणस्थानोंमें पृथक् पृथक् रूपसे प्रवेश करनेवाले जीव एक दो को आदि लेकर अधिकांसे अधिक चौपन तक ही पाये जाते हैं । इतने कम जीव इन तीनों उपशामक गुणस्थानोंको छोडकर और किसी गुणस्थानमें नहीं पाये जाते हैं । उपशान्तनयवीतरागद्वयशय नीप भी पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं, क्योंकि, उक्त उपशामक जीव ही प्रवेश करते हुए इस ग्याहर्षे गुणस्थानमें आते हैं । उपशान्तनयवीतरागद्वयस्थोंसे अर्ध्वन्तरणादि तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, उपशामकके एक गुणस्थानमें उल्कर्षसे प्रवेश करनेवाले चौपन जीवोंकी ओषा क्षपकके एक गुणस्थानमें उल्कर्षसे प्रवेश करनेवाले एक सौ आठ जीवोंके दूने प्रमाण-स्वरूप नद्वानगुणितता पाई जाती है । क्षीणकनयवीतरागद्वयस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं, क्योंकि, उक्त क्षपक जीव ही इस ग्याहर्षे गुणस्थानमें प्रवेश करते हैं । सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन प्रवेशकी अपेक्षा दोनो ही परस्पर तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण अर्थात् एक सौ आठ हैं । किन्तु सयोगिकेवली जिन सचयकालकी अपेक्षा प्रविश्यमान जीवोंसे सख्यातगुणित है, क्योंकि, पानसी अटानने गान जीवोंकी अपेक्षा आठ लाख अटानने हजार पाचसौ दो (८९८१०२) सख्याप्रमाण जीवोंके सख्यातगुणितता पाई जाती है । दूसरी बात यह है कि इस तेषमें गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षसे कम पूर्वमोटीवर्ष माना गया है । सयोगिकेवली जिनोंसे उपशम और क्षपकत्रेणीपर नहीं चढनेवाले अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित है, क्योंकि, अप्रमत्तसंयतोंका प्रमाण दो करोड् डयानने लाख नित्यानने हजार एकसौ तीन (२९६९९१०३) है । अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत सख्यातगुणित हैं, क्योंकि, उनसे इनका प्रमाण दूना अर्थात् पाच करोड् तेरानने लाख अटानने हजार दोसौ छह ( ५९३९८२०६ ) है । प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असख्यातगुणित है, क्योंकि, वे पल्थोपमेके असख्यातवें भागप्रमाण हैं । संयतासंयतोंसे सासादनसंयतगुणित जीव असख्यातगुणित हैं, क्योंकि, सयमासंयतकी अपेक्षा सासादनसंयतत्वका पाना बहुत सुलभ है । यहापर गुणकारका प्रमाण आवलीका असख्यातनाना माग जानना चाहिए, अर्थात् आवलीके असख्यातवें भागमें जितने समय होते हैं, उनके द्वारा संयतासंयत जीवोंकी राशिको गुणित करने पर जो प्रमाण आता है, उतने सासादनसंयतगुणित जीव हैं । सासादनसंयतगुणितोंसे सयमिम्याद्युष्टि जीव सख्यातगुणित हैं, क्योंकि,

दूसरे गुणस्थानकी अपेक्षा तीसरे गुणस्थानका काल संख्यातगुणा है । सयमिम्याद्युष्टियोंसे असंयतसंयतगुणित जीव असख्यातगुणित है, क्योंकि, तीसरे गुणस्थानको प्राप्त होनेवाली राशिकी अपेक्षा चौथे गुणस्थानको प्राप्त होनेवाली राशि आवलीके असख्यातवें भागगुणित है । असंयतसंयतगुणित जीवोंसे मिय्याद्युष्टि जीव अनन्तगुणित हैं, क्योंकि, मिय्याद्युष्टि जीव अनन्त होते हैं । इस प्रकार यह चौदहों गुणस्थानोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहा गया है, जिसका मूल आधार द्रव्यप्रमाण है । यह अल्पबहुत्व गुणस्थानोमे दो दृष्टियोंसे बताया गया है प्रवेशकी अपेक्षा और सचयकालकी अपेक्षा । जिन गुणस्थानोंमें अन्तरका अभाव है अर्थात् जो गुणस्थान सर्वकाल सभव है, उनका अल्पबहुत्व सचयकालकी ही अपेक्षासे कहा गया है । ऐसे गुणस्थान, जैसा कि अन्तरप्ररूपणोंमें बताया जा चुका है, मिय्याद्युष्टि, असंयतसंयतगुणित आदि चार और सयोगिकेवली, ये छह हैं । जिन गुणस्थानोमे अन्तर पडता है, उनमे अल्पबहुत्व प्रवेश और सचयकाल, इन दोनोकी अपेक्षा बताया गया है । जैसे— अन्तरकाल समाप्त होनेके पश्चात् उपशामक और क्षपक गुणस्थानोंमें कमसे कम एक दो तीनसे लगाकर अधिकसे अधिक ५४ और १०८ तक जीव एक समयमें प्रवेश कर सकते हैं, और निरन्तर आठ समयोमे प्रवेश करने पर उनके सचयका प्रमाण क्रमशः ३०४ और ६०८ तक एक एक गुणस्थानमे हो जाता है । दूसरे और तीसरे गुणस्थानका प्रवेश और संचय ग्रन्थानुसार जानना चाहिए । ऐसे गुणस्थान चारो उपशामक, चारों क्षपक, अयोगिकेवली सयमिम्याद्युष्टि और सासादनसंयतगुणित हैं ।

इसके अतिरिक्त इस अतुनोगद्दारमें मूलसूत्रकारने एक ही गुणस्थानमें सयमिक्वकी अपेक्षासे भी अल्पबहुत्व बताया है । जैसे— असंयतसंयतगुणित गुणस्थानमें उपशमसंयतगुणित जीव सबसे कम हैं । उमशमसंयतगुणितोंसे क्षायिकसंयतगुणित जीव असख्यातगुणित हैं और क्षायिकसंयतगुणितोंसे वेदकसंयतगुणित जीव असख्यातगुणित हैं । इस हीनाधिकताका कारण उत्तरोत्तर सचयकालकी अधिकता है । संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसंयतगुणित जीव सबसे कम हैं, क्योंकि, देशसंयतको धारण करनेवाले क्षायिकसंयतगुणित मनुष्योंका होना अल्पत दुर्लभ है । दूसरी बात यह है कि तिर्यचोंमें क्षायिकसंयतत्वके साथ देशसंयत नहीं पाया जाता है । इसका कारण यह है कि तिर्यचोंमें दर्शनमोहनयिकर्मकी क्षपणा नहीं होती है । इसी संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसंयतगुणितोंसे उपशमसंयतगुणित संयतासंयत असख्यातगुणित हैं और उपशमसंयतगुणितोंसे वेदकसंयतगुणित संयतासंयत असख्यातगुणित हैं । प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसंयतगुणित जीव सबसे कम हैं, उनसे क्षायिकसंयतगुणित जीव संख्यातगुणित हैं, उनसे वेदकसंयतगुणित जीव सख्यातगुणित हैं । इस अल्पबहुत्वका कारण संचयकालकी हीनाधिकता

ही है। इसी प्रकारका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व अर्धकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानोंमें जानना चाहिए। यद्वा ध्यान रखनेकी बात यह है कि इन गुणस्थानोंमें उपशामसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व, ये दो ही सम्यक्त्व होते हैं। यहाँ वेदकसम्यक्त्व नहीं पाया जाता, क्योंकि, वेदकसम्यक्त्वके साथ उपशामश्रेणीके आरोहणका अभाव है। अर्धकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामसम्यक्त्वी जीव सबसे कम हैं, उनसे उन्हीं गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यक्त्वी जीव सख्यात-गुणित हैं। आगेके गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, वहाँ सभी जीवोंके एकमात्र क्षायिकसम्यक्त्व ही पाया जाता है। इसी प्रकार प्रारम्भके तीन गुणस्थानोंमें भी यह अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, उनमें सम्यग्दर्शन होता ही नहीं है।

जिस प्रकार यह ओषधी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार आदेशकी अपेक्षा भी मार्गणास्थानोंमें अल्पबहुत्व जानना चाहिए। भिन्न भिन्न मार्गणाओंमें जो खास विशेषता है, वह ग्रन्थके स्वाध्यायसे ही हृदयगम की जा सकेगी। किन्तु स्थूलरीतिका अल्पबहुत्व द्रव्यप्रमाणानुगम (भाग ३) पृष्ठ ३८ से ४२ तक अंकसंछट्टिके साथ बताया गया है, जो कि वहाँसे जाना जा सकता है। भेद केवल इतना ही है कि वहाँ वह क्रम बहुत्वसे अल्पकी ओर रूखा गया है।

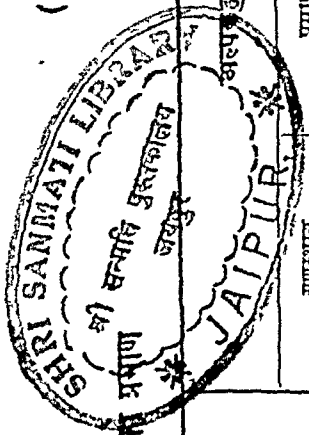
इन प्ररूपणाओंका मथितार्थ सायभे लगाये गये नकशोंसे सुस्पष्ट हो जाता है।

इस प्रकार अल्पबहुत्वप्ररूपणाकी समाप्तिके साथ जीवस्थाननामक प्रथम खंडकी आठों प्ररूपणाएँ समाप्त हो जाती हैं।

## ५ विषय-सूची

( अन्तरानुगम )

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१	विषयकी उत्थानिका	१-४	१	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य अन्तर-प्रतिपादन	७
२	ध्वलाकारका मंगलाचरण और प्रतिज्ञा	१	२	उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर-निरूपण	८
३	अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश-भेद-कथन	"	३	सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य अन्तर-निरूपण तथा तदन्तर्गत अनेक शंकाओंका समाधान	९-११
४	नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, इन छह भेद-रूप अन्तरका स्वरूप निरूपण	१-३	३	उपर्युक्त जीवोंका सोदाहरण उत्कृष्ट अन्तर	११-१३
५	कौनसे अन्तरसे प्रयोजन है, यह यताकर अन्तरके एकार्थ-वाचक नाम	३	"	असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर-अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरोंका सोदाहरण निरूपण	१३-१७
६	आधसे अन्तरानुगमनिर्देश	४-२२	४	चारों उपशामक गुणस्थानोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरोंका सोदाहरण निरूपण	१७-२०
७	मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर-निरूपण, तथा सूत्र पठित 'गल्लिय अंतरं, गिरंतरं' इन दोनों-पदोंकी सार्थकता-प्रतिपादन	४-५	५	चारों क्षपक और अयोगिक-केवलीका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर	२०-२१
८	मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरका सोदाहरण निरूपण	५	"	संयोगिकवलीके नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरके	२१
९	सम्यक्त्व छूटनेके पश्चात् होनेवाला अन्तिम मिथ्यात्व पहलेका मिथ्यात्व नहीं हो सकता, इस शकाका समाधान	"	६	आधसे अन्तरानुगमनिर्देश	२२-१७९
१०	मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरका सोदाहरण निरूपण	६			

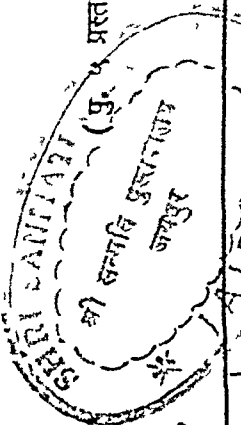


गुणस्थानोंकी अपेक्षा जीविके अन्तर, भाव और अल्पवहुत्वकी प्रमाण

गुणस्थान	नाना जीविकी अपेक्षा		एक जीविकी अपेक्षा		भाव	गुणस्थान	प्रमाण	अपेक्षा
	जधन्य	उत्कृष्ट	जधन्य	उत्कृष्ट				
१ गिण्यादृष्टि	निरन्तर		अन्तर्मुहूर्त	देशोन दो ज्यासठ सागरोपम	ओदयिक	अपूर्वकरण अनिष्टविकरण सूक्ष्मसाम्पराय	सर्वतो कम	प्रवेश और सचय
२ सागाद्रसम्पदृष्टि	एक समय	पल्योपममा असाख्या- तर्वा माग	पल्योपम मा असाख्या- तर्वा माग	,, अर्धपुटलपरिवर्तन	पारिणामिक		"	"
३ सम्यग्भिण्यादृष्टि	"	"	अन्तर्मुहूर्त	"	क्षायोपशामिक	उपशान्तप्रयाय	पूर्वोक्त प्रमाण	"
४ असाद्रसम्पदृष्टि	निरन्तर		"	"	{ ओपशामिक क्षायिक क्षायोपशामिक	अपूर्वकरण अनिष्टविकरण	सख्यातशुणित	"
५ तिरतामगत	"		"	"	क्षायोपशामिक	सूक्ष्मसाम्पराय	"	"
६ मरुतसयत	"		"	"	"	क्षीणप्रयाय	पूर्वोक्त प्रमाण	"
७ अमरुतसयत	"		"	"	"	सयोगिनिवली अयोगिनिवली	"	"
८ अर्धोरथ	{ उपशा एक समय क्षपक. "	वर्षयुक्त्व छह मास	"	निरन्तर	{ उपशा औपशामिक क्षपक क्षायिक	सयोगिनिवली	सख्यातशुणित	सचय
९ अनिष्टविकरण	{ उपशा. " क्षपक. "	वर्षयुक्त्व छह मास	"	निरन्तर	{ उपशा औपशामिक क्षपक क्षायिक		पूर्वोक्त प्रमाणसे "	"
१० सूक्ष्मसाम्परा	{ उपशा. " क्षपक "	वर्षयुक्त्व छह मास	"	निरन्तर	{ उपशा. औपशामिक क्षपक क्षायिक		"	"
११ उपशातम्पराय	"	वर्षयुक्त्व	"	"	औपशामिक	अप्रमत्तसयत	"	"
१२ क्षीणस्रो	"	छह मास	"	निरन्तर	क्षायिक	सयतामयत	"	"
१३ सयोगिनिवली	निरन्तर		"	"	"	सामादनसम्पदृष्टि	"	"
१४ अयोगिनिवली	एक समय	छह मास	"	"	"	सम्यग्भिण्यादृष्टि असयतसम्पदृष्टि मिण्यादृष्टि	सख्यातशुणित असख्यातशुणित अनन्वशुणित	" " "

सर्गस्थानोंकी अपेक्षा जीवोंके अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वका प्रमाण.

सर्गना	सर्गनाके अवांतर भेद		अन्तर		भाव	अल्पबहुत्व	
	जघन्य	नाना जीवोंकी अपेक्षा	जघन्य	उच्छेद		गुणस्थान	प्रमाण
नरकागति	{	मिथ्यादि असयतसम्यग्दृष्टि	निरन्तर	देखोन १, ३, ७, १०, १७, २२, ३३	औदयिक औप क्षायिक क्षायोपशमिक	सासादनसम्य सम्यग्मिथ्या. असयतसम्य मिथ्यादृष्टि	सबसे कम सख्यातयुगित
		{	सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि	पल्योपमका अस- स्यातवा भाग अन्तर्द्वैत			
तिर्यचगति	{	मिथ्यादृष्टि सासादनादि चार गुणस्थान	निरन्तर ओषवत्	देखोन तीन पल्योपम ओषवत्	औदयिक ओषवत्	सयतासयत शेष गुणस्थानवर्ती	सबसे कम ओषवत्
		{	मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि असयतसम्यग्दृष्टि	अन्तर्द्वैत ओषवत्			
मधुल्यगति	{	सयतासयत प्रसक्तसयत अमसक्तसयत चारों उपशामक चारों क्षपक सयोगिभ्रवली अयोगिभ्रवली	निरन्तर ओषवत्	पूर्व मोटीपुथक्त्व	क्षायोपशमिक	सख्यातयुगित	" "
		{	मिथ्यादृष्टि असयतसम्यग्दृष्टि	अन्तर्द्वैत ओषवत्			
देवगति	{	मिथ्यादृष्टि असयतसम्यग्दृष्टि	निरन्तर	देखोन ३१ सागरोपम	औपशमिक	सामादनसम्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि	सबसे कम सख्यातयुगित
		{	सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि	अन्तर्द्वैत ओषवत्			
प्रेक्षित्य	{	प्रेक्षित्य	निरन्तर	पूर्व मोटीपुथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम	औदयिक	गुणस्थान-भेदाभाव	अल्पबहुत्वाभाव
		{	तिर्यलेन्द्रिय	अन्तर्द्वैत ओषवत्			



मार्गनास्थानोंकी अपेक्षा जीवोंके अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वका प्रमाण.

मार्गना	मार्गनाके अचान्तर भेद	नाना जीवोंकी अपेक्षा		एक जीवकी अपेक्षा		भाव	गुणस्थान	प्रमाण
		जघय	वरुष्ट	जघय	वरुष्ट			
परोक्ष	भिन्नादि { सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्भिन्नादि	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	उपशामक अपूर्ण-करणमे अनगत्-सम्यग्दृष्टि त क भिन्नादि	ओषवत् असल्यातग्रणित
		"	"	"	"	"		
स्थान	{ पृथिवीमायिक आदि चार वनस्पतिमायिक	नितर	नितर	धुदमवग्रहण	अनन्त कालामक अस स्यात् पुदुलपवितेन असल्यात लोक	औद्यिक	गुणस्थानभेदात्मान	अल्पबहुत्वामाव
		"	"	"	"	"	"	
गमनायिक	{ भिन्नादि { सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्भिन्नादि { अस्यतादि चार गुणस्थान	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	संयुगस्थान	पचेन्द्रियवत्
		"	"	"	"	"	"	
गमनायिक	{ चारों उपशामक चारों क्षपक सयोगिनिवली अयोगिनिवली	ओषवत्	ओषवत्	"	पूर्व कोटीपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम	औपशामिक		
		"	"	"	"	"	क्षामिक	
मनोगोणी	{ भिन्नादि जस्यतसम्यग्दृष्टि मयतामयत प्रमत्तस्यत अपमत्तस्यत सयोगिनिवली	नितर	नितर		नितर	ओषवत्	"	"
ओर								

॥ श्रीगणेशाय ॥



## मार्गस्थानोंकी अपेक्षा जीवोंके अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वका प्रमाण.

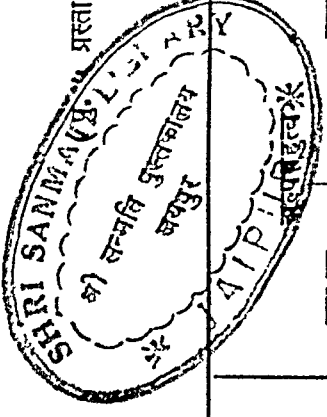
मार्गणा	मार्गणाके अवान्तर भेद	अन्तर				भाव	अल्पबहुत्व	
		नाना जीवोंकी अपेक्षा	एक जीवकी अपेक्षा		गुणस्थान		प्रमाण	
		जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट			
वचनयोगी	{ सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि	एक समय	अस- ख्यातवर्ग माग	निरन्तर	निरन्तर	ओषवत्	सर्वगुणस्थान	ओषवत्
	{ चारों उपशामरु	ओषवत्	ओषवत्	"	ओषवत्	ओषवत्		
	{ चारों क्षपक	"	"	"	ओषवत्			
काययोगी	{ औदारिककाययोगी	मनो- योगिवत्	मनोयोगिवत्	मनोयोगिवत्	मनोयोगिवत्	ओषवत्	"	{ पचेन्द्रियवत् असख्यातशुणित अनन्तशुणित
	{ औदारिकमिश्रमाय मिथ्यादृष्टि	निरन्तर	निरन्तर	निरन्तर	निरन्तर	"	{ सिथ्यादृष्टि	{ सबसे कम सख्यातशुणित असख्यातशुणित अनन्तशुणित
	{ " सासादन.	ओषवत्	ओषवत्	"	"	"	{ सयोगिकेवली असयतसम्यग्दृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि	{
	{ " असयतसम्य	एक समय	वर्णपृथक्त्व	"	"	"	{ मिथ्यादृष्टि	{
	{ " सयोगिकेवली	"	"	"	"	"	{ चारों शुणस्थान	{ देवगतवत्
	{ वैक्रियिककाययोगी चारों शुणस्थानवर्ती	मनो- योगिवत्	मनोयोगिवत्	मनोयोगिवत्	मनोयोगिवत्	ओषवत्	"	{
	{ वैक्रियिकमिश्रमाय मिथ्यादृष्टि	एक समय	चार सुहृत्	निरन्तर	निरन्तर	"	{ सासादनसम्यग्दृष्टि असयतसम्यग्दृष्टि	{ सबसे कम सख्यातशुणित असख्यातशुणित
	{ सासादनसम्यग्दृष्टि असयतसम्यग्दृष्टि	औदारिक- मिश्रवत्	औदारिकमिश्रवत्	औदारिकमिश्रवत्	औदारिकमिश्रवत्	"	{ मिथ्यादृष्टि	{
	{ आहाररुकाययोगी " मिश्रकाययोगी प्रसक्तसयत	एक समय	वर्णपृथक्त्व	निरन्तर	निरन्तर	क्षायोपशामिक	{ गुणस्थानभेदाभाव	{ अल्पबहुत्वाभाव

## मार्गणास्थानोंकी अपेक्षा जीवोंके अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वका प्रमाण

मार्गणा	मार्गणाके अन्तर भेद	मार्गणा जीवोंकी अपेक्षा		अन्तर		भाव	गुणस्थान	प्रमाण	
		अवयव	उत्पट्ट	अवयव	उत्पट्ट				
	कार्मणप्रयोगी मियाहट्टि सासादनसम्पत्तिसि " असयत्तसम्पत्तिसि " सयोगिभिवली	औदारिक मिथ्याहट्टि	औदारिकमिथ्याहट्टि	औदारिकमिथ्याहट्टि	औदारिकमिथ्याहट्टि	ओषवत्	सयोगिभिवली सासादनसम्पत्तिसि असयत्तसम्पत्तिसि मियाहट्टि	सबसे कम असख्यातयुगित " सख्यातयुगित	
	मियाहट्टि सासादनसम्पत्तिसि सम्पत्तिसि असयत्तसम्पत्तिसि अग्रमतमयत्त त क उपशामक अर्पण " अनित्यरूप क्षपक अर्पण " अनित्यरूप	निरतर ओषवत्	निरतर ओषवत्	अन्तर्द्वैत पल्योपमका अस. भाग अन्तर्द्वैत	देशोन ५५ पल्योपम पल्योपमशतपृथक्त्व	औदारिक ओषवत्	सर्वगुणस्थान	पचेन्द्रियवत्	
	मियाहट्टि सासादनसम्पत्तिसि सम्पत्तिसि असयत्तसम्पत्तिसि अग्रमतमयत्त त क उपशामक अर्पण " अनित्यरूप क्षपक अर्पण " अनित्यरूप	ओषवत् " निरतर	ओषवत् " निरतर	ओषवत् पल्योपमका अस. भाग अन्तर्द्वैत	ओषवत् सागरोपम शत- पृथक्त्व	औदारिक ओषवत्	"	"	
	मियाहट्टि सासादनसम्पत्तिसि सम्पत्तिसि असयत्तसम्पत्तिसि अग्रमतमयत्त त क उपशामक अर्पण " अनित्यरूप क्षपक अर्पण " अनित्यरूप	ओषवत् " निरतर	ओषवत् " निरतर	ओषवत् पल्योपमका अस. भाग अन्तर्द्वैत	ओषवत् सागरोपम शत- पृथक्त्व	औदारिक ओषवत्	औपशामिक क्षायिक	"	"

## मार्गणास्थानोंकी अपेक्षा जीवोंके अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वका प्रमाण.

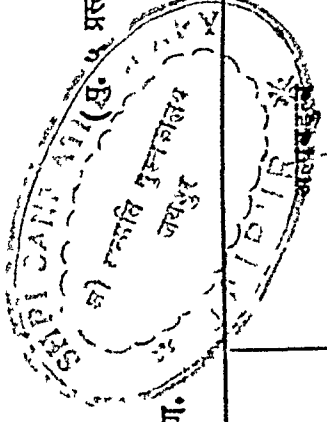
मार्गणा	मार्गणाके अवान्तर भेद	नाना जीवोंकी अपेक्षा		एक जीवकी अपेक्षा		भाव	अल्पबहुत्व	
		जवन्य	उत्कृष्ट	जवन्य	उत्कृष्ट		गुणस्थान	प्रमाण
	मियाहट्टि { सासादनसे अनिष्टि- करण उपशामक तक क्षपक अपूर्वकरण " अनिष्टिकरण अनुसम्बेदी { अनिष्टि, उप सूक्ष्मात्म, उप. अपगतपेदी उपशान्त रूपय	निरन्तर	ओषवत्	अन्तर्द्वैत	देकोन ३३ सागरोपम	औदयिक	सर्वगुणस्थान	ओषवत्
		ओषवत्	वर्षपृथक्त्व	ओषवत्	निरन्तर	क्षायिक	"	"
		एक समय	"	अन्तर्द्वैत	अन्तर्द्वैत	ओषवत्	"	"
		"	"	निरन्तर	निरन्तर	"	"	"
अपगतपेदी	क्षपक अनिष्टिकरणसे अयोगिनेचली तक	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	"	"	"
		मनो- योगिवत्	मनोयोगिवत्	मनोयोगिवत्	मनोयोगिवत्	ओषवत्	ओषवत्	पुरषवेदिवत्
		ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	निरन्तर	"	अनन्तयुगित विशेषाधिक संख्यातयुगित	
		"	"	निरन्तर	निरन्तर	"	"	
कषायी	क्रोधादिचतुःकषायी मिथा. से अति लोमक, सूक्ष्मा उप " " क्षप उपशामक	एक समय	वर्षपृथक्त्व	"	"	"	चाँरो गुणस्थान	ओषवत्
		ओषवत्	ओषवत्	"	"	क्षायिक		
		ओषवत्	ओषवत्	"	"			
		ओषवत्	ओषवत्	"	"			
अन्पायी	क्षीणरूपाय संयोगिनेचली अयोगिनेचली	ओषवत्	ओषवत्	"	"			
		ओषवत्	ओषवत्	"	"			
		ओषवत्	ओषवत्	"	"			
		ओषवत्	ओषवत्	"	"			
अज्ञानी	मत्प्रज्ञानी मियाहट्टि शुताज्ञानी " " विमग्नज्ञानी " " " सासादन	निरन्तर	निरन्तर	निरन्तर	निरन्तर	औदयिक	सासादनसम्यहट्टि मियाहट्टि	सबसे कम असंख्यातयुगित अनन्तयुगित
		"	"	"	"	पारिणामिक		
		"	"	"	"			
		"	"	"	"			



मार्गणास्थानोंकी अपेक्षा जीवोंके अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वका प्रमाण.

मार्गणा	मार्गणाके अचान्तर भेद	नाना जीवोंकी अपेक्षा		एक जीवकी अपेक्षा		भाव	गुणस्थान	प्रमाण	
		जवन्य	उरुहृष्ट	जवन्य	उरुहृष्ट				
७. श्वाममार्गणा	जमयतमम्यगृष्टि सयतामयत प्रमत्तसयत अप्रमत्तसयत चारों उपशामक चारों क्षपक	निरतर	निरतर	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वमेठी साधिक ६६ सामरोपम	ओषवत्	चारों उपशामक " क्षपक अप्रमत्तसयत प्रमत्तसयत सयतामयत असयतसम्यगृष्टि	सवसे कम सख्यातशुणित " " असख्यातशुणित "	
		एक समय ओषवत्	वर्षपृथक्त्व अनाधि " ओषवत्	"	" ३३ "	"	"	"	
		निरतर	निरतर	ओषवत्	" ६६ "	ओषवत्	क्षायिक	क्षायिक	सवसे कम सख्यातशुणित " "
		एक समय ओषवत्	वर्षपृथक्त्व " ओषवत्	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	ओषवत्	क्षायिक	क्षायिक	सवसे कम सख्यातशुणित " "
८. श्वाममार्गणा	प्रमत्तसयत अप्रमत्तसयत उपशामक अपूर्ण " क्षपक संयोगिभिवली अयोगिभिवली	निरतर	निरतर	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वमेठी निरतर	ओषवत्	चारों उपशामक " क्षपक अप्रमत्तसयत प्रमत्तसयत	सवसे कम सख्यातशुणित " "	
		एक समय ओषवत्	वर्षपृथक्त्व ओषवत्	"	"	ओषवत्	"	"	
		निरतर	निरतर	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	ओषवत्	क्षायिक	क्षायिक	सवसे कम सख्यातशुणित " "
		एक समय ओषवत्	वर्षपृथक्त्व ओषवत्	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वमेठी ओषवत्	ओषवत्	क्षायिक	क्षायिक	सवसे कम सख्यातशुणित " "
परिहा- आदिसेयमी	प्रमत्तसयत अप्रमत्तसयत उप श्वम क्षपक "	निरतर	निरतर	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	ओषवत्	{ उप अपूर्णकरण " अनिष्टि { क्षपक अपूर्णकरण " अनिष्टिकरण अप्रमत्तसयत प्रमत्तसयत	सवसे कम सख्यातशुणित " "	
		एक समय ओषवत्	वर्षपृथक्त्व ओषवत्	"	"	ओषवत्	"	"	
		निरतर	निरतर	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	ओषवत्	क्षायिक	क्षायिक	सवसे कम सख्यातशुणित " "
		एक समय ओषवत्	वर्षपृथक्त्व ओषवत्	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वमेठी ओषवत्	ओषवत्	क्षायिक	क्षायिक	सवसे कम सख्यातशुणित " "



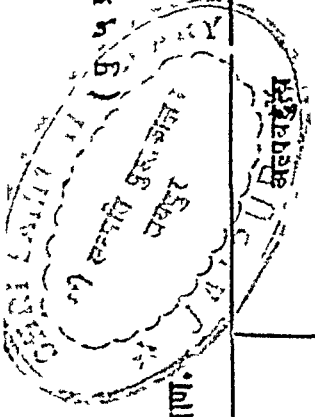


मार्गणास्थानोंकी अपेक्षा जीविके अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वका प्रमाण.

मार्गणा	मार्गणाके अचान्तर भेद	मार्गणा जीविकी अपेक्षा		एक जीविकी अपेक्षा		भाव	शुणस्थान	प्रमाण
		जवन्य	उरुष्ट	जवन्य	उरुष्ट			
तैज, पञ्च देव्यासौले	सागादनस्यन्ददि सम्यगिथ्याददि	ओषवत्	ओषवत्	पल्योपमका असल्या. माग अन्तर्षुद्धते	तेज, पञ्च साधिक २, १८ सागरो	ओषवत्	सासादनस्यन्ददि सम्यगिथ्याददि	असल्यातयुगित सस्य्यातयुगित
		निस्त	निस्त	निस्त	निस्त	क्षायोपशामिक	असयतसम्यददि मिथ्याददि	असल्यातयुगित "
	"	"	अन्तर्षुद्धते	देशोन ३१ सागरोपम	ओषवत्	चारों उपशामक " क्षपक सयोगिनेवली अप्रमत्तसयत प्रमत्तसयत	सवसे र्म सस्य्यातयुगित " "	
	ओषवत्	ओषवत्	पल्योपमका असल्या. माग अन्तर्षुद्धते	"	"	क्षायोपशामिक	सयतासयत	असंख्यातयुगित
नृज देश्यासौले	मिथ्याददि अग्यासस्यन्ददि	ओषवत्	ओषवत्	अन्तर्षुद्धते	अन्तर्षुद्धते	ओषवत्	सम्यगिथ्याददि मिथ्याददि	सस्य्यातयुगित असल्यातयुगित सस्य्यातयुगित
		निस्त	निस्त	निस्त	निस्त	"	क्षायोपशामिक	"
	ओषवत्	ओषवत्	पल्योपमका असल्या. माग अन्तर्षुद्धते	देशोन ३१ सागरोपम	ओषवत्	क्षायोपशामिक	सयतासयत	असंख्यातयुगित
	ओषवत्	ओषवत्	पल्योपमका असल्या. माग अन्तर्षुद्धते	"	"	क्षायोपशामिक	सयतासयत	असंख्यातयुगित
११ प्रव्य मार्गणा	मव्य अमव्य	"	"	ओषवत्	निस्त	ओषवत्	सम्यगिथ्याददि मिथ्याददि	ओषवत्
		निस्त	निस्त	निस्त	निस्त	पाणिगामिक	असयतसम्यददि	अल्पमहुत्वाभाव
	ओषवत्	ओषवत्	अन्तर्षुद्धते	देशोन पूर्वमेथी	ओषवत्	क्षायिक	सम्ये कम सस्य्यातयुगित	"
	ओषवत्	ओषवत्	अन्तर्षुद्धते	साधिक ३३ सागरोपम	"	क्षायोपशामिक	अप्रमत्तसयत प्रमत्तसयत	"
	चारों उपशामक	एक समय	वर्षपृथक्त्व " ओषवत्	"	वर्षपृथक्त्व	ओषवत्	सयतासयत	"

## मार्गस्थानोंकी अपेक्षा जीवोंके अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वका प्रमाण.

मार्गणा	मार्गणाके अवान्तर भेद	नाना जीवोंकी अपेक्षा		एक जीवकी अपेक्षा		भाव	अल्पबहुत्व		
		जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट		शुणस्थान	प्रमाण	
२३ संज्ञामार्गणा	{ चारों क्षपक स्योगितिवली अयोगितिवली	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	क्षायिक	असयतसम्यदृष्टि	असख्यातशुणित	
		निरन्तर	निरन्तर	अन्तर्मुहूर्त	देखोन पूर्व-कोटी " ६६ सारोपम साधिक ३३ "	क्षायोपशामिक	अप्रमत्तसयत प्रमत्तसयत सयतासयत असयतसम्यदृष्टि	सबसे कम सख्यातशुणित असख्यातशुणित "	
	पुरु समय	सत अहोरात्र	"	अन्तर्मुहूर्त	ओपशामिक	चारों उपशामक	सबसे कम सख्यातशुणित		
	"	चौदह "	"	"	क्षायोपशामिक	अप्रमत्तसयत	"		
	"	पन्द्रह "	"	"	"	प्रमत्तसयत	"		
	"	वर्षपुष्यकल	"	"	ओपशामिक	सयतासयत	असख्यातशुणित		
	"	"	निरन्तर	निरन्तर	"	"	"		
	{ सासादनसम्यदृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि मिथ्यादृष्टि	"	पल्योपमका असख्यातर्वा साग निरन्तर	निरन्तर	निरन्तर	ओषवत्	शुणस्थानमेदामाव	अल्पबहुत्वामाव	
	{ सक्षी { सासादनसे उपशान्त क्याय तक चारों क्षपक	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	सर्वशुणस्थान	मनोयोगिवत्
		ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	क्षायिक	सर्वशुणस्थान	मनोयोगिवत्
असक्षी	निरन्तर	निरन्तर	निरन्तर	निरन्तर	ओषवत्	ओषवत्	शुणस्थानमेदामाव	अल्पबहुत्वामाव	



मार्गस्थानोंकी अपेक्षा जीवोंके अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वका प्रमाण.

मार्गणा	मार्गणोंके अन्तर भेद	अन्तर				भाव	गुणस्थान	प्रमाण
		ताना जीवोंकी अपेक्षा		एक जीवकी अपेक्षा				
		जवन्य	उत्कृष्ट	जवन्य	उत्कृष्ट			
आहारक	मिथ्यादृष्टि { सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	औद्यिक	चारों उपशामक " क्षपक	सबसे मम सख्यातयुगित
		"	"	पल्योपमम अम भाग अन्तर्मुहूर्त	असख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी	ओषवत्	सयोगिनेवली अप्रमत्तसयत	" "
	निरन्तर	निरन्तर	"	"	"	"	असख्यातयुगित	
	"	"	"	"	ओषवत्	औपद्यमिक क्षयिक	सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि असयतसम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि	" सख्यातयुगित असख्यातयुगित अनन्तयुगित
जनाहारक	मिथ्यादृष्टि सामान्यसम्यग्दृष्टि असयतसम्यग्दृष्टि सयोगिनेवली (समुदागत) अयोगिनेवली	निरन्तर	निरन्तर	निरन्तर	निरन्तर	औद्यिक	सयोगिनेवली	सबसे मम सख्यातयुगित
		एक समय	पल्योपमका अस. भाग	"	"	पारिणामिक	अयोगिनेवली	असख्यातयुगित
		"	सामपृथक्त्व	"	"	ओषवत्	सासादनसम्यग्दृष्टि	असख्यातयुगित
		"	वर्षपृथक्त्व	"	"	क्षयिक	असयतसम्यग्दृष्टि	"
				छह मास	"	"	अनन्तयुगित	





क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
३४	संयतासंयतसे लेकर अप्रमत्त-संयत गुणस्थान तक तीनों प्रकारके मनुष्योंका अन्तर	५१-५३	४७	एकेन्द्रिय जीवको त्रसकाधिक जीवोंमें उत्पन्न कराकर अन्तर कइसे मार्गणाका विनाश क्यों नहीं होगा ? इस शंकाका समाधान	६५
३५	चारों उपशामक मनुष्यत्रिकोंका अन्तर	५३-५५	४८	वाटर एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर	६६-६७
३६	चारों क्षपक, अयोगिकेवली और सयोगिकेवली मनुष्यत्रिकोंका अन्तर	५५-५६	४९	वाटर एकेन्द्रियपर्याप्त और वाटर एकेन्द्रियअपर्याप्तोंका अन्तर	६७
३७	लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका अन्तर	५७-६४	५०	सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंका अन्तर	६७-६८
३८	मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि देवोंका अन्तर	५७-५८	५१	द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतु-रिन्द्रिय और उन्हींके पर्याप्तक तथा लब्धपर्याप्तक जीवोंका अन्तर	६८-६९
३९	सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका अन्तर	५९-६२	५२	पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि, सासादन-सम्यग्दृष्टि तथा सम्यग्मिथ्या-दृष्टि जीवोंका अन्तर	६९-७१
४०	भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी तथा सौधर्म-ईशानकल्पसे लेकर शतार-सहस्रारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका अन्तर	६१-६२	५३	असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक दोनों प्रकारके पंचेन्द्रिय जीवोंका अन्तर	७१-७५
४१	उक्त देवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि-योंका अन्तर	६२			
४२	आनतकल्पसे लेकर नवत्रैवेयक-विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर	६२-६३			
४३	उक्त कल्पोंके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका अन्तर	६३			
४४	नव अनुदिश और पांच अनु-त्तरविमानवासी देवोंमें अन्तराभावका प्रतिपादन	६५-७७			
४५	एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर	६५-६६			
४६	देव मिथ्यादृष्टिको एकेन्द्रि-	६५-६६			

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
२५	तिर्यचोंका सोपपत्तिक अन्तर-निरूपण	३३-३७	२९	पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय-तिर्यचपर्याप्त और पंचेन्द्रिय-तिर्यचयोनिमती मिथ्यादृष्टि-योंका दोनों अपेक्षाओंसे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर	३७-३८
२६	तीनों प्रकारके तिर्यचोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका दोनों अपेक्षाओंसे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर	३८-४१	२७	तीनों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंका दोनों अपेक्षाओंसे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर	४१-४३
२७	तीनों प्रकारके संयतासंयत तिर्यचोंका दोनों अपेक्षाओंसे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर	४३-४५	२९	पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध-पर्याप्तोंका दोनों अपेक्षा-ओंसे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर	४५-४६
३०	मनुष्य, मनुष्यपर्याप्तक और मनुष्यनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर	४६-५७	३१	भोगभूमिज मनुष्योंमें जन्म लेनेके पश्चात् सात सप्ताहके द्वारा प्राप्त होनेवाली योग्य-ताका वर्णन	४७
३१	मनुष्य, मनुष्यपर्याप्तक और मनुष्यनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर	४६-५७	३२	उक्त तीनों प्रकारके सासा-दनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्-मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका अन्तर	४८-५०
३२	तीनों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका अन्तर	५०-५१			

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
५५	पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न कराकर और सम्यक्त्वको ग्रहण कराकर मिथ्यात्वके द्वारा अन्तरको प्राप्त क्यों नहीं कराया? इत्यादि शंकाओंका समाधान	७३	६४	सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-दृष्टि जीवोंका अन्तर	८८
५५	पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-पर्याप्तकोंमें चारों उपशाम-कोंका अन्तर	७५-७६	६५	एक योगके परिणामन-कालसे गुणस्थानका काल संबन्धित-गुणा है, यह कैसे जाना?	८८-८९
५६	उक्त जीवोंमें चारों क्षपक, सयोगिकिवली और अयोगि-केवलीका अन्तर	७७	६६	औदारिकमिश्रकाययोगी मि-थ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकिवलीका पृथक् पृथक् अन्तर-प्रतिपादन	८९
५७	पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तकोंका अन्तर	"	६७	वैक्रियिककाययोगी चारों गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर	८९-९१
५८	पृथिवीकायिक आदि चार स्थावर कायिकोंका अन्तर	७८-८७	६८	वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मि-थ्यादृष्टि, सासादनसम्य-ग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर	९१
५९	वनस्पतिकायिक वावर, सूक्ष्म और पर्याप्तक तथा अपर्याप्तक जीवोंका अन्तर	७९-८०	६९	आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी प्रमत्त-संयतोंका अन्तर	९३
६०	त्रसकायिक और त्रसकायिक-पर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकिवली गुण-स्थान तकके जीवोंका पृथक् पृथक् अन्तर-निरूपण	८०-८६	७०	कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयत-सम्यग्दृष्टि और सयोगिकि-वलीका अन्तर	९३
६१	त्रसकायिक लब्धपर्याप्तकोंका अन्तर	८६-८७	७१	५ वेदमार्गणा	"
६२	पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगी मिथ्या-दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतसंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगि-केवली जिनका अन्तर	८७-९४	७२	खिवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर	९४
६३	उक्त योगवाले सासादन-	८७	७३	खिवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर	९५-९६
			७३	असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके खिवेदी जीवोंका अन्तर	९७-९८

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
७४	खिवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण उपशामकका अन्तर	९९-१००	८६	आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुत-ज्ञानी और अविधिज्ञानी असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर	११४-११६
७५	खिवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण क्षपकका अन्तर	१००	८७	उक्त तीनों ज्ञानवाले संयता-संयतोंका तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक अंतर-निरूपण	११६-११९
७६	पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर	"	८८	संक्षी, सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक जीवोंमें अविधिज्ञान और उप-शामसम्यक्त्वका अभाव है, यह कैसे जाना? इस शंकाका तथा इसीसे सम्बन्धित अन्य अनेकों शंकाओंका सप्रमाण समाधान	११९-११९
७७	पुरुषवेदी सासादनसम्य-ग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि-योंका अन्तर	१०१	८९	तीनों ज्ञानवाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका अन्तर तथा तदन्तर्गत विशेषताओंका प्रतिपादन	११९-१२२
७८	असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके पुरुषवेदी जीवोंका अन्तर	१०२-१०४	९०	तीनों ज्ञानवाले चारों उप-शामक और चारों क्षपकोंका पृथक् पृथक् अन्तर-निरूपण	१२२-१२४
७९	पुरुषवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण उपशामक तथा क्षपकोंका पृथक् पृथक् अन्तर-प्रतिपादन	१०४-१०६	९१	प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीण-कपाय गुणस्थान तक मन-पर्ययज्ञानी जीवोंका पृथक् पृथक् अन्तर-निरूपण	१२४-१२७
८०	नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर	१०६	९२	केवलज्ञानी जीवोंका अन्तर	१२७
८१	सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक पृथक् पृथक् नपुंसकवेदी जीवोंका अन्तर	१०७-१०९	९३	प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगि-केवली गुणस्थान तक समस्त संयतोंका पृथक् पृथक् अन्तर	१२८
८२	अपगतवेदी जीवोंका अन्तर	१०९-१११	९४	सामायिक और छेदेप-स्थापनासंयमी प्रमत्तसंयतादि चारों गुणस्थानवर्ती जीवोंका पृथक् पृथक् अन्तर	१२९-१३१
८३	मिथ्यादृष्टिसे लेकर सूक्ष्म-साम्पराय गुणस्थान तक चारों कपायवाले जीवोंका तदन्तर्गत शंका-समाधान-पूर्वक अन्तर-निरूपण	१११-११३	९५	परिहाशुद्धिसंयमी प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका अन्तर	१३१
८४	अकपायी जीवोंका अन्तर	११३			
८५	ज्ञानमार्गणा	११४-१२७			
	७ ज्ञानमार्गणा				
	८ संयममार्गणा				

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१२	मृद्धमत्तमपरायसंयमी उप- शामक आर क्षपक सूक्ष्म- माम्परायिकसंयनोंका अन्तर	१३२	१०९	लेख्या और पत्रलेख्यावाले जीवोंका पृथक् पृथक् अंतर १४६-१४९	
१७	यथाव्यतिहारसंयमी चारों गुणस्थानोंका अन्तर	१३३	११०	मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयोगि- केवली गुणस्थान तक शुक्लेख्यावाले जीवोंका पृथक् पृथक् अन्तर १४९-१५४	
१८	संयतासंयतोंका अन्तर	१३३	१११	११ भव्यमार्गणा १५४	
१९	प्रसंयमी चारों गुणस्थानोंका पृथक् पृथक् अन्तर १३३-१३५	१३५	११२	समस्त गुणस्थानवर्ती भव्य- जीवोंका अन्तर "	
२०	चञ्चुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर	१३५	११३	अभ्य जीवोंका अन्तर "	
२०१	चञ्चुदर्शनी सासादनसम्य- दृष्टि और सम्यग्मिथ्या- दृष्टि जीवोंका अन्तर १३६-१३७	१३७	११४	सम्यक्त्वमार्गणा १५५-१७१	
२०२	असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके चञ्चुदर्शनी जीवोंका अन्तर १३८-१४१	१४१	११५	असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक सम्यग्दृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् अन्तर १५५-१५६	
२०३	चञ्चुदर्शनी चारों उपशाम- कोंका अन्तर १४१	१४१	११६	क्षायिकसम्यक्स्वी असंयत- सम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर १५६-१५७	
२०४	चञ्चुदर्शनी चारों क्षपकोंका अन्तर १४२	१४२	११७	क्षायिकसम्यक्स्वी संयता- संयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका अन्तर १५७-१६०	
२०५	अचञ्चुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवोंका पृथक् पृथक् अन्तर १४३	१४३	११८	क्षायिकसम्यक्स्वी चारों उपशामकोंका अन्तर १६०-१६१	
२०६	१० लेख्यामार्गणा १४३-१५४ रुण, नील और फापोत- लेख्यावाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर १४३-१४५	१४५	११९	असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती वेदक- सम्यग्दृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् अन्तर १६२-१६५	
२०७	उक्त तीनों अष्टुभ लेख्यावाले सानादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर १४५-१४६	१४६	१२०	असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर उपशात्तकपाय गुणस्थान तक उपशामसम्यग्दृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् अन्तर १६५-१७०	
२०८	मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्त- संयत गुणस्थान तक तेजो-				

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१२०	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय तक संज्ञी जीवोंका अन्तर	१७२	१२०	विशेषता न होनेसे तीन ही निक्षेप कहना चाहिए ? इस शंकाका सयुक्तिक और सप्र- माण समाधान १८५-१८६	
१२१	असंज्ञी जीवोंका अन्तर	१७२	१२१	औदयिकादि पांच भावोंसे प्रकृतमें किस भावसे प्रयोजन है ? भावोंके अनेक भेद हैं, फिर यहां पांच ही भेद क्यों कहे ? इन शंकाओंका समाधान १८६-१८७	
१२२	आहारक मिथ्यादृष्टि, सासा- दनसम्यग्दृष्टि और सम्य- ग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अंतर १७३-१७४	१७४	१२२	निर्देश, स्वामित्व आदि छह अनुयोगद्वारोंसे भावका स्वरूप-निरूपण १८७-१८८	
१२३	असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवाले आहा- रक जीवोंका अन्तर १७४-१७७	१७७	१२३	औदयिकभावके स्थान और विकल्पकी अपेक्षा भेद तथा स्थानका स्वरूप-निरूपण १८९	
१२४	आहारक चारों उपशाम- कोंका अन्तर १७७-१७८	१७८	१२४	असिद्धत्व किसे कहते हैं ? जाति, संस्थान, संहनन आदि औदयिकभावोंका किस भावमें अन्तर्भाव होता है ? इन शंकाओंका समाधान "	
१२५	आहारक चारों क्षपक और सयोगिकेवलीका अन्तर १७८	१७८	१२५	औपशमिकभावके स्थान और विकल्पकी अपेक्षा भेद-निरू- पण १९०	
१२६	अनाहारक जीवोंका अन्तर १७८-१७९	१७९	१२६	औपशमिकचारित्रिके सात भेदोंका विवरण "	
<b>भावानुगम</b>					
१					
<b>विषयकी उत्थानिका १८३-१९३</b>					
१	घचलाकारका मंगलाचरण और प्रतिष्ठा १८३	१८३	१२७	क्षायिकभावके स्थान और विकल्पकी अपेक्षा भेद १९०-१९१	
२	भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश- भेद निरूपण "		१२८	क्षायोपशमिकभावके स्थान और विकल्पकी अपेक्षा भेद १९१-१९२	
३	नामभाव, स्थापनाभाव, द्रव्य- भाव और भावभाव, इन चार प्रकारके भावोंका समेद- स्वरूप-निरूपण १८३-१८५	१८५	१२९	पारिणामिकभावके भेद सांनिपातिकभावका स्वरूप और भंग-निरूपण १९३	
४	प्रकृतमें नोआगमभावभावसे प्रयोजनका उद्देश १८५	१८५	१३०	भंगोंके निकालनेके लिए करणसूत्र "	
५	नाम और स्थापनामें कोई				

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
३२	नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंके भाव	२०६	३९	है, इस बातका स्पष्ट निरूपण प्रथम पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक नारकी जीवोंके भावोंका निरूपण	२०९-२१२
३३	सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदावस्वरूप उपशमसे, तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्वरूप उपशमसे अथवा अनुदयोपशमसे और मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे मिथ्यादृष्टिभाव उत्पन्न होता है, इसलिए उसे क्षायोपशमिक क्यों न माना जाय ? इस शंकाका सयुक्तिक समाधान	२०६-२०७	४०	सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय-तिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंचपर्यन्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती जीवोंके सर्व गुणस्थानसम्बन्धी भावोंका निरूपण तथा योनिमती तिर्यंचोंमें क्षायिकभाव न पाये जानेका स्पष्टीकरण	२१३
३४	नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके भाव	२०७	४१	सामान्यमनुष्य, पर्यन्तमनुष्य और मनुष्यतिर्यंचोंके सर्वगुणस्थानसम्बन्धी भावोंका निरूपण	२१३
३५	जब कि अनन्तानुदन्धी कषायके उदयसे ही जीव सासादनसम्यग्दृष्टि होता है, तब उसे औदयिकभाव क्यों न कहा जाय ? इस शंकाका समाधान	२०७	४२	लब्धपर्याप्त मनुष्य और तिर्यंचोंके भावोंका सूत्रकारद्वारा सूत्रित न होनेका कारण	२१४-२१६
३६	नारकी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके भावका तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक निरूपण	२०८	४३	चारों गुणस्थानवर्ती देवोंके भाव	२१४
३७	नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके भाव	२०८-२०९	४४	भवनवासी, व्यन्तर ज्योतिषी देव और देवियोंके तथा सौधर्म-ईशानकल्पवासी देवियोंके भावोंका निरूपण	२१४-२१५
३८	असंयतसम्यग्दृष्टि नारकीयोंका असंयतत्व औदयिक	२०५-२०६	४५	सौधर्म-ईशानकल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक देवोंके भावोंका विवरण	२१५-२१६
			४६	इन्द्रियमार्गणा २१६-२१७ मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक पंचेन्द्रियपर्यन्तकोंके भावोंका	

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१७	मिथ्यादृष्टि जीवोंके भावका निरूपण	१९४	२४	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके भावका अनेक शंकाओंके समाधानपूर्वक विशद निरूपण	१९८-१९९
१८	मिथ्यादृष्टि जीवोंके अन्य भी शान-दशनादिक भाव पाये जाते हैं, फिर उन्हें क्यों नहीं कहा ? इस शंकाको उठाते हुए गुणस्थानोंमें संभव भावोंके सयोगी भंगोंका निरूपण तथा उक्त शंकाका समाधान	१९४-१९६	२५	असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके भावोंका अनेक शंका-समाधानोंके साथ विशद विवेचन	१९९-२००
१९	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके भावका निरूपण	१९६	२६	असंयतसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिकभावकी अपेक्षा है, इस बातका सूत्रकारद्वारा स्पष्टीकरण	२०१
२०	दूसरे निमित्तसे उत्पन्न हुए भावको परिणामिक माना जा सकता है, या नहीं, इस शंकाका सयुक्तिक समाधान	१९६	२७	संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंके भावोंका तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक निरूपण	२०१-२०४
२१	सत्त्व, प्रमेयत्व आदिक भाव कारणके विना उत्पन्न होनेवाले पाये जाते हैं, फिर यह कैसे कहा कि कारणके विना उत्पन्न होनेवाले परिणामका अभाव है ? इस शंकाका समाधान	१९७	२८	दर्शनमोहनीयकर्मके उपशम, क्षय और क्षयोपशमकी अपेक्षा संयतासंयतोंके औपशमिकादि भाव क्यों नहीं बतलाये ? इस शंकाका समाधान	२०३
२२	सासादनसम्यग्दृष्टिपत्ता भी सम्यक्त्व और चारित्र्य, इन दोनोंके विरोधी अनन्तानुदन्धी कषायके उदयके विना नहीं होता है, इसलिए उसे औदयिक क्यों नहीं मानते हैं ? इस शंकाका समाधान	१९७	२९	चारों उपशामकोंके भावोंका निरूपण	२०४-२०५
२३	सासादनसम्यक्त्वको छोड़कर अन्य गुणस्थानसम्बन्धी भावोंमें परिणामिकपत्तेका व्यवहार क्यों नहीं किया	१९७	३०	मोहनीयकर्मके उपशमसे रहित अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें औपशमिकभाव कैसे संभव है ? इस शंकाका अनेक प्रकारोंसे सयुक्तिक समाधान	२०५-२०६
			३१	चारों क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके भावोंका तदन्तर्गत अनेकों शंकाओंका समाधान करते हुए विशद विवेचन	२०५-२०६

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
	निरूपण, तथा एकैन्द्रिय, विक्रान्देन्द्रिय और लक्ष्य-पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंके मान न करेनेका कारण	२१६-२१७		सम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली जीवोंके भाव	२२१
	३ कायमार्गणा	२१७-२१८		५ वेदमार्गणा	२२१-२२२
४७	प्रसक्तिकरु और प्रसक्तिक-पर्याप्तक जीवोंके सर्व गुण-स्थानसम्बन्धी भावोंका प्रति-पादन, तथा तत्सम्बन्धी शक्ता-समाधान	"		५५ खिविदी, पुल्यवेदी और ननु-सकवेदी जीवोंके भाव	२२१
	४ योगमार्गणा	२१८-२२१		५६ अपगतवेदी जीवोंके भाव	२२२
	पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगी जीवोंके भाव	२२८		५७ अपगतवेदी किसे कहा जाय ? इस शंकाका सयुक्तिक समाधान	"
	४ औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली जीवोंके भावोंका पृथक् पृथक् निरूपण	२२८-२२९		६ कर्पायमार्गणा	२२३
	५ औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंमें औपशमितभाव न बतलानेका कारण	२१९		५८ चतुष्कपायी जीवोंके भाव	"
	५१ चारों गुणस्थानवर्ती वैक्तिक-काययोगी जीवोंके भाव	२१९-२२०		५९ अकपायी जीवोंके भाव	"
	५२ वैक्तिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके भाव	२२०		६० कपाय क्या वस्तु है, अकपायता किस प्रकार घटित होती है ? इस शंकाका सयुक्तिक समाधान	"
	५३ आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके भाव	"		७ ज्ञानमार्गणा	२२४-२२६
	५४ फार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और प्रतिज्ञा अल्पबहुत्वानुगमकी निर्देश-भेद-निरूपण	२४१		६१ मत्यदानी, श्रुतादानी और विभंगदानी जीवोंके भाव	२२४-२२५
		"		६२ मिथ्यादृष्टि जीवोंके ज्ञानको अज्ञानपना कैसे है ? ज्ञानका कार्य क्या है ? इत्यादि अनेकों शंकाओंका समाधान	"
		"		६३ मति, श्रुत, अवधि, मनाःपर्यय और केवलज्ञानी जीवोंके भावोंका पृथक् पृथक् निरूपण	२२५-२२६
		"		६४ 'सयोग' यह कौनसा भाव है ? योगको फार्मणशरीरसे उत्पन्न होनेवाला क्यों न माना जाय ? इन शंकाओंका सयुक्तिक समाधान	"
		"		८ संयममार्गणा	२२७-२२८
		"		६५ प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक संयमी जीवोंके भाव	२२७

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
६६	सामाधिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्म-साम्परायिक संयमी जीवोंके भावोंका पृथक् पृथक् निरूपण	२२७	७७	उक्त गुणस्थानवर्ती क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीवोंके भावोंका और उनके सम्यक्त्वका तदन्तर्गत शंका-समाधान-पूर्वक निरूपण	२३१-२३४
६७	यथास्थितसंयमी, संयमा-संयमी और असंयमी जीवोंके भावोंका पृथक् पृथक् निरूपण	२२८	७८	असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके भावोंका और सम्यक्त्वका निरूपण	२३४-२३५
६८	चतुर्दर्शनी और अचतुर्दर्शनी जीवोंके भाव	२२८	७९	असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर उपशोतकपाय गुणस्थान तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके भावोंका और सम्यक्त्वका निरूपण	२३५-२३६
६९	अवधिदर्शनी और केवल-दर्शनी जीवोंके भाव	२२९	८०	सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंके भाव	२३६-२३७
७०	कृष्ण, नील और कापोत-लेख्यावाले आदिके चार गुणस्थानवर्ती जीवोंके भाव	२२९		१३ संज्ञिमार्गणा	२३७
७१	तेजोलेख्या और पञ्चलेख्या-वाले आदिके सात गुणस्थान-वर्ती जीवोंके भाव	"	८१	मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीण-कपाय गुणस्थान तक सबी जीवोंके भाव	"
७२	शुक्लेख्यावाले आदिके तेरह गुणस्थानवर्ती जीवोंके भाव	२३०	८२	असंज्ञी जीवोंके भाव	"
७३	सर्वगुणस्थानवर्ती भव्य जीवोंके भाव	२३०	८३	मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक आहारक जीवोंके भाव	२३८
७४	अभव्य जीवोंके भाव	"	८४	अनाहारक जीवोंके भाव	"
७५	अभव्यमार्गणामे गुणस्थानके भावको न कह कर मार्गणा-स्थान-संबंधी भावके कहनेका क्या अभिप्राय है ? इस शंकाका समाधान	२३०-२३१		अल्पबहुत्वानुगम ?	
७६	असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक सम्यग्दृष्टि जीवोंके भाव	२३१		विषयकी उत्थानिका	२४१-२५०
				१ घबलाकारका मंगलाचरण	२४१
				अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश-भेद-निरूपण	"

## षट्खंडागमकी प्रस्तावना

( ५५ )

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
२	नाम-अल्पबहुत्व, स्थापना-अल्पबहुत्व, द्रव्य-अल्पबहुत्व और भाव-अल्पबहुत्व, इन चार प्रकारके अल्पबहुत्वोंका समेद-स्वरूप-निरूपण	२४१-२४२	१५	सासादनसम्यग्दृष्टियोंका गुणकार बतलाते हुए गुणकारके तीन प्रकारोंका वर्णन	२४२
३	प्रकृतमें सचित्त द्रव्याल्प-बहुत्वसे प्रयोजनका उल्लेख	२४२	१६	सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयत-जीवोंका सयुक्तिक एवं सम्प्रमाण अल्पबहुत्व-निरूपण	२५०-२५३
४	निर्देश, स्वामित्व, आदि छह अनुयोगद्वारासे अल्पबहुत्वका स्वरूप निरूपण	२४२-२४३	१७	असंयतसम्यग्दृष्टि गुण-स्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्वका अनेक शंकाओंके समाधानपूर्वक निरूपण	२५३-२५६
५	ओष और आवेशका स्वरूप	२४३	१८	संयतासंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्वका तदन्तर्गत अनेक शंकाओंके समाधानपूर्वक सयुक्तिक निरूपण	२५६-२५७
	ओषसे अल्पबहुत्वानुगमनिर्देश	२४३-२६१	१९	प्रसक्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्वका तदन्तर्गत अनेक शंकाओंके समाधानपूर्वक सयुक्तिक निरूपण	२५८-२६१
६	अपूर्वकरणदि तीन गुणस्थान-वर्ती उपशामक जीवोंका प्रवेशकी अपेक्षा अल्पबहुत्व	२४४	२०	उपशामक और क्षपकोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व तथा तदन्तर्गत अनेक शंकाओंका समाधान	२५८-२६१
७	अपूर्वकरण आदिके कालोंमें परस्पर हीनाधिकता होनेसे संचय विसहस्र क्यों नहीं होता ? इस शंकाका सयुक्तिक समाधान	२४४		आदेशसे अल्पबहुत्वानुगम-निर्देश	२६१-३५०
८	उपशान्तक्रपायवीतरागछात्र-स्वोंका अल्पबहुत्व	२४५	१	गतिमार्गणा	२६१-२८७
९	क्षपक जीवोंका अल्पबहुत्व	२४५-२४६	( नरकगति )		२६१-२६७
१०	सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीका प्रवेशकी अपेक्षा अल्पबहुत्व	२४६	२१	सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि	
११	सयोगिकेवलीका संचय-कालकी अपेक्षा अल्पबहुत्व	२४७		नारकी जीवोंके अल्पबहुत्वका क्रमशः सयुक्तिक निरूपण	२६१-२६३
१२	प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका अल्पबहुत्व	२४७-२४८	२२	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें नारकीयोंका सम्यक्त्वसंबन्धी अल्पबहुत्व	२६३-२६४
१३	संयतासंयतोंका अल्पबहुत्व और तत्संबन्धी शंकाका समाधान	२४८			
१४	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व और तदन्तर्गत अनेक शंकाओंका समाधान	२४८-२४९			

## ( ५६ ) अल्पबहुत्वानुगम-विषय-सूची

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
२३	पृथक्त्व शब्दका अर्थ वैपुल्य-वाची कैसे लिया ? इस शंकाका समाधान	२६४	३१	अल्पबहुत्वका पृथक् पृथक् निरूपण ( देवगति )	२७३
२४	सातों पृथिवियोंके नारकी जीवोंका पृथक् पृथक् अल्पबहुत्व	२६४-२६७	३२	चारों गुणस्थानवर्ती देवोंका अल्पबहुत्व	२८०-२८७
२५	अन्तर्मुहूर्तका अर्थ असंख्यात आवलियों लेनेसे उसका अन्तर्मुहूर्तपना विरोधको क्यों नहीं प्राप्त होगा ? इस शंकाका समाधान	२६६	३३	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें देवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व	२८०-२८१
२६	सामान्यतिर्यच, पंचेन्द्रिय-तिर्यच, पंचेन्द्रियपर्याप्त और पंचेन्द्रिययोनिमती तिर्यचोंके तदन्तर्गत अनेक शंकाओंके समाधानपूर्वक अल्पबहुत्वका निरूपण	२६८-२७३	३४	भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, देव और देवियोंका, तथा सौधर्म-ईशानकल्पवासिनी सौधर्म-ईशानकल्पवासिनी देवियोंका अल्पबहुत्व	२८१-२८२
२७	असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें उक्त चारों प्रकारके तिर्यचोंका सम्यक्त्वसंबन्धी अल्पबहुत्व	२७०-२७३	३५	सौधर्म-ईशानकल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमान-वासी देवोंके चारों गुण-स्थानसम्बन्धी तथा सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्वका तदन्तर्गत शंका-समाधान-पूर्वक पृथक् पृथक् निरूपण	२८२-२८६
२८	असंयत तिर्यचोंमें क्षायिक-सम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव क्यों असंख्यात-गुणित हैं, इस बातका सयुक्तिक निरूपण	२७१		सर्वार्थसिद्धिमें असंख्यात देव क्यों नहीं होते ? वर्ष-पृथक्त्वके अन्तरवाले आन-तादि कल्पवासी देवोंमें संख्यात आवलियोंसे भाजित पल्योपमप्रमाण जीव क्यों नहीं होते ? इत्यादि अनेक शंकाओंका सयुक्तिक और सम्प्रमाण समाधान	२८६-२८७
२९	संयतासंयत तिर्यचोंमें क्षायिक-सम्यग्दृष्टियोंका अल्पबहुत्व क्यों नहीं कहा ? इस शंकाका समाधान	२७२	३६	२ इन्द्रियमार्गणा	२८८-२८९
३०	सामान्य मनुष्य, पर्याप्त-मनुष्य और मनुष्यनियोंके तदन्तर्गत शंका-समाधान-पूर्वक सर्व गुणस्थानसंबन्धी	२७३-२८०	३७	पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-पर्याप्त जीवोंका अल्पबहुत्व	”
				इन्द्रियमार्गणमें स्वस्थान-अल्पबहुत्व और सर्वपरस्थान-अल्पबहुत्व क्यों नहीं कहे ? इस शंकाका समाधान	२८९

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
३८	३ क्वायमार्गणा २८९-२९० असंयतसम्यग्दृष्टि और चमत्कारिक- पर्याय जीवोंका अल्पबहुत्व	२८९-२९०	४८	का सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्प- बहुत्व पल्लोपमके असंख्यातवें भाग- प्रमाण आधिकसम्यग्दृष्टि- योगसे असंख्यात जीव विग्रह क्यों नहीं करते? इस शंकाका समाधान	२९१-३००
३९	४ योगमार्गणा २९०-३०० पांचों मनोयोगी, पांचों नवयोगी, क्वाययोगी और ओपरिक्रमिकाययोगी जीवोंके नमन गुणस्थानसम्बन्धी और सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्प- बहुत्वका पृथक् पृथक् निरूपण २९०-२९४	२९०-३००	४९	५ वेदमार्गणा ३००-३११ प्रारम्भके नव गुणस्थानवर्ती खविद्यो जीवोंका पृथक् पृथक् अल्पबहुत्व	३००-३०२
४०	ओपरिक्रमिकाययोगी स- योगिकेवली, असंयतसम्य- ग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व २९४-२९५	२९४-२९५	५०	असंयतसम्यग्दृष्टि, संयता- संयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्त- संयत, अपूर्वकरण और अनि- वृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती खविद्यो जीवोंका पृथक् पृथक् सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ३०२-३०४	३०५-३११
४१	वैक्रियिक्रमिकाययोगी जीवोंका अल्पबहुत्व २९५-२९६	२९५-२९६	५१	प्रारम्भके नव गुणस्थानवर्ती पुरुषवेदी जीवोंका पृथक् पृथक् अल्पबहुत्व ३०४-३०६	३११-३१२
४२	वैक्रियिक्रमिकाययोगी सा- सादनसम्यग्दृष्टि, असंयत- सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व २९६	२९६	५२	असंयतसम्यग्दृष्टि आदि छह गुणस्थानवर्ती पुरुषवेदी जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी पृथक् पृथक् अल्पबहुत्व ३०६-३०७	३१२-३१३
४३	वैक्रियिक्रमिकाययोगी असं- यतसम्यग्दृष्टि जीवोंका सम्य- क्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व २९७	२९७	५३	आदिके नव गुणस्थानवर्ती नपुंसकवेदी जीवोंका पृथक् पृथक् अल्पबहुत्व ३०७-३०८	३१३-३१४
४४	आधारकक्वाययोगी और आधारकमिथ्याक्वाययोगी जी- वोंका अल्पबहुत्व २९७-२९८	२९७-२९८	५४	असंयतसम्यग्दृष्टि आदि छह गुणस्थानवर्ती नपुंसकवेदी जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ३०९-३१०	३१४-३१५
४५	उपशामसम्यक्त्वके साथ आधारकक्वाय क्वाय नहीं होती? इस शंकाका समाधान २९८	२९८	५५	अपगतवेदी जीवोंका अल्प- बहुत्व ३११	३१५-३१६
४६	कर्मणिकाययोगी सयोगिके- वली, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और मि- थ्यादृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व २९८-२९९	२९८-२९९	५६	६ क्वायमार्गणा ३१२-३१६ चारों क्वायवले जीवोंका अल्पबहुत्व ३१२-३१४	३१६-३१७

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
५७	अपूर्वकरण और अनिवृत्ति- करण, इन दो उपशामक गुणस्थानोंमें प्रवेश करने- वाले जीवोंसे संख्यातगुणित प्रमाणवाले इन्हों दो गुण- स्थानोंमें प्रवेश करनेवाले क्षणकोंकी अपेक्षा सूक्ष्मसाप्- रायिक उपशामक जीव विशेष अधिक कैसे हो सकते हैं? इस शंकाका समाधान ३१२	३१२	६५	केवलज्ञानी सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिनोका अल्पबहुत्व ३२१-३२२	३२१-३२२
५८	असंयतसम्यग्दृष्टि आदि सात गुणस्थानवर्ती क्वायी जीवो- का सम्यक्त्वसम्बन्धी पृथक् पृथक् अल्पबहुत्व ३१६-३१६	३१६-३१६	६६	८ संयममार्गणा ३२२-३२३ सामान्य संयतोंका प्रमत्त- संयतसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक अल्पबहुत्व ३२२-३२४	३२२-३२३
५९	क्वाययोगी जीवोंका अल्पबहुत्व ३१६-३२२	३१६-३२२	६७	उक्त जीवोंका दसवें गुण- स्थान तक सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ३२४-३२५	३२४-३२५
६०	मलज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंका अल्प- बहुत्व ३१६-३१७	३१६-३१७	६८	प्रमत्तसंयतादि चार गुण- स्थानवर्ती सामायिक और छेदोपस्थापनाद्विसंयतोंका अल्पबहुत्व ३२५-३२६	३२५-३२६
६१	आभिनिकोथिकज्ञानी, श्रुत- ज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवों- का असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकपायवीतरागछात्रस्थ गुणस्थान तक पृथक् पृथक् अल्पबहुत्व ३१७-३१९	३१७-३१९	६९	उक्त जीवोंका सम्यक्त्व- सम्बन्धी अल्पबहुत्व ३२६	३२६
६२	उक्त जीवोंका दसवें गुण- स्थान तक सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ३१९	३१९	७०	पारेहारद्विसंयती प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान- वर्ती जीवोंका अल्पबहुत्व ३२७	३२७
६३	प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीण- कपाय गुणस्थान तक मन- पर्ययज्ञानी जीवोंका अल्प- बहुत्व ३२०	३२०	७१	उक्त जीवोंका सम्यक्त्व- सम्बन्धी अल्पबहुत्व ३२७	३२७
६४	उक्त जीवोंका दसवें गुण- स्थान तक सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ३२१	३२१	७२	परिहारद्विसंयतोंके उप- शमसम्यक्त्व नहीं होता है, इस सिद्धान्तका स्पष्टीकरण ७३ सूक्ष्मसांपरायिकसंयती उप- शामक और क्षपक जीवोंका अल्पबहुत्व ३२८	३२८
६५	चारों क्वायवले जीवोंका अल्पबहुत्व ३१२-३१४	३१२-३१४	७४	यथाख्यातविहारद्विसंय- तोंका अल्पबहुत्व ३२८	३२८
			७५	संयतासंयतोंका अल्पबहुत्व नहीं, है इस बातका स्पष्टीकरण ७६ संयतासंयत और असंयत- सम्यग्दृष्टि जीवोंका सम्यक्त्व- सम्बन्धी अल्पबहुत्व ३२८-३२९	३२९
			७७	९ दर्शनमार्गणा चतुर्दर्शनी, अचतुर्दर्शनी, अवधिदर्शनी और केवल- अल्पबहुत्व ३२९	३२९



## पटुखंडागमकी प्रस्तावना

( ५९ )

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
७८	दर्शनी जीवोंका पृथक् पृथक् अल्पवहुत्व १० लेश्यमार्गणा	३२१ ३३२-३३९	१	गुणस्थानोंमें एक ही पद होनेके कारण सम्यक्त्व-सम्बन्धी अल्पवहुत्व नहीं है, इस बातका स्पष्टीकरण	३४२
७९	आदिके चार गुणस्थानवर्ती कृष्ण, नील और कापोत-लेश्यावाले जीवोंका अल्प-यहुत्व	३३२	८९	असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्पवहुत्व	३४२-३४३
८०	असंयतसम्यग्दृष्टि गुण-स्थानमें उक्त जीवोंका सम्य-कत्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व	३३२-३३३	९०	उक्त जीवोंके सम्यक्त्व-सम्बन्धी अल्पवहुत्वके अभावका निरूपण	३४३
८१	आदिके सात गुणस्थानवर्ती तेज और पञ्चलेश्यावाले जीवोंका पृथक् पृथक् अल्प-यहुत्व	३३३-३३५	९१	असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर उपशांतकपाय गुणस्थान तक उपशामसम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्पवहुत्व	३४४
८२	असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानोंमें उक्त जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व	३३५	९२	उक्त जीवोंके सम्यक्त्वसंबन्धी अल्पवहुत्वके अभावका स्पष्टी-करण	३४५
८३	सिध्यादृष्टि आदि तेरह गुण-स्थानवर्ती शुक्लेश्यावाले जीवोंका अल्पवहुत्व	३३६-३३८	९३	सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्य-मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंके अल्पवहुत्वका अभाव-प्रदर्शन	३४५
८४	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्था-नसे लेकर दसवें गुणस्थान तक शुक्लेश्यावाले जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व	३३९-३३९	९४	आदिके चारह गुणस्थानवर्ती संबंधी जीवोंका अल्पवहुत्व	३४५
८५	सर्वगुणस्थानवर्ती भव्य जीवोंका अल्पवहुत्व	३३९-३४०	९५	असंक्षी जीवोंके अल्पवहुत्वका अभाव-निरूपण	३४६
८६	भव्य जीवोंका अल्पवहुत्व	३४०	९६	आहारमार्गणा	३४६-३५०
८७	अभव्य जीवोंका अल्पवहुत्व	३४०-३४५	९७	आदिके तेरह गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंका अल्पवहुत्व	३४६-३४७
८८	सामान्य सम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्पवहुत्व	३४०	९८	चौथेसे दसवें गुणस्थान तक आहारक जीवोंका सम्यक्त्व-सम्बन्धी अल्पवहुत्व	३४८
८९	चौथे गुणस्थानसे लेकर चौद-हवें गुणस्थान तक क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्प-यहुत्व	३४०-३४२	९९	अनाहारक जीवोंका अल्प-वहुत्व	३४८-३४९
९०	असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार		१००	असंयतसम्यग्दृष्टि गुण-स्थानमें अनाहारक जीवोंका सम्यक्त्वसंबन्धी अल्पवहुत्व	३४९-३५०

## शुद्धिपत्र

१९२०-२१

( पुस्तक ४ )

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८	५	गामपत्तिङ्गुणं	गाम पत्तिङ्गुणं
"	२०	जिनको ऋद्धि प्राप्त हुई है,	जिनको ऋद्धि प्राप्त हुई है,
४१	२९	विष्कम और आयामसे ...	घनलोक, ऊर्ध्वलोक और अवोलोक, इन तीनों लोकोंके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमे विष्कम और आयामसे एक राजुप्रमाण ही तिर्यलोक है,
७०	२८	तिर्यच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि	तिर्यच मिथ्यादृष्टि
७२	१२	तिर्यच पर्याप्त जीव	तिर्यच जीव
"	१३	"	"
७४	१३	मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और योनिमती मिथ्यादृष्टि मनुष्य	मिथ्यादृष्टि मनुष्य
"	२२	"	"
८५	२२	खंडित करके उसका....उतनी राशि	खंडित करके जो लब्ध आवे उसके अस-ख्यातवें अथवा संख्यातवें भाग राशि देखा जाता है। इस प्रकारका स्वस्थानपद अयोगिकेवलीमे नहीं पाया जाता, क्योंकि, क्षीणमोही
१२१	१३	देखा जाता है, ( न कि यथा-र्थतः ) ... किन्तु क्षीणमोही	उसहो अजिओ यह अजित है, प्रमाणसे किन्तु वे एकेन्द्रियोंमे न कि वे अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न
१४२	२	उसहो अजीवो	उसहो अजिओ
"	१३	यह अजीव है,	यह अजित है,
१४७	६	प्रमाणसे	प्रमाणसे
१६३	१६	किन्तु वे उस गुणस्थानमें	किन्तु वे एकेन्द्रियोंमें
"	१७	न कि वे	न कि वे अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टि जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न

पृष्ठ	श्लोक	अर्थ
१८२	२३ चादिए ।	चाहिए । (किन्तु सम्यग्भिष्यादृष्टि गुणस्थानमें मरण नहीं होता है ।)
१९१	१० और अधस्तन चार पृथिवियों-सम्बन्धी चार	और सातवीं पृथिवीसम्बन्धी अधस्तन चार
२६२	७ मारणंतिय ( उचवाद्- ) परिणदेहि	मारणंतियपरिणदेहि
"	२२ मारणात्तिरुससुद्धात और उप-पादपदपरिणत	मारणात्तिरुससुद्धात-पदपरिणत
२६९	१३ वैक्रियिक्किमिश्चक्राययोगी जीवोंका	असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका
२७३	२१ नारिकियोंमे ....सासादन-सम्यग्दृष्टि	नारिकियोंमे तिर्यंचों और मनुष्योंमें मारणात्तिरुससुद्धात करनेवाले स्त्री और पुरुष-वेदी सासादनसम्यग्दृष्टि
३६९	१५ लज्जयय्यास-कोमें	अपर्याप्तकोमें
"	१६ लज्जयय्यास	अपर्याप्त
४१०	१७ अर्थात् उनमें पुन वापिस आनेसे,	अर्थात् अपने विभक्तित गुणस्थानको छोड़कर नवीन गुणस्थानमें जानेसे,
४१७	३ परियेट्टेपुण्णंसु	-परियेट्टेपुण्णंसु
"	१५ शेष रहने पर	पूर्ण होने पर
४२२	२२ उदयमें आये हैं	उपजित क्रिये हैं
४४५	५ -णिरयगदीरण	-णिरयगदीरण
"	६ मणुसगदीरण	मणुसगदीरण
"	७ तिरिस्खगर्इरण	तिरिस्खगर्इरण
"	८ देवगदीरण	देवगदीरण
"	१९, २०, २२, २४ उपपन्न	नहीं उपपन्न
४६४	२४ अन्तर्मुहूर्तसे . ....काल	अन्तर्मुहूर्तसे अधिक अट्टारि सागरोपम काल
"	२५ अट्टारि सागरोपमकालके आदि	विभक्तित पर्यायके आदि
४६८	१२ वर्धमान	शुंका-वर्धमान
"	१७ शुंका-तेज	तेज
४७७	१७ सादि-सात्त	सादि

२	१६ अन्तरूप.....आगमको	अन्तरको प्रतिपादक द्रव्यरूप आगमको
"	२८ वर्तमानमें इस समय	वर्तमानमें अन्य पदार्थके
७	९ सासाण-	सांसारण-
१०	१४ कालमें... रहने पर	कालके स्थानमें अन्तर्मुहूर्तके द्वारा
१२	८ गमिद्सम्मत्त	गमिद्सम्मत्त
१४	१७ असयतादि	प्रमत्तादि
१८	४ वासपुथत्ते	वासपुथत्ते
१९	१० वेदगसम्मत्तमुवणसिय	वेदगसम्मत्तमुवणसिय
"	२७ प्राप्त कर	उपशामित कर अर्थात् द्वितीयोपशमसम्य-नत्वको प्राप्त कर
५६	२२ यह तो राशियोंका	यह तो इस राशिका
५९	२१, २२ उक्कट अन्तर	जघन्य अन्तर
७१	१९ आयुके	उसके
७७	२६ गतिकी	इन्द्रियकी
९७	७ देवेसु	देवीसु
"	२२ देवोंमें	देवियोंमें
१०६	२१ अन्तरसे अधिक अन्तरका	अन्तरका
१९८	९ उक्कसेण	उक्कसेण
११७	१९ तीनों ज्ञानवाले	मति-श्रुतज्ञानवाले
१२१	१ अंतर्बन्धंतरा दो	अंतर्बन्धंतरा दो
"	१५ अप्रमत्तसयतका काल	अप्रमत्तसयतके दो काल
"	२४ तीनों ज्ञानवाले	मति-श्रुतज्ञानवाले
१५७	५ -पमत्तसंजदाण-	-पमत्तसंजद-अणमत्तसंजदाण-
"	१८ और प्रमत्तसयत	प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत
१५८	१६ (श्रेण्यारोहण करता हुआ) सिद्ध	सिद्ध
"	२२ ( गुणस्थान और आयुके )	आयुके कालक्षयसे
		कालक्षयसे

पृष्ठ	पंक्ति	श्लोक	शुद्ध
१७०	२१	जाना जाता है कि ... .. अन्तर रहित है ।	जाना जाता है कि उपशमश्रेणीके समारोहण योग्य कालसे शेष उपशमसम्यक्त्वका काल अल्प है ।
१८६	२	धम्मभावो ।	धम्मभावो य ।
१९८	२८-२९	अवयवीरूप . अंश	अवयवीरूप सम्यक्त्वगुणका तो निराकरण रहता है, किन्तु सम्यक्त्वगुणका अवयव- रूप अंश
२०४	१०	संखेज्जाणंत-	असंखेज्जाणंत-
२२४	१९	दयाधर्मसे .. हुए	दयाधर्मको जाननेवाले ज्ञानियोंमें वर्तमान
"	२१	क्योंकि, आप्त.... ययार्थ	क्योंकि, दयाधर्मके ज्ञाताओंमें भी आप्त, आगम और पदार्थके श्रद्धानसे रहित जीवके ययार्थ
२२५	९	सजोगिकेवली	सजोगिकेवली ( अजोगिकेवली )
२२६	२८	पारिणामिकभावकी	भव्यत्वभावकी
२३८	१६	कार्मणकाययोगियोंमें	कार्मणकाययोगियोंसे
"	१७	कार्मणकाययोगी	अनाहारक
२४६	८	पुथसत्तारंभो	पुथसुत्तारंभो
३६४	५	भेतो-	भेतो-
२५५	१६	प्रमाणराशिसे .. भाजित	फलराशिसे इच्छाराशिको गुणित करके प्रमाणराशिसे भाजित
२७५	२८	सासादनसम्यग्दृष्टि जीव ... .	सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सयतासयत मनुष्य- नियोंसे संख्यातगुणित
२८६	२९	असल्यातत्तं	सख्यातत्तं



मोक्षोत्पन्नं पयश्चो । इवन्तरं दुविहं सवभावात्सभावभेदेण । भरह-नाहुवलीणमंतर-  
मुवेल्लतो गदो सवभावद्वयन्तरं । अंतरमिदि बुद्धीय संकल्पिय दंड-कंड-कोदंडादओ  
असवभावद्वयन्तरं । दवन्तरं दुविहं आगम-गोआगमभेदेण । अंतरपाहुडजाणओ अणुवजुओ  
अंतरदव्यागमो वा आगमदवन्तरं । गोआगमदवन्तरं जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरित्तभेदेण  
तिविहं । आधारे आधेयोवयरेण लद्धंतरसण्णं जाणुगसरीरं भविय-नद्धमाण-समुज्झाद-  
भेदेण तिविहं । कधं भवियस्स अणाहारदाए द्दिदस्स अंतरववएसो ? ण एस दोसो,  
कूपजयाणाहारोसु वि तंदुलेसु एत्थ कूरववएसुवलंभा । कधं भूदे एसो ववहारो ? ण,  
रज्जपजायअणाहारो वि पुरिसे राओ आगच्छदि चि ववहारवलंभा । भवियणोआगम-  
दवन्तरं भविससकाले अंतरपाहुडजाणओ संपहि संते वि उवजोए अंतरपाहुडअवगम-

यह शब्द नाम-अन्तरनिक्षेप है । स्थापना अन्तर सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारका  
है । भरत और वाहुबलिके बीच उमड़ता हुआ नद सद्भावस्थापना अन्तर है । अन्तर इस  
प्रकारकी बुद्धिसे संकल्प करके दंड, वाण, धनुष आदिक असद्भावस्थापना अन्तर है,  
अर्थात् दंड, वाणादिके न होते हुए भी तत्प्रमाण क्षेत्रवर्ती अन्तरकी, यह अंतर इतने धनुष  
है ऐसी जो कल्पना कर लेते हैं, उसे असद्भावस्थापना अन्तर कहते हैं ।

द्वयान्तर आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है । अन्तर विययक प्राभृतके  
शायक तथा वर्तमानमें अनुपयुक्त पुरुषको आगमद्वयान्तर कहते हैं । अथवा, अन्तररूप-  
द्रव्यके प्रतिपादक आगमको आगमद्वयान्तर कहते हैं । नोआगमद्वयान्तर शायकशरीर,  
भव्य और तद्व्यतिक्रमेके भेदसे तीन प्रकारका है । आधारमें आधेयके उपचारसे प्राप्त हुई  
है अन्तरसंज्ञा जिसको ऐसा शायकशरीर भव्य, वर्तमान और समुत्पत्तिके भेदसे तीन  
प्रकारका है ।

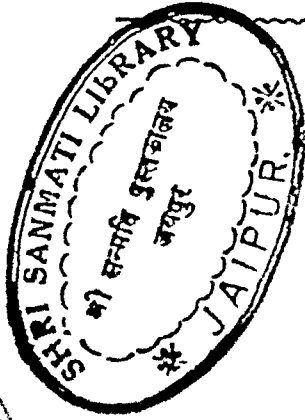
शंका—अनाधारतासे स्थित, अर्थात् वर्तमानमें जो अन्तरागमका आधार नहीं है  
ऐसे, भावी शरीरके 'अन्तर' इस संज्ञाका व्यवहार कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, कूर (भात) रूप पर्यायके आधार न  
होने पर भी तंडुलोंमें यहां, अर्थात् व्यवहारमें, कूर संज्ञा पाई जाती है ।

शंका—भूत शायकशरीरके यह अन्तरका व्यवहार कैसे वनेगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, राज्यपर्यायिके नहीं धारण करनेवाले पुरुषमें भी 'राजा  
आता है' इस प्रकारका व्यवहार पाया जाता है ।

भवियकालमें जो अन्तरशास्त्रका शायक होगा, परंतु वर्तमानमें इस समय उपयोगके  
होते हुए भी अन्तरशास्त्रके ज्ञानसे रहित है, ऐसे पुरुषको भव्य नोआगमद्वयान्तर  
कहते हैं ।



सिरि-भगवंत-पुण्डरंत-भूदवलि-पणीदो

## छवखंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तस्स

पढमखंडे जीवट्टाणे

## अंतराणुगमो

अंताइमज्झहीणं दसद्धसयचावदीहिरं पढमजिणं ।  
वोच्छं णमिज्जांतरमणंतरुंगसण्हमइदुग्गेज्झं ॥

अंतराणुगमेण दुविहो गिदिसो, ओधेण आदेसेण यं ॥ १ ॥

णाम-द्वयणा-दव्य-वेत्त-काल-भावभेदेण छविहसंतरं । तस्य णामंतरसहो वज्झत्ये

आदि, मध्य और अन्तसे रहित अतएव अनन्तर, अर्थात् अनन्तज्ञानस्वरूप, और  
वरायतके आधे अर्थात् पाच सो धनुष उचाईवाले अतएव उत्तुंग, तथापि ज्ञान की अपेक्षा  
सस्स, अतएव अतिदुर्गोण, ऐसे प्रथम लिन श्री द्युभनायको नमस्कार करके अन्त-  
राणुगोद्वारको कात्ता हं, जिसमें अनन्तर अर्थात् अन्तर रहित गुणस्थानों व मार्गीणा-  
स्थानोंका भी वर्णन है, तथा जिसमें उत्तुंग अर्थात् दीर्घकालात्मक व सूक्ष्म अर्थात् अत्यल्प-  
कालात्मक अन्तरोंका भी ज्ञान है, अतएव जो मतिज्ञान द्वारा दुर्गोण्य है ।

अन्तराणुगमसे निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥ १ ॥

नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे अन्तर छह प्रकारका होता है ।  
उनमें बाह्य अर्थको छोड़कर अपने आपमें अर्थात् स्ववाचकतामें प्रवृत्त होनेवाला 'अन्तर'

१ भिवसितस्य गुण्य ज्ञानात्मकमे सति पुनस्तत्प्राप्तेः प्राप्त्ययमन्तए । तत् द्विविधम्, सामान्येन  
विशेषेण च । स. नि. १, ८.

रहिओ । तन्वदिरिचद्वन्तरं तिविहं सचिचिचि-मिस्सभेण । तत्थ सचिचंतरं उसह-संभवाणं मज्जे द्विओ अजिओ' । अचिचतन्वदिरिचद्वन्तरं णाम धणोअहि-तणु-वादानं मज्जे द्विओ घणणिलो । मिस्संतरं जहा उजंत-संजयाणं विचालाद्धिगाम-णगराहं । सेत्त-कालंतराणि द्वन्तरे पविट्ठाणि, छद्वन्वदिरिचखेत्त-कालाणमभावा । भावंतरं दुविहं आगम-णोआगमभेएण । अंतरपाहुजजाणओ उवञ्जुतो भावागमो वा आगम-भावंतरं । णोआगमभावंतरं णाम ओदइयादी पंच भावा देणहं भावाणमंतरे द्विडा ।

एत्थ केण अंतरेण पयदं ? णोआगमदो भावंतरेण । तत्थ पि अजीवभावंतरं सोत्तूण जीवभावंतरे पयदं, अजीवभावंतरेण इह पओजणाभावा । अंतरमुच्छेदो विरहो परिणामंतरगमणं णत्थित्तगमणं अण्णभावव्वह्वाणमिदि एयडो । एदस्स अंतरस्स अणु-गमो अंतराणुगमो । तेण अंतराणुगमेण दुविहो गिहिसो दव्वद्विय-पज्जविट्ठियणयावलंघणेण । तिविहो गिहिसो किण्ण' होज्ज ? ण, तइज्जस्स णयस्स अभावा । तं पि कथं णव्वदे ?

तद्व्यतिरिक्त द्रव्यान्तर सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका है । उनमेंसे द्रुपभ जिन और सम्व जिनके मध्यमें स्थित अजित जिन सचित्त तद्-व्यतिरिक्त द्रव्यान्तरके उदाहरण हैं । धनोदधि और तडुवातके मध्यमें स्थित घनवात अचित्त तद्व्यतिरिक्त द्रव्यान्तर है । ऊर्जयन्त और शत्रुजयके मध्यमें स्थित ग्राम नगरादिक मिश्र तद्व्यतिरिक्त द्रव्यान्तर हैं । श्रेत्रान्तर और कालान्तर, ये दोनों ही द्रव्यान्तरमें प्रविष्ट हो जाते हैं, क्योंकि, छह द्रव्योंसे व्यतिरिक्त क्षेत्र और कालका अभाव है ।

भावान्तर आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है । अन्तरशाखके शायक और उपयुक्त पुरुषको आगमभावान्तर कहते हैं, अथवा भावरूप अन्तर आगमको आगमभावान्तर कहते हैं । औदयिक आदि पाच भावोंमेंसे किन्हीं दो भावोंके मध्यमें स्थित विवक्षित भावको नोआगम भावान्तर कहते हैं ।

शंका—यहां पर किस प्रकारके अन्तरसे प्रयोजन है ?

समाधान—नोआगमभावान्तरसे प्रयोजन है । उसमें भी अजीवभावान्तरको छोड़कर जीवभावान्तर प्रकृत है, क्योंकि, यहां पर अजीवभावान्तरसे कोई प्रयोजन नहीं है । अन्तर, उच्छेद, विरह, परिणामान्तरगमन, नास्तित्वगमन और अन्यभावव्यव-धान, ये सब एकार्थवाची नाम हैं । इस प्रकारके अन्तरके अनुगमको अन्तरानुगम कहते हैं । उस अन्तरानुगमसे दो प्रकारका निर्देश है, क्योंकि, वह निर्देश द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयका अवलंघन करनेवाला है ।

शंका—तीन प्रकारका निर्देश क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तीसरे प्रकारका कोई नय ही नहीं है ।

शंका—यह भी कैसे जाना ?

१ प्रतिपु 'अजीओ' मप्रतो 'अजीओ' इति पाठः ।

२ प्रतिपु 'पुणोपरि' इति पाठः ।

३ प्रतिपु 'किण्' इति पाठः ।

संगहासंगहवदिरिचतविस्सयाणुवलंभा । एवं मणम्मि काऊण ओधेणोदेसेण थेत्ति' उत्तं । एकेण गिहिसेण पज्जत्तमिदि चे ण, एकेण दुणयावलंजीवाणसुवयारकरणे उवायाभावा । ओधेण मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २ ॥

'जहा उद्वेसो तथा गिहिसो' चि णायसंभालुहं ओधेणेत्ति उत्तं । सेसयुणहुण-उदासडो मिच्छादिट्ठीणिसो । केवचिरं कालादो इदि पुच्छा एदस्स पमाणत्तपदुप्पायण-फला । णाणाजीवमिदि बहुस्सु एयत्रयणगिहिसो कथं वडदे ? णाणाजीवद्वियसामण्ण-विगमखाए वहुणं पि एगत्तविरोहाभावा । णत्थि अंतरं मिच्छत्तपज्जयपरिणदजीवाणं तिसु वि कालेसु वोच्छेदो विरहो अभावो' णत्थि चि उत्तं होदि । अंतरस्स पडिसेहे क्रुदे सो पडिसेहो तुच्छो ण होदि चि जाणावणहं गिरंतरगहणं, विहिरूवेण पडिसेहादो वदिरिचिण

समाधान—क्योंकि, संग्रह ( सामान्य ) और असंग्रह ( विशेष ) को छोड़कर किसी अन्य नयका विषयभूत कोई पदार्थ नहीं पाया जाता है ।

इस उक्त प्रकारके शंका-समाधानको मचमे धारण करके सूत्रकारने 'ओघसे और आदेशसे' ऐसा पद कहा है ।

शंका—एक ही निर्देश करना पर्याप्त था ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, एक निर्देशसे दोनों नयोंके अवलम्बन करनेवाले जीवोंके उपकार करनेमें उपायका अभाव है ।

ओघसे मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरंतर है ॥ २ ॥

'जैसा उदेश होता है, वैसा निर्देश होता है' इस न्यायके रक्षणार्थ 'ओघसे' यह पद कहा । मिथ्यादृष्टि पदका निर्देश शेष गुणस्थानोंके प्रतिपेधके लिए है । 'कितने काल होता है' इस पृच्छाका फल इस सूत्रकी प्रमाणताका प्रतिपादन करना है ।

शंका—'णाण जीवं' इस प्रकारका यह एक वचनका निर्देश बहुतसे जीवोंमें कैसे घटित होता है ?

समाधान—नाना जीवोंमें स्थित सामान्यकी विवक्षासे बहुतोंके लिए भी एक-वचनके प्रयोगमें विरोध नहीं आता ।

'अन्तर नहीं है' अर्थात् मिथ्यात्वपर्यायसे परिणत जीवोंका तीनों ही कालोंमें व्युच्छेद, विरह या अभाव नहीं होता है, यह अर्थ कहा गया समझना चाहिए । अन्तरके प्रतिपेध करने पर वह प्रतिपेध तुच्छ अभावरूप नहीं होता है, किन्तु भावान्तरभावरूप होता है, इस बातके जतलातेके लिए 'निरन्तर' पदका ग्रहण किया है । प्रतिपेधसे

१ प्रतिपु 'पुत्ति' इति पाठः ।

२ सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवपेक्षया नास्त्यन्तरम् । स मि ' २, ८

३ प्रतिपु 'अमाना' इति पाठः ।

मिच्छादिद्रिणो मव्यकालमच्छति ति उचं होदि । अथवा पञ्चद्विधययात्रलंविज्जीवाणु-  
गदण्डं गल्लि अंतरमिदि पडियेहवयणं, दव्यद्विधययात्रलंविज्जीवाणुगदण्डं गिरंतरमिदि  
मिहियणं । एवो अत्यो उचरि सवत्य वत्तवो ।

### एगजीवं पडुच जहणेण अंतोमुहत्तं ॥ ३ ॥

तं जत्रा- एवो मिच्छादिद्वी सम्मामिच्छत्त-सम्मत्त-संजमासंजम-संजमेसु बहुसो  
परियद्विदो, परिणामपचाण मम्मत्तं गदो, सवल्हमंतोमुहत्तं सम्मत्तेण अच्छिय  
मिच्छत्तं गदो, लद्वमंतोमुहत्तं सवजहणं मिच्छत्तं । एत्थ चोदगो भणदि- जं पढ-  
मिह्मिणं मिच्छत्तं तं पुणो सम्मत्तुत्तरकाले ण होदि, पुव्वकाले वडंतस्स उत्तरकाले  
पडचित्तिरोहा । ण न तं चे उत्तरकाले उपपज्जइ, उपपणास्स उपपत्तिविरोहा । तदो  
अतिठं मिच्छत्तं पढमिह्मिणं होदि ति अंतरस्स अभावो चेयेत्ति ? एत्थ परिहारो उचदे-  
सवमेममं जदि सुदो पज्जयणयो अवलंबिज्जदि । किंतु णइगमणयमवलंबिय अंतर-  
अतिरिक्त षट्तेक कारण विधिरूपसे मिथ्यादृष्टि जीव सर्व काल रहते हैं, यह अर्थ कहा  
गया है । अथवा, पर्यायाधिक नयका अवलम्बन करनेवाले जीवोंके अनुग्रहके लिए  
'अन्तर नहीं है' इस प्रकारका प्रतिरोधवचन और द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करने-  
वाले जीवोंके अनुग्रहके लिये 'तिल्लर' इस प्रकारका विधिपरक वचन कहा गया है ।  
यह अर्थ आगेके सभी सूत्रोंमें भी कहना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर्काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३ ॥

जैसे-एक मिथ्यादृष्टि जीव, सम्यग्मिथ्यात्व, अधिरतसम्यक्त्व, संयमासंयम और  
गाममं गतुत्तार परिवर्तित होता हुआ परिणामोके निमित्तसे सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ,  
और वहा पर सर्वत्र्यु अन्तर्मुहूर्तकाल तक सम्यक्त्वके साथ रह कर मिथ्यात्वको प्राप्त  
गुना । इन प्रकारसे सर्वत्रयन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण मिथ्यात्व गुणस्थानका अन्तर प्राप्त  
हो गया ।

अंज्ञा-यहां पर शंकाकार महता है कि अन्तर करनेके पूर्व जो पहलेका  
मिथ्यात्व था, वही पुनः सम्यक्त्वके उत्तरकालमें नहीं होता है, क्योंकि, सम्यक्त्व  
प्राप्तिके पूर्वकालमें वर्तमान मिथ्यात्वकी उत्तरकालमें, अर्थात् सम्यक्त्व छोड़नेके पश्चात्,  
प्रवृत्ति होनेका निरोध है । तथा, वही मिथ्यात्व उत्तरकालमें भी उत्पन्न नहीं होता है,  
क्योंकि, उत्पन्न हुई वस्तुके पुनः उत्पन्न होनेका विरोध है । इसलिए सम्यक्त्व छूटनेके  
पश्चात् होनेवाला अन्तिम मिथ्यात्व पहलेका मिथ्यात्व नहीं हो सकता है, इससे  
अन्तरना अभाव ही सिार होता है ?

समाधान-यहां उक्त शंकाका परिहार करते हैं-उक्त कथन सत्य ही है, यदि  
शुन पर्यायाधिक नयका अवलंबन किया जाय । किंतु नैगमनयका अवलंबन लेकर अन्तर-

१ एव्वोति प्रति जण्येत्तान्तर्मुहूर्तं । स ति, १, ८.

२ मतिपु न प्रतिपु च 'पदमभिच्चमिण' इति पाठ ।

परूवणा कीरदे, तस्स सामणविसेसुहयविसयचादो । तदो ण एस दोसो । तं जहा- पडमंतिम-  
मिच्छत्तं पज्जाया अभिण्णा, मिच्छत्तकम्मोदयजादत्तेण अचागमं-पदस्थानमसहणेण  
एगजीवाहारत्तेण भेदाभावा । ण पुव्वुत्तरकालभेयेण ताणं भेयो, तथा विवत्तवाभावा ।  
तमहा पुव्वुत्तरद्वालु अच्छिण्णसरूवेण हिदमिच्छत्तस्स सामण्णावलंबणेण एकत्तं पचस्स  
सम्मत्तपज्जओ अंतरं होदि । एस अत्यो सवत्य पडज्जिदव्वो ।

### उवकस्सेण वे छावट्टिसागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ४ ॥

एदस्स णिदिरसणं- एको तिरिक्खो मणुस्सो वा लंतय-काविट्ठरूपवापियिदेवेषु  
चोदससागरोवमाउट्टिदिएसु उपपणो । एकं सागरोवमं गमिय विदियसागरोवमादिसमए  
सम्मत्तं पडिवणो । तेससागरोवमाणि तत्थ अच्छिय सम्मत्तेण सह बुदो मणुसो जादो ।  
तत्थ संजमं संजमासंजमं वा अणुणालिय मणुसाउएण्णवात्रीससागरोवमाउट्टिदिएसु  
आरण्चुददेवेषु उववणो । तत्तो बुदो मणुसो जादो । तत्थ संजममणुणालिय उचरिसगोवजे

प्ररूपणा की जा रही है, क्योंकि, वह नैगमनय सामान्य तथा विशेष, इन दोनोंको वियय  
करता है, इसलिये यह कोई दोष नहीं है । उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है-अतरकालके  
पहलेका मिथ्यात्व और पहिलेका मिथ्यात्व, ये दोनों पर्याय हैं, जो कि अभिन्न हैं, क्योंकि,  
मिथ्यात्वकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण, आत, आगम और पदार्थोंके अश्रद्धानकी अपेक्षा,  
तथा एक ही जीव द्रव्यके आधार होनेसे उनमें कोई भेद नहीं है । और न पूर्वकाल तथा  
उत्तरकालके भेदकी अपेक्षा भी उन दोनों पर्यायोंमें भेद है, क्योंकि, इस कालभेदकी यहाँ  
विवक्षा नहीं की गई है । इसलिए अन्तरके पहले और पहिलेके कालमें अविच्छिन्न स्वरूपसे  
स्थित और सामान्य (द्रव्यार्थिकनय) के अवलम्बनसे एकरत्तको प्राप्त मिथ्यात्वका  
सम्यक्त्व पर्याय अन्तर होता है, यह सिद्ध हुआ । यही अर्थ आगे सर्वत्र योजित कर  
लेना चाहिए ।

मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरोपम काल है ॥ ४ ॥

इसका दृष्टान्त-कोई एक तिर्यच अथवा मनुष्य चोदह सागरोपम आशुस्थिति-  
वाले लांतव-कापिट्ट कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहा एक सागरोपम काल चिता कर  
दूसरे सागरोपमके आदि समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । तेरह सागरोपम काल वहाँ  
पर रहकर सम्यक्त्वके साथ ही च्युत हुआ और मनुष्य होगया । उस मनुष्यभ्रममें  
संयमको, अथवा संयमासंयमको अनुपालन कर इस मनुष्यभ्रमवस्यन्धी आयुसे कम  
घाईस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले आरण-अच्युतकत्पके देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहासे  
च्युत होकर पुनः मनुष्य हुआ । इस मनुष्यभ्रममें संयमको अनुपालन कर उपरिम

१ त्रतिपु 'अत्यागम' इति पाठ ।

२ उत्तर्येण द्वे पट्ठणी देशीने सागरोपमाणाम् । स. ति. १, ८.

देवसु मधुसाउणेणएकत्तीससागरोवमाउद्धिदिएसु उववण्णो । अंतोसुहुत्तूणछावडि-  
सागरोवमचरिमसमए परिणामपच्चएण सम्मामिच्छत्तं गदो । तत्थ अंतोसुहुत्तमच्छिय  
पुणो सम्मत्तं पडिबज्जिय विस्समिय चुदो मणुसो जादो । तत्थ संजं संजमांसंजं वा  
अणुपालिय मणुसाउएण्णवीससागरोवमाउद्धिदिएसुवज्जिय पुणो जहाकमेण मणुसाउ-  
वेण्णवावीस-चउवीससागरोवमाउद्धिदिएसु देवेसुवज्जिय अंतोसुहुत्तूणवेछावडिसागरो-  
वमचरिमसमए मिच्छत्तं गदो । लद्धमंतं अंतोसुहुत्तूणवेछावडिसागरोवमाणि । एसो  
उप्पत्तिकमो अउप्पणउप्पायणइं उचो । परसत्थदो पुण जेण केण वि पयारेण छावड्डी  
पूरेदव्वा ।

**सासाणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ५ ॥**

तं जहा, सासाणसम्मादिट्ठिस्स ताव उच्चदे-दो जीवमादि काज्जण एगुत्तरकमेण  
पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवियप्पेण उवसससम्मादिट्ठिणो उवसससम्मत्तद्धाए  
एगसमयमादि काज्जण जाव छावलियावसेसाए आसाणं गदा । तेचियं पि कालं सासाण-  
अवेयकमं मनुष्य आयुसे कम इत्तनीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले अहमिन्द देवोंमें  
उत्पन्न हुआ । वहां पर अन्तर्मुहूर्त कम छयासठ सागरोपम कालके चरम समयमें परि-  
णामोंके निमित्तसे सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । उस सम्यग्मिथ्यात्वमें अन्तर्मुहूर्त काल  
रहकर पुन' सम्यक्त्वको प्राप्त होकर, विश्राम ले, च्युत हो, मनुष्य हो गया । उस मनुष्य-  
भयमें सयमको अथवा सयमांसयमको परिपालन कर, इस मनुष्यभवसम्बन्धी आयुसे  
कम वीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले आनत-प्राणत कल्पोंके देवोंमें उत्पन्न होकर  
पुनः यथाक्रमसे मनुष्यायुसे कम वाईस और चौबीस सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें  
उत्पन्न होकर, अन्तर्मुहूर्त कम दो छयासठ सागरोपम कालके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वको  
प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्त कम दो छयासठ सागरोपम कालप्रमाण अन्तर प्राप्त  
हुआ । यह ऊपर बताया गया उत्पत्तिका क्रम अत्युत्पन्न जनोंके समझानेके लिए कहा है ।  
परमार्थसे तो जिस किसी भी प्रकारसे छयासठ सागरोपम काल पूरा किया जा  
सकता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता  
है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होता है ॥ ५ ॥

जैसे, पहले सासादनसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं—दो जीवोंको आदि करके  
एक एक अधिकके क्रमसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र विकल्पसे उपशमसम्यग्दृष्टि  
जीव, उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समयको आदि करके अधिकसे अधिक छह आवली  
कालके अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए । जितना काल अवशेष

१ सासादनसम्यग्दृष्टेत्तर नानाजीवपेक्षा जघन्यैक समन । × × × सम्यग्मिथ्यादृष्टेत्तर नाना-  
जीवपेक्षा सामादनन्तर । स भि. १, ८

गुणेण अच्छिय सव्वे मिच्छत्तं गदा । तिसु वि लोगेसु सासाणामेगसमए अभावो जादो ।  
पुणो विदियसमए सत्तद्ध जणा आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता पलिदोवमस्स असंखे-  
ज्जदिभागमेत्ता वा उवसससम्मादिट्ठिणो आसाणं गदा । लद्धमंतरमेगसमओ ।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे-सत्तद्ध जणा बहुआ वा सम्मामिच्छादिट्ठिणो गाणा-  
जीवगदसम्मामिच्छत्तद्धाखएण सम्मत्तं मिच्छत्तं वा सव्वे पडिबण्णा । तिसु वि लोगेसु  
सम्मामिच्छादिट्ठिणो एगसमयमभावीभूदा । अणंतरसमए मिच्छादृष्टिणो सम्मादिट्ठिणो वा  
सत्तद्ध जणा बहुआ वा सम्मामिच्छत्तं पडिबण्णा । लद्धमंतरमेगसमओ ।

**उपकरसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६ ॥**

णिदरिसणं सासाणसम्मादिट्ठिस्स ताव उच्चदे-सत्तद्ध जणा बहुआ वा उवसम-  
सम्मादिट्ठिणो आसाणं गदा । तेहि आसाणेहि आय-व्यवसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-  
भागमेत्तकालं सासाणगुणप्पवाहो अविच्छिण्णो कदो । पुणो अणंतरसमए सव्वे मिच्छत्तं

रहने पर उपशमसम्यक्त्वको छोड़ा था, उतने ही कालप्रमाण सासादन गुणस्थानमें रह  
कर वे सब जीव मिथ्यात्वको प्राप्त हुए, और तीनों ही लोकोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंका  
एक समयके लिए अभाव हो गया । पुनः द्वितीय समयमें अन्य सात आठ जीव, अथवा  
आवलीके असंख्यातवें भागमात्र जीव, अथवा पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण उपशम-  
सम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए । इस प्रकार सासादन गुणस्थानका  
एक समयरूप जघन्य अन्तर प्राप्त हो गया ।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जघन्य अन्तर कहते हैं—सात आठ जन,  
अथवा बहुतसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव, नाना जीवगत सम्यग्मिथ्यात्वसम्बन्धी कालके  
क्षयसे सम्यक्त्वको, अथवा मिथ्यात्वको सभीके सभी प्राप्त हुए और तीनों ही लोकोंमें  
सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव एक समयके लिए अभावरूप हो गये । पुनः अनन्तर समयमें ही  
मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्दृष्टि सात आठ जीव, अथवा बहुतसे जीव, सम्यग्मिथ्यात्वको  
प्राप्त हुए । इस प्रकारसे सम्यग्मिथ्यात्वका एक समयरूप जघन्य अन्तर प्राप्त हो गया ।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग  
है ॥ ६ ॥

उनमेंसे पहले सासादनसम्यग्दृष्टिका उदाहरण कहते हैं—सात आठ जन,  
अथवा बहुतसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए । उन सासादन-  
सम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा आय और व्ययके क्रमवशा पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र काल  
तक सासादन गुणस्थानका प्रवाह अविच्छिन्न चला । पुनः उसका काल समाप्त होनेपर  
दूसरे समयमें ही वे सभी जीव मिथ्यात्वको प्राप्त हुए, और पल्योपमके असंख्यातवें भाग-

१ उत्तर्येण पल्योपमात्तव्येयमागः । स भि. १, ८

गदा। पलिदोवमस्म असंखेज्जिभागमेत्तकालं सामणगुणद्वयमंतरिदं। तदो उक्कस्संतरस्स अणंतरममए मत्तइ जणा बहुआ वा उवसमसम्मदिद्विणो आसाणं गदा। लद्धमंतरं पलिदोवमस्म असंखेज्जिभागो।

मम्मामिच्छादिद्विस्म उच्चदे-णाणजीवगदसम्मामिच्छच्चद्वए उक्कस्संतरजोगाए अदिफ्फंताए मच्चे मम्मामिच्छादिद्विणो सम्मचं मिच्छचं वा पडिवण्णा। अंतरिदं सम्मामिच्छच्चगुणद्वयं। पुणो पलिदोवमस्म असंखेज्जिभागमेत्तउक्कस्संतरकालस्स अणंतरममए अट्ठासीसंतकम्मियमिच्छादिद्विणो वेदगसम्मामिद्विणो उवसमसम्मामिद्विणो वा सम्मामिच्छचं पडिवण्णा। लद्धमंतरं पलिदोवमस्म असंखेज्जिभागो।

**एगजीवं पडुच्च जहणणेण पलिदोवमस्म असंखेज्जिभागो, अंतोमुहुरं ॥ ७ ॥**

‘जहा उदसो तथा णिदसो’ ति णायदो सासणसम्मामिद्विस्स पढसं उच्चदे-एस्सो सासणसम्मामिद्वी उवसमसम्मत्तपच्छायदो केत्तियं पि कालमासाणगुणेणिच्छिय मिच्छचं गदो अंतोदिदो। पलिदोवमस्म असंखेज्जिभागमेत्तकालेण भूओ उवसमसम्मत्तं मात्र कालत्तकके लिए सासादन गुणस्थान अन्तरको प्राप्त हो गया। पुनः इस पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकालके अनन्तर समयमें ही सात आठ जन, अथवा ऋतुतमै उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए। इस प्रकारसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण सासादनका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो गया।

अन सम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कहते हैं- उत्कृष्ट अन्तरके योग्य, नाना जीवगत सम्यग्मिथ्यात्वकालके व्यतिक्रान्त होने पर, सभी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वको, अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त हुए। इस प्रकारसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान अन्तरको प्राप्त हुआ। पुनः पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उत्कृष्ट अन्तरकालके अनन्तर समयमें ही मोक्ष कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि, अथवा वेदकसम्यग्दृष्टि, अथवा उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुए। इस प्रकारसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो गया।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा जपन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहुरतै है ॥ ७ ॥

जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है, इसी न्यायसे सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानका अन्तर पहले कहते हैं- उपशम सम्यक्त्वसे पीछे लौटा हुआ कोई एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने ही काल तक सासादन गुणस्थानमें रहा और फिर मिथ्यात्वको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हुआ। पुनः पल्योपमके असंख्यातवें

१ एत्थीति प्रति जनयेन पल्योपमालयेममाग । X X X सम्यग्मिथ्यादृष्टे X X एत्थीति प्रति जपयेनात्तर्मुहुरं । स पि १, ८ २ प्रतिपु ‘आसाण गुणेण’ इति पाठ ।

पडिवज्जिय छात्रालियावसेसाए उवसमसम्मत्तद्वए आसाणं गदो। लद्धमंतरं पलिदोवमस्म असंखेज्जिभागो। अंतोमुहुरत्तकालेण आसाणं किण्ण णीदो? ण, उवसमसम्मत्तेण विणा आसाणगुणगहणाभावा। उवसमसम्मत्तं पि अंतोमुहुरत्तेण किण्ण पडिवज्जेदं? ण, उवसमसम्मामिद्वी मिच्छचं गंतूण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि उवेल्लमाणो तेसिमंतोकोडा-कोडीमेत्तद्विदिं घादिय सागरोवमादो सागरोवमपुथत्तादो वा जाव हेट्ठा ण करोदि ताव उवसमसम्मत्तगहणसंभवाभावा। ताणं द्विदीओ अंतोमुहुरत्तेण घादिय सागरोवमादो सागरोवमपुथत्तादो वा हेट्ठा किण्ण करोदि? ण, पलिदोवमस्म असंखेज्जिदिभागमेत्तायामेण अंतोमुहुरत्तकरीणकालेहि उवेल्लणखंडयहि घादिज्जभाणाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तद्विदीए पलिदोवमस्म असंखेज्जिदिभागमेत्तकालेण विणा सागरोवमस्म वा सागरोवमपुथत्तस्स वा हेट्ठा पदणंपुथत्तादो। सासणपच्छायदमिच्छाद्विद्वि संजमं गेण्हाविय दंसणतियमुवसामिय

भागमात्र कालसे उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर, उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली काल अवशेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हो गया। इस प्रकारसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तरकाल उपलब्ध हो गया।

शंका—पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालमें अन्तर्मुहुरतै काल शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त कराया?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वके विना सासादन गुणस्थानके ग्रहण करनेका अभाव है।

शंका—वही जीव उपशमसम्यक्त्वको भी अन्तर्मुहुरतैकालके पश्चात् ही क्यों नहीं प्राप्त होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर, सम्यक्त्वप्रकृति ओर सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना करता हुआ, उनकी अन्तःकोटा-कोटीप्रमाण स्थितिकी घात करके सागरोपमसे, अथवा सागरोपम पृथक्त्वसे जवत्तकनीचे नहीं करता है, तब तक उपशमसम्यक्त्वका ग्रहण करना ही संभव नहीं है।

शंका—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी स्थितिओंको अन्तर्मुहुरतै कालमें घात करके सागरोपमसे, अथवा सागरोपमपृथक्त्व कालसे नीचे क्यों नहीं करता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र आयामके द्वारा अन्तर्मुहुरतै उत्त्थीरणकालवाले उद्वेलनाकांडकोंसे घात कीजातेवाली सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी स्थितिका, पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालके विना सागरोपमके, अथवा सागरोपमपृथक्त्वके नीचे पतन नहीं हो सकता है।

शंका—सासादन गुणस्थानसे पीछे लौटते हुए मिथ्यादृष्टि जीवको संयम ग्रहण कराकर और दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका उपशमन कराकर, पुनः चारिअमोहका

१ प्रतिपु ‘पदेण’ इति पाठः ।



पुणो चरित्तमोहमुवसामेद्रूण हेडा ओयरिय आसाणं गदस्स अंतोमुहुत्तंरं किण्ण परूविदिं ? पुण, उवसमसेदीदो ओदिण्णं सासणगमणाभावादो । तं पि कुदो गब्बे ? एदम्हादो चैव भूदवलीवयणादो ।

सम्मामिच्छादिद्विस्स उच्चदे- एककेण सम्मामिच्छादिद्वी परिणामपच्चएण मिच्छत्तं सम्मत्तं वा पडिवणो अंतरिदो । अंतोमुहुत्तेण भूओ सम्मामिच्छत्तं गदो । लद्धमंतर- मंतोमुहुत्तं ।

### उक्कस्सेण अद्धपोगलपरियदं देसुणं ॥ ८ ॥

ताव सासणस्सुदाहरणं बुच्चदे- एककेण अणादियमिच्छादिद्विणा तिणि करणाणि कादूण उवसमसम्मत्तं पडिवणपढमसमए अणंतो संसारे छिणो अद्धपोगलपरियद्वेत्तो कदो । पुणो अंतोमुहुत्तं सम्मत्तेणच्छिय आसाणं गदो (१) । मिच्छत्तं पडिवज्जिय अंतरिदो अद्धपोगलपरियदं मिच्छत्तेण परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे उवसमसम्मत्तं पडिवणो एगसमयानसेसाए उवसमसम्मत्तद्वए आसाणं गदो । लद्धमंतरं । भूओ मिच्छा- उपशम कर और नीचे उतारकर, सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त- प्रमाण अन्तर क्या नहीं बताया ?

समाधान-—नहीं, क्योंकि, उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले जीवोंके सासादन गुण- स्थानमें गमन करनेका अभाव है ।

शंका-—यह कैसे जाना ?

समाधान-—भूतवली आचार्यके इसी वचनसे जाना ।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर कहते हैं- एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको, अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हुआ और अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् ही पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो गया ।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥८॥

उन्मत्से पहले सासादन गुणस्थानका उदाहरण कहते हैं- एक अनादि मिथ्या- दृष्टि जीवने अथ प्रवृत्तादि तीनों करण करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें अनन्त संसारको छिन्न कर अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र किया । पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल सम्यक्त्वके साथ रहकर वह सासादनसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (२) । पुन मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल मिथ्यात्वके साथ परिभ्रमणकर सत्कारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जाने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुन उपशम- सम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे सूत्रके अन्तरकाल प्राप्त हो गया । पुनः मिथ्यादृष्टि हुआ (२) । पुनः वेदक-

१ उतरनेवालेपुद्गलपरिवर्तनों से ज्ञान । म सि १, ८

दिद्वी जादो (२) । वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय (३) अणंताणुवंधिं विसंजोजिय (४) दंसणमोहणीयं खविय (५) अप्पमत्तो जादो (६) । तदो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (७) खवगसेदीपाओगविसोहीए विसुज्झिण्ण (८) अपुव्वखवगो (९) अणियद्विखवगो (१०) सुहुमखवगो (११) खीणकसाओ (१२) सजोगिकेवली (१३) अजोगिकेवली (१४) होदूण सिद्धो जादो । एवं समयहियचोद्दसअंतोमुहुत्तेहि उण- मद्धपोगलपरियदं सासणसम्मामिच्छिस्स उक्कस्संतरं होदि ।

सम्मामिच्छादिद्विस्स उच्चदे- एककेण अणादियमिच्छादिद्विणा तिणि वि करणाणि कादूण उवसमसम्मत्तं गेणहेतेण गमिदसम्मत्तपढमसमए अणंतो संसारे छिदिदूण अद्ध- पोगलपरियद्वेत्तो कदो । उवसमसम्मत्तेण अंतोमुहुत्तमिच्छिय (१) सम्मामिच्छत्तं पडिवणो (२) । मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । अद्धपोगलपरियदं परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे उवसमसम्मत्तं पडिवणो । तथेव अणंताणुवंधिं विसंजोहिय सम्मामिच्छत्तं पडि- वणो । लद्धमंतरं (३) । तदो वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय (४) दंसणमोहणीयं खवेदूण (५) अप्पमत्तो जादो (६) । पुणो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं करिय (७) खवगसेदीपाओग-

सम्यक्त्वको प्राप्त होकर (३) अनन्तानुवन्धीकपायका विसंयोजन कर (४) दर्शनमोह- नीयका क्षयकर (५) अप्रमत्तसंयत हुआ (६) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानोंमें सहस्रो परावर्तनोंको करके (७) क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य विद्युत्क्षिसे विद्युत्क्ष होकर (८) अपूर्वकरण क्षपक (९), अनिवृत्तिकरण क्षपक (१०), सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक (११), क्षीणकपाय- वीतराग छद्मस्थ (१२), सयोगिकेवली (१३) और अयोगिकेवली (१४) होकरके सिद्ध होगया । इस प्रकारसे एक समय अधिक चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन सासादनसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है ।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों ही करण करके उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करते हुए सम्यक्त्व ग्रहण करनेके प्रथम समयमें अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तन मात्र किया । उपशमसम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त रहकर वह (२) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (२) । पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हो गया । पश्चात् अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल प्रमाण परिभ्रमण कर संसारके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशेष रहने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, और वहांपर ही अनन्तानुवन्धीकपायकी विसंयोजना कर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अन्तर उपलब्ध हो गया (३) । तत्पश्चात् वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर (४) दर्शनमोहनीयका क्षपण करके (५) अप्रमत्तसंयत हुआ (६) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्यन्धी सहस्रों परावर्तनोंको करके (७) क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य विद्युत्क्षिसे विद्युत्क्ष

निर्माणी विमुच्यते (८) अपुत्रस्य (९) अणियद्विखवगो (१०) सुहृत्सखवगो (११) रीणकाम्यो (१२) मजोगिकेवली (१३) अजोगिकेवली (१४) होदूण सिद्धि गदो। एदेहि चोदयंतोमुदुचेहि उगमद्रयोगलपरियदुं सम्मामिच्छुक्कसंतं होदि ।

असंजदसम्मादिट्ठिपहुडि जाव अपमत्तसंजदा सि अंतरं केव चिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥९॥

कुनो ? मव्वकालमेदानमुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ १० ॥

एदस्स सुत्तस्स गुणद्वारापरिवाडीए अत्थो उचदे । तं जहा- एकको असंजद-सम्मादिट्ठी संजमासंजमं पडिवणो । अंतोमुहुत्तमंतरिय भूओ असंजदसम्मादिट्ठी जादो । लद्धमंतरंतोमुहुत्तं । संजदासंजदस्स उचदे- एकको संजदासंजदो असंजदसम्मादिट्ठि मिच्छादिट्ठि संजमं वा पडिवणो । अंतोमुहुत्तमंतरिय भूओ संजमासंजमं पडिवणो । लद्धमंतोमुहुत्तं जहणंतरं संजदासंजदस्स । पमत्तसंजदस्स उचदे- एगो पमत्तो अपमत्तो होपर (८) अपूर्वकरण क्षपक (९) अनिदृत्तिकरण क्षपक (१०) सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (११) क्षीणकाम्य (१२) सयोगिकेवली (१३) ओर अयोगिकेवली (१४) होकरके सिद्धपदको प्राप्न हुआ । इन चोदह अन्तर्मुहूर्तसे कम अर्थपुद्गलपरिवर्तन सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको आदि लेकर अग्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ९ ॥

य्योंकि, सर्वकाल ही सूत्रोक्त गुणस्थानवर्ती जीव पाये जाते हैं ।

उक्त गुणस्थानोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥१०॥ इस मूत्रका गुणस्थानकी परिपाटीसे अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है- एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संयमासंयमको प्राप्त हुआ । वहाँपर अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर अन्तरको प्राप्त हो, पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरकाल प्राप्न होगया ।

अव सयतासयतका अन्तर कहते हैं- एक संयतासंयत जीव, असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको, अथवा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानको, अथवा संयमको प्राप्त हुआ और अन्तर्मुहूर्तकाल वहाँपर रह कर अन्तरको प्राप्त हो पुनः संयमासंयमको प्राप्त होगया । इस प्रकारसे संयतासयतका अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त हुआ ।

१ अग्रतमस्यग्दृष्ट्याग्रमत्तानां नानाजीवोपेक्षया नास्त्यन्तरं । सं. सि. १, ८

२ एत्त्वानं प्रति जनयेत्तन्तर्मुहूर्तं । सं. सि. १, ८

होदूण सब्वल्लुं पुणो वि पमत्तो जादो । लद्धमंतोमुहुत्तं जहणंतरं पमत्तस्स । अप्पमत्तस्स उचदे- एगो अप्पमत्तो उवसमसेठीमारुहिय पडिपियत्तो अप्पमत्तो जादो । लद्धमंतरं जहणमप्पमत्तस्स । हेट्ठिमगुणेषु किण्ण अंतराविदो ? ग, उवसमसेठीसव्वगुणद्वाराणांहितो हेट्ठिमएगगुणद्वाराए संखेज्जगुणत्तादो ।

उक्कस्सेण अद्धपोगलपरियदुं देसूणं ॥ ११ ॥

गुणद्वारापरिवाडीए उक्कसंतरपरुत्तण करीदे- एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिणिण करणाणि कादूण पढमसम्मत्तं गेण्हत्तेण अणंतो संसारो छिदिदूण गहिदसम्मत्त-पढमसमए अद्धपोगलपरियदुमेत्तो कदो । उवसमसमत्तेण अंतोमुहुत्तमच्छिय (१) छव्लियावसेसाए उवसमसमत्तद्वाए आसाणं गंतूणंतरिदो । मिच्छत्तेणद्धपोगलपरियदुं भमिय अपच्छिमे भवे संजमं संजमासंजम वा गंतूण कदकरणिज्जो होदूण अंतोमुहुत्तवसेसे अब प्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं- एक प्रमत्तसंयत जीव, अग्रमत्तसंयत होकर सर्वल्लु कालके पश्चात् फिर भी प्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकारसे प्रमत्तसंयतका अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त हुआ ।

अव अग्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं- एक अग्रमत्तसंयत जीव उपशमत्रेणिए चढ़कर पुनः लौटा और अग्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण जघन्य अन्तर अग्रमत्तसंयतका उपलब्ध हुआ ।

शंका-नीचेके असंयतादि गुणस्थानोंमें भेजकर अग्रमत्तसंयतका जघन्य अन्तर क्यों नहीं बताया ?

समाधान-नहीं, क्योंकि, उपशमत्रेणिके सभी गुणस्थानोंके कालोंसे प्रमत्तादि नीचेके एक गुणस्थानका काल भी संख्यातगुणा होता है ।

उक्त असंयतादि चारों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्थपुद्गल-परिवर्तनप्रमाण है ॥ ११ ॥

अव गुणस्थान-परिपाटीसे उत्कृष्ट अन्तरकी प्ररूपणा करते हैं- एक अनादि मिथ्या-दृष्टि जीवने तीनों करण करके प्रथमोपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करते हुए अनन्त संसार छेदकर सम्यक्त्व ग्रहण करनेके प्रथम समयमें वह संसार अर्थपुद्गलपरिवर्तनमात्र किया । पुनः उपशमसम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्तकाल रह कर (१) उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ । पुनः मिथ्यात्वके साथ अर्थपुद्गलपरिवर्तन परिश्रमण कर अन्तिम भवमें संयमको, अथवा संयमासंयमको प्राप्त होकर, कृतकृत्य वेदकसम्यक्त्वी होकर अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण संसारके अवशेष रह जाने पर परिणामोंके निमित्तसे असंयतसम्यग्दृष्टि

१ उत्तरेणार्थपुद्गलपरिवर्तितो देशोनः । सं. सि. १, ८.

संसारे परिणामपच्येण असंजदसम्मादिद्धी जादो । लद्धमंतरं ( २ ) । पुणो अप्पमत्त-  
भावेण संजमं पडिवज्जिय ( ३ ) पमत्तापमत्तरावत्तसहससं कादूण ( ४ ) खवगसेडी-  
पाओगगिसोहीए विसुज्झिय ( ५ ) अपुब्बो ( ६ ) अणियद्धी ( ७ ) सुहुमो ( ८ )  
खीणो ( ९ ) सजोगी ( १० ) अजोगी ( ११ ) होदूण परिणित्तो । एवमेक्कारसेहि  
अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्वपोगलपरियट्टमसजदसम्मादिट्ठीणमुक्कस्संतरं होदि ।

संजदासंजदस्स उच्चदे- एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठीणा तिणिण करणाणि  
कादूण गहिदसम्मत्तपढमसमए सम्मत्तगुणेण अणंतो संसरो छिण्णो अद्वपोगलपरियट्ट-  
भेत्तो कदो । सम्मत्तेण सह गहिदसंजमासंजमेण अंतोमुहुत्तमिच्छिय छावलियावसेसाए  
उवसमसम्मत्तद्वाए आसाणं गदो ( १ ) अंतरिदो मिच्छेतेण अद्वपोगलपरियट्टं परिभमिय  
अपच्छिमे भवे सांजमं सम्मत्तं संजमं वा पडिवज्जिय कदकरणिज्जो होदूण परिणाम-  
पच्येण संजमासंजमं पडिवणो ( २ ) । लद्धमंतरं । अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवज्जिय ( ३ )  
पमत्तापमत्तरावत्तमहससं कादूण ( ४ ) खवगसेडीपाओगगिसोहीए विसुज्झिय ( ५ )  
अपुब्बो ( ६ ) अणियद्धी ( ७ ) सुहुमो ( ८ ) खीणकसाओ ( ९ ) सजोगी ( १० )

होगया । इस प्रकार सूत्रोक्त अन्तरकाल प्राप्त हुआ ( २ ) । पुनः अप्पमत्त-  
भावके साथ संयमको प्राप्त होकर ( ३ ) प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी  
सहस्रों परावर्तनोंको करके ( ४ ) क्षपक्रेणीके प्रायोग्य विशुद्धिसे विशुद्ध  
होकर ( ५ ) अपूर्वकरणसंयत ( ६ ) अनिष्टुत्तिकरणसंयत ( ७ ) सूक्ष्मसाम्परायसंयत ( ८ )  
क्षीणकपायवीतरागछद्मस्य ( ९ ) सयोगिकेवली ( १० ) और अयोगिकेवली ( ११ ) होकर  
निर्वाणको प्राप्त हो गया । इस प्रकारसे इन ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरि-  
वर्तनकाल असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अथ संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं— एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने  
तीनों करण करके सम्यक्त्व ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्वगुणके द्वारा अनन्त  
संसार छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण किया । पुनः सम्यक्त्वके साथ ही ग्रहण किये  
गये संयमासंयमके साथ अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर, उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह  
आवलिया अवशेष रहजाने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हो ( १ ) अन्तरको प्राप्त हो  
गया, और मिथ्यात्वके साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तन परिश्रमण कर अन्तिम भवमें असंयम-  
सहित सम्यक्त्वको, अथवा संयमको प्राप्त होकर कृतकृत्य वेदकसम्यक्त्वकी हो, परि-  
णामोंके निमित्तसे संयमासंयमको प्राप्त हुआ ( २ ) । इस प्रकारसे इस गुणस्थानका अन्तर  
प्राप्त होगया । पुनः अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त होकर ( ३ ) प्रमत्त-अप्रमत्त  
गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परावर्तनोंको करके ( ४ ) क्षपक्रेणीके योग्य विशुद्धिसे विशुद्ध  
होकर ( ५ ) अपूर्वकरण ( ६ ) अनिष्टुत्तिकरण ( ७ ) सूक्ष्मसाम्पराय ( ८ ) क्षीणकपाय ( ९ )

अजोगी ( ११ ) होदूण परिणिव्बुदो । एवमेक्कारसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्वपोगलपरियट्ट-  
मुक्कस्संतरं संजदासंजदस्स होदि ।

पमत्तस्स उच्चदे- एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठीणा तिणिण करणाणि कादूण  
उवसमसम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवज्जतेण अणंतो संसरो छिदिओ, अद्वपोगलपरियट्ट-  
भेत्तो कदो । अंतोमुहुत्तमिच्छिय ( १ ) पमत्तो जादो ( २ ) । आदी दिट्ठा । छावलिया-  
वसेसाए उवसमसम्मत्तद्वाए आसाणं गंतूंगंतरिय मिच्छेतेणद्वपोगलपरियट्टं परियट्टिय  
अपच्छिमे भवे सासंजमसम्मत्तं संजमासंजमं वा पडिवज्जिय कदकरणिज्जो होऊण  
अप्पमत्तभावेण संजम पडिवज्जिय पमत्तो जादो ( ३ ) । लद्धमंतरं । तदो खवगसेडी-  
पाओगो अप्पमत्तो जादो ( ४ ) । पुणो अपुब्बो ( ५ ) अणियद्धी ( ६ ) सुहुमो ( ७ )  
खीणकसाओ ( ८ ) सजोगी ( ९ ) अजोगी ( १० ) होदूण णिव्वाणं गदो । एवं दसहि  
अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्वपोगलपरियट्टं पमत्तसुक्कस्संतरं होदि ।

अप्पमत्तस्स उच्चदे- एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठीणा तिणिण वि करणाणि करिय  
उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवणेण छेत्तूण अणंतो संसरो अद्वपोगल-

सयोगिकेवली ( १० ) और अयोगिकेवली ( ११ ) होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे  
इन ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर  
होता है ।

अथ प्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं— एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों ही  
करण करके उपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त होते हुए अनन्त संसार छेदकर  
अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र किया । पुनः उस अवस्थामें अन्तर्मुहूर्त रह कर ( १ ) प्रमत्तसंयत  
हुआ ( २ ) । इस प्रकारसे यह अर्धपुद्गलपरिवर्तनकी आदि दृष्टिगोचर हुई । पुनः उपशम-  
सम्यक्त्वके कालमें छह आवलिया अवशेष रहजाने पर सासादन गुणस्थानको जाकर  
अन्तरको प्राप्त होकर मिथ्यात्वके साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल परिश्रमण कर अन्तिम  
भवमें असंयमसहित सम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको प्राप्त होकर कृतकृत्य वेदक-  
सम्यक्त्वकी हो अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त होकर प्रमत्तसंयत हो गया ( ३ ) ।  
इस प्रकारसे इस गुणस्थानका अन्तर प्राप्त होगया । पश्चात् क्षपक्रेणीके प्रायोग्य  
अप्रमत्तसंयत हुआ ( ४ ) । पुनः अपूर्वकरणसंयत ( ५ ) अनिष्टुत्तिकरणसंयत ( ६ ) सूक्ष्म-  
साम्परायसंयत ( ७ ) क्षीणकपायवीतरागछद्मस्य ( ८ ) सयोगिकेवली ( ९ ) और अयोगि-  
केवली ( १० ) होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्ध-  
पुद्गलपरिवर्तनकाल प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अथ अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं— एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों ही  
करण करके उपशमसम्यक्त्वको और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानको एक साथ प्राप्त होकर  
सम्यक्त्व ग्रहण करनेके प्रथम समयमें ही अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तन मात्र

परियद्वैतौ पदमममए करो । तत्पंतोमुहुत्तमच्छिय (१) पमत्तो जादो अंतरिदो भिच्छलेण अदयोगलपरियद्वै परियद्विय अपच्छिमे भेने मम्मत्तं संजमांसंजमं वा पडि-  
नञ्जिय मच कम्माणि रभिय अपमत्तो जादो (२) । लद्धमंतरं । पमत्तापमत्तपरवच-  
महम्मं मादूण (३) अपमत्तो जादो (४) । अपुब्बो (५) अणियद्वी (६) सुहुसो (७) मीणकमाथो (८) सजोगी (९) अजोगी (१०) होदूण णिव्वाणं गदो । ( एवं )  
दमाहि अंतोमुहुत्तं हि उणमद्वपोगलपरियद्वै ( अपमत्तस्सुकस्संतरं होदि ) ।

**चटुण्हसुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ १२ ॥**

अपुब्बस्स तान उच्चदे- सचट्ट जणा बहुआ वा अपुब्बकरणउवसामगद्दाए मीणाए अणियद्विउवसामगा वा अपमत्ता वा कालं करिय देवा जादा । एगसमय-  
मंतदिमपुब्बगुणद्वयं । तदो विदियसमए अपमत्ता वा ओदरंता अणियद्विणो वा अपुब्ब-  
करणउवसामगा जादा । लद्धमेगसमयमंतरं । एवं चेव अणियद्विउवसामगाणं सुहुम-  
उवगामगाणं उवसंतकमायाणं च जहणंत्तमेगसमयो वत्तन्तो ।

क्रिया । उस अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें अन्तर्मुहूर्त रहकर (१) प्रमत्तसंयत हुआ और अन्तरको प्राप्त होकर मिथ्यात्वके साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल परिवर्तन कर अन्तिम भवमें मय्यत्त्व अथवा सयमासयसको प्राप्त होकर दर्शनमोहकी तीन और अनन्तानुबंधीकी चार. इन सान प्रकृतियोंका क्षण कर अप्रमत्तसंयत हो गया (२) । इस प्रकार अप्रमत्त-  
संयतता अन्तरकाल उपलब्ध हुआ । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानमें सहत्तों परा-  
वर्तनोंको करके (३) अप्रमत्तसंयत हुआ (४) । पुनः अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसांपराय (७) क्षीणरूपाय (८) सयोगिकवली (९) और अयोगिकवली (१०) होकर निर्माणको प्राप्त हुआ । इस प्रकार दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

उपशामश्रेणीके चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यमें एक समय अन्तर है ॥ १२ ॥

उपमने पहले अपूर्वकरण उपशामकका अन्तर कहते हैं- सात आठ जन, अथवा गदुत्तसे जीव, अपूर्वकरण गुणस्थानके उपशामककाल क्षीण हो जाने पर अनिवृत्तिकरण उप-  
शामक अथवा अप्रमत्तसंयत होकर तथा मरण करके देव हुए । इस प्रकार एक समयके लिये अपूर्वकरण गुणस्थान अन्तरको प्राप्त होगया । तत्पश्चात् द्वितीय समयमें अप्रमत्त-  
संयत, अथवा उतरते हुए अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव, अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती उपशामक होगए । इस प्रकार एक समय प्रमाण अन्तरकाल लब्ध होगया । इसी प्रकारसे अनिवृत्तिकरण उपशामक, सूक्ष्मसांपराय उपशामक और उपशान्तकराय उप-  
शामकोंका एक समय प्रमाण जघन्य अन्तर कहना चाहिए ।

१ चतुर्गुणप्रथममर्णा नाताजीवोपेक्षया जघन्येनैक समय । स सि १, ८

**उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १३ ॥**

तं जघा- सचट्ट जणा बहुआ वा अपुब्बउवसामगा अणियद्विउवसामगा अप्प-  
मत्ता वा कालं करिय देवा जादा । अंतदिमपुब्बगुणद्वयं जाव उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।  
तदो अदिकंते वासपुधते सचट्ट जणा बहुआ वा अप्पमत्ता अपुब्बकरणउवसामगा  
जादा । लद्धसुकस्संतरं वासपुधत्तं । एवं चेव सेसतिण्हसुवसामगाणं वासपुधत्तं  
वत्तन्वं, विसेसामावा ।

**एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४ ॥**

तं जघा- एकको अपुब्बकरणो अणियद्विउवसामगो सुहुमउवसामगो उवसंत-  
कसाथो होदूण पुणो वि सुहुमउवसामगो अणियद्विउवसामगो होदूण अपुब्बउवसामगो  
जादो । लद्धमंतरं । एदाथो पंच वि अद्दाथो एकरुद्धं कंदे वि अंतोमुहुत्तमेव होदि ति  
जहणंत्तमेतोमुहुत्तं होदि ।

एवं चेव सेसतिण्हसुवसामगाणमेगजीवजहणंत्तं वत्तन्वं । णवरि अणियद्वि-  
उक्त चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ १३ ॥

जैसे-सात आठ जन, अथवा बहुत्तसे अपूर्वकरण उपशामक जीव, अनिवृत्तिकरण  
उपशामक अथवा अप्रमत्तसंयत हुए और वे मरण करके देव हुए । इस प्रकार यह अपूर्व-  
करण उपशामक गुणस्थान उत्कृष्टरूपसे वर्षपृथक्त्वके लिए अन्तरको प्राप्त होगया ।  
तत्पश्चात् वर्षपृथक्त्वकालके व्यतीत होनेपर सात आठ जन, अथवा बहुत्तसे अप्रमत्तसंयत  
जीव, अपूर्वकरण उपशामक हुए । इस प्रकार वर्षपृथक्त्व प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त  
होगया । इसी प्रकार अनिवृत्तिकरणादि तीनों उपशामकोंका अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण  
कहना चाहिए, क्योंकि, अपूर्वकरण उपशामकके अन्तरसे तीनों उपशामकोंके अन्तरमें  
कोई विशेषता नहीं है ।

चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४ ॥

जैसे- एक अपूर्वकरण उपशामक जीव, अनिवृत्ति उपशामक, सूक्ष्मसांपरायिक  
उपशामक और उपशान्तकराय उपशामक होकर फिर भी सूक्ष्मसांपरायिक उपशामक  
और अनिवृत्तिकरण उपशामक होकर अपूर्वकरण उपशामक होगया । इस प्रकार अन्त-  
र्मुहूर्तकाल प्रमाण जघन्य अन्तर उपलब्ध हुआ । ये अनिवृत्तिकरणसे लगाकर पुनः अपूर्व-  
करण उपशामक होनेके पूर्व तकके पांचों ही गुणस्थानोंके कालोंको एकत्र करने पर भी  
बहु काल अन्तर्मुहूर्त ही होता है, इसलिए जघन्य अन्तर भी अन्तर्मुहूर्त ही होता है ।

इसी प्रकार शेष तीनों उपशामकोंका एक जीवसम्यन्धी जघन्य अन्तर  
कहना चाहिए । विशेष यात यह है कि अनिवृत्तिकरण उपशामकके सूक्ष्मसांपरायिक

१ उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । स सि १, ८

२ एगजीवं प्रती जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । स. सि, १, ८.

उत्सामगस्त दो सुहमद्वाओ एगा उवसंतकसायद्वा च जहणंतं होदि । सुहुमउव-  
सामगस्त उवसंतकसायद्वा एक्का चैव जहणंतं होदि । उवसंतकसायस्स पुण हेद्वा  
उवसंतकसायमोदरिय सुहुमसांपराओ अणियट्टिकरणो अपुव्वकरणो अप्पमत्तो होदूण  
पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं करिय अप्पमत्तो अपुव्वो अणियट्टी सुहुमो होदूण पुणो उवसंत-  
कसायगुणद्वानं पडिवणस्स णवद्वासुहमेत्तमोसुहुत्तमंतरं होदि ।

### उक्कस्सेण अद्दपोगलपरियट्टं देसूणं ॥ १५ ॥

अपुव्वस्स ताव उच्चदे-एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिण्णि करणाणि  
करिय उवसमसम्मत्तं संजमं च अक्कमेण पडिवणणपढमसमए अणंतसंसारं छिंदिय  
अद्दपोगलपरियट्टमेत्तं कदेण अप्पमत्तद्वा अंतोसुहुत्तेत्ता अणुपालिदा (१) । तदो  
पमत्तो जादो (२) । वेदगसम्मत्तपुव्वणमियं (३) पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (४)  
उवसमसेदीपाओगो अप्पमत्तो जादो (५) । अपुव्वो (६) अणियट्टी (७) सुहुमो (८)  
उवसंतकसायो (९) पुणो सुहुमो (१०) अणियट्टी (११) अपुव्वकरणो जादो (१२) ।  
सम्यन्धी दो अन्तर्मुहूर्तकाल ओर उपशान्तकयायसन्धन्धी एक अन्तर्मुहूर्तकाल, ये तीनों  
मिलाकर जघन्य अन्तर होता है । सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामकके उपशान्तकयाय-  
सम्यन्धी एक अन्तर्मुहूर्तकाल ही जघन्य अन्तर होता है । किन्तु उपशान्तकयाय उप-  
शामकका उपशान्तकयायसे नीचे उतरकर सूक्ष्मसाम्पराय (१) अनिवृत्तिकरण (२)  
अपूर्वकरण (३) ओर अप्रमत्तसंयत (४) होकर, प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्यन्धी  
सहस्रौ परावर्तनोंको करके (५) पुनः अप्रमत्त (६) अपूर्वकरण (७) अनिवृत्तिकरण (८)  
ओर सूक्ष्मसाम्परायिक होकर (९) पुनः उपशान्तकयाय गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके  
नो अक्षाओंका सम्मिलित प्रमाण अन्तर्मुहूर्तकाल अन्तर होता है ।

उक्त चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध-  
पुद्गलपरिवर्तन काल है ॥ १५ ॥

इनमेंसे पहले एक जीवकी अपेक्षा अपूर्वकरण गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर कहते  
हैं-एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों ही करण करके उपशामसम्यक्त्व और संयमको  
एक साथ प्राप्त होनेके प्रथम समयमें ही अन्त संसारको छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र  
करके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अप्रमत्तसंयतके कालका अनुपालन किया (१) । पछे प्रमत्तसंयत  
हुया (२) । पुनः वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर (३) सहस्रौ प्रमत्त-अप्रमत्त परावर्तनोंको  
करके (४) उपशामश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत होगया (५) । पुनः अपूर्वकरण (६) अनि-  
वृत्तिकरण (७) सूक्ष्मसाम्पराय (८) उपशान्तकयाय (९), पुनः सूक्ष्मसाम्पराय (१०)  
अनिवृत्तिकरण (११) ओर पुनः अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती होगया (१२) । पश्चात् नीचे

१ उत्तर्येणार्धपुद्गल्यतीर्तौ देसोत्त । स ति १, ८

२ त्रिणु ' सुपमागिण ' इति पाठ ।

हेद्वा पडिय अंतरीदो अद्दपोगलपरियट्टं परियट्टिदूण अपच्छिमे भवे दंसणत्तिंगं खविय  
अपुव्ववसामगो जादो (१३) । लद्धमंतरं । तदो अणियट्टी (१४) सुहुमो (१५)  
उवसंतकसाओ (१६) जादो । पुणो पडिणियत्तो सुहुमो (१७) अणियट्टी (१८)  
अपुव्वो (१९) अप्पमत्तो (२०) पमत्तो (२१) पुणो अप्पमत्तो (२२) अपुव्व-  
खवगो (२३) अणियट्टी (२४) सुहुमो (२५) खीणकसाओ (२६) सजोगी (२७)  
अजोगी (२८) होदूण णिव्वुदो । एवमद्वावीसेहि अंतोसुहुत्तेहि जगमद्दपोगलपरि-  
यट्टमपुव्वकरणसुक्कसंतरं होदि । एवं तिण्हसुववासामगानं । णवरि परिवाडीए छव्वीसं  
चउवीसं वावीसं अंतोसुहुत्तेहि जगमद्दपोगलपरियट्टं तिण्हसुक्कसंतरं होदि ।

**चटुण्हं खवग-अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि,  
णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ १६ ॥**

तं जहा-सचट्ट जणा अट्टुत्तरसंदं वा अपुव्वकरणखवगा एकस्मिह चैव समए  
सव्वे अणियट्टिखवगा जादा । एगसमयमंतरिदमपुव्वगुणद्वानं । थिदियसमए सचट्ट  
जणा अट्टुत्तरसंदं वा अप्पमत्ता अपुव्वकरणखवगा जादा । लद्धमंतरमेगसमओ । एवं  
गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल प्रमाण परिवर्तन करके अन्तिम-  
भयमें दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंका क्षयण करके अपूर्वकरण उपशामक हुआ (१३) ।  
इस प्रकार अन्तरकाल उपलब्ध होगया । पुनः अनिवृत्तिकरण (१४) सूक्ष्मसाम्प-  
रायिक (१५) और उपशान्तकयाय उपशामक होगया (१६) । पुनः लौटकर सूक्ष्मसाम्प-  
रायिक (१७) अनिवृत्तिकरण (१८) अपूर्वकरण (१९) अप्रमत्तसंयत (२०) प्रमत्तसंयत (२१)  
पुनः अप्रमत्तसंयत (२२) अपूर्वकरण क्षपक (२३) अनिवृत्तिकरण क्षपक (२४) सूक्ष्मसाम्प-  
रायिक क्षपक (२५) क्षीणकयाय क्षपक (२६) सयोगिकेवली (२७) और अयोगिकेवली (२८)  
होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अट्टाईस अन्तर्मुहूर्तसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन-  
काल अपूर्वकरणका उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकारसे तीनों उपशामकोंका अन्तर  
जानना चाहिए । किन्तु विशेष बात यह है कि परिणतीक्रमसे अनिवृत्तिकरण उप-  
शामकके छव्वीस, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकके चौवीस और उपशान्तकयायके वाईस  
अन्तर्मुहूर्तसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल तीनों उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।  
चारों क्षपक और अयोगिकेवलीका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी  
अपेक्षा जघन्यसे एक समय होता है ॥ १६ ॥

जैसे-सात आठ जन, अथवा अधिकसे अधिक एक सौ आठ अपूर्वकरण क्षपक  
एक ही समयमें सबके सब अनिवृत्तिकरण होगये । इस प्रकार एक समयके लिए अपूर्व-  
करण गुणस्थान अन्तरको प्राप्त होगया । द्वितीय समयमें सात आठ जन, अथवा एक  
सौ आठ अप्रमत्तसंयत एक साथ अपूर्वकरण क्षपक हुए । इस प्रकारसे अपूर्वकरण क्षपकका  
एक समय प्रमाण अन्तरकाल उपलब्ध होगया । इसी प्रकारसे दोष गुणस्थानोंका भी

१ चटुणो क्षपकाणमयोगेव्वल्लिनां च नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समय । स ति १, ८

नेमगुणद्वयानां वि' अंतसेवासमयो वचन्वो ।

उक्कस्सेण छम्मासं' ॥ १७ ॥

तं जथा- सत्तद्द जणा अद्दुत्तरसदं वा अपुव्वकरणसवगा अणियद्विखवगा जादा ।  
अंतरेदमपुव्वसवगुणद्वयं उक्कस्सेण जाव छम्मासा ति । तदो सत्तद्द जणा अद्दुत्तरसदं  
वा अपपमचा अपुव्वसवगा जादा । लद्धं छम्मासुक्कसंतं । एवं सेसगुणद्वयानां वि  
छम्मायुक्कसंतं वचन्वं ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं' ॥ १८ ॥

कुदो ? सवगानं पदणाभावा ।

सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, गाणाजीवं पडुच्च  
गत्थि अंतरं, गिरंतरं' ॥ १९ ॥

कुदो ? सजोगिकेवलिविरिदिकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं' ॥ २० ॥

अन्तरकाल एक समय प्रमाण कहना चाहिये ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवलीका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरकाल  
छह मास है ॥ १७ ॥

जैसे- सात आठ जन, अथवा एक सौ आठ अपूर्वकरणक्षपक जीव अनिदृष्टि-  
करण क्षपक हुए । अत अपूर्वकरणक्षपक गुणस्थान उत्कर्षसे छह मासके लिए अन्तरको  
प्राप्त होगया । तत्पश्चात् सात आठ जन, अथवा एक सौ आठ अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्व-  
करणक्षपक हुए । इस प्रकारसे छह मास उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होगया । इसी  
प्रकारसे शेष गुणस्थानोंका भी छह मासका उत्कृष्ट अन्तरकाल कहना चाहिये ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त चारों क्षपकोंका और अयोगिकेवलीका अन्तर नहीं  
होता है, निरन्तर है ॥ १८ ॥

क्योंकि, क्षपक श्रेणीवाले जीवोंके पतनका अभाव है ।

सयोगिकेवलियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा  
अन्तर नहीं होता है, निरन्तर है ॥ १९ ॥

क्योंकि, सयोगिकेवली जिनसे विरहित कालका अभाव है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २० ॥

१ श्रुतिपु 'दि' इति पाठः ।

२ उत्तरपेण पण्यसाः । स ति १, ८

३ एव्वीण प्रति नात्स्यत्ताए । स ति. १, ८

४ सयोगीमलिनं नानाजीवापेक्षया एव्वीवापेक्षया व नात्स्यत्ताए । स. ति. २, ८.

कुदो ? सजोगीणमजोगिभावेण परिणदानं पुणो सजोगिभावेण परिणमणाभावा ।

एवमोधाणुगमो सम्भो ।

आदेसेण गदियाणुवादेण गिरयगदीए गेरइएसु मिच्छादिद्वि-  
असंजदसम्मादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, गाणाजीवं पडुच्च  
गत्थि अंतरं, गिरंतरं' ॥ २१ ॥

कुदो ? मिच्छादिद्वि-असंजदसम्मादिद्वीहि विरिहिदुडवीणं सव्वद्वमणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं' ॥ २२ ॥

मिच्छादिद्विस्स उच्चदे- एको मिच्छादिद्वी दिद्वमगो परिणामपचएण सम्मा-  
मिच्छत्तं वा सम्मत्तं वा पडिवाजिय सव्वजहणमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो मिच्छादिद्वी  
जादो । लद्धमंतोमुहुत्तमंतरं । सम्मादिद्वि पि मिच्छत्तं गेदूण सव्वजहणेणंतोमुहुत्तेण  
सम्मत्तं पडिवाजाविय असंजदसम्मादिद्विस्स जहणंतं वचन्वं ।

क्योंकि, अयोगिकेवलीरूपसे परिणत हुए सयोगिकेवलियोंका पुनः सयोगि-  
केवलीरूपसे परिणमन नहीं होता है ।

इस प्रकारसे ओघाणुगम समाप्त हुआ ।

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणके अनुवादसे नरकगतिमें, नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि  
और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा  
अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २१ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित रत्नप्रभादि पृथिवियों  
किसी भी कालमें नहीं पायी जाती हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २२ ॥

इसमेंसे पहले मिथ्यादृष्टिका जघन्य अन्तर कहते हैं- देखा है मार्गको जिसने  
पेसा एक मिथ्यादृष्टि जीव परिणामोंके निमित्तसे सम्यग्मिथ्यात्वको अथवा सम्यक्त्वको  
प्राप्त होकर, सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर, पुनः मिथ्यादृष्टि होगया । इस  
प्रकारसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तरकाल लब्ध हुआ । इसी प्रकार किसी एक  
असंयतसम्यग्दृष्टि नारकीको मिथ्यात्व गुणस्थानमें ले जाकर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल  
द्वारा पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त कराकर असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका जघन्य अन्तर  
कहना चाहिये ।

१ विधेयेण गल्लुवादेन नरकगतौ नारकाणां सत्तद्द पृथिवीह मिथ्यादृष्टयस्यतम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया  
नात्स्यत्ताए । स ति १, ८

२ एव्वीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स ति. १, ८.

## उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि' ॥ २३ ॥

तं जहा- मिच्छादिद्विस्स उक्कस्संतरं बुब्बदे। एक्को तिरिक्खो मणुसो वा अट्ठावीस-संतकम्मिओ अधो सत्तमीए पुढवीए गेरइएसु उववणो छहि पज्जचीहि पज्जचयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय अंतरिदो थोत्रावसेसे आउए मिच्छत्तं गदो (४)। लद्धमंतरं। तिरिक्खाउअं वंधिय (५) विस्सामिय (६) उवडिदो। एवं छहि अंतोपुहुत्तेहि उणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि मिच्छत्तुक्कस्संतरं होदि ।

अंसंजदसम्मादिद्विस्स उक्कस्संतरं बुब्बदे- एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा अट्ठावीस-संतकम्मिओ मिच्छादिद्वी अधो सत्तमीए पुढवीए गेरइएसु उववणो । छहि पज्जचीहि पज्जचयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवणो (४) संक्किलिद्धो मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । अवसाणे तिरिक्खाउअं वंधिय अंतोपुहुत्तं विस्सामिय विसुद्धो होदूण उवससम्मत्तं पडिवणो (५) । लद्धमंतरं । भूओ मिच्छत्तं गंतूणव्याडिदो (६) । एवं छहि अंतोपुहुत्तेहि उणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि अंसंजदसम्मादिद्वि-उक्कस्संतरं होदि ।

मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम है ॥ २३ ॥

जैसे, पहले मिथ्यादृष्टि नारकीका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोह कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक तिर्यच अथवा मनुष्य, नीचे सातवाँ पृथिवीके नार-कियोंमें उत्पन्न हुआ, और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होकर (१), विश्राम ले (२), विशुद्ध हो (३), वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर आयुके थोड़े अवशेष रहने पर अन्तरको प्राप्त हो मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४) । इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ । पुनः तिर्यच आयुको बांधकर (५), विश्राम लेकर (६) निकला । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम काल मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर है ।

अत्र असंयतसम्यग्दृष्टि नारकीका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोह कर्मकी अट्ठाईस कर्मप्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक तिर्यच, अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव नीचे सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ, और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होकर (१) विश्राम लेकर (२) विशुद्ध होकर (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४) । पुनः संकल्पित हो मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ । आयुके अन्तमें तिर्यचायु बांधकर पुन अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके विशुद्ध होकर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (५) । इस प्रकार इस गुणस्थानका अन्तर लब्ध हुआ । पुन मिथ्यात्वको जाकर नरकसे निकला । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम काल असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

१ उक्कस्सेण एक पि मन्-इउ सत्तदइ द्वाविक्कति प्रयन्निअसागरोपमाणि द्दोनाणि । स पि १, ६

## सासनसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं' ॥ २४ ॥

तं जहा- गिरयगदीए द्विदसासनसम्मादिद्विणो सम्मामिच्छादिद्विणो च सव्वे गुणंतरं गदा । दो वि गुणद्वयाणि एगसमयमंतरिदाणि । पुणो विदियसमए के वि उवससम्मादिद्विणो आसाणं गदा, मिच्छादिद्विणो अंसंजदसम्मादिद्विणो च सम्मा-मिच्छत्तं पडिवण्णा । लद्धमंतरं दोण्हं गुणद्वयाणमंगसमयओ ।

## उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो' ॥ २५ ॥

तं जहा- गिरयगदीए द्विदसासनसम्मादिद्विणो सम्मामिच्छादिद्विणो च सव्वे अण्णगुणं गदा । दोणि वि गुणद्वयाणि अंतरिदाणि । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागमेचो दोण्हं गुणद्वयाणमंतरकालो होदि । पुणो तेचियमेचकाले वदिक्कते अपपण्णो कारणीभूदगुणद्वयाणेहिंतो दोण्हं गुणद्वयाणं संभवे जोदे लद्धमुक्कस्संतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जवन्यसे एक समय अन्तर होता है ॥ २४ ॥

जैसे- नरकगतिमें स्थित सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि सभी जीव अन्य गुणस्थानको प्राप्त हुए, और दोनों ही गुणस्थान एक समयके लिए अन्तरको प्राप्त होगये । पुनः द्वितीय समयमें कितने ही उपशमसम्यग्दृष्टि नारकी जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए और मिथ्यादृष्टि तथा असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुए । इस प्रकार दोनों ही गुणस्थानोंका अन्तर एक समय प्रमाण लब्ध होगया ।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ २५ ॥

जैसे- नरकगतिमें स्थित सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि, ये सभी जीव अन्य गुणस्थानको प्राप्त हुए और दोनों ही गुणस्थान अन्तरको प्राप्त होगये । इन दोनों गुणस्थानोंका अन्तरकाल उत्कृष्टसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होता है । पुनः उतना काल व्यतीत होनेपर अपने अपने कारणभूत गुणस्थानोंसे उक्त दोनों गुणस्थानोंके संभव होजानेपर पल्योपमका असंख्यातवां भागप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर लब्ध होगया ।

१ सामादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवोपेक्षया जवन्येनैकः समयः । स पि १, ६

२ उक्कस्सेण पल्योपमासंख्येयमाणा । स पि १, ६

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ २६ ॥

तं जना- 'जहा उदयो तथा णिहेसो' चि गायदो सासणस्स पलिदोवमस्स अमरेज्जदिभागो, सम्माभिच्छाद्विस्स अंतोमुहुत्तं जहण्णंतरं होदि । दोहं णिदरिसणं- पन्तो णेरुओ अणादियमिच्छादिद्वी उवसमसम्मत्तण्णाओगसादियमिच्छादिद्वी वा तिण्णि करणाणि ऋदूण उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो । उवसमसम्मत्तेण केचियं हि कालमच्छिय आमाणं गंतूण मिच्छत्तं गदो अंतरिदो । पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागोचकालेण उव्वेण्णरंउपहि सम्मत्त-सम्माभिच्छत्तद्विदोओ सागरोवमपुधत्तादो हेद्दा करिय पुणो तिण्णि करणाणि कादूण उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय उवसमसम्मत्तद्वए छावलियावसेसाए आसाणं गदो । लद्धमंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एकको सम्माभिच्छादिद्वी मिच्छत्तं सम्मत्तं वा गंतूणंतोमुहुत्तमंतरिय पुणो सम्माभिच्छत्तं पडिवण्णो । लद्धमंतोमुहुत्त-मंतरं सम्माभिच्छादिद्विस्स ।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका जघन्य अन्तर एक जीवकी अपेक्षा पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६ ॥

जैसे- जेसा उदय होता है, उसी प्रकारका निर्देश होता है, इस न्यायके अनुसार सासादनसम्यग्दृष्टिका जघन्य अन्तर पत्योपमका असंख्यातवां भाग, और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

अब क्रमशः सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि, इन दोनों गुणस्थानोंके अन्तरका उदाहरण कहते हैं- एक अनादि मिथ्यादृष्टि नारकी जीव अथवा उपशमसम्यक्त्वके प्रायोग्य सादि मिथ्यादृष्टि जीव, तीनों करणोंको करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और उपशमसम्यक्त्वके साथ कितने ही काल रहकर पुनः सासादन गुणस्थानको जाकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तरको प्राप्त होकर पल्योपमके असंख्यातवै भागमात्र कालसे उठेलना- नांडनोंसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंकी स्थितियोंको सागरोपमपृथक्त्वसे नीचे अर्थात् कम करके पुनः तीनों करण करके और उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली काल अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकार पल्योपमके असंख्यातवै भाग प्रमाण अन्तरकाल उपलब्ध होगया । एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वको अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर और वहां पर अन्तर्मुहूर्तका अन्तर देकर पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टिका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर लब्ध होगया ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूसाणि ॥ २७ ॥

तं जघा- एकको सादियो अणादिओ वा मिच्छादिद्वी सत्तमपुढवीणेरुद्वएसु उव-वणो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) उवमसम्मत्तं पडिवण्णो (४) आसाणं गंतूण मिच्छत्तं गदो अंतरिदो । अनसाणे तिरिविखाउअं वंधिय विसुद्धो होदूण उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो । उवसमसरमत्तद्वए एगसमयावसेसाए आसाणं गदो । लद्धमंतरं । तदो मिच्छत्तं गंतूण अंतोमुहुत्तमच्छिय (५) उवद्विदो । एवं पंचहि अंतोमुहुत्तेहि समयहिएहि ज्जाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि सासणुक्कस्संतरं होदि ।

सम्माभिच्छादिद्विस्स उच्चदे- एकको तिरिक्खो मणुसो वा अद्दावीमसंतकम्भिओ सत्तमपुढवीणेरुद्वएसु उनवणो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्माभिच्छत्तं पडिवण्णो (४) । पुणो सम्मत्तं मिच्छत्तं वा गंतूण देसूणतेत्तीसाउद्विदिमंतरिय मिच्छत्तेणउअं वंधिय विस्समिय सम्माभिच्छत्तं गदो (५) । तदो मिच्छत्तं गंतूण अंतोमुहुत्तमच्छिय (६) उवद्विदो । छहि अंतोमुहुत्तेहि ज्जाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि सम्माभिच्छत्तुक्कस्संतरं होदि ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम काल है ॥२७॥

जैसे- एक सादि अथवा अनादि मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होकर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) उपशम-सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४) । पुनः सासादन गुणस्थानमें जाकर मिथ्यात्वको प्राप्त हो, अन्तरको प्राप्त हुआ । आयुके अन्तमें तिर्यंच आयुको बांधकर विशुद्ध हो उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय अवशेष रहने पर सासा-दन गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ । पुनः मिथ्यात्वको जाकर अन्तर्मुहूर्त रह (५) निकला । इस प्रकार समयाधिक पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपमकाल सासादन गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर है ।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अर्द्धांस प्रकृतियोंकी सत्ता रहनेवाला एक तिर्यंच अथवा मनुष्य सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न होकर छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४) । पुनः सम्यक्त्वको अथवा मिथ्यात्वको जाकर वैशोन तेतीस सागरोपमप्रमाण आयुस्थितिको अन्तररूपसे विताकर मिथ्यात्वके द्वारा आयुको बांधकर विश्राम ले सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (५) । पश्चात् मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त रहकर (६) निकला । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपमकाल सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।





सासणसग्मादिद्वि-सम्पामिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ ३१ ॥

एदस्स अत्थो सुगमो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३२ ॥

जन्ना गिरओघग्निह पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपरूहणा कदा, तद्वा एत्थ  
नि कादच्चा ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,  
अंतोमुहुचं ॥ ३३ ॥

एदं पि सुचं सुगमं चेष, गिरओघग्निह परूविदचादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं  
सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३४ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थे भण्णमाणे- सत्तमपुढवीसासणसम्पामिच्छा-

उक्त सातों ही पृथिवियोंके सासादनसम्पद्यद्वि और सम्यग्मिथ्याद्वि नारकि-  
योंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय  
है ॥ ३१ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

उक्त पृथिवियोंमें ही उक्त गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमेके असंब्यतावें  
भाग है ॥ ३२ ॥

जिस प्रकार नारकियोंके ओघ अन्तरवर्णनमें पल्योपमेके असंब्यतावें भागकी  
प्ररूपणा की है, उसी प्रकार यहाँ पर भी कत्ता चाहिए ।

उक्त गुणस्थानोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमेका  
असंब्यतावें भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३ ॥

यह सूत्र भी सरल ही है, क्योंकि, नारकियोंके ओघ अन्तरवर्णनमें प्ररूपित  
क्रिया जा चुका है ।

सातों ही पृथिवियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर  
क्रमशः देशोन एक, तीन, सात, दश, सत्तर, तीस और तेत्तीस सागरोपम है ॥ ३४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहने पर- सातवें पृथिवीके सासादन सम्पद्यद्वि और सम्य-

द्विद्वीणं गिरओघुक्कस्सभंगो, सत्तमपुढविं चेषमस्सिदूण तत्थेदेसियुक्कस्सपरूवणादो ।  
पढमादिछुपुढवीसासणणपुक्कस्से भण्णमाणे- एकको तिरिक्खो मणुस्सो वा पढमादिछु  
पुढवीसु उववण्णो । छहि पज्जचीहि पज्जचयदो ( १ ) विस्संतो ( २ ) विसुद्धो ( ३ )  
उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिज्जण आसाणं गदो ( ४ ) भिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । सग-सगुक्कस्स-  
द्विदीओ अच्छिय अवसाणे उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो उवसमसम्मत्तद्वाए एगसमयाव-  
सेसाए सासणं गंतूणुव्वद्विदो । एवं समयाहियचदुहि अंतोमुहुत्तेहि ज्जणाओ सग-  
सगुक्कस्सद्विदीओ सासणाणुक्कस्संतरं होदि ।

एदंतिं सम्पामिच्छादिद्वीणं उच्चदे- एकको अट्टावीसंतकम्मिओ अग्पिदणे-  
इसु उववण्णो छहि पज्जचीहि पज्जचयदो ( १ ) विस्संतो ( २ ) विसुद्धो ( ३ ) सम्मा-  
भिच्छत्तं पडिवण्णो ( ४ ) भिच्छत्तं सम्मत्तं वा गंतूणंतरिदो । सगद्विदिमच्छिय सम्मा-  
भिच्छत्तं पडिवण्णो ( ५ ) लद्धमंतरं । भिच्छत्तं सम्मत्तं वा गंतूण उव्वद्विदो ( ६ ) । छहि

मिथ्याद्वि नारकियोंका उत्कृष्ट अन्तर नारकसामान्यके उत्कृष्ट अन्तरके समान है, क्योंकि,  
ओघवर्णनमें सातवें पृथिवीका आश्रय लेकर ही इन दोनों गुणस्थानोंकी उत्कृष्ट अन्तर-  
प्ररूपणा की गई है । प्रथमादि छह पृथिवियोंके सासादन सम्पद्यद्वि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर  
कहने पर- एक तिर्यंच अथवा मनुष्य प्रथमादि छह पृथिवियोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्ति-  
योंसे पर्याप्त हो ( १ ) विश्राम ले ( २ ) विशुद्ध हो ( ३ ) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर  
सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ ( ४ ) । फिर मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त होगया ।  
पुनः अपनी अपनी पृथिवियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण रहकर आयुके अन्तमें उपशमसम्य-  
क्त्वको प्राप्त हुआ । उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय अवशेष रह जाने पर सासादन  
गुणस्थानको प्राप्त होकर निकला । इस प्रकार एक समयसे अधिक चार अन्तर्मुहूर्तसे  
क्रम अपनी अपनी पृथिवीकी उत्कृष्ट स्थिति उस उस पृथिवीके सासादनसम्पद्यद्वियोंका  
उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अब इन्हीं पृथिवियोंके सम्यग्मिथ्याद्वि नारकियोंका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं-  
मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य विच-  
क्षित पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो ( १ ) विश्राम  
ले ( २ ) विशुद्ध हो ( ३ ) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ( ४ ) । पुनः मिथ्यात्वको अथवा  
सम्यक्त्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ, और जिस गुणस्थानको गया उसमें अपनी  
आयुस्थितिप्रमाण रहकर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ( ५ ) । इस प्रकार अन्तरकाल प्राप्त  
होगया । पुनः मिथ्यात्वको अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर निकला ( ६ ) । इन छहों

अंतोमुहुत्सेहि उणाओ सग-सगुक्कससट्टिदीओ सम्मामिच्छतुक्कससंतरं होदि । सव्व-  
गदीहितो सम्मामिच्छादिट्टिणिसरणकमो बुच्चदे । तं जहा- जो जीवो सम्मादिट्टी होदूण  
आउअं वंधिय सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जदि, सो सम्मत्तेणव णिप्फदिदि । अह मिच्छादिट्टी  
होदूण आउअं वंधिय जो सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जदि, सो मिच्छत्तेणव णिप्फदिदि ।  
कथमेदं णब्बदे ? आहरियपरंरागदुवदेसादो' ।

**तिरिक्खेसु मिच्छादिट्टीणमंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहणेण अंतरं, णिरंतरं ॥ ३५ ॥**  
सुगमेदं सुत्तं ।

**एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६ ॥**

कुदो ? तिरिक्खमिच्छादिट्टिमणरुणं गोदूण सव्वजहणेण कालेण पुणो तस्सेव  
गुणस्स तस्मि ढोहेदे अंतोमुहुत्तं तल्लंभा ।

अन्तर्मुहूर्तसे कम अपनी अपनी पृथिवीकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण नारकी सम्यग्मिथ्या-  
दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अथ सर्व गतियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके निकलनेका क्रम कहते हैं । वह इस  
प्रकार है- जो जीव सम्यग्दृष्टि होकर और आयुको बांधकर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होता  
है, यह सम्यक्त्वके साथ ही उस गतिसे निकलता है । अथवा, जो मिथ्यादृष्टि होकर  
और आयुको बांधकर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होता है, वह मिथ्यात्वके साथ ही  
निकलता है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्यपरम्परागत उपदेशसे जाना जाता है ।

तिर्यंच गतिमें, तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना  
जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३५ ॥

यह सत्र सुगम है ।

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जवन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त  
है ॥ ३६ ॥

स्मॉकि, तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवकी अन्य गुणस्थानमें ले जाकर सर्वजघन्य कालसे  
पुनः उसी गुणस्थानमें लौटा ले जानेपर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर प्राप्त होता है ।

१ गमं वा निष्ठ वा पडिवंधिय मतदि णियेण ॥ सम्मत्तमिच्छयणियेस जहिं आउग पुरा रद ।  
अरिं मग्गं नरत्तपुत्तदो णि य न सिम्ममि ॥ गो जी २३, २५

२ तिर्यंचो तिर्यंचो मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवोपेक्षा गान्तत्स । स सि १, ८.

३ पृथ्वीर नति वस्येनान्मर्तुहंतं । स सि १, ८

**उक्कस्सेण तिणि पल्लिदोवमाणि देसूणाणि' ॥ ३७ ॥**

णिदरिसणं- एको तिरिक्खो मणुस्सो वा अट्टावीसंतक्कम्मिओ तिपल्लिदोवमाउ-  
ट्टिदिएसु कुक्कुड-मक्कडादिएसु उववणो, वे मासे गब्भे अच्छिदूण णिक्खंतो ।

एत्थ वे उवदेसा । तं जहा- तिरिक्खेसु वेमास-मुहुत्तपुधत्तस्सुवरि सम्मत्तं  
संजमासंजमं च जीवो पडिवज्जदि । मणुसेसु गब्भादिअट्टवस्सेसु अंतोमुहुत्तव्भहिएसु  
सम्मत्तं संजमं संजमासंजमं च पडिवज्जदि चि । एसा दक्खिणपडिवची । दक्खिणं  
उज्जुवं आहरियपरंरागदमिदि एयट्टो । तिरिक्खेसु तिणिपक्ख-तिणिगदिवस-अंतोमुहुत्त-  
स्सुवरि सम्मत्तं संजमासंजमं च पडिवज्जदि । मणुसेसु अट्टवस्साणमुधरि सम्मत्तं संजमं  
संजमासंजमं च पडिवज्जदि चि । एसा उत्तरपडिवची । उत्तरमणुज्जुवं आहरियपरंराग-  
णागदमिदि एयट्टो ।

पुणो मुहुत्तपुधत्तेण विसुद्धो वेदगसम्मत्तं पडिवणो । अवसाणे आउअं वंधिय  
मिच्छत्तं गदो । पुणो सम्मत्तं पडिवज्जिय कालं कादूण सोहम्मीसाणदेवेषु उववणो ।  
आदिच्छेहि मुहुत्तपुधत्तव्भहिय-वेमासेहि अवसाणे उवलद्ध-वेअंतोमुहुत्तेहि य उणाणि तिणि

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन  
पर्योपम है ॥ ३७ ॥

इसका उदाहरण- मोहकर्मनी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक तिर्यंच  
अथवा मनुष्य तीन पल्योपमकी आयुस्थितिवाले कुक्कुट-मर्कट आदिमें उत्पन्न हुआ और  
दो मास गर्भमें रहकर निकला ।

इस विषयमें दो उपदेश हैं । वे इस प्रकार हैं— तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ जीव,  
दो मास और मुहूर्त-पृथक्त्वसे ऊपर सम्यक्त्व और संयमासंयमको प्राप्त करता है ।  
मनुष्योंमें गर्भकालसे प्रारंभकर, अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षोंके व्यतीत हो जाने-  
पर सम्यक्त्व, संयम और संयमासंयमको प्राप्त होता है । यह दक्षिण प्रतिपत्ति है ।  
दक्षिण, कजु और आचार्यपरम्परागत, ये तीनों शब्द एकार्थक हैं । तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ  
जीव तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्तके ऊपर सम्यक्त्व और संयमासंयमको प्राप्त  
होता है । मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ जीव आठ वर्षोंके ऊपर सम्यक्त्व, संयम और संयमा-  
संयमको प्राप्त होता है । यह उत्तर प्रतिपत्ति है । उत्तर, अजु और आचार्यपरम्परासे  
अनागत, ये तीनों एकार्थवाची हैं ।

पुनः मुहूर्तपृथक्त्वसे विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पश्चात् अपनी  
आयुके अन्तमें आयुको बांधकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त हो,  
काल करके सौधर्मपेशान देवोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार आदिके मुहूर्तपृथक्त्वसे  
अधिक दो मासोंसे और आयुके अवसलमें उपलब्ध दो अन्तर्मुहूर्तसे कम तीन

पल्लिवोमसाणि मिच्छतुःकस्तंरं होदि ।

**सासणसम्मादिट्टिपहुडि जाव संजदासंजदा ति ओधं ॥ ३८ ॥**

बुद्धो ? ओधचदुगुणद्वयणोपेगजीव-जहणुक्कस्संतरकालेहितो तिरिक्खवगदिचदु-  
गुणद्वयणोपेगजीव-जहणुक्कस्संतरकालाणं भेदाभावा । तं जहा- सासणमम्मादिट्टीणं  
णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमओ, उक्कस्सेण पल्लिवोमस्स असंखेज्जदिभागो ।

एतथ अंतरमाहपज्जाणापणइमप्यावहुंगं उच्चदे- सब्बत्थोवा सासणसम्मादिट्टि-  
रामी । तस्सेन सालो णाणाजीवगदो असंखेज्जगुणो । तस्सेन अंतरमसंखेज्जगुणं । एदमप्या-  
चहुंगं ओघादिसब्बमग्गणासु सासणाणं पउंजिदब्बं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण पल्लिवोमस्स असंखेज्जदिभागो । एदस्स  
कालमा माहणउवाएसो उच्चदे । तं जहा- तस्सेसु अच्चिदूण जेण सम्मत्त-सम्मा-  
मिच्छत्ताणि उब्बेल्लिदाणि सो सागरोवमपुथत्तेण मम्मत्त-सम्मामिच्छत्तद्धिसंत-  
क्रमेण उवसममम्मत्तं पडिवज्जदि । एदम्हादो उवरिमासु ट्टिदीसु जदि सम्मत्तं  
गेण्हदि, तो णिच्छएण वेदगसममत्तमेव गेण्हदि । अध एइदिएसु जेण सम्मत्त-  
पल्लोपमकाल मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

तिर्यचोमं मासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तकका अन्तर ओघके  
समान है ॥ ३८ ॥

फर्षिक, ओघके इन चार गुणस्थानोंसम्बन्धी नाना और एक जीवके जघन्य और  
उत्कृष्ट अन्तरकालोंसे तिर्यचगतिसम्बन्धी इन्हीं चार गुणस्थानोंसम्बन्धी नाना और एक  
जीवके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकालोंका कोई भेद नहीं है । वह इस प्रकार है- सासा-  
दनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे  
पल्लोपमका असत्यातवा भाग है ।

यहाँपर अन्तरके माहात्म्यको बतलानेके लिए अल्पबहुत्व कहते हैं- सासादन-  
सम्यग्दृष्टिराशि सबसे कम है । नानाजीवगत उसीका काल असत्यातगुणा है । और  
उसीका अन्तर, कालसे असत्यातगुणा है । यह अल्पबहुत्व ओघादि सभी मार्गणाओंमें  
मासादनसम्यग्दृष्टियोंका कहना चाहिए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे पल्लोपमका  
असत्यातवा भाग है । इस कालके साधक उपदेशको कहते हैं । वह इस प्रकार  
है- तस जीवोंमें रहकर जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मित्यात्व, इन दो प्रकृ-  
तियोंका उद्वेलन किया है, वह जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मित्यात्वकी स्थितिके सत्त्वरूप  
सागरोपमपृथक्त्वके पश्चात् उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होता है । यदि इससे ऊपरकी  
स्थिति रहनेपर सम्यक्त्वको ग्रहण करता है, तो निश्चयसे वेदकसम्यक्त्वको ही प्राप्त  
होता है । और एकेन्द्रियोंमें जा करके जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मित्यात्वकी उद्वेलना

१ सासादनसम्यग्दृष्टिवादी वतुर्णा गामान्योत्तमन्तस्य । स नि १, ८

सम्मामिच्छत्ताणि उब्बेल्लिदाणि, सो पल्लिवोमस्स असंखेज्जदिभागोणसागरो-  
वममेत्ते सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं ट्टिदिसंतकम्मे सेसे तसेसुावज्जिय उवसमसम्मत्तं  
पडिवज्जदि । एदाहि ट्टिदीहि उणसेसकम्माट्टिउब्बेल्लणकालो जेण पल्लिवोमस्स  
असंखेज्जदिभागो तेण सासणेगजीवजहणंतरं यि पल्लिवोमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं होदि ।

उक्कस्सेण अद्धयोगलपरियदं देह्खणं । णवरि विसेसो एतथ अत्थि तं णिस्थासो-  
एक्को तिरिक्खो अणादियमिच्छादिट्टी तिण्णि करणाणि करिय सम्मत्तं पडिवणणपडवसए  
संसारमणंतं छिदिय षोगलपरियदं कालण उवसमसम्मत्तं पडिवणो आसाणं गदो  
मिच्छत्तं गंतूणंतरिय ( १ ) अद्धयोगलपरियदं परिभमिय हुचरिसे भवे पंचियतिरिक्खेसु  
उवज्जिय मणुसेसु आउअं वंधिय तिण्णि करणाणि करिय उवसमसम्मत्तं पडिवणो ।  
उवसमसम्मत्तद्वाए मणुसगदिषायोगावावलिासंखेज्जदिभागवसेसाए आसाणं गदो ।  
लद्धमंतरं । आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तसासणद्धमच्छिय गदो मणुसो जादो सत्त  
मासे गवभे अच्चिदूण णिक्खंतो सत्त वरसाणि अंतोमुहुत्तवभहियपचमासे च गमेदूण ( २ )  
वेदगसम्मत्तं पडिवणो ( ३ ) अणंताणुवंधी विसंजोइय ( ४ ) दंसणमोहणीयं खत्रिय ( ५ )  
अपमत्तो ( ६ ) पमत्तो ( ७ ) पुणो अप्पमत्तो ( ८ ) पुणो अपुब्बादिछहि अंतोमुहुत्तेहि  
की है, वह पल्लोपमके असत्यातवं भागसे कम सागरोपमकालमात्र सम्यक्त्व और  
सम्यग्मित्यात्वका स्थितिसत्त्व अवशेष रहनेपर तस जीवोंमें उत्पन्न होकर उपशमसम्य-  
क्त्वको प्राप्त होता है । इस स्थितिओंसे कम शेष कर्मस्थिति-उद्वेलनकाल चूकि पल्लोपमके  
असत्यातवं भाग है, इसलिये सासादन गुणस्थानका एकजीवसम्बन्धी जघन्य अन्तर  
भी पल्लोपमके असत्यातवं भागमात्र ही होता है ।

सासादन गुणस्थानका एक जीवसम्बन्धी उत्कृष्ट अन्तर देशोन अर्धपुद्गल-  
परिवर्तनप्रमाण है । पर यहां जो विशेष बात है, उसे कहते हैं- अनादि मिथ्या-  
दृष्टि एक तिर्यच तीनों करणोंको करके सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें  
अचन्त संसारको छेदकर और अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण करके उपशमसम्यक्त्वको  
प्राप्त हुआ और सासादन गुणस्थानको गया । पुनः मिथ्यात्वको जानर और  
अन्तरको प्राप्त होकर ( १ ) अर्धपुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण करके द्विचरम भवमें पंचे-  
न्द्रिय तिर्यचोंमें उत्पन्न होकर और मनुष्योंमें आयुको बांधकर, तीनों करणोंको करके उप-  
शमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालमें मनुष्यगतिके योग्य आव-  
लीके असत्यातवं भागमात्र कालके अवशेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ ।  
इस प्रकारसे उक्त अन्तर लब्ध हो गया । आवलीके असत्यातवं भागमात्र काल सासा-  
दन गुणस्थानमें रहकर मरा और मनुष्य होगया । यहाँपर सात मास गर्भमें रहकर  
निकला तथा सात वर्ष और अन्तर्मुहूर्तसे अधिक पांच मास वितारकर ( २ ) वेदक-  
सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ ( ३ ) । पुनः अनन्तानुबन्धीरुपायका विसंयोजन करके ( ४ ) दर्शन-  
मोहनीयका क्षयकर ( ५ ) अपमत्त ( ६ ) प्रमत्त ( ७ ) पुनः अपमत्त ( ८ ) हो, पुनः अपूर्व-

(१४) पिचवाणं गदो । एवं चोद्दसअंतोसुदुत्तेहि आवलियाए असंखेज्जदिभागणे अब्भहियेहि अद्दवस्सेहि य उणमद्दपोगलपरियइमंतरं हेदि । एत्थुववज्जतो अत्थो बुचदे । तं जथा- सासणं पडिवण्णविदियसमए जदि मरदि, तो पियमेण देवगदीए उववज्जदि । एवं जाम आवलियाए असंखेज्जदिभागो देवगदिपाओगो कालो हेदि । तदो उवरि मणुसगदिपाओगो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो कालो होदि । एवं सण्णिपंचिदिय-तिरिस्स-असण्णिपंचिदियतिरिक्ख-चउरिदिय-तेइंदिय-तेइंदिय-एइंदियपाओगो होदि । एसो पियमो सच्चत्थ सासणगुणं पडिवज्जमाणणं ।

सम्माभिच्छादिद्विस्स गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एससमओ, उक्कस्सेण पलि-दोमस्स असंखेज्जदिभागो । एत्थ दव-कालतरअप्पावहुगस्स सासणभंगो । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोसुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्दपोगलपरियइं देखणं । गवरि एत्थ त्रिसो उच्चदे- एकको तिरिक्खो अणादियमिच्छादिद्वी तिण्णि करणाणि काज्जण सम्मत्तं पडि-वण्णपडमसमए अद्दपोगलपरियइमेत्तं संसारं काज्जण पडमसम्मत्तं पडिवण्णो सम्मा-भिच्छत्तं गदो (१) मिच्छत्तं गंतूण (२) अद्दपोगलपरियइं परियइदूण दुचरिमभवे

करणादि छह गुणस्थानोंसम्बन्धी छह अन्तर्मुहूर्तोंसे (१४) निर्वाणको प्राप्त हुआ । इस प्रकार चोदह अन्तर्मुहूर्तोंसे तथा आवलीके असंख्यातवें भागसे अधिक आठ वर्षोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है ।

अथ यहांपर उपयुक्त होनेवाला अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है- सासादन गुणस्थानको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमें यदि वह जीव मरता है तो नियमसे देवगतिमें उत्पन्न होता है । इस प्रकार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल देवगतिमें उत्पन्न होनेके योग्य होता है । उसके ऊपर मनुष्यगतिके योग्य काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकारसे आगे आगे सभी पंचेन्द्रिय तिर्यच, असंखी पंचेन्द्रिय तिर्यच, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होने योग्य होता है । यह नियम सर्वत्र सासादन गुणस्थानको प्राप्त होनेवालोंका जानना चाहिए ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पत्योपमेके असंख्यातवें भागप्रमाण अंतर है । यहा पर द्रव्य, काल और अन्तर सम्बन्धी अत्यद्बल्य सासादनगुणस्थानके समान है । इसी गुणस्थानका अन्तर एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे देशीन अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल है । केवल जो विशेषता है उसे कहते हैं- अनादि मिथ्यादृष्टि एक तिर्यच तीनों करणोंको करके सम्यक्त्वके प्राप्ति होनेके प्रथम समयमें अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र संसारकी स्थितिको करके प्रथमपशमसम्यक्त्वको प्राप्ति हुआ और 'सम्यग्मिथ्यात्वको गया (१) फिर मिथ्यात्वको आकर (२) अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण परिभ्रमण करके द्विचरम भवमें पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें

पंचिदियतिरिक्खेसु उववज्जिय मणुसाउअं बांधिय अवसाणे उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय सम्माभिच्छत्तं गदो (३) । लद्धमंतरं । तदो मिच्छत्तं गदो (४) मणुसेसुववण्णो । उवरि सासणभंगो । एवं सत्तारसअंतोसुहुत्तवम्भहिय-अद्दवस्सेहि उणमद्दपोगलपरियइं सम्मा-भिच्छत्तुक्कस्संतरं हेदि ।

असंजदस्समादिद्विस्स गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोसुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्दपोगलपरियइं देखणं । गवरि त्रिसो उच्चदे- एकको अणादियमिच्छादिद्वी तिण्णि करणाणि काज्जण पडमसम्मत्तं पडिवण्णो (१) उवसम-सम्मत्तद्वाए छावलिवावसेसाए आसाणं गंतूणतरिदो । अद्दपोगलपरियइं परियइदूण दुचरिमभवे पंचिदियतिरिक्खेसु उववण्णो । मणुसेसु वासपुधत्ताउअं बांधिय उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो । तदो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताए वा एवं गंतूण समज्जणछावलिय-मेत्ताए वा उवसमसम्मत्तद्वाए सेसाए आसाणं गंतूण मणुमगदिपाओगम्हि मदो मणुसो जादो (२) । उवरि सासणभंगो । एवं पण्णारसेहि अंतोसुहुत्तेहि अब्भहियअद्द-वस्सेहि उणमद्दपोगलपरियइं सम्मत्तुक्कस्संतरं हेदि ।

उत्पन्न होकर मनुष्य आयुको बांधकर अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर सम्यग्मिथ्यात्वको गया (३) । इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ । पुनः मिथ्यात्वको गया (४) और मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । इसके पश्चात्का कथन सासादनसम्यग्दृष्टिके समान ही है । इस प्रकार सत्तरह अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

असंयतसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे देशीन अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अन्तरकाल है । केवल जो विशेषता है वह कही जाती है- एक अनादिमिथ्यादृष्टि जीव तीनों ही करणोंको करके प्रथमपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१) और उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त होगया । पश्चात् अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल परिवर्तित होकर द्विचरम भवमें पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ । पुनः मनुष्योंमें वर्षपृथक्त्वकी आयुको बांधकर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पीछे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र कालके, अथवा यहांसे लगाकर एक समय कम छह आवली कालप्रमाण तक, उपशमसम्यक्त्वके कालमें अवशेष रह जानेपर सासा-दन गुणस्थानको जाकर मनुष्यगतिके योग्य कालमें मरा और मनुष्य हुआ (२) । इसके ऊपर सासादनके समान कथन जानना चाहिए । इस प्रकार पन्द्रह अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

संज्ञासंज्ञादाणं गाणाजीवं पडुच्च गलिय अतरं; एगजावं पडुच्च जहणेण अतो-  
मुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोगलपरियइं देवणं । एत्थ त्रिसो उच्चदे- एकको अणादिय-  
मिच्छादिद्वी अद्धपोगलपरियइस्मादियमाए उवमसम्मत्तं संजमासंजमं च सुगवं पडि-  
नयो ( १ ) छात्रलियात्रेमाए उवमममत्तद्वाए आसाणं गंतूणंतरिदो मिच्छत्तं गदो ।  
अद्धपोगलपरियइं परिभमिय दूचरिमे भेवे पंचिदियतिरिक्खेसु उपपज्जिय उवसमसम्मत्तं  
संजमासंजमं च सुगवं पडिवणो ( २ ) । लद्धमंतरं । तदो मिच्छत्तं गदो ( ३ ) आउअं  
बंधिय ( ४ ) त्रिस्समिय ( ५ ) कालं गदो मणुसेसु उववणो । उचरि सासणभंगो ।  
एवमद्धारमंतोमुहुत्तत्त्वभहिय-अद्धत्तस्सेहि ऊणमद्धपोगलपरियइं संज्ञासंज्ञदुक्कस्संतरं  
होदि । तिरिक्खेसु संजमासंजमगहणादो पुब्बमेव मिच्छादिद्वी मणुसाउअं किण्ण वंधा-  
निदो ? ण, वद्धमणुसाउमिच्छादिद्विस्स संजमगहणाभावा ।

**पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खपज्जत-पंचिदियतिरिक्ख-  
जोणिणीसु मिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, गाणाजीवं  
पडुच्च गलिय अंतरं, णिरंतरं ॥ ३९ ॥**

संज्ञासंज्ञादाणं नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीवकी अपेक्षा  
जगन्त्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल अन्तर है । यहांपर  
जो विशेषता है उसे कहते हैं- एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव अर्धपुद्गलपरिवर्तनके आदि  
समयमें उपरामसम्यक्त्वको और संयमासंयमको युगपत् प्राप्त हुआ ( १ ) उपरामसम्य-  
क्त्वके फालमें छह आवलियां अवशेष रह जानेपर सासादनको जाकर अन्तरको प्राप्त  
होता हुआ मिथ्यात्वमें गया । पश्चात् अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल परिश्रमण करके द्विचरम  
भवमें पंचेन्द्रियतिर्यचोंमें उत्पन्न होकर उपरामसम्यक्त्वको और संयमासंयमको युगपत्  
प्राप्त हुआ ( २ ) । इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ । पश्चात् मिथ्यात्वको गया ( ३ ) व आयु  
शोधकर ( ४ ) विधाम ले ( ५ ) मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । इसके ऊपर सासादनका  
ही क्रम है । इस प्रकार अद्वारह अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षोंसे कम अर्धपुद्गलपरि-  
वर्तनकाल संज्ञासंज्ञातका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

शंका—तिर्यचोंमें संयमासंयम ग्रहण करनेसे पूर्व ही उस मिथ्यादृष्टि जीवको  
मनुष्य आयुका बंध क्यों नहीं कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मनुष्यायुको बाध लेनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके संयमका  
ग्रहण नहीं होता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यचपर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमितियोंमें  
मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है,  
नित्तर है ॥ ३९ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

**एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४० ॥**

कुदो ? तिण्हं पंचिदियतिरिक्खाणं तिणिण मिच्छादिद्वीवि दिट्ठमणे सम्मत्तं  
गेदूण सञ्जहणकालेण पुणो मिच्छत्ते गेण्हाविदे अंतोमुहुत्तकालवलंभा ।

**उक्कस्सेण तिणिण पलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ४१ ॥**

तं जधा- तिणिण तिरिक्खा मणुसा वा अट्टावीसंतकम्मिया तिरिक्खेवमाउ-  
द्विदिएसु पंचिदियतिरिक्खकुक्खुड-मक्कडादिएसु उववणणा, वे मासे गब्भे अच्छिदूण  
णिकसंता, सुहुत्तपुधत्तेण विमुद्धा वेदगसम्मत्तं पडिवणणा अवसाणे आउअं बंधिय  
मिच्छत्तं गदा । लद्धमंतरं । भूओ सम्मत्तं पडिवज्जिय कालं करिय सोधम्मसाणदेवेसु  
उववणणा । एवं वेअंतोमुहुत्तेहि मुहुत्तपुधत्तत्त्वभहिय-वेमासेहि य ऊणाणि तिणिण पलिदोव-  
माणि तिण्हं मिच्छादिद्वीणमुक्कस्संतरं होदि ।

**सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालदो  
होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ ४२ ॥**

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४० ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके तीन मिथ्यादृष्टि दृष्टमार्गी  
जीवोंको असंयतसम्यक्त्व गुणस्थानमें ले जाकर सर्वजघन्यकालसे पुनः मिथ्यात्वके  
ग्रहण करने पर अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त तीनों ही प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यचोंका अन्तर कुछ कम तीन पल्योपम-  
प्रमाण है ॥ ४१ ॥

जैसे- मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले तीन तिर्यच अथवा  
मनुष्य, तीन पल्योपमकी आयुस्थितिवाले पंचेन्द्रिय तिर्यच-विक कुम्भुट, मर्कट आदिमें  
उत्पन्न हुए व दो मास गर्भमें रहकर निकले और मुहूर्तपुत्रत्वसे विशुद्ध होकर वेदक-  
सम्यक्त्वको प्राप्त हुए और आयुके अन्तमें आगामी आयुको बांधकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुए ।  
इस प्रकारसे अन्तर प्राप्त हुआ । पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त कर और मरण करके सौधर्म-ईशान  
देवोंमें उत्पन्न हुए । इस प्रकार इन दो अन्तर्मुहूर्तोंसे और मुहूर्तपुत्रत्वसे अधिक दो  
मासोंसे कम तीन पल्योपमकाल तीनों जातिवाले तिर्यच मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर  
होता है ।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका  
अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होता है ॥ ४२ ॥

तं जहा- पंचिदियतिरिक्खतिगसासणसम्मादिट्ठिपवाहो केत्तियं पि कालं णित्तर-  
मागदो । पुणो सत्थेसु सासणेसु भिच्छत्तं पडिवण्णेसु एगसमयं सासणगुणविरहो होदण  
विदियसमए उवसमसम्मादिट्ठिजीविसु सासणं पडिवण्णेसु लद्धमेगसमयंमत्तरं । एवं चव  
तिरिक्खतिगसम्माभिच्छादिट्ठिणं पि वत्तव्वं ।

**उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४३ ॥**

तं जहा- पंचिदियतिरिक्खतिगसासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठिजीविसु सत्थेसु  
अण्णगुणं गदेसु दोण्हं गुणद्वयाणं पंचिदियतिरिक्खतिएसु उक्कस्सेण पलिदोवमस्स  
असंखेज्जदिभागमेत्तरं होदण पुणो दोण्हं गुणद्वयाणं संभमे जादे लद्धमत्तरं होदि ।

**एगजीवं पडुच जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,  
अंतोमुहुत्तं ॥ ४४ ॥**

पंचिदियतिरिक्खतिगसासणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, सम्माभिच्छा-  
दिट्ठिणं अतोमुहुत्तमेगजीवजहणत्तरं होदि । सेसं सुगमं ।

जेसे- पचेन्द्रिय तिर्यच-त्रिक सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका प्रवाह कितने ही काल  
तक निरन्तर आया । पुनः सभी सासादन जीवोंके मिथ्यात्वको प्राप्त हो जानेपर एक  
समयके लिए सासादन गुणस्थानका विरह होकर द्वितीय समयमें उपशमसम्यग्दृष्टि  
जीवोंके सासादन गुणस्थानको प्राप्त होनेपर एक समय प्रमाण अन्तरकाल प्राप्त  
होगया । इसी प्रकार तीनों ही जातिवाले तिर्यच सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका भी अन्तर  
कहना चाहिये ।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यच सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका नाना जीवोंकी  
अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमेके असंख्यातवै भागप्रमाण है ॥ ४३ ॥

जेसे- तीनों ही जातिवाले पचेन्द्रिय तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्य-  
ग्मिथ्यादृष्टि सभी जीवोंके अन्य गुणस्थानको चले जानेपर इन दोनों गुणस्थानोंका  
पचेन्द्रिय तिर्यचत्रिकमें उत्कर्षसे पल्योपमेके असंख्यातवै भागमात्र अन्तर होकर पुनः  
दोनों गुणस्थानोंके समव हो जानेपर उक्त अन्तर प्राप्त हो जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा  
जन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमेके असंख्यातवै भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४४ ॥

पचेन्द्रिय तिर्यचत्रिक सासादनसम्यग्दृष्टियोंका पल्योपमेके असंख्यातवै भाग  
और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण एक जीवका जन्य अन्तर होता है । शेष  
सुगम है ।

**उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुथत्तेणव्वमहि-  
याणि ॥ ४५ ॥**

एत्थ ताव पंचिदियतिरिक्खसासणं उच्चदे । तं जहा- एकको मणुयो गेइओ  
देवो वा एगमयावसेसाए सासणद्वए पंचिदियतिरिक्खेसु उववण्णो । तत्थ पंचा-  
णउदिपुव्वकोडिअव्वहियतिण्णि पलिदोवमाणि गमिय अवसाणे ( उवसमसम्मचं धेत्तूण )  
एगसमयावसेसे आउए आसाणं गदो कालं करिय देवो जादो । एवं दुसमऊणसगट्ठिदी  
सासणुक्कस्सत्तरं होदि ।

सम्माभिच्छादिट्ठिणमुच्चदे - एकको मणुसो अट्टाधीसंसत्कम्मिओ सण्णिपंचि-  
दियतिरिक्खसमुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ( १ ) त्रिस्सत्तो  
( २ ) विसुद्धो ( ३ ) सम्माभिच्छत्तं पडिवण्णो ( ४ ) अंतरिय पंचाणउदिपुव्वकोडीओ  
परिभमिय तिपलिदोवमिएसु उववज्जिय अवसाणे पढमसम्मचं धेत्तूण सम्माभिच्छत्तं  
गदो । लद्धमत्तरं ( ५ ) । सम्मत्तं वा भिच्छत्तं वा जेण गुणेण आउअं वद्धं तं पडिवज्जिय  
( ६ ) देवेसु उववण्णो । छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणा सगट्ठिदी उक्कस्सत्तरं होदि । एवं पंचि-

उक्त दोनों गुणस्थानवर्तों तीनों प्रकारके तिर्यचोंका अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे  
अधिक तीन पल्योपम है ॥ ४५ ॥

इनमेंसे पहले पचेन्द्रिय तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं । जेसे-  
कोई एक मनुष्य, नारकी अथवा देव सासादन गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष  
रह जानेपर पचेन्द्रिय तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ । उनमें पंचानवे पूर्वकोटिकालसे अधिक तीन  
पल्योपम धिताकर अन्तमें ( उपशमसम्यक्त्व ग्रहण करके ) आयुके एक समय अवशेष रह  
जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ और मरण करके देव उत्पन्न हुआ । इस  
प्रकार दो समय कम अपनी स्थिति सासादन गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अब तिर्यचत्रिक सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृति-  
योंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक मनुष्य, संज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यच सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें  
उत्पन्न हुआ और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो ( १ ) विश्राम ले ( २ ) विजुद्ध हो ( ३ ) सम्य-  
ग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ( ४ ) तथा अन्तरको प्राप्त होकर पंचानवे पूर्वकोटि-कालप्रमाण  
उन्हीं तिर्यचोंमें परिश्रमण करके तीन पल्योपमकी आयुवाले तिर्यचोंमें उत्पन्न होकर और  
अन्तमें प्रथम समस्त्वको ग्रहण करके सम्यग्मिथ्यात्वको गया । इस प्रकार अन्तर प्राप्त  
हुआ ( ५ ) । पीछे जिस गुणस्थानसे आयु वाधी थी उसी सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व  
गुणस्थानको प्राप्त होकर ( ६ ) देवोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी  
स्थिति ही इस गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर है । इसी प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तकोंका

दियतिरिक्त्वापञ्चरात्रं । गत्रि संचेतालीसपुत्रकोडीओ तिणिण पल्लिवमाणि च पुव्वुत्त-  
दोममयथेअनोमुत्तेहि य ज्जाणि उक्कस्संतरं होदि । एवं जोणिणीसु नि । गत्रि सम्मा-  
भिन्नादिट्ठिउक्कस्समिह अत्यि विससो । उच्चदे- एकको गेरइओ देवो वा मणुसो वा  
अट्ठवीमनंतकम्मिओ पंचिदियतिरिक्त्वाजोणिणिकुम्भुड-मक्कडेसु उववणो वे मासे गब्भे  
अच्छिय णिसंतो मुहुत्तपुत्रत्तेण तिसुद्धो सम्माभिच्छत्तं पडिचणो । पण्णारस पुव्व-  
कोडीओ परिभमिय इरसेसु उववणो । नम्मत्तेण वा भिच्छत्तेण वा अच्छिय अवसाणे  
सम्माभिच्छत्तं गदो । लद्धमंतरं । जेण गुणेण आउअं वद्धं, तेणेव गुणेण मदो देवो  
जादो । दोहि अंतोमुहुत्तेहि मुहुत्तपुत्रत्ताहिय-वेमासेहि य ज्जाणि पुव्वकोडिपुत्रत्तम्भहिय-  
तिणिण पल्लिवमाणि उक्कस्संतरं होदि । सम्मुच्छिमेसुपाइय सम्माभिच्छत्तं किण्ण  
पडिचज्जाविदो ? ण, तत्थ इत्थिवेदाभावा । सम्मुच्छिमेसु इत्थि-पुरिसेवेदा किमहं ण  
होति ? सनादो चय ।

**असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं  
पडुच णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ४६ ॥**

उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिए । विशेषता यह है कि सेंतालीस पूर्वकोटियां और पूर्वोक्त  
दो समय और उग्र अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तीन पत्योपमकाल इनका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।  
इसी प्रकार योनिमतियोंका भी अन्तर जानना चाहिए । केवल उनके सम्मगमिथ्यादृष्टि-  
सम्बन्धी उत्कृष्ट अन्तरमें विशेषता है, उसे कहते हैं- मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी  
सत्ता ररनेचाला एक नारकी, देव अथवा मनुष्य, पंचेन्द्रिय त्रियच योनिमती कुम्भुट,  
मर्हट आदिमें उत्पन्न हुआ, दो मास गर्भमें रहकर निकला व मुहूर्तपृथक्त्वसे विशुद्ध  
होकर सम्मगमिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । ( पश्चात् मिथ्यात्वमें जाकर ) पन्द्रह पूर्वकोटि-  
कालप्रमाण परिभ्रमण करके देवकुम्भ, उत्तरकुरु, इन दो भोगभूमियोंमें उत्पन्न हुआ । वहां  
सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वके साथ रहकर आयुके अन्तमें सम्मगमिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ।  
इस प्रकार अन्तर प्राप्त होगया । पश्चात् जिस गुणस्थानसे आयुको बांधा था उसी  
गुणस्थानसे मरकर देव हुआ । इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्त और मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो  
मासोंसे हान पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पत्योपमकाल उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

शंका—सम्मूर्च्छिम त्रियचोमें उत्पन्न कराकर पुनः सम्मगमिथ्यात्वको क्यों नहीं  
प्राप्त कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्मूर्च्छिम जीवोंमें स्त्रीवेदका अभाव है ।

शंका—सम्मूर्च्छिम जीवोंमें स्त्रीवेद और पुरुषवेद क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—स्वभावसे ही नहीं होते हैं ।

उक्त तीनों असंयतसम्यग्दृष्टि त्रियचोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना  
जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ४६ ॥

१ प्रतिग ' ४ ' इति पाठो नास्ति ।

कुदो ? अरांजदसम्मादिट्ठिभिरिहदपंचिदियतिरिक्त्वातिगस्स सव्वद्धमणुवलंभा ।  
**एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४७ ॥**

कुदो ? पंचिदियतिरिक्त्वातिगसतिगसजदसम्मादिट्ठीणं दिट्ठमगगाणं अण्णारुणं पडि-  
चज्जिय अइदहरकालेण पुणरागयाणमतोसुहुत्तंरुवलंभा ।

**उक्कस्सेण तिणिण पल्लिवमाणि पुव्वकोडिपुत्रत्तेणम्भहियाणि  
॥ ४८ ॥**

पंचिदियतिरिक्त्वाअसंजदसम्मादिट्ठीणं ताव उच्चदे- एको मणुसो अट्ठवीससंत-  
कम्मिओ सणिणपंचिदियतिरिक्त्वासम्युच्छिमपज्जजएसु उववणो छहि पज्जत्तीहि पज्जच-  
यदो ( १ ) निस्सतो ( २ ) तिसुद्धो ( ३ ) वेदगसम्मत्तं पडिचणो ( ४ ) संकलिद्धो  
भिच्छत्तं गंतूणंतरिय पंचाणउदिपुव्वक्कोडीओ गमेदूण तिपल्लिवोमाउट्ठिदिएसुववणो  
ओवावसेसे जीविए उवसमसम्मत्तं पडिचणो । लद्धमंतरं ( ५ ) । तदो उवमसम्मत्तद्वार  
छ आवलियाओ अत्थि ति आसाणं गंतूण देवो जादो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ज्जाणि  
पंचाणउदिपुव्वकोडिम्भहियतिणिण पल्लिवमाणि पंचिदियतिरिक्त्वाअसंजदसम्मादिट्ठीणं

—  
क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे विरहित पंचेन्द्रिय त्रियचत्रिक किसी भी  
कालमें नहीं पाये जाते हैं ।

उक्त तीनों असंयतसम्यग्दृष्टि त्रियचोका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर  
अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४७ ॥

क्योंकि, देखा है मार्गको जिन्होंने ऐसे तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय त्रियच  
असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होकर अत्यल्प कालसे पुनः उसी गुण-  
स्थानमें आनेपर अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त तीनों असंयतसम्यग्दृष्टि त्रियचोका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर  
पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पत्योपमकाल है ॥ ४८ ॥

पहले पंचेन्द्रिय त्रियच असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी  
अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ताचाला एक मनुष्य, संक्षीपंचेन्द्रियत्रियच सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें  
उत्पन्न हुआ व छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो ( १ ) विधाम ले ( २ ) विशुद्ध हो ( ३ ) वेदक-  
सम्यक्त्वको प्राप्त हो ( ४ ) संक्षिप्त हो मिथ्यात्वमें जाकर व अंतरको प्राप्त होकर पंचा-  
शवे पूर्वकोटियां विताकर तीन पत्योपमकी आयुस्थितिवाले उत्तम भोगभूमियां त्रियचोमें  
उत्पन्न हुआ और जीवनके अल्प अवशेष रहने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । इस  
प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ ( ५ ) । पश्चात् उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष  
रह जानेपर सासादन गुणस्थानमें जाकर मरा और देव हुआ । इस प्रकार पंच अन्त-  
र्मुहूर्तोंसे कम पंचाशवे पूर्वकोटियोंसे अधिक तीन पत्योपम प्रमाणकाल पंचेन्द्रिय त्रियच



उक्तसंतरं होदि ।

पंचिदियतिरिक्खपज्जत्तएसु एवं चेव । गवरि सत्तेतालीसपुव्वकोडीओ अहियाओ ति भाणिट्ठवं । पंचिदियतिरिक्खजोणिणीसु वि एवं चेव । गवरि कोच्छि विससो अत्थि, तं पस्सेमो । तं जहा- एकको अट्टावीससत्तकम्मिओ पंचिदियतिरिक्खजोणिणीसु उववणो । दोहि मासेहि गन्नादो णिक्खमिय मुहुत्तपुधत्तेण वेदगसम्मत्तं पडिवणो ( १ ) संकिलिद्धो मिच्छत्तं गंतूणतरिय पणारस पुव्वकोडीओ भमिय तिपल्लोवमाउडिदिएसु उप्पणो । असणो उवससम्मत्तं गदो । लद्धमंतरं ( २ ) । छावलियावसेसाए उवससम्मत्तद्वाए आमाणं गदो देवो जादो । दोहि अंतोमुहुत्तेहि मुहुत्तपुधत्तब्भहिय-वेमासेहि य उणा सगड्ढिदी असंजदसम्मादिट्ठिणमुक्कसंतरं होदि ।

**संजदासंजदानमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ४९ ॥**

कुदो ? संजदासंजदभिरिद्धिपंचिदियतिरिक्खतिगस्स सब्बदाणुलंभा ।

**एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५० ॥**

असंतयत्तसम्यग्दृष्टियौका उत्कृष्ट अन्तरं होता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तकर्म भी इसी प्रकार अन्तर होता है । विशेषता यह है कि इनके सेंतालीस पूर्वकोटिया ही अधिक होती है, ऐसा कहना चाहिए । पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंमें भी इसी प्रकार अन्तर होता है । केवल जो थोड़ी विशेषता है उसे कहते हैं । यह इस प्रकार है- मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंमें उत्पन्न हुआ । दो मासके पश्चात् गर्भसे निकलकर मुहुत्तपृथक्स्वमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ ( १ ) व संकृष्ट हो मिथ्यात्वमें जाकर अन्तरको प्राप्त हो पन्द्रह पूर्वकोटिकाल परिभ्रमण करके तीन पत्योपमकी आयुस्थितिवाले भोगभूमियोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ आयुके अन्तमें उपरामसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ ( २ ) । पुनः उपरामसम्यक्त्वके कालमें छह आवलिया अवशेष रह जाने पर सासा-इन गुणस्थानको प्राप्त हुआ और मरकर देव होगया । इस प्रकार दो अन्तर्मुहुत्तोंसे और मुहुत्तपृथक्स्वसे अधिक दो मासोंसे कम अपनी स्थिति असंतयत्तसम्यग्दृष्टि योनिमती तिर्यचोक्ता उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

तीनों प्रकारके संयतासंयत तिर्यचोक्ता अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ४९ ॥

स्मॉकिके, संयतासंयतोंसे रहित तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यच जीवोंका किसी भी कालमें अभाव नहीं है ।

उन्हीं तीनों प्रकारके तिर्यच संयतासंयत जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक अन्तर्मुहुत्तं है ॥ ५० ॥

कुदो ? पंचिदियतिरिक्खतिगसंजदासंजदस्स दिट्ठमग्गस्स अण्णगुणं गंतूण अहद-हरकालेण पुणारागदस्स अंतोमुहुत्तं सत्तलंभा ।

**उक्कस्सेण पुव्वकोडियुत्तं ॥ ५१ ॥**

तत्थ ताव पंचिदियतिरिक्खसंजदासंजदानं उच्चदे । तं जहा- एकको अट्टावीस-संतकम्मिओ सण्णपंचिदियतिरिक्खसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववणो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयो ( १ ) विससंतो ( २ ) विसुद्धो ( ३ ) वेदगसम्मत्तं संजमांसजमं च जुगवं पडि-वणो ( ४ ) संकिलिद्धो मिच्छत्तं गंतूणतरिय छण्णउदिपुव्वकोडीओ परिभमिय अपच्छिमाए पुव्वकोडीए मिच्छत्तेण सम्मत्तेण वा सोहम्मादिसु आउअं वंधिय अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए संजमांसजमं पडिवणो ( ५ ) कालं करिय देवो जादो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि उणाओ छण्णउदिपुव्वकोडीओ उक्कस्संतरं जादं ।

पंचिदियतिरिक्खपज्जत्तएसु एवं चेव । गवरि अट्टेतालीसपुव्वकोडीओ ति भाणिट्ठवं । पंचिदियतिरिक्खजोणिणीसु वि एवं चेव । गवरि कोह विससो अत्थि तं भणिससामो । तं जहा- एकको अट्टावीससंतकम्मिओ पंचिदियतिरिक्खजोणिणीसु उप्पणो

क्योंकि, देखा है मार्गको जिन्होंने, ऐसे तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यच संयता-संयतके अन्य गुणस्थानको जाकर अतिस्वल्पकालसे पुनः उसी गुणस्थानमें आने पर अन्तर्मुहुत्तप्रमाण काल पाया जाता है ।

उन्हीं तीनों प्रकारके तिर्यच संयतासंयत जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि-पृथक्त्व है ॥ ५१ ॥

इनमेंसे पहले पंचेन्द्रिय तिर्यच संयतासंयतोंका अन्तर कहते हैं । जैसे- मोह-कर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकर्ममें उत्पन्न हुआ, व छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो ( १ ) विश्राम ले ( २ ) विशुद्ध हो ( ३ ) वेदकसम्यक्त्व और समयमांसयमको एक साथ प्राप्त हुआ ( ४ ) तथा संकृष्ट हो मिथ्यात्वको जाकर और अन्तरको प्राप्त हो छयात्रावे पूर्वकोटिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तिम पूर्वकोटिमें मिथ्यात्व अथवा सम्यक्त्वके साथ सौधर्मादि कल्पोंकी आयुको वांधकर व जीवनेके अन्तर्मुहुत्त अवशेष रह जाने पर संयमांसयमको प्राप्त हुआ ( ५ ) और मरण कर देव हुआ । इस प्रकार पंच अन्तर्मुहुत्तोंसे हीन छयात्रावे पूर्वकोटियां पंचेन्द्रिय तिर्यच संयतासंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तकर्ममें भी इसी प्रकार अन्तर होता है । विशेषता यह है कि इनके अट्टेतालीस पूर्वकोटिप्रमाण अन्तरकाल कहना चाहिए । पंचेन्द्रिय तिर्यच योनि-मतियोंमें भी इसी प्रकार अन्तर होता है । केवल कुछ विशेषता है उसे कहते हैं । जैसे- मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंमें

वे मासे गन्धे अन्धिय निवसंतो मुहुचपुत्रेण विसुद्धो वेदगसम्मचं संजमांसजमं च शुगवं पडिपण्णो (?) । संकिल्हो मिन्धत्तं गत्तुण्ठतरिय सोलयपुव्वकोडीओ परिभमिय देसाउअं वंधिय अंतोमुहूत्तामसे जीणिए संजमांसजमं पडिपण्णो (२) । लद्धमंतरं । मदी देतो जादो । वेहि अंतोमुहूत्तेहि मुहुत्तपुधत्तवभहियचेमासेहि य ऊणाओ सोलहपुव्वकोडीओ उरुसमंतरं होदि ।

**पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालदो होदि,  
णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ५२ ॥**

सुगमेदं सुत्त ।

**एगजीवं पडुच्च जहणेण खुदाभवगहणं ॥ ५३ ॥**

कुदो ? पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तयस्स अण्णसु अपज्जत्तएसु खुदाभवगहणाउ-  
द्विदीएसु उताज्जिय पडिणियत्थि आगदस्स खुदाभवगहणमेतंतखलंभा ।

**उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोगलपरियट्टं ॥ ५४ ॥**

कुदो ? पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तयस्स अणपिदजीवेसु उप्पज्जिय आवलियाए उत्ता एआ न दो मास गभंमं रहकर निकला, मुहूर्तपुत्रत्वसे विशुद्ध होकर, वेदकसस्य-  
पत्ताओ ओर सयमासंयमतो एरु साथ प्राप्त हुआ (१) । पुन. सक्रिय हो मिथ्यात्वको जाकर, अन्तरांगों प्राप्त हो, सोलह पूर्वफोटिप्रमाण परिभ्रमण कर और देवायु बांधकर जीवनके जन्तुमूर्तप्रमाण अघटोपर रहनेपर संयमासयमको प्राप्त हुआ (२) । इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ । पञ्चात् मरकर देव हुआ । इस प्रकार दो अन्तमुहूर्तों और मुहूर्तपुत्रत्वसे अफिर दो माससे हीन सोलह पूर्वफोटिया पंचेन्द्रिय तिर्यच योन्निमतियोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तिकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ५२ ॥

यह स्रग सुगम है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तिकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभव-  
ग्रहणप्रमाण है ॥ ५३ ॥

क्योंकि, पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तिकोंका क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण आयुस्थितिवाले अन्य अपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर और लौटकर आये हुए जीवका क्षुद्रभवग्रहण-  
प्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तिकोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अनन्त-  
कालप्रमाण असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ ५४ ॥

क्योंकि, पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तिकोंके अविचक्षित जीवोंमें उत्पन्न होकर आव-

असंखेज्जिभागमेत्तपोगलपरियट्टाणि परियट्टिय पडिणियत्थिय आगंतूण पंचिदिय-  
तिरिक्खापज्जत्तेसु उप्पण्णस्म सुत्तुत्तंखलंभा ।

**एदं गदिं पडुच्च अंतरं ॥ ५५ ॥**

जीवद्वयणरिह मगणविसेसिदगुणद्वयणाणं जहणुक्कस्संतरं वत्तवं । अदीदसुत्ते  
पुणो मगणाए उच्चमंतरं । तदो णेदं घडदि त्ति आसंक्रिय गंथकचारो परिहारं भणदि-  
एवमेदं गदिं पडुच्च उत्तं सिस्समह्विप्फारणद्धं । तदो ण दोसो त्ति ।

**गुणं पडुच्च उभयदो वि गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ५६ ॥**

एदस्सत्थो- गुणं पडुच्च अंतरे भणणमाणे उभयदो जहणुक्कस्सेहितो णाणेग-  
जीवेहि वा अंतरं गत्थि, गुणंतरगहणाभावा पत्राहवोच्छेदाभावाच्च ।

**मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिद्विणमंतरं  
केवचिरं कालदो होदि, णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरं-  
तरं ॥ ५७ ॥**

लौके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण करके पुनः लौटकर पंचेन्द्रिय  
तिर्यच लब्धपर्याप्तिकोंमें उत्पन्न हुए जीवका सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है ।

यह अन्तर गतिकी अपेक्षा कहा गया है ॥ ५५ ॥

यहां जीवस्थानखंडमें मार्गणाविशेषित गुणस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर  
कहना चाहिए । किन्तु, गत सूत्रमें तो मार्गणाकी अपेक्षा अन्तर कहा है और इसलिय  
वह यहां घटित नहीं होता है । ऐसी आशंका करके ग्रंथकर्ता उसका परिहार करते हुए  
कहते हैं कि यहा यह अन्तर-कथन गतिकी अपेक्षा शिष्योकी बुद्धि विस्तुरित करनेके  
लिय किया है, अतः उसमें कोई दोष नहीं है ।

गुणस्थानकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट, इन दोनों प्रकारोंसे अन्तर नहीं है,  
निरन्तर है ॥ ५६ ॥

इसका अर्थ-गुणस्थानकी अपेक्षा अन्तर कहने पर जघन्य और उत्कृष्ट, इन दोनों  
ही प्रकारोंसे, अथवा नाना जीव और एक जीव इन दोनों अपेक्षाओंसे, अन्तर नहीं है;  
क्योंकि, उनके मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके सिवाय अन्य गुणस्थानके ग्रहण करनेका अभाव  
है, तथा उनके प्रवाहाका कमी उच्छेद भी नहीं होता है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्तक और मनुष्यनिर्योमं मिथ्यादृष्टि जीवोंका  
अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ५७ ॥

सुगममंदं सुतं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुतं ॥ ५८ ॥

कुदो ? तिविहमणुसमिच्छादिद्विस्स दिट्ठमग्गस्स गुणंतरं पडिचज्जिय अइदहर-  
कालेण पडिणियत्तिय आगदस्स सब्बजहण्णेतोसुहुत्तं तल्लंभा ।

उक्कस्सेण तिणिण पलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ५९ ॥

ताव मणुसमिच्छादिद्वीणं उच्चदे । तं जथा- एकको तिरिक्खो मणुस्सो वा  
अट्ठवीसंतकम्मियो तिविहोवमिणुसु मणुसेसु उववण्णो । णव मासे गन्धे अचिच्छदो ।  
उत्ताणसेज्जाए अंगुलिआहारेण सत्त, रंगंतो सत्त, अथिरगमणेण सत्त, थिरगमणेण सत्त,  
कलासु सत्त, गुणेषु सत्त, अण्णे वि सत्त दिवसे गमिय विमुद्धो वेदगसम्मत्तं पडिचण्णो ।  
तिणिण पलिदोवमाणि गमेदूण मिच्छं गदो । लद्धमंतरं ( ? ) । सम्मत्तं पडिचज्जिय ( २ )  
मदो देवो जादो । एगूणवण्णदिवसम्बहियणमहि मासेहि वेअंतोमुहुत्तेहि य उणाणि तिणिण  
पलिदोवमाणि मिच्छनुक्कसंतरं जाद । एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणिसु वत्तवं, भेदाभावा ।

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य मिथ्यादृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर-  
अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५८ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी तीनों ही प्रकारके मनुष्य मिथ्यादृष्टिके किसी अन्य गुणस्थानको  
प्राप्त होकर अति स्वरूपकालसे लौटकर आजाने पर सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर-  
पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य मिथ्यादृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर-  
कुछ कम तीन पत्योपम है ॥ ५९ ॥

उन्मत्ते पहले मनुष्य सामान्य मिथ्यादृष्टिका अन्तर कहते हैं । वह इस प्रकार है-  
मोहकर्मकी अट्टारिन्न प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक तिर्यच अथवा मनुष्य जीव तीन  
पत्योपमकी स्थितिवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । नो मास गर्भमें रहकर निकला । फिर  
उत्तानशाय्याने अंगुष्ठनो चूलते हुए सात, रंगते हुए सात, अस्थिर गमनसे सात, स्थिर  
गमनसे सात, लज्जाओंमें सात, गुणोंमें सात, तथा और भी सात दिन वितानकर विशुद्ध हो  
देवकर्मस्वकी प्राप्त हुआ । पश्चात् तीन पत्योपम वितानकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस  
प्रकारसे अन्तर प्राप्त होगया ( १ ) । पीछे सम्यक्त्वको प्राप्त होकर ( २ ) मरा और देव  
होगया । इस प्रकार उनचास दिनोंसे अधिक नो मास और दो अन्तर्मुहूर्तसे कम तीन  
पत्योपम सामान्य मनुष्यके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकारसे मनुष्य  
पर्याप्त और मनुष्यनिर्योमें अन्तर कक्षाया चाहिए, क्योंकि, इनसे उनमें कोई भेद नहीं है ।

सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ ६० ॥

कुदो ? तिविहमणुसेसु द्विदमासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्विगुणपरिणदजीविसु  
अणुणुणं गदेसु गुणंतरस्स जहणणेण एगसमयदंसणादो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६१ ॥

कुदो ? सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्विगुणद्वारेहि विणा तिविहमणुसाणं  
पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालमवद्वृणदंसणादो ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,  
अंतोमुहुतं ॥ ६२ ॥

सासणसम जहणंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । कुदो ? एत्तिएण कालेण  
विणा पढमसम्मत्तगहणपाओगाए सम्मत्त-सम्माभिच्छादिद्वीए सागरोवमपुधत्तादो  
हेट्ठिमाए उप्पत्तीए अभावा । सम्माभिच्छादिद्विस्स अंतोमुहुत्तं जहणंतरं, अणुणुणं

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका  
अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर  
है ॥ ६० ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके मनुष्योंमें स्थित सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्य-  
ग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे परिणत सभी जीवोंके अन्य गुणस्थानको चले जानेपर इन गुण-  
स्थानोंका अन्तर जघन्यसे एक समय देखा जाता है ।

उक्त मनुष्योंका उत्कृष्ट अन्तर पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ ६१ ॥  
क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके विना तीनों ही  
प्रकारके मनुष्योंके पत्योपमके असंख्यातवें भागमात्र काल तक अवस्थान देखा जाता है ।  
उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः  
पत्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६२ ॥

सासादन गुणस्थानका जघन्य अन्तर पत्योपमका असंख्यातवा भाग है, क्योंकि,  
इतने कालके विना प्रथमसम्यक्त्वके ग्रहण करने योग्य सागरोपमपुत्रस्त्वसे नीचे  
होनेवाली सम्यक्त्वप्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी स्थितिकी उत्पत्तिका अभाव  
है । सम्यग्मिथ्यादृष्टिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है, क्योंकि, उसका अन्य गुणस्थानको

१ सासादनसम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टयोननिजनिवायक्या सामान्यत्त्वं । स वि १, ८

२ एगजाव प्रति जघन्येन पत्योपमामयेयानागोऽन्तर्मुहूर्तं । म वि १, ८

गंतूण अंतोमुहुत्तेण पुणारागपुवल्भा ।

**उक्कस्सेण तिण्णि पल्लोवमाणि पुव्वकोडिपुत्तेणव्वभहियाणि**  
॥ ६३ ॥

मणुमगावणमम्मादिट्ठिणं ताव उच्चदे- एक्को तिरिक्खो देवो णेरइओ वा मावणद्दाए एगो ममओ अत्थि ति मणुमो जादो । विदियसमए मिच्छत्तं गंतूण अंतरिय सत्तेतालीयपुव्वकोडिअव्वभहियत्तिणि पल्लोवमाणि भमिय पच्छा उवसममम्मत्तं गदो । तस्सि एगो ममओ अत्थि ति सामणं गंतूण मदो देवो जादो । दुसमज्जणा मणुसुक्कस्स-ट्ठिदी' सासणुक्कस्संतरं जादं ।

सम्माभिच्छदिट्ठिस्म उच्चदे- एक्को अट्ठवीससंतकम्मिओ अण्णगदीदो आगदो मणुमेसु उमण्णो । गम्भादिअट्ठवस्सेसु गदेसु विसुदो सम्माभिच्छत्तं पडिचण्णो ( १ ) । मिच्छत्तं गदो सत्तेतालीसपुव्वकोडीओ गमेदूण तिपल्लोवमिएसु मणुसेसु उवचण्णो आउअं अंधिय अमणो सम्माभिच्छत्तं गदो । लद्धमंतरं ( २ ) । तदो मिच्छत्त-सम्मत्ताणं जेण आउअं चद्धं तं गुणं गंतूण मदो देवो जादो ( ३ ) । एवं तीहि अंतोमुहुत्तेहि अट्ठवस्सेहि जाकर अन्तमुहुत्तं पुनः आगमन पाया जाता है ।

उक्त मनुष्याका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपर्युत्थवत्त्वे अधिक तीन पत्योपम-काल है ॥ ६३ ॥

पहले मनुष्य मासादनसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक तिर्यच, देव अथवा नारकी जीव सासादन गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष रहने पर मनुष्य हुआ । द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको जाकर और अन्तरको प्राप्त होकर सैतालीस पूर्व-कोटियोंमें अधिक तीन पत्योपमकाल परिभ्रमणकर पछि उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । उस उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय अवशेष रहनेपर सासादन गुणस्थात्वको जाकर मरा और देव होगया । इस प्रकार दो समय कम मनुष्यकी उत्कृष्ट स्थिति मासादन गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर होगया ।

अब मनुष्यसम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव अन्य गतिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि लेकर आठ वर्योके व्यतीत होने पर विशुद्ध हो सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ( १ ) । पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ, सैतालीस पूर्वकोटिया विताकर, तीन पत्योपमकी स्थिति-पहले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और आयुको बांधकर अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अन्तर लब्ध हुआ ( २ ) । तत्पश्चात् मिथ्यात्व और सम्यक्त्वमेंसे जिसके द्वारा आयु याधी थी, उसी गुणस्थानको जाकर मरा और देव होगया ( ३ ) । इस प्रकार तीन

१ उक्तोपेण गीणि पत्योपमानि पूर्वकोटिपर्युत्थवत्त्वेत्यधिकानि । स ति १, ८.

२ प्रथिणु ' दुसमज्जाणामणुक्कस्सिट्ठिदी ' इति पाठ ।

य ज्जणा सगाट्ठिदी सम्माभिच्छसुक्कस्संतरं ।

एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीणं पि । णवरि मणुसपज्जत्तेसु तेवीस पुव्वकोडीओ, मणुसिणीसु सत्त पुव्वकोडीओ तिसु पल्लोवमेसु अहियाओ त्ति वत्तव्वं ।

**असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ६४ ॥**

सुगममेदं सुत्तं ।

**एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६५ ॥**

कुदो ? तिविहमणुसेसु डिदअसंजदसम्मादिट्ठिस्स अण्णसुणं गंतूणंतरिय पडिणिय-त्तिय अंतोमुहुत्तेण आगमणुवलभा ।

**उक्कस्सेण तिण्णि पल्लोवमाणि पुव्वकोडिपुत्तेणव्वभहियाणि**  
॥ ६६ ॥

मणुसअसंजदसम्मादिट्ठीणं ताव उच्चदे- एक्को अट्ठवीससंतकम्मिओ अण्णगदीदो अन्तमुहुत्तं और आठ वर्योसे कम अपनी स्थिति सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर है ।

इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिर्योका भी अन्तर जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि मनुष्यपर्याप्तकोंमें तेवीस पूर्वकोटियां और तीन पत्योपमका अन्तर कहना चाहिए । और मनुष्यनिर्योमें सात पूर्वकोटियां तीन पत्योपमोंमें अधिक कहना चाहिए ।

असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यत्रिकका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ६४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा मनुष्यत्रिकका जघन्य अन्तर अन्तमुहुत्तं है ॥ ६५ ॥

क्योंकि, तीन प्रकारके मनुष्योंमें स्थित असंयतसम्यग्दृष्टिका अन्य गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त हो और लौटकर अन्तमुहुत्तसे आगमन पाया जाता है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यत्रिकका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपर्युत्थवत्त्वेसे अधिक तीन पत्योपम है ॥ ६६ ॥

इनमेंसे पहले मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- अट्ठईस मोह-

१ अयपतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवपेक्षया नास्त्यन्तरम् । स ति १, ८

२ एक्कीवापेक्षया जघन्येनान्तमुहुत्तं । स ति. १, ८.

३ उत्तर्येण गीणि पत्योपमानि पूर्वकोटिपर्युत्थवत्त्वेत्यधिकानि । स ति १, ८.

आगदो मनुष्येसु उच्यन्ते । गन्धादिअह्वयस्सेसु गेदसु विदुदो वेदगामम्मत्तं पडिवण्णो (१) । भिच्छत्तं गंतूणतरिय मत्तेचालीसपुव्वकोडीओ गमेदूण तिपलिदेवमिएसु उच्यन्ते । तदो चदाउओ संतो उच्यन्ते उच्यन्ते पडिवण्णो (२) । उच्यन्ते उच्यन्ते चदाउओ च आवलियावेसेसाए साणं गंतूण मदो देवो जादो । अह्वयस्सेहि वेदि अंतोमुदुत्तेहि उणा सगट्टिदी असंजद-मम्मादिद्वीणं उच्यन्ते होदि । एवं मनुष्यसज्जत्त-मनुष्यसिणीणं पि । गवरि तेवीस-सत्त-पुव्वकोडीओ तिपलिदेवमेसु अहियाओ चि वचत्वं ।

**संजदासंजदपहुडि जाव अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, गाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ६७ ॥**  
मुगमेदं मुत्तं ।

**एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुदुत्तं ॥ ६८ ॥**

द्वो ? तिविहमनुष्येसु द्विदतिगुणद्वयणजीवस्स अपणगुणं गंतूणतरिय पुणो अंतो-मुदुत्तेण पौराणगुणस्सागधुवलंभा ।

प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव अन्यगतिसे आया और मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । पुनः गर्भको आदि लेकर आठ वर्षके बचनेपर विद्युत् हो वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१) । पुनः मित्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो सैतालीस पूर्वकोटिया वितार तीन पत्थोपमवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । तत्पश्चात् आयुको बांधता हुआ उपशमसम्य-त्त्वको प्राप्त हुआ (२) । उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहनेपर सासावन गुणस्थानको जाकर मरा और देव हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और दो अन्त-मुदुत्तोंसे कम अपनी स्थिति असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर है ।

इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिर्योका भी अन्तर कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि मनुष्यपर्याप्त असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर तेईस पूर्वकोटियां तीन पत्थोपममें अधिक तथा मनुष्यनिर्योके सात पूर्वकोटियां तीन पत्थोपममें अधिक होती हैं, ऐसा कहना चाहिए ।

संयतासंयतोंसे लेकर अप्रमत्तसंयतों तकके मनुष्यत्रिकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ६७ ॥  
यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जयन्य अन्तर अन्तर्मुदुत्त है ॥ ६८ ॥  
अर्थात्, तीन प्रकारके मनुष्योंमें स्थित संयतासंयतादि तीन गुणस्थानवर्ती जीवका अन्य गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त होकर और पुनः लौटकर अन्तर्मुदुत्त प्राण पुराने गुणस्थानका होना पाया जाता है ।

१ संज्ञापरममणमयवानी नानाजीवसेया नास्त्यत्तर । स मि १, ८

२ पृच्छीर नो क्वचिन्मत्तमुदुत्तं । स मि १, ८

**उच्यन्तेसु पुव्वकोडियुत्तं ॥ ६९ ॥**

मनुष्यसंजदासंजदाणं ताव उच्यन्ते- एकको अह्वयसंयतकम्मिओ अपणगदीदो आंगत्तूण मनुष्येसु उच्यन्ते । अह्वयस्सिओ जादो वेदगामम्मत्तं संजमासंजमं च समगं पडिवण्णो (१) । भिच्छत्तं गंतूणतरिय अह्वयसंयतपुव्वकोडीओ परिभमिय अवसाणे देवाउअं वंधिय संजमासंजमं पडिवण्णो । लद्धमंतरं (२) । मदो देवो जादो । एवं अह्वयस्सेहि वे-अंतोमुदुत्तेहि य उणाओ अह्वयसंयतपुव्वकोडीओ संजदासंजदुक्कस्संतरं होदि ।

पमत्तस्स उच्यन्ते उच्यन्ते- एकको अह्वयसंयतकम्मिओ अपणगदीदो आंगत्तूण मनुष्येसु उच्यन्ते । गन्धादिअह्वयस्सेहि वेदगामम्मत्तं संजमं च पडिवण्णो अपमत्तो (१) पमत्तो होदूण (२) भिच्छत्तं गंतूणतरिय अह्वयसंयतपुव्वकोडीओ परिभमिय अपच्छिमाए पुव्वकोडीए चदाउओ संतो अपमत्तो होदूण पमत्तो जादो । लद्धमंतरं (३) । मदो देवो जादो । तिण्णिअंतोमुदुत्तवच्यन्ते अह्वयसंयतपुव्वकोडीओ पमत्तुक्कस्संतरं होदि ।

उक्त तीनों गुणस्थानवाले मनुष्यत्रिकोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटीपृथक्त्व है ॥ ६९ ॥

इन्मेंसे पहले मनुष्य संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अह्वयसंयत प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक जीव अन्यगतिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हो आठ वर्षका हुआ । और वेदकसम्यक्त्व तथा संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । पुनः मित्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो अह्वयसंयत पूर्वकोटियां परिभ्रमण कर आयुके अन्तमें देवायुको बांधकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे उक्त अन्तर लब्ध हुआ (२) । पुनः मरा और देव हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और दो अन्तर्मुदुत्तोंसे कम अह्वयसंयत पूर्वकोटियां संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है

अत्र प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अह्वयसंयत प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक जीव अन्यगतिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । पुनः गर्भको आदि लेकर आठ वर्षसे वेदकसम्यक्त्व और संयमको प्राप्त हुआ । पश्चात् वह अप्रमत्तसंयत (१) प्रमत्तसंयत होकर (२) मित्यात्वमें जाकर और अन्तरको प्राप्त होकर, अह्वयसंयत पूर्वकोटियां परिभ्रमण कर अन्तम पूर्वकोटिमें चदायुक्क होता हुआ अप्रमत्तसंयत होकर पुनः प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकारसे अन्तर लब्ध होगया (३) । पश्चात् मरा और देव होगया । इस प्रकार तीन अन्तर्मुदुत्तोंसे अधिक आठ वर्षसे कम अह्वयसंयत पूर्वकोटियां प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अप्रमत्तस्य उक्तरसंतरं उच्चैर्- एकको अद्वावीसंतकस्मिओ अण्णगदीदो आंगत्तण मणुपेसु उप्वज्जिय गम्भादिअद्दवस्मिओ जादो । सम्मत्तं अप्पमत्तगुणं च जुगवं पंडियणो ( १ ) । पमत्तो होद्वूणंतरिदो अद्दतालीसपुव्वकोडीओ परिभमिय अप्पिच्छामए पुव्वकोडीए वद्देवाउओ संतो अप्पमत्तो जादो । लद्धसंतरं ( २ ) । तदो पमत्तो होद्वूण ( ३ ) मद्रो देवो जादो । तीहि अंतोमुहुत्तेहि अब्भहियअद्दवस्सेहि उणाओ अद्दतालीस-पुव्वकोडीओ उक्तरसंतरं । पज्जत्त-मणुसिणीसु एवं चैव । गवरि पज्जत्तेसु चउवीस-पुव्वकोडीओ. मणुसिणीसु अद्दपुव्वकोडीओ चि वत्तवं ।

**चट्टणहुववसामगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ७० ॥**

कुदो ? तिथिहमणुस्साणं चउच्चिहउवसामगेहि विणा एगसमयावद्वाणुवलंभा ।

उक्त्सेण वासपुधत्तं ॥ ७१ ॥

कुदो ? तिथिहमणुस्साणं चउच्चिहउवसामगेहि विणा उक्त्सेण वासपुधत्तवद्वाणु-वलंभादो ।

अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अद्वाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक जीव अन्य गतिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न होकर गर्भको आदि लेकर आठ वर्षका हुआ और सम्यक्त्व तथा अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्तसंयत हो अन्तरको प्राप्त हुआ और अद्दतालीस पूर्वकोटिया परिभ्रमण कर अन्तिम पूर्वकोटिमें देवायुको जाघता हुआ अप्रमत्तसंयत होगया। इस प्रकारसे अन्तर प्राप्त हुआ (२)। तत्पश्चात् प्रमत्तसंयत होकर (३) मरा और देव होगया। ऐसे तीन अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षोंसे कम अद्दतालीस पूर्वकोटियां उत्कृष्ट अन्तर होता है।

पर्याप्त मनुष्यनियोंमें इसी प्रकारका अन्तर होता है। विशेष बात यह है कि इन पर्याप्तमनुष्योंके चौबीस पूर्वकोटि और मनुष्यनियोंमें आठ पूर्वकोटिकालप्रमाण अन्तर कहना चाहिए।

चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यमे एक समय अन्तर है ॥ ७० ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके मनुष्योंका चारों प्रकारके उपशामकोंके विना एक समय अवस्थान पाया जाता है।

चारों उपशामकोंका उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है ॥ ७१ ॥

क्योंकि, तीनों प्रकारके मनुष्योंका चारों प्रकारके उपशामकोंके विना उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व रखनेवाला पाया जाता है।

१ मनुष्यप्रथमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यत्वं । म नि १, ८

**एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७२ ॥**

सुगममेदं सुत्तं, ओषन्दि उच्चत्तादो ।

**उक्त्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ॥ ७३ ॥**

मणुस्साणं ताव उच्चैर्- एवतो अद्दवीसंतकस्मिओ मणुसेसु उववणो गम्भादि-अद्दवस्सेहि सम्मत्तं संजमं च समगं पंडियणो ( १ ) । पमत्तापमत्तसंजदद्वुणे सादासाद-बंधपरवत्तिसहस्सं कादूण ( २ ) दंसणमोहणीयमुवसाभिय ( ३ ) उवासमसेदीपाओग-अपमत्तो जादो ( ४ ) । अपुव्वो ( ५ ) अणियट्ठी ( ६ ) सुहुमो ( ७ ) उवसंतो ( ८ ) सुहुमो ( ९ ) अणियट्ठी ( १० ) अपुव्वो ( ११ ) अपमत्तो होद्वूणंतरिदो । अद्दतालीस-पुव्वकोडीओ परिभमिय अप्पिच्छामए पुव्वकोडीए वद्देवाउओ सम्मत्तं संजमं च पंडि-वज्जिय दंसणमोहणीयमुवसाभिय उवसमसेदीपाओगविसोहीए विसुल्लिय अपमत्तो होद्वूण अपुव्वो जादो । लद्धसंतरं । तदो णिहा-यलाणं बंधवोच्छेदपढमसमए कालं गदो देवो जादो । अद्दवस्सेहि एककारसअंतोमुहुत्तेहि य अपुव्ववद्वाए सत्तमभारोण च उणाओ जादो । अद्दतालीसपुव्वकोडीओ उक्त्सरसंतरं होदि । एवं चैव तिण्हमुधसामगणं । गवरि दमहि

उक्त गुणस्थानोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७२ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, ओषमं कहा जा चुका है।

चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व है ॥ ७३ ॥

इसमेंसे पहले मनुष्य सामान्य उपशामकोंका अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अद्वाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ, और गर्भको आदि लेकर आठ वर्षसे सम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें साता और असाता वेदनीयके बंध परावर्तन-सदृशोंको करके (२) दर्शनमोहनीयका उपशाम करके (३) उपशामश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (४)। पुनः अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसाप्पराय (७) उपशान्त-कपाय (८) सूक्ष्मसाप्पराय (९) अनिवृत्तिकरण (१०) अपूर्वकरण (११) और अप्रमत्त-संयत हो अन्तरको प्राप्त होकर अद्दतालीस पूर्वकोटियों तक परिभ्रमण कर अन्तिम पूर्वकोटिमें देवायुको बांध कर सम्यक्त्व और संयमको युगपत् प्राप्त होकर दर्शन-मोहनीयका उपशामकर उपशामश्रेणीके योग्य विशुद्धिसे विशुद्ध होता हुआ अप्रमत्तसंयत होकर अपूर्वकरणसंयत हुआ। इस प्रकारसे अन्तर उपलब्ध होगया। तत्पश्चात् निद्रा और प्रचलोकके बंध-विच्छेदके प्रथम समयमें कालको प्राप्त हो देव हुआ। इस प्रकार आठ वर्ष और ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे तथा अपूर्वकरणके सप्तम भागसे कम अद्दतालीस पूर्वकोटिकाल उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकारसे शेष तीन उपशामकोंका भी अन्तर

१ एकजीव प्रति जव येनात्तर्मुहुत्तं । स सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण पूर्वकोटीपृथक्त्वानि । स. सि. १, ८.

गमहि अट्टहि अतोपुहुत्तेहि एगसमयाहियअट्टवस्सेहि य ऊणओ अट्टेदालीसपुव्व-  
कोडीओ उक्कसंतरं होदि ति वत्तवं । पज्जत्त-मणुसिणीसु एवं चेव । गवरि पज्जत्तेसु  
चउत्तंसं पुव्वकोडीओ, मणुसिणीसु अट्ट पुव्वकोडीओ ति वत्तवं ।

चटुण्हं खवा अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि,  
णाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ ७४ ॥

कुदो ? एदेसु गुणद्वानेसु अणुणुणं गिबुद्धिं च गदेसु एदेसिगसमयमेत्त-  
जहणंतल्लंभा ।

उक्कस्सेण छम्मासं, वासपुधत्तं ॥ ७५ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्ताणं छमासमंतरं होदि । मणुसिणीसु वासपुधत्तमंतरं होदि ।  
जहामंसाए विणा कथमेदं गव्वेदे ? गुरुव्वेदेसादो ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ७६ ॥

कुदो ? भूओ आगमणाभावा । गिरंतरणिदेसो किमहं बुच्चदे ? गिगयमंतरं जम्हा  
होता है । किन्तु उनमें क्रमशः दश, नो और आठ अन्तर्मुहूर्तोंसे और एक समय अधिक  
आठ वर्षोंसे कम अट्टतालीस पूर्वकोटिया उत्कृष्ट अन्तर होता है, ऐसा कहना चाहिए ।  
मनुष्यपर्याप्तोंमें वा मनुष्यनियोंमें भी ऐसा ही अन्तर होता है । विशेषतया यह है कि  
पर्याप्तोंमें चौबीस पूर्वकोटियों और मनुष्यनियोंमें आठ पूर्वकोटियोंके कालप्रमाण अन्तर  
कहना चाहिए ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना  
जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय है ॥ ७४ ॥

क्योंकि, इन गुणस्थानोंके जीवोंसे चारों क्षपकोंके अन्य गुणस्थानोंमें तथा अयो-  
निकेवल्यिके निर्गुतिको चले जानेपर एक समयमात्र जघन्य अन्तर पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर, छह मास और वर्षपृथक्त्व होता है ॥ ७५ ॥

मनुष्य और मनुष्यपर्याप्तक क्षपक वा अयोगिकेवलियोंका उत्कृष्ट अन्तर छह मास-  
प्रमाण है । मनुष्यनियोंमें वर्षपृथक्त्वप्रमाण अन्तर होता है ।

शंका—सूत्रमें यथासंन्य पदके बिना यह बात कैसे जानी जाती है ?

गमाधान—गुरुके उपदेशसे ।

चारों क्षपकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ७६ ॥

क्योंकि, चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंके पुन आगमनका अभाव है ।

शंका—सूत्रमें निरन्तर पदका निर्देश कितन लिए है ?

गमाधान—निकल गया है अन्तर जिस गुणस्थानसे, उस गुणस्थानको निरन्तर

रंजितानं गाम्. ३३१. १. नि १, ८

गुणद्वानादो तं गुणद्वानं गिरंतरमिदि विहिमुहेण दव्वट्टियणयावलंसिस्साणं पडिसेह-  
परूवणहं ।

सजोगिकेवली ओधं ॥ ७७ ॥

गाणेगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरमिच्चदेण भेदाभावा ।

मणुसअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं  
पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ ७८ ॥

किमट्टमेदस्स एम्महंतस्स रासिस्स अंतरं होदि ? एसो सहाओ एदस्स । ण च  
सहावे बुत्तिवादस्स पव्वेसो अत्थि, भिण्णविसयादो ।

उक्कस्सेण पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७९ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण खुदाभवगहणं ॥ ८० ॥

कुदो ? अणुपिदअपज्जत्ताएसु उण्णज्जिय अइदहरकालेण आगदस्स खुदाभव-  
गहणमेत्तल्लंभा ।

कहते हैं । इस प्रकार विधिसुखसे द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बन करनेवाले शिष्योंके प्रतिपेध  
प्ररूपण करनेके लिए 'निरन्तर' इस पदका निर्देश सूत्रमें किया गया है ।  
सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ७७ ॥

क्योंकि, ओघमें वर्णित नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है,

निरन्तर है, इस प्रकारसे इस प्ररूपणमें कोई भेद नहीं है ।  
मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा

जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ७८ ॥  
शंका—इस इतनी महान् राशिका अन्तर किस लिए होता है ?

समाधान—यह तो राशियोंका स्वभाव ही है । ओर स्वभावमें युक्तिवादका

प्रवेश है नहीं, क्योंकि, उसका विषय भिन्न है ।

मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यात्वं भाग है ॥ ७९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण

है ॥ ८० ॥

क्योंकि, अविबद्धित लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर अति स्वल्पकालसे पुनः

लब्ध्यपर्याप्तकोंमें आए हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोगलपरियहं ॥ ८१ ॥

कुदो ? मणुगअपज्जत्तस्स एइंदियं गदस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागमेच-  
पोगलपरियहं परियद्विदूण पडिणियत्तिय आगदस्स सुचुंचंतखलंभा ।

एदं गदिं पडुच्च अंतरं ॥ ८२ ॥

सिम्माणंतसंभमपटुपायणदुमदं सुचं ।

गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ८३ ॥

उभयदो जहण्युक्कस्सेण णाणेगजीविहि वा णत्थि अंतरमिदि बुचं होदि । कुदो ?  
भरणमच्छडिय गुणंतरगमाहणाभावा ।

देवगदीए देवेषु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं  
कालादो होदि, णाणजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ८४ ॥

सुगमेदं सुचं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८५ ॥

उक्त लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालात्मक असंख्यात  
पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ ८१ ॥

क्योंकि, फलेन्द्रियोंमें गये हुए लक्ष्यपर्याप्त मनुष्यका आवलीके असख्यातवै  
भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन परिश्रमण कर पुनः लोटकर आये हुए जीवके सूत्रोक उत्कृष्ट  
अन्तर पाया जाता है ।

यह अन्तर गतिकी अपेक्षा कहा है ॥ ८२ ॥

यह सूत्र शिष्योंको अन्तरकी संभावना यत्नानेके लिए कहा गया है ।

गुणस्थानकी अपेक्षा तो दोनों प्रकारमें भी अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ८३ ॥  
उभयतः अर्थात् जघन्य और उत्कर्षसे, अथवा नाना जीव और एक जीवकी  
अपेक्षा अन्तर नहीं है, यह अर्थ कहा गया समझना चाहिए । क्योंकि, मार्गणाको छोड़े  
थिना लक्ष्यपर्याप्तक जीवोंके अन्य गुणस्थानका ग्रहण हो नहीं सकता ।

देवगतिमें, देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने  
काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य  
अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८५ ॥

१ देवगतीं देवानां मिथ्यादृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टयोर्नानाजीवोपेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८.

२ एगजीवं अति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि १, ८.

कुदो ? मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं दिट्ठमग्गाण देवाणं गुणंतरं गुणंतरं गंतूण अहद-  
हरकालेण पडिणियत्तिय आगदाणं अंतोमुहुत्तअंतरखलंभा ।

उक्कस्सेण एकक्कीसं सागरोवमाणि देस्सूणाणि ॥ ८६ ॥

मिच्छादिट्ठिस्स ताव उच्चदे- एको दव्वलिगी अट्ठावीससंतकम्मिओ उवरिम-  
गेवेज्जेसु उववण्णो । छहि पज्जचीहि पज्जत्तयो (१) विस्सतो (२) विसुदो (३)  
वेदगसम्मत्तं पडिबण्णो । एकक्कीसं सागरोवमाणि सम्मत्तेणंतरिय अवमाणे मिच्छत्तं  
गदो । लद्धमंतरं (४) । बुदो मणुसो जादो । चदुहि अंतोमुहुत्तेहि ज्जाणाणि एकक्कीसं  
सागरोवमाणि उक्कस्संतरं होदि ।

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे- एकको दव्वलिगी अट्ठावीससंतकम्मिओ उवरिम-  
गेवज्जेसु उववण्णो । छहि पज्जचीहि पज्जत्तयो (१) विस्सतो (२) विसुदो (३)  
वेदगसम्मत्तं पडिबण्णो (४) मिच्छत्तं गंतूणंतरिय एकक्कीसं सागरोवमाणि अच्छिदूण  
आउअं वंधिय सम्मत्तं पडिबण्णो । लद्धमंतरं (५) । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ज्जाणाणि एक-  
क्कीसं सागरोवमाणि असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्संतरं होदि ।

क्योंकि, जिन्होंने पहले अन्य गुणस्थानोंमें जाने आनेसे अन्य गुणस्थानोंका मार्ग  
देखा है ऐसे मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका अन्य गुणस्थानको जाकर अति  
स्वल्पकालसे प्रतिनिवृत्त होकर आये हुए जीवोंके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम  
इकतीस सागरोपमकालप्रमाण है ॥ ८६ ॥

इनमेंसे पहले मिथ्यादृष्टि देवका अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृति-  
योंके सत्त्ववाला एक द्रव्यलिगी साधु उपरिम श्रेयैयकोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे  
पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विद्युद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । इकतीस  
सागरोपमकाल सम्यक्त्वके साथ विताकर आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस  
प्रकारसे अन्तर लब्ध हुआ (४) । पश्चात् वहासे च्युत हो मनुष्य हुआ । इस प्रकार चार  
अन्तर्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि देवका अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके  
सत्त्ववाला कोई एक द्रव्यलिगी साधु उपरिम श्रेयैयकोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे  
पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विद्युद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४) ।  
पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो इकतीस सागरोपम रहकर और आयुको  
बंधकर, पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (५) । ऐसे पांच  
अन्तर्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल असंयतसम्यग्दृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर  
होता है ।

१ उत्कृष्टेण एगज्जसागरोवमाणि देवानाणि । स सि १, ८.



सासणसम्मादिट्टिसम्माभिच्छादिट्ठीणसंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ८७ ॥

हुदो? दोण्हं पि सांतरासीणं गिरवसेसेण अण्णगुणं गदाणं एगसमयंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८८ ॥

हुदो? एदासिं दोण्हं रासीणं सांतराणं गिरवसेसेण अण्णगुणं गदाणं उक्कस्सेण  
पलिदोवमस्स अस्संखेज्जदिभागमेते अंतरं पडि विरोहाभात्ता ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,  
अंतोमुहुत्तं ॥ ८९ ॥

सासणसम्मादिट्टिस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो अंतरं, सम्माभिच्छादिट्टिस्स  
अंतोमुहुत्तं । सेसं सुगमं, बहुसो परुविदादो ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका अन्तर कितने काल होता है ?  
नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ८७ ॥

क्योंकि, इन दोनों ही सान्तर राशियोंका निरवशेषरूपसे अन्य गुणस्थानको  
गये हुए जीवोंके एक समयप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥ ८८ ॥

क्योंकि, इन दोनों सान्तर राशियोंके सामस्वरूपसे अन्य गुणस्थानको चले  
जानेपर उक्तमे पल्योपमके असंख्यातवै भागमात्र कालमें अन्तरके प्रति कोई विरोध  
नहीं है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका अर्ध-  
रूपातां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८९ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवै भागप्रमाण है  
और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । शेष सूत्रार्थ सुगम है, क्योंकि,  
पहले बहुतभार प्रत्याण किया जा चुका है ।

१ भागसासणदृष्टिपुन्यमिथ्यादृष्टिनिर्वाणितिसंज्ञा नामान्तर । म नि १, ८

२ पल्योपम नति अप येन पल्योपमास्यसंज्ञागोऽवर्षद्वयं । स नि १, ८

उक्कस्सेण एककीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ९० ॥

सासणस्स ताबुच्चदे- एकको मणुसो दव्वलिणी उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय  
सासणं गंतूण तत्थ एगसमओ अत्थि त्ति मदो देवो जादो । एगसमयं सासणगुणेण दिट्ठो ।  
विदियसमए मिच्छत्तं गंतूणंतरिय एककीसं सागरोवमाणि गमिय आउअं बंधिय  
उवसमसम्मत्तं पडिवणो सासणं गदो । लद्धसंतरं । सासणगुणेणेगसमयमच्छिय विदिय-  
समए मदो मणुसो जादो । तिहि समएहि ऊणाणि एककीसं सागरोवमाणि सासणु-  
क्कस्संतरं ।

सम्माभिच्छादिट्टिस्स उच्चदे- एको दव्वलिणी अट्टावीससंतकम्मिओ उवरिम-  
गेवज्जेसु उववणो । छहि पज्जत्तोहि पज्जत्तयो ( १ ) विस्सतो ( २ ) विसुद्धो ( ३ )  
सम्माभिच्छत्तं पडिवणो ( ४ ) मिच्छत्तं गंतूणंतरिय एककीसं सागरोवमाणि गमिय  
आउअं बंधिय सम्माभिच्छत्तं गदो ( ५ ) । जेण गुणेण आउअं बद्धं, तेणैव गुणेण मदो  
मणुसो जादो ( ६ ) । छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि एककीसं सागरोवमाणि सम्मा-  
भिच्छत्तस्सुक्कस्संतरं होदि ।

उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती देवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपम-  
काल है ॥ ९० ॥

उनमेंसे पहले सासादनसम्यग्दृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक द्रव्यलिङ्गी  
मनुष्य उपरामसम्यक्त्वको प्राप्त हो करके और सासादनगुणस्थानको जाकर उसमें एक  
समय अवशेष रहनेपर मरा और देव होगया । वह देव पर्यायमें एक समय सासादन-  
गुणस्थानके साथ दृष्ट हुआ और दूसरे समयमें मिथ्यात्वगुणस्थानको जाकर अन्तरको  
प्राप्त हो इकतीस सागरोपम वितारकर, आयुको बांधकर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ ।  
गुण- सासादन गुणस्थानको गया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । तब सासादनगुण-  
स्थानके साथ एक समय रहकर द्वितीय समयमें मरा और मनुष्य होगया । इस प्रकार  
तीन समयोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल सासादनसम्यग्दृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर  
होता है ।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्टाईस  
प्रकृतियोंके सत्त्ववाला कोई एक द्रव्यलिङ्गी साधु उपरिम श्रेयैकर्ममें उत्पन्न हुआ । छहों  
पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो ( १ ) विश्राम ले ( २ ) विशुद्ध हो ( ३ ) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त  
हुआ ( ४ ) । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो इकतीस सागरोपम वितारकर  
आगामी भवकी आयुको बांधकर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ( ५ ) । पश्चात् जिस गुण-  
स्थानसे आयुको बांधा था, उसी गुणस्थानसे मरा और मनुष्य होगया ( ६ ) । इस प्रकार छह  
अन्तर्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

१ अन्त्यर्णनविश्रामसागरोपमाणि देशोनाति । स नि. १, ८

भवणवासियचाणवंतरजोदिसियसोधमीसाणपहुडि जाव  
सदारसहस्सारकपवासियदेवेषु मिच्छादिट्टिअसंजदसम्मादिट्टीणमंतरं  
केवचिरं कालदो होदि, गाणजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥९१॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९२ ॥

कुदो ? गणसु मणेसु वृद्धंतमिच्छादिट्टिअसंजदसम्मादिट्टीणं अण्णसुणं गंतूणंतरिय  
लद्धमागदाणं अंतोमुहुत्तंस्वलंभा ।

उक्कस्सेण सागरोवमं पल्लिदोवमं वे सत्त दस चोदस सोलस  
अट्टारस सागरोवमाणि सादिरेशाणि ॥ ९३ ॥

मिच्छादिट्टिस उच्चदे- तिरिक्खो मणुसो वा अप्पिददेवेषु सग-सगुक्कस्साउ-  
ट्टिदिप्पसु उवमणो । छहि पज्जचीहि पज्जत्तयदो ( १ ) विस्संतो ( २ ) विसुद्धो ( २ )  
वेदगामम्मत्तं पडिचणो । अंतरिदो अप्पणो उक्कस्साउट्टिमणुपालिय अवसाणे मिच्छत्तं  
गदो । लद्धमंतरं ( ४ ) । चट्टुहि अंतोमुहुत्तेहि जणाओ अप्पण्णो उक्कस्साउट्टिदीओ  
मिच्छादिट्टिउक्कस्संतरं होदि ।

भवनगसी, नान्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म-ज्ञानसे लेकर शतार-सहस्रार  
तरुके कल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल  
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ९१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त देवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ९२ ॥

पर्यँकि, भवनातिक और सहस्रार तरुके छह कल्पपटल, इन नौ स्वर्गोंमें रहने-  
गाले मिथ्यादृष्टि ओर असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंके अन्य गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त  
हो पुनः लघुकालसे आये हुएोंके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर-काल पाया जाता है ।

उक्त देवोंका उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः सागरोपम, पल्योपम और साधिक दो,  
सात, दश, चौदह, सोलह और अट्ठारह सागरोपमप्रमाण है ॥ ९३ ॥

इसमेंसे पहले मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- कोई एक तिर्यक  
अथवा मनुष्य अपने अपने स्वर्गकी उत्कृष्ट आयुवाले विवाहित देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों  
पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो ( १ ) विश्राम ले ( २ ) विशुद्ध हो ( ३ ) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त  
हो अन्तरको प्राप्त हुआ । पश्चात् अपनी उत्कृष्ट आयुस्थितिको अनुपालनकर अन्तमें  
मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अन्तर लब्ध हुआ ( ४ ) । इन चार अन्तर्मुहूर्तोंसे  
क्रम अपनी अपनी आयुस्थितियां उन उन स्वर्गोंके मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट अन्तर है ।

एवमसंजदसम्मादिट्टिस्स वि । णवरि पंचहि अंतोमुहुत्तेहि जणउक्कस्सट्टिदीओ  
अंतरं होदि ।

सासणसम्मादिट्टि-सम्माभिच्छादिट्टीणं सस्थाणोधं ॥ ९४ ॥

कुदो ? गाणजीवं पडुच्च जहणणेण एगससओ, उक्कस्सेण पल्लिदोवमस्स असं-  
खेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहणणेण पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं;  
उक्कस्सेण वेहि समएहि छहि अंतोमुहुत्तेहि जणाओ उक्कस्सट्टिदीओ अंतरमिच्छेएहि  
भेदाभावा । णवरि सग-सगुक्कस्सट्टिदीओ देखणाओ उक्कस्संतरमिदि एत्थ वत्तव्वं,  
सस्थाणोधणहाणुववत्तीदो ।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेषु मिच्छादिट्टिअसंजद-  
सम्मादिट्टीणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, गाणजीवं पडुच्च णत्थि  
अंतरं, णिरंतरं ॥ ९५ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९६ ॥

इसी प्रकारसे असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका भी अन्तर जानना चाहिए । विशेष  
चात यह हे कि उनके पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तर होता है ।

उक्त स्वर्गोंके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका अन्तर स्वस्थान  
ओषके समान है ॥ ९४ ॥

पर्यँकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे पल्योपमका  
असंख्यातवां भाग अन्तर है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे पल्योपमका असंख्यातवां  
भाग और अन्तर्मुहूर्त अन्तर है, उत्कर्षसे दो समय और छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी उत्कृष्ट  
स्थितिप्रमाण अन्तर है, इत्यादि रूपसे ओषके अन्तरसे इनके अन्तरमें भेदका अभाव  
है । विशेष चात यह है कि अपनी अपनी कुछ कम उत्कृष्ट स्थितियां ही यहां पर उत्कृष्ट  
अन्तर है ऐसा कहना चाहिए, पर्यँकि, अन्यथा सूत्रमें कहा गया स्वस्थान ओष  
अन्तर वन नहीं सकता ।

आनतकल्पसे लेकर नवप्रैवेयकविमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयत-  
सम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है,  
निरन्तर है ॥ ९५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ९६ ॥

कुदो ? तेरमभुवणद्विदमिच्छादिद्वि-सम्मादिद्वीणं विद्वमगणमण्युणं गंतूण लहु-  
मागदाणमंतोमुहुचंतकरुपलंभा ।

उक्कस्सेण वीसं वावीसं तेवीसं चउवीसं पणवीसं छब्बीसं सत्ता-  
वीसं अट्टावीसं ऊणत्तीसं तीसं एकत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि  
॥ ९७ ॥

मिच्छादिद्विस्स उचदे- एक्को दव्वलिगी मणुसो अप्पिददेवेषु उववणो । छहि  
पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) मिसंतो (२) विसुद्धो (३) वेदगमम्मचं पडिचज्जिय अंतारिदो ।  
अप्पप्पणो उक्कस्साउद्विदीओ अणुपालिय अवसाणे मिच्छचं गदो (४) । चदुहि अंतो-  
मुहुचेहि ऊणाओ अप्पप्पणो उक्कस्साउद्विदीओ मिच्छादिद्विस्स उक्कस्संतरं होदि ।

असंजदसम्मदिद्विस्स उचदे- एक्को दव्वलिगी चदुक्कस्साउओ अप्पिददेवेषु  
उववणो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विसंतो (२) विसुद्धो (३) वेदग-  
सम्मचं पडिउणो (४) मिच्छचं गंतूणंतरिदो । अप्पप्पणो उक्कस्साउद्विदियमणु-  
पालिय मम्मच गंतूण (५) मदो मणुसो जादो । पंचहि अंतोमुहुचेहि ऊणउक्कस्स-  
द्विदिमचं लद्धमंतरं ।

क्योंकि, आन्त प्राणत आदि तेरह भुवनोमें रहेनवाले दृष्टमार्गी भिथ्यादृष्टि  
ओर असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका अन्य गुणस्थानको जाकर पुन शीघ्रतासे आनेवाले उन  
जीवोंके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त तेरह भुवनोमें रहेनवाले देवोंका उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः देशोन बीस, चाईस  
तेईस, चौतीस, पचीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस  
सागरोपम कालप्रमाण होता है ॥ ९७ ॥

इनमेंसे पहले मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक द्रव्यलिगी मनुष्य  
निश्चित देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियसि पर्याप्त हो (१) विग्राम ले (२) विमुद्ध  
हो (३) वेदकर्मभयस्त्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ ओर अपनी अपनी उत्कृष्ट  
भायुस्थितिको अनुपालन कर जीनके अन्तमें मिथ्यात्वको गया (४) । इन चार  
अन्तर्मुहूर्तोंमें क्रम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण उक्त मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट  
अन्तर होता है ।

अथ असंयतसम्यग्दृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- बांधी है देवोंमें उत्कृष्ट  
भायुको जिनने, परमा एक द्रव्यलिगी साधु विवक्षित देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्ति-  
यसि पर्याप्त हो (१) विग्राम ले (२) विमुद्ध हो (३) वेदकस्मयकत्वको प्राप्त हुआ (४) ।  
पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ । अपनी अपनी उत्कृष्ट भायुस्थितिको  
मनुपालन कर सम्यक्त्वको जाकर (५) मरत ओर मनुष्य हुआ । इस प्रकार इन पांच  
अन्तर्मुहूर्तोंमें क्रम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तर लब्ध हुआ ।

सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्वीणं सत्थाणमोघं ॥ ९८ ॥

कुदो ? गाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमओ, उक्कस्सेण पल्लिदोवमस्स  
असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहणणेण ( पल्लिदोवमस्स ) असंखेज्जदिभागो, अंतो-  
मुहुचं, उक्कस्सेण वेहि समएहि अंतोमुहुचेहि ऊणाओ अप्पप्पणो उक्कस्साउद्विदीओ  
अंतरं होदि, एदेहि भेदाभावा ।

अणुदिसादि जाव सव्वद्वसिद्धिविमाणवासियदेवेषु असंजद-  
सम्मादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च (णत्थि)  
अंतरं, गिरंतरं ॥ ९९ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १०० ॥

एगणुणत्तादो अणुणुणगणमाभावा ।

एव गदिसगणा समत्ता ।

उक्त आन्तादि तेरह भुवनवासी सासादनसम्यग्दृष्टि ओर सम्यग्मिथ्यादृष्टि  
देवोंका अन्तर स्वस्थान ओघके समान है ॥ ९८ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे पल्योपमके असं-  
ख्यातवै भागप्रमाण अन्तर है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे पल्योपमका असंख्यातवां  
भाग और अन्तर्मुहूर्त है, उत्कर्षसे दो समय और अन्तर्मुहूर्त कम अपनी अपनी उत्कृष्ट  
स्थितिप्रमाण अन्तर होता है, इस प्रकार ओघके साथ इनका कोई भेद नहीं है ।

अनुदिशको आदि लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि  
देवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है,  
निरन्तर है ॥ ९९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त देवोंमें एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १०० ॥

उक्त अनुदिश आदि देवोंमें एक ही असंयतगुणस्थान होनेसे अन्य गुणस्थानमें  
जीनका अभाव है ।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

इंद्रियाणुवादेण एहंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणा-  
जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १०१ ॥

सुगममेदं मुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १०२ ॥

कुदो ? एहंदियस्स तसकाइएसु उप्पज्जिय सव्वलहुएण कालेण पुणो  
एहंदियमागदस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तंरुत्तलंभा ।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुथत्तेणव्वभिहि-  
याणि ॥ १०३ ॥

तं जहा— एहंदियो तसकाइएसु उव्वज्जिय अंतरदिो पुव्वकोडीपुथत्तेणव्वभिय-  
वेसागरोवमसहस्समेत्तं तसद्धिदिं परिभसिय एहंदियं गदो । लद्धमेहंदियाणुक्कस्संतरं तस-  
द्धिदिमेत्तं । देवमिच्छादिद्धिमेहंदिएसु प्वेसिय असंखेज्जयोगलपरियद्दी तत्थ भमाडिय  
पच्छा देवेसुप्पाइय देवाणमंतरं क्रिण्ण परुविदं ? ण, गिरुद्धेवगदिसगगणाए अभावप्पसंगा ।

इन्द्रियमार्गणाके अचुवादसे एकेन्द्रियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना  
जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १०१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंका जवन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १०२ ॥  
क्योंकि, एकेन्द्रियके त्रसकायिक अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर सर्वलघु कालसे  
पुनः एकेन्द्रियपर्यायको प्राप्त हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

एकेन्द्रियोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो  
हजार सागरोपम है ॥ १०३ ॥

जैसे— कोई एक एकेन्द्रिय जीव त्रसकायिकोंमें उत्पन्न होकर अन्तरको प्राप्त हुआ  
और पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपमप्रमित त्रसकाय स्थितिप्रमाण परि-  
भ्रमण कर पुनः एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर त्रस-  
स्थितिप्रमाण लघु हुआ ।

शंका— देव भिय्याद्युष्टियोंको एकेन्द्रियोंमें प्रवेश करा, असंख्यत पुद्गलपरिवर्तन  
उनमें परिभ्रमण कराके पीछे देवोंमें उत्पन्न कराकर देवोंका अन्तर क्यों नहीं कहा ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, वैसा करनेपर प्ररूपणा की जानेवाली देवगति-

१ इन्द्रियाणुवादेण एहंदियाणां नानाजीवविषया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

२ पुव्वकोडिपुत्थेण जवन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स सि १, ८

३ उत्तरेण वे सागरोपमसहस्से पूर्वकोटिपृथक्त्वस्यधिके । स सि १, ८

मगगणमच्छंतेण अंतरपरुक्खणा कादव्वा, अण्णहा अव्ववत्थाव्वचीदो । एहंदियं तसकाइएसु  
उप्पादिय अंतरे भण्णमाणे मगगणाए विणासो क्रिण्ण होदीदि चे होदि, किंतु जीए  
मगगणाए बहुगुणद्वयाणि अत्थि तीए तं मगगणमच्छंडिय अण्णगुणेहि अंतराविय अंतर-  
परुक्खणा कादव्वा । जीए पुण मगगणाए एकं चैव गुणद्वयं तत्थ अण्णमगगणाए  
अंतराविय अंतरपरुक्खणा कादव्वा इदि एसो सुत्ताभिप्पाओ । ण च एहंदिएसु गुणद्वय-  
बहुत्तमत्थि, तेण तसकाइएसु उप्पादिय अंतरपरुक्खणा कदा ।

वादरेइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च  
णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १०४ ॥

सुगममेदं मुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १०५ ॥

कुदो ? वादरेइंदियस्स अण्णअपज्जेसु उप्पज्जिय सव्वत्थेवेण कालेण पुणो  
वादरेइंदियं गदस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तंरुत्तलंभा ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ १०६ ॥

मार्गणाके अभावका प्रसंग प्राप्त होगा । विवक्षित मार्गणाको नहीं छोड़ते हुए अन्तर-  
प्ररूपणा करना चाहिए, अन्यथा अव्यवस्थापनकी प्राप्ति होगी ।

शंका— एकेन्द्रिय जीवको त्रसकायिक जीवोंमें उत्पन्न कराकर अन्तर कहने पर  
फिर यहाँ मार्गणाका विनाश क्यों नहीं होता है ?

समाधान— मार्गणाका विनाश होता है, किंतु जिस मार्गणामें बहुत गुणस्थान  
होते हैं उसमें उस मार्गणाको नहीं छोड़कर अन्य गुणस्थानोंसे अन्तर कराकर अन्तरप्ररूपणा  
करना चाहिए । परंतु जिस मार्गणामें एक ही गुणस्थान होता है, वहाँपर अन्य मार्गणामें  
अन्तर करा करके अन्तरप्ररूपणा करना चाहिए । इस प्रकारका यहाँपर सूत्रका अभिप्राय  
है । और एकेन्द्रियोंमें अनेक गुणस्थान होते नहीं हैं, इसलिए त्रसकायिकोंमें उत्पन्न  
कराकर अन्तरप्ररूपणा की गई है ।

वादा एकेन्द्रियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर  
नहीं है, निरन्तर है ॥ १०४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जवन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १०५ ॥  
क्योंकि, वादरेएकेन्द्रिय जीवका अन्य अपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर सर्व  
स्तोककालसे पुनः वादा एकेन्द्रियपर्यायको गये हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर  
पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यत लोकप्रमाण है ॥ १०६ ॥

तं जथा- एकतो वादेर्हंदिओ सुहुमेर्हंदिओसु उप्पज्जिय असंखेज्जलोगमेत्त-  
कालमंतिय पुणो वादेर्हंदिओसु उववणो । लद्धमसंखेज्जलोगमेत्तं वादेर्हंदिओमंतं ।

एवं वादेर्हंदिओपज्जत्त अप्पज्जत्ताणं ॥ १०७ ॥

कुदो? वादेर्हंदिओसु सव्वपयोणे एदेसिमंतस्स भेदाभावा ।

सुहुमेर्हंदिओसुहुमेर्हंदिओपज्जत्त अप्पज्जत्ताणमंतं केवचिरं कालदो  
होदि, णाणजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १०८ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण खुद्दाभवगहणं ॥ १०९ ॥

कुदो? सुहुमेर्हंदिओसु अणप्पिदअपज्जत्तएसु उप्पज्जिय सव्वत्थोवेण कालेण तीसु  
पि सुहुमेर्हंदिओसु आंगत्थुपणस्स खुद्दाभवगहणेत्तंरुवलंभा ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ  
ओसपिणी-उस्सपिणीओ ॥ ११० ॥

जैसे- एक वादर एकेन्द्रिय जीव, सूक्ष्म एकेन्द्रियादिकोंमें उत्पन्न हो वहां पर  
प्रमत्त्यात लोकप्रमाण काल तक अन्तरको प्राप्त होकर पुनः वादर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न  
हुआ । इस प्रकार असंख्यात लोकप्रमाण वादरएकेन्द्रियोंका अन्तर लब्ध हुआ ।

इसी प्रकारसे वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक और वादर एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तकोंका  
अन्तर जानना चाहिए ॥ १०७ ॥

क्योंकि, वादर एकेन्द्रियोंकी अपेक्षा सर्व प्रकारसे इन पर्याप्त और लब्धपर्याप्तक  
वादर एकेन्द्रियोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक  
जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर  
है ॥ १०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर शुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १०९ ॥

क्योंकि, किन्तो सूक्ष्म एकेन्द्रियका अविश्रित लब्धपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न  
होकर सर्व लोककालमें तीनों ही प्रकारके सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें आकर उत्पन्न हुए जीवके  
शुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त सूक्ष्मत्रिकोंका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग असंख्यातासंख्यात  
उन्मर्षिणी और अस्मर्षिणी कालप्रमाण है ॥ ११० ॥

तं जथा- एकतो सुहुमेर्हंदिओ पज्जत्तो अप्पज्जत्तो च वादेर्हंदिओसु उववणो ।  
तसकाइएसु वादेर्हंदिओसु च असंखेज्जासंखेज्जा ओसपिणी-उस्सपिणीपमाणमंगुलस्स  
असंखेज्जदिभागं परिभमिय पुणो तिसु सुहुमेर्हंदिओसु आंगत्थुण उववणो । लद्धमंतं  
वादेर्हंदिओसुतसकाइयाणमुक्कस्सट्ठिदी ।

वीर्हंदिओ-तीर्हंदिओ-चदुरिंदिय-तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतं  
केवचिरं कालदो होदि, णाणजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १११ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण खुद्दाभवगहणं ॥ ११२ ॥

कुदो? अणप्पिदअपज्जत्तएसु उप्पज्जिय सव्वत्थोवेण कालेण पुणो गवसु विग-  
ल्लिदिएसु आंगत्थुण उप्पणस्स खुद्दाभवगहणेत्तंरुवलंभा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोगलपरियट्ठं ॥ ११३ ॥

जैसे- एक सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक, अथवा लब्धपर्याप्तक जीव वादर एकेन्द्रि-  
योंमें उत्पन्न हुआ । वह त्रसकाधिकोंमें, और वादर एकेन्द्रियोंमें अंगुलके असंख्यातवें भाग  
असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालप्रमाण परिभ्रमण कर पुनः उक्त  
तीनों प्रकारके सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें आकर उत्पन्न हुआ । इस प्रकार वादर एकेन्द्रियों  
और त्रसकाधिकोंकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण सूक्ष्मत्रिकका उत्कृष्ट अन्तर उपलब्ध हुआ ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उन्हींके पर्याप्तक तथा लब्धपर्याप्तक  
जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर  
है ॥ १११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त द्वीन्द्रियादि जावाका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर शुद्रभवग्रहण-  
प्रमाण है ॥ ११२ ॥

क्योंकि, अविश्रित लब्धपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर सर्वस्तोक कालसे पुनः नौ  
प्रकारके विकलेन्द्रियोंमें आकर उत्पन्न होनेवाले जीवके शुद्रभवग्रहणमात्र अन्तरकाल  
पाया जाता है ।

उन्हीं विकलेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तिन  
है ॥ ११३ ॥

१ विमल्लिन्द्रियाणी नानाजीवोपेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

२ एतज्जीवोपेक्षया जघन्येन शुद्रभवग्रहणम् । स सि १, ८.

३ उन्मर्षणान्तं मल्लोस्ससंखेया. पुद्गलपरिवर्तिता. । स सि १, ८

तं जहा- णम हि निगलिदिया एइदियाएइदिएसु उप्पज्जिय आवलियाए असंखे-  
ज्जदिभागमेचपागलपरियेइं पयियइिय पुणो णवसु निगलिदिएसु उप्पण्णा । लद्धमंतरं  
असंखेज्जपागलपरियेइमेच ।

पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु मिच्छादिद्वी ओषं ॥ ११४ ॥

कृदो ? णाणाजीवं पडुच्च णलिय अंतरं, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोसुहुचं,  
उक्कस्सेण वं छावद्विसगतोत्तमणि अंतोसुहुत्तेण ज्जणणि इच्चेएण भेदाभावत्ता ।

सासणसम्मादिद्विसम्माभिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो  
द्वोदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ११५ ॥

दोसुणद्वणजींओ सवंसु अण्णपुणं गदेसु दोण्हं गुणद्वण्णाणं एगसमयविरहु-  
नलंभा ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११६ ॥

कृदो ? तांतरामिच्छादो । वहुगमंतरं किण्ण होदि ? सभावा ।

जंसे- नरां प्रत्तारकं विकलेन्द्रिय जीव, एकेन्द्रिय या अनेकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर  
आपन्धीके अगत्यातवं भागमान पुरुलपरिवर्तन कालतरु परिधमण कर पुनः नवों  
प्रत्तारके निरलेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुए । इस प्रकारसे अक्षत्यात पुरुलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट  
अन्तर प्राप्त हुआ ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्तोमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर ओषके समान  
है ॥ ११४ ॥

पंचैकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे  
अत्युत्तर्त और उत्तर्तो अन्तर्मुहूर्त काम दो द्ययासठ सागरोपमकाल अन्तर है, इस  
प्रकार नोचकी अपेक्षा इनमें कोई भेद नहीं है ।

उक्त दोनों प्रकारके पंचेन्द्रिय सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका  
अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर  
है ॥ ११५ ॥

उक्त दोनों गुणस्थानोंके सभी जीवोंके अन्य गुणस्थानको चले जाने पर दोनों  
गुणस्थानोंका एक समय विरह पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवं भागप्रमाण है ॥ ११६ ॥

क्याकि, ये दोनों सात्तर राशियां हैं ।  
शंका—इतका पल्योपमके असंख्यातवं भागसे अधिक अंतर क्यों नहीं होता ?  
समाधान—स्वभावसे ही अधिक अन्तर नहीं होता है ।

१ पंचेन्द्रियेु मिष्णाद्वे सामान्यत् । स सि १, ८

२ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टोर्नानाजीवोपेक्षया सामान्यत् । स सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,  
अंतोसुहुत्तं ॥ ११७ ॥

गुगमोदं सुचं, बहुसो उत्तचादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुथत्तेणव्वभहियाणि  
सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ११८ ॥

सासणस्स ताण उच्चदे- एकको अणंतआलमरांसंखेलोगमेचं वा एइदिएसु द्विदो  
असण्णिपंचिदिएसु आंगत्तेण उववण्णो । पंचहि पज्जतीहि पज्जत्तयदो (१) विस्सतो (२)  
विमुद्वो (३) भणवावारीय-चाणवंतेरेसु आउअं वंधिय (४) विस्सतो (५) क्कमेण कालं  
करिय भवणवासिय-चाणवंतरदेवेरुप्पणो । छहि पज्जतीहि पज्जत्तयदो (६) विस्सतो (७)  
विमुद्वो (८) उवसमसम्भत्तं पडिद्वणो (९) सासणं गदो । आदी विद्वा । सिच्छत्तं  
अंतुणंतरिय सगद्धिदं परियद्वियावसाणे सासणं गदो । लद्धमंतरं । तदो थावरयाओणमान-  
लियाए असंखेज्जदिभागमच्छिय कालं करिय थावरकाएसु उववण्णो आवलियाए असंखे-  
ज्जदिभागेण णवहि अंतोसुहुत्तेहि ज्जणिया सगद्धिदी अंतरं ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असं-  
ख्यातवं भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११७ ॥

यह सून सुगम है, क्योंकि, बहुत बार काल गया है ।

उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती पंचेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वोक्तीपुथक्त्सेस अधिक  
एक हजार सागरोपम काल है, तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपम-  
शतपृथक्त्सव है ॥ ११८ ॥

इनमेंसे पहले सासादनसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं- अतन्तकाल या असंख्यात-  
लोकमात्र काल तरु एकेन्द्रियोंमें रहा हुआ कोई एक जीव असंखी पंचेन्द्रियोंमें आकर  
उत्पन्न हुआ । पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३)  
भवनवासी या वागव्यन्तरोंमें आयुको नांधकर (४) विश्राम ले (५) क्रमसे मरण कर  
भवनवासी, या वागव्यन्तरदोमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६)  
विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९) । पुनः सासादन-  
गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकार इस गुणस्थानका प्रारम्भ दृष्ट हुआ । पश्चात् मिथ्या-  
त्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिवर्तित होकर आयुके अन्तमें  
सासादन गुणस्थानको गया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पश्चात् स्थावरकायके  
योग्य आवलीके असंख्यातवं भागप्रमाण काल तक उनमें रह कर, मरण करके स्थावर-  
कायिकोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार आवलीके असंख्यातवं भाग और नौ अन्तर्मुहूर्तोंसे  
कम अपनी स्थिति ही इनका उत्कृष्ट अन्तर है ।

१ एक्कीण प्रति जघन्येण पल्योपमासल्येयमागोअन्तर्मुहूर्तस्य । स. सि. १, ८

२ उत्तरेण सागरोपमसहस्र पूर्वोक्तीपुथक्त्सेसव्यधिकम् । स. सि. १, ८.

सम्माभिच्छादिद्विस्स उच्चदे- एक्को जीवो एइंदियद्विदिमच्छिदो असण्णि-  
पंचिदिएसु उववण्णो। पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३)  
भण्णवासिय-वाणवैतरसु आउअं वंधिय (४) विस्समिय (५) देवेसु उववण्णो। छहि  
पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विसुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो  
(९) सम्माभिच्छत्तं गदो (१०)। मिच्छत्तं गंतूणंतरिय सगद्धिदि परिभमिय अंतोमुहुत्तव-  
सेसे सम्माभिच्छत्तं गदो (११)। लद्धमंतरं। मिच्छत्तं गंतूण (१२) एइंदिएसु उव-  
वण्णो। वारमेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणसगद्धिदी सम्माभिच्छत्तुककस्संतरं।

‘जहा उदेसो तथा णिदेसो’ ति णायदो पंचिदियद्विदी पुव्वकोडिपुधत्तेणभमहिय-  
सागरोपमसहस्समेत्ता, पज्जत्ताणं सागरोपमसदपुधत्तेमा चि वत्तव्यं।

**अंसंजदसम्मादिद्विपहुडि जाव अपमत्तसंजदानमंतरं केवचिरं  
कालदो होदि, णाणजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ११९ ॥**

सुगममेदं सुत्त।

अत्र सम्यग्मिथ्याद्विष्टि पचेन्द्रिय जीवजा उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एकेन्द्रियकी  
स्थितिमें स्थित एक जीव असंखी पचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। मनके विना शेष पांचों  
पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी या वान-  
व्यत्तरोंमें आयुको यांधकर (४) विश्राम ले (५) देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे  
पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हो (९)  
सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (१०)। पुन मिथ्यात्वको जाकर और अन्तरको प्राप्त हो  
अपनी स्थितिप्रमाण परिश्रमण कर आयुके अन्तर्मुहूर्तकाल अवशेष रह जाने पर सम्य-  
ग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (११)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। पश्चात् मिथ्यात्वको  
जाकर (१२) एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। ऐसे इन वारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम स्वस्थिति  
सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर है।

‘जेसा उदरा होला है, उसीके अनुसार निर्देश होता है,’ इन् न्यायसे पंचेन्द्रिय  
सामान्यकी स्थिति पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक एक हजार सागरोपमप्रमाण होती है,  
और पचेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी स्थिति शतपृथक्त्वसागरोपमप्रमाण होती है, ऐसा कहना  
भाहिये।

असंपत्तसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रपत्तमंयत्त गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती  
जीवोंका अन्तर किन्तुने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर  
है ॥ ११९ ॥

यत्त सूत्त सुगम है।

१ अत्रात्मन्यत्तद्विष्टिवापरमण्वानां नानाजीवोपेक्षया नास्त्यत्तम्। स सि १, ८

**एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२० ॥**

कुदो? एदेसिमण्णुणं गंतूण सब्वदहरेण कालेण पडिणियत्तिय अप्पप्पणो गुण-  
मागदाणमंतोमुहुत्तंत्तरुत्तलंभा।

**उवकस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणभमहियाणि,  
सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १२१ ॥**

असंजदसम्मादिद्विस्स उच्चदे- एक्को एइंदियद्विदिमच्छिदो असण्णिपंचिदियसम्मु-  
च्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो। पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो  
(३) भण्णवासिय-वाणवैतरदेवेसु आउअं वंधिय (४) विस्समिय (५) मदो देवेसु  
उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विसुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं  
पडिवण्णो (९)। उवसमसम्मत्तद्वाए छावळियाओ अत्थि चि आसाणं गदो अंतरिदो  
मिच्छत्तं गंतूण सगद्धिदि परिभमिय अंतो उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (१०)। पुणो सासाणं गदो  
आवळियाए अससेज्जदिभाणं कालमच्छिदूण थावरकाएसु उववण्णो। दसहि अंतोमुहुत्तेहि

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२० ॥

क्योंकि, इन असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्य गुणस्थानको जाकर  
सर्वलघु कालसे लौटकर अपने अपने गुणस्थानको आये हुआके अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तर  
पाया जाता है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक सहस्र सागरोपम तथा  
शतपृथक्त्व सागरोपम है ॥ १२१ ॥

इनमेंसे पहले असंयतसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं- एकेन्द्रिय भवस्थितिको  
प्राप्त कोई एक जीव, असंखी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। पांचों पर्या-  
प्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें  
मायुको यांधकर (४) विश्राम ले (५) मरा और देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे  
पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)।  
उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवळियां अवशेष रहने पर सासादन गुणस्थानको गया  
और अन्तरको प्राप्त हुआ। पछि मिथ्यात्वको जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिश्रमणकर अन्तमें  
उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१०)। पुन सासादन गुणस्थानको गया और वहांपर  
आवळीके असंयत्तावै भागप्रमाण काल तक रहकर स्थावरकार्यिकोंमें उत्पन्न हुआ। इस  
प्रकार इन दस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थितिप्रमाणकाल उक्त असंयतसम्यग्दृष्टिका

१ पृच्छीव प्रति अप्पवेत्तान्तर्मुहूर्तं। स सि १, ८.

२ उन्तरेण सागरोपमसहस्र पूर्वकोटीपृथक्त्वस्यैवस्थितम्। स सि १, ८.

ऊणिया सगडिडी लड्डमुच-संनंनर । मागरोवममदपुधचं देवूणमिदि वत्तव्वं ? ण, पंचि-  
दियपज्जत्तडिडीणं देवूणाए णि मागरोवममदपुधचत्तादो । तं पि कथं णव्वदे ? सुत्ते  
देवूणायणासामो । मण्णिमम्मूच्छिमपंचिदिएसुपाइय सम्मत्तं गेण्हानिय भिच्छत्तेण  
क्रिणांतरिदो ? ण, तत्या पडमममभत्तगहणाभावा । वेदगसम्मत्तं क्रिण पडिवजाविदो ?  
ण, एंडिएसु दीलड्डममडिदस्य उव्वेच्छिदग्गमत्त-सम्मामिच्छत्तस्स तदुप्पायणे संभमाभाना ।

संजदायंनदसा नुच्ये- एकको एंडियद्विदिसच्छिदो सण्णिपंचिदियपज्जत्तएसु  
उववणो तिण्णिपमत्त-तिण्णिदिम-अंतोमुदुत्तेहि ( १ ) पडमसम्मत्तं संजमांसजमं च  
जुगं पटियणो ( २ ) छागलियाओ पडमसम्मत्तद्वाए अत्थिय चि आमाणं गंतूणंतरिदो ।  
मिन्ठत्तं गंतूण सगडिदिं परिभमिय अण्छिमे पंचिदियभे सम्मत्तं वेत्तूण दंसणसोहणीयं

उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

शंका—पंचेन्द्रिय पर्याप्तिकोंका जो सागरोपमगतयूयन्त्वप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर  
चताया है, उनमें 'देशोन' ऐसा पद और कहना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पंचेन्द्रिय पर्याप्तिकोंका देशोन स्थिति भी सागरोपम-  
गतपृथक्प्रमाण ही होती है ।

शंका—यह भी कैसे जाना जाता है ?

समाधान—स्योंकि, सूत्रमें 'देशोन' इस वचनका अभाव है ।

शंका—संज्ञी सम्बूच्छिम पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न करानर और सस्यस्त्वको ग्रहण  
कराकर मिथ्यात्वके द्वारा अन्तरको प्राप्त क्यों नहीं कराया ?

समाधान—नहीं, स्योंकि, संज्ञी सम्बूच्छिम पंचेन्द्रियोंमें प्रथमोपशमसस्यस्त्वके  
ग्रहण करनेका अभाव है ।

शंका—वेदकसस्यस्त्वको क्यों नहीं प्राप्त कराया ?

समाधान—नहीं, स्योंकि, पंचेन्द्रियोंमें दीर्घ काल तक रहेवाले ओर उद्वेलना  
की है सस्यस्त्व और सस्यमिथ्यात्व प्रकृतिकी जिसने, ऐसे जीवके वेदकसस्यस्त्वका  
उत्पन्न कराना संभव नहीं है ।

संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एकेन्द्रियकी स्थितिको प्राप्त एक  
जीव, सजी पंचेन्द्रिय पर्याप्तिकोंमें उत्पन्न हुआ । तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्त-  
मुहूर्तसे ( १ ) प्रथमोपशमसस्यस्त्वको तथा संयमांसंयमको युगपत् प्राप्त हुआ ( २ ) । प्रथ-  
मोपशमसस्यस्त्वके कालमें छह आचलियां अवशेष रहने पर सात्तादन गुणस्थानको प्राप्त  
कर अन्तरको प्राप्त हुआ । मिथ्यात्वको जानर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके  
अन्तिम पंचेन्द्रिय भन्तमें सस्यस्त्वको ग्रहण कर दर्शनमोहनीयका क्षय कर और संसारके

खविय अंतोमुदुचावसे संसारे संजमांसजमं च पडिवणो ( ३ ) अप्पमत्तो ( ४ ) । पमत्तो  
( ५ ) अप्पमत्तो ( ६ ) । उवरि छ मुदुत्ता । तिण्णिपमत्तोहि तिण्णिदिवसेहि वारसअंतो-  
मुदुत्तेहि य ऊणिया सगडिदी लड्डं संजदासंजदाणसुक्करससंतरं । एंडिएसु क्रिण उप्पाइदो ?  
लड्डमंतरं करिय उवरि मिज्झणकालदो मिच्छत्तं गंतूण एंडिएसु आउअं वंधिय  
तत्थुप्पज्जणकालो संसेज्जणो चि एंडिएसु ण उप्पादिदो । उवरिसाणं पि एदमेव  
कारणं वचव्वं ।

पमत्तसा बुच्ये- एकको एंडियद्विदिसच्छिदो मणुसेसु उववणो । गज्भादिअड्ड-  
वस्सेहि उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगं पडियणो ( १ ) पमत्तो जादो ( २ ) । हेडा  
पडिदूणंतरिदो सगडिदिं परिभमिय अण्छिमे भेध मणुसो जादो । दंसणमोहणीयं खविय  
अंतोमुदुचावसे संसारे अप्पमत्तो होदूण पमत्तो जादो ( ३ ) । लड्डमंतरं । भूजो अप्प-  
मत्ता ( ४ ) उवरि छ अंतोमुदुत्ता । अड्डहि वस्सेहि दसहि अंतोमुदुत्तेहि य ऊणिया सग-  
डिदी पमत्तसुक्करससंतरं लड्डं ।

अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशेष रहने पर संयमांसंयमको प्राप्त हुआ ( ३ ) । पश्चात् अप्पमत्त-  
संयत ( ४ ) प्रगत्तसंयत ( ५ ) अप्पमत्तसंयत ( ६ ) हुआ । इनमें अपूर्वकरणदिसम्बन्धी ऊपरके  
छह मुहूर्तोंको मिलाकर तीन पक्ष, तीन दिवस और वारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी  
स्थितिप्रमाण संयतासंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर है ।

शंका—उक्त जीवको एकेन्द्रियोंमें क्यों नहीं उत्पन्न कराया ?

समाधान—संयतासंयतका अन्तर लब्ध होतोंके पश्चात् ऊपर सिद्ध होने तकके  
कालसे मिथ्यात्वको जानर एकेन्द्रियोंमें आयुको बांधकर उनमें उत्पन्न होनेका काल  
संब्यतागुणा है, इसलिए एकेन्द्रियोंमें नहीं उत्पन्न कराया । इसी प्रकार प्रमत्तादि उपरित्तन  
गुणस्थानवर्ती जीवोंके भी यही कारण कहना चाहिए ।

प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एकेन्द्रियस्थितिको प्राप्त एक जीव मनुष्योंमें  
उत्पन्न हुआ और गर्भादि आठ वर्षोंसे उपशमसस्यस्त्व और अप्पमत्तगुणस्थानको एक-  
साथ प्राप्त हुआ ( १ ) । पश्चात् प्रमत्तसंयत हुआ ( २ ) । पछि नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त  
हो अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तिम भवमें मनुष्य हुआ । दर्शनमोहनीयका  
क्षयकर अन्तर्मुहूर्तकाल संसारके अवशिष्ट रहने पर अप्पमत्तसंयत होकर पुनः प्रमत्तसंयत  
हुआ ( ३ ) । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः अप्पमत्तसंयत ( ४ ) हुआ । इनमें ऊपरके छह  
अन्तर्मुहूर्त मिलाकर आठ वर्ष और दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति प्रमत्तसंयतका  
उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है ।



अपमत्तस उच्ये- एको एंडियद्विमच्छिदो मणुसेसु उववणो गन्भादिअड्ड-  
रसाणमुग्गि उरसममत्तमपमत्तगुणं च जुगवं पडिवणो। आदी दिट्ठा (१)। अंत-  
रिदो अपच्छिमे पंचिदियभे मणुसेसु उववणो। दंसणमोहणीयं रविय अंतोसुहुचावसेसे  
भंगारे विमुद्धो अपमत्तो जादो (२)। तदो पमत्तो (३) अपमत्तो (४)। उवरि छ  
अंतोसुहुत्ता। एमद्वस्सेहि दसहि अंतोसुहुत्तेहि य ऊणिया पंचिदियद्विदी उव्वकस्संतर।

चट्टुहसुवसामगणं गाणाजीवं पडि ओधं ॥ १२२ ॥

कुदो? जहणेण एरसमओ, उव्वकस्सेण वासपुधत्तमिच्चेएहि ओघादो भेदाभावो।  
एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुत्तं ॥ १२३ ॥

तिष्ठमुग्गामगणमुग्गि चडिय हेट्ठा ओदिणो जहणमंतरं होदि। उवमंतकसायस्स  
हेट्ठा ओदरिय पुणो स्वाजहणेण कालेण उवसंतकसायत्तं पडिवणो जहणमंतरं होदि।

उव्वकस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुथत्तेणव्वभहियाणि,  
सागरोवमसदधुत्तं ॥ १२४ ॥

अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर रहते हैं- एकेन्द्रियकी स्थितिमें स्थित एक जीव  
मनुष्यमें उत्पन्न हुआ और गर्भादि आठ वर्गोंसे ऊपर उपशामसम्यक्त्व तथा अप्रमत्तगुण-  
स्थानको युगपत् प्राप्त हुआ। इस प्रकार इस गुणस्थानका आरंभ दिखाई दिया। पश्चात्  
अन्तरको प्राप्त हो अन्तिम पंचेन्द्रिय भवमें मनुष्यमें उत्पन्न हुआ। दर्शनमोहनीयका  
भय कर सत्सारेके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहने पर विद्युद्द हो अप्रमत्तसंयत हुआ (२)। पश्चात्  
प्रमत्तसंयत (३) अप्रमत्तसंयत (४) हुआ। इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त मिलाने पर आठ  
वर्ग जोर द्या अन्तर्मुहूर्तसे कम पंचेन्द्रियकी स्थिति अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है।  
चार्गे उपशामकोंका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा अधिक समान है ॥ १२२ ॥  
स्पर्शिक, नाना जीवोंकी अपेक्षा जवन्त्यसे एक समय और उत्कर्षसे वर्णपृथक्त्व,  
इस प्रकार ओगसे इनमें कोई भेद नहीं है।

चार्गे उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जवन्त्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२३ ॥  
'पूर्वकरणस्यत आदि तीनों उपशामकोंका ऊपर चढकर नीचे उतरनेपर  
जवन्त्य अन्तर होता है। किन्तु उपशान्तकयायका नीचे उतरकर पुनः सर्वजधन्य कालसे  
उपशान्तकयायको प्राप्त होनेपर जवन्त्य अन्तर होता है।

चार्गे उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक सागरोपमसहस्र  
और सागरोपमनपृथक्त्व है ॥ १२४ ॥

१ मणुसेसुववणो नानाजीवोंसेया मानान्तर। ३. ति १, ८.  
२ पडिवणं अति उरसममत्तं। ३. ति १, ८.  
३ उव्वकस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुथत्तेणव्वभहियाणि। ३. ति १, ८

एकको एंडियद्विमच्छिदो मणुसेसु उववणो। गन्भादिअड्डवस्सेहि विमुद्धो  
उरसममत्तमपमत्तगुणं च जुगवं पडिवणो अंतोसुहुत्तेण (१) वेदगतसम्मत्तं गदो। तदो  
अंतोसुहुत्तेण (२) अणंताणुवंधी विस्सजोजिय (३) विस्समिय (४) दंसणमोहणीयमुग्गमिय  
(५) पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (६) उवसमसेदीपाओग्गअपमत्तो जादो (७)।  
अपुव्वो (८) अणियद्वी (९) सुहुमो (१०) उरसंतो (११) सुहुमो (१२) अणियद्वी (१३)  
अपुव्वो (१४)। हेट्ठा ओदरिदूण पंचिदियद्विदि परिभमिय पच्छिमे भवे मणुसेसु उववणो।  
दंसणमोहणीयं खनिय अंतोसुहुत्तावसेसे संसारे विमुद्धो अपमत्तो जादो। पुणो पमत्ता-  
पमत्तपरावत्तसहस्स कादूण उवसमसेदीपाओग्गअपमत्तो होदूण अपुव्वउवसामगो  
जादो। लद्धमंतरं (१५)। तदो अणियद्वी (१६) सुहुमो (१७) उवसंतकसाओ (१८)  
सुहुमो (१९) अणियद्वी (२०) अपुव्वो (२१) अपमत्तो (२२) पमत्तो (२३)  
अपमत्तो (२४)। उवरि छ अंतोसुहुत्ता। एवं अट्टहि वस्सेहि तीसहि अंतोसुहुत्तेहि  
ऊणिया सगट्टिदी अपुव्वकस्संतरं। एवं चैव तिण्हसुवसामगणं वत्तवं। गवरि अट्टवीस-  
छव्वीस-चट्टवीसअंतोसुहुत्तेहि अब्भहियअड्डवस्सणा सगट्टिदी अंतरं होदि।

एकेन्द्रिय-स्थितिमें स्थित एक जीव, मनुष्यमें उत्पन्न हुआ। गर्भादि आठ वर्गोंसे  
विद्युद्द हो उपशामसम्यक्त्वको और अप्रमत्तगुणस्थानको युगपत् प्राप्त होता हुआ अन्त-  
र्मुहूर्तसे (१) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पश्चात् अन्तर्मुहूर्तसे (२) अनन्तानुवन्धी  
कयायचतुष्का विसंयोजन करके (३) विश्राम ले (४) दर्शनमोहनीयका उपशाम कर (५)  
प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानसम्यन्धी परावर्तन सहस्रोंको करके (६) उपशामश्रेणीके प्रायोग्य  
अप्रमत्तसंयत हुआ (७)। पश्चात् अपूर्वकरणसंयत (८) अनिवृत्तिकरणसंयत (९) सूक्ष्म-  
साम्परायसंयत (१०) उपशान्तकयाय (११) सूक्ष्मसाम्परय (१२) अनिवृत्तिकरण-  
संयत (१३) अपूर्वकरणसंयत (१४) हो, नीचे उतरकर पंचेन्द्रियकी स्थितिप्रमाण परि-  
अमणकर अन्तिम भवमें मनुष्यमें उत्पन्न हुआ। पश्चात् दर्शनमोहनीयका क्षयकर  
संसारके अन्तर्मुहूर्तमात्र अवशेष रहनेपर विद्युद्द हो अप्रमत्तसंयत हुआ। पुनः प्रमत्त-  
अप्रमत्तपरावर्तन-सहस्रोंको करके उपशामश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत होकर अपूर्वकरण  
उपशामक हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (१५)। पश्चात् अनिवृत्तिकरणसंयत (१६)  
सूक्ष्मसाम्परायसंयत (१७) उपशान्तकयाय (१८) सूक्ष्मसाम्परयसंयत (१९) अनिवृत्ति-  
करणसंयत (२०) अपूर्वकरणसंयत (२१) अप्रमत्तसंयत (२२) प्रमत्तसंयत (२३)  
और अप्रमत्तसंयत हुआ (२४)। इसके ऊपर क्षयश्रेणीसम्यन्धी छह अन्तर्मुहूर्त  
होते हैं। इस प्रकार तीस अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्गोंसे कम पंचेन्द्रियस्थितिप्रमाण  
अपूर्वकरणका उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकारसे दोष तीनों उपशामकोंका भी अन्तर  
कहना चाहिए। विदिये जात यह है कि उनके क्रमशः अट्टवीस छव्वीस और चौवीस  
अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्ग कम पंचेन्द्रिय-स्थितिप्रमाण अन्तर होता है।

चटुणहं खवा अजोगिकेवली ओघं ॥ १२५ ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एससमओ, उचकरमेण छम्मासा; एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरमिच्चएहि ओघादो भेदाभावा ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ १२६ ॥

कुदो ? णाणेगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरमिच्चेदेण ओघादो भेदाभावा ।

पंचिंदियअपज्जत्ताणं वेइंदियअपज्जत्ताणं भंगो ॥ १२७ ॥

णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं, एगजीवं पडुच्च जहणणेण खुदाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोगलपरियइमिच्चेएहि वेइंदियअपज्जत्तेहिंतो पंचिंदियअपज्जत्ताणं भेदाभावा ।

एदमिंदियं पडुच्च अंतरं ॥ १२८ ॥

गुणं पडुच्च उभयदो वि गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १२९ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवमिंदियमग्गणा समत्ता ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ १२५ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय ओर उत्कर्षसे छह मास अन्तर है, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है. इस प्रकार ओघप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है ।

सयोंगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ १२६ ॥

क्योंकि, नाना जीव ओर एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है, इस प्रकार ओघसे कोई भेद नहीं है ।

पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तिकोका अन्तर द्वीन्द्रिय लब्धपर्याप्तिकोंके समान है ॥ १२७ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है. एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे खुद्रभवग्रहणप्रमाण ओर उत्कर्षसे अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तर होता है; इस प्रकार द्वीन्द्रिय लब्धपर्याप्तिकोंसे पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तिकोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

यह गतिकी अपेक्षा अन्तर कहा है ॥ १२८ ॥

गुणशानकी अपेक्षा दोनों ही प्रकारसे अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १२९ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई ।

१ शंभवाणी सामान्योक्तम् । स सि १, ८

२ एवमिन्द्रिय प्रत्यन्तसुखम् । स सि. १, ८

३ गुण प्रत्युभयतोऽपि नास्त्यन्तम् । स सि १, ८

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-वादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १३० ॥

सुगमसंदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण खुदाभवग्गहणं ॥ १३१ ॥

कुदो ? एदसिप्रणप्पिदअपज्जत्तएसु उप्पज्जिय सवत्थोवेण कालेण पुणो अग्पिदकायमागदाणं खुदाभवग्गहणमेत्तजहणंतरुत्तलंभा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोगलपरियट्टं ॥ १३२ ॥

कुदो ? अपिदकायादो वणप्फदिक्काइएसुप्पज्जिय अंतरिदजीवो वणप्फदिक्काय-द्विदिं आवलियाए असंखेज्जदिभागपोगलपरियट्टमेत्तं परिभमिय अणप्पिदसेसकायद्विदिच, तदो अपिदकायमागदो जो होदि, तस्स सुसुसुक्कस्संतरुत्तलंभा ।

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, इनके बादर और सूक्ष्म तथा उन सबके पर्याप्तिक और अपर्याप्तिक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १३० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर खुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १३१ ॥

क्योंकि, इन पृथिवीकायिकादि जीवोंका अविश्वित अपर्याप्तिकोंमें उत्पन्न होकर सर्वलोक कालसे पुनः विश्वित कायमें आये हुए जीवोंके खुद्रभवग्रहणप्रमाण जघन्य अन्तर पाया जाता है ।

उक्त पृथिवीकायिक आदि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ १३२ ॥

क्योंकि, विश्वित कायसे वनस्पतिकायिकोंमें उत्पन्न होकर अन्तरको प्राप्त हुआ जीव आवलीके असंख्यातवे भाग पुद्गलपरिवर्तन वनस्पतिकायकी स्थिति तक परिध्रमण कर और अविश्वित शेष कायिक जीवोंकी भी स्थिति तक परिध्रमण करके तत्पश्चात् विश्वित कायमें जो जीव आता है उसके सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है ।

१ कायाखुवादेन पृथिव्यैजोवाणुमयिकानां नानाजीवोक्थया नास्त्यन्तम् । स सि. १, ८

२ एवजीव इति जघन्येन खुद्रभवग्रहणम् । स सि १, ८

३ उक्कस्सेणान्तः कालोऽसत्येया पुद्गलपरिवर्ति. । स सि. १, ८

वणफदिकाइय-णिगोदजीव-चादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जाणमंतरं  
केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं,  
णिरंतरं ॥ १३३ ॥

सुगममेदं सुत्त ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवगहणं ॥ १३४ ॥

कुदो ? अपिपदकायादो अणपिपदकायं गंतूण अइलहुएण कालेण पुणो अपिपद-  
कायमागदस्स खुद्दाभवगहणमेत्तरुलंभा ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगां ॥ १३५ ॥

कुदो ? अपिपदकायादो पुढवि-आउ-त्ते-नाउकाइएसु उप्पज्जिय असंखेज्जलोग-  
मेत्तरुलं तत्थेन परिभमिय पुणो अपिपदकायमागदस्स असंखेज्जलोगमेत्तरुलंभा ।

चादरवणफदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं  
कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १३६ ॥  
सुगममेदं सुत्त ।

वन्स्पतिकारिक, निगोद जीव, उनके नादर व स्रस्म तथा उन सबके पर्याप्तक  
और अपर्याप्तक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर  
नहीं है, निरन्तर है ॥ १३३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर शुद्धभ्रमग्रहणप्रमाण है ॥ १३४ ॥  
क्योंकि, विवक्षित कायसे अधिवक्षित कायको जाकर अतिलघु कालसे पुनः  
विवक्षित कायमें आये हुए जीवके शुद्धभ्रमग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है ॥ १३५ ॥

क्योंकि, विवक्षित वनस्पतिकार्यमें पृथिवी, जल, अग्नि और वायुकारिक जीवोंमें  
उत्पन्न होकर अत्यन्त लोकमान काल तक उन्हींमें परिश्रमण कर पुनः विवक्षित  
वनस्पतिकार्यको पाये हुए जीवके असंख्यतलोकप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

चादर वनस्पतिकारिकप्रत्येकशरीर और उनके पर्याप्तक तथा अपर्याप्तक  
जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर  
है ॥ १३६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ अन्तर विवक्षितकी नानाजीवोंकेना नाम्नात्त्वं । म सि १, ८

२ एब्धिपरिभमिय अणपिपदकायमागदस्स । म सि १, ८. ३ अन्तरैतन्मन्योराजोन । म सि १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवगहणं ॥ १३७ ॥  
एदं पि सुत्तं सुगमं चेय ।

उक्कस्सेण अङ्गाइज्जपोगलपरियट्ठं ॥ १३८ ॥

कुदो ? अपिपदकायादो णिगोदजीवसुप्पणस्स अङ्गाइज्जपोगलपरियट्ठाणि सेस-  
कायपरिभमणेण सादिरैयाणि परिभमिय अपिपदकायमागदस्स अङ्गाइज्जपोगलपरियट्ठ-  
मेत्तरुलंभा ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी ओधं ॥ १३९ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण गत्थि अंतरं, णिरंतरं; एगजीवं पडुच्च  
जहण्णेण अंतोयुहुत्तं, उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोरमाणि देसुणाणि; इच्चेदेहि मिच्छादिट्ठि-  
ओघादो भेदाभात्ता ।

सासनसम्भादिट्ठि-सम्भामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओधं ॥ १४० ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर शुद्धभ्रमग्रहणप्रमाण है ॥ १३७ ॥  
यह सूत्र भी सुगम ही है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ १३८ ॥

क्योंकि, विवक्षित कायसे निगोद जीवोंमें उत्पन्न हुए, तथा उसमें अढ़ाई पुद्गल-  
परिवर्तन और शेष कारिक जीवोंमें परिश्रमण करनेसे उनकी स्थितिप्रमाण साधिक काल  
परिश्रमणकर विवक्षित कायमें आये हुए जीवके अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तन कालप्रमाण अन्तर  
पाया जाता है ।

त्रसकारिक और त्रसकारिक पर्याप्तक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर ओघके  
समान है ॥ १३९ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है, निरन्तर है, एक जीवकी  
अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त अन्तर है और उत्कर्षमें त्रेदोन दो छयासठ सागरापम अन्तर  
है, इस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीवोंके ओघ अन्तरसे इनके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

त्रसकारिक और त्रसकारिक पर्याप्तक सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि  
जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान अन्तर  
है ॥ १४० ॥

१ त्रसकारिक मिथ्यादृष्टे मामायत्त । म सि १, ८.

२ मामादनसम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टयोनानाजीवपरिभमिया सामायत्त । म सि १, ८

कुदो ? जहण्णेण एगममओ, उक्कस्सेण पल्लोवमस्स असंखेज्जदिभागो; इच्चे-  
एहि भेदाभात्ता ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पल्लोवमस्स असंखेज्जदिभागो,  
अंतोसुहुत्तं ॥ १४१ ॥

सुगममेदं मुत्तं ।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुब्बकोडिपुधत्तेणअभहियाणि,  
वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ १४२ ॥

तं जथा- एकको एइदियद्विमच्छिदो असण्णिर्णंचिदिएसु उववण्णो । पंचहि  
पज्जत्तयदो (१) विस्सतो (२) विमुद्धो (३) भवणवासिय-चाणवेत्तरदेवेषु  
आउअं बंधिय (४) विस्सतो (५) मदो भवणवासिय-चाणवेत्तरदेवेषु उववण्णो । छहि  
पज्जत्तयदो (६) विस्सतो (७) विमुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो  
(९) सामणं गदो । भिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । तसद्विदिं परियद्विदूण अवसाणे सासणं गदो ।  
लद्धमंतरं । तदो तत्थ थावरपाओग्गमावलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदूण कालं गदो

पर्याकि, जघन्यसे एक समय ओर उत्तर्णसे पत्योपमके असंख्यातत्वे भागप्रमाण  
अन्तर है, इस प्रकार ओघले इनके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पत्योपमके असं-  
ख्यातमें भाग और अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ॥ १४१ ॥

याद सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः पूर्वकोटिपृथक्त्वसे  
अधिक दो हजार सागरोपम और कुछ कम दो हजार सागरोपम है ॥ १४२ ॥

जैसे- पक्षेन्द्रियकी स्थितिमें स्थित कोई एक जीव असंखी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न  
हुआ । पाचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी  
या वानव्यन्तर देवोंमें आयुको बांधकर (४) विश्राम ले (५) मरा और भवनवासी या  
वानव्यन्तर देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७)  
निगुण हो (८) उपराममन्यस्त्वको प्राप्त हो (९) सासादनगुणस्थानको गया । पश्चात्  
मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ और त्रस जीवोंकी स्थितिप्रमाण परिवर्तन  
करके अन्तमें सासादनगुणस्थानको गया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । तत्पश्चात्  
उस सासादनगुणस्थानमें स्थावरकायके योग्य आवलीके असत्यातवे भागप्रमाण काल

थावरकाएसु उववण्णो । आवलियाए असंखेज्जदिभागोण गवहि अंतोसुहुत्तेहि य ऊणिया  
तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तद्विदी अंतरं होदि ।

सम्पामिच्छादिद्विस्स उच्चदे- एकको एइदियद्विमच्छिय जीवो असण्णि-  
पंचिदिएसु उववण्णो । पचहि पज्जत्तयदो (१) विस्सतो (२) विमुद्धो (३)  
भवणवासिय-चाणवेत्तरदेवेषु आउअं बंधिय (४) विस्समिय (५) पुब्बुत्तेवेषु उववण्णो ।  
छहि पज्जत्तयदो (६) विस्सतो (७) विमुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो  
(९) । सम्पामिच्छत्तं गदो (१०) । भिच्छत्तं गंतूणंतरिदो सगद्विदिं परिभमिय अंतोसुहुत्ताव-  
सेसाए तस-तसपज्जत्तद्विदीए सम्पामिच्छत्तं गदो । लद्धमंतरं (११) । भिच्छत्तं गंतूण  
(१२) एइदिएसु उववण्णो । वारसअंतोसुहुत्तेहि ऊणिया तस-तसपज्जत्तद्विदी उक्क-  
स्संतरं होदि ।

असंजदसम्पामिच्छिपहुडि जाव अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं  
कालदो होदि, पाणार्जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १४३ ॥  
सुगममेदं ।

तक रह कर मरा और स्थावरकायिकोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार आवलीके असंख्यातवे  
भाग और नौ अन्तर्मुहूर्तसे कम त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तिकोंकी स्थितिप्रमाण  
अन्तर होता है ।

त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तिक सम्यग्मिथ्यादृष्टिका अन्तर कहते हैं-  
पक्षेन्द्रिय जीवोंकी स्थितिको प्राप्त कोई एक जीव असंखी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । पांच  
पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर  
देवोंमें आयुको बांधकर (४) विश्राम ले (५) पूर्वोक्त देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे  
पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपराममन्यस्त्वको प्राप्त हुआ (९) ।  
पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्वको गया (१०) । पुनः मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ  
और अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तिककी  
स्थितिके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जानेपर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार  
अन्तर लब्ध हुआ (११) । पीछे मिथ्यात्वको जाकर (१२) पक्षेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । इस  
प्रकार इन वारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम त्रस और त्रसपर्याप्तिकोंकी स्थिति ही उक्त दोनों  
प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमत्तसंयत तक त्रसकायिक और त्रस-  
कायिकपर्याप्तिक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर  
नहीं है, निरन्तर है ॥ १४३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४४ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुभतेणव्वमहि-  
याणि, वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ १४५ ॥

असंजदमम्मादिद्विस्स उच्चदे- एको एइदियद्विदिमच्छिदो असण्णिपंचिदियसस्सु-  
च्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो । पंचहि पज्जत्तयेदो (१) विस्संतो (२) विमुद्धो  
(३) भरणमसिय-वाणवत्तदेवेषु आउअं बंधिय (४) विस्संतो (५) कालं करिय  
भरणमसियेषु वाणवत्तरेसु वा देवेषु उववण्णो । छहि पज्जत्तयेदो (६)  
विस्संतो (७) निमुद्धो (८) उवसमममत्तं पडिवण्णो (९) । उवसमसम्मत्तद्वाए  
छावलियात्तसाए आमाणं गदो । अंतरिदो मिच्छत्तं गंतूण सगड्ढिदि परिभमिय अंते  
उवसमममत्तं पडिवण्णो (१०) । लद्धमंतरं । पुणे सासणं गदो आवलियाए असंखे-  
अदिभागं कालमच्छिदूण एइदियेसु उववण्णो । दसाहि अंतोमुहुत्तयेहि ऊणिया तस-त्तस-  
पज्जत्तद्विदी उक्कस्संतरं ।

उक्त जीवौका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त असंयतादि चारों गुणस्थानवर्ती त्रस और त्रसपर्याप्त जीवौका उत्कृष्ट  
अन्तर पूर्वोक्तद्विपुक्तत्वे अधिक दो सहस्रसागरोपम और कुछ कम दो सहस्र सागरोपम  
है ॥ १४५ ॥

इन्मेंसे पहले त्रस और त्रसपर्याप्तक असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कहते  
हैं- एकेन्द्रियस्थितिको प्राप्त कोई एक जीव असंखी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक  
जीवोंमें उत्पन्न हुआ । पाचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विमुद्ध  
हो (३) भजनगामी या चानव्यन्तर देवोंमें आयुको वाधकर (४) विश्राम ले (५)  
काल कर भजनगामी या चानव्यन्तर देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त  
हो (६) विश्राम ले (७) निमुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९) ।  
उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलिया अवशेष रहने पर सासादनगुणस्थानको गया  
और अन्तरको प्राप्त हो मिथ्यात्वमें जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिश्रमणकर अन्तमें  
उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१०) । इस प्रकार अन्तर लज्य हुआ । पुन' सासादन-  
गुणस्थानको जाकर यहाँ आत्मीक अत्यंततरे भागप्रमाण कालतक रहकर एकेन्द्रियोंमें  
उत्पन्न हुआ । इस प्रकार इन दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम त्रस और त्रसपर्याप्तिककी उत्कृष्ट  
स्थिति उर्ध्वोक्त प्रमंयतसम्यग्दृष्टि जीवौका उत्कृष्ट अन्तर है ।

१ उर्ध्वोक्त द्वे सागरोवमसहस्रे इति १, ८

संजदासंजदस्स उच्चदे- एको एइदियद्विदिमच्छिदो सण्णिपंचिदियपज्जत्तएसु  
उववण्णो । असण्णिसस्सुच्छिमपज्जत्तएसु किण्ण उप्पादिदो ? ण, तत्थ संजमासंजम-  
गाहणाभावा । तिण्णिपक्ख-तिण्णिविसेहि अंतोमुहुत्तेण य पढमसम्मत्तं संजमासंजमं  
च जुगवं पडिवण्णो (१) । पढमसम्मत्तद्वाए छावलियाओ अत्थि ति सासणं गदो ।  
अंतरिदो मिच्छत्तं गंतूण सगड्ढिदि परिभमिय पच्छिमे तसभवे सम्मत्तं घेत्तूण दंसण-  
मोहणीयं खविय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे संजमासंजमं पडिवण्णो (३) । लद्धमंतरं ।  
अप्पमत्तो (४) पमत्तो (५) अप्पमत्तो (६) । उवरि खवगसेदिमिह छ मुहुत्ता ।  
एवं चारसअंतोमुहुत्ताहिय-अहेतालीसदिवसेहि ऊणिया तस-त्तसपज्जत्तद्विदी संजदा-  
संजदुक्कस्संतरं ।

पमत्तस्स उच्चदे- एको एइदियद्विदिमच्छिदो मणुसेसु उववण्णो । गव्भादिअहु-  
वस्सेण उवसमसम्मत्तपपमत्तणुणं च जुगवं पडिवण्णो (१) पमत्तो (२) हेड्ढा परिवदिय  
अंतरिदो । सगड्ढिदि परिभमिय अपच्छिमे भवे सम्मादिद्वी मणुसो जादो । दंसणमोहणीयं

त्रस और त्रसपर्याप्तक संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एकेन्द्रिय  
जीवौकी स्थितिमें स्थित कोई एक जीव संखी पंचेन्द्रिय पर्याप्तिकोंमें उत्पन्न हुआ ।

शंका—उक्त जीवको असंखी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तिकोंमें क्यों नहीं उत्पन्न कराया ?  
समाधान—नहीं, क्योंकि, उनमें संयमासंयमके ग्रहण करनेका अभाव है ।

पुनः उत्पन्न होनेके पश्चात् तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्तसे प्रथमो-  
पशमसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । प्रथमोपशमसम्यक्त्वके  
कालमें छह आवलियां शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको गया और अन्तरको प्राप्त हो  
मिथ्यात्वमें जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिश्रमण करके अन्तिम त्रसभवमें सम्यक्त्वको  
ग्रहणकर और दर्शनमोहनीयका शय कर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण संसारके अवशिष्ट रहने पर  
संयमासंयमको प्राप्त हुआ (२) । इस प्रकार अन्तर लज्य हुआ । पश्चात् अग्रमत्तसंयत (३)  
प्रमत्तसंयत (५) और अग्रमत्तसंयत (६) हुआ । इन्में शपकश्रेणीसम्बन्धी ऊपरके छह  
अन्तर्मुहूर्त और मिलये । इस प्रकार चारह अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक अहेतालीस दिनोंसे कम  
त्रस और त्रसपर्याप्तिकोंको उत्कृष्ट स्थिति ही उन संयतासंयत जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर है ।

त्रसकाधिक और त्रसकाधिकपर्याप्त प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं-  
एकेन्द्रिय स्थितिको प्राप्त कोई एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भको आवि ले  
आठ वर्षके पश्चात् उपशमसम्यक्त्व ओर अग्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) ।  
पश्चात् प्रमत्तसंयत हो (२) नीचे गिर कर अन्तरको प्राप्त हुआ । अपनी उत्कृष्ट स्थिति-  
प्रमाण परिश्रमण करके अन्तिम भवमें सम्यग्दृष्टि मनुष्य हुआ । पुन. दर्शनमोहनीयका

स्वयि अप्पमत्तो नेट्ठण पमत्तो जादो (३) लद्धमंतरं । भूओ अप्पमत्तो (४) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । एवं अह्महि वस्सेहि दग्गहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणा तसत्तमपज्जत्तद्धिदी उक्कसंतं ।

आपमत्तस्स उच्चदे- एकको थावरद्धिदिमच्छिदो मणुस्सेसु उवण्णो गम्भादिअहु- वस्सेण उवसमम्मत्तमत्तपुणं च जुगवं पडिचण्णो (१) । अंतरिदो सगद्धिदि परिभ- मिय पन्निमे भं मणुमो जादो । सम्मत्तं पडिचण्णो दंसणमोहणीयं खविय अंतोमुहुत्ता- वस्से मंमारि विसुदो अप्पमत्तो जादो (२) । लद्धमंतरं । तदो पमत्तो (३) अप्पमत्तो (४) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । एवमह्महि वस्सेहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया तस- तमपज्जत्तद्धिदी उक्कसंतं ।

चटुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, गाणाजीवं पडुच ओर्थं ॥ १४६ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४७ ॥

क्षय करते अप्रमत्तसंयत हो प्रमत्तसंयत हुआ (३) । इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया । पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ (४) । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये । इस प्रकार दश अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्गोंसे कम ब्रह्म और ब्रह्मपर्याप्तकी उत्कृष्ट स्थिति ही उन प्रमत्त- संयत जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर है ।

ब्रह्मकायिक और ब्रह्मकायिकपर्याप्त अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- स्थावरकायकी स्थितिमें विद्यमान कोई एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भको आदि ले आठ वर्गोंसे उपशामसम्पत्त और अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । पश्चात् अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिश्रमणकर अन्तिम भवमें मनुष्य हुआ । सम्पत्तको प्राप्त कर पुन दर्शनमोहनीयका क्षय कर संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जानेपर विमुक्त हो अप्रमत्तसंयत हुआ (२) । इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया । तत्पश्चात् प्रमत्तसंयत (३) और अप्रमत्तसंयत हुआ (४) । इनमें ऊपरके क्षपकश्रेणी- सम्बन्धी छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये । इस प्रकार आठ वर्ग और दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम ब्रह्म और ब्रह्मपर्याप्तकी उत्कृष्ट स्थिति ही उन अप्रमत्तसंयत जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर है । ब्रह्मकायिक और ब्रह्मकायिकपर्याप्तक चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान अन्तर है ॥ १४६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४७ ॥

१ चतुर्गुणप्रकृतिको नानाजीवोंके साधारणत् । स सि १, ८.

२ एतन्नि प्रति अन्तेनात्तर्मुहूर्त । स. सि. १, ८.

एदं पि सुगमं ।  
उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधेत्तेणभहियाणि,  
वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ १४८ ॥

जथा पंचिदियमग्गणाए चटुण्हमुवसामगाणमंतरपरुवणा परुविदा, तथा एत्थ वि गिरवयवा परुवेदव्वा ।

चटुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं ॥ १४९ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ १५० ॥

एदं पि सुगमं ।

तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिदियअपज्जत्तभंगो ॥ १५१ ॥

कुदो ? पाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण सुदाभवगगहणं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोगलपरियट्ठिमिच्चेएहि पंचिदियअपज्जत्तेहितो तसकाइय- अपज्जत्ताणं भेदाभावा ।

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो सहस्र सागरोपम तथा कुछ कम दो सहस्र सागरोपम है ॥ १४८ ॥

जिस प्रकारसे पंचेन्द्रियमार्गणामे चारों उपशामकोंकी अन्तरप्ररूपणा प्ररूपित की है, उसी प्रकार यहाँपर भी सामस्यरूपसे अविकल प्ररूपणा करना चाहिए ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ १४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ १५० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

ब्रह्मकायिक लब्धपर्याप्तकोंका अन्तर पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तकोंके अन्तरके समान है ॥ १५१ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अक्षुद्रभवग्रहणप्रमाण, उत्कर्षसे अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है, इस प्रकार पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तकोंसे ब्रह्मकायिक लब्धपर्याप्तकोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

१ उत्कर्षेण दे सागरोपमसहसे पूर्वकोटिपृथक्त्वैरग्यधिक । स सि १, ८.

२ श्रेयाणां पंचेन्द्रियवत् । स सि १, ८.



**एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १५८ ॥**

जोग-गुणंतगमणेण तदसंभवा । एगजोगपरिणमणकालदो गुणकालो संसेजगुणो णि रुधं णवन्दे ? एगजीवम्म अंतगभावपटुपायणसुत्तादो ।

**चटुण्हं खवागमोधं ॥ १५९ ॥**

णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं, उक्कस्सेण छम्मसं; एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरमिच्चंदेहि भदाभावा ।

**ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १६० ॥**

तम्हि जोग-गुणंतसंकीए अभावादो ।

**सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओवं ॥ १६१ ॥**

एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १५८ ॥

क्योंकि, अन्य योग और अन्य गुणस्थानमें गमनद्वारा उनका अन्तर असंभव है । शंका—एक योगके परिणमन कालसे गुणस्थानका काल संबन्धितगुणा है, यह कैसे जाना जाता है ?

ममाधान—एक जीवके अन्तरका अभाव वतानेवाले सूत्रसे जाना जाता है कि एक योगके परिवर्तन-कालसे गुणस्थानका काल संबन्धितगुणा है ।

उक्त योगवाले चारों क्षणोंका अन्तर ओघके समान है ॥ १५९ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे छह मास अन्तर है, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, इस प्रकार ओघसे अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

औदारिकमिश्रक्राययोगोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १६० ॥

क्योंकि, औदारिकमिश्रक्राययोगोंमें योग और गुणस्थानके परिवर्तनका अभाव है ।

औदारिकमिश्रक्राययोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ?

नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ १६१ ॥

१ एरुजित प्रति नास्त्यन्तर । स सि १, ८

२ शृणुयां सपक्कागामयोगेवळिनां च सामान्यत्त्वं । स. सि १, ८

कुदो ? जहणणेण एगसमओ, उक्कस्सेण पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; इच्चंदेहि ओघादो भदाभावा ।

**एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १६२ ॥**

कुदो ? तत्थ जोगंतरगमणाभावा । गुणंतरं गदस्स वि पडिणियत्तिय सासणगुणेण तम्हि चेव जोगे परिणमणाभावा ।

**असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ १६३ ॥**

कुदो ? देव-णेइय-मणुसअसंजदसम्मादिट्ठीणं मणुसेसु उप्पत्तीए विणा मणुस-असंजदसम्मादिट्ठीणं तिरिक्खेसु उप्पत्तीए विणा एगसमयं असंजदसम्मादिट्ठिविरिहदि-ओरालियमिस्सकायजोगस्स संभवादो ।

**उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १६४ ॥**

तिरिक्ख-मणुसेसु वासपुधत्तमेत्तकालमसंजदसम्मादिट्ठीणमुत्थावादाभावा ।

**एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १६५ ॥**

क्योंकि, जघन्यसे एक समय, और उत्कर्षसे पल्योपमका असंबन्धिततां भाग अन्तर है, इस प्रकार ओघसे कोई भेद नहीं है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १६२ ॥

क्योंकि, औदारिकमिश्रक्राययोगकी अवस्थामें अन्य योगमें गमनका अभाव है । तथा अन्य गुणस्थानको गये हुए भी जीवके लौटकर सासादनगुणस्थानके साथ उसी ही योगमें परिणमनका अभाव है ।

औदारिकमिश्रक्राययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १६३ ॥

क्योंकि, देव, नारकी और मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियोंका मनुष्योंमें उत्पत्तिके विना, तथा मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियोंका तिर्यचोंमें उत्पत्तिके विना असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे रहित औदारिकमिश्रक्राययोगका एक समयप्रमाण काल सम्भव है ।

औदारिकमिश्रक्राययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्प्रमाण है ॥ १६४ ॥

क्योंकि, तिर्यच और मनुष्योंमें वर्षपृथक्प्रमाण कालतक असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उत्पाद नहीं होता है ।

औदारिकमिश्रक्राययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १६५ ॥



तस्मिन् तस्य गुण-जोगत्संस्कीर्ण अभावात् ।

सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणजीवं पडुच्च

जहण्णेण एगसमयं ॥ १६६ ॥

कुदो ? त्ताउपज्जायिन्दिहेकेवलीणमेगसमथोपलंभा ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १६७ ॥

कनाउपज्जाएण पिणा केवलीणं वासपुधत्तच्छणमभवादो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १६८ ॥

कुदो ? जोगंतरमंग्ठण ओरालियमिस्सकायजोगे चैव द्विदस्स अतरासंभवा ।

वेउव्वियकायजोगीसु चटुट्टाणीणं मणजोगिमंगो ॥ १६९ ॥

कुदो ? णाणजोगीं पडुच्च अंतराभाणेण साधम्मवादो ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो

होदि, णाणजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७० ॥

स्वोक्ति, औदारिकमिश्रकाययोगी अत्यतलसम्यग्दृष्टि जीवमें उक्त गुणस्थान और औदारिकमिश्रकाययोगिके परिचरितका अभाव है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी मयोरिकेवली जिनाना अन्तर कित्ते काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जयन्यसे एक समग अन्तर है ॥ १६६ ॥

स्वोक्ति, कृपादृष्टपर्यायसे रहित केवली जिनोंका एक समय अन्तर पाया जाता है । औदारिकमिश्रकाययोगी केवली जिनाना नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर मीपुधत्ता है ॥ १६७ ॥

स्वोक्ति, कृपादृष्टपर्यायके बिना केवली जिनोंका वर्मपुधत्तच तरु ररना सम्भव है । औदारिकमिश्रकाययोगी केवली जिनोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १६८ ॥

स्वोक्ति, अन्य जोगतो नहीं प्राप्त होकर औदारिकमिश्रकाययोगमें ही स्थित केवलीके अन्तरका होता जनन्य है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों आदिके चारों गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर मनो-योगियोंके समान है ॥ १६९ ॥

स्वोक्ति, नाना जोग और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे दोलनों समानता है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जन्यसे एक समय अन्तर है, ॥ १७० ॥

तं जहा-वेउव्वियमिस्सकायजोगिमिच्छादिट्ठीणो सव्वे वेउव्वियकायजोगं गदा । एगसमयं वेउव्वियमिस्सकायजोगो मिच्छादिट्ठीहि विरहिदो दिट्ठो । विदियसमए सत्तट्ठ जणा वेउव्वियमिस्सकायजोगे दिट्ठा । लद्धेमेगसमयमंतरं ।

उक्कस्सेण वारस सुहुत्तं ॥ १७१ ॥

तं जथा-वेउव्वियमिस्समिच्छादिट्ठीसु सव्वेसु वेउव्वियकायजोगं गदेसु वारस-सुहुत्तमेचमंतरिय पुणो सत्तट्ठजणेसु वेउव्वियमिस्सकायजोगं पडिणणेसु वारससुहुत्तं होदि ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १७२ ॥

तत्थ जोग-गुणंतरागमणाभावा ।

सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीण ओरालियमिस्समंगो

॥ १७३ ॥

कुदो ? सासणसम्मादिट्ठीणं णाणजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमयं, पलिदो-वमस्स असंसेज्जदिभायो तेहि, एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं तेण; असंजदसम्मादिट्ठीणं जैत्से-सभी वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव वैक्रियिककाययोगको प्राप्त हुए । इस प्रकार एक समय वैक्रियिकमिश्रकाययोग, मिथ्यादृष्टि जीवोंसे रहित विचार दिया । द्वितीय समयमें सात आठ जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें दृष्टिगोचर हुए । इस प्रकार एक समय अन्तर उपलब्ध हुआ ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर वारह सुहूर्त है ॥ १७१ ॥

जैत्से-सभी वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंके वैक्रियिककाययोगको प्राप्त हो जाने पर वारह सुहूर्तप्रमाण अन्तर होकर पुनः सात आठ जीवोंके वैक्रियिक-मिश्रकाययोगको प्राप्त होने पर वारह सुहूर्तप्रमाण अन्तर होता है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १७२ ॥

स्वोक्ति, उन वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके अन्य योग और अन्य गुणस्थानमें गमनका अभाव है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और अर्मयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है ॥ १७३ ॥

स्वोक्ति, सासादनसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जयन्य और उत्कृष्ट अन्तर कमदा- एक समय और पल्योपमका अत्यन्तवां भाग है इनसे, एक

\* अथतो ' माणेहि ' ; याप्तो ' माणेचेहि ' , स्यतो ' माणेधि ' इति पाठ ।

पाणानीं पडुच्च जहणुक्कस्सगयएगसमय-यामपुधत्तरेणं, एगजीवं पडुच्च अंतरा-  
भावेण च तदो भेदाभावा ।

आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदान-  
मंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणानीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं  
॥ १७४ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १७५ ॥

एदं पि सुगममेव ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १७६ ॥

तस्मि जोग-नुणंतरगहणाभावा ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिद्वि-सासणसम्मादिद्वि-असंजद-  
सम्मादिद्वि-सजोगिकेवल्लोणं ओरालियमिस्सभंगो ॥ १७७ ॥

जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है इससे, असंयतराम्यदृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा  
जवन्य एक समय और उत्कृष्ट मात्सपृथक्त्व अन्तर होनेसे, तथा एक जीवकी अपेक्षा  
अन्तरका अभाव होनेसे इन वैकल्पिकमिश्रकाययोगी सासादन और असंयतसम्यग्दृष्टियोंके  
अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

आहारकजाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयतोंका अन्तर  
कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जवन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १७४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ १७५ ॥

यह सूत्र भी सुगम ही है ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयतोंका एक जीवकी  
अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १७६ ॥

क्योंकि, आहारककाययोग या आहारकमिश्रकाययोगमें अन्य योग या अन्य

गुणस्थानके ग्रहण करनेका अभाव है ।

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और  
सयोजिकेवल्लोका अन्तर औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है ॥ १७७ ॥

१ प्रसिद्ध ' -पुष्यवर्षेण ' इति पाठ ।

मिच्छादिद्विणीं णाणेगजीवं पडुच्च अंतराभावेण; सासणसम्मादिद्विणीं णाणानीन-  
गयएयसमय-पलिदोवसासंखेज्जदिभागंतरेहि, एगजीवगयअंतराभावेण; असंजदसम्मा-  
दिद्विणीं णाणानीवगयएयसमयमास-पुधत्तरेहि, एगजीवगयअंतराभावेण; सजोगिकेवल्लि-  
णाणानीवगयएगसमय-वासपुधत्तेहि, एगजीवगयअंतराभावेण च दोणं सभाणसुवल्लभा ।  
एव जोगसगणा समत्ता ।

वेदानुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छादिद्विणीमंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, पाणानीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १७८ ॥  
सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७९ ॥

कुदो ? इत्थिवेदमिच्छादिद्विस्स दिद्वसगस्स अण्णणुणं गंतूण पडिणियचिय ल्हं  
मिच्छत्तं पडिणणस्स अंतोमुहुत्तं तल्लंभा ।

उक्कस्सेण पणवण पल्लिदोवमाणि देसूणाणि ॥ १८० ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव  
होनेसे, सासादनसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवगत जवन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्लो-  
पमके असंख्यातवे भग्ननाण अन्तरसे, तथा एक जीवगत अन्तरके अभावसे, असंयत-  
सम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवगत जवन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर मास-  
पृथक्त्वसे, तथा एक जीवगत अन्तरका अभाव होनेसे, सयोजिकेवल्लोका नाना  
जीवोंकी अपेक्षा जवन्य एक समय और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अन्तरसे, तथा एक जीवगत  
अन्तरका अभाव होनेसे औदारिकमिश्रकाययोगी और कार्मणकाययोगी, इन दोनोंके  
समानता पाई जाती है ।

इस प्रकार योगमार्गणा समान्त हुई ।

वेदमार्गणाके अनुयादसे स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल  
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १७८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जवन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७९ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंके अन्य गुणस्थानको जाकर और  
लौटकर शीघ्र ही मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर अन्तर्मुहूर्त अन्तर पाया जाता है ।

स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम  
पचवन पल्लोपम है ॥ १८० ॥

१ वेदानुवादेन स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टीनां निमित्तापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ६

२ एगजीवं प्रति जवन्येनान्तर्मुहूर्तः । स सि. १, ८

३ उत्तरमें पचपचाशत्स्योपमानि देखीनानि । स सि १, ८.

तं जहा- एको पुरिसवेदो णउमयेदो वा अट्टवीसमोहसंतकम्मिओ पणवण-  
पल्लोममाउट्टिदिदीसु' उवण्णो । छदि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२)  
रियुद्धो (३) वेदगपम्मत्तं पडिवण्णो अंतरिदो अवसाणे आउअं तीथिय मिच्छत्तं गदो ।  
लद्धमंतं (४) । सम्मत्तेण वद्धाउअत्तादो सम्मत्तेण गिगदो (५) मणुसो जादो ।  
पंचहि अंतोमुहत्तं उपाणि पणण पल्लोवमणि उक्कस्संतं हेदि । छपुडविणेणइएसु  
मोहम्मदिदेसु च सम्माइड्डी वद्धाउओ पुचं मिच्छत्तेण गिस्सारिदो । एत्थ पुण  
पणाणपल्लोवमाउट्टिदिदीसु तथा ण गिस्सारिदो । एत्थ कारणं जाणिय वत्तव्वं ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठीणमंतं केवचिरं कालादो  
होदि, गाणजीवं पडुच्च ओघं ॥ १८१ ॥

सुगममेव ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण पल्लोवमस्स असंखेज्जदिभागे,  
अंतोमुहत्तं ॥ १८२ ॥

अन्ते- मोहनीयकर्मकी अट्टाईसप्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक पुरुषवेदी, अथवा  
नपुंसक्येरी जीव, पचन पल्लोपमकी आयुस्थितियाली देवियोंमें उत्पन्न हुआ । छहों  
पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विद्युद्ध हो (३) वेदकसम्बन्धको प्राप्त होकर  
अन्तको प्राप्त हुआ और आयुके अन्तमें आगामी भवकी आयुको बांधकर मिथ्यात्वको  
प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर लक्ष्य होगया (४) । सम्बन्धके साथ आयुके बाधनेसे  
सम्बन्धके साथ ही निकला (५) और मनुष्य हुआ । इस प्रकार पांच अन्तमुहूर्तोंसे  
कन पचन पल्लोपम स्त्रीवेदी मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

पण्डे ओगप्रकरणमें छह पृथिवियोंके नारकियोंमें तथा सोधर्मादि देवोंमें वद्धा-  
गुरुक सम्मरदष्टि जीन मिथ्यात्वके द्वारा निकाला था । किन्तु यहां पचन पल्लोपमकी  
'आयुस्थितियाली देवियोंमें उग प्रकारसे नहीं निकाला । यहापर इसका कारण जानकर  
करना चाहिए ।

स्त्रीवेदी मामादनसम्यग्दष्टि और मम्यग्मिथ्यादष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल  
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान अन्तर है ॥ १८१ ॥

यह पत्र सुगम है ।

स्त्रीवेदी मामादनसम्यग्दष्टि और मम्यग्मिथ्यादष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा  
अपन्य अन्तर कमजः पल्लोपमका अंगस्थिततां भाग और अन्तमुहूर्त है ॥ १८२ ॥

१ 'अंतो' अंत' ही पत्र ।

२ मम्यग्मिथ्यादष्टिकर्मिथ्यादष्टिनेनाजनासेसत्ता मानातर । म नि १, ८.

३ एवमपि नही प्रत्येक पल्लोपमकास्त्रीमोहनीय । म नि १, ८

एदं पि सुत्तं सुगममेव ।

उक्कस्सेण पल्लोवमसदपुथत्तं ॥ १८३ ॥

तं जहा- एको अणवेददिट्ठिमिच्छदो सासणद्वाए एगो समओ अत्थि चि  
इत्थिवेदसु उवण्णो एगसमयं सासणगुणेण दिट्ठो । त्रिदियसमए मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो ।  
त्थिवेददिदि परिभमिय अवसाणे त्थिवेददिदीए एगसमयावसेसाए सासणं गदो । लद्ध-  
मंतं । मदो वेदंतं गदो । वेहि समएहि उणयं पल्लोवमसदपुथत्तमंतं लद्धं ।

सम्माभिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे- एको अट्टवीसमोहसंतकम्मिओ अणवेदो देवीसु  
उवण्णो । छदि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मा-  
मिच्छत्तं पडिवण्णो (४) मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । त्थिवेददिदि परिभमिय अते सम्मा-  
मिच्छत्तं गदो (५) । लद्धमंतं । जेण गुणेण आउअं वद्धं तं गुणं पडिबज्जिय अणवेदे  
उवण्णो (६) । एवं छदि अंतोमुहत्तं हेदि जाणिया त्थिवेददिदी सम्माभिच्छुक्कस्संतं  
हेदि ।

यह सूत्र भी सुगम ही है ।

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दष्टि और मम्यग्मिथ्यादष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा  
उत्कृष्ट अन्तर पल्लोपमशतपृथक्त्व है ॥ १८३ ॥

जैसे अन्य वेदकी स्थितिको प्राप्त कोई एक जीव सासादनगुणस्थानके कालमें  
एक समय अवशिष्ट रहने पर स्त्रीवेदियोंमें उत्पन्न हुआ और एक समय सासादनगुण-  
स्थानके साथ दिखाई दिया । द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ ।  
स्त्रीवेदकी स्थितिप्रमाण परिश्रमण करके अन्तमें स्त्रीवेदकी स्थितिमें एक समय अवशेष  
रहने पर सासादनगुणस्थानको गया । इस प्रकार अन्तर लक्ष्य हुआ । पुनः मरा और  
अन्य वेदको प्राप्त होगया । इस प्रकार दो समयोंसे कन पल्लोपमशतपृथक्त्वकाल  
स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हुआ ।

अब मम्यग्मिथ्यादष्टि स्त्रीवेदी जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहनीयकर्मकी  
अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव देवियोंमें उत्पन्न हुआ । छहों  
पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विद्युद्ध हो (३) मम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त  
हुआ (४) । पश्चात् मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ । स्त्रीवेदकी स्थिति-  
प्रमाण परिश्रमणकर अन्तमें मम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (५) । इस प्रकार अन्तर लक्ष्य  
हो गया । पण्डे जिस गुणस्थानसे आयुको बाधा था, उसी गुणस्थानको प्राप्त होकर अन्य  
जीवोंमें उत्पन्न हुआ (६) । इस प्रकार छह अन्तमुहूर्तोंसे कम स्त्रीवेदकी स्थिति सम्ब-  
न्धिमथ्यादष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

१ उच्चदेण पल्लोपमशतपृथक्त्व । म. नि १, ८

असंजदसम्मादिट्टिपहुडि जाव अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं  
कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १८४ ॥  
सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८५ ॥

कुदो ? अण्णगुणं गंतूण पडिणियत्तिय तं चम गुणसागदाणमंतोपुहुत्तं रुचलंभा ।

उक्कस्सेण पल्लिवमसदपुधत्तं ॥ १८६ ॥

अंगजदमम्मादिट्टिस्स उच्चदे । तं जहा- एक्को अट्टावीसमंतकम्मिओ देसेसु  
उमण्णो । छहि पज्जचीहि पज्जत्तयो (१) विस्सतो (२) विखुदो (३) वेदग-  
मम्मत्तं पडिणणो (४) भिच्छत्तं गदो अंतरिदो त्थीवेदड्ढिदि परिभमिय अत्ते उअरम-  
सम्मत्तं पडिणणो (५) । लद्धमंतरं । छापलियावसेसे पडयमम्मत्तकाले सासणं गंतूण  
मदो वेदंतरं गदो । पंचहि अंतोपुहुत्तेहि जगणं पल्लिवमसदपुधत्तमंतरं होदि । देखण-

आयत्तस्यग्दट्टिसे लेकर अपमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती  
स्वीटियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है,  
निगन्तर है ॥ १८४ ॥

यत् सूत्र सुगम है ।

उक्त गुणस्थानमाले स्वीनियंदिआ एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त  
है ॥ १८५ ॥

स्वीक, अन्य गुणस्थानको जाकर और लौट कर उसी ही गुणस्थानको अये हुए  
जीवोंका अन्तर्मुहूर्त अन्तर पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उन्मृष्ट अन्तर पल्योपमशतप्रत्यक्ष है ॥ १८६ ॥

इसमेंसे पहले स्वीवेदी अयंयतसम्यग्दट्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकी  
अट्टारिस त्रमप्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्ति-  
योंने पर्याप्त हो (१) विग्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त  
हुआ (४) । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो, स्वीवेदीकी स्थितिप्रमाण  
परिभ्रमणकर अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (५) । इस प्रकार अन्तर लब्ध  
हुआ । प्रथमोपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहने पर सासादनगुण-  
स्थानको जाकर मरा और अन्य वेदको गया । इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पल्यो-  
पमशतप्रत्यक्षप्रमाण अन्तर होता है ।

१ अयंयतसम्यग्दट्टिअयमत्तान्तां नानाजीवेषणा नात्त्यत्तम् । स पि १, ८

२ पल्लिव प्रति कप्पेनान्तर्मुहूर्तं । म पि. १, ८.

३ उन्मेषेण पल्योपमशतप्रत्यक्षम् । स पि. १, ८.

वयणं सुत्ते किण्ण कदं ? ण, पुधत्तणिहेत्तेणेव तस्स अचगमादो ।

संजडासंजदस्स उच्चदे- एक्को अट्टावीसमोहसंतकम्मिओ अण्णवेदो त्थीवेदेषु  
उवण्णो वे माये गब्भे अच्छिदूण पिक्खंतो दिनसपुधत्तेण विखुदो वेदगसम्यक्त्वं संजगा-  
संजमं च जुगवं पडिणणो (१) । भिच्छत्तं गंतूणंतरिदो त्थीवेदड्ढिदि परिभमिय अत्ते  
पडमसम्मत्तं देससंजमं च जुगवं पडिणणो (२) । आसाणं गंतूण मदो देवो जादो । वेहि  
सुहुत्तेहि दिवसपुधत्तं हिय-नेभासेहि य ज्जा त्थीवेदड्ढिदी उक्कस्संतरं होदि ।

पमत्तस्स उच्चदे- एक्को अट्टावीसमोहसंतकम्मिओ अण्णवेदो त्थीवेदमणुसेसु  
उवण्णो । गब्भादिअडुवस्सिओ वेदगसम्यक्त्वं पमत्तगुणं च जुगवं पडिणणो (१) ।  
पुणो पमत्तो जादो (२) । भिच्छत्तं गंतूणंतरिदो त्थीवेदड्ढिदि परिभमिय पमत्तो जादो ।  
लद्धमंतरं (३) । मदो देवो जादो । अट्टवस्सेहिं तीहिं अंतोपुहुत्तेहि ज्जणिया त्थीवेदड्ढिदी  
लद्धमुक्कस्संतरं । एअरपमत्तत्तं वि उक्कस्संतरं भाणिव्वं, विसिसाभावा ।

शंका—सूत्रमें 'देशोन' ऐसा वचन क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'पुधक्त्व' इस पदके निर्देशसे ही उस देशोलताका  
ज्ञान हो जाता है ।

स्वीवेदी संयतासंयत जीवका उत्कृष्ट अन्तर करते हैं- मोहनीयकर्मकी अट्टारिस  
प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव, स्वीवेदियोंमें उत्पन्न हुआ । दो मास  
गर्भमें रह कर निकला और दिवसपुधत्तवसे विशुद्ध हो वेदकसम्यक्त्व ओर संयमा-  
संयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो स्वी-  
वेदकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तमें प्रथमोपशमसम्यक्त्व और वेदसंयमको एक  
साथ प्राप्त हुआ (२) । पुनः सासादन गुणस्थानको जाकर मरा और देव होगया । इस  
प्रकार दो मुहूर्त और दिवसपुधत्तवसे अधिक दो माससे कम स्वीवेदकी स्थिति स्वीवेदी  
संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

स्वीवेदी प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्टारिस प्रकृतियोंकी  
सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव, स्वीवेदी मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि  
लेकर आठ वर्षका हो वेदकसम्यक्त्व और अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) ।  
पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (२) । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो स्वीवेदकी  
स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तमें प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (३) ।  
पश्चात् मरा और देव हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम स्वीवेदकी  
स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ ।

इसी प्रकारसे स्वीवेदी अप्रमत्तसंयतका भी उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए,  
क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है ।

दोण्डमुवसापमाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहणुणएगसमयं ॥ १८७ ॥

इदो? एगसमय-नामपुधत्तेहि ओघादो भेदाभाता ।

एगजीवं पडुच्च जहणुण अंतोमुहुत्तं ॥ १८८ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण पल्लिदोवमसदपुधत्तं ॥ १८९ ॥

ते जहा-एकको अण्णमेदो अट्टासीसमोहमंतकम्मिओ त्थीवेदमणुमेसुवण्णो । अट्ट-रस्मिओ मम्मत्तं मंजमं च जुगमं पडिण्णो (१) । अण्णताणुवंधी त्रिसंजोइय (२) देणमोहणीयमुग्गाभिय (३) अप्पमत्तो (४) पमत्तो (५) अप्पमत्तो (६) अप्पुब्बो (७) अणियट्ठो (८) मुहुसो (९) उयंतो (१०) भूओ पडिणियत्तो मुहुसो (११) अणियट्ठी (१२) अणुओ (१३) हेट्ठा पडिट्ठंतदिदो त्थीवेदडिदिं भमिय अवसाणे मंजमं पडिण्णिय कट्ठरणिज्जो होदुण अप्पुब्बुधममगो जादो । लद्धमंतरं । तदो णिदा-

सीवेदी अपूर्वकरण और अनिष्टुत्तिकरण, इन दोनों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके ममान है ॥ १८७ ॥

क्योंकि, जगन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है, इनकी अपेक्षा ओघसे इनमें कोई भेद नहीं है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहुत्तं है ॥ १८८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्लयोपमशतपृथक्त्व है ॥ १८९ ॥

जैसे- मोहरुमंसी अट्टाईस प्रशतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव, सीवेदी मनुष्योंमें उपा हुआ और आठ वर्षका होकर सत्यस्त्व और समयको एक साथ प्राप्ति हुआ (१) । पञ्चात् अन्तानुसन्धी कणायका त्रिसंयोजन कर (२) दर्शनमोहनीयका उपशाम कर (३) अममत्तसंयत (४) ममत्तसंयत (५) अममत्तसंयत (६) अपूर्वकरण (७) पतिगृत्तिकरण (८) मुहुसममाराय (९) और उपशान्तकणाय (१०) होकर पुन मतिनिगुण हो सत्सममाराय (११) अतिगृत्तिकरण (१२) और अपूर्वकरणसंयत हो (१३) नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्ति हुआ और सीवेदीकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तमें मंगमको मान हो एतदुत्थयवत्क होकर अपूर्वकरण उपशामक हुआ । इस प्रकार

१ उपशामकको त्रिसंयोजनता गणायत् । म. सि. १, ८.

२ पञ्चात् अन्तानुसन्धी । म. सि. १, ८.

३ - इति एतदुत्थयवत्क । म. सि. १, ८.

पयलाणं वंधे वोच्छिण्णे मदो देवो जादो । अट्टवस्सेहि तेरसंतोमुहुत्तेहि य अप्पुब्बकरणद्वारा सत्तमभोगेण च ऊणिया सगड्ढिदी अंतरं । अणियट्ठिस्म वि एवं चेम । णवरि वारस अंतोमुहुत्ता एगसमओ च वत्तन्वो ।

दोण्डं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहणुण एगसमयं ॥ १९० ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १९१ ॥

अप्पमत्तथीवेदाणं वासपुधत्तेण विणा अण्णस्स अंतरस्स अणुमलंभादो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १९२ ॥

सुगममेदं ।

पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओधं ॥ १९३ ॥

अन्तर लन्ध हुआ । पीछे निद्रा और प्रचलके बंध विच्छेद हो जाने पर मरा और देव होगया । इस प्रकार आठ वर्ष और तेरह अन्तर्मुहुत्तोंसे, तथा अपूर्वकरण-कालके सातवें भागसे इति अपनी स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर है । अनिष्टुत्तिकरण उपशामकका भी इसी प्रकारसे अन्तर होता है । विशेष बात यह है कि उनके तेरह अन्तर्मुहुत्तोंके स्थानपर बारह अन्तर्मुहुत्त और एक समय कम कहना चाहिए ।

सीवेदी अपूर्वकरण और अनिष्टुत्तिकरण, इन दोनों क्षपकोंका अन्तर वितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यमे एक समय अन्तर है ॥ १९० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सीवेदी अपूर्वकरण और अनिष्टुत्तिकरण क्षपकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ १९१ ॥

क्योंकि, अममत्तसंयत खविदियोंका वर्षपृथक्त्वके अतिरिक्त अन्य अन्तर नहीं पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १९२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पुरयोदियोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके समान है ॥ १९३ ॥

१ इदो क्षपरयोर्नानाजीवपेक्षया जघन्यैक समयः । म. सि. १, ८.

२ जल्येण वंशुपमस्स । म. सि. १, ८.

३ पृच्छीव मति नाल्लत्तए । म. सि. १, ८.

कुटो ? गाणजीवं पडुच्च अंतगभावेण, एगजीवधिसयअंतोमुहुत्त-देखणेच्छावडि-  
सागरोपमंतरेहि य तदो भेदाभावा ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, गाणजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ ११४ ॥

सुगममेदं ।

उक्कसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११५ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,  
अंतोमुहुत्तं ॥ ११६ ॥

एदं पि सुगेहं ।

उक्कसेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ११७ ॥

तं जहा- एकको अणवेदो उवमसम्मादिट्ठी सासणं गंतूण सासणद्वए, एगो  
समओ अत्थि ति पुरिसवेदो जादो । सासणगुणेण एगसमयं दिट्ठो, विदियसमए मिच्छं  
ययँकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका शभाव होनेसे, एक जीवकी अपेक्षा  
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम दो ह्यासठ सागरोपम अन्तरकी अपेक्षा  
ओषमिथ्यादष्टिके अन्तरसे पुरुषवेदी मिथ्यादष्टियोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दष्टि और सम्यग्मिथ्यादष्टियोंका अन्तर कितने काल  
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ११४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥ ११५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दष्टि और सम्यग्मिथ्यादष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा  
अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११६ ॥

यह सूत्र भी सुबोध है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ ११७ ॥

जैसे- अन्य वेदवाला एक उपशमसम्यग्दष्टि जीव, सासादन गुणस्थानमें जाकर,  
सासादन गुणस्थानके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर पुरुषवेदी होगया और  
सासादन गुणस्थानके साथ एक समय दृष्टिगोचर हुआ । द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको

१ सासादनस्य दष्टिम्यग्मिथ्यादष्टीनांजीवोपेक्षया सामान्यत्वं । स वि १, ८

२ एगजीव प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयमगोऽन्तर्मुहूर्तम् । स वि १, ६

३ उत्तरेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । स वि १, ८

गंतूणंतरिदो पुरिसवेदडिदिं भमिय अत्रसाणे उवमसम्मतं घेत्तूण सासणं पडिचण्णो ।  
विदियसमए मदो देवेसु उवचण्णो । एवं त्रि-समजणसागरोवमसदपुधत्तमुक्कसंतरं होदि ।

सम्माभिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे- एकको अट्ठानीससंतकम्मिओ अणवेदो देवेसु  
उवचण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ( १ ) त्रिस्संतो ( २ ) त्रिमुट्ठो ( ३ ) सम्मा-  
भिच्छत्तं पडिचण्णो ( ४ ) मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो सगडिदिं परिभमिय अंते सम्माभिच्छत्तं  
गदो ( ५ ) । लद्धमंतरं । अण्णगुणं गंतूण ( ६ ) अणवेदे उवचण्णो । छहि अंतोमुहुत्तेहि  
ज्जणं सागरोवमसदपुधत्तमुक्कसंतरं होदि ।

असंजदसम्मादिट्ठिपहुडि जाव अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं  
कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ११८ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११९ ॥

एदं पि सुगमं ।

जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ । पुरुषवेदकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके आयुके अन्तमें  
उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण कर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ । पश्चात् द्वितीय  
समयमें मरा ओर देवोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार उक्त जीवोंका दो समय कम सागरोपम-  
शतपृथक्त्व अन्तर होता है ।

पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहरुर्मकी  
अट्ठईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव, देवोंमें उत्पन्न हुआ, छहों  
पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो ( १ ) विश्राम ले ( २ ) विशुद्ध हो ( ३ ) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त  
हुआ ( ४ ) । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परि-  
भ्रमण करके अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ( ५ ) । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया ।  
तत्पश्चात् अन्य गुणस्थानको जाकर ( ६ ) अन्य वेदमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार छह  
अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सागरोपमशतपृथक्त्व पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादष्टि जीवका उत्कृष्ट  
अन्तर होता है ।

असंयतसम्यग्दष्टिसे लेकर अग्रमत्तसंयत गुणस्थान तक पुरुषवेदी जीवोंका अन्तर  
कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ११८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त गुणस्थानवर्ती जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

१ अग्रयतसम्यग्दष्टयाग्रमत्तानां नानाजीवोपेक्षया नास्त्यन्तरम् । स वि. १, ८

२ एगजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । स वि. १, ८.



उक्कस्सेण वासं सादिरैयं ॥ २०५ ॥

तं जहा- पुरिसवेदेण अपुव्वगुणं पडिक्खणा सव्वे जीवा उवरिमगुणं गदा । अंतरिदमपुव्वगुणद्वानं । पुणे छमासेसु अदिक्कत्तेसु सव्वे इत्थिवेदेण चैव स्वग-सेट्ठिमारूढा । पुणे चत्तारि वा पंच वा मासे अंतरिदूण खवगसेट्ठि चट्ठमाणा गण्डुस्य-वेदोदएण चट्ठिदा । पुणे वि एक्क-दो मासे अंतरिदूण इत्थिवेदेण चट्ठिदा । एवं सखेज-चारमित्थि-गण्डुस्यवेदोदएण चैव खवगसेट्ठि चट्ठविय पच्छा पुरिसवेदोदएण खवगसेट्ठि चट्ठिदे वासं सादिरैयमंतरं होदि । कुदो ? गिरंतरं छम्मासंतरस्स असंभादो । एवमणि-यट्ठिस्स वि वत्तवं । केसु वि सुचपोत्थएसु पुरिसवेदसंतरं छम्मासा ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २०६ ॥

कुदो ? स्वगणं पडिणियत्तीए असंभा ।

णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालदो होदि,  
णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २०७ ॥

उक्त दोनों क्षपकोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है ॥ २०५ ॥

जैसे- पुरुषवेदके द्वारा अपूर्वकरणक्षपक गुणस्थानको प्राप्त हुए सभी जीव ऊपरके गुणस्थानोंको चले गए और अपूर्वकरणगुणस्थान अन्तरको प्राप्त होगया । पुनः छह मास व्यतीत हो जाने पर सभी जीव खविदेके द्वारा ही क्षपकश्रेणी पर आरूढ हुए । पुनः चार या पाच मासका अन्तर करके नपुंसकवेदके उदयसे कुछ जीव क्षपकश्रेणीपर चढे । पुनः एक दो मास अन्तरकर कुछ जीव खविदेके द्वारा क्षपकश्रेणीपर प्रकार संख्यात वार खविदे और नपुंसकवेदके उदयसे ही क्षपकश्रेणीपर चढ़ा करके पीछे पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणी चढ़नेपर साधिक वर्षप्रमाण अन्तर हो जाता है, क्योंकि, निरन्तर छह मासके अन्तरसे अधिक अन्तरका होता असम्भव है । इसी प्रकार पुरुषवेदी अनिवृत्तिकरणक्षपकका भी अन्तर कहना चाहिए । कितनी ही सूत्रपेथियोंमें पुरुषवेदका उत्कृष्ट अन्तर छह मास पाया जाता है ।

दोनों क्षपकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २०६ ॥

क्योंकि, क्षपकोंका पुनः लौटना असम्भव है ।

नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २०७ ॥

१ उत्तरपेण सव्वन्तर सात्तिके । स ति १, ८ २ एकजीव प्रति नात्त्यत्तए । स. ति १, ८

३ नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नात्त्यत्तए । स ति १, ८.

तं जहा- एक्को अट्ठणीमंतकस्मिओ अणवेदो पुरिसवेदमणुमेषु उव्वण्णो अट्ठस्मिओ जादो । मम्मत्तं मंजमं च जुगमं पडिक्खणो ( १ ) । अणंताणुवांधे निसंजोइय ( २ ) दंयणमाहणीयपुव्वसामिय ( ३ ) अप्पमतो ( ४ ) पमतो ( ५ ) अप्पमतो ( ६ ) अपुव्वो ( ७ ) अणियट्ठी ( ८ ) सुट्ठमो ( ९ ) उवसंतकसाओ ( १० ) पडिणियत्तो सुट्ठमो ( ११ ) अणियट्ठी ( १२ ) अपुव्वो ( १३ ) हेट्ठा परियट्ठिय अंतरिदो । सागरो-पमपदपुयत्तं परिभमिय कदरुणज्जो होदूण संजमं पडिवज्जिय अपुव्वो जादो । लट्ठमंतरं । उवरि पंचिदियमंगो । एवमट्ठमस्सेहि एणूणीमअतोसुट्ठुचेहि य ऊणा सगट्ठिदी अंतरं होदि । अणियट्ठिस्स वि एवं चैव वत्तवं । णवरि अट्ठवस्सेहि सत्तावीसअंतो-सुट्ठुचेहि य ऊणं सागरोवमसदपुधत्तमंतरं होदि ।

दोणहं स्वगणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, णाणाजीवं पडुच्च  
जहण्णेण एगसमयं ॥ २०४ ॥

सुगमेदं ।

जैसे- मोहकर्मकी अट्ठार्हस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्यवेदी जीव पुरुषवेदी मणुयोंमें उत्पन्न हुआ । आठ वर्षका होकर सम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त हुआ ( १ ) । अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन कर ( २ ) दर्शनमोहनीयका उपशमन कर ( ३ ) अग्रमत्तमयत ( ४ ) प्रमत्तसयत ( ५ ) अग्रमत्तसंयत ( ६ ) अपूर्वकरण ( ७ ) अनिवृत्तिकरण ( ८ ) सूदमसास्यराय ( ९ ) उपशान्तकपाय ( १० ) पुनः लौटकर सूदम-सागराय ( ११ ) अनिवृत्तिकरण ( १२ ) अपूर्वकरण ( १३ ) होता हुआ नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ । सागरोपमशतष्टयक्त्वप्रमाण परिभ्रमण कर कृतकृत्यवेदकसम्यग्त्वकी होकर संयमको प्राप्त कर अपूर्वकरणमयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । इसके ऊपर का कथन पंचेन्द्रियोंके समान है । इस प्रकार आठ वर्ष और उन्तीस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थितिप्रमाण पुरुषवेदी अपूर्वकरण उपशामकना उत्कृष्ट अन्तर होता है । अनिवृत्तिकरण उपशामकना भी इसी प्रकारसे अन्तर कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि आठ वर्ष और सत्तार्हस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सागरोपमशतष्टयक्त्व इनका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

पुरुषवेदी अपूर्वकरणसंयत और अनिवृत्तिकरणसंयत, इन दोनों क्षपकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २०४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ इयो क्षपक्योर्नानाजीवापेक्षया जघन्यैक समय । स ति १, ८.



सुगममेतं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुत्तं ॥ २०८ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ २०९ ॥

तं जथा- एकको मिच्छादिद्वी अट्टापीयंतकम्मिजो मत्तमणुद्वीए उरत्थो ।  
छहि पज्जतीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विमुदो (३) गम्भत्तं पडिग्गिज्जय  
अंतदिदो । अत्तसाणे मिच्छत्तं गंतूण (४) आउअं मंधिय (५) विस्समिय (६) मद्यो  
तिरिक्खो जादो । एवं छहि अंतोसुहुत्तेहि उग्गाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि उक्कस्सत्तं होदि ।

सासणसम्मादिट्ठिपहुडि जाव अणियट्ठिउवसापिदो ति मूलेवं  
॥ २१० ॥

यह स्य सुगम हे ।

एक जीवकी अपेक्षा नपुंसकयोदी भिव्याद्यष्टियोंका जपन्य अन्तर अन्तर्मुहो  
हे ॥ २०८ ॥

यह स्य भी सुगम हे ।

एक जीवकी अपेक्षा नपुंसकयोदी भिव्याद्यष्टियोंका उच्छट अन्तर कुछ कम  
तेत्तीस सागरोपम है ॥ २०९ ॥

अन्ते- मोहकर्मकी अट्टारंभ प्रकृतियोंकी सत्सागला कोदं एक भिव्याद्यष्टि औष  
सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । छहों पयोवियोंमें पयोव हो (१) विद्याम दे (२)  
विद्युद्ध हो (३) मय्यक्कको प्राज होकर अन्तको मात्र हुआ । आयुके प्रकाशे  
भिव्याद्यको मात्र होकर (४) आयुको बांध (५) विद्याम दे (६) मत्त और विद्वेज  
हुआ । इस प्रकार अष्ट अन्तर्मुहोविये कम तेत्तीस सागरोपमकाल नपुंसकयोदी भिव्याद्यष्टिका  
उच्छट अन्तर होता है ।

सासणसम्पदष्टिमे लेख अनिच्छित्तरुण उपआमक गुणस्थान तक नपुंसकयोदी  
जीवोंका अन्तर मूलोचके समान है ॥ २१० ॥

१ पञ्चवीं प्रति जसवेतासर्पद्वयं । ग. सि. १, ८

२ उत्तरेण पयविद्युत्तयाणीणमाणे देवोत्तारि । ग. सि. १, ८.

३ सागरोवमाण्यष्टापत्तिपुच्छमपरात्तानि सामा योत्तव । ग. सि. १, ८.

कृतो ? मागनसम्मादिट्ठिस्य ज्ञानाजीवं पडुच्च जहणेण एगममेते, उक्कस्सेण  
पत्तिरोपमस्य अमंयिज्जदिमाणोः एगजीवं पडुच्च जहणेण पत्तिरोपमस्य अमंयिज्जदि-  
माणो, उक्कस्सेण अट्टोण्णअपरियट्ठं देयं । मन्माभिव्याद्यष्टिस्य ज्ञानाजीवं पडुच्च  
जहणेण एगममजी, उक्कस्सेण पत्तिरोपमस्य अमंयिज्जदिमाणोः एगजीवं पडुच्च  
जहणेण अंतोसुहुत्तं, उक्कस्सेण अट्टोण्णअपरियट्ठं देयं । अमंयिज्जदिट्ठिस्य ज्ञाना-  
जीवं पडुच्च जहणेण अंतं, एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुत्तं, उक्कस्सेण अट्टोण्णअ-  
परियट्ठं देयं । मंयमंयज्जस्य ज्ञानाजीवं पडुच्च जहणेण अंतं, एगजीवं पडुच्च जहणेण  
अंतोसुहुत्तं, उक्कस्सेण अट्टोण्णअपरियट्ठं देयं । एगमस्य ज्ञानाजीवं पडुच्च जहणेण  
अंतं, एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुत्तं, उक्कस्सेण अट्टोण्णअपरियट्ठं देयं ।  
अपमस्य ज्ञानाजीवं पडुच्च जहणेण अंतं, एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुत्तं, उक्क-  
स्सेण अट्टोण्णअपरियट्ठं देयं । अनुक्कस्सेण ज्ञानाजीवं पडुच्च जहणेण एगममयो,  
उक्कस्सेण ज्ञानाजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुत्तं, उक्कस्सेण अट्टोण्णअ-  
परियट्ठं देयं । एगनीगदिम्य रि वि । एदेनिमेमेहि ओपादो भेदाभवात् ।

वर्षादि, नपुंसकयोदी सागरोवमाण्यष्टिका ज्ञाना जीवोंकी अपेक्षा अल्प अल्प अन्तर  
एक गमय और उच्छट अन्तर पयोपमका सत्सागला भाग है, एक जीवकी अपेक्षा  
अल्प अन्तर पयोपमका अंशकालका भाग और उच्छट अन्तर कुछ कम अंतर्मुहो-  
परिमाणममान है । मय्यमिज्जदिमाणोपेक्षा ज्ञाना जीवोंकी अपेक्षा अल्प अन्तर एक गमय  
और उच्छट अन्तर पयोपमका अंशकालका भाग है, एक जीवकी अपेक्षा अल्प अन्तर  
अन्तर्मुहो और उच्छट अन्तर कुछ कम अंतर्मुहोपरिमाणममान है । अंतर्मुहोपरिमा-  
ना ज्ञाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीवकी अपेक्षा अल्प अन्तर अन्तर्मुहो  
और उच्छट अन्तर कुछ कम अंतर्मुहोपरिमाणममान है । मंयमंयज्जस्य ज्ञाना जीवोंकी  
अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीवकी अपेक्षा अल्प अन्तर अन्तर्मुहो और उच्छट अन्तर  
कुछ कम अंतर्मुहोपरिमाणममान है । मन्माभिव्याद्यष्टिका ज्ञाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं  
है, एक जीवकी अपेक्षा अल्प अन्तर अन्तर्मुहो और उक्कस्सेण कुछ कम अंतर्मुहोपरिमा-  
ममान है । अमंयिज्जदिमाणो ज्ञाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक अंतर्मुहो अपेक्षा  
अल्प अन्तर अन्तर्मुहो और उक्कस्सेण कुछ कम अंतर्मुहोपरिमाणममान है । अंतर्मुहो  
ज्ञाना जीवोंकी अपेक्षा अल्प अन्तर और उक्कस्सेण अंतर्मुहोपरिमाणममान है । अंतर्मुहो  
अपेक्षा अपमस्य अन्तर्मुहो और उक्कस्सेण कुछ कम अंतर्मुहोपरिमाणममान अन्तर है ।  
एगी प्रकार भिव्याद्यष्टिका ज्ञाना जीवका अन्तर अन्तर्मुहोपरिमाणममान है । एग ज्ञाना जीवका अन्तर  
अल्प और उच्छट अन्तरापी अपेक्षा अपेक्षे कोदं भेद नहीं है ।

दोण्डं स्वाणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, गाणालीवं पडुच्च  
जहण्णेण एगसमयं ॥ २११ ॥

सुगममेदं मुत्तं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २१२ ॥

कुदो ? अपमत्तवेदत्तादो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २१३ ॥

सुगममेदं ।

अवगदवेदएसु अणियट्टिउवसम-सुहुमउवसमाणमंतरं केवचिरं  
कालदो होदि, गाणालीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २१४ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २१५ ॥

कुदो ? उवसममात्तादो ।

ननुसकमेदी अपूर्करुणसंयत और अनिचिक्करुणसंयत, इन दोनों क्षपकोंका अन्तर  
कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त दोनों ननुसकमेदी क्षपकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २१२ ॥

स्वयँकि, यह अमरास्त वेद है ( और अमरास्त वेदसे क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले जीव  
गुप्त नहीं होते ) ।

उक्त दोनों ननुसकमेदी क्षपकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर  
है ॥ २१३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अपगतवेदियोंमें अनिचिक्करुण उपशामक और सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकोंका  
अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर  
है ॥ २१४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त दोनों अपगतवेदी उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २१५ ॥  
स्वयँकि, ये दोनों उपशामक गुणस्थान हैं ( और ओघमें उपशामकोंका इतना  
ही उत्कृष्ट अन्तर बतलाया गया है ) ।

१ रगा क्षपको संनिद्वत् । स सि १, ८

२ अपगतवेदेषु अनिचिक्करुणोपशामकसाम्परायोपशामकयोर्नानाविषेक्षया सामायोत्तम् । स सि १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१६ ॥

कुदो ? उवरि चडिय हेडा ओदिण्णस्स अंतोमुहुत्तंत्तरुत्तलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१७ ॥

सुगममेदं ।

उवसंतकसायीदरागछुदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालदो होदि,  
गाणालीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २१८ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २१९ ॥

कुदो ? एगवारसुवसमसेटि चडिय ओदरिदूण हेडा पडिय अंतरिदे उक्कस्सेण  
उवसमसेटीए वासपुधत्तंत्तरुत्तलंभा ।

उक्त दोनों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहुत्त  
है ॥ २१६ ॥

स्वयँकि, ऊपर चढ़कर नीचे उतरनेवाले जीवके अन्तर्मुहुत्तप्रमाण अन्तर पाया  
जाता है ।

उक्त दोनों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहुत्त  
है ॥ २१७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उपशान्तकपायवीतरागछुदुमत्थाणोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी  
अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २१८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उपशान्तकपायवीतरागछुदुमत्थाणोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व  
है ॥ २१९ ॥

स्वयँकि, एकवार उपशामश्रेणीपर चढ़कर तथा उतर नीचे गिरकर उत्कर्षसे  
उपशामश्रेणीका वर्षपृथक्त्वप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

१ एकजीव प्रति जघन्यमुत्कृष्ट चान्तर्मुहुत्तः । स सि १, ८.

२ उपशान्तकपायस्य नानाजीवोपेक्षया सामान्यत्वं । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च णस्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २२० ॥

उपरि उवसंतकसायस्स चडणाभावा । हेडा पडिदे वि अवगदेवदत्तणेण चेय उवसंतपुण्ड्रणपडिवच्चणे संभवाभावा ।

अणियट्टिखवा सुहुमखवा खीणकसायवीदरागछुदुमत्था अजोगि-  
केवली ओघं ॥ २२१ ॥

कुदो ? अवगदेवदत्तं पडि उहयत्थ अत्थविससाभावा ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ २२२ ॥

सुगममेदं ।

एव वेदमगणा समत्ता ।

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोहकसाइसु-  
मिच्छादिट्टिपहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ति मणजोगि-  
भंगो ॥ २२३ ॥

उपशान्तकषायका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २२० ॥

क्योंकि, उपशान्तकषायवीतरागके ऊपर चढ़नेका अभाव है । तथा नीचे गिरने पर भी अपगतवेदरूपसे ही उपशान्तकषाय गुणस्थानको प्राप्त होना सम्भव नहीं है ।

अपगतवेदियोंमें अनिष्टचिकरणक्षपक, स्रस्मसाम्परायक्षपक, क्षीणकषायवीतराग-  
छत्रस्य और अयोगिकेवली जीवोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २२१ ॥

क्योंकि, अपगतवेदत्वके प्रति ओघप्ररूपण और वेदमार्गणाकी प्ररूपणा, इन दोनोंमें कोई अर्थकी विशेषता नहीं है ।

सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ २२२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभ-  
कषायियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर स्रस्मसाम्पराय उपशामक और क्षपक तक प्रत्येक  
गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर मनोयोगियोंके समान है ॥ २२३ ॥

१ एकजीव प्रति नास्त्यन्तस्य । स ति १, ८

२ शेषाणां सामान्यत्वं । स ति १, ८

३ कषायसुखादेन क्रोधमानमायालोभकषायार्णा मिथ्यादृष्ट्यायानिच्युत्पन्नमकान्तानां मनोयोगिकत् । द्रव्योः क्षपकयोर्नानाजीवपेक्षया जघन्यैर्नैक समय । उत्कर्षेण स्वतन्त्रः सात्त्विक । केवललोभस्य स्रस्मसाम्परायोपपत्तमत्स्य नानाजीवपेक्षया सामान्यत्वं । एकजीव प्रति नास्त्यन्तस्य । क्षपकस्य तस्य सामान्यत्वं । स ति १, ८

मिच्छादिट्टि-असंजदसम्मादिट्टि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणं मण-  
जोगिभंगो होडु, णाणेगजीवं पडि अंतराभावेण साधम्मादो । सासणसम्मादिट्टि-सम्मा-  
मिच्छादिट्टीणं मणजोगिभंगो होडु णाम, णाणाजीवजहणुक्कस्स-एगसमय-पलिदेवमस्स  
असंखेज्जदिभांगंतरोहि, एगजीवं पडि अंतराभावेण च साधम्मादो । तिण्हसुवसाभगणं  
पि मणजोगिभंगो होडु णाम, णाणाजीवजहणुक्कस्सेण एगसमयवासपुधत्तरोहि, एग-  
जीवसंतराभावेण च साधम्मादो । किंतु तिण्हं खवाणं मणजोगिभंगो ण घडदे । कुदो ?  
मणजोगिभंगेव कसायाणं छम्मासांतराभावा । तं हि कथं णव्वदे ? अप्पियदकसायवदिरिचिहि  
तिहि कसाएहि एग-दु-ति-संजोगकमेण खवगसेहिं चडमाण्णं चहुवंतरखलंभा ? ण एस  
देसो, ओघेण सहप्पिदमणजोगिभंगणहाणुववचीदो । चटुण्हं कसायाणसुक्कस्संतरस्स  
छम्मासमेत्तस्सेव सिद्धीदो । ण पाहुडसुत्तेण वियहिचरो, तस्स भिण्णोवदेसचादो ।

शंका—मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्र-  
मत्तसंयतोंका अन्तर भले ही मनोयोगियोंके समान रहा आवे, क्योंकि, नाना जीव और  
एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे समानता पाई जाती है । सासादनसम्यग्दृष्टि  
और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका भी अन्तर मनोयोगियोंके समान रहा आवे, क्योंकि, नाना  
जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्योपमके असंब्यतवै  
भागकी अपेक्षा, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे समानता पाई जाती है ।  
तीनों उपशामकोंका भी अन्तर मनोयोगियोंके समान रहा आवे, क्योंकि, नाना जीवोंके  
जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः एक समय और वर्णपृथक्त्वकालसे, तथा एक जीवकी  
अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे समानता पाई जाती है । किन्तु तीनों क्षपकोंका अन्तर  
मनोयोगियोंके समान घटित नहीं होता है, क्योंकि, मनोयोगियोंके समान कषायोंका  
अन्तर छह मास नहीं पाया जाता है ?

प्रतिशंका—यह कैसे जाना जाता है ?

प्रतिसमाधान—विवक्षित कषायसे व्यतिरिक्त शेष तीन कषायोंके द्वारा एक,  
दो और तीन सयोगके क्रमसे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवोंका बहुत अन्तर पाया  
जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, ओघके साथ विवक्षित मनोयोगियोंके  
समान कथन अन्यथा बन नहीं सकता है, तथा चारों कषायोंका उत्कृष्ट अन्तर छह  
मासमात्र ही सिद्ध होता है । ऐसा माननेपर पाहुडसूत्रके साथ व्यभिचार भी नहीं  
आता है, क्योंकि, उसका उपदेश भिन्न है ।

अकसाईसु उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्याणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २२४ ॥

सुगममंदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २२५ ॥

उमममंदिमियत्तादो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २२६ ॥

वेद्दा ओदरिय अकमायत्ताविणसेण पुणो उवसंतपज्जाएण परिणमणाभात्ता ।

स्वीणकसायवीदरागछुदुमत्या अजोगिकेवली ओधं ॥ २२७ ॥

सजोगिकेवली ओधं ॥ २२८ ॥

दो णि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एव कत्तायमग्गणा समत्ता ।

अरुपायिंमं उपगान्तरुपायवीतरागछुदुमत्थोका अन्तर कित्ते काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २२४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २२५ ॥

क्योंकि, यह गुणस्थान उपशमथ्रेणीका विषयभूत है (ओर उपशमकोंका उत्कृष्ट अन्तर इतना ही बतलाया गया है) ।

उपशान्तरुपायवीतरागछुदुमत्थका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २२६ ॥

क्योंकि, नीचे उतरकर अकपायताका विनाश हुए विना पुनः उपशान्तपर्यायके परिणमनका अभाव है ।

अरुपायी जीवोंमें क्षीणरुपायवीतरागछुदुमत्थ और अयोगिकेवली जिनोंका अन्तर ओषके समान है ॥ २२७ ॥

सयोगिकेवली जिनोंका अन्तर ओषके समान है ॥ २२८ ॥  
ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार कपायमग्गणा समत्त हुई ।

१ रुपांगु उपशान्तरुपायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यत्वं । स णि १, ८

२ एकजीव प्रति नास्त्यन्तस्व । स. णि, १, ८

३ रूपानां वरानां सामान्यत्वं । स. णि १, ८

गाणाणुवादेण मदिअणाणि-सुदअणाणि-विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २२९ ॥

अच्छिण्णपवाहत्तादो गुणसंक्तीए अभावादो ।

सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओधं ॥ २३० ॥

कुदो ? जहण्युक्कस्सेण एगममय-पलिदोवमासंखेज्जिभागोहि साधम्मादो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २३१ ॥

कुदो ? गाणंतसमणे मग्गणविणासादो ।

आभिणिवोहिय-सुद-ओहिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २३२ ॥

ज्ञानमार्गणोंके अनुवादसे मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २२९ ॥

क्योंकि, इन तीनों अज्ञानबोले मिथ्यादृष्टियोंका अधिच्छिन्न प्रवाह होमेसे गुण-स्थानके परिवर्तनका अभाव है ।

तीनों अज्ञानबोले सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओषके समान है ॥ २३० ॥

क्योंकि, जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागकी अपेक्षा समानता है ।

तीनों अज्ञानबोले सासादनसम्यग्दृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २३१ ॥

क्योंकि, प्ररूपणा किए जानेवाले ज्ञानोंसे भिन्न ज्ञानोंको प्राप्त होने पर विवक्षित मार्गणका विनाश हो जाता है ।

आभिनिवोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अधिज्ञानबोले असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २३२ ॥

१ ज्ञानाद्यवादेन मत्तज्ञानश्रुताज्ञानविमग्गानिपु णिम्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एक जीवापेक्षया च नास्त्यन्तस्व । स णि १, ८

२ सामादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सामान्यत्वं । स. णि १, ८

३ एकजीव प्रति नास्त्यन्तस्व । स णि १, ८

४ आभिनिवोधिरुभुतावधिज्ञानिपु असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तस्व । स णि १, ८

११६ ] अतरायुगमे मदि-मुद-ओहिणाणि-अंतरपल्वणं [ १, ६, २३७.

अंतोमुहुत्तमच्छिय (५) मंजमांसजमं पडियणो । पुव्वकोडिं मंजमांसजममणुपालिदूण मदे देवो जादो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया पुव्वकोडी लद्धमंतरं ।

संजदांसजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २३५ ॥

सुगममंदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३६ ॥

एदं पि सुगमं, ओचादो एदस्स भेदाभावा ।

उक्कस्सेण छावट्टिसागरोवमाणि सादिरियाणि ॥ २३७ ॥

तं जहा- एको अट्टाभीमंतकम्मिओ मणुसेसु उवण्णो । अहुवस्मिओ मजमांसजमं वेदगममत्तं च जुगवं पडियणो (१) । अंतोमुहुत्तेण मंजमं गंतूणंतरिय संजमेण पुव्वकोडिं गणिय अणुत्तदेवेसु तेत्तोमाउट्टिदिएसु उवण्णो (३३) । तदो बुदो पुव्वकोडाउगेसु मणुसेसु उवण्णो । सइयं पट्टिविय मंजममणुपालिय पुणो ममऊणतेत्तिसरु (५) संयमान्यमको प्राप्त हुआ । पूर्वकोटीप्रमाण संयमान्यमको परिपालनकर मरा और देव होगया । इन प्रकार पाच अन्तर्मुहुत्तोंसे कम पूर्वकोटीकालप्रमाण अन्तर लक्ष्य हुआ ।

मतिज्ञानादि तीनों ज्ञानमाले संयतामंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २३५ ॥

यह घट सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जयन्य अन्तर अन्तर्मुहुत्तं है ॥ २३६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, ओषपरूपणासे इसका कोरं भेद नहीं है ।

तीनों ज्ञानमाले संयतामंयतोंका एक जीवकी अपेक्षा उच्छुट अन्तर माधिक छयासठ मागरोपम है ॥ २३७ ॥

जगे- मोहकर्मकी अट्टारंस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । आठ चरंका ढोरु सयमान्यम और वेदरुसम्यक्त्वको एक साथ प्राप्त हुआ (१) ।

पुनः अन्तर्मुहुत्तसे संयमको प्राप्त करके अन्तरको प्राप्त हो, संयमके साथ पूर्वकोटीप्रमाण काल विता कर तेनीत सागरोपमकी आयुस्थितियाले अनुत्तरविमानवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ (३३) । यहाँसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । तय श्रायिक-सम्यक्त्वको धारणकर ओर संयमको परिपालनकर पुन- एक समय कम तेतीस

१ सपताण्यतस्य नानज्जीवायेसगा नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

२ एक्कीव मति जयणेनान्तर्मुहुत्तं । स सि २, ८.

३ उत्तरेण पूर्वकोटी देशेना । स सि. १, ८.

[ ११५

लुक्खडगामे जीवट्टाण

बुदो ? स्वयकालमविच्छिण्णपवाहत्तादो ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३३ ॥

तं जहा- एको असंजदसम्मदिट्ठी संजमांसजमं पडियणो । तत्थ स्वच्चल्लुहुमंतो-सुहुत्तमच्छिय पुणो वि असंजदसम्मदिट्ठी जादो । लद्धमंतोमुहुत्तमंतरं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ २३४ ॥

तं जहा- जो कोई जीवो अट्टावीसंततम्मिओ पुव्वकोडाउट्टिदिमणिणिसम्मच्छिम-पज्जत्तएसु उवण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुदो (३) वेदगसमत्तं पडियणो (४) अंतोमुहुत्तेण विसुदो संजमांसजमं गंतूणंतरिदो । पुव्वकोडिकालं संजमांसजममणुपालिदूण मदे देवो जादो । लद्धं चट्टुहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया पुव्वकोडी अंतरं ।

ओधिणाणिअसंजदसम्मदिट्टिस्म उच्चदे- एको अट्टाभीमंतकम्मिओ मणिणिसम्मच्छिमपज्जत्तएसु उवण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुदो (३) वेदगसमत्तं पडियणो (४) । तदो अंतोमुहुत्तेण ओधिणाणी जादो ।

स्वीक, तीनों ज्ञानमाले असंयतसम्यग्दृष्टियोंका सर्वकाल अधिच्छिन्न प्रयाह रहता है ।

तीनों ज्ञानमाले असंयतसम्यग्दृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा जयन्य अन्तर अन्तर्मुहुत्तं है ॥ २३३ ॥

जैसे- एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संयमान्यमको प्राप्त हुआ । वहा पर सर्व लघु अन्तर्मुहुत्त काल रह करके फिर भी असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार अन्तर्मुहुत्तप्रमाण अन्तर लक्ष्य हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उच्छुट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥ २३४ ॥

मोहकर्मकी अट्टारंस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई जीव पूर्वकोटीकी आयुस्थितियाले सभी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदरुसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४) और अन्तर्मुहुत्तसे विशुद्ध हो सयमांसयमको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ । पूर्वकोटीकालप्रमाण सयमांसयमको परिपालन कर मरा और देव हुआ । इस प्रकार चार अन्तर्मुहुत्तोंसे कम पूर्वकोटीप्रमाण मति-श्रुतज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टिका अन्तर लक्ष्य हुआ ।

अवधिज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्टारंस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव सभी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदरुसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४) । पश्चात् अन्तर्मुहुत्तसे अवधिज्ञानी होगया । अन्तर्मुहुत्त अवधिज्ञानके साथ रह

१ एक्कीव मति जयणेनान्तर्मुहुत्तं । स सि १, ८

२ उत्तरेण पूर्वकोटी देशेना । स सि १, ८

सागरोवमाउद्धिदिएसु देवेभ्यो उववण्णो । तदो बुदो पुव्वकोडाउओसु मणुसेसु उववण्णो । दीहकालमच्छिद्रेण संजमासंजम पडिवण्णो ( २ ) । लद्धमंतरं । तदो संजमं पडिवण्णो ( ३ ) पमचापमत्तपगमहस्सं कादूण ( ४ ) सगसेढीपाओगगअपमत्तो जादो ( ५ ) । उवरि छ अंतोसुहुत्ता । एगमह्वरमेहि एकारमअंतोसुहुत्तेहि य ऊणियाहि तीहि पुव्वकोडीहि सादियेयाणि छावडिसागरोवमाणि उमकस्संतरं । एवमोहिणाणिसंजदासंजदस्स वि । णवरि आभिवोहियणाणस्स आदीदो अंतोसुहुत्तेण आदिं कादूण अंतरविय वासअंतोसुहुत्तेहि गमहियअडुत्सवण्ण-तीहि पुव्वकोडीहि सादियेयाणि छावडिसागरोवमाणि चि मत्तवं ।

एदं वमत्तणं ण महयं, अप्यंतरपरुवणादो । तदो दीहंतरद्वमणा परुवणा कीरेदे । एमको अट्टासीसंतकम्मिओ सणिसम्मच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो ( १ ) विससतो ( २ ) विसुदो ( ३ ) वेदगसम्मत्तं संजमासंजमं च समगं पडिवण्णो । अंतोसुहुत्तमच्छिय ( ४ ) अमंजदस्समादिद्धी जादो । पुव्वकोडिं गमिय

सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहा दीर्घकाल तक रहकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ ( २ ) । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पश्चात् सयमको प्राप्त हुआ ( ३ ) और प्रमत्त-अप्रमत्त-शुणन्धानसम्यन्धी सत्त्वों परावर्तनोंको करने ( ४ ) क्षपकश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसयत हुआ ( ५ ) । इनमें ऊपरके क्षपकश्रेणीसम्यन्धी छह अन्तर्मुहूर्त मिलायें । इस प्रकार आठ वर्ष और ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तीन पूर्वकोटियोंसे अधिक दृयासठ सागरोपम तीनों जानवाले संयतासंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

इसी प्रकारसे अवगिगानी संयतासंयतका भी उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि आभिवोहिकगानके आदिके अन्तर्मुहूर्तसे प्रारम्भ करने अन्तरको प्राप्त करार करार अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षसे कम तीन पूर्वकोटियोंसे साधिक दृयासठ सागरोपमकाल अन्तर होता है, ऐसा कहना चाहिए ।

शंका—उपर्युक्त व्याख्यान ठीक नहीं है, क्योंकि, इस प्रकार अल्प अन्तरकी प्ररूपणा होती है । अतः दीर्घ अन्तरके लिए अन्य प्ररूपणा की जाती है—मोहकर्मकी अट्टासं प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव, संधी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो ( १ ) विश्राम ले ( २ ) विशुद्ध हो ( ३ ) वेदक-सम्यन्त्वको जोर संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ । संयमासंयमके साथ अन्तर्मुहूर्त रक्षर ( ४ ) असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । पुनः पूर्वकोटीकाल वितारकर तेरह सागरो-

लंतय-काविद्धेदेवेसु तेरसागरोवमाउद्धिदिएसु उववण्णो ( १३ ) । तदो बुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । तत्थ संजमणुपालिय वावीससागरोवमाउद्धिदिएसु देवेसु उववण्णो । ( २२ ) । तदो बुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । तत्थ संजमणुपालिय खहयं पट्टविय एककीसागरोवमाउद्धिदिएसु देवेसु उववण्णो ( ३१ ) । तदो बुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो अंतोसुहुत्तावसेसे ससारं संजमासजम गदे । लद्धमंतरं ( ५ ) । विसुदो अपमत्तो जादो ( ६ ) । पमचापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण ( ७ ) खगसेढीपाओगग-अपमत्तो जादो ( ८ ) । उवरि छ अंतोसुहुत्ता । एवं चोदेसेहि अंतोसुहुत्तेहि उणचदुपुव्वकोडीहि सादियेयाणि छावडिसागरोवमाणि उमकस्संतरं । एवमोधिणाणिसंजदासंजदस्स वि अंतरं वत्तवं । णवरि आभिवोहियणाणस्स आदिदो अंतोसुहुत्तेण आदिं कादूण अंतरा-वेदव्यो । पुणो पणारसहि अंतोसुहुत्तेहि ऊणाणि चदुहि पुव्वकोडीहि सादियेयाणि छावडि-सागरोवमाणि उपपदेदव्वाणि ? णेदं घडदे, सणिसम्मच्छिमपज्जत्तएसु संजमासंजमस्सेव ओहिणाणुवससम्मत्तचणं संभवाभावादो । तं कथं णवदे ? ' पंचदिएसु उवसामंतो

पमकी आयुवाले लांतव-कापिष्ठ देवोंमें उत्पन्न हुआ । पश्चात् वहाँसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ पर संयमको परिपालन कर वारिस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ ( २२ ) । वहाँसे च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ पर सयमको परिपालन कर और शायिक-सम्यन्त्वको धारणकर इकतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ ( ३१ ) । तदपश्चात् वहाँसे च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जानेपर संयमासंयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ( ५ ) । पश्चात् विशुद्ध हो अप्रमत्तसयत हुआ ( ६ ) । पुनः प्रमत्त-अप्रमत्तशुणन्धान-सम्यन्धी सत्त्वों परावर्तनोंको करके ( ७ ) क्षपकश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ ( ८ ) । इनमें ऊपरके क्षपकश्रेणीसम्यन्धी छह अन्तर्मुहूर्त और मिलायें । इस प्रकार चोदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम चार पूर्वकोटियोंसे साधिक दृयासठ सागरोपम उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकारसे अवगिगानी संयतासंयतका भी उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि आभिवोहिकगानके आदिके अन्तर्मुहूर्तसे आदि करके अन्तरको प्राप्त कराना चाहिए । पुनः पन्द्रह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम चार पूर्वकोटियोंसे साधिक दृयासठ सागरोपम उत्पन्न करना चाहिए ?

समाधान—उपर्युक्त शंकामें बतलाया गया यह अन्तरकाल घटित नहीं होता है, क्योंकि, संधी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें संयमासंयमके समान अवधिदान और उपशम-सम्यन्त्वकी संभवताका अभाव है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है कि संधी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक जीवोंमें अवधि-दान और उपशमसम्यन्त्वका अभाव है ?



सादिरियाणि उक्त्स्वमन्तरं । एतं विन्यमजोएदृण उचं । विसंये जोहञ्जसमणे अंतरंभंगदो  
अपमचद्वयो तासि अंतरंवाहिरिया एक्का सवगसेदीपाओगअपमचद्वो तत्थेगद्वो  
दुगुणा सन्निमा चि अणोदव्वा । पुणो अंतरंभंगदो चो उवसामगद्वोओ अत्थि, तासि  
वाहिरिल्लगसु अमिदुमचसु अंतोमुहुत्तेसु तिण्णि सवगद्वोओ अणोदव्वा । एक्किस्से  
उवमन्तद्वोए एगमगद्वोइ निमोहिदं अमिदुहि अद्वुडुंतोमुहुत्तेहि उणियाए पुव्वकोडीए  
सादिरियाणि तेचीमं सागरोवमाणि अंतरं होदि । ओथियाणियमचसंजदमपमचादियुणं  
णदृण अंतराणिय पुव्वं व उक्त्स्वमन्तरं वचचवं, णत्थिय एत्थ विसेसो ।

अपमचसम उच्चदे- एक्को अपमचो अपुव्वो (१) अणियद्वी (२) सुहुमो  
(३) उतंतो (४) होदृण पुणो वि सुहुमो (५) अणियद्वी (६) अपुव्वो होदृण (७)  
कालं गदो ममज्जतोचीमयागरोवमाउद्धिगिसु देवेसु उवणणो । ततो बुदो पुव्वकोडाउएसु  
मणुसेसु उवणणो । अंतोमुहुत्तामसेसं संसारे अपमचो जादो । लद्धमन्तरं (१) । तदो  
पमचो (२) अपमचो (३) । उवरी छ अतोमुहुत्ता । अंतरस्स अमन्तरिमाओ छ उव-  
सामगद्वोओ अत्थि, तासि अंतरंवाहिरिल्लोओ तिण्णि सवगद्वोओ अणोदव्वा । अंतर-

मन्तव्य सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है । इस प्रकारसे यह अन्तर विशेषको नहीं  
जोड़ करके करा है । विशेषके जोड़ जाने पर अन्तरके आभ्यन्तरसे अप्रमत्तसंयतना काल  
और उनके अन्तरका वाहिरिी एक क्षपककालके योग्य अप्रमत्तसंयतना काल होता है ।  
उनमने एक गुणस्थानके कालके दुगुणा सदृशकाल निकाल देना चाहिए । पुनः अन्तरके  
आभ्यन्तर एक उपशामककाल होते हैं । उनके वाहिरिी अवशिष्ट सात अन्तर्मुहुत्तसे तीन  
क्षपक गुणस्थानोंके क्षपककाल निकाल देना चाहिए । एक उपशान्तकालमेंसे एक  
क्षपककालका आधा भाग घटा देनेपर अवशिष्ट साठे तीन अन्तर्मुहुत्तसे कम पूर्वकोटीसे  
साधिक तेतीस सागरोपमकालप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है । अवधिजानी प्रमत्तसंयतको  
अप्रमत्त गादि गुणस्थानमें ले जाकर और अन्तरको प्राप्त कराने पर पूर्वके समान ही  
उत्कृष्ट अन्तर करना चाहिए, इसमें और कोई विशेषता नहीं है ।

तीनों ज्ञानवाले अप्रमत्तसंयतना उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक अप्रमत्तसंयत,  
अपूर्वकरण (१) अनिचुत्तिकरण (२) सूक्ष्मसाम्पराय (३) उपशान्तकरण (४) हो  
करके फिर भी सूक्ष्मसाम्पराय (५) अनिचुत्तिकरण (६) और अपूर्वकरण हो कर (७)  
मरणको प्राप्त हुआ और एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें  
उत्पन्न हुआ । यहाँले च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । संसारके  
अन्तर्मुहुत्त अवशेष रह जाने पर अप्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (१) ।  
पश्चात् प्रमत्तसंयत (२) अप्रमत्तसंयत हुआ (३) । इनमें क्षपककालके अन्तर्मुहुत्तों के  
द्वय अन्तर्मुहुत्त मिलाने । अन्तरके आभ्यन्तर उपशामकसम्बन्धी छह काल होते हैं । उनके  
अन्तरसे वाहिरिी तीन क्षपककाल कम कर देना चाहिए । अन्तरके आभ्यन्तरवाले उपशान्त

मन्तरिमाए उवसंतद्वोए अंतरंवाहिरिसवगद्वोए अद्वमणोदवं । अवसिद्धेहि अद्वुडुंतो-  
मुहुत्तेहि उणपुव्वकोडीए सादिरियाणि तेचीसं सागरोवमाणि उक्त्स्वमन्तरं होदि । सरिस-  
पक्खे अंतरस्समन्तरसचंतोमुहुत्तेसु अंतरंवाहिरियअंतोमुहुत्तेसु सोहिदेसु अवसेसा वे  
अंतोमुहुत्ता । एदेहि उणाए पुव्वकोडीए सादिरियाणि तेचीसं सागरोवमाणि उक्त्स्वमन्तरं  
होदि । एवमोहिणाणियो णि वचचवं, विसेसामाना ।

चदुणहुमुवसामगणमन्तरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं  
पडुव्व जहणणेण एगसमयं ॥ २४१ ॥  
सुगममेदं ।

उक्त्स्वसेण वासपुधत्तं ॥ २४२ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुव्व जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४३ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्त्स्वसेण छावडि सागरोवमाणि सादिरियाणि ॥ २४४ ॥

कालमेंसे अन्तरसे वाहिरिी क्षपककालका आधा काल निकालना चाहिए । अवशिष्ट वचे  
हुए साठे पांच अन्तर्मुहुत्तोंसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपम उत्कृष्ट अन्तर  
होता है । सदृश पदमें अन्तरके भीतरी सात अन्तर्मुहुत्तोंको अन्तरके वाहिरिी नौ अन्त-  
र्मुहुत्तोंमेंसे घटा देने पर अवशेष दो अन्तर्मुहुत्त रहते हैं । इससे कम पूर्वकोटीसे साधिक  
तेतीस सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकारसे अवधिजानीका भी अन्तर  
कहना चाहिए, क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है ।

तीनों ज्ञानवाले चारों उपशामकोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी  
अपेक्षा जवन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २४१ ॥  
यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥२४२॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जवन्य अन्तर अन्तर्मुहुत्त है ॥२४३॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागरोपम  
है ॥ २४४ ॥

१ चतुर्णाणुपमकाना नानाजीवपेक्षया सामान्यत् । स. सि. १, ८

२ एकजीव प्रति जप्येनान्तर्मुहुत्तः । स. सि. १, ८

३ उत्तरायण पट्टथिमारापेमाणि सातिरेकाणि । स. सि. १, ८



तं जहा- एकको अद्वीवीसंतकाम्मिओ पुव्वकोडाउअमणुसेसु उववणो । अह्द-  
चरिसओ वेदगसम्मत्तमत्तणुयं च जुगवं पडियणो ( १ ) । तदो पमत्तापमत्तपरामत्त-  
सहस्सं कादूण ( २ ) उवसमसेदीपाओगविसोहीए विसुद्धो ( ३ ) अपुवो ( ४ ) अणि-  
यद्दी ( ५ ) सुहुमो ( ६ ) उवसंतो ( ७ ) पुणो वि सुहुमो ( ८ ) अणियद्दी ( ९ )  
अपुवो ( १० ) हेदूण हेद्दा पडिय अंतरिदो । देवणुपुव्वकोडिं संजमणुपालेदूण मदो  
तेत्तीससागरोमआडिदिएसु देवेसु उववणो । तदो बुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उव-  
वणो । खइयं पडुविय संजमं कादूण कालं गदो तेत्तीससागरोवमाउडिदिएसु देवेसु उव-  
वणो । तदो बुदो पुव्वकोडाउओ मणुसो जादो संजमं पडियणो । अंतोमुहुत्तावसेसे  
संसारे अपुवो जादो । लद्धमंतरं ( ११ ) । अणियद्दी ( १२ ) सुहुमो ( १३ ) उवसंतो  
( १४ ) भूओ सुहुमो ( १५ ) अणियद्दी ( १६ ) अपुवो ( १७ ) अप्पमत्तो ( १८ )  
पमत्तो ( १९ ) अप्पमत्तो ( २० ) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । अह्दहि वस्मेहि छव्वीसंतो-  
मुहुत्तेहि य जणा तीहि पुव्वकोडीहि सादिरेयाणि छावडिसागरोवमाणि उक्कस्संतरं होदि ।  
अथवा चत्तारि पुव्वकोडीओ तेरसन्वीस-एक्कत्तीससागरोवमाउडिदिदेवेसु उपाइय

जेसे- मोहकर्मकी अह्दाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव पूर्वकोटीकी  
आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । आठ वर्षका हाकर वेदकसम्पत्त्व और अप्रमत्त-  
गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ ( १ ) । तत्पश्चात् प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थान-  
सम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके ( २ ) उपशमभ्रणिके प्रायोग्य विद्युद्धिसे नियुद्ध  
होता हुआ ( ३ ) अपूर्वकरण ( ४ ) अनिवृत्तिकरण ( ५ ) सूक्ष्मसाम्पराय ( ६ ) उपशान्त-  
कपाय ( ७ ) होकर फिर भी सूक्ष्मसाम्पराय ( ८ ) अनिवृत्तिकरण ( ९ ) अपूर्वकरण ( १० )  
होकर तथा नचि निरकर अन्तरको प्राप्त हुआ । कुछ कम पूर्वकोटीकालप्रमाण  
संयमको परिपालन कर मरा और तेतीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ ।  
पश्चात् च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और क्षायिकसम्पत्त्वको  
धारण कर और संयम धारण करके मरणको प्राप्त हो तेतीस सागरोपमत्ती आयुस्थिति-  
वाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहसि च्युत होकर पूर्वकोटी आयुवाला मनुष्य हुआ और  
यथासमय संयमको प्राप्त हुआ । पुनः संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जाने पर अपूर्व-  
करणगुणस्थानवर्ती हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ( ११ ) । पश्चात् अनिवृत्ति-  
करण ( १२ ) सूक्ष्मसाम्पराय ( १३ ) उपशान्तकपाय ( १४ ) होकर पुनः सूक्ष्मसाम्पराय ( १५ )  
अनिवृत्तिकरण ( १६ ) अपूर्वकरण ( १७ ) अप्रमत्तसंयत ( १८ ) प्रमत्तसंयत हुआ ( १९ ) ।  
पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ ( २० ) । इनमें ऊपरके क्षपकश्रेणीसम्बन्धी ओर भी छह अन्त-  
र्मुहूर्त मिलीये । इस प्रकार आठ वर्ष और छव्वीस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तीन पूर्वकोटियोंसे  
साधिक ज्यासठ सागरोपम उत्कृष्ट अन्तर होता है । अथवा, तेरह, बाईस और इकतीस

वत्तव्याओ । एवं चेव त्तिण्हमुवसामगाणं । णवरि चहुवीस वावीस तीस अंतोमुहुत्ता  
जणा कादव्वा । एवमोहिणाणीणं पि वत्तव्वं, विसेसाभावा ।

चटुण्हं खवगाणमोधं । णवरि विसेसो ओधिणाणीसु खवाणं  
वासपुधत्तं ॥ २४५ ॥

कुदो ? ओधिणाणीणं पाएणं संभवाभावा ।

मणपजवणाणीसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २४६ ॥  
सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४७ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४८ ॥

सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न कराकर मनुष्यभवसम्बन्धी चार पूर्वकोटियों  
कहना चाहिए । इसी प्रकारसे शेष तीन उपशामकोंका भी अन्तर कहना चाहिए । विशेष  
जात यह है कि अनिवृत्तिकरणके चौवीस अन्तर्मुहूर्त, सूक्ष्मसाम्परायके बाईस अन्तर्मुहूर्त  
और उपशान्तकपायके बीस अन्तर्मुहूर्त कम कहना चाहिए । इसी प्रकारसे उपशामक  
अवधिज्ञानियोंका भी अन्तर कहना चाहिए, क्योंकि, उसमें भी कोई विशेषता नहीं है ।  
तीनों ज्ञानवाले चारों क्षपकोंका अन्तर औघके समान है । विशेष जात यह है  
कि अवधिज्ञानियोंमें क्षपकोंका अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २४५ ॥

क्योंकि, अवधिज्ञानियोंके प्राय होनेका अभाव है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है ?  
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २४६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४८ ॥

१ चतुर्णां सप्तमणां सामान्यवत् । त्रित्तु अवधिक्षानित्तु नानाजीवोपेक्षया जघन्येनैक समय , उत्कर्षेण  
वर्षपृथक्त्वम् । एतन्नात्र प्रति नास्त्यन्त्यत् । स ति १, ८ २ प्रतिषु 'उपाएण' इति पाठः ।

२

३ सप्त पर्ययज्ञानित्तु प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवोपेक्षया नास्त्यन्त्यत् । स ति १, ८

४ एतन्नात्र प्रति जघन्ययुक्कट चान्तर्मुहूर्तः । स. ति. १, ८.

तं जहा- एकको एवमत्तो मणपञ्जवणाणी अप्पमत्तो होदूण उवरी चडिय हेड्डा ओदग्गिण्ण पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । अप्पमत्तस्स उच्चदे- एकको अप्पमत्तो मणपञ्जवणाणी पमत्तो होदूणंतरिय मच्चिरेण कालेण अप्पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । उवसमसेदि न्हाभिय किणंतरविदो ? ण, उवसमसेदिमच्चद्वहिंत्तो पमत्तद्वा एकका चैव संखेज्जगुणा ति गुरुच्चदेयादो ।

चट्टुण्हमुवसामगणमंतरं केवचिरं कालादो हेदि, गणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ २४९ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २५० ॥

एदं पि सुगमं ।

जैसे- एक मनःपर्ययज्ञानी प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत हो ऊपर चढ़कर और नीचे उतर कर प्रमत्तसंयत हो गया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं- एक मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तसंयत होकर अन्तर्मत्तो प्राप्त हो अति दीर्घकालसे अप्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।

अंका-मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयतको उपशमथेणी पर चढ़ाकर पुनः अन्तरको प्राप्त क्यों नहीं कराया ?

समाधान-नहीं, क्योंकि, उपशमथेणीसम्बन्धी सभी अर्थात् चार चढ़नेके ओर तीन उतरनेके, इन सब गुणस्थानोंसम्बन्धी कालोंसे अकेले प्रमत्तसंयतका काल ही संन्यातगुणा होता है, ऐसा शुकका उपदेश है ।

मनःपर्ययज्ञानी चारों उपशमकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २५० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

१ षट्पञ्चासकमस्तनी नामाजीवियेकया मामान्यपरं । स. ति. १, ६.

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५१ ॥  
सुगममेदं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ २५२ ॥

तं जहा- एकको पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववणो अंतोमुहुत्तवभहियअट्टवस्सेहि संजमं पडिन्नणो ( १ ) । पमत्तापमत्तसंजदद्वणे सादासादबंधपरावत्तसहरसं कादूण ( २ ) विमुद्धो मणपञ्जवणाणी जादो ( ३ ) । उवसमसेडीपाओगअप्यमत्तो होदूण सेडीमुवादो ( ४ ) । अपुव्वो ( ५ ) अणियद्दी ( ६ ) सुहुमो ( ७ ) उवसंतो ( ८ ) पुणो वि सुहुमो ( ९ ) अणियद्दी ( १० ) अपुव्वो ( ११ ) पमत्तापमत्तसंजदद्वणे ( १२ ) पुव्वकोडि-मच्छिदूण अणुदिसादिसु आउअं बंधिदूण अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए विसुद्धो अपुव्वुवसामगो जादो । णिदा-पयलाणं बंधयोच्छिण्णे कालं गदो देवो जादो । अट्टवस्सेहि वारसअंतो-मुहुत्तेहि य ऊणिया पुव्वकोडी उक्कस्संतरं । एवं तिण्हमुवसामगणं । णवरि जहाकमेण दस णव अट्ट अंतोमुहुत्ता समथो य पुव्वकोडीदो ऊणा ति वत्तव्यं ।

मनःपर्ययज्ञानी चारों उपशमकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर जघन्यसे अन्तमुहुत्तं है ॥ २५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥ २५२ ॥ जैसे- कोई एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और अन्त-मुहुत्तसे अधिक आठ वर्षके द्वारा संयमको प्राप्त हुआ ( १ ) । पुनः प्रमत्त-अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें जाता और असाताप्रकृतियोंके सहस्रों बंध परिवर्तनोंको करके ( २ ) विमुद्ध हो मनःपर्ययज्ञानी हुआ ( ३ ) । पश्चात् उपशमथेणिके योग्य अप्रमत्तसंयत होकर श्रेणीको प्राप्त हुआ ( ४ ) । तब अपूर्वकरण ( ५ ) अनिच्छित्तिहरण ( ६ ) सूक्ष्मसाम्प्रदाय ( ७ ) उपशान्तक्रयाय ( ८ ) पुनरपि सूक्ष्मसाम्प्रदाय ( ९ ) अनिच्छित्तिहरण ( १० ) अपूर्वकरण ( ११ ) होकर प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें ( १२ ) पूर्वकोटीकाल तक रहकर अनुदिश आदि विमानवासी देवोंमें आयुको बांधकर जीवनके अन्तमुहुत्त अवशेष रहने पर विमुद्ध हो अपूर्वकरण उपशामक हुआ । पुनः निद्रा तथा प्रचला, इन दो प्रकृतियोंके बंध-विच्छेद हो जाने पर मरणको प्राप्त हो देव हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और वारह अन्तमुहुत्तोंसे कम पूर्वकोटी कालप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकार शेष तीन मनःपर्ययज्ञानी उप-शामकोंका भी अन्तर होता है । विशेषता यह है कि उनके यथाक्रमसे दश, नौ और आठ अन्तमुहुत्त तथा एक समय पूर्वकोटीसे कम कहना चाहिए ।

१ पुक्कजीव मति जघन्येनान्तमुहुत्तं । स. ति. १, ६.

२ इत्तरेण पूर्वकोटी देशोक्कम-क. ति. १, ६.

चटुण्हं खवगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च  
जहणेण एगसमयं ॥ २५३ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २५४ ॥

इदो ? मणपज्जवणणेण खग्गसेहिं चढमाणं पडरं संबन्नाभावा ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २५५ ॥

एदं पि सुगमं ।

केवल्लणाणीसु सजोगिकेवली ओधं ॥ २५६ ॥

गाणेगजीवअंतराभावेण साधम्मदादो ।

अजोगिकेवली ओधं ॥ २५७ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एव गाणमगणा समत्ता ।

मनःपर्ययज्ञानी चारों क्षपकोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी  
अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २५४ ॥

क्योंकि, मनःपर्ययज्ञानके साथ क्षपकअग्नीपर चढ़नेवाले जीवोंका प्रचुरतासे  
होना संभव नहीं है ।

मनःपर्ययज्ञानी चारों क्षपकोका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर  
है ॥ २५५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

केवलज्ञानी जीवोंमें सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ २५६ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे समानता है ।

अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ २५७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

१ चतुर्णां क्षपकाणामवधिज्ञानिकत् । स सि १, ८

२ द्वयो केवलज्ञानिनो सामान्यन् । स सि १, ८

संजमाणुवादेण संजदेसु पमतसंसजदप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-  
वीदरागछट्टमत्था ति मणपज्जवणाणिभंगो ॥ २५८ ॥

पमत्तापमत्तसंसजाणं गाणजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं; एगजीवं पडुच्च  
जहणुक्कस्सेण अंतोसुहुत्तं । चटुण्हमुवसामगाणं गाणजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ,  
उक्कस्सेण वासपुधत्तं; एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुत्तं, उक्कस्सेण देहणपुवक्कोडी  
अंतरमिदि तदो विसेसाभावा ।

चटुण्हं खवा अजोगिकेवली ओधं ॥ २५९ ॥

सुगमं ।

सजोगिकेवली ओधं ॥ २६० ॥

एदं पि सुगमं ।

सामाइय-छेदोवट्टावणसुद्धिसंसजदेसु पमत्तापमतसंसजदाणमंतरं केव-  
चिरं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २६१ ॥  
गयत्थं ।

संयममार्गणाके अजुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयतको आदि लेकर उपशान्तकपाय-  
वीतरागछट्टस्य तक संयतोंका अन्तर मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है ॥ २५८ ॥

प्रमत्त और अग्रमत्तसंयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है,  
एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । चारों उपशामकोंका नाना  
जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । एक जीवकी  
अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण अन्तर है, इसलिये  
उससे यहांपर कोई विशेषता नहीं है ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवली संयतोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २५९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सयोगिकेवली संयतोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २६० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्त तथा अग्रमत्त संयतोंका अन्तर  
कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २६१ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है ।

१ संयमाहुवादेन सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताग्रमत्तयोर्नानाजीवपेक्षया नास्त्यन्तर ।  
स सि १, ८.

**एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६२ ॥**

तं जहा- पमत्तो अप्पमत्तसुं गत्तण सव्वजहण्णेण कालेण पुणो पमत्तो जादो ।  
लद्धमंतरं । एत्तप्पमत्तस्स मि वत्तव्वं ।

**उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६३ ॥**

तं जहा- एत्तो पमत्तो अप्पमत्तो होदूण चिरकालमच्छिय पमत्तो जादो । लद्ध-  
मंतरं । अप्पमत्तस्स उच्चदे- एक्को अप्पमत्तो पमत्तो होदूण सव्वचिरमंतोपुट्टमच्छिय  
अपमत्तो जादो । लद्धमंतरं ।

**दोण्हसुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं  
पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २६४ ॥**

अवगयत्थं ।

**उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २६५ ॥**

सुगममेदं ।

उक्त संयत्तोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६२ ॥

जैसे- एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तगुणस्थानको जाकर सर्वजघन्य कालसे पुनः  
प्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । इसी प्रकार अप्रमत्तसंयतका भी  
अन्तर कहना चाहिए ।

उक्त संयत्तोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६३ ॥

जैसे- एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत होकर और दीर्घ अन्तर्मुहूर्तकाल तक रह  
करके प्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते  
हैं- एक अप्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तसंयत हो करके सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर  
अप्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।

मामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों  
उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय  
अन्तर है ॥ २६४ ॥

इस सूत्रका अर्थ ज्ञात है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथस्त्व है ॥ २६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ पृच्छीम प्रति जघन्यमुहूर्त वातर्मुहूर्त । स. सि. १, ८.

२ इत्येवमन्वयोर्नानाजीवोपेक्षया सामान्यम् । स. सि. १, ८.

**एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६६ ॥**

तं जहा- एक्को ओदरमाणो अपुव्वो अप्पमत्तो पमत्तो पुणो अप्पमत्तो होदूण  
अपुव्वो जादो । लद्धमंतरं । एवमणियट्ठिस्स वि । णवरि पंच अंतोमुहुत्ता जहण्णंतरं होदि ।

**उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ २६७ ॥**

तं जहा- एक्को पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । अट्टक्कसाणमुवरि संजमं  
पडिवण्णो ( १ ) । पमत्तापमत्तसजदट्ठाणे सादासादबंधपरवचित्सहस्सं कादूण ( २ )  
उवसमसेडीपाओगाअप्पमत्तो ( ३ ) अपुव्वो ( ४ ) अणियट्ठी ( ५ ) सुहुमो ( ६ ) उवसंतो  
( ७ ) पुणो वि सुहुमो ( ८ ) अणियट्ठी ( ९ ) अपुव्वो ( १० ) हेड्डा पडिय अंतरिदो ।  
पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे पुव्वकोडिमच्छिदूण अणुदिसादिसु आउअं वंधिय अंतोमुहुत्तावसेसे  
जीविए अपुव्ववसामगो जादो । णिहा-पयलाणं वंधे वोच्छिण्णे कालं गदो देवो जादो ।  
अट्टहि वस्सेहि एक्कारसअंतोमुहुत्तोहि य ऊणिया पुव्वकोडी अंतरं । एवमणियट्ठिस्स वि ।

सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी दोनों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा  
जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६६ ॥

जैसे- उपशामश्रेणिसि उत्तरनेवाला एक अपूर्वकरणसंयत, अप्रमत्तसंयत व प्रमत्त-  
संयत होकर पुनः अप्रमत्तसंयत हो अपूर्वकरणसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध  
हुआ । इसी प्रकार अनिवृत्तिकरणसंयतका भी अन्तर कहना चाहिए । विशेषता यह है  
कि इनके पांच अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर होता है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥ २६७ ॥

जैसे- कोई एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और आठ  
वर्षके पश्चात् संयमको प्राप्त हुआ ( १ ) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें साता  
और असातावेदनीयके सहस्रों बंध परावर्तनोंको करके ( २ ) उपशामश्रेणीके योग्य  
अप्रमत्तसंयत हुआ ( ३ ) । पश्चात् अपूर्वकरण ( ४ ) अनिवृत्तिकरण ( ५ ) सूक्ष्मसाम्पराय ( ६ )  
उपशान्तकपाय ( ७ ) होकर फिर भी सूक्ष्मसाम्पराय ( ८ ) अनिवृत्तिकरण ( ९ ) अपूर्व-  
करण ( १० ) हो नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ । प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुण-  
स्थानमें पूर्वकोटी काल तक रहकर अनुदिश आदि विमानोंमें आयुको बांधकर जीवनेके  
अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अत्रशिष्ट रहनेपर अपूर्वकरण उपशामक हुआ और निद्रा तथा प्रचला  
प्रकृतियोंके बंधसे व्युच्छिन्न होनेपर मरणको प्राप्त हो देव हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष  
और ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटीप्रमाण सामायिक ओर छेदोपस्थापनासंयमी  
अपूर्वकरण उपशामकका उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकार सामायिक और छेदोप-  
स्थापनासंयमी अनिवृत्तिकरण उपशामकका भी उत्कृष्ट अन्तर है । विशेषता यह है कि

१ पृच्छीम प्रति जघन्यवातर्मुहूर्त । स. सि. १, ८. २ उत्तर्येण पूर्वकोटी देवोना । स. सि. १, ८.

गवरि समयाहियणवअतोमुहुत्ता ऊणा कादब्बा ।

दोण्हं ख्वाणमोर्धं ॥ २६८ ॥

सुगममेदं ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्तापमत्तसंज्ञाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २६९ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७० ॥

तं जहा- एकको पमत्तो परिहारसुद्धिसंजदो अप्पमत्तो होदूण सव्वलहुं पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । एवमप्पमत्तस्स वि पमत्तयुणेण अंतराविय वत्तव्वं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७१ ॥

एदस्सत्थो जथा जहणस्स उत्तो, तथा वत्तव्वो । गवरि सव्वचिरेण कालेण पल्लव्वेदव्वो ।

इनका अन्तर एक समय अधिक नौ अन्तर्मुहूर्त कम करना चाहिए ।

सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अपूर्वकरण और अनिष्टतिकरण, इन दोनों क्षपकोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर औषधके समान है ॥ २६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

परिहारशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७० ॥

जैसे- परिहारशुद्धिसंयमवाला कोई एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत होकर सर्वलघु कालसे प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया । इसी प्रकार परिहारशुद्धिसंयमी अप्रमत्तसंयतको भी प्रमत्तगुणस्थानके द्वारा अन्तरको प्राप्त करपाकर अन्तर कहना चाहिए ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७१ ॥

इस सूत्रका अर्थ जैसा जघन्य अन्तर बतलाते हुए कहा है, उसी प्रकारसे कहना चाहिए । विशेषतया यह हे कि इसे यहां पर सर्व दीर्घकालसे पलटाना चाहिए ।

१ द्रव्यो क्षपक्योः सामान्यवत् । स सि १, ८

२ परिहारशुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवोपेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

३ एकजीव इति जघन्यदृष्टवत् चातर्मुहूर्तः । स सि १, ८

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयउवसमाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ २७२ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २७३ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २७४ ॥

कुदो ? अधिगदंसजमाविणासेण अंतरावणे उवायाभावो ।

ख्वाणमोर्धं ॥ २७५ ॥

कुदो ? गाणाजीवगदजहणुक्कस्सेणसमय-छम्मासेहि एगजीवस्संतराश्रावणेण साधम्मादो ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो ॥ २७६ ॥

सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २७२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २७३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २७४ ॥

क्योंकि, प्राप्त किये गये संयमके विनाश हुए बिना अन्तरको प्राप्त होनेके उपायका अभाव है ।

सूक्ष्मसाम्परायसंयमी क्षपकोंका अन्तर औषधके समान है ॥ २७५ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह मासके साथ, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे औषधके साथ समानता पाई जाती है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंमें चारों गुणस्थानोंके संयमी जीवोंका अन्तर अकषायी जीवोंके समान है ॥ २७६ ॥

१ सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषुप्रथमऋत्यु नानाजीवोपेक्षया सामान्यवत् । स सि. १, ८.

२ एकजीव इति नास्त्यन्तरम् । स सि. १, ८.

३ अ प्रतो ' अतरावणो उवाया-' अतरावणो उवाया-' इति पाठ ।

४ तस्यैव क्षपक्य सामान्यवत् । स सि १, ८. ५ यथाख्याते अकषायवत् । स सि १, ८

कृदो ? अकामायणं जहास्त्रादसंजमेण विणा अण्णसंजमाभावा ।

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २७७ ॥

कृदो ? गुणतरग्गहणे मग्गणाविणासा, गुणतरग्गहणेण विणा अंतरकरणे उवायाभावा ।  
असंजदेसु मिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणा-  
जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २७८ ॥

कृदो ? मिच्छादिद्विप्पवाहोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७९ ॥

कृदो ? गुणंतरं गंतूणंतरिय अविणहुअसंजमेण जहणकालेण पछट्टिय मिच्छत्तं पडिवण्णस्स अंतोमुहुत्तत्तत्तल्लभा ।

क्योंकि, अक्रमायी जीवोंके यथाव्याप्तसंयमके विना अन्य संयमका अभाव है ।

संयतासंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २७७ ॥

क्योंकि, अपने गुणस्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानके ग्रहण करने पर मार्ग-  
णाका विनाश होता है और अन्य गुणस्थानको ग्रहण किये विना अन्तर करनेका कोई  
उपाय नहीं है ।

असंयतोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी  
अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २७८ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता ।

असंयमी मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त  
है ॥ २७९ ॥

क्योंकि, अन्य गुणस्थानको जाकर और अन्तरको प्राप्त होकर असंयमभावके  
नहीं नष्ट होनेके साथ ही जघन्य कालसे पलटकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुए जीवके अन्त-  
र्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

१ उक्तप्रकारसे नानाजीवापेक्षया एवजीवापेक्षया न नास्त्यन्तरम् । स मि १, ८

२ अत्रान्तरे मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । म. मि. १, ८.

३ एवजीव प्रति अन्तेनात्तर्मुहूर्तः । म. मि. १, ८.

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ २८० ॥

तं जहा- एकको अट्टावीसमोहसंतकम्मिथो मिच्छादिद्वी सत्तमाए पुडवीए उव-  
वणो । छहि पज्जचीहि पज्जत्तयदो ( १ ) विस्संतो ( २ ) विमुद्धो ( ३ ) सम्मत्तं  
पडिवज्जिय अंतरिदो अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए मिच्छत्तं गदो ( ४ ) । लद्धमंतरं ।  
तिरिक्खाउअं वंधिय ( ५ ) विस्समिय ( ६ ) मदो तिरिक्खो जादो । छहि अंतोमुहुत्तेहि  
ऊणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि मिच्छत्तुक्कस्संतरं ।

सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्वि-असंजदसम्मादिद्वीणमोधं  
॥ २८१ ॥

कृदो ? सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्वीणिं णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एग-  
समओ, पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहणणेण पल्लिदोवमस्स असंखे-  
ज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं; उक्कस्सेण अद्धपोगलपरियइं देहणं । असंजदसम्मादिद्वीसु  
णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं; एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं; उक्कस्सेण  
अद्धपोगलपरियइं देहणमिच्चदेहि तदो भेदाभावा ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम  
है ॥ २८० ॥

जैसे- मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं  
पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो ( १ ) विश्राम ले ( २ ) विशुद्ध  
हो ( ३ ) सम्यक्त्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ और जीवनेके अन्तर्मुहूर्त काल-  
प्रमाण अवशेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ( ४ ) । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया ।  
पछि तिर्यच आयुको बांधकर ( ५ ) विश्राम ले ( ६ ) मरा और तिर्यच हुआ । इस प्रकार  
छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपमकाल मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

असंयमी सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका  
अन्तर ओषके समान है ॥ २८१ ॥

क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा  
जघन्यसे एक समय और पल्योपमका असंख्यातवां भाग अन्तर है, एक जीवकी अपेक्षा  
जघन्यसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त अन्तर है । तथा उत्कृष्ट अन्तर  
कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल है । असंयतसम्यग्दृष्टियोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा  
अन्तर नहीं है, निरन्तर है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर  
कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है, इस प्रकार ओषसे कोई भेद नहीं है ।

१ उत्तर्येण त्रयंत्रिकालसागरोपमाणि देसोणानि । स मि. १, ८.

२ वेपणां त्रयाणां सामान्यत्वं । स मि १, ८.

असंजदसम्मादिहिसस उक्कस्संतरं णादमवि' मंदमेहाविजाणुगहइं परूवेमो-  
एक्को अणादियमिच्छादिहो तिणिण वि ऋणाणि कादूण अद्धयोगलपरियट्टादिसमए  
पढमसम्मचं पडिवणो (१) । उवसमसम्मचद्धाए छावलिआओ अत्थि चि सासणं गदो ।  
अंतरिदो अद्धयोगलपरियइं परियट्टिदूण अपच्छिमे भवगहणे असंजदसम्मादिहो जादो ।  
लद्धमंतरं (२) । तदो अर्णातणुवंधी विसंजोइय (३) विस्संतो (४) दंसणमोहं खविय  
(५) विस्संतो (६) अप्पमत्तो जादो (७) । पमत्तापमत्तपरवचसहस्सं कादूण (८)  
खवगसेढीयाओगअप्पमत्तो जादो (९) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । एवं पणारसेहि अंतो-  
मुहुत्तेहि उणमद्धयोगलपरियइमसंजदसम्मादिहिसस उक्कस्संतरं ।

एव सजमगणा समत्ता ।

**दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिहोणमोघं ॥ २८२ ॥**

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च अंतराभावेण, एगजीवगयअंतोमुहुत्तमेत्तजहणत्तरेण

असयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर यथापि ज्ञात है, तथापि मंदबुद्धि जनोके अनु-  
ग्रहार्थ प्ररूपण करते हैं- एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तीनों कारणोंको करके अर्धपुद्गल-  
परिवर्तनके आदि समयमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१) । उपशमसम्यक्त्वके  
कालमें छह आवलियां अवशिष्ट रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ । पश्चात्  
अन्तरको प्राप्त हो अर्धपुद्गलपरिवर्तन तक परिवर्तन करके अन्तिम भवमें असंयतसम्य-  
ग्दृष्टि हुआ । इस प्रकार अन्तर प्राप्त होगया (२) । तत्पश्चात् अन्तानुबन्धीकी विसंयोजना  
करके (३) विश्राम ले (४) दर्शनमोहनीयका शय करके (५) विश्राम ले (६) अप्रमत्त-  
संयत हुआ (७) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको  
करके (८) क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (९) । इममें ऊपरके छह अन्त-  
सुहृत् और मिलायें । इस प्रकार पन्द्रह अन्तसुहृत्तोसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल असंयत-  
सम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके  
समान है ॥ २८२ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, तथा एक जीवगत

१ प्रतियु 'णादमदि' इति पाठ । २ प्रतियु 'पमो' इति पाठ ।

३ दर्शनानुवादेन चक्षुदर्शनीयु मिय्यादो सामायवत् । स सि १, ८

४ अ प्रती 'जीवेषु' इति पाठ ।

देसणवे-छावहिसागरोवमेत्तउक्कस्संतरेण य तदो भेदाभावा ।

**सासणसम्मादिहिसम्माभिच्छादिहोणमंतरं केवचिं कालादो  
होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ २८३ ॥**

कुदो ? णाणाजीवगयएगसमय-पल्लिदोवमासंखेज्जदिभागजहणुक्कस्संतरेहि  
साधम्युवलंभा ।

**एगजीवं पडुच्च जहणेण पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,  
अंतोमुहुत्तं ॥ २८४ ॥**

सुगममेदं ।

**उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ २८५ ॥**

तं जहा-एको भमिदअचक्खुदंसणद्धिदो अस्सणिणंपंचिदियसु उववणो । पंचहि  
पज्जत्तीहि पज्जत्तयो (१) विस्संतो (२) विमुद्धो (३) भवणवासिय-चाणवंतरदेवसु  
अन्तसुहृत्तमात्र जघन्य अन्तर होनेसे और कुछ कम दो छयासठ सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट  
अन्तर होनेकी अपेक्षा ओघसे कोई भेद नहीं है ।

चक्षुदर्शनी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल  
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ २८३ ॥

क्योंकि, नाना जीवगत जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका  
असंख्यातवा भाग है, इस प्रकार इन दोनोंकी अपेक्षा ओघके साथ समानता पाई  
जाती है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका  
असंख्यातवा भाग और अन्तसुहृत्त है ॥ २८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम  
है ॥ २८५ ॥

जैसे-अचक्षुदर्शनकी स्थितिप्रमाण परिश्रमण किया हुआ कोई एक जीव अस्की  
पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । पाचों पर्यसियोंसे पर्यसि हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध  
हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें आयुको बाधकर (४) विश्राम ले (५)

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८

२ एस्कीव इति जघन्येन पल्योपमासल्येयमागोऽन्तसुहृत्तम् । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण वे सागरोपमसहसे देवोने । स. सि. १, ८





चक्खुंदसणिद्धिं भूमिय अवसाणे उवसमसम्मचं पडिक्खणो ( १० ) । लद्धमंतरं । पुणो सांसणं गदो अक्खुंदसणीसु उवक्खणो । दसहि अंतोसुहुत्तेहि ऊणिया सगहिदी असंजद-सम्मादिट्ठीणसुक्खसंतरं ।

संजदासंजदस्स उच्चदे । तं जहा- एकको अक्खुंदसणिद्धिमच्छिदो गब्भो-क्खंतिथिपंचिदियपज्जत्तएसु उवक्खणो । सणिपंचिदियसम्मच्छिमपज्जत्तएसु किण्ण उप्पा-दिदो ? ण, सम्मुच्छिमेसु पढमसम्मत्तुप्पीए असंभवादो । ण च असंखेज्जलोगमणंतं वा कालमक्खुदयणीसु परिभमियाण वेदगसम्मत्तगहणं संभवदि, विरोहा । ण च थोव-कालमच्छिदो चक्खुंदसणिद्धिदीए समाणणक्खमा । तिणिय पक्ख तिणिय दिवस अंतो-सुहुत्तेण य पढमसम्मचं संजमासंजमं च जुगवं पडिक्खणो ( २ ) । पढमसम्मत्तद्वाए छावलिथाओ अत्थि चि सासणं गदो । अंतरिदो भिच्छत्तं गंतूण सगहिदि परिभमिय अपच्छिमे भवे कदकरणिज्जो होदूण संजमासंजमं पडिक्खणो ( ३ ) । लद्धमंतरं । अप्पमत्तो

हुआ । पुनः मिथ्यात्वको जाकर चक्षुदर्शनकी स्थितिप्रमाण परिश्रमण कर अन्तमें उपशम-सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः सासादनको गया और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार दश अन्तर्मुहूर्तसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी असंयतसम्यक्त्वपि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

चक्षुदर्शनी संयतसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं । जैसे-अचक्षुदर्शनकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव गर्भोपकान्तिक पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ ।

शंका—उक्त जीवको संक्षी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें क्यों नहीं उत्पन्न कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्मूर्च्छिम जीवोंमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्ति असंभव है । तथा असंख्यात लोकप्रमाण या अनन्तकाल तक अचक्षुदर्शनियोंमें परिश्रमण किये हुए जीवोंके वेदकसम्यक्त्वका ग्रहण करना सम्भव नहीं है, क्योंकि, ऐसे जीवोंके सम्यक्त्वोत्पत्तिका विरोध है । और न अल्पकाल तक रहा हुआ जीव चक्षुदर्शनकी स्थितिके समाप्त करनेमें समर्थ है ।

पुनः वह जीव तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्तसे प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ ( २ ) । प्रथमोपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलिया अवशिष्ट रह जाने पर सासादनको प्राप्त हुआ । पुनः अन्तरको प्राप्त हो मिथ्यात्वको जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिश्रमणकर अन्तिम भवमें कृतकृत्यवेदक होकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ ( ३ ) । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः अप्पमत्तसंयत ( ४ )

१ त्रिष्टु 'असंखेजा लोगमणत्त' इति पाठ ।

( ४ ) प्पमत्तो ( ५ ) अप्पमत्तो ( ६ ) । उवरि छ अंतोसुहुत्ता । एवमडदालीसदिवेसहि चारसअंतोसुहुत्तेहि य ऊणा सगहिदी संजदासंजदुक्खसंतरं ।

प्पमत्तस्म उच्चदे- एकको अक्खुंदसणिद्धिमच्छिदो मणुसेसु उवक्खणो गब्भादि-अहुवस्सेण उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिक्खणो । ( १ ) । पुणो प्पमत्तो जादो ( २ ) । हेद्दा पडिदूगंतरिदो । चक्खुंदसणिद्धिं परिभमिय अपच्छिमे भवे मणुसो जादो । कदकरणिज्जो होदूण अंतोसुहुत्तावमेसे जीणिए अप्पमत्तो होदूण प्पमत्तो जादो ( ३ ) । लद्धमंतरं । भूओ अप्पमत्तो ( ४ ) । उवरि छ अंतोसुहुत्ता । एवमहुवस्सेहि दसअंतो-सुहुत्तेहि ऊणिया सगहिदी प्पमत्तस्सुक्खसंतरं ।

( अप्पमत्तस्स उच्चदे- ) एकको अक्खुदःसणिद्धिमच्छिदो मणुसेसु उवक्खणो । गब्भादिअहुवस्सेण उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिक्खणो ( १ ) । हेद्दा पडिदूण अंतरिदो चक्खुंदसणिद्धिं परिभमिय अपच्छिमे भवे मणुसेसु उवक्खणो । कदकरणिज्जो होदूण अंतोसुहुत्तावमेसे संसारे विपुट्ठो अप्पमत्तो जादो ( २ ) । लद्धमंतरं । तदो प्पमत्तो

प्पमत्तसंयत ( ५ ) और अप्पमत्तसंयत हुआ ( ६ ) । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाने । इस प्रकार अडतालीस दिवस और बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी संयतसंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर है ।

चक्षुदर्शनी प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं-अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भको आदि लेकर आठ वर्षसे उपशम-सम्यक्त्व और अप्पमत्तगुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ ( १ ) । पुनः प्रमत्तसंयत हुआ ( २ ) । पश्चात् नीचेके गुणस्थानोंमें गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ । चक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिश्रमण करके अन्तिम भवमें मनुष्य हुआ । पश्चात् कृतकृत्यवेदक होकर जीवनके अन्तर्मुहूर्तकाल अवशेष रह जाने पर अप्पमत्तसंयत होकर प्रमत्तसंयत हुआ ( ३ ) । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पुनः अप्पमत्तसंयत हुआ ( ४ ) । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाने । इस प्रकार आठ वर्ष और दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

चक्षुदर्शनी अप्पमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि लेकर आठ वर्षके द्वारा उपशमसम्यक्त्व और अप्पमत्तगुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ ( १ ) । फिर नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हो अचक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिश्रमणकर अन्तिम भवमें मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । पुनः कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वकी होकर संसारके अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण अवशिष्ट रहने पर विशुद्ध हो अप्पमत्तसंयत हुआ ( २ ) । इस प्रकार अन्तर प्राप्त

(३) अप्पमत्तो (४) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । एवमद्भवस्सेहि दसअंतोमुहुत्तेहि उणिया चामुदंयणिद्धिदी अप्पमत्तुक्कसंतरं हेदि ।

**चटुण्हुमुवसामगणमंतरं केवचिरं कालादो हेदि, णाणाजीवं पडुच्च ओधं ॥ २८९ ॥**

सुगममेदं ।

**एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९० ॥**

एदं पि सुगमं ।

**उयक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ २९१ ॥**

तं जहान्- एकको अचक्कुदंमणिद्धिमच्छिदो मणुत्सेसु उववण्णो । गब्भादिअद्दु- तस्सण उयममत्तमपमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो (१) । अंतोमुहुत्तेण वेदगासम्मत्तं मत्तो (२) । तदो अंतोमुहुत्तेण अणताणुवंधिं विंसलोजिदो (३) । दंसणमोहणीयमुव- सामिय (४) पमत्तापमत्तपरावत्तमहस्सं कादूण (५) उवसमसेडीपाओग्गअप्पमत्तो जादो (६) । अपुव्वो (७) अणियद्धी (८) सुहुमो (९) उवसंतो (१०) सुहुमो आ । पुन. प्रमत्तसयत हो (३) अप्रमत्तसयत हुआ (४) । इनमें ऊपरके छह अन्तमुहुत्ते और मिलीये । इस प्रकार आठ वर्ष और दश अन्तमुहुत्तसे कम चक्षुदर्शनीकी स्थिति ही चक्षुदर्शनी प्रमत्तसयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

चक्षुदर्शनी चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओधके समान है ॥ २८९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जवन्य अन्तर अन्तमुहुत्त है ॥ २९० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम है ॥ २९१ ॥

जंसे- अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको गारि देकर आठ वर्षके द्वारा उपशामसयत्त और अप्रमत्तसयत गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । अन्तमुहुत्तके पश्चात् वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (२) । पुनः अन्तमुहुत्तसे अनन्तानुवन्धीता विसंयोजन किया (३) । पुनः दर्शनमोहनीयको उपशामा कर (४) प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहचौं परिवर्तनको करके (५) उप- शामोष्णीके योग्य अप्रमत्तसयत हुआ (६) । पुनः अपूर्वकरण (७) अनिवृत्तिकरण (८)

१ चतुर्गुणुपमानी नानाजीवोपेक्षया सामान्यत् । स. सि. १, ८

२ एतन्ती प्रति जस्येनात्तमुहुत्तः । म. सि. १, ८

३ जन्तेण दे सागरोपमदूरे दशाने । स. सि. १, ८.

(११) अणियद्धी (१२) अपुव्वो (१३) हेद्धा ओदरिय अंतरिदो चक्कुदंसणिद्धिदि परिभमिय अंतिमे भवे मणुत्सेसु उववण्णो । कदकरणिज्जो होदूण अंतोमुहुत्तापमेसे संसारे विसुद्धो अप्पमत्तो जादो । सादासादबंधपरावत्तसहस्सं कादूण उवसमसेडीपाओग्गअप्पमत्तो होदूण अपुव्वुवसामगो जादो (१४) । लद्धमंतरं । तदो अणियद्धी (१५) सुहुमो (१६) उवसंतो (१७) पुणो पि सुहुमो (१८) अणियद्धी (१९) अपुव्वो (२०) अप्पमत्तो (२१) पमत्तो (२२) अप्पमत्तो (२३) होदूण खवगसेडीमारुद्धो । उवरि छ अंतो- मुहुत्ता । एवमद्भवस्सेहि एगूणत्तीसअंतोमुहुत्तेहि य जणिया सगिद्धिदी अपुव्वकरणुक्कसंतरं । एवं चेव तिण्हुवुवसामगणं । गवरि सचावीस पंचवीस तेवीस अंतोमुहुत्ता ऊणा कायव्वा ।

**चटुण्हं खवाणमोधं ॥ २९२ ॥**

सुगममेदं ।

सूक्ष्मसाम्पराय (९) उपशान्तमोह (१०) सूक्ष्मसाम्परायं (११) अनिवृत्तिकरण (१२) और अपूर्वकरणसंयत होकर (१३) तथा नीचे उतरकर अन्तरको प्राप्त हो चक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिश्रमणकर अन्तिम भवमें मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहांपर कृतकलययेदक- सम्यक्त्वी होकर ससारके अन्तमुहुत्त अवशिष्ट रह जाने पर विद्युद्द हो अप्रमत्तसंयत हुआ । वहापर साता और असाता वेदनीयके बंध-परावर्तन-सहचौंको करके उपशाम- श्रेणीके योग्य अप्रमत्तसयत होकर अपूर्वकरण उपशामक हुआ (१४) । इस प्रकार अन्तर प्राप्त होगया । तत्पश्चात् अनिवृत्तिकरण (१५) सूक्ष्मसाम्पराय (१६) उपशान्तकपाय (१७) पुनरपि सूक्ष्मसाम्पराय (१८) अनिवृत्तिकरण (१९) अपूर्वकरण (२०) अप्रमत्त- संयत (२१) प्रमत्तसंयत (२२) और अप्रमत्तसंयत होकर (२३) क्षपकश्रेणीपर चढ़ा । इनमें ऊपरके छह अन्तमुहुत्त और मिलीये । इस प्रकार आठ वर्ष और उन्तीस अन्तमुहुत्तसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी अपूर्वकरण उपशामकका उत्कृष्ट अन्तर है ।

इसी प्रकार चक्षुदर्शनी शेष तीन उपशामकोंका भी अन्तर जानना चाहिए । विशेषता यह है कि अनिवृत्तिकरण उपशामकके सत्ताईस अन्तमुहुत्त, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकके पचीस अन्तमुहुत्त और उपशान्तकपायके तेवीस अन्तमुहुत्त कम करना चाहिए । चक्षुदर्शनी चारों क्षपकोंका अन्तर ओधके समान है ॥ २९२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।



मत्त-सागरोपमाणि उत्कृतसंलं ।

मासणसम्मादिट्टिसम्माभिच्छादिट्टिणमंतरं केवचिरं कालदो  
होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओवं ॥ २९९ ॥

सुगममंदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,  
अंतोसुहुरं ॥ ३०० ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण तेतीसं सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि  
॥ ३०१ ॥

तं जहा- निष्णिग मिच्छादिट्टी जीवा सत्तम-पंचम-तदियपुढवीसु किण्ह-णील-काउ-  
लेमिया उपण्णा । छहि पज्जचीहि पज्जचयदा (१) विस्संता (२) विसुद्धा (३)  
उपममम्मचं पडिउण्णा (४) सारणं गदा । मिच्छं गंतूणंतग्गिदा । अंतोसुहुरावसे

सागरोपम और नापोतलेइयावाले नसंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर पांच अन्त-  
मुहूर्तोंत कम सान सागरोपम होता है ।

उक्त तीनों अशुभलेइयावाले मारादनमम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका  
अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥२९९॥  
यह एत सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असं-  
रयातना भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम,  
मत्तह सागरोपम और सात सागरोपम है ॥ ३०१ ॥

जैसे- कृण, नील और कापोतलेइयावाले तीन मिथ्यादृष्टि जीव क्रमशः सातवीं,  
पांचवीं और तीसरी पृथिवीमें उत्पन्न हुए । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम  
ले (२) विद्युत् हो (३) उपरामसम्यक्त्वको प्राप्त हुए (४) । पुनः सासादनगुण-  
स्थानको गये । पद्धान् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुए । पुनः जीवनके अन्तर्मुहूर्त

१ सागरोपमदृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंकी अपेक्षा सामान्यत् । स. सि ९, ८

२ पृथ्वी पर जघन्य पत्तोंपामारययोगीन्तर्मुहूर्त । स. सि १, ८

३ उत्तरेण पार्थिवत्वसत्त्वमन्वसागरोपमाणि देशोनाति । स. सि १, ८.

जीविए उवसममम्मचं पडिउण्णा । सासणं गंतूण विदियसमए मदा मणुसेसु उगवण्णा ।  
णवरि सत्तमपुढवीए मान्णा मिच्छं गंतूण (५) तिरिकरोववज्जंति चि वत्तवं ।  
एवं पंच-चहु-चहु-अंतोसुहुरेहि उणाणि तेतीस-सत्तारस-सत्त-सागरोवमाणि किण्ह-णील-  
काउलेस्सियसासणु-रुस्संतरं होदि । एवासमओ अंतोसुहुरेत्तं पविट्ठो चि पुध ण उत्तो ।  
एवं सम्माभिच्छादिट्टिस्स वि । णवरि छहि अंतोसुहुरेत्तं हि उणाणि तेतीस-सत्तारस-सत्त-  
सागरोवमाणि किण्ह-णील-काउलेस्सियसम्माभिच्छादिट्टिउक्कस्संतरं ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्टिअसंजदसम्मादिट्टिणमंतरं  
केवचिरं कालदो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं  
॥ ३०२ ॥

सुगमयेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुरं ॥ ३०३ ॥

तं जहा- चत्तारि जीवा मिच्छादिट्टि-सम्मादिट्टिणो तेउ-पम्मलेस्सिया अण्णगुणं

अवशिष्ट रहने पर उपरामसम्यक्त्वको प्राप्त हुए । पश्चात् सासादनगुणस्थानमें जाकर  
क्रितीय समयमें मेरे और मनुष्योंमें उत्पन्न हुए । विशेषता यह है कि सातवी पृथिवीके  
सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी मिथ्यात्वको प्राप्त होकर (५) तिरिचोंमें उत्पन्न होते हैं,  
पेसा कहना चाहिए । इस प्रकार पाच, चार और चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम क्रमशः तेतीस,  
सत्तरह और रात सागरोपम कालप्रमाण कृण, नील और कापोत लेइयावाले सासादन-  
सम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है । सासादनगुणस्थानमें जाकर रहनेका एक समय  
अन्तर्मुहूर्तके ही भीतर प्रविष्ट है, इसलिये पृथक् नहीं कहा । इसी प्रकार तीनों अशुभ-  
लेइयावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका भी उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिए । विशेषता यह है  
कि यहाँपर छह-छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस, सत्तरह और सात सागरोपमकाल क्रमशः  
कृण, नील और कापोत लेइयावालोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

तेजोलेइया और पबलेइयावालोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका  
अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥३०२॥  
यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०३ ॥

जैसे- तेजोलेइया और पबलेइयावाले मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि चार जीव

१ तेज-पबलेइयायोर्मिथ्यादृष्टयसत्तसम्यग्दृष्टयोनानाजीवामेक्षया नास्त्यन्तरत् । स. सि १, ८.

२ पृथ्वी पर जघन्य पत्तोंपामारययोगीन्तर्मुहूर्त । स. सि १, ८.

गंतूण सच्चजहणकालेण पडिणियत्तिय तं चेत्र गुणमागदा । लद्धमंतरं ।

**उक्कस्सेण वे अट्टारस सागरोवमाणि सादिरैयाणि ॥ ३०४ ॥**

तं जहा- वे मिच्छादिद्विणो तेउ-पम्मलेस्सिया सादिरिय-वे-अट्टारससागरोवमाउ-  
द्विदिएसु देवेषु उववणा । छहि पज्जचीहि पज्जत्तयदा (१) विस्सता (२) विमुद्धा  
(३) सम्मत्तं धेत्तूणंतरिदा । सगद्धिदिं जीविय अवसाणे भिच्छत्तं गदा (४) । लद्धं  
सादिरिय-वे-अट्टारससागरोवममेत्तरं । एवं सम्मादिद्विस्स वि । णत्तरि पंचहि अंतोसुहुत्तेहि  
ऊणियाओ सगद्धिदीओ अंतरं ।

**सासनसम्भादिद्वि-सम्भाभिच्छादिद्विणमंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओर्ध्वं ॥ ३०५ ॥**

सुगमभेदं ।

अन्य गुणस्थानको जाकर सर्वजघन्य कालसे लौटकर उसी ही गुणस्थानको आगये ।  
इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागरोपम और  
साधिक अट्टारह सागरोपम है ॥ ३०४ ॥

जैसे- तेज और पद्म लेख्यावाले दो मिथ्यादृष्टि जीव साधिक दो सागरोपम और  
साधिक अट्टारह सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए । छहों पर्याप्तियोंसे  
पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विमुद्ध हो (३) और सम्यक्त्वको ग्रहण कर अन्तरको  
प्राप्त हुये । पुनः अपनी स्थितिप्रमाण जीवित रहकर आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त  
हुए (४) । इस प्रकार साधिक दो सागरोपमकाल तेजोलेख्यावाले मिथ्यादृष्टिका और  
साधिक अट्टारह सागरोपमकाल पद्मलेख्यावाले मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त  
होगया । इसी प्रकार तेज और पद्म लेख्यावाले असयतसम्यग्दृष्टि जीवका भी अन्तर कहना  
चाहिए । विशेषता यह है कि पाच अन्तर्मुहूर्तसे कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण अन्तर  
होता है ।

तेजोलेख्या और पद्मलेख्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि  
जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान  
है ॥ ३०५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ उत्तरपेण दे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि । स सि १, ८

२ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवपेक्षया सामा यवत् । स सि १, ८

**एगजीवं पडुच्च जहणेण पल्लिदोवयस्स असंखेज्जदिभागो,  
अंतोसुहुत्तं ॥ ३०६ ॥**

एदं पि सुगम ।

**उक्कस्सेण वे अट्टारस सागरोवमाणि सादिरैयाणि ॥ ३०७ ॥**  
तं जहा- वे सासणा तेउ-पम्मलेस्सिया सादिरिय-वे-अट्टारससागरोवमाउद्विदिएसु  
देवेषु उववणा । एगसमयमच्छिय विदियसमए भिच्छत्तं गंतूणतरिदा । अवसाणे वे नि  
उवसमसम्भत्तं पडिचणा । पुणो सासणं गंतूण विदियसमए सदा । एवं सादिरिय-वे-अट्टारस-  
सागरोवमाणि दुग्ममऊणाणि सासणुककस्संतरं होदि । एवं सम्भाभिच्छादिद्विस्स नि ।  
णत्तरि छहि अंतोसुहुत्तेहि ऊणियाओ उचछिदीओ अंतरं ।

**संजदांसजद-पमत्त-अपमत्तसंसजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि,  
णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३०८ ॥**

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके  
असंख्यात्वेन भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः साधिक दो सागरोपम  
और अट्टारह सागरोपम है ॥ ३०७ ॥

जैसे- तेज और पद्म लेख्यावाले दो सासादनसम्यग्दृष्टि जीव साधिक दो सागरो-  
पम और साधिक अट्टारह सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए । वहाँ एक  
समय रहकर दूसरे समयमें मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुए । आयुके अन्तमें दोनों  
ही उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए । पश्चात् सासादनयुणस्थानको जाकर दूसरे समयमें  
मरे । इस प्रकार दो समय कम साधिक दो सागरोपम और साधिक अट्टारह सागरोपम  
उक्त दोनों लेख्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकार  
उक्त दोनों लेख्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका भी अन्तर जानना चाहिए । विशेषता  
यह है कि इनके छह अन्तर्मुहूर्तसे कम अपनी उक्त स्थितियोंप्रमाण अन्तर होता है ।

तेज और पद्म लेख्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका  
अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर  
है ॥ ३०८ ॥

१ एक्कीज्ज प्रति जघनेन पल्योपमालेख्यागोऽन्तर्मुहूर्तत्र । स सि १, ८.

२ उत्तरपेण दे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि । स सि १, ८

३ सम्यग्मिथ्यादृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवपेक्षया एक्कीवपेक्षया च नाल्लत्तरय् । स सि १, ८

कृताः ? पाणजीवमहावेच्छेद्राधावा । एगजीवस्य वि, लेख्यद्रादो गुणद्वय  
वस्तुदेश्या ।

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्टि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं  
कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३०९ ॥  
गुणमवेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१० ॥  
तं जल-वे देवा मिच्छादिट्टि-यम्मादिट्ठीणो सुक्कलेस्सिया गुणंतरं गंतूण  
जहण्णेण अप्पिदगुणं पडिण्णा । लद्धमंतोमुहुत्तमंतरं ।

उक्कस्सेण एककीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३११ ॥  
तं जल-वे जीना सुक्कलेस्सिया मिच्छादिट्टी दब्बलिगिणो एककीससागरो-  
वमिएसु दोसु उाण्णा । छहि पज्जत्तयदा (१) विसंता (२) विसुद्धा  
(३) गम्मत्तं पडिण्णा । तथेगो मिच्छत्तं गंतूणतरिदो (४) अवरो सम्मत्तेणव । अवसाणे

पर्याप्त, उक्त गुणस्थानवाले नाना जीवोंके प्रवाहका रुभी विच्छेद नहीं होता  
है । तथा एक जीवकी अपेक्षा भी अन्तर नहीं है, क्योंकि, लेख्यके कालसे गुणस्थानका  
काल गत होता है, ऐसा उपदेश पाया जाता है ।

शुक्लेश्यावालांमं भिथ्यादट्टि और असंयतसस्यदट्टि जीवोंका अन्तर कितने  
काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३०९ ॥  
यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१० ॥  
जैसे-शुक्लेश्यावाले भिथ्यादट्टि और सस्यदट्टि दो देव अन्य गुणस्थानको  
जाकर जघन्य कालसे विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त हुए । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल-  
प्रमाण अन्तर लब्ध होसक्या ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपम  
है ॥ ३११ ॥

जैसे-शुक्लेश्यावाले दो भिथ्यादट्टि द्रव्यलिगी जीव इकतीस सागरोपमकी  
स्थितिकाल देवोंमें उत्पन्न हुए । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विथ्याम ले (२)  
पियुर हो (३) सस्यस्त्वको प्राप्त हुए । उनमेंसे एक भिथ्यात्वको जाकर अन्तरको

१. १. कन्देयेसु णिण्णद्वयगतसस्यदट्टोत्तोल्लिपित्थया नाल्लयत्तसु । स ति १, ६.

२. एत्तवीव मति जघनेनात्तर्मुहूर्तः । स ति १, ६

३. अत्तर्पत्तीण सागरोवमानि देवोत्तानि । स ति १, ६

जहाकमेण वे वि मिच्छत्त-रम्मत्ताणि पडिण्णा (५) । चट्ट-पंचअतोमुहुत्तेहि उणाणि  
एककीसं सागरोवमाणि मिच्छादिट्टि-असंजदसम्मादिट्ठीणसुक्कस्संतरं ।

सासणसम्मादिट्टि-सम्माभिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, पाणाजीवं पडुच्च ओधं ॥ ३१२ ॥  
गुणमवेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,  
अंतोमुहुत्तं ॥ ३१३ ॥  
एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण एककीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३१४ ॥  
एदं पि सुगमं ।

प्राप्त हुआ (४) । दूसरा जीव सस्यस्त्वके साथ ही रहा । आयुके अन्तमें यथाक्रमसे  
दोनो ही जीव भिथ्यात्व और सस्यस्त्वको प्राप्त हुए (५) । इस प्रकार चार अन्त-  
र्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल शुक्लेश्यावाले भिथ्यादट्टिका उत्पन्न अन्तर है  
और पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल असंयतसस्यदट्टिका उत्पन्न  
अन्तर है ।

शुक्लेश्यावाले सासादनसस्यदट्टि और सस्यग्मिथ्यादट्टि जीवोंका अन्तर  
कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ ३१२ ॥  
यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असं-  
ख्यातावां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१३ ॥  
यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपम  
है ॥ ३१४ ॥  
यह सूत्र भी सुगम है ।

१. सासादनसस्यदट्टिमस्यग्मिथ्यादट्टोत्तोल्लिपित्थया सामान्यत्त । स ति १, ६

२. एत्तवीव मति जघनेत पल्योपमासखेयमागोत्तर्मुहूर्तसु । स ति. १, ६.

३. उत्तर्पत्तीण शल्यागरोवमानि देवोत्तानि । स ति. १, ६.

संजदासंजद-पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेग-  
जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३१५ ॥

कुदो ? णाणाजीवपवाहस्स बोच्छेदाभावा, एगजीवस्स लेस्सद्वादो गुणद्वाए  
नहुसुवदेसादो ।

अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च  
गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३१६ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१७ ॥

तं जहा- एको अपमत्तो सुक्कलेस्साए अच्चिदो उवसमसेदिं पडिदणंतरिय  
सव्वजहण्णकालेण पडिणियत्तिय अपमत्तो जादो । लद्धमंतरं ।

उक्कस्समंतोमुहुत्तं ॥ ३१८ ॥

शुक्कलेश्यावाले संयतासंयत और अपमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ?  
नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३१५ ॥

क्योंकि, उक्त गुणस्थानवर्ती नाना जीवोंके प्रवाहका कभी न्युच्छेद नहीं होता  
है । तथा एक जीवकी अपेक्षा भी अन्तर नहीं है, क्योंकि, लेश्याके कालसे गुणस्थानका  
काल बहुत होता है, ऐसा उपदेश पाया जाता है ।

शुक्कलेश्यावाले अपमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी  
अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३१६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१७ ॥

जैसे- शुक्कलेश्यामें विद्यमान कोई एक अपमत्तसयत उपशमश्रेणीपर चढ़कर  
अन्तरको प्राप्त हो सर्वजघन्य कालसे लौटकर अपमत्तसयत हुआ । इस प्रकार अन्तर  
प्राप्त होगया ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उच्छ्रष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१८ ॥

१ सयतासयतमत्तसयतयोस्तेजोलेश्यावत् । स सि १, ८

२ अपमत्तसयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यतरम् । स सि १, ८

३ एरुजीव प्रति जघन्यमुच्छ्रष्ट चात्तर्मुहूर्तः । स सि १, ८

एदस्स जहण्णभंगो । णवरि सव्वचिरेण कालेण उवसमसेदीदो ओदिण्णस्स  
वचव्वं ।

तिण्हमुवसामाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं  
पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३१९ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३२० ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२१ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२२ ॥

एदसि दोण्हं सुत्ताणमत्थे भण्णमाणे खिप्प-चिरकालेहि उवसमसेदिं चडिय ओदि-  
ण्णाणं जहण्णुक्कस्सकाला वचव्वा ।

इसका अन्तर भी जघन्य अन्तरपरुवर्णकाके समान है । विशेषता यह है कि  
सर्वदीर्घकालात्मक अन्तर्मुहूर्त द्वारा उपशमश्रेणीसे उतरे हुए जीवके उच्छ्रष्ट अन्तर  
कहना चाहिए ।

शुक्कलेश्यावाले अपूर्वकरण, अनिष्टतिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती  
तीनों उपशामक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे  
एक समय अन्तर है ॥ ३१९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्कलेश्यावाले तीनों उपशामकोंका उच्छ्रष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३२० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२१ ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उच्छ्रष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२२ ॥

इन दोनों सूत्रोंका अर्थ कहने पर क्षिप्र ( लघु ) कालसे उपशमश्रेणी पर चढ़कर  
उतरे हुए जीवोंके जघन्य अन्तर कहना चाहिए, तथा चिर ( दीर्घ ) कालसे उपशमश्रेणी  
पर चढ़कर उतरे हुए जीवोंके उच्छ्रष्ट अन्तर कहना चाहिए ।

१ तयाणामुपशमजाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स सि १, ८

२ एरुजीव प्रति जघन्यमुच्छ्रष्ट चात्तर्मुहूर्तः । स सि, १, ८

३ मत्तिपु ' ओधिणाण ' इति पाठ ।

उच्यते कसायवीदरागच्छुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि,  
णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ ३२३ ॥

गुणसमयं ।

उच्यते कसेण वासपुथत्तं ॥ ३२४ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३२५ ॥

उच्यते उचरि उचसंतकमाण पडिवज्जमाणगुणद्वयाभावा, हेद्वा ओदिणस्स  
पि लेसंतमंतंतिमंतरेण पुणो उच्यंतगुणसमहणाभावा ।

चटुण्हं खवगा ओधं ॥ ३२६ ॥

शुक्लेस्यावाले उपशान्तकणायवीतरागच्छुमत्थाका अन्तर कितने काल होता है ?  
नाना जीवोंकी अपेक्षा जवन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३२३ ॥

यह नून सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३२४ ॥

याह स्वर भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३२५ ॥

क्योंकि, उपशान्तकणाय गुणस्थानसे ऊपर उपशान्तकणायी जीवके द्वारा प्रतिपद्य-  
मान गुणस्थानका अभाव है, तथा नीचे उतरे हुए जीवके भी अन्य लेस्याके संक्रमणके  
बिना पुन. उपशान्तकणाय गुणस्थानका ग्रहण हो नहीं सकता है ।

विशेषार्थ—उपशान्तकणायगुणस्थानके अन्तरका अभाव वतानेका कारण यह है  
कि ग्यारहवें गुणस्थानसे ऊपर तो वह चढ़ नहीं सकता है, क्योंकि, वहाँपर क्षपकोंका  
ही गमन होता है । और यदि नीचे उतरकर पुन. उपशान्तकणायीपर चढ़े, तो नीचेके गुण-  
स्थानमें शुक्लेस्यासे पीत पद्मादि लेस्याका परिवर्तन हो जायगा, क्योंकि, वहाँपर एक  
लेस्याके कालसे गुणस्थानका काल बहुत वताया गया है ।

शुक्लेस्यावाले चारों क्षपकोंका अन्तर ओधके समान है ॥ ३२६ ॥

१ उपशान्तकणाय नानाजीवपेक्षया सामान्यत्वं । न सि १, ८

२ पृच्छीम प्रीति नास्त्यन्तर । स सि १, ८. ३ प्रतिपु 'लेस्तर' इति पाठ ।

४ चतुर्णा क्षपसामान्यत्वेन लेस्यानां च सामान्यत्वं । स सि १, ८.

सजोगिकेवली ओधं ॥ ३२७ ॥

दो चि सुत्तणि सुगसाणि ।

एव लेस्सामगणां समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव अजोगि-  
केवलि ति ओधं ॥ ३२८ ॥

कुदो ? सव्वपयोरेण ओघपरवणणादो भेदाभावा ।

अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च  
णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३२९ ॥

कुदो ? अवव्यपवाहवोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३३० ॥

कुदो ? गुणंतरसंकतीए तत्थाभावा ।

एव भवियमगणा समत्ता ।

शुक्लेस्यावाले सयोगिकेवलीका अन्तर ओधके समान है ॥ ३२७ ॥  
ये दोनों सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार लेस्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणके अनुवादसे भव्यसिद्धिकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली  
तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती भव्य जीवोंका अन्तर ओधके समान है ॥ ३२८ ॥

क्योंकि, सर्व प्रकार ओघप्रवणणसे भव्यमार्गणकी अन्तरप्रवणणमें कोई  
भेद नहीं है ।

अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा  
अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३२९ ॥

क्योंकि, अव्य जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है ।

अभव्य जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३३० ॥

क्योंकि, अव्यमें अन्य गुणस्थानके परिवर्तनका अभाव है ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

१ प्रतिपु 'लेस्समगणा' इति पाठ ।

२ भव्यादेवादेन भव्येण भियादृष्टथाययोगेवत्यन्तानां सामान्यत्वं । स. सि १, ८.

३ अव्यव्यानां नानाजीवपेक्षया पृच्छीमपेक्षया च नास्त्यन्तर । स सि. १, ८.



सम्पत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥३३१॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३२ ॥

तं जहा- एगो असंजदसम्मादिट्ठी संजमासजमगुणं गंतूणं सव्वजहणेण कालेण पुणो असंजदसम्मादिट्ठी जादो । लद्धमंतरं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ ३३३ ॥

तं जहा- एगो भिच्छादिट्ठी अट्ठवीससत्कम्मिओ पंचदियतिस्खसणिसम्मुच्छिमपज्जचएसु उववणो । छहि पज्जचीहि पज्जचयदो ( १ ) विस्सतो ( २ ) विसुद्धो ( ३ ) वेदासम्मत्तं पडिणणो ( ४ ) । संजमासंजमगुणं गंतूणंतरिदो पुव्वकोडि जीविय मदो देवो जादो । एवं चट्ठि अंतोमुहुत्तेहि जणिया पुव्वकोडी उक्कस्संतरं ।

'संजदासंजदपहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछट्टुमत्था ओधि-  
णाणिभंगो ॥ ३३४ ॥

सम्यक्स्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियेमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३३१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३२ ॥

जैसे- एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सयमासंयम गुणस्थानको प्राप्त होकर सर्व-जघन्य कालसे पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥३३३॥  
जैसे- मोहकर्मकी अट्ठईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव पंचेन्द्रिय विभ्राम ले ( २ ) विशुद्ध हो ( ३ ) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ ( ४ ) । पुनः संयमासंयम गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त हो पूर्वकोटी वर्तक जीवित रह कर मरा और देव हुआ । इस प्रकार चार अन्तर्मुहूर्तोंस कम पूर्वकोटी वर्ष असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकपायवीतरागछत्रस्य गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टियोंका अन्तर अविधिज्ञानियोंके समान है ॥ ३३४ ॥

१ मत्तिपु ' सब्बदपहुडि ' इति पाठ ।

जथा ओधिणाणमग्गणाए संजदासंजदादीणमंतरपरूखणा कदा, तथा कादव्वा, गत्थि एत्थ कोह विसेसो ।

चटुण्हं खवगा अजोगिकेवली ओधं ॥ ३३५ ॥

सजोगिकेवली ओधं ॥ ३३६ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३३७ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३८ ॥

तं जहा- एगको असंजदसम्मादिट्ठी अणगुणं गंतूण सव्वजहणकालेण असंजद-सम्मादिट्ठी जादो । लद्धमंतरं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ ३३९ ॥

जिस प्रकारसे अविधिज्ञानमार्गणमें सयतासंयत आदिकोंके अन्तरकी प्ररूपणा की है, उसी प्रकार यहां पर भी करना चाहिए, क्योंकि, उससे यहां पर कोई विशेषता नहीं है ।

सम्यग्दृष्टि चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३३५ ॥

सम्यग्दृष्टि सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३३६ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम है ।

क्षाधिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ?  
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३३७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३८ ॥

जैसे- एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव अन्य ( संयतासंयतादि ) गुणस्थानको जाकर सर्वजघन्य कालसे पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी वर्ष है ॥ ३३९ ॥

१ सम्यक्त्वावुवादिन क्षापितसम्यग्दृष्टिचसयतसम्यग्दृष्टेर्नानाविधिपेक्षया नास्त्यन्तरस्य स ति. १, ८.

२ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । स ति १, ८ ३ उत्तरेण पूर्वकोटी देवोना । स ति. १, ८

ते जन्ता- एकको पुव्वकोडाउएसु मणुसेसुववजिय गवभादिअड्डवस्सियो जादो ।  
दंगणमोहणीय गमिय रश्यमम्मादिही जादो (१) । अतोपुहुत्तमाच्छिद्रण (२) संजमासंजमं  
मंजमं या पडिवजिय पुव्वकोडिं गमिय काल गदो देवो जादो । अड्डवस्सेहि वि-  
अतोपुहुत्तेहि य ऊणियो पुव्वकोडी अंतरं ।

संजदासंजद-पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि गाणा-  
जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३४० ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३४१ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरैयाणि ॥ ३४२ ॥

तं जन्ता- एकको पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । गवभादिअड्डवस्साणसुववरि  
अतोपुहुत्तेण (१) राहयं पड्डमिय (२) विस्ममिय (३) संजमासंजमं पडिवजिय (४)

जेमे- एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर गर्भसे लेकर आठ  
वर्षका हुआ और अर्धमौलनीयका अय करके श्यायिकसम्यग्दृष्टि होगया (१) । वहां  
अन्तर्मुहुर्तं रह करके (२) संयमासंयम या संयमको प्राप्त होकर और पूर्वकोटी वर्ष  
बिनाकर मरणको प्राप्त हो देन हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और दो अन्तर्मुहुर्तोंसे कम  
पूर्वकोटी वर्ष अत्यंत श्यायिकसम्यग्दृष्टिज्ञा उत्कृष्ट अन्तर है ।

श्यायिकसम्यग्दृष्टि संयत्तासंयत और प्रमत्तमयत जीवोंका अन्तर कितने काल  
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३४० ॥

यत् मूत्र सुगमं हे ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जवन्व्य अन्तर अन्तर्मुहुर्तं है ॥ ३४१ ॥

यत् मूत्र भी सुगमं हे ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेत्तीस सागरोपम  
है ॥ ३४२ ॥

जेमे- एक जीव पूर्वकोटी वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आवि  
लेकर आठ वर्षोंके पश्चात् अन्तर्मुहुर्तसे (१) श्यायिकसम्यग्दृष्टिका प्रस्थापनकर (२)  
विश्राम ले (३) संयमासंयमको प्राप्त कर (४) संयमको प्राप्त हुआ । संयमसहित

१ गणगायनसमाध्यायगतानि नालजीवोपेक्षया नालत्वात् । स सि १, ८.

२ इत्थीय मणि जल्पेनात्तर्मुहुर्तं । स. सि. १, ८.

३ उक्थेण पड्डिमसागरोपमाणि सादिरैयाणि । म सि १, ८. ४ प्रतिपु 'पड्डिमिय' इति पाठ ।

संजमं पडिवण्णो । पुव्वकोडिं गमिय मदो समऊणतेत्तीससागरोवमाउद्धिदिएसु उव-  
वण्णो । तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसुववण्णो । थोवानसेसे जीविए संजमासंजमं  
गदो (५) । तदो अप्पमत्तादिणवहि अंतोपुहुत्तेहि सिद्धो जादो । अड्डवस्सेहि चोदस-  
अतोपुहुत्तेहि य ऊणदोपुव्वकोडीहिं सादिरैयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं  
संजदासंजदस्स ।

पमत्तस्स उच्चदे- एकको पमत्तो अप्पमत्तो (१) अपुव्वो (२) अणियद्धी  
(३) सुहुमो (४) उवसंतो (५) पुणो वि सुहुमो (६) अणियद्धी (७) अपुव्वो  
(८) अप्पमत्तो (९) अद्वाखएण कालं गदो । समऊणतेत्तीससागरोवमाउद्धिदिएसु  
देवसे उववण्णो । तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । अंतोपुहुत्तावसेसे जीविए  
पमत्तो जादो । लद्धमंतरं (१) । तदो अप्पमत्तो (२) । उवरि छ अतोपुहुत्ता । अंतरस्स  
वाहिया' अड्ड अंतोपुहुत्ता, अंतरस्स अब्भंतरिमा वि णत्थ, तेणगंतोपुहुत्तवभहियपुव्वकोडीए  
सादिरैयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं ।

पूर्वकोटीकाल विताकर मरा और एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले  
वैषोंमें उत्पन्न हुआ । वहासे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । जीव-  
नके अल्प अवशेष रह जाने पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (५) । इसके पश्चात्  
अप्रमत्तादि गुणस्थानसम्बन्धी नो अन्तर्मुहुर्तोंसे (श्रेण्यारोहण करता हुआ) सिद्ध  
होगया । इस प्रकार आठ वर्ष और चौदह अन्तर्मुहुर्तोंसे कम दो पूर्वकोटियोंसे साधिक  
तेतीस सागरोपमकाल श्यायिकसम्यग्दृष्टि संयत्तासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

श्यायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक श्यायिकसम्यग्दृष्टि  
प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत (१) अपूर्वकरण (२) अनिष्टुत्तिकरण (३) सुद्धमसाप्प-  
राय (४) उपरान्तक्रयाय (५) पुनः सुद्धमसाप्पराय (६) अनिष्टुत्तिकरण (७) अपूर्व-  
करण (८) अप्रमत्तरायत (९) होकर (गुणस्थान और आयुके) कालक्षयसे मरणको  
प्राप्त हो एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले वैषोंमें उत्पन्न हुआ । पुनः  
वहासे च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहां जीवनके अन्तर्मुहुर्त  
अवशिष्ट रह जाने पर प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया (१) । पश्चात्  
अप्रमत्तसंयत हुआ (२) । इसमें ऊपरके छह अन्तर्मुहुर्त और मिलाए । अन्तरके बाहरी  
आठ अन्तर्मुहुर्त हैं और अन्तरके भीतरी नौ अन्तर्मुहुर्त हैं, इसलिए नौमेंसे आठके घटा  
देने पर शेष बचे हुए एक अन्तर्मुहुर्तसे अधिक पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपम  
श्यायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अथवा अंतरसम्भंतराओ दो अप्पमत्तद्वाओ, तासिं बाहिरिया एक्का पमत्तद्वा सुद्धा । अंतरम्भंतराओ छ उवसामगद्वाओ, तासिं बाहिरियाओ तिणि खवगद्वाओ सुद्धाओ । अंतरम्भंतरिमाए उवसंतद्वाए एक्किक्किस्से खवगद्वाए अद्धं सुद्धं । अवसेसा अद्धुद्धा अंतोमुहुत्ता । तेहि ज्जणियाए पुव्वकोडीए सादिरियाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि पमत्तस्सुक्कसंतंरं ।

अप्पमत्तस्स उच्चदे- एक्को अप्पमत्तो खइयसम्मादिद्धी अपुव्वो (१) अणियद्धी (२) सुहुमो (३) उवसंतो (४) पुणो वि सुहुमो (५) अणियद्धी (६) अपुव्वो होदूण (७) कालं गदो समज्जणतेत्तीससागरोवमाउद्धिदिएसु देवसुववण्णो । तदो बुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो, अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे अप्पमत्तो जादो । लद्धमंतंरं (१) । तदो पमत्तो (२) पुणो अप्पमत्तो (३) । उवरी छ अंतोमुहुत्ता । अंतरस्स अब्भंतरिसाओ छ उवसामगद्वाओ बाहिरिल्लियासु तिसु खवगद्वासु सुद्धाओ । अब्भं-

अथवा, अन्तरके आभ्यन्तरी दो अप्रमत्तकाल हे और उनके बाहरी एक प्रमत्तकाल शुद्ध है । (अतएव घटाने पर शून्य शेष रहा, क्योंकि, अप्रमत्तसंयतके कालसे प्रमत्तसंयतका काल ढूना होता है ।) तथा अन्तरके भीतरी छह उपशामककाल हैं, और उनके बाहरी तीन क्षपककाल शुद्ध हैं । (अतएव घटा देने पर शेष कुछ नहीं रहा, क्योंकि उपशामकेतिके कालसे क्षपकश्रेणीका काल दुगुना होता है ।) अन्तरके भीतरी उपशामककालमेंसे एक क्षपककालके आधा घटाने पर क्षपककालका आधा शेष रहता है । इस प्रकार सब मिलाकर साढ़े तीन अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहे । उन साढ़े तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल क्षायिकसम्पद्दष्टि प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

क्षायिकसम्पद्दष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक अप्रमत्तसंयत क्षायिकसम्पद्दष्टि जीव अपूर्वकरण (१) अनिवृत्तिकरण (२) सूक्ष्मसाम्पराय (२) उपशान्तकपाय (४) होकर पुनरपि सूक्ष्मसाम्पराय (५) अनिवृत्तिकरण (६) अपूर्वकरण (७) होकर मरणको प्राप्त हुआ और एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और ससारके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर अप्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया (१) । पश्चात् प्रमत्तसंयत (२) पुनः अप्रमत्तसंयत (३) हुआ । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलायें । अन्तरके आभ्यन्तरी छह उपशामककाल हैं और बाहरी तीन क्षपककाल हैं, अतएव घटा देने पर शेष कुछ नहीं रहा ।

तरिमाए उवसंतद्वाए खवगद्वाए अद्धं सुद्धं । अवसेसा एअद्धद्धंअंतोमुहुत्ता । एदेहि ज्जण-पुव्वकोडीए सादिरियाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि अप्पमत्तुक्कसंतंरं ।

चटुण्हमुवसामगणमंतंरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३४३ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुथंतं ॥ ३४४ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३४५ ॥

एदं पि अवगदत्थं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरियाणि ॥ ३४६ ॥

तं जहा- एक्को पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । अद्धवस्सेहि अंतोमुहुत्त-ब्भहिएहि (१) अप्पमत्तो जादो (२) । पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण तम्मिह चैव

अन्तरके भीतरी उपशान्तकालमेंसे क्षपककालका आधा घटाने पर आधा काल शेष रहा । अवशिष्ट साढ़े पांच अन्तर्मुहूर्त रहे । उनसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल क्षायिकसम्पद्दष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

क्षायिकसम्पद्दष्टि चारों उपशामकोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३४३ ॥

यह सब सुगम है ।

उक्त जीवोंमें उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३४४ ॥

यह सब भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३४५ ॥

इस सूत्रका भी अर्थ ज्ञात है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरोपम है ॥ ३४६ ॥

जैसे- एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षोंके द्वारा (१) अप्रमत्तसंयत हुआ (२) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत-संबंधी सहस्रों परिवर्तनोंको करके उसी कालमें क्षायिकसम्पद्दष्टिको भी प्रस्थापनकर (३)

१ प्रतिशु 'चट्ट' इति पाठः ।

२ चतुर्णामुपशमनानां नानाजीवोपेक्षया सामान्यवत् । स सि १, ८.

३ पुस्वीव मति जक्क्येनान्तर्मुहूर्तः । स सि १, ८

४ उत्तरेण वयश्रिल्लसागरोपमाणि सादिरियाणि । स सि १, ८

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।  
वेदगसम्मादिष्टिसु असंजदसम्मादिष्टिणं सम्मादिष्टिभंगो ॥ ३४९ ॥  
सम्मत्तमगणाए ओघमिह जघा असंजदसम्मादिष्टिणमंतरं परुविदं तथा एत्थ  
वि परुविदव्वं ।

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च  
णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३५० ॥

सुगमसेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुतं ॥ ३५१ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण छावट्ठि सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३५२ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर सम्यग्दृष्टिसामान्यके समान  
है ॥ ३४९ ॥

जिस प्रकारसे सम्यक्स्वमार्गणके ओघमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कहा है,  
उसी प्रकारसे यहां पर भी कहना चाहिए ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी  
अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३५० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जवन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३५१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छयासठ सागरोपम  
है ॥ ३५२ ॥

१ क्षायोपशमितसम्यग्दृष्टिचगयतम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव इति जवन्येनात-  
पेहूर्तं । उत्तरेण पूर्वोदो देशोना । स पि १, ८.

२ सयतासयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

३ एकजीव इति जवन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि १, ८

४ उत्तरेण पर्यष्टिसागरोपमाणि देशोनाति । स. पि १, ८.

गडयं पट्टयिय (३) उवयममेडीपाओगत्रियोहीए विमुद्धो (४) अपुब्बो (५) अणियद्धी  
(६) मुद्धुमो (७) उवमंतो (८) पुणो मुद्धुमो (९) अणियद्धी (१०) अपुब्बो  
जादो (११) अतिरिदो । पुब्बकोटिं संजममणुपालिय तेचीससागरोवमाउट्टिदिग्गेषु देवेषु  
उत्तरणो । नदो चुदो पुब्बकोडाउगेषु मणुगेषु उववणो । अंतोसुहुत्तावमेषे जीविए  
अपुब्बो जादो (१२) । लद्धमंतरं । नदो अणियद्धी (१३) सुद्धुमो (१४) उवसंतो  
(१५) पुणो मुद्धुमो (१६) अणियद्धी (१७) अपुब्बो जादो (१८) । उवरि अप-  
मत्ताटिणअंतोमुद्धुत्तेहि सिद्धि गदो । एवमद्धवस्सेहि सत्तावीसअंतोसुहुत्तेहि जणदोपुब्ब-  
कोटीति मादिय्याणि तेत्तोंमं सागरोवमाणि अंतरं । एवं चेत्त तिणहमुवसमगणं । गवरी  
पंचमीम तेत्तमि एत्तस्वीम मुद्धुत्ता जणा कादव्वा ।

चटुणहं खवा अजोगिकेवली ओघं ॥ ३४७ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३४८ ॥

उपशामोर्णिके योग्य विगृह्णित्ते विगृह्ण हो (४) अपूर्वकरण (५) अनित्यचित्करण (६)  
सूक्ष्मसाधारण्य (७) उपशान्तकण्य (८) हो, पुन सूक्ष्मसाधारण्य (९) अनित्यचित्-  
करण (१०) अपूर्वकरण हुआ (११) और अन्तरको प्राप्त होगया । पुन. पूर्वकोटि तक  
संयमको परियाल्लन कर तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहासे  
ज्युन हो पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । जीवन्तके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह  
जान पर अपूर्वकरण हुआ (१२) । इत्थ प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पुन. अनित्यचित्-  
करण (१३) सूक्ष्मसाधारण्य (१४) उपशान्तकण्य (१५) पुनः सूक्ष्मसाधारण्य (१६)  
अनित्यचित्करण (१७) और अपूर्वकरण (१८) हुआ । पश्चात् ऊपरके अप्रमत्तादि गुण-  
स्थानसम्पत्ती ना अन्तर्मुहूर्तमि सिद्धिको प्राप्त हुआ । इस प्रकार आठ वर्षोंसे और  
सत्ताईस अन्तर्मुहूर्तोंके कम दो पूर्वकोटियोंसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टि अपूर्वकरणसयतका उत्कृष्ट अन्तर है । इसी प्रकार शेष तीन उपशामकोका भी  
अन्तर जानना चाहिए । विदोपता यह है कि अनित्यचित्सयन उपशामकेके पच्चीस  
अन्तर्मुहूर्त, सूक्ष्मसाधारण्य उपशामकेके तेवीस अन्तर्मुहूर्त और उपशान्तकण्यकेके रक्कीस  
अन्तर्मुहूर्त कम करना चाहिए ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि चागं क्षपक और अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान  
है ॥ ३४७ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टि सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३४८ ॥

तं जहा- एकको भिच्छादिद्वी वेदगतसम्ममं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो । अंतोमुहुत्तमच्छिय संजमं पडिवण्णो अंतरिदो । जचित्यं कालं संजमासंजयेण संजमेण च अच्छिदो तेत्तियमेत्तेणूणतेत्तीससागरोवमाउड्डिदिदेवसु उववण्णो । तदो बुदो मणुसेसु उववण्णो । तत्य जत्तियं काल अत्तजमेण सजमेण वा अच्छदि, पुणो सग्गादो मणुसग्गदि-मांगत्तूण जं वासपुत्तादिकालमच्छिस्सदि तेहि दोहि वि कालेहि ऊणतेत्तीससागरोवमआउ-ड्डिदिएसु देवेषु उववण्णो । तदो बुदो मणुसो जादो । वे अंतोमुहुत्तावसेसे वेदगतसम्मत्त-काले परिणामपच्चएण संजनासंजमं पडिवण्णो । लद्धमंतरं । तदो अंतोमुहुत्तेण दंसण-मोहणीयं खविय खइयसम्मादिद्वी जादो । आदिल्लमेक्कं अंतिल्ला दुवे' अंतोमुहुत्ता, एदेहि तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि छावड्डिसागरोवमाणि संजदासंजदुक्कसंतरं ।

**पमत्त-अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३५३ ॥**

सुगममेदं ।

जैसे- एक मिथ्यादृष्टि जीव वेदकसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ । अन्तर्मुहूर्त रह कर पुनः संयमको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हुआ । पुनः मरणकर जितने काल संयमासंयम और संयमके साथ रहा था उतने ही कालसे कम तृतीय सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहासे च्युत हो मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहा पर जितने काल असंयमके अथवा संयमके साथ रहा है और स्वर्गसे मनुष्य-गतिमें आकर जितने वर्षपृथस्त्वादिकाल असंयम अथवा संयमके साथ रहेगा उन दोनों ही कालोंसे कम तृतीय सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहासे च्युत हो मनुष्य हुआ । इस प्रकार वेदकसम्यक्त्वे कालमें दो अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह चुते पर परिणामोंके निमित्तसे संयमासंयमको प्राप्त हुआ । तब अन्तर लब्ध हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्तसे दर्शनमोहनीयका क्षणकर शायिकसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार आदिका एक और अन्तके दो अन्तर्मुहूर्त, इन तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम छयासठ सागरोपमकाल वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतको अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ मप्रती 'द्वे' इति पाठ । २ प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

**एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३५४ ॥**

एदं पि सुगमं ।

**उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरैयाणि ॥ ३५५ ॥**

तं जहा- एकको अपमत्तो होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय तंत्तीससागरोवमाउ-ड्डिदिएसु देवेषु उववण्णो । तदो बुदो पुव्वकोडाउएसु मणुससु उववण्णो । अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । खइयं पडुविय खवगसेडीपाओगअप्पमत्तो होदूण (२) खवगसेडिसाल्हाडो अपुव्वदि छअंतोमुहुत्तेहि णिवुदो । अंतरस्स आदिल्लमेक्कमंतो-मुहुत्तं अंतरवाहिरिंसे अद्वअंतोमुहुत्तेसु सोहिदे अवसेसा सत्त अंतोमुहुत्ता । एदेहि ऊण-पुव्वकोडाए सादिरैयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि पमत्तसंजदुक्कसंतरं ।

अपमत्तरस उच्चदे- एकको अपमत्तो पमत्तो होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय (१) समऊणतेत्तीससागरोवमाउड्डिदिदेवेषु उववण्णो । तदो बुदो पुव्वकोडाएसु मणुसेसु उव-

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३५४ ॥  
यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक तृतीय सागरोपम है ॥ ३५५ ॥

जैसे- एक प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत हो अन्तर्मुहूर्त रहकर तृतीय सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहासे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । ससारके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशिष्ट रह जाने पर प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः शायिकसम्यक्त्वको प्रस्थापितकर क्षणकश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हो (२) क्षणकश्रेणीपर चढ़ा और अपूर्वकरणादि छह अन्तर्मुहूर्तोंसे निर्वाणको प्राप्त हुआ । अन्तरके आदिके एक अन्तर्मुहूर्तको अन्तरके वाहिरी आठ अन्तर्मुहूर्तोंमेंसे कम कर देने पर अवशिष्ट सात अन्तर्मुहूर्त रहते हैं, इनसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तृतीय सागरोपमकाल प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं- एक अप्रमत्तसंयत जीव, प्रमत्तसंयत हो अन्तर्मुहूर्त रहकर (१) एक समय कम तृतीय सागरोपमकी आयुस्थिति-वाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहासे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ ।

१ एक्कजीव इति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । स सि १, ८

२ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोवमाणि सातिरेयाणि । स सि १, ८

वयो । अंतोमुहुत्तमस्ये आउए अप्पमत्तो जादो । लद्धमंतरं ( १ ) । प्पत्तायमत्तसंजद-  
द्रोणे मयं पडुत्तिय ( २ ) सुत्तममेडीयाजोगअप्पमत्तो होदूण ( ३ ) सवगसेडीमालुडो  
अप्पुत्तादिच्छिदि अंतोमुहुत्तं चिदि गिबुदो । अंतमसादिल्लमेक्कं चाहिरुसु णवसु अंतोमुहुत्तं  
गेच्छिदि जाम्पया जद्ध । एदंदि उणप्पुत्तकोडीए सादिरियाणि तेत्तिसं सागरोवमाणि  
अणमरुत्तंमंतरं ।

उवसमसमादिद्वीसु असंजदसमादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ ३५६ ॥

णिरंतमुत्तमसमत्तं पट्टिज्जपणजीवागमा ।

उक्कस्सेण सत्त रादिंदियाणि ॥ ३५७ ॥

किमत्थो मत्तगदिदियविरलणियमो ? सभावदो ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३५८ ॥

तं जहा- एक्को उवसमसेडीदो ओदरिय असंजदो जादो । अंतोमुहुत्तमच्छिदूण

आयुते जन्तुमुहुत्तं अवशिष्टं गृह्णान् पर अप्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध  
होगया ( १ ) । तत्पश्चात् प्रमत्त या अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षयिकसम्यक्त्वको प्रस्था-  
पित्वात् ( २ ) क्षपत्तथेणीक प्रायोग्य अप्रमत्तसंयत होकर ( ३ ) क्षपत्तथेणीपर चढ़ा और  
पूर्यत्तयादि द्या जन्तुमुहुत्तसे निर्वाणको प्राप्त हुआ । अन्तरके आदिका एक अन्तमुहुत्त  
गहरी नो जन्तुमुहुत्तमें घटा देने पर अवशिष्ट आठ अन्तमुहुत्त रहे । इससे कम  
पूर्यत्तयानि सायिक तैत्तिस सागरोपमाकाल वेदकसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट  
अन्तर होता है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता  
है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जवन्य अन्तर एक समय है ॥ ३५६ ॥

स्योत्तिक, निरन्तर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका अभाव है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर सात रात-दिन ( अहोरात्र ) है ॥ ३५७ ॥

शंभो—सात रात दिनोंके अन्तरका नियम किसलिए है ?

समाधान—स्वभावसे ही है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जवन्य अन्तर अन्तमुहुत्तं है ॥ ३५८ ॥

जैसे- एक संयत उपशमथेणीसे उतरकर असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ और अन्तमुहुत्तं

१ अप्रमत्तसम्यग्दृष्टिप्राप्ततासम्यग्दृष्टिगोर्वाणिविषेया जघन्यैक समय । स. सि. १, ८.

२ उत्तरदिन काल रादिंदियाणि । स. सि. १, ८.

३ एवञ्जीव प्रति जघन्यपुच्छ चान्तमुहुत्तः । स. सि. १, ८.

संजमांसंजमं पडिक्कणो । अंतोमुहुत्तेण पुणो असंजदो जादो । लद्धं जहणमंतरं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३५९ ॥

तं जहा- एक्को सेडीदो ओदरिय असंजदो जादो । तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिद्य  
संजमांसंजमं पडिक्कणो । तदो अप्पमत्तो पमत्तो होदूण असंजदो जादो । लद्धमुत्तकसंतरं ।

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च  
जहणणेण एगसमयं ॥ ३६० ॥

सुवममेदं ।

उक्कस्सेण चौदस रादिंदियाणि ॥ ३६१ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६२ ॥

तं जहा- एक्को उवसमसेडीदो ओदरिय सजमांसंजमं पडिक्कणो । अंतोमुहुत्त-

रहकर संयमासयमको प्राप्त हुआ । अन्तमुहुत्तसे पुनः असंयत होगया । इस प्रकार  
जवन्य अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहुत्तं है ॥ ३५९ ॥

जैसे- एक संयत उपशमथेणीसे उतरकर असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ । वहाँ अन्त-  
मुहुत्तं रहकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ । पश्चात् अप्रमत्त और प्रमत्तसंयत होकर  
असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ ।

उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी  
अपेक्षा जवन्य अन्तर एक समय है ॥ ३६० ॥

यह सत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर चौदह रात-दिन है ॥ ३६१ ॥

यह सत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जवन्य अन्तर अन्तमुहुत्तं है ॥ ३६२ ॥

जैसे- एक संयत उपशमथेणीसे उतरकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ और अन्त-

१ सयतासयतस्य नानाजीवविषेया जघन्यैक समय । स. सि. १, ८.

२ उत्तरदिन काल रादिंदियाणि । स. सि. १, ८.

३ एवञ्जीव प्रति जघन्यपुच्छ चान्तमुहुत्तः । स. सि. १, ८.

१, ६, ३६३ ]

छक्खंडागमे जीवद्वय

[ ११७

मच्छिय असंजदो जादो । पुणो वि अंतोमुहुत्तेण संजमासंजमं पडियणो । लद्धं जहणंतरं ।

**उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६३ ॥**

तं जहा- एक्को सेडीदो ओदरिय संजदासंजदो जादो । अंतोमुहुत्तमच्छिय अप्पमत्तो पमत्तो असंजदो च होदूण संजदासंजदो जादो । लद्धमुक्कस्संतरं ।

**पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, गाणजीविं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ ३६४ ॥**

सुगममेदं ।

**उक्कस्सेण पण्णारस रादिदियाणिं ॥ ३६५ ॥**

एद पि सुगमं ।

**एगजीविं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६६ ॥**

तं जहा- एक्को उवसमसेडीदो ओदरिय पमत्तो होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय अप्प-

मुहुत्तं रहकर असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । फिर भी अन्तर्मुहुत्तसे समयसंयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकार जघन्य अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहुत्तं है ॥ ३६३ ॥

जैसे- एक संयत उपशमश्रेणीसे उत्तरकर संयतासंयत हुआ । अन्तर्मुहुत्तं रहकर अप्रमत्तसंयत, प्रमत्तसंयत और असंयतसम्यग्दृष्टि होकर संयतासंयत होगया । इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ ।

उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ३६४ ॥ यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह रात-दिन है ॥ ३६५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहुत्तं है ॥ ३६६ ॥

जैसे- एक संयत उपशमश्रेणीसे उत्तरकर प्रमत्तसंयत हो अन्तर्मुहुत्तं रह कर

१ प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवपेक्षया जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८

२ उत्कर्षेण पचदश रातिदियानि । स. सि. १, ८

३ एस्वीव मति जघन्यमुत्कृष्ट चात्तर्मुहुत्तं । स. सि. १, ८.

१६८ ]

अतरायुगमे उवसमसम्मादिट्ठि-अतरपरुवण

[ १, ६, ३६९.

मत्तो जादो । पुणो वि पमत्तसं गदो । लद्धमंतरं । एवं चेव अप्पमत्तस्स वि जहणंतरं वृत्तव्यं ।

**उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६७ ॥**

तं जहा- एक्को उवसमसेडीदो ओदरिय पमत्तो होदूण पुणो संजदासंजदो असं-जदो अप्पमत्तो च होदूण पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । अप्पमत्तस्स उच्चदे- एक्को सेडीदो ओदरिय अप्पमत्तो जादो । पुणो पमत्तो असंजदो संजदासंजदो च होदूण भूओ अप्पमत्तो जादो । लद्धमुक्कस्संतरं ।

**तिण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, गाणजीविं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ ३६८ ॥**

**उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३६९ ॥**

एदयाणि दो वि सुचाणि सुगमाणि ।

अप्रमत्तसंयत हुआ । फिर भी प्रमत्त गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । इसी प्रकारसे उपशमसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका भी जघन्य अन्तर कहना चाहिये । उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहुत्तं है ॥ ३६७ ॥

जैसे- एक संयत उपशमश्रेणीसे उत्तरकर प्रमत्तसंयत होकर पुनः संयतासंयत, असंयत और अप्रमत्तसंयत होकर प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । उपशमसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक संयत उपशमश्रेणीसे उत्तरकर अप्रमत्तसंयत हुआ । पुनः प्रमत्तसंयत, असंयत और संयतासंयत होकर फिर भी अप्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ ।

उपशमसम्यग्दृष्टि अपूर्वकरण, अनिष्टचिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, इन तीनों उपशमकोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३६८ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३६९ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम है ।

१ त्रयाणासुपशमकाना नानाजीवपेक्षया जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८

२ उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । । स. सि. १, ८

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३७० ॥

तं जला- उागममेदिं चडिय आदिं करिय पुणेो उमरिं गंतूण ओदरिय अपिपद-  
गुणं पट्टिगणम्म अतोमुहुत्तमंतरं होदि ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३७१ ॥

एदम्म जहण्णामंगो । णवरि विमिसा विदियवारं चडमाणस्स जहण्णंतरं, पढमवारं  
चडिय ओदिण्णस्स उक्कसंतरं वचवन् ।

उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि,  
णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३७२ ॥

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३७३ ॥

एदणि दो नि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३७४ ॥

उक्त तीनों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त  
है ॥ ३७० ॥

जैभे- उपशमश्रेणीपर चडकर आदि करके फिर भी ऊपर जाकर ओर उतरकर  
विपश्चित गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवमें अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर होता है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३७१ ॥

इस उत्कृष्ट अन्तरकी प्ररूपणा भी जघन्य अन्तरकी प्ररूपणाके समान जानना  
नागिए । किन्तु चिंतयता यह है कि उपशमश्रेणीपर छितीय वार चढनेवाले जीवके जघन्य  
अन्तर होना है और प्रथम वार चडकर उतरे हुए जीवके उत्कृष्ट अन्तर होता है, ऐसा  
कहना चागिए ।

उपशान्तरुपायवीतरागछत्रस्य जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना  
जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ३७२ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रथक्त्व है ॥ ३७३ ॥

ये दोनों ही स्र सुगम ह ।

उपशान्तरुपायवीतरागछत्रस्योका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर  
है ॥ ३७४ ॥

१ पृथ्वी प्रति वारपृथक् चान्तर्मुहूर्त । न सि १, ८

२ उपशान्तरागस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यत् । न सि १, ८.

३ पृथ्वी प्रति नास्तत्त्वत् । न सि १, ८.

हेड्डिमगुणद्वणेषु अंतराविय सव्वजहण्णेण कालेण पुणो उवसंतकसायभावं गयस्स  
जहण्णंतरं किरण उच्चदे ? ण, हेड्डा ओइण्णस्स वेदगसम्मत्तमपडिवज्जिय पुब्बुगसम-  
सम्मचेणुवसमसेडीसमारुहणे संभवाभावादो । तं पि कुदो ? उवसमसेडीसमारुहणपा-  
ओगकालादो सेलुवसमसम्मत्तद्वाए त्थोवत्तुवलंभादो । तं पि कुदो णव्वदे ? उवसंत-  
कसायएगजीवसंतराभाण्णहाणुववचीदो ।

सासणसम्मामिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३७५ ॥  
सुगममंदं ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३७६ ॥

एदं पि सुगमं ।

शंका—जीवके गुणस्थानमें अन्तरको प्राप्त करारकर सर्वजघन्य कालसे पुनः  
उपशान्तरुपायताको प्राप्त हुए जीवके जघन्य अन्तर क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमश्रेणीसे नीचे उतरे हुए जीवके वेद-कसम्भ-  
क्तको प्राप्त हुए बिना पहलेवाले उपशमसमयमत्वके द्वारा पुनः उपशमश्रेणीपर  
समारोहणकी सम्भावनाका अभाव है ।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—क्योंकि, उपशमश्रेणीके समारोहणयोग्य कालसे शेष उपशम-  
सम्यक्त्वका काल अल्प पाया जाता है ।

शंका—यह भी कैसे जाना ?

समाधान—उपशान्तरुपायवीतरागछत्रस्थके एक जीवके अन्तरका अभाव  
अन्यथा वन नहीं सकता, इससे जाना जाता है कि उपशान्तरुपाय गुणस्थान एक जीवकी  
अपेक्षा अन्तर रहित है ।

सासादनसम्पद्यटि और सम्यग्मिथ्यादटि जीवोंका अन्तर कितने काल होता  
है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३७५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥ ३७६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

१ सासादनसम्पद्यटिसम्यग्मिथ्यादटयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्यैकः समय । स सि. १, ८.

२ उत्कर्णेण पल्योपमासंख्येयमाग । स सि. १, ८.



एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३७७ ॥

गुणसंकीर्ण असंभवादो ।

मिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३७८ ॥

कुदो ? णाणाजीवपवाहस्स वोच्छेदाभावा, गुणंतरसंकीर्ण अभावादो ।  
एव सम्मत्तमगणा समत्ता ।

सणियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिद्वीणमोर्धं ॥ ३७९ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च अंतराभावेण, एगजीवं पडुच्च अंतिसुहुचं देखणेवे-  
छावडिसारोपमेत्तजहणुक्कस्संतरेहि य साधम्मखुलंभा ।

सासणसम्भादिद्विपुहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था  
त्ति पुरिसवेदभंगो ॥ ३८० ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३७७ ॥

क्योंकि, इन दोनोंके गुणस्थानका परिवर्तन असम्भव है ।

मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी  
अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३७८ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है । तथा एक जीवका  
अन्य गुणस्थानोंमें संक्रमण भी नहीं होता है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञीमार्गणके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके समान  
है ॥ ३७९ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, एक जीवकी अपेक्षा  
जब्य अन्तर्गुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम दो छयासठ सारोपममात्र अन्तरोंकी अपेक्षा  
ओघसे समानता पाई जाती है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर उपशान्तकपायवीतरागछस्थ तक संज्ञी जीवोंका  
अन्तर पुरुषवेदियोंके अन्तरके समान है ॥ ३८० ॥

१ एवजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

२ मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवोपेक्षया एवजीवोपेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

३ सत्तादुवादेन सत्तिसु मिथ्यादृष्टे सामान्यवत् । स सि १, ८

४ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवोपेक्षया सामान्यवत् । एवजीव प्रति जब्येन परोपमा-

कुदो ? सागरोपमसदपुथत्तद्विदिं पडि दोण्हं साधम्मखुलंभा । णवरि असण्णिणद्विदि-  
मच्छिय सण्णीसुवणणस्स उक्कस्सद्विदी वत्तव्वा ।

चदुण्हं खवाणमोर्धं ॥ ३८१ ॥

सुगमभेदं ।

असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च  
णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३८२ ॥

कुदो ? असण्णिणपवाहस्स वोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३८३ ॥

कुदो ? गुणसंकीर्ण अभावादो ।

एव सण्णिमगणा समत्ता ।

क्योंकि, सागरोपमगतपृथक्त्वस्थितिकी अपेक्षा दोनोंके अन्तरोंमें समानता पाई  
जाती है । विशेषता यह है कि असंज्ञी जीवोंकी स्थितिमें रहकर संज्ञी जीवोंमें उत्पन्न हुए  
जीवके उत्कृष्ट स्थिति कहना चाहिए ।

संज्ञी चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंज्ञी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर  
नहीं है, निरन्तर है ॥ ३८२ ॥

क्योंकि, असंज्ञी जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है ।

असंज्ञी जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३८३ ॥

क्योंकि, असंज्ञियोंमें गुणस्थानके परिवर्तनका अभाव है ।

इस प्रकार संज्ञीमार्गणा समाप्त हुई ।

सत्येयमागोऽन्तर्गुहूर्तश्च । उत्कर्षेण सागरोपमशतपुथक्त्वम् । असयततस्यदृष्टयायमपचानानां नानाजीवोपेक्षया  
नास्त्यन्तरम् । एवजीव प्रति जब्येनान्तर्गुहूर्तः । उत्कर्षेण सागरोपमशतपुथक्त्वम् । चतुर्णोपपशमकानां नामाजीवा-  
वेक्षया सामान्यवत् । एवजीव प्रति जब्येनान्तर्गुहूर्तः । उत्कर्षेण सागरोपमशतपुथक्त्वम् । स सि १, ८.

१ चतुर्णो क्षपकानां सामान्यवत् । स सि १, ८.

२ अमक्षिनां नानाजीवोपेक्षयेऽस्तीवोपेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

आहाराणुवादेण आहारएणु मिच्छादिद्वीणमोघं ॥ ३८४ ॥

सुगममेदं ।

सासणसम्मादिट्टि-सम्मादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओवं ॥ ३८५ ॥

एदं पि सुगमं ।

एराजीवं पडुच्च जहणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,  
अंतोसुहुत्तं ॥ ३८६ ॥

एदं पि अगमयत्यं ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ  
ओसपिणि-उस्सपिणीओ ॥ ३८७ ॥

तं जहा- एस्सो सामणद्दाए दो समया अत्थि ति कालं गदो । एराविगहं

आहारमार्गणोके अनुवादसे आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके  
ममान है ॥ ३८४ ॥

यह मूत्र नुगम है ।

आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल  
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ ३८५ ॥

यह मूत्र भी नुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असं-  
ख्यातां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३८६ ॥

इस न्यूनता अर्थ प्राप्त है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्याता-  
उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल है ॥ ३८७ ॥

नेमि- एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सासादनगुणस्थानके कालमें दो समय

१ आहाराणुवादेण आहारएणु मिच्छादिद्वीणमोघं । स मि. १, ८.

२ सासणसम्मादिट्टि-सम्मादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो । स मि. १, ८

३ एराजीवं पडुच्च जहणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोसुहुत्तं ॥ ३८५ ॥

४ एदं पि अगमयत्यं । स मि. १, ८

कादूण विदियसमए आहारी होदूण तदियसमए मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । असंखेज्जा-  
संखेज्जाओ ओसपिणि-उस्सपिणीओ परिभमिय अंतोसुहुचावसेसे आहारकाले उवसम-  
सम्मत्तं पडिवणो । एवसमयावसेसे आहारकाले सासणं गंतूण विगहं गदो । दोहि  
समएहि जणो आहारककस्सकालो सासणुक्कसंतरं ।

एको अट्टानीसंतकम्मिओ निगहं कादूण देवेसुनणो । छहि पज्जचीहि  
पज्जचयदो ( १ ) निस्संतो ( २ ) विसुद्धो ( ३ ) सम्माभिच्छत्तं पडिवणो ( ४ ) ।  
मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय सम्माभिच्छत्तं पडिवणो  
( ५ ) । लद्धमंतरं । तदो सम्मत्तेण वा मिच्छत्तेण वा अंतोसुहुत्तमच्छिदूण ( ६ ) विगहं  
गदो । छहि अंतोसुहुत्तेहि जणयो आहारकालो सम्माभिच्छादिद्विस्स उक्कसंतरं ।

असंजदसम्मादिट्टिपहुडि जाव अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं  
कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३८८ ॥

सुगममेदं ।

अवशिष्ट रहने पर मरणको प्राप्त हुआ । एक विग्रह ( मोड़ा ) करके छितीय समयमें  
आहारक होकर और तीसरे समयमें मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ । असे-  
ख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों तक परिभ्रमणकर आहारककालमें  
अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः आहारककालके एक  
समयमात्र अवशिष्ट रहने पर सासादनको जाकर विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार दो  
समयोंसे कम आहारकका उत्कृष्ट काल ही आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट  
अन्तर होता है ।

मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सरावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके  
देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्यक्तियोंसे पर्याप्त हो ( १ ) विश्राम ले ( २ ) विद्युद्ब हो ( ३ )  
सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ( ४ ) और मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ ।  
अंगुलके असंख्यातवें भाग कालप्रमाण परिभ्रमण कर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ( ५ ) ।  
इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पछि सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वके साथ अन्तर्मुहूर्त रह  
कर ( ६ ) विग्रहगतिको प्राप्त हुआ । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारककाल  
ही आहारक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक आहारक जीवोंका अन्तर  
कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३८८ ॥  
यह सूत्र सुगम है ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३८९ ॥

कुदो ? गुणंतरं गंतूण सब्बजहणाकालेण पुणो अप्पिदरुणपडियणस्स जहणा-  
तरवलंभा ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओस-  
प्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥ ३९० ॥

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे- एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ विग्गहं कादूण  
देवसुवण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जचयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं  
पडिवण्णो (४) । सिच्चत्तं गंतूणंतरिदो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंते उवसम-  
सम्मत्तं पडिवण्णो (५) । लद्धमंतरं । उवसमसम्मत्तद्वए छावलियावसेसाए सासनं  
गंतूण विग्गहं गदो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणओ आहारकालो उक्कस्संतरं ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३८९ ॥

क्योंकि, विवक्षित गुणस्थानसे अन्य गुणस्थानको जाकर और सर्वजघन्य  
कालसे लौटकर पुनः अपने विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके जघन्य अन्तर  
पाया जाता है ।

उक्त असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा  
उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवै भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और  
उत्सर्पिणी काल है ॥ ३९० ॥

आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्टाईस  
प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों  
पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त  
हुआ (४) । पीछे मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अंगुलके असंख्यातवै  
भागप्रमाण कालतक परिभ्रमण करके अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (५) ।  
इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशिष्ट  
रह जाने पर सासादनमें जाकर विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे क्रम  
आहारकाल ही आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

१ एक्कीव प्रति जघ येनान्तर्मुहूर्तं । स सि १, ८

२ उत्तर्पणाखिलासख्येयमाणा असख्येया उत्तर्पिण्यवसर्पिण्य । स सि १, ८

संजदासंजदस्स उच्चदे- एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ विग्गहं कादूण सम्मु-  
च्छिमेसु उवण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जचयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३)  
वेदगसम्मत्तं संजमासंजमं च समगं पडिवण्णो (४) । सिच्चत्तं गंतूणंतरिदो अंगुलस्स  
असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंते पढमसम्मत्तं संजमासंजमं च समगं पडिवण्णो (५) ।  
लद्धमंतरं । उवसमसम्मत्तद्वए छावलियावसेसाए सासनं गंतूण विग्गहं गदो । पंचहि  
अंतोमुहुत्तेहि ऊणओ आहारकालो उक्कस्संतरं ।

पमत्तस्स उच्चदे- एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ विग्गहं कादूण मणुसेसुवण्णो ।  
गब्भादिअट्ठवस्सेहि अप्पमत्तो (१) पमत्तो होदूण (२) सिच्चत्तं गंतूणंतरिदो ।  
अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंते पमत्तो जादो । लद्धमंतरं (३) । कालं  
कादूण विग्गहं गदो । तिहि अंतोमुहुत्तेहि अट्ठवस्सेहि य ऊणओ आहारकालो उक्कस्संतरं ।

अप्पयत्तस्स एवं चेव । णवरि अप्पमत्तो (१) पमत्तो होदूण अंतरिदो सगट्ठिदि  
परिभमिय अप्पमत्तो होदूण (२) पुणो पमत्तो जादो (३) । कालं करिय विग्गहं

आहारक संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी  
सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके पंचेन्द्रिय सम्पूर्णिष्ठमोंमें उत्पन्न हुआ ।  
छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्व  
और समयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (४) । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको  
प्राप्त हो अंगुलके असंख्यातवै भागप्रमाण काल तक परिभ्रमणकर अन्तमें प्रथमोपशम-  
सम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (५) । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।  
पश्चात् उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहने पर सासादनको जाकर  
विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे क्रम आहारकाल ही आहारक  
संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

आहारक प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी  
सत्तावाला एक जीव विग्रह करके मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि ले आठ वर्षोंसे  
अप्रमत्तसंयत (१) और प्रमत्तसंयत हो (२) मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ ।  
अंगुलके असंख्यातवै भागप्रमाण कालतक परिभ्रमण करके अन्तमें प्रमत्तसंयत होगया ।  
इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (३) । पश्चात् मरण करके विग्रहगतिको प्राप्त हुआ । इस  
प्रकार तीन अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्षोंसे क्रम आहारकाल ही आहारक प्रमत्तसंयतका  
उत्कृष्ट अन्तर है ।

आहारक अप्रमत्तसंयतका भी अन्तर इसी प्रकार है । विशेषता यह है कि अप्रमत्त-  
संयत जीव (१) प्रमत्तसंयत होकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर  
अप्रमत्तसंयत हो (२) पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (३) । पश्चात् मरण करके विग्रहको प्राप्त

गदो । निद्रि अंतोपुद्गुचेति ऊगओ आहारकालो उक्कसंतरं ।

चटुण्हसुवसामगणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, णाणाजीवं

पडुच ओघमंगो ॥ ३११ ॥

सुगममेदं, चटुओ उच्चदो ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहत्तं ॥ ३१२ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कसेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ  
ओसपिणिउस्सपिणीओ ॥ ३१३ ॥

तं जहा- एक्को अट्टवीमसंतकम्मिओ विग्गहं काट्ठण मणुसेसुववण्णो । अट्ट-  
वसिओ सम्मत्तं अप्पमत्तभावेण संजमं च समगं पडिवण्णो (१) । अणत्ताणुवंधी विसंजोए-  
ण (२) दंयणमोहणीयपुग्गामिय (३) पमत्तापत्तपरावत्तहस्सं काट्ठण (४) तदो  
अणुव्णो (५) अणियट्ठी (६) सुहुमो (७) उवयंतो (८) पुणो वि परिवडमाणो

हुआ । इस प्रकार तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारककाल ही आहारक अग्रमत्तसंयतका  
उत्कृष्ट अन्तर है ।

आहारक चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी  
ओपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ ३११ ॥

या सूत्र सुगम है, क्योंकि, इसका अर्थ पहले बहुत बार कहा जा चुका है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी ओपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१२ ॥

या सूत्र भी सुगम है ।

आहारक चारों उपशामकोंका एक जीवकी ओपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके  
असंख्यतों भागप्रमाण अमंख्यतामंख्यत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी है ॥ ३१३ ॥

मोक्षकर्मकी अदुर्लभ प्रकृतियोंकी सत्तावाया एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके  
मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । आठ वर्षका होकर सम्यक्त्वको और अग्रमत्तभावके साथ संयमको  
एक स्वर प्राप्त हुआ (१) । पुन अन्तान्ताणुवन्धीका विसंयोजन करके (२) दर्शनमोह-  
नीयता उपशामकर (३) प्रमत्त और अग्रमत्त गुणस्थानसम्यन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको  
करके (४) पश्चात् अपूर्णकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) और उप-

१ चतुर्णां उपशामकानां नानाजीवपरिपेक्षया एकजीवपरिपेक्षया च नास्त्यन्तरम् । साप्तादन्तरम्यष्टैर्नानाजीवा-

२ एकजीव इति नानेनाणुवन्धीः । म. सि. १, ८.

३ उदरपेक्षया जघन्येनैक समय । उदरपेक्षया मासपृथक्त्वम् । एकजीव इति नास्त्यन्तरम् । सयोगिभिर्निलिनां नाना-

सुहुमो (९) अणियट्ठी (१०) अपुव्णो जादो (११) । हेडा ओदरिदूर्णतरिदो अंगुलस्स  
असंखेज्जदिभागं परिभमिय अति अपुव्णो जादो । लद्धमंतरं । तदो णिदा-पयलाणं वंधे  
वोच्छिण्णे मरिय विग्गहं गदो । अट्टवस्सेहि वारसअंतोपुद्गुचेहि य ऊगओ आहारकालो  
उक्कसंतरं । एवं चेव तिण्हसुवसामगणं । णव्वरि दस णव्व अट्ट अंतोपुद्गुत्ता समयाहिया  
ऊणा काट्ठव्वा ।

चटुण्हं खवाणमोघं ॥ ३१४ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३१५ ॥

एदं पि सुगमं ।

अणाहारं कम्मइयकायजोगिमंगो ॥ ३१६ ॥

शान्तरुपाय होकर (८) फिर भी गिरता हुआ सूक्ष्मसाम्पराय (९) अनिवृत्तिकरण (१०)  
और अपूर्णकरण हुआ (११) । पुनः नीचे उतरकर अन्तरको प्राप्त हो अंगुलके असंख्यातवें  
आग कालप्रमाण परिध्रमणकर अन्तमें अपूर्णकरण उपशामक हुआ । इस प्रकार अन्तर  
लब्ध हुआ । तत्पश्चात् निद्रा और प्रचला, इन दोनों प्रकृतियोंके वधसे व्युत्थिञ्जन होनेपर  
मरकर विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारक-  
काल ही अपूर्णकरण उपशामकका उत्कृष्ट अन्तर है । इसी प्रकार शेष तीनों उपशामकोंका  
भी अन्तर कहना चाहिए । विशेषता यह है कि आहारककालमें अनिवृत्तिकरण उप-  
शामकके दश, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकके नौ और उपशान्तकपाय उपशामकके आठ  
अन्तर्मुहूर्त और एक समय कम करना चाहिए ।

आहारक चारों धपकोक्का अन्तर ओघके समान है ॥ ३१४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३१५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अनाहारक जीवोंका अन्तर कर्मणकाययोगियोंके समान है ॥ ३१६ ॥

१ चतुर्णां धपकानां सयोगिकेवलिना च मामान्यत् । म. सि. १, ८.

२ मत्तियु 'अणाहार' इति पाठ ।

३ अनाहारनेणु मिथ्यादृष्टीनानाजीवपरिपेक्षया एकजीवपरिपेक्षया च नास्त्यन्तरम् । साप्तादन्तरम्यष्टैर्नानाजीवा-  
पेक्षया जघन्येनैकः समय । उदरपेक्षया पशुपेक्षया मासपृथक्त्वम् । एकजीव इति नास्त्यन्तरम् । अग्रमत्तसम्यष्टैर्नाना-  
जीवपरिपेक्षया जघन्येनैक समय । उदरपेक्षया मासपृथक्त्वम् । एकजीव इति नास्त्यन्तरम् । सयोगिभिर्निलिनां नाना-  
जीवपरिपेक्षया जघन्येनैक समय । उदरपेक्षया वर्षपृथक्त्वम् । एकजीव इति नास्त्यन्तरम् । म. सि. १, ८.

मिच्छादिद्विणीं गाणेरजीवं पडुच्च अंतराभावेण, सासणसम्मादिद्विणीं गाणार्जीवं पडुच्च एगसमयपल्लिदेवमस्स असंखेज्जिदिभागजहणुक्कस्संतरेहि य, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण य, असंजदसम्मादिद्विणीं गाणार्जीवं पडुच्च एगसमय-मासपुथत्तरेहि य, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण य, सजोगिकेवलीणं गाणार्जीवं पडुच्च एगसमय-वासपुथत्त-जहणुक्कस्संतरेहि य, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण य दोण्हं साधम्म्युवलंभादो ।

विसेसपहुप्पायणइसुत्तरसुत्तं भणदि-

**णवरि विसेसा, अजोगिकेवली ओधं ॥ ३९७ ॥**

सुगममेदं ।

( एव आहारमरण समत्ता । )

एवमंतराणुगमो ति समत्तमणिओगहारं ।

क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे सासादनसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्लो-पमका असंख्यातवां भाग अन्तरोसे, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, असंयतसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट मास पृथक्त्व अन्तरोंके द्वारा, और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, सयोगिके-बलियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अन्तरसे, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे दोनोंमें समानता पाई जाती है ।

अनाहारक जीवोंमें विशेषता प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं-

किन्तु विशेषता यह है कि अनाहारक अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३९७ ॥

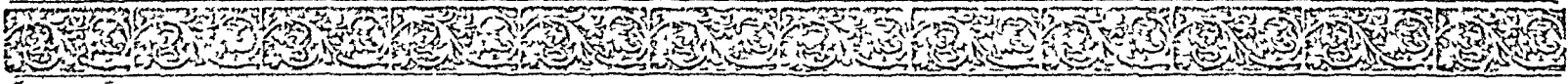
यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।

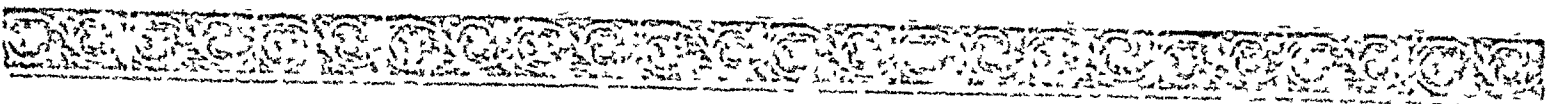
इस प्रकार अन्तरानुगम अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

१ अयोगिकेवलिनो नानाजीवोपेक्षया जघन्येते ऋः समय । उत्कर्षेण षण्मासाः । एकजीव प्रति नास्त्य-  
न्तस्य । स. सि १, ८.

२ अन्तमवगतम् । स सि १, ८



शतशतशत



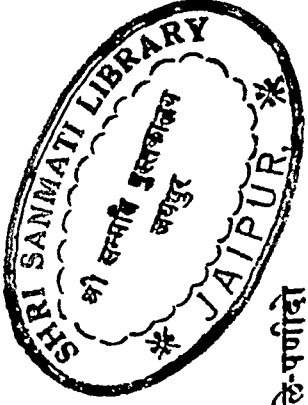
भावो । तस्य दृग्भावो दुविहो आगम-गोआगमभेएण । भावपाहुडजाणओ अणुव-  
जुवो आगमदृग्भावो होदि । जो गोआगमदृग्भावो सो तिविहो जाणुगसरर-भविय-  
तव्वदिरिचभेएण । तस्य गोआगमजाणुगसरररदृग्भावो तिविहो भविय-वड्डमाण-समुज्झाद-  
भेएण । भावपाहुडपज्जायपरिणदजीवस्स आहारो जं होसदि सररं तं भवियं गाम ।  
भावपाहुडपज्जायपरिणदजीव जं पुग्धभूदं सररं तं वड्डमाणं गाम । भावपाहुडपज्जाएण  
परिणदजीवण एगत्तमुवणमिय जं पुग्धभूदं सररं तं समुज्झादं गाम । भावपाहुडपज्जाय-  
सरुवेण जो जीवो परिणमिस्सदि सो गोआगमभवियदृग्भावो गाम । तव्वदिरित्त-  
गोआगमदृग्भावो तिविहो सच्चित्तचिच्च-मिस्सभेएण । तस्य सच्चित्तो जीवदृग्भावो । अचिच्चो  
पोगल-धम्मधम्म-कालागासदृग्वाणि । पोगल-जीवदृग्वाणं संजोगो कधंचि जच्चतरत्तमा-  
वणो गोआगममिस्सदृग्भावो गाम । कधं दृग्वास्स भावव्ववएसो ? ण, भवन्नं भावः,  
भूर्तिर्वा भाव इति भावमदृग्वास्स विउप्पत्तिअवलंणादो । जो भावभावो सो दुविहो आगम-  
गोआगमभेएण । भावपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगमभावभावो गाम । गोआगमभावभावो  
पंचविहं ओदइओ ओवसमिओ खइओ खओवसमिओ पारिणासिओ चेदि । तस्य कम्मोदय-

नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है । भावप्राभृतज्ञायक किन्तु वर्तमानमे अतुपयुक्त जीव  
आगमद्रव्यभाव कहलाता है । जो नोआगमद्रव्य भावनिक्षेप है वह ज्ञायकशरीर, भव्य  
और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार होता है । उनमे नोआगमज्ञायकशरीर द्रव्यभाव-  
निक्षेप भव्य, वर्तमान और समुच्चित्तके भेदसे तीन प्रकारका है । भावप्राभृतपर्यायसे  
परिणत जीवका जो शरीर आधार होगा, वह भव्यशरीर है । भावप्राभृतपर्यायसे परि-  
णत जीवके साथ जो एकीभूत शरीर है, वह वर्तमानशरीर है । भावप्राभृतपर्यायसे परि-  
णत जीवके साथ एकत्वको प्राप्त होकर जो पृथक् हुआ शरीर है वह समुच्चित्तशरीर है ।  
भावप्राभृतपर्यायस्वरूपसे जो जीव परिणत होगा, वह नोआगमभव्यद्रव्य भावनिक्षेप है ।  
तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्य भावनिक्षेप, सच्चित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन  
प्रकारका है । उनमें जीवद्रव्य सच्चित्तभाव है । पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल  
और आकाश द्रव्य अचित्तभाव है । कथंचित् जाल्यन्तर भावको प्राप्त पुद्गल और जीव  
द्रव्योंका संयोग नोआगमभिश्रद्रव्य भावनिक्षेप है ।

शंका—द्रव्यके 'भाव' ऐसा व्यपदेश कैसे हो सकता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, 'भवनं भाव.' अथवा 'भूर्तिर्वा भाव' इस प्रकार  
भावशब्दकी व्युत्पत्तिके अवलम्बनसे द्रव्यके भी 'भाव' ऐसा व्यपदेश बन जाता है ।

जो भावनामक भावनिक्षेप है, वह आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका  
है । भाव प्राभृतका ज्ञायक और उपयुक्त जीव आगमभावनामक भावनिक्षेप है । नोआगम-  
भाव भावनिक्षेप औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षयोपशमिक और पारिणामिकके भेदसे



स्तिरि-भगवंत-पुष्पदंत-भूदबलि-पणीदो

## छवखंडागमो

स्तिरि-धीरसेणाहरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तस्स

पढमखडे जीवट्टाणे

## भावाणुगमो

अवगयअसुद्धभावे उवगयकम्मखउच्चउवभावो ।

पणमिय सव्वरहते भावणिओगं परुवेमो ॥

भावाणुगमेण दुविहो णिदिसो, ओवेण आदिसेण यं ॥ १ ॥

णाम-दृग्वाण-दृग्-भावो सि चउव्विहो भावो । भावसदो वज्जत्थणिरिवेक्खो  
अप्पाणहि चैव पयडो णामभावो होदि । तस्य उवणभावो सन्भावान्भवभेएण दुविहो ।  
विराग-सरागादिभावे अणुहरंती उवणा सन्भावदृग्वाणभावो । तव्विवरीदो असन्भावदृग्वाण-

अशुद्ध भावोंसे रहित, कर्मक्षयसे प्राप्त हुए हैं चार अनन्तभाव जिनको, ऐसे  
सर्व अर्हंतोंको प्रणाम करके भावालयोगद्वारका प्ररूपण करते हैं ।

भावाणुगमद्वारकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेश-  
निर्देश ॥ १ ॥

नाम, स्थापना, द्रव्य और भावकी अपेक्षा भाव चार प्रकारका है । वाहा अर्थसे  
निरपेक्ष अपने आपमें प्रवृत्त 'भाव' यह शब्द नामभावनिक्षेप है । उन चार निक्षेपोंमेंसे  
स्थापनाभावनिक्षेप, सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारका है । उनमेंसे विरागी  
और सरागी आदि भावोंका अनुकरण करनेवाली स्थापना सद्भावस्थापना भावनिक्षेप  
है । उससे विपरित्त असद्भावस्थापना भावनिक्षेप है । द्रव्यभावनिक्षेप आगम और

चण्डो भात्रो ओदडओ गाम । क्युसमेण ससुबूदो ओवगमिओ गाम । कम्मणं रोण पयड्ढिनीगामो रडओ गाम । कम्मोदए सेते नि जं जीनगुणक्खंडंमुवलंभदि सो तओवमिओ भासो गाम । जो चउहि भवेहि पुब्बुचेहि वडिरिओ जीवजिगओ सो परिणामिओ गाम' ( ५ ) ।

परसु चट्टु मासेसु केण भावेण अहियरो ? पोआरमभानभावेण । तं कथं णवो ? गामाटियेसभोदेहि चोदसजीवसामाणपणपथूदेहि इह पओजणागामा । निब्बि नेस डर गिप्पेमा होंठ, णाम-डुवणाणं विसंभाभावो ? ण, णामे णामवत-द्वज्जारोणियमाभादो, णामस्स द्वजणणियमाभात्ता, इवणाए इव आयराणुग्गहाणम-पांन प्रकारका हे । उनमेंने कम्मोंयजनित भावता नाम ओदयिक हे । कम्मंते उपशमसे ज्यस इए गत्तका नाम ओपशमिक हे । कम्मंते क्षयसे प्रकट हेवेवाला जीवका भाव आयिक हे । कम्मंते उदय तेते गुण भी जो जीवगुणका सड (अस) उपलब्ध रहता हे, एए शायेपरशमिकभार ए । जो पूजक चारों भावोंसे व्यतिरिक्त जीव और अजीवगत भाव हे, तत परिणामित भाव हे ।

अंता—उक्त चार निक्षेपत्य भावोंमेंसे यहा पर किस भावसे अधिकार या प्रयोजन हे ?

समाधान—यहा नोआगमभावसे अधिकार हे ।

अंका—यह केंने जाना जाता हे ?

समाधान—ओएए जीनसमासीके लिए अनात्मभूत नामादि रोप भावनिक्षेपोंसे यहाँ पर कोई प्रयोजन नहीं हे. इसीसे जाना जाता हे कि यहाँ नोआगमभाव भाव-निर्धारण ही प्रयोजन हे ।

अंका—यहाँ पर तीन ही निक्षेप होना चाहिए, क्योंकि, नाम और स्थापनामें कोई विशेषता नहीं हे ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, नामनिक्षेपमें नामवत द्रव्यके अध्यारोपका कोई नियम नहीं हे इसलिय, तथा नामवाली वस्तुकी स्थापना होती ही चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं हे इसलिय, एवं स्थापनाके समान नामनिक्षेपमें आदर और अनुग्रहका भी

१ नीय 'जाण रड-' इति पाठः ।

२ एणुवमिणि उणत्तमाओ गीणमि गहरामाओ ड । उदतो जीवस गुणो सचोवमिओ हवे माओ ॥ एणुवज्जमिणुओ जीवरोओ तथ हीरि माओ ड । नएणिरित्तयमओ क्कामिओ हंदि परिणामो ॥

नी - ८१८५५

३ एणियु 'आणर' इति पाठ ।

भावादो च' । भणिदं च—

अपिदआदरामो अणुग्गभावो य धग्गमाओ ।

ठवणाए कीरते ण हंति णाममि एए ड ॥ १ ॥

णामिणि थसुवयारो णाम डुवणा य जस्स त ठदि ।

तद्धमे ण नि जादो सुणाम-ठवणाणमयिथेस ॥ २ ॥

तन्हा चउडिहो चैव णिक्खेवो चि सिद्धं । तत्थ पंचसु भागेसु केण भावेण इह पओजणं ? पंचहि मि । कुदो ? जीनेसु पंचभावाणुवलंभा । ण च सेसद्वेषेसु पंच भावा अत्थि, पोगलद्वेषेसु ओदइय-परिणामियाणं दोणहं चैव भावाणुवलंभा, धम्म-कालागासद्वेषेसु एवकस्स परिणामियभावसेसुवलंभा । भावो णाम जीवपरिणामो तिब्ब-मंदणिज्जरा नावादिस्त्रेण अणेयपयारो । तत्थ तिब्ब-मंदभावो णाम—

समत्तुपत्तीय वि सावयविदे अणत्तकग्गसे ।

दसणमोहउखए कसायउवसाणए य उवसेते ॥ ३ ॥

खए य खीणमोहे जिणे य णियमा भेमे असखेज्जा ।

तत्थिवरीदो कालो सखेज्जगुणाए सेडीए ॥ ४ ॥

अभाव है, इसलिय दोनों निक्षेपोंमें भेद हे ही । त्हा भी हे—

वियक्षित वस्तुके प्रति आदरभान, अनुग्रहभाव और धर्मभाव स्थापनामें क्रिया जाता हे । किन्तु ये बातें नामनिक्षेपमें नहीं होती हैं ॥ १ ॥

नामप धर्मका उपचार करना नामनिक्षेप हे, ओर जहाँ उस धर्मकी स्थापना की जाती है, वह स्थापनानिक्षेप हे । इस प्रकार धर्मके विषयमें भी नाम ओर स्थापनाकी अविशेषता अर्थात् एकता सिद्ध नहीं होती ॥ २ ॥

इसलिय निक्षेप चार प्रकारका ही हे, यह बात सिद्ध हुई ।

अंका—पूजक पांच भावोंमेंसे यहाँ किस भावसे प्रयोजन हे ?

समाधान—पांचों ही भावोंसे प्रयोजन हे, क्योंकि, जीवोंमें पांचों भाव पाये जाते हैं । किन्तु रोप द्रव्योंमें तो पांच भाव नहीं हैं, क्योंकि, पुद्गल द्रव्योंमें औदयिक ओर परिणामिक, रूच दोनों ही भावोंकी उपलब्धि होती हे, ओर धर्मोस्तिक्रय अवर्मास्ति-काय, आकाश ओर काल द्रव्योंमें केवल एक परिणामिक भाव ही पाया जाता हे ।

अंका—भागनाम जीवके परिणामका हे, जो कि तीन, सद निर्जरभाव आदिके रूपसे अनेक प्रकारका हे । उनमें तीव्र मंदभाव नाम हे—

सम्यग्भवकी उत्पत्तिमें, श्रावकमें, विरतमें, अनन्तानुवन्धी कपायके विमंयोजनमें, दर्शनमोहेके अणममें, कपायोंके उपशामकोंमें, उपशान्तकपायमें, अपकोंमें, क्षीणमोहमें, और जित भगवान्में वियमसे असंख्यातगुणीनिर्जरा होती हे । किन्तु कालका प्रमाण उक्त गुणश्रेणी निर्जरमें संख्यात गुणश्रेणी क्रमसे विपरित अर्थात् उच्चरोत्तर हीन हे ॥३-४॥

१ नामस्थापनयोरेत्त्व, स्वभावमूर्तिशेषोपादिति चैव, आदराग्रहवाकांशित्वास्थापनायाए । त. ग. वा १, ५.

२ गी जी ६६-६७.



एदेसिं सुच्छुद्धिपरिणामाणं परारिसापारिसत्तं तिन्व-मंदभावो गाम । एदेहि चैव परिणामेहि असंखेज्जगुणाए सेडीए कम्मसडणं कम्मसडणजणिदजीवपरिणामो वा गिज्जारा-भावो गाम । तम्हा पंचव जीवभावा इदि णियमो ण जुज्जेदं ? ण एस दोसो, जदि जीवादिदव्वादो तिन्व-मंदादिभावा अभिण्णा होति, तो ण तेसिं पंचभावेसु अंतवभावो, दव्वत्तादो । अह भेदो अवलंबेज्ज, पंचण्हमणदरो होज्ज, एदेहितो पुथभूदछड्डभावाणु-वलंभा । भणिदं च-

ओदइओ उवसमिओ खइओ तह वि य खओवसमिओ य ।  
परिणामिओ दु भावो उदएण दु पोगलण दु ॥ ५ ॥

भावो गाम किं ? दव्वपरिणामो पुन्वावरकोडिवदिरिचवड्डमाणपरिणामुवलक्खिय-दव्वं वा । कस्स भावो ? छण्हं दव्वानं । अथवा ण कस्सइ, परिणामि-परिणामाणं

इत्त सुत्रोद्विष्ट परिणामोंकी प्रकर्षताका नाम तीव्रभाव और अप्रकर्षताका नाम मंदभाव है । इन्हीं परिणामोंके द्वारा असंख्यत गुणश्रेणीरूपसे कर्मोंका झरना, अथवा कर्म-झरेसे उत्पन्न हुए जीवोंके परिणामोंको निर्जराभाव कहते हैं । इसलिये पांच ही जीवोंके भाव हैं, यह नियम युक्तिसंगत नहीं है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यदि जीवादि द्रव्यसे तीव्र, मंद आदि भाव अभिन्न होते हैं, तो उनका पांच भावोंमें अन्तर्भाव नहीं होता है, क्योंकि, वे स्वयं द्रव्य ही होते हैं । अथवा, यदि भेद माना जाय, तो पांचों भावोंमेंसे कोई एक होगा, क्योंकि, इन पांच भावोंसे पृथग्भूत छटा भाव नहीं पाया जाता है । कहा भी है—

औदयिकभाव, औपशमिकभाव, क्षायिकभाव, क्षायोपशमिकभाव और पारि-  
णामिकभाव, ये पांच भाव होते हैं । इनमें पुद्गलोंके उदयसे (औदयिकभाव) होता है ॥५॥  
( अब निर्देश, स्वामित्व आदि प्रसिद्ध छह अयुयोगद्वारासे भावनामक पदार्थका  
निर्णय किया जाता है— )

शंका—भाव नाम किस वस्तुका है ?

समाधान—द्रव्यके परिणामको अथवा पूर्वपर कोटिसे व्यतिरिक्त वर्तमान  
पर्यायसे उपलक्षित द्रव्यको भाव कहते हैं ।

शंका—भाव किसके होता है, अर्थात् भावका स्वामी कौन है ?

समाधान—छहों द्रव्योंके भाव होता है, अर्थात् भावोंके स्वामी छहों द्रव्य हैं ।  
अथवा, किसी भी द्रव्यके भाव नहीं होता है, क्योंकि, पारिणामी और पारिणामके सग्रह-

संग्रहणयादो भेदाभावा । केण भावो ? कम्माणमुदएण खएण खओवसमेण कम्माणमुवसमेण  
सभावदो वा । तत्थ जीवदव्वस्स भावा उचपंचकारणेहितो होति । पोगलदव्वभावा पुण  
कम्मोदएण विस्ससादो वा उप्पज्जंति । सेसाणं चटुण्ह दव्वानं भावा सहावदो उप्पज्जंति ।  
कत्थ भावो ? दव्वमिह चैव, गुणिव्वदिरोगेण गुणाणमसंभवा । केवचिरो भावो ? अणादिओ  
अपज्जवसिदो जहा-अभव्वाणमसिद्धदा, धम्मस्थिअस्स गमणहेदुत्तं, अधम्मस्थिअस्स  
ठिदिहेउत्तं, आगासस्स ओगाहणलक्खणत्तं, कालदव्वस्स परिणामहेदुत्तमिच्चादि । अणा-  
दिओ सपज्जवसिदो जहा- भवस्स असिद्धदा भवत्तं मिच्छत्तमसंजमो इच्चादि । सादिओ  
अपज्जवसिदो जहा- केवलणाणं केवलदंसणमिच्चादि । सादिओ सपज्जवमिदो जहा-  
सम्मत्तंसंजमपच्छायदानं मिच्छत्तांसंजमा इच्चादि । कदिविधो भावो ? ओदइओ उवसमिओ  
खइओ खओवसमिओ पारिणामिओ ति पंचविहो । तत्थ जो सो ओदइओ जीवदव्वभावा  
नयसे कोई भेद नहीं है ।

शंका—भाव किससे होता है, अर्थात् भावका साधन क्या है ?

समाधान—भाव, कर्मोंके उदयसे, क्षयसे, क्षयोपशमसे, कर्मोंके उपशमसे, अथवा  
स्वभावसे होता है । उनमेंसे जीवद्रव्यके भाव उक्त पांचों ही कारणोंसे होते हैं, किन्तु  
पुद्गलद्रव्यके भाव कर्मोंके उदयसे, अथवा स्वभावसे उत्पन्न होते हैं । तथा शेष चार  
द्रव्योंके भाव स्वभावसे ही उत्पन्न होते हैं ।

शंका—भाव कहां पर होता है, अर्थात् भावका अधिकरण क्या है ?

समाधान—भाव द्रव्यमें ही होता है, क्योंकि गुणोंके विना गुणोका रहना  
असम्भव है ।

शंका—भाव कितने काल तक होता है ?

समाधान—भाव अनादि-निधन है । जैसे-अभव्यजीवोंके असिद्धता, धर्मास्ति-  
कायके गमनहेतुता, अधर्मास्तिकायके स्थितिहेतुता, आकाशाद्रव्यके अवगाहनस्वरूपता,  
और कालद्रव्यके परिणमनहेतुता, इत्यादि । अनादि-सान्तभाव, जैसे- भव्यजीवकी  
असिद्धता, भव्यत्व, मिथ्यात्व, असंयम, इत्यादि । सादि-अनन्तभाव जैसे-केवलज्ञान,  
केवलदर्शन, इत्यादि । सादि-सान्त भाव, जैसे-सम्यक्त्व और संयम धारणकर पण्डे  
आए हुए जीवोंके मिथ्यात्व, असंयम इत्यादि ।

शंका—भाव कितने प्रकारका होता है ?

समाधान—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिकके  
भेदसे भाव पांच प्रकारका है । उनमेंसे जो औदयिकभाव नामक जीवद्रव्यका भाव

मो ठाणदो अडुविहो, वियपदो एक्कवीमविहो। किं ठाणं? उप्पचिहेऊ द्वाणं। उतं च-  
गदि-लिंग-रुमाया वि य मिच्छादसणममिद्धदण्णाण ।  
त्तस्सा असत्तो चिप होति उदयत्स द्वाणाइ ॥ ६ ॥

मंगदि एदेसिं वियापो उच्चदे- गई चउव्विहो गिरय-तिरिय-णर-देवगई चेदि ।  
लिंगमिदि तिदिहं र्थी-पुरिस णंत्तुसं चेदि । रुमाओ चउव्विहो कोहो माणो माया लोहो  
चेदि । मिच्छादंसणमेयविहं । असिद्धत्तमेयविहं । किमसिद्धत्तं ? अडुकम्मोदयसामणं ।  
अण्णाणमेयविहं । लेस्या छव्विहा । असंजमो एयविहो । एदे सव्वे वि एक्कवीस वियप्पा  
होति ( २१ ) । पंचजादि-छसंठाण-छसंघडणादियोदइया भावा कथ णिवदंति ? गदीए,  
एदेमिमुदयस्स गदिउदयानिणामाविचादो । ण लिंगादीहि वियहिचारे, तत्थ तहविह-  
मिक्कवाभादो ।

हे, यह स्थानकी अपेक्षा आठ प्रकारका ओर विकल्पकी अपेक्षा इकोस प्रकारका है ।

श्रीका—स्थान क्या वस्तु है ?

समाधान—भावकी उत्पत्तिके कारणको स्थान कहते हैं । कहा भी है—

गति, लिंग, कणय, मिथ्यादर्शन, असिद्धत्व, अज्ञान, लक्ष्या और असंयम, ये  
औदयिक भावके आठ स्थान होते हैं ॥ ६ ॥

अप इन आठ स्थानोंके विकल्प कहते हैं । गति चार प्रकारकी है- नरकगति,  
तिर्यग्गति, मनुष्यगति और देवगति । लिंग तीन प्रकारका है- खल्लिंग, पुरुषलिंग  
और नपुंसकलिंग । कणय चार प्रकारका है- क्रोध, मान, माया और लोभ । मिथ्यादर्शन  
एक प्रकारका है । अस्मिन्त्व एक प्रकारका है ।

श्रीका—असिद्धत्व क्या वस्तु है ?

समाधान—अष्ट कर्मोंके सामान्य उदयको असिद्धत्व कहते हैं ।

अज्ञान एक प्रकारका है । लक्ष्या छह प्रकारका है । असंयम एक प्रकारका है ।  
इस प्रकार ये सत्र मिलकर औदयिकभावके इक्कीस विकल्प होते हैं ( २१ ) ।

श्रीका—पांच जातियां, छह सस्थान, छह संहनन आदि औदयिकभाव कहाँ,  
अर्थात् किस भावमें अन्तर्गत होते हैं ?

समाधान—उक्त जातियों आदिका गतिनामक औदयिकभावमें अन्तर्भाव होता  
है, क्योंकि, इन जाति, संस्थान आदिका उदय गतिनामकर्मके उदयका अविनाभावी है ।  
इस व्ययस्यगमें लिंग, कणय आदि औदयिकभावोंसे भी व्यभिचार नहीं आता है, क्योंकि,  
उन भावोंमें उस प्रकारकी विवक्षाका अभाव है ।

१ गतिछायादिभिप्यारसंभानामयतादिच्छलेसगभुबुत्तयेकेकेकाबसेवा । त ॥ २, ६

उवसमिओ भावो ठाणदो इविहो । वियपदो अडुविहो । भणिदं च-

सम्मत्त चारितं दो चय द्वाणाइसुत्तमे होति ।  
अडुवियप्पा य त्था कोहाईया सुणेदव्वा ॥ ७ ॥

ओवसमियस्स भावस्स सम्मत्तं चारितं चेदि दोणि द्वाणाणि । कुदो ? उवसम-  
सम्मत्तं उवसमचारित्तिदि दोणं चे उवलंभा । उवससम्मत्तमेयविहं । ओवसमियं  
चारितं सत्तविहं । तं जहा - णत्तुसयेदुवसामणद्वाए एयं चारितं, इत्थियेदुवसामणद्वाए  
विदियं, पुरिस-छण्णोक्सायउवसामणद्वाए तदियं, कोहुवसामणद्वाए चउत्थं, माणुव-  
सामणद्वाए पंचमं, माओवसामणद्वाए छंडं, लोहुवसामणद्वाए सत्तममोवसमियं चारितं ।  
भिण्णकज्जलिंगेण कारणभेदसिद्धीदो उवसमियं चारितं सत्तविहं उत्तं । अण्णाहा पुण  
अण्ययपरं, समयं पडि उवसमसेडिंभिह पुध पुध असंखेज्जगुणसेडिणिज्जरणिमित्त-  
परिणामुवलंभा । खइओ भावो ठाणदो पंचविहो । वियप्पादो णवविहो । भणिदं च—

ओपशमिकभावस्थानकी अपेक्षा दो प्रकार और विकल्पकी अपेक्षा आठ  
प्रकारका है । कहा भी है—

ओपशमिकभावमें सम्यक्त्व और चारित्र ये दो ही स्थान होते हैं । तथा ओप-  
शमिकभावके विकल्प आठ होते हैं, जो कि क्रोधादि कर्मायोंके उपशमनरूप जानना  
चाहिए ॥ ७ ॥

ओपशमिकभावके सम्यक्त्व और चारित्र, ये दो ही स्थान होते हैं, क्योंकि,  
ओपशमिकसम्यक्त्व और ओपशमिकचारित्र ये दो ही भाव पाये जाते हैं । इनमेंसे ओप-  
शमिकसम्यक्त्व एक प्रकारका है और ओपशमिकचारित्र सात प्रकारका है । जैसे- नपुं-  
सकवेदके उपशमनकालमें एक चारित्र, खविदेके उपशमनकालमें दूंसरा चारित्र, पुरुष-  
वेद और छह नोकर्मायोंके उपशमनकालमें तीसरा चारित्र, क्रोधसंज्वलनमें उपशमन-  
कालमें चौथा चारित्र, मानसंज्वलनके उपशमनकालमें पांचवां चारित्र, मायासंज्वलनके  
उपशमनकालमें छठा चारित्र और लोभसंज्वलनके उपशमनकालमें सातवां ओपशमिक-  
चारित्र होता है । भिन्न-भिन्न कार्योंके लिंगसे कारणोंमें भी भेदकी सिद्धि होती है, इसलिये  
ओपशमिकचारित्र सात प्रकारका कहा है । अन्यथा, अर्थात् उक्त प्रकारकी विवक्षा न की  
जाय तो, वह अनेक प्रकारका है, क्योंकि, प्रति समय उपशमनश्रेणीमें पृथक् पृथक् असंख्यात-  
गुणश्रेणी निर्जराके निमित्तभूत परिणाम पाये जाते हैं ।

क्षायिकभाव स्थानकी अपेक्षा पांच प्रकारका है, और विकल्पकी अपेक्षा नौ  
प्रकारका है । कहा भी है—

१ सम्यक्चारित्ति । त. प. २, १.

लक्ष्मीओ सम्मत्त चारिच दसण तथा गण ।

ठाणाइ पच खए भावे जिणभासियाइ तु ॥ ८ ॥

लक्ष्मी सम्मत्तं चारिचं गणं दंसणमिदि पंच ठाणाणि । तत्थ लक्ष्मी पंच वियप्पा दाण-लह-भोगुवभोग-वीरियमिदि । सम्मत्तमेयवियर्पं । चारिचमेयवियर्पं । केवलणाण-मेयवियर्पं । केवलदंसणमेयवियर्पं । एवं खइओ भावो णववियर्पो । खओवसमिओ भावो ठाणदो सत्तविहो । वियप्पदो अट्टारसविहो । भणिदं च—

णाणणाण च तथा दसण-लक्ष्मी तहेव सम्मत्त ।

चारिच देसज्जमो सत्तेव य होति ठाणाइ ॥ ९ ॥

णाणसण्णाणं दंसणं लक्ष्मी सम्मत्तं चारिचं संजमांसजमो चेदि सत्त द्वाणाणि । तत्थ गणं चउत्विह मदि-सुद-ओधि-मणपज्जवणणाणमिदि । केवलणाणं किण्ण गहिदं ? ण, तस्स खाइयभावादो । अण्णाणं तिविहं मदि-सुद-विहंगअण्णाणमिदि । दंसणं तिविहं चस्सु-अचक्खु-ओधिदंसणमिदि । केवलदंसणं ग गहिदं । कुदो ? अप्पणो विरोहिकम्मस्स

दानादि लब्धियां, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक दर्शन, तथा क्षायिक ज्ञान, इस प्रकार क्षायिक भावमें जिन-आपित पांच स्थान होते हैं ॥ ८ ॥

लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, ये पांच स्थान क्षायिकभावमें होते हैं । उनमें लब्धि पाच प्रकारकी है— क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उप-भोग, और क्षायिक वीर्य । क्षायिक सम्यक्त्व एक विकल्पात्मक है । क्षायिक चारित्र एक भेदरूप है । केवलज्ञान एक विकल्पात्मक है और केवलदर्शन एक विकल्परूप है । इस प्रकारसे क्षायिक भावके नौ भेद हैं । क्षायोपशमिकभाव स्थानकी अपेक्षा सात प्रकार और विकल्परकी अपेक्षा अठारह प्रकारका है । कहा भी है—

ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र और देशसंयम, ये सात स्थान क्षायोपशमिक भावमें होते हैं ॥ ९ ॥

ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र और संयमासयम, ये सात स्थान क्षायोपशमिकभावके हैं । उनमें मति, श्रुत, अवधि और मन-पर्ययके भेदसे ज्ञान चार प्रकारका है ।

शंका—यहांपर ज्ञानमें केवलज्ञानका ग्रहण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वह क्षायिक भाव है ।

कुमति, कुश्रुत और विभगके भेदसे अज्ञान तीन प्रकारका है । चक्षु, अचक्षु और अवधिके भेदसे दर्शन तीन प्रकारका है । यहांपर दर्शनमें केवलदर्शनका ग्रहण नहीं

१ ज्ञानदर्शनदानलाममोगोपमोणी च । त सू २, ४

खएण समुभवादो । लक्ष्मी पंचविहा दाणादिभएण । सम्मत्तमेयविहं वेदगसम्मत्तत्रदिकेण अण्णसम्मत्तानमणुवलंभा । चारिचमेयविहं, सामाइयछेदेवद्वान्ण-परिहारसुद्धिसंजम-विवक्खाभावा । संजमांसजमो एयमिहो । एवमेदे सब्बे वि वियप्पा अट्टारस होंति' (१८) । पारिणामिओ तिविहो भव्वाभव्व-जीवत्तमिदि' । उचं च—

एय ठाण तिणिण वियप्पा तह पारिणामिए होति ।

भव्वाभव्वा जीवा अत्तवणदो' चव वोद्धव्वा' ॥ १० ॥

एदेसिं पुवुचुचभाववियप्पाणं संगहगाहा—

इणिवीस अह तह णव अट्टारस तिणिण चव वोद्धव्वा ।

ओदइयादी भावा वियप्पदो आपुण्वीए' ॥ ११ ॥

किया गया है, क्योंकि, वह अपने विरोधी कर्मके क्षयसे उत्पन्न होता है । दानादिकके भेदसे लब्धि पांच प्रकारकी है । सम्यक्त्व एक प्रकारका है, क्योंकि, इस भावमें वेदक-सम्यक्त्वको छोड़कर अन्य सम्यक्त्वोंका अभाव है । चारित्र एक विकल्परूप ही है, क्योंकि, यहांपर सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धिसंयमकी विवक्षाका अभाव है । संयमासयम एक भेदरूप है । इस प्रकार मिलकर ये सब विकल्प अठारह होते हैं (१८) । पारिणामिकभाव, भव्य, अभव्य और जीवत्वके भेदसे तीन प्रकारका है । कहा भी है—

पारिणामिकभावमें स्थान एक तथा भव्य, अभव्य और जीवत्वके भेदसे विकल्प तीन प्रकारके होते हैं । ये विकल्प आत्माके असाधारण भाव होनेसे ग्रहण किये गये जानना चाहिए ॥ १० ॥

इन पूर्वोक्त भावोंके विकल्पोको बतलानेवाली यह संग्रह-गाथा है—

औदयिक आदि भाव विकल्पोकी अपेक्षा आनुपूर्वसे इक्कीस, आठ, नौ, अट्टारह और तीन भेदवाले हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥ ११ ॥

१ ज्ञानज्ञानदर्शनल-धयश्रुतुत्रियिपवमेदा-सम्यक्त्वचारित्रिसप्रमासयमात्र । त सू २, ५

२ जीवभव्यभावव्यध्वानि च । त सू २, ७

३ अ रूपयो 'अट्टवणदो' आपत्तो 'अट्टवणदो' मप्रतो 'अथवणदो' सप्रतो 'अथवणदो' इति पाठ ।

४ अमाधारणा जीवस्य भावा पारिणामिकालय एव । स लि २, ७ अन्यद्वयासाधारणाहय-पारिणामिना । × × × अस्तित्वादयोऽपि पारिणामिका, भावा सन्ति × × सूते तेषां ग्रहण कस्मात् कृत ?

अन्यद्वयसाधारणत्वाद्भूतिता । त रा वा २, ७

५ द्विनवादादस्यैकत्रियिभेदा यथाक्रमम् । त सू २, २

अथवा सण्णिसादियं पञ्च छत्तीसभंग' । सण्णिवादिएत्ति का सण्णा ? एकस्मिं  
शुणद्वयेण त्रीयमसिं वा वदथो भावा जस्मिं सण्णिवदंति तेसिं भावणं सण्णिवादिएत्ति  
सण्णा । एण-दु-ति-च-दु-पंचमंजोयेण भंगा परुवित्जंति । एणसंजोयेण जथा- ओदइओ  
ओदइओ ति ' मिच्छादिद्वी अमंजदो य' । दंयणमोहणीयस्म उदएण मिच्छादिद्वि ति  
भामो, अमंजदो ति मंजमत्रादीणं कम्ममाणपुदएण । एदएण कमेण मन्वे नियप्पा परुवेदव्वा ।  
एत्थ युत्तगाहा-

एत्तोत्तणपदद्वेदो रूपावेणीवित्त च पदद्वेदो ।

गच्छः सपानफल समाहृत. सकिपातफलं ॥ १२ ॥

एदस्स भावस्स अणुगमो भावाणुगमो । तेण दुयिहो णिहेसो, ओधेण संगहिदो,  
जादेयेण अमंगहिदो ति णिहेसो दुयिहो होदि, तदियस्स णिहेसस्स संभवाभावा ।

अथवा. सान्निपातिकी अपेक्षा भावोंके छत्तीस भंग होते हैं ।

शंका--सान्निपातिक यह कौनसी संज्ञा है ?

समाधान--एक ही गुणस्थान या जीवसमासमें जो बहुतसे भाव आकर एकधित  
होते हैं, उन भावोंकी सान्निपातिक ऐसी संज्ञा है ।

अब उक्त भावोंके एक, दो, तीन, चार और पांच भावोंके संयोगसे होनेवाले  
भंग कहे जाते हैं । उनमेंसे एकसंयोगी भंग इस प्रकार है-- ओदयिक-ओदयिकभाव,  
जैन-यह जीव मिथ्यादृष्टि और असंयत है । दर्शनमोहनीयकर्मके उदयसे मिथ्यादृष्टि  
यह भाव उत्पन्न होता है । समयभारती कर्मोंके उदयसे ' असंयत' यह भाव उत्पन्न होता  
है । इसी क्रमसे सभी विकल्पोंकी प्ररूपणा करना चाहिए । इस विषयमें सूत्र गाथा है--

एक एक उत्तर पदमे गढ़ते हुए गच्छको रूप ( एक ) आदि पदप्रमाण बढ़ाई  
इस शशिनो भाजिन करे, और परस्पर गुणा करे, तब सम्पातफल अर्थात् एक-  
संयोगी, छिन्नयोगी आदि भंगोत्ता प्रमाण आता है । तथा इन एक, दो, तीन आदि  
भंगोंको जोत्ते पर सान्निपातफल अर्थात् सान्निपातिकभंग प्राप्त हो जाते हैं ॥ १२ ॥

( इस सरणगाथाका विशेष अर्थ और भंग निकालनेका प्रकार समझनेके लिए  
देवों भाग ५, गुण १३३ का विशेषार्थ । )

इस उक्त प्रकारके भावके अणुगमको भावाणुगम कहते हैं । उसकी अपेक्षा निर्देश  
को प्रकारका होता है । अथमे संगृहीत और आदेशसे असंगृहीत, इस प्रकार निर्देश  
को प्रकारका होता है, क्योंकि, तीसरे निर्देशका होना संभव नहीं है ।

१ जगतीकः गाणिपतिस्मान् भक्तिमिथ दयचोच्यते-गुणानिविध पशुनिशदिध एकत्वानिशदिध

इत्येवमादिपमे उच १ त त म २, ७

२ इयं गैरेत न्पुणमादिदे स्तेण इदे । लद सिच्छवळे देसे सजोगुणपारा ॥ गो क ७९९

ओधेण मिच्छादिद्वि ति को भावो, ओदइओ भावो' ॥ २ ॥

' जहा उदेसो तहा णिहेसो ' ति जाणावणइमोयेणेत्ति भणिदं । अत्थाहिहाण-  
पच्चया तुल्लणामयेया इदि णयादो इदि-करणपरो' मिच्छादिद्विसदो मिच्छत्तभानं भणदि ।  
पंचसु भावेषु एसो को भावो ति पुच्छेदे ओदइओ भावो ति तित्थयस्सयणादो दिव-  
ज्जुणी विणिग्गया । को भावो, पंचसु भावेषु कदमो भावो ति भणिदं होदि । उदये  
भवो ओदइओ, मिच्छत्तकम्मस्स उदएण उप्पणामिच्छत्तपरिणामो कम्मोदयजणिदो सि  
ओदइओ । णण मिच्छादिद्विस्स अण्णे वि भावा अत्थि, णाण-दंसण-नदि-लिग-कसाय-  
भव्वाभव्वादिभावाभावे जीवस्स संसारिणो अभावप्पसंगा । भणिदं च-

मिच्छत्ते दस भगा आसादण-मिस्सए वि बोद्धव्वा ।

तिगुणा ते चट्ठहणा अविरदसग्गस्स एमेव ॥ १३ ॥

देसे खओवसमिए विदे खवगाण ऊणवीसं तु ।

ओसामगेषु पुध पुध पणतीस भावदो भगा ॥ १४ ॥

ओघनिर्देशकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि यह कौनसा भाव है ? औदयिक भाव  
है ॥ २ ॥

' जेसा उद्वेग होता है उसी प्रकार निर्देश होता है ' इस न्यायके शापनार्थ सूत्रमें  
' ओघ ' ऐसा पद कहा । अर्थ, अभिधान ( शब्द ) और प्रत्यय ( ज्ञान ) तुल्य नामवाले  
होते हैं, इस न्यायसे ' इति ' करणपरक अर्थात् जिसके पश्चात् हेतुवाचक इति शब्द  
आया है, ऐसा ' मिथ्यादृष्टि ' यह शब्द मिथ्यात्वके भावको कहता है । पांचों भावोंमेंसे  
यह कौन भाव है ? ऐसा पूछनेपर यह औदयिक भाव है, इस प्रकार तीर्थकरके मुखसे  
दिव्यध्वनि निकली है । यह कौन भाव है, अर्थात् पांचों भावोंमेंसे यह कौनसा भाव है,  
यह तात्पर्य होता है । उदयसे जो हो, उसे औदयिक कहते हैं । मिथ्यात्वकर्मके उदयसे  
उत्पन्न होनेवाला मिथ्यात्वपरिणाम कर्मोदयजनित है, अतएव औदयिक है ।

शंका--मिथ्यादृष्टिके अन्य भी भाव होते हैं, उन ज्ञान, दर्शन, गति, लिंग,  
कपाय, भव्यत्व, अभव्यत्व आदि भावोंके अभाव माननेपर संसारी जीवके अभावका  
प्रसंग प्राप्त होता है । कहा भी है--

मिथ्यात्वगुणस्थानमें उक्त भावोंसम्बन्धी दश भंग होते हैं । सामान्य और मिश्र-  
गुणस्थानमें भी इसी प्रकार दश दश भंग जानना चाहिए । अविरतसम्यग्दृष्टि गुण-  
स्थानमें ये ही भंग विगुणित और चतुर्हीन अर्थात् ( १० x ३ - ४ = २६ ) छब्बीस होते  
हैं । इसी प्रकार ये छब्बीस भंग क्षायोपशमिक देशविरत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत  
गुणस्थानमें भी होते हैं । क्षयक्रेणीवाले चारों क्षयकोंके उच्चैस उच्चैस भंग होते हैं ।

' सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टित्थिदयित्तो माण । स. सि १, ८ मिच्छे खलु ओदइओ । गो. जी. १२.

२ प्रतिपु ' इदिकरणपरो ' इति पाठ ।

उपशमथेणीवाले चारो उपशमकामे पृथक् पृथक् पैतीस भंग भावकी अपेक्षा होते हैं ॥ १३-१४ ॥

विशेषार्थ—ऊपर बतलाये गये भंगोंका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—औदयिकादि पाँचों मूल भावोंसे मिथ्यात्वगुणस्थानमे औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक, ये तीन भाव होते हैं। अतः असंयोगी या प्रत्येकसंयोगकी अपेक्षा ये तीन भंग हुए। इनके द्विसंयोगी भंग भी तीन ही होते हैं— औदयिक क्षायोपशमिक, औदयिक-पारिणामिक और क्षायोपशमिक-पारिणामिक। तीनों भावोंका संयोगरूप त्रिसंयोगी भंग एक ही होता है। इन सात भगोके सिवाय स्वसंयोगी तीन भंग और होते हैं। जैसे— औदयिक-औदयिक, क्षायोपशमिक-क्षायोपशमिक और पारिणामिक-पारिणामिक। इस प्रकार ये सब मिलाकर (३ + ३ + १ + ३ = १०) मिथ्यात्वगुणस्थानमें दश भंग होते हैं। ये ही दश भंग सासादन और मिथ्य गुणस्थानमें भी जानना चाहिए। अद्वितीयस्यगृष्टि गुणस्थानमें पाँचों मूलभाव होते हैं, इसलिये यहाँ प्रत्येकसंयोगी पाँच भंग होते हैं। पाँचों भावोंके द्विसंयोगी भंग दश होते हैं। किन्तु उनमेंसे इस गुणस्थानमें औपशमिक और क्षायिकभावना संयोगी भंग सम्भव नहीं, क्योंकि, वह उपशमथेणीमें ही सम्भव है। अतः दशमेंसे एक घटा देने पर द्विसंयोगी भंग नौ ही पाये जाते हैं। पाँचों भावोंके त्रिसंयोगी भंग दश होते हैं। किन्तु उनमेंसे यहापर क्षायिक-औपशमिक-औदयिक, क्षायिक-औपशमिक-पारिणामिक और क्षायिक औपशमिक-क्षायोपशमिक, ये तीन भंग सम्भव नहीं हैं, अतएव शेष सात ही भंग होते हैं। पाचो भावोंके चतुःसंयोगी पाँच भंग होते हैं। उनमेंसे यहापर औदयिक-क्षायोपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक, तथा औदयिक-क्षायोपशमिक-औपशमिक-पारिणामिक, ये दो ही भंग सम्भव हैं, शेष तीन नहीं। इसका कारण यह है कि यहापर क्षायिक और औपशमिकभाव साथ साथ नहीं पाये जाते हैं। इसी कारण पंचसंयोगी भंगका भी यहा अभाव है। इनके अतिरिक्त स्वसंयोगी भंगोंमेंसे क्षायोपशमिक-क्षायोपशमिक, औदयिक-औदयिक और पारिणामिक-पारिणामिक, ये तीन भंग और भी होते हैं। औपशमिक और क्षायिकके स्वसंयोगी भंग यहाँ सम्भव नहीं है। इस प्रकार प्रत्येकसंयोगी पाँच, द्विसंयोगी नौ, त्रिसंयोगी सात, चतुःसंयोगी दो और स्वसंयोगी तीन, ये सब मिलाकर (५ + २ + ७ + २ + ३ = २६) असयतस्यगृष्टि गुणस्थानमें छब्बीस भंग होते हैं। ये ही छब्बीस भंग देशविरत, प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत गुणस्थानमें भी होते हैं। क्षपकथेणीसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंमें औपशमिक-भावके विना शेष चार भाव ही होते हैं। अतएव उनके प्रत्येकसंयोगी भंग चार, द्विसंयोगी भंग छह, त्रिसंयोगी भंग चार और चतुःसंयोगी भंग एक होता है। तथा चारों भावोंके स्वसंयोगी चार भंग और भी होते हैं। इस प्रकार सब मिलाकर (४ + ६ + ४ + १ + ४ = १९) उन्नीस भंग क्षपकथेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें होते हैं। उपशमथेणीसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंमें पाचों ही मूल भाव सम्भव हैं, क्योंकि, यहापर क्षायिकस्यक्त्वके साथ औपशमिकचरित्र भी पाया जाता है। अतएव पाँचों भावोंके प्रत्येकसंयोगी पाँच भंग, द्विसंयोगी दश भंग, त्रिसंयोगी दश भंग, चतुःसंयोगी पाच

तदो मिच्छादिद्विस्स ओदइओ चव भावो अत्थि, अण्णे भावा गत्थि ति णेदं वडदे ? ण एस दोसो, मिच्छादिद्विस्स अण्णे भावा गत्थि ति सुत्ते पडिसेहाभावा । किंतु मिच्छत्तं मोत्तूण जे अण्णे गदि-लिंणादओ साधारणभावा ते मिच्छादिद्विस्स कारणं ण होति । मिच्छत्तोदओ एकओ चव मिच्छत्तस्स कारणं, तेण मिच्छादिद्वि ति भावो ओदइओ ति परूविदो ।

### सासणसम्मादिद्वि ति को भावो, पारिणामिओ भावो ॥ ३ ॥

एत्थ चोदओ भणदि— भावो पारिणामिओ ति णेदं वडदे, अण्णेहिंतो अणु-पण्णस्स पारिणामस्स अत्थिचविरोहा । अह अण्णेहिंतो उप्पत्ती इच्छिज्जदि, ण सो पारिणामिओ, णिककारणस्स सकारणत्तविरोहा इदि । परिहारो उच्चदे । तं जहा— जो कम्मणपुदय-उत्तसम-सइय-खओवसेहि विणा अण्णेहिंतो उप्पणो पारिणामो सो पारि-णामिओ भणदि, ण णिककारणो कारणमंतरेणुप्पणपारिणामाभावा । सत्त-पमेयत्तादओ भंग होते हं और पंचसंयोगी एक भंग होता है। तथा स्वसंयोगी भंग चार ही होते हैं, क्योंकि यहापर क्षायिकस्यक्त्वके साथ क्षायिकभावका अन्य भेद सम्भव नहीं है। इस प्रकार सब मिलाकर (५ + १० + १० + ५ + १ + ४ = ३५) पैतीस भंग उपशमथेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें होते हैं।

इसलिये मिथ्यादृष्टि जीवके केवल एक औदयिक भाव ही होता है, और अन्य भाव नहीं होते हैं, यह कथन घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, 'मिथ्यादृष्टिके औदयिक भावके अतिरिक्त अन्य भाव नहीं होते हैं, इस प्रकारका सूत्रमे प्रतिषेध नहीं किया गया है। किन्तु मिथ्यात्वको छोड़कर जो अन्य गति, लिंग आदिक साधारण भाव हैं, वे मिथ्या-दृष्टित्वके कारण नहीं होते हैं। एक मिथ्यात्वका उदय ही मिथ्यादृष्टित्वका कारण है, इसलिये 'मिथ्यादृष्टि' यह भाव औदयिक कहा गया है।

सासादनस्यगृष्टि यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ३ ॥

शंका—यहाँ पर शंकाकार कहता है कि 'भाव पारिणामिक है' यह बात घटित नहीं होती है, क्योंकि, दूसरोसे नहीं उत्पन्न होनेवाले पारिणामिके अस्तित्वका विरोध है। यदि अन्यसे उत्पत्ति मानी जावे तो पारिणामिक नहीं रह सकता है, क्योंकि, निष्कारण वस्तुके सकारणत्वका विरोध है ?

समाधान—उक्त शंकाका परिहार कहते हैं। वह इस प्रकार है— जो कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपमके विना अन्य कारणोंसे उत्पन्न हुआ पारिणाम है, वह पारिणामिक कहा जाता है। न कि निष्कारण भावको पारिणामिक कहते हैं, क्योंकि, निष्कारण वस्तुके सकारणत्वका विरोध है ?

१ सासादनस्यगृष्टिति पारिणामिको भाव । स ति १, ८ विदिये ण पारिणामिओ भावो । नो जी. ११

माता निष्कारणा उपलब्धतीति चे न, विशेषतश्चादिसत्त्वेण अपरिणमन्तश्चादिसामणानु-  
कूलभा । सामण्यम्यादिति चे न, यस्मत्तन्चारित्तुभयविरोहिअणंताणुबंधिचउक्कस्सुदय-  
मतेण न होति ति ओदइयमिदि किणोच्छिज्जदि ? सच्चमेयं, किं न तथा अप्पणा  
अस्सि, अदिसनदुणुणद्वानभासपुण्णाए ढंसणमोहवदिरित्तसेसकम्मसेसु विवक्खाभावा ।  
ततो अदिदस्स ढंसणमोहणीयस्स कम्मस्स उदण्ण उवममेण सएण खओवसमेण वा न  
होति ति निष्कारणं सामणसम्मत्तं, अदो चेव पारिणामियत्तं पि । अपेण गाएण सब्ब-  
सामाणं पारिणामियत्तं पमज्जदीदि चे होदु, न कोह दोमो, विरोहाभावा । अण्णभावेसु  
पारिणामियत्तहोरो किण कौरदे ? न, सासणसम्मत्तं मोच्छुण अप्पिदकम्मदो शुष्पणस्स  
अण्णस्स भास्स अनुलंभा ।

कारणं विना उत्पन्न होनेवाले परिणामका अभाव है ।

शंका—मत्त, प्रमेयत्व आदिक भाव कारणके विना भी उत्पन्न होनेवाले पाये  
जाने हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, विशेष सत्त्व आदिके स्वरूपसे नहीं परिणत होने  
वाले सत्त्वदि सामान्य नहीं पाये जाते हैं ।

शंका—सासादनसम्यग्दृष्टिपना भी सम्यक्त्व ओर चारित्र्य, इन दोनोंके विरोधी  
गन्तानुगन्धी चतुर्णके उदयके विना नहीं होता है, इसलिये इसे ओदयिक क्यों नहीं  
मानते हैं ?

समाधान—यह कहना सत्य है, किन्तु उस प्रकारकी यहाँ विवक्षा नहीं है,  
क्योंकि, आदिक चार गुणस्थानोत्सवन्धी भावोंकी प्ररूपणमें दर्शनमोहनीय कर्मके  
सिन्हाय दोष कर्मोंके उदयकी विवक्षाना अभाव है । इसलिये विवक्षित दर्शनमोहनीयकर्मके  
उदयमें, उपशमने, क्षयमें अथवा क्षयोपशमसे नहीं होता है, अतः यह सासादन-  
सम्यक्त्व निष्कारण है ओर इसीलिये इसके पारिणामिकपना भी है ।

शंका—इस न्यायके अनुसार तो सभी भावोंके पारिणामिकपनेका प्रसंग प्राप्त  
होता है ?

समाधान—यदि उक्त न्यायके अनुसार सभी भावोंके पारिणामिकपनेका प्रसंग  
आता है, तो अने दो, कोई दोष नहीं है, क्योंकि, इसमें कोई विरोध नहीं आता ।

शंका—यदि ऐसा है, तो फिर अन्य भावोंमें पारिणामिकपनेका व्यवहार क्यों  
नहीं किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सासादनसम्यक्त्वको छोड़कर विवक्षित कर्मसे नहीं  
उत्पन्न होनेवाला अन्य कोई भाव नहीं पाया जाता ।

१ एते भावा निपना दसमोहं पडन्न मणिना इ । चरिण पत्थि जदो भविरदत्तेह गणेष ॥ गो जी. १२.

**सम्मामिच्छादिद्वि ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥ ४ ॥**

पडिचंधिक्कमोदए संते वि जो उवलब्भइ जीवयुणावयवो सो खओवसमिओ  
उच्चइ । कुदो ? सवधादणसचीए अभात्रो खओ उच्चदि । खओ चेव उवसमो खओव-  
समो, तम्हि जादो भात्रो खओवसमिओ । न च सम्मामिच्छुदए संते सम्मत्तस कणिया  
वि उव्वरदि, सम्मामिच्छत्तस सवधादित्तणहाणुववचीदो । तदो सम्मामिच्छत्तं खओव-  
समियमिदि न घडदे ? एत्थ परिहारो उच्चदे—सम्मामिच्छत्तुदए संते सदहणासदहण-  
पणो कंचिओ जीवपरिणामो उप्पज्जइ । तत्थ जो सदहणसो सो सम्मत्तानयवो । ते  
सम्मामिच्छत्तुदओ न विणासेदि ति सम्मामिच्छत्तं खओवसमियं । असदहणभागेण विणा  
सदहणभागस्सेव सम्मामिच्छत्तवएसो गत्थि ति न सम्मामिच्छत्तं खओवसमियमिदि चे  
एवंविहविवक्खाए सम्मामिच्छत्तं खओवसमियं मा होदु, किंतु अवयवयवनिराकरणानिरा-  
करणं पडुच्च खओवसमियं सम्मामिच्छत्तदव्वकम्मं पि सवधादी चेव होदु, जंचंतरस्स

सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षयोपशमिक भाव है ॥ ४ ॥

शंका—प्रतिबंधी कर्मके उदय होनेपर भी जो जीवके गुणका अवयव ( अंश )  
पाया जाता है, वह गुणांश क्षयोपशमिक कहलाता है, क्योंकि, गुणोंके सम्पूर्णरूपसे  
घातनेकी शक्तिका अभाव क्षय कहलाता है । क्षयरूप ही जो उपशम होता है, वह क्षयो-  
पशम कहलाता है । उस क्षयोपशममें उत्पन्न होनेवाला भाव क्षयोपशमिक कहलाता  
है । किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय रहते हुए सम्यक्त्वकी कणिका भी अवशिष्ट नहीं  
रहती है, अन्यथा, सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके सर्वघातीपता बन नहीं सकता है । इसलिये  
सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षयोपशमिक है, यह कहना घटित नहीं होता ?

समाधान—यहां उक्त शंकाका परिहार करते हैं—सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय  
होने पर श्रद्धान्नात्मक करंचित अर्थात् शबलित या मिश्रित जीवपरिणाम उत्पन्न  
होता है, उसमें जो श्रद्धानाश है, वह सम्यक्त्वका अवयव है । उसे सम्यग्मिथ्यात्व  
कर्मका उदय नहीं नष्ट करता है, इसलिये सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षयोपशमिक है ।

शंका—अश्रद्धान भागके विना केवल श्रद्धान भागके ही 'सम्यग्मिथ्यात्व' यह  
संज्ञा नहीं है, इसलिये सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षयोपशमिक नहीं है ?

समाधान—उक्त प्रकारकी विवक्षा होने पर सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षयोपशमिक  
भले ही न होवे, किन्तु अवयवके निराकरण और अवयवके अनिराकरणकी अपेक्षा वह  
क्षयोपशमिक है । अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्वके उदय रहते हुए अवयवीरूप शूद्र आत्माका  
तो निराकरण रहता है, किन्तु अवयवरूप सम्यक्त्वगुणका अंश प्रगट रहता है । इस  
प्रकार क्षयोपशमिक भी वह सम्यग्मिथ्यात्व द्रव्यकर्म सर्वघाती ही होवे, क्योंकि,

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टिति क्षायोपशमिको भाव । घ. सि. १, ८ मित्से खओवसमिओ । गो जी. १२.

२ प्रतियु ' व ओवमपिय ' इति पाठ ।

सम्प्रापिच्छत्सम्भवाभावो । किन्तु सहद्वयभागो असहद्वयभागो ण होदि, सहद्वयभागो असहद्वयभागो कम्मोदयजणिओ, तत्थ विवरीयचाभावो । ण य तत्थ सम्प्रापिच्छत्तववएसभावो, सधुदाएसु पयद्वयणं तदेगसे वि पउत्तिदंसणादो । तदो सिद्धं सम्प्रापिच्छत्तं खओवसमियमिदि । पिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेन संतोवसेण सम्भत्तस्स देसधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेन संतोवसेण अणुदओवसेण वा सम्प्रापिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदएण सम्प्रापिच्छत्तभावो होदि त्ति सम्प्रापिच्छत्तस्स खओवसमियत्तं केइं परूदयत्ति, तण्णा घडदे, पिच्छत्तभावस्स वि खओवसमियत्तपसंगा । छुदो ? सम्प्रापिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेन संतोवसेण सम्भत्तदेसधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेन संतोवसेण अणुदओवसेण वा पिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदएण पिच्छत्तभावुप्पचीए उवलंभा ।

**असंजदसम्माइट्टि ति को भावो, उवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो' ॥ ५ ॥**

जात्यन्तरधृत सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके सम्यक्त्वताका अभाव है । किन्तु श्रद्धानभाग अश्रद्धानभाग नहीं हो जाता है, क्योंकि, श्रद्धान और अश्रद्धानके एकताका विरोध है । और श्रद्धानभाग कर्मोदयजनित भी नहीं है, क्योंकि, इसमें विपरीतताका अभाव है । और न उनमें सम्यग्मिथ्यात्व संज्ञाका ही अभाव है, क्योंकि, समुदायोंमें प्रवृत्त हुए शब्दोंकी उनके एक देशोंमें भी प्रवृत्ति देखी जाती है । इसलिए यह सिद्ध हुआ कि सम्यग्मिथ्यात्व क्षायोपशमिक भाव है ।

कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, अथवा अनुदयरूप उपशमसे और सम्यग्मिथ्यात्व कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे सम्यग्मिथ्यात्वभाव होता है, इसलिए सम्यग्मिथ्यात्वके क्षायोपशमिकता सिद्ध होती है । किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, ऐसा मानने पर तो मिथ्यात्वभावके भी क्षायोपशमिकताका प्रसंग प्राप्त होगा, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे और सम्यक्त्वदेशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, अथवा अनुदयरूप उपशमसे, तथा मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे मिथ्यात्वभावकी उत्पत्ति पार्ई जाती है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है, क्षायिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ ५ ॥

१ असंयतसम्यग्दृष्टिति औपशमिको वा क्षायिको वा क्षायोपशमिको वा भाव । स ति १, ८. भविरदसम्महि तिण्णव ॥ गो जी १२

तं जहा- पिच्छत्त-सम्प्रापिच्छत्तववएसवधादिफहयाणं सम्भत्तदेसधादिफहयाणं च उवससेण उदयाभावक्खएणेण उवसमसम्भत्तमुप्पज्जदि त्ति तमोवसमियं । एदेसिं चेव खएण उप्पण्णो खइओ भावो । सम्भत्तस्स देसधादिफहयाणमुदएण सह वड्डमाणो सम्भत्तपरिणामो खओवसमिओ । पिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसेण सम्प्रापिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसेण अणुदओवससेण वा सम्भत्तस्स देसधादिफहयाणमुदएण खओवसमिओ भावो त्ति केइं भणत्ति, तण्णा घडदे, अइत्तिदेसप्यसंगादो । कथं पुण घडदे ? जहद्वियसहद्वयधायणसची सम्भत्तफहयसु खीणा त्ति तेसिं खइयसण्णा । खयाणमुदयसमो पसण्णादां खओवसमो । तत्थुप्पण्णादादो खओवसमियं वेदगसम्मत्तमिदि घडदे । एतं सम्भत्तं तिण्णि भावा, अण्णे णत्थि । गदिलिगादओ भावा तत्थुवलंभंत इदि चे होदु णाम तेसिमत्थित्तं, किन्तु ण तेहिंतो सम्भत्तमुप्पज्जदि । तदो सम्माइट्टी वि ओइयादिवएसं ण लहदि त्ति धेत्तव्वं ।

जैसे- मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयाभावरूप लक्षणवाले उपशमसे उपशमसम्यक्त्व उत्पन्न होता है, इसलिए 'असंयतसम्यग्दृष्टि' यह भाव औपशमिक है । इन्हीं तीनों प्रकृतियोंके क्षयसे उत्पन्न होनेवाले भावको क्षायिक कहते हैं । सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयके साथ रहनेवाला सम्यक्त्वपरिणाम क्षायोपशमिक कहलाता है । मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावरूप क्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, तथा उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदयोपशमनसे, और सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे क्षायोपशमिक भाव कितने ही आचार्य कहते हैं, किन्तु यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, वैसा मानने पर अतिव्याप्ति दोषका प्रसंग आता है ।

शंका—तो फिर क्षायोपशमिकभाव कैसे घटित होता है ?

समाधान—यथास्थित अर्थके श्रद्धानको घात करनेवाली शक्ति जब सम्यक्त्वप्रकृतिके स्पर्धकोंमें क्षीण हो जाती है, तब उनकी क्षायिकसंज्ञा है । क्षीण हुए स्पर्धकोंके उपशमको अर्थात् प्रसन्नताको क्षयोपशम कहते हैं । उसमें उत्पन्न होनेसे वेदकसम्यक्त्व क्षायोपशमिक है, यह कथन घटित हो जाता है । इस प्रकार सम्यक्त्वमें तीन भाव होते हैं, अन्य भाव नहीं होते हैं ।

शंका—असंयतसम्यग्दृष्टिमें गति, लिंग आदि भाव पाये जाते हैं, फिर उनका ग्रहण यहाँ क्यों नहीं किया ?

समाधान—असंयतसम्यग्दृष्टिमें भले ही गति, लिंग आदि भावोंका अस्तित्व रहा अर्थात् उनसे सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता है, इसलिए सम्यग्दृष्टि भी औदयिक आदि भावोंके व्यपदेशको नहीं प्राप्त होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

१ प्रतिपु 'पसण्णदो' इति पाठः ।

## ओदङ्गाण भावेण पुणो असंजदो ॥ ६ ॥

मम्माट्टिणीए तिणिण भावे भणिज्जा अमंजदत्तस्स कदमो भावो हेदि ति जाणा-  
णट्टमेदं मुत्तमागदं । मंजमवादीणं कम्मणाणमुदएण जेणिसो असंजदो तेण असंजदो ति  
ओदङ्गओ भावो । हेट्टिल्लणं गुणट्टाणणमोदइयममंजदत्तं क्रिण्ण परूविदं ? ण एस दोसो,  
पट्टेणो तेणिमोदइयमंजदमात्रोपलदीदो । जेणदमंतदीपयं सुचं तेणंते ठाइएण अइकंत-  
मव्यमुत्तानमवयामहं पडिवज्जदि, तत्थ अप्पो अत्थितं वा पयासेदि, तेण अदीद-  
गुणट्टाणणं मव्येमिमोदइओ असंजमभावो अत्थि ति सिद्धं । एदमादीए अभणिण्य एत्थ  
मणत्तस्स तो अभिप्पाओ ? उच्चदे- असंजमभावस्स पज्जवसाणपरूवणहुवुरिसाणम-  
मंजमयापडिसेहट्टं चेत्थेदं उच्चदे ।

संजदासंजदःपमत-अपमतसंजदा ति को भावो, खओवसमिओ  
भावो ॥ ७ ॥

किन्तु असंयतसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिकभावसे है ॥ ६ ॥

सम्यग्दृष्टिके तीनों भाव कहकर असंयतके उसके असंयतत्वकी अपेक्षा  
कौनसा भाग होता है, इस बातके वतलानेके लिए यह सूत्र आया है । चूंकि संयमके  
बात फलेशाने कर्मोंके उदयसे यह असंयतरूप होता है, इसलिए 'असंयत' यह  
श्रीस्यिक्रमात्र है ।

शंका—अथस्तन गुणस्थानोंके असंयतपनेको ओदयिक क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोग नहीं, क्योंकि, इसी ही सूत्रसे उन अधस्तन गुण-  
स्थानोंके ओदयिक असंयतभावकी उपलब्धि होती है । चूंकि यह सूत्र अन्तदीपक है,  
इसलिए असंयतभावको अन्तमें रख देनेसे वह पूर्वोंके सभी सूत्रोंका अंग बन जाता है ।  
अथवा, अतित सर्व सूत्रोंमें अपने अस्तित्वको प्रकाशित करता है, इसलिए सभी अतीत  
गुणस्थानोंका असंयमभाव ओदयिक होता है, यह बात सिद्ध हुई ।

शंका—यह 'असंयत' पद आदिमें न कहकर यहापर कहनेका न्या अभिप्राय है ?  
समाधान—यहां तकके गुणस्थानोंके असंयमभावकी अन्तिम सीमा वतानेके  
लिए और ऊपरके गुणस्थानोंके असंयमभावके प्रतिषेध करनेके लिए यह असंयत पद  
यहांपर कहा है ।

संयतानंयत, प्रमतसंयत और अप्रमतसंयत, यह कौनसा भाव है ? शायोप-  
शुभिक भाव है ॥ ७ ॥

१ शायोप- पुनोत्तमिनेन भावेन । स. नि. १, ८.

२ शयोजाततः प्रमत्तमत्तोऽथनसंयत इति च शायोपशुभिको भाव । स. नि. १, ८. देसनिदे  
पमवे एदो य गजोपमिणामो ३ । सो सुउ चरित्तनोह पइव मणिण वहा व्वरि । गो. जी १२.

तं जहा- चारित्तमोहणीयकम्मोदए खओवसमसण्णिदे संते जदो संजदासंजद-  
पमतसंजद-अपमतसंजदत्तं च उपपज्जदि, तेणेदे तिणिण वि भावा खओवसमिया ।  
पच्चक्खाणावरण-चटुसंजलण-णवणोक्सायाणमुदयस्स सवग्गप्पा चारित्तविणासाणसत्तीए  
अभावो तस्स खयसण्णा । तेसिं चैव उपपण्णचारित्तं सेडिं वावारंतस्स उवसमसण्णा ।  
तेहि दोहितो उपपणा एदे तिणिण वि भावा खओवसमिया जादा । एनं संते पच्चक्खाणा-  
वरणस्स सवग्गवादिचं फिट्ठिदि ति उत्ते ण फिट्ठिदि, पच्चक्खाणं सव्वं वादायदि  
त्ति तं सवग्गवादी उच्चदि । सव्वमपच्चक्खाणं ण वादेदि, तस्स तत्थ वावारा-  
भावा । तेण तपरिणदस्स सवग्गवादिसण्णा । जस्सोदए संते जघुपपज्जमाणगु-  
वल्लभदि ण तं पडि तं सवग्गवाइवएसं लहइ, अहपसंगादो । अपच्चक्खाणा-  
वरणचउक्कस्स सवग्गवादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चैव संतोवसेण चटुसंज-  
लण-णवणोक्सायाणं सवग्गवादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चैव सतोवसेमेण देस-  
वादिफहयाणमुदएण पच्चक्खाणावरणचटुक्कस्स सवग्गवादिफहयाणमुदएण देससंजमो

चूंकि शयोपशमनामक चारित्तमोहणीयकर्मका उदय होने पर सयतासंयत,  
प्रमतसंयत और अप्रमतसंयतपना उत्पन्न होता है, इसलिए ये तीनों ही भाव शायोप-  
शुभिक हैं । प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, संव्यलनचतुष्क और नव नोक्रपायोंके उदयके सर्व  
प्रकारसे चारित्र्य विनाश करनेकी शक्तिका अभाव है, इसलिए उनके उदयकी क्षय संज्ञा  
है । उन्हीं प्रकृतियोंकी उत्पन्न हुए चारित्र्यको अथवा श्रेणीको आवरण नहीं करनेके कारण  
उपशम सज्ञा है । क्षय और उपशम, इन दोनोंके द्वारा उत्पन्न हुए ये उक्त तीनों भाव भी  
शायोशुभिक हो जाते हैं ।

शंका—यदि ऐसा माना जाय, तो प्रत्याख्यानावरण कपायका सर्वघातिपना  
नष्ट हो जाता है ?

समाधान—वैसा माननेपर भी प्रत्याख्यानावरण कपायका सर्वघातिपना नष्ट  
नहीं होता है, क्योंकि, प्रत्याख्यानावरण कपाय अपने प्रतिपक्षी सर्व प्रत्याख्यात (संयम)  
गुणको घातता है, इसलिए वह सर्वघाती कहा जाता है । किन्तु सर्व अप्रत्याख्यातको  
नहीं घातता है, क्योंकि, उसका इस विषयमें व्यापार नहीं है । इसलिए इस प्रकारसे  
परिणत प्रत्याख्यानावरण कपायके सर्वघाती संज्ञा सिद्ध है । जिस प्रकृतिके उदय होने  
पर जो गुण उत्पन्न होता हुआ देखा जाता है, उसकी अपेक्षा वह प्रकृति सर्वघाति  
संज्ञाको नहीं प्राप्त होती है । यदि ऐसा न माना जाय तो अतिप्रसंग दोष आजायगा ।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे और उन्हींके सद्-  
वस्थारूप उपशमसे, तथा चारों संव्यलन और नवों नोक्रपायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके  
उदयभावात्री क्षयसे और उन्हींके सद्वस्थारूप उपशमसे तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे  
और प्रत्याख्यानावरण कपायचतुष्कके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे देशसंयम उत्पन्न होता



उप्यज्जदि । वारसकसायाणं सब्बधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चैव संतोवसेण चटु-  
सेजुलण-णवणोक्कसायाणं सब्बधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चैव संतोवसेण देसधादि-  
फहयाणमुदएण पमत्तापमत्तसंजमां उपपज्जंति, तेणेदं तिणिण वि भावा खओवसमिया  
इदि के वि भणंति । ण च एदं समंजसं । कुदो ? उदयाभावो उवसमो चि क्खु उदय-  
विरहिसव्वपयडीहि द्विदि-अणुभागफहएहि अ उवसमसण्णा लद्धा । संपहि ण क्खओ  
अत्थि, उदयस्स विज्जमाणस्स खयव्वएसविरोहादो । तदो एदं तिणिण भावा उदओव-  
समियत्तं पत्ता । ण च एवं, एदंसिमुदओवसमियत्तपटुप्पायणसुत्ताभावा । ण च फलं  
दाज्जण णिज्जरियगयकम्मक्खंडाणं खयव्वएसं काज्जण एदेसिं खओवसमियत्तं वोडुं  
जुत्तं, मिच्छादिद्विआदि सब्बधावाणं एवं सिते खओवसमियत्तपसंगा । तद्धा पुव्विल्लो  
चेय अत्थो धेत्तव्वो, णिरवज्जत्तादो । दंसणमोहणीयकम्मस्स उवसम-खय-खओवसमे  
अस्सिदूण संजदासंजदादीणमोवसमियदिभावा किण्ण परूविदा ? ण, तदो संजमांसंजमादि-  
भावाणमुपपीए अभावादो । ण च एत्थ सम्मचविसया पुच्छा अत्थि, जेण दंसण-

है । अनन्तावुन्धी आदि वारह कपायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सद-  
वस्थारूप उपशमसे चारों सब्बलन और नवों नोकपायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय-  
क्षयसे, तथा उन्हींके सदवस्थारूप उदुयसे और देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे प्रमत्त  
और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी संयम उत्पन्न होता है, इसलिये एक तीनों ही भाव  
क्षायोपशमिक हैं, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं । किन्तु उनका यह कथन युक्तिसंगत  
नहीं है, क्योंकि, उदयके अभावको उपशम कहते हैं, ऐसा अर्थ करके उदयसे विरहित  
सर्वप्रकृतियोंको तथा उन्हींके स्थिति और अनुभागके स्पर्धकोंको उपशमसंज्ञा प्राप्त हो  
जाती है । अभी वर्तमानमें क्षय नहीं है, क्योंकि, जिस प्रकृतिका उदय विद्यमान है,  
उत्तके क्षय संज्ञा होतिका विरोध है । इसलिये ये तीनों ही भाव उदयोपशमिकपनेको  
प्राप्त होते हैं । किन्तु ऐसा माना नहीं जा सकता है, क्योंकि, एक तीनों गुणस्थानोंके  
उदयोपशमिकपना प्रतिपादन करनेवाले सूत्रका अभाव है । और, फलको देकर एवं  
निर्जराको प्राप्त होकर गये हुए कर्मस्पर्धकोंके 'क्षय' संज्ञा करके उक्त गुणस्थानोंको  
क्षायोपशमिक कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टि आदि सभी  
भावोंके क्षायोपशमिकताका प्रसंग प्राप्त हो जायगा । इसलिये पूर्वोंक ही अर्थ ग्रहण  
करना चाहिये, क्योंकि, वही निरवद्य (निर्दोष) है ।

शंका—दर्शनमोहनीयकर्मके उपशम, क्षय और क्षयोपशमका आशय करके  
सयतासंयतादिकोंके औपशमिफ्रादि भाव क्यों नहीं बताये गये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमादिकसे सयमासंयमादि  
भावोंकी उत्पत्ति नहीं होती । दूसरे, यहां पर सम्यक्त्व-विषयक पुच्छा (प्रश्न) भी नहीं है,

१ प्रतिशु 'सज्जो' इति पाठ ।

मोहिविंधयणओवसमियादिभावेहि संजदासंजदादीणं ववएसो होज्ज । ण च एवं,  
तथाणुवलंभा ।

**चटुण्हमुवसमां ति को भावो, ओवसमिओ भावो ॥ ८ ॥**

तं जहा—एकत्रीसपयडीओ उवसामेति चि चटुण्हं ओवसमिओ भावो । होडु  
गाम उवसंतकसायस्स ओवसमिओ भावो उवसमिदासेसकसायत्तादो । ण सेसाणं, तत्थ  
असेसमोहस्सुवसमाभावा ? ण, अणियद्विवादरसांपराहय-सुहुमसांपराहयाणं उवसमिद-  
ओवकसायजणिदुवसमपरिणामाणं ओवसमियभावस्स अत्थित्ताविरोहा । अपुव्यकरणस्स  
अणुव्रसंतासेसकसायस्स कथमोवसमिओ भावो ? ण, तस्स वि अपुव्यकरणेहि पडि-  
समयमसंखेज्जगुणाए सेडीए कम्मक्खंडे णिज्जरतस्स द्विदि-अणुभागखंडयाणि धादिदूण  
कमेण ठिदि-अणुभागे संखेज्जाणंतगुणहोणे करेतस्स पारदुवसमणकिरियस्स तदनिरोहा ।  
जिससे कि दर्शनमोहनीय निमित्तक औपशमिकादि भावोंकी अपेक्षा संयतासंयतादिकके  
औपशमिकादि भावोंका व्यपदेश हो सके । ऐसा है नहीं, क्योंकि, उस प्रकारकी व्यवस्था  
नहीं पाई जाती है ।

अपूर्वकरण आदि चारों गुणस्थानवर्ती उपशमक यह कौनसा भाव है ?  
औपशमिक भाव है ॥ ८ ॥

वह इस प्रकार है—चारित्रमोहनीयकर्मकी इकीस प्रकृतियोंका उपशमन करते  
हैं, इसलिये चारों गुणस्थानवर्ती जीवोंके औपशमिकभाव माना गया है ।

शंका—समस्त कपाय और नोकपायोंके उपशमन करनेसे उपशान्तकपायवीत-  
रागछद्मस्थ जीवके औपशमिक भाव भले ही रहा आवे, किन्तु अपूर्वकरणदि शेष गुण-  
स्थानवर्ती जीवोंके औपशमिक भाव नहीं माना जा सकता है, क्योंकि, उन गुणस्थानोंमें  
समस्त मोहनीयकर्मके उपशमका अभाव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कुछ कपायोंके उपशमन किए जानेसे उत्पन्न हुआ  
है उपशम परिणाम जिनके, ऐसे अनिवृत्तिकरण वादरसांपराय और सूक्ष्मसांपराय-  
संयतके उपशमभावका अस्तित्व माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—नहीं उपशमन किया है किसी भी कपायका जिसने, ऐसे अपूर्वकरण-  
संयतके औपशमिक भाव कैसे माना जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अपूर्वकरण परिणामोंके द्वारा प्रतिसमय असंख्यत-  
गुणधेणीरूपसे कर्मस्पर्धकोंकी निर्जरा करनेवाले, तथा स्थिति और अनुभागखंडकोंको  
घात करके क्रमसे कपायोंकी स्थिति और अनुभागको असंख्यत और अनन्तयुगित हीन  
करनेवाले, तथा उपशमनकियाका प्रारंभ करनेवाले, ऐसे अपूर्वकरणसंयतके उपशम-  
भावके माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

१ प्रतिशु 'उवसमो' इति पाठः ।

२ चटुण्हमुवसमामोवसमिओ भाव । स सि १, ८ उवसमभावो उवसामेसु । गो जी १४.

कम्माणमुपममेण उप्पणो भावो ओमसमिओ भण्ह । अपुब्बकरणस्स तदभावा णोव-  
ममिओ भावो इटि चे ण, उममणनत्तिसमिण्हअपुब्बकरणस्स तदरियत्ताविरोभा ।  
नथा च उममे जाणे उममियकम्माणमुवसमण्हं जादो वि ओवसमिओ भावो त्ति  
सिद्धं । अथा मरिस्समाणे भूदोवयादो अपुब्बकरणस्स ओमसमिओ भावो, सयला-  
मंनमे पयट्ठनमरुहरस्स तिलपरववएसो व्व ।

**चटुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि ति को भावो,  
खइओ भावो ॥ ९ ॥**

मजोगि-अजोगिकेवलीणं समिदाइकम्माणं हेतु णाम खइओ भावो । खीण-  
कणाम्म पि हेतु, सविदमोहणीयत्तादो । ण सेसाणं, तत्थ कम्मकखयाणुनलंभा ? ण,  
चार-मुहुमंणपराइयाणं पि सवियमोहेयदेसाणं कम्मकखयजणिदभावोवलंभा । अपुब्ब-

शंका—कर्मोंके उपशमनसे उत्पन्न होनेवाला भाव औपशमिक कहलाता है ।  
किन्तु अपूर्णकरणस्यतके कर्मोंके उपशमन का अभाव है, इसलिये उसके औपशमिक भाव  
नहीं मानना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमनशक्तिसे समन्वित अपूर्णकरणसंयतके औप-  
शमिकभावके अस्तित्वको माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

इस प्रकार उपशम होनेपर उत्पन्न होनेवाला और उपशमन होने योग्य कर्मोंके  
उपशमनार्थ उत्पन्न हुआ भी भाव औपशमिक कहलाता है, यह बात सिद्ध हुई । अथवा,  
भगिन्यमें होनेवाले उपशम भावमें भूतकालका उपचार करनेसे अपूर्णकरणके औपशमिक  
भाव यन जाता है, जिस प्रकार कि सर्व प्रकारके असंयममें प्रवृत्त हुए चक्रवर्ती तीर्थकरके  
'तीर्थंशर' यह व्यग्रदेश यन जाता है ।

चारों शपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, यह कौनसा भाव है ?  
शायिक मान है ॥ ९ ॥

शंका—वातिकर्मोंके क्षय करनेवाले सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके क्षायिक  
भाव भले ही रहा आने । क्षीणरूपय वीतरागछस्यके भी क्षायिक भाव रहा आवे,  
क्योंकि, उसके भी मोहनीयकर्मका क्षय हो गया है । किन्तु सुदमसाम्पराय आदि शेष  
क्षयकोंके क्षायिक भाव मानना शुक्ति संगत नहीं है, क्योंकि, उनमें किसी भी कर्मका  
क्षय नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मोहनीयकर्मके एक देशके क्षयण करनेवाले शार्द-  
साम्पराय और सुदमसाम्पराय शपकोंके भी कर्मक्षय-जनित भाव पाया जाता है ।

१ चतुर्थं धरनेतु सयोगोपेक्खिओष शारिणे भावः । स सि ३, ६. खण्णु खओ भावो भिक्खमा  
अजोगिपल्लो सि सिद्धे ५ ॥ गो जी. १४.

करणस्स अविण्हकम्मस्स कधं खइओ भावो ? ण, तस्स वि कम्मकखयणिमित्तपरिणासु-  
वलंभा । एत्थ वि कम्ममाणं खए जादो खइओ, खयण्हं जाओं वा खइओ भावो इदि  
दुविहा सदउप्पत्ती वेत्तव्वा । उवयारेण वा अपुब्बकरणस्स खइओ भावो । उवयारे  
आसइजमाणे अहप्पसंगो किण्ण होदीदि चे ण, पच्चासत्तीदो अहप्पसंगपडिसेहादो ।

ओघाणुगो समत्तो ।

**आदेसेण गइयाणुवादेण णिरयईए णेरइए सु मिच्छादिट्ठि ति  
को भावो, ओदइओ भावो ॥ १० ॥**

कुदो ? मिच्छजुदयजणिदअसदहणपरिणासुवलंभा । सम्मामिच्छत्तसव्वधादि-  
फइयाणमुदयक्खएण तेसिं चैव संतोवसेमेण सम्मत्तेसधादिफइयाणमुदयक्खएण तेसिं  
चैव संतोवसेमेणं अणुदओमसेमेण वा मिच्छत्तसव्वधादिफइयाणमुदएण मिच्छाइही

शंका—किसी भी कर्मके नष्ट नहीं करनेवाले अपूर्णकरणसंयतके क्षायिकभाव  
कैसे माना जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उसके भी कर्मक्षयके निमित्तभूत परिणाम पाये  
जाते हैं ।

यहां पर भी कर्मोंके क्षय होने पर उत्पन्न होनेवाला भाव क्षायिक है, तथा  
कर्मोंके क्षयके लिए उत्पन्न हुआ भाव क्षायिक है, ऐसी दो प्रकारकी शब्द-व्युत्पत्ति  
ग्रहण करना चाहिए । अथवा उपचारसे अपूर्णकरण संयतके क्षायिक भाव मानना चाहिए ।

शंका—इस प्रकार सर्वत्र उपचारके आश्रय करने पर अतिप्रसंग दंग कर्मों नहीं  
प्राप्त होंगे ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रत्यासत्ति अर्थात् समीपवर्ती अर्थके प्रसंगसे अति-  
प्रसंग दोषका प्रतिषेध हो जाता है ।

इस प्रकार ओघ भावाणुगम समाप्त हुआ ।

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गोंके अनुवादसे नरकगतिमें नरकक्रियोंमें मिथ्यादृष्टि  
यह कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है ॥ १० ॥

क्योंकि, वहां पर मिथ्यात्वके उदयसे उत्पन्न हुआ अत्रादानरूप परिणाम पाया  
जाता है ।

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सर्व-  
यस्वरूप उपशमसे, तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके  
सर्ववस्वरूप उपशमसे अथवा अनुदयोपशमसे और मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती

१ प्रतिपु 'खण्डज्जाओ' इति पाठः ।

२ विशेषेण गणसुवादेन नरकगती प्रयमाणां पृथिव्यां नारकानां मिथ्यादृष्टयत्तसम्यक्दृष्टकपालां  
वामानवत् । स सि १, ६. ३ अत्रती 'सम्मउदेसवादि . संतोवसेमेण' इति पाठस्य द्वारादि .

उप्यज्जदि त्ति खओवसमिओ सो किण होदि ? उच्चदे- ण ताव सम्मत्त-सम्माभिच्छत्त-  
देसवादिफहयाणमुदयवखओ संतोवसमो अणुदओवसमो वा मिच्छादिट्ठीए कारणं, सव्वहि-  
चारित्तादो । जं जदो णियमेण उप्यज्जदि तं तस्स कारणं, अण्णहा अणवत्थोप्पसंगादो ।  
जदि मिच्छचुप्पज्जणकाले विज्जमाणा तक्कारणत्तं पडिवज्जंति तो गाण-दंसण-अंसजमा-  
दओ वि तक्कारणं होति । ण चेरं, तहाविहवहराभावा । मिच्छादिट्ठीए पुण  
मिच्छचुदओ कारणं, तेण विणा तदणुप्पत्तीए ।

**सासणसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, पारिणामिओ भावो ॥ ११ ॥**

अणंताणुबंधीणमुदएणेन सासणसम्मादिट्ठी होदि त्ति ओदइओ भावो किण  
उच्चदे ? ण, आइल्लेसु चट्टुसु वि गुणह्वाणेषु चारित्तवरणत्तिवोदएण पत्तासंजमेसु दंसण-  
मोहणिवंधणेषु चारित्तमोहविवाखाभावा । अपिदस्स दंसणमोहणीयस्स उदएण उवसमेण  
खएण खओवसमेण वा सासणसम्मादिट्ठी ण होदि त्ति पारिणामिओ भावो ।

स्पर्धकोके उदयसे मिथ्यादृष्टिभाव उत्पन्न होता है, इसलिए उसे क्षायोपशमिक क्यों न  
माना जाय ?

समाधान—न तो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके देशघाती  
स्पर्धकोका उदयक्षय, अथवा सदवस्थारूप उपशम, अथवा अनुदयरूप उपशम मिथ्यादृष्टि-  
भावका कारण है, क्योंकि, उसमें व्यभिचार दोष आता है । जो जिससे नियमतः उत्पन्न  
होता है, वह उसका कारण होता है । यदि ऐसा न माना जावे, तो अनवस्था दोषका  
प्रसंग आता है । यदि यह कहा जाय कि मिथ्यात्वके उत्पन्न होनेके कालमें जो भाव  
विद्यमान हैं, वे उसके कारणपनेको प्राप्त होते हैं । तो फिर ज्ञान, दर्शन, असंयम आदि भी  
मिथ्यात्वके कारण हो जावेंगे । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, उस प्रकारका व्यवहार नहीं  
पाया जाता है । इसलिए यही सिद्ध होता है कि मिथ्यादृष्टिका कारण मिथ्यात्वका उदय  
ही है, क्योंकि, उसके बिना मिथ्यात्वभावकी उत्पत्ति नहीं होती है ।

नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ११ ॥

शंका—अनन्तानुबन्धी चारों कपायोंके उदयसे ही जीव सासादनसम्यग्दृष्टि  
होता है, इसलिए उसे औदयिकभाव क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयनिवन्धनक आदिके चारों ही गुणस्थानोंमें  
चारित्रको आवरण करनेवाले मोहकर्मके तीव्र उदयसे असंयमभावके प्राप्त होनेपर भी  
चारित्रमोहनीयकी विवक्षा नहीं की गई है । अतएव विवक्षित दर्शनमोहनीय कर्मके  
उदयसे, उपशमसे, क्षयसे, अथवा क्षयोपशमसे सासादनसम्यग्दृष्टि नहीं होता है, इसलिए  
वह पारिणामिक भाव है ।

**सम्माभिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥ १२ ॥**

कुदो ? सम्माभिच्छत्तुदए संते त्ति सम्मदंसणेगेदेसमुत्तलभा । सम्माभिच्छत्तभावे  
पत्तजच्चंतरे अंससीभावो णलिय त्ति ण तत्थ सम्मदंसणस्स एगेदेस इदि चे, होदु णाम  
अभेदविक्खाए जच्चंतरत्तं । भेदे पुण त्तिविक्खेदे सम्मदंसणभागो अत्थि चेव, अण्णहा  
जच्चत्तरत्तिरोहा । ण च सम्माभिच्छत्तस्स सव्वधाइत्तमेवं संते विरुज्झह, पत्तजच्चंतरे  
सम्मदंसणसाभावदो तस्स सव्वधाइत्ताविरोहा । मिच्छत्तसव्वधाइफहयाणं उदयवसएण  
तोसं चेव संतोवसमेण सम्मत्तस्स देसवादिफहयाणमुदयवखएण तोसं चेव संतोवसमेण  
अणुदओवसमेण वा सम्माभिच्छत्तसव्वधादिफहयाणमुदएण सम्माभिच्छत्तं होदि त्ति तस्स  
खओवसमियत्तं केइं भणंति, तण्ण घडदे । कुदो ? सव्वहिचारित्तादो । विउचारो पुब्बं  
परूविदो त्ति णेह परूविज्जदे ।

**असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा, खइओ वा,  
खओवसमिओ वा भावो ॥ १३ ॥**

नारकी सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ १२ ॥  
क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय होनेपर भी सम्यग्दर्शनका एक देश पाया  
जाता है ।

शंका—जालन्तरत्तव (भिन्न जातीयता) को प्राप्त सम्यग्मिथ्यात्वभावमें अंशांशी  
( अवयव-अवयवी ) भाव नहीं है, इसलिए उसमें सम्यग्दर्शनका एक देश नहीं है ?

समाधान—अभेदकी विवक्षामें सम्यग्मिथ्यात्वके भिन्नजातीयता भले ही रही  
आवे, किन्तु भेदकी विवक्षा करनेपर उसमें सम्यग्दर्शनका एक भाग ( अंश ) है ही ।  
यदि ऐसा न माना जाय, तो उसके जालन्तरत्वके माननेमें विरोध आता है । और, ऐसा  
माननेपर सम्यग्मिथ्यात्वके सर्वघातिपना भी विरोधको प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि,  
सम्यग्मिथ्यात्वके भिन्नजातीयता प्राप्त होनेपर सम्यग्दर्शनके एक देशका अभाव है, इस-  
लिए उसके सर्वघातिपना माननेमें कोई विरोध नहीं आता ।

कितने ही आचार्य, मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोके उदयक्षयसे, उन्हीके  
सदवस्थारूप उपशमसे, तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोके उदयक्षयसे और  
उन्हींके सदवस्थारूप उपशम, अथवा अनुदयरूप उपशमसे, और सम्यग्मिथ्यात्वके सर्व-  
घाती स्पर्धकोके उदयसे सम्यग्मिथ्यात्वभाव होता है, इसलिए उसके क्षायोपशमिकता  
कहते हैं । किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, उक्त लक्षण सव्यभिचारी  
है । व्यभिचार पहले प्ररूपण किया जा चुका है, ( देखो पृ १९९ ) इसलिये यहां नहीं कहते हैं ।

नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है, क्षायिक-  
भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ १३ ॥

तं जहा- तिष्ठति त्रि कृपाणि काळण सम्मत्तं पडिचणजीवाणं ओवसमिओ भावो, दंयणमोहणीयस्स तद्दुदयाभाता । तस्मिन्दंयणमोहणीयाणं सम्मादिद्धीणं खइयो, पडिचणमोहणीयस्स तद्दुदयाभाता । इदंमिं सम्मादिद्धीणं खथोवसमिओ, पडिचणस्स-कम्मोदएण मह लद्धपपमच्चत्तादो । मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वधादिफइयाणमुदय-कराएण तेमिं नेम मंतोयसमेण अणुदयोयसमेण वा सम्मत्तेसधादिफइयाणमुदएण सम्मादिद्धी उपज्जदि ति तिससे सओयसमियत्तं केइं भणंति, तण्ण वडडे, विउचार-दंयणादो, अइयमंगालो वा ।

**ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ १४ ॥**

मंजमवादीणं कम्ममाणमुदएण अमंजमो होदि, तदो अमंजदो ति ओदइओ भावो । पदंण अंतदीवण्ण सुत्तेण अइकंतवग्गुणह्माणेसु ओदइयमंसजदत्तमत्थि ति भणिदं होदि ।

**एवं पढमाए पुढवीए णेरइयाणं ॥ १५ ॥**

खुदो ? मिच्छादिद्धि ति ओदइओ, सासणसम्मामिद्धि ति पारिणामिओ, सम्मा-मिच्छादिद्धि ति सओयसमिओ, असंजदसम्मामिद्धि ति उवसमिओ सइओ खओव-

जमे- अथकरणे आदि तीनों ही करणोंको करके सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंके औपशमिक भाव होता है, क्योंकि, वहाँपर दर्शनमोहनीयकर्मके उदयका अभाव है । दर्शनमोहनीयकर्मके क्षापण करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीवोंके क्षायिकभाव होता है, क्योंकि, जो क्षापण प्रतिपक्षी कर्मके क्षयसे उत्पन्न होता है । अन्य सम्यग्दृष्टि जीवोंके क्षायोपशमिकभाव होता है, क्योंकि, प्रतिपक्षी कर्मके उदयके साथ उसके आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होती है । मिथ्यात्व और सम्यगिग्न्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके सर्वाघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्नीके मदवस्थारूप उपशमसे, अथवा अनुदयरूप उपशमसे, तथा सम्य-क्ताप्रकृतिके वैशद्यवती स्पर्धकोंके उदयसे सम्यग्दृष्टि उत्पन्न होती है, इसलिये उसके भी क्षायोपशमिकभाव कितने ही आचार्य कहते हैं । किन्तु वह वादित नहीं होती है, क्योंकि, अपना माननेपर व्यभिचार उरता जाता है, अथवा अतिप्रसंग दोष आता है ।

किन्तु नारसी असंयतसम्यग्दृष्टिना असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ १४ ॥

चूंकि, प्रसंयमभाव समयको वात करनेवाले कर्मोंके उदयसे होता है, इसलिये 'असंयत' यह अत्रियरुभाव है । इस अन्तरीपक सूत्रसे अतिकान्त सर्व गुणस्थानोंमें अंतर्गणना औदयिक है, यह सूचित किया गया है ।

इस प्रकार प्रथम पृथिवीमें नागरिकोंके सर्व गुणस्थानोंसम्बन्धी भाव होते हैं ॥ १५ ॥

त्योंकि, मिथ्यादृष्टि यह औदयिक भाव है, सासादनसम्यग्दृष्टि यह पारि-णामिकभाव है, सम्यगिमिथ्यादृष्टि यह क्षायोपशमिकभाव है और असंयतसम्यग्दृष्टि यह

समिओ वा भावो; मंजमवादीणं कम्ममाणमुदएण असंजदो ति इच्चेदेहि णिरओधादो विसेसाभावा ।

**विदियाए जाव सत्तमीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिद्धि-सासण-सम्मामिच्छादिद्धीणमोघं ॥ १६ ॥**

सुणममेदं ।

**असंजदसम्मामिद्धि ति को भावो, उवसमिओ वा खओव-समिओ वा भावो ॥ १७ ॥**

तं जहा- दंयणमोहणीयस्स उवसमेण उदयाभावलक्षणेण जेणुपपज्जइ उवसम-सम्मामिद्धी तेण सा ओवसमिया । जदि उदयाभावो वि उवसमो उच्चइ, तो देवत्तं पि ओवसमियं होज्ज, तिण्हं गइणमुदयाभावोण उपपज्जमाणत्तादो ? ण, तिण्हं गइणं स्थिउक्क-संकेमेण उदयस्सुवलंभा, देवगइणामाए उदओवलंभादो वा । वेदगसम्मत्तस्स दंयण-औपशमिकभाव भी है, क्षायिकभाव भी है और क्षायोपशमिकभाव भी है, तथा संयम-घाती कर्मोंके उदयसे असंयत है । इस प्रकार नारकसामान्यकी भावप्ररूपणाले कोई विशेषता नहीं है ।

द्वितीय पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक नारकोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादन-सम्यग्दृष्टि और सम्यगिमिथ्यादृष्टियोंके भाव औदयके समान हैं ॥ १६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त नारकोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ १७ ॥

चूंकि, दर्शनमोहनीयके उदयाभावलक्षणवाले उपशमके द्वारा उपशमसम्यग्दृष्टि उत्पन्न होती है, इसलिये वह औपशमिक है ।

शंका—यदि उदयाभावको भी उपशम कहते हैं तो देवपना भी औपशमिक होगा, क्योंकि, वह शेष तीनों गतियोंके उदयाभावसे उत्पन्न होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वहाँपर तीनों गतियोंका स्तिबुद्धसंक्रमणके द्वारा उदय पाया जाता है, अथवा देवगतिनामकर्मका उदय पाया जाता है, इसलिये देवगणोंके औपशमिक नहीं कहा जा सकता ।

१ द्वितीयादिना सत्तया मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिसम्यगिमिथ्यादृष्टिना सामान्यत्वं । स ति १, ८.

२ प्रतिपु ' वा ' इति पठो नास्ति ।

३ असंयतसम्यग्दृष्टौपशमिको वा क्षायोपशमिको वा भाव । म ति १, ८.

४ विउचगइणं वा उदयसगया तीए अणुदयगयाओ । सत्तामिळण वेयर ज एलो थिउणमत्तामो ॥ प स, सत्तम, ८०

मोहणीयावयवस्स देसघादिलक्खणस्स उदयादो उप्पणसम्मादिट्ठिभावो खओवसमिओ । वेदगसम्मत्तफद्दयाणं खयसण्णा, सम्मतपडिबंधणसत्तीए तत्थाभावा । मिच्छत्त-सम्मा-मिच्छत्तणमुदयाभावो उवससो । तेहि देहि उप्पणत्तादो सम्माइट्ठिभावो खइओव-समिओ । खइओ भावो किण्णोवल्लभदे ? ण, विदियादिसु पुढीसु खइयसम्मादिट्ठिण-मुप्पत्तीए अभावा ।

### ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ १८ ॥

सम्मादिट्ठित्तं दुभावसण्णदं सोच्चा असंजदभावावगमत्थं पुच्छिदसिस्ससंदेह-

विशेषार्थ—गति, जाति आदि पिंड-प्रकृतियोंमेंसे जिस किसी विवक्षित एक प्रकृतिके उदय आने पर अनुदय-प्राप्त शेष प्रकृतियोंका जो उसी प्रकृतिमें संक्रमण होकर उदय आता है, उसे स्तितुकसंक्रमण कहते हैं । जैसे—एकेन्द्रिय जीवोंके उदय-प्राप्त एकेन्द्रिय जातिनामकर्ममें अनुदय-प्राप्त द्वीन्द्रिय जाति आदिका संक्रमण होकर उदयमें आना । गति नामकर्म भी पिंड-प्रकृति है । उसके चारों भेदोंमेंसे किसी एकके उदय होने पर अनुदय-प्राप्त शेष तीनों गतियोंका स्तितुकसंक्रमणके द्वारा संक्रमण होकर विपाक होता है । प्रकृतमें यही बात देवगतिको लक्ष्यमें रखकर कही गई है कि देवगति नाम-कर्मके उदयकालमें शेष तीनों गतियोंका स्तितुकसंक्रमणके द्वारा उदय पाया जाता है ।

दर्शनमोहनीयकर्मकी अवयवस्वरूप और देशघाती लक्षणवाली वेदकसम्यक्त्व-प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दृष्टिभाव क्षायोपशमिक कहलाता है । वेदक-सम्यक्त्वप्रकृतिके स्पर्शकौ क्षय संज्ञा है, क्योंकि, उसमें सम्यग्दर्शनके प्रतिबन्धनकी शक्तिका अभाव है । मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके उदयाभावको उपशम कहते हैं । इस प्रकार उपर्युक्त क्षय और उपशम, इन दोनोंके द्वारा उत्पन्न होनेसे सम्यग्दृष्टिभाव क्षायोपशमिक कहलाता है ।

शंका—यहां क्षायिक भाव क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, द्वितीयादि पृथिवियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्तिका अभाव है ।

किन्तु उक्त नारकी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ १८ ॥

द्वितीयादि पृथिवियोंके सम्यग्दृष्टिको औपशमिक और क्षायोपशमिक, इन दो भावोंसे संयुक्त सुन कर वहां असंयतभावके परिज्ञानार्थ प्रश्न करनेवाले शिष्यके

विणासणहुसागदमिदं सुत्तं । संजमघादिचारित्तमोहणीयकम्मोदयसमुप्पणत्तादो असंजद-भावो ओदइओ । अदीदगुणद्वाणेषु असंजदभावस्स अत्थित्तं एदेण सुत्तेण परुविदं ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियपजत्त-पंचि-दियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव संजदासंजदाण-मोघं ॥ १९ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठि चि ओदइओ, सासणसम्मादिट्ठि चि पारिणामिओ, सम्मा-मिच्छादिट्ठि चि खओवसमिओ, सम्मादिट्ठि चि ओवसमिओ खइओ खओवसमिओ चा; ओदइएण भावेण पुणो असंजदो, संजदासंजदो चि खओवसमिओ भावो इच्चेदहि ओघादो चउब्बिहतिरिक्खणं भेदाभावा । पंचिदियतिरिक्खजोणिणीसु भेदपदुप्पायणहु-मुत्तरसुत्तं भणदि-

णवरि विसेसो, पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु असंजदसम्मादिट्ठि ति को भावो, ओवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २० ॥

संदेहको विनाश करनेके लिए यह सूत्र आया है । द्वितीयादि पृथिवीगत असंयतसम्य-ग्दृष्टि नारकियोंका असंयतभाव संयमघाती चारित्रमोहनीयकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण औदयिक है । तथा, इस सूत्रके द्वारा अतीत गुणस्थानोमे असंयतभावके अस्तित्वका निरूपण किया गया है ।

तिर्यचगतिमें तिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यचपर्याप्त और पंचेन्द्रिय-तिर्यच योनिमतियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ १९ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि यह औदयिकभाव है, सासादनसम्यग्दृष्टि यह पारिणामिक-भाव है, सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह क्षायोपशमिकभाव है, सम्यग्दृष्टि यह औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव है, तथा औदयिकभावकी अपेक्षा वह असंयत है, संयतासंयत यह क्षायोपशमिक भाव है । इस प्रकार ओघसे चारों प्रकारके तिर्यचोंकी भावप्ररूपणमें कोई भेद नहीं है ।

अब पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें भेद प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेष बात यह है कि पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ २० ॥

देवगदीए देवेषु मिच्छादिद्विपहुडि जाव असंजदसम्मादिद्वि ति ओधं ॥ २३ ॥

कुदो ? मिच्छादिद्विणीमोदएण, सासणणं परिणमिणण, सम्मामिच्छादिद्विणीं खओवसमिणण, असंजदसम्मादिद्विणीं ओवसमिय-खइय-सओनसमिणहि भावेहि ओघ-मिच्छादिद्वि-सासणसम्मादिद्वि-सम्मामिच्छादिद्वि-असंजदसम्मादिद्विहि साधम्मवलंभा ।

भवणवासिय-चाणवैतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप-वासियदेवीओ च मिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वी सम्मामिच्छादिद्वी ओधं ॥ २४ ॥

कुदो ? एदेसि सुत्तुत्तुणुण्णणं सचपयारेण ओघादो भेदाभावा । असंजदसम्मादिद्वि ति को भावो, उवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २५ ॥

कुदो ? तत्थ उवसम-वेदगसम्मत्तणं दोण्हं चय संभवादो । खइओ भानो एत्थ देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक भाव ओघके समान हैं ॥ २३ ॥

क्योंकि, देवमिथ्यादृष्टियोंकी औदयिकभावसे, देवसासादनसम्यग्दृष्टियोंकी परिणामिकभावसे, देवसम्यग्मिथ्यादृष्टियोंकी क्षायोपशमिकभावसे और देवअसंयत-सम्यग्दृष्टियोंकी औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भावोंकी अपेक्षा ओघ मिथ्या-दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके भावोंके साथ समानता पाई जाती है ।

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देव एवं देवियां, तथा सौधर्म ईशान कल्पवासी देवियां, इनके मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि ये भाव ओघके समान हैं ॥ २४ ॥

क्योंकि, इन सूत्रोक्त गुणस्थानोंका सर्व प्रकार ओघसे कोई भेद नहीं है । असंयतसम्यग्दृष्टि उक्त देव और देवियोंके कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ २५ ॥

क्योंकि, उनमें उपशमसम्यक्त्व और क्षायोपशमिकसम्यक्त्व, इन दोनोंका ही पाया जाना सम्भव है ।

१ देवगती देवानां मिथ्यादृष्ट्यासंयतसम्यग्दृष्ट्यात्ताना सामान्यत् । स. मि. १, ८.

कुदो ? उनमम-वेदयसम्मादिद्विणीं चय तत्थ संभवादो । खइओ भावो किण्ण तत्थ संभाइ ? सदयसम्मादिद्विणीं व द्वाउआणं त्थिवेदएसु उपपत्तीए अभावा, मणुसगइ-वदिरित्तोसगंसु दंसणमोहणीयस्सगणाए अभावादो च ।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ २१ ॥  
सुगमभेदं ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिद्विपहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओधं ॥ २२ ॥

तिविहमणुससयलुणुण्णणं ओघसयलुणुणुण्णोहिंतो भेदाभावा । मणुसअपज्जत्त-तिरिक्खअपज्जत्तमिच्छादिद्विणीं सुत्ते भावो किण्ण परुविदो ? ण, ओघपरुषणादो चय त-भावावगमादो पुथ ण परुविदो ।

क्योंकि, पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि और क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टि जीवोंका ही पाया जाना सम्भव है ।

शंका—उनमें क्षायिकभाव क्यों नहीं सम्भव है ?  
समाधान—क्योंकि, वद्धयुक्त क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंकी स्त्रीवेदियोंमें उत्पत्ति नहीं होती है, तथा मनुष्यगतिके अतिरिक्त शेष गतियोंमें दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणाका अभाव है, इसलिए पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें क्षायिकभाव नहीं पाया जाता ।

किन्तु तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टियोंका असंयतत्व औदयिकभावसे है ॥ २१ ॥  
यह सूत्र सुगम है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ २२ ॥

क्योंकि, तीनों प्रकारके मनुष्योंसम्बन्धी समस्त गुणस्थानोंकी भावप्ररूपणामें ओघके सकल गुणस्थानोंसे कोई भेद नहीं है ।

शंका—लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्य और लक्ष्यपर्याप्तक तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवोंके भावोंका सूत्रमें प्ररूपण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ओघसम्बन्धी भावप्ररूपणाले ही उनके भावोंका परि-ज्ञान हो जाता है, इसलिए उनके भावोंका सूत्रमें पृथक् निरूपण नहीं किया गया ।

१ मणुसगतौ मणुसणां मिथ्यादृष्ट्यायोगेरेत्यन्ताना सामान्यत् । स. सि. १, ८.

किण पुरुविदो ? ण, भवणवासियन्माणेत्तरजोदिसियविदियादिछुडुविणेइयसन्वविगलिदियलद्धिअपज्जचित्थिवेदेसु सम्मादिह्वाणसुववादाभावा, मणुसगइवदिरित्तिणणगईसुदंसणमोहणीयस्स खवणाभावा च ।

**ओदइएण भवेण पुणो असंजदो ॥ २६ ॥**

सुगममेदं ।

**सोधम्मीसाणपहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिह्वाणहुडि जाव असंजदसम्मादिह्वाणि ति ओधं ॥ २७ ॥**

कुदो ? एत्थणणुणह्वाणणं ओघचहुगुणह्वाणेहिंत्तो अप्पिदभावेहि भेदाभावा ।

**अणुदिसादि जाव सन्वट्टसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिह्वाणि ति को भावो, ओवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २८ ॥**

शंका—उक्त भवनत्रिक आदि देव और देवियोंमें क्षायिकनाव क्यों नहीं वतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क देव, द्वितीयादि छह पृथिवियोंके नारकी, सर्व विकलेन्द्रिय, सर्व लब्धपर्याप्तक और ह्रीविवेदियोंमें सस्यन्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती है, तथा मनुष्यगतिके अतिरिक्त अन्य गतियोंमें दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणाका अभाव है, इसलिए उक्त भवनत्रिक आदि देव और देवियोंमें क्षायिकभाव नहीं वतलाया गया ।

किन्तु उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि देव और देवियोंका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ २६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सौधर्मईशानकरूपसे लेकर नव त्रैवेयक पर्यंत विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक भाव ओघके समान है ॥ २७ ॥

क्योंकि, सौधर्मादि विमानवासी चारों गुणस्थानवर्ती देवोंके ओघसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंकी अपेक्षा विवक्षित भावोंके साथ कोई भेद नहीं है ।

अनुदिश आदिसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भी है, क्षायिक भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ २८ ॥

तं जहा—वेदगसम्मादिह्वाणं खओवसमिओ भावो, खइयसम्मादिह्वाणं खइओ, उवससम्मादिह्वाणं ओवसमिओ भावो । तत्थ मिच्छादिह्वाणमभावे संते कथसुवसमसम्मादिह्वाणं संभवो, कारणभावे क्खज्जस्स उप्पत्तिविरोहादो ? ण एस दोसो, उवससम्मादिह्वाणं सह उवससमेसिं चंडंत-ओदरंताणं संजदणं कालं करिय देवेसुप्पणणाणसुवससम्मादिह्वाणं संभवो, एतेण सु पउत्तो वासदो अणत्थओ, एतेणैव इड्ढकज्जसिद्धिदो ? ण, मंदबुद्धिमिस्साणुगहहुत्तादो ।

**ओदइएण भवेण पुणो असंजदो ॥ २९ ॥**

सुगममेदं ।

एव गइमगणा सम्मत्ता ।

**इंदियाणुवादेण पंचिदियपज्जत्तएसु मिच्छादिह्वाणहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओधं ॥ ३० ॥**

जैसे—वेदकसम्यग्दृष्टि देवोंके क्षायोपशमिक भाव, क्षायिकसम्यग्दृष्टि देवोंके क्षायिक भाव और उपशमसम्यग्दृष्टि देवोंके औपशमिक भाव होता है ।

शंका—अनुदिश आदि विमानोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अभाव होते हुए उपशमसम्यग्दृष्टियोंका होना कैसे सम्भव है, क्योंकि, कारणके अभाव होनेपर कार्यकी उत्पत्तिका विरोध है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीपर चढ़ते और उतरते हुए मरणकर देवोंमें उत्पन्न होनेवाले संयतोंके उपशमसम्यक्त्व पाया जाता है ।

शंका—सूत्रमें तीन स्थानोंपर प्रयुक्त हुआ 'वा' शब्द अनर्थक है, क्योंकि, एक ही 'वा' शब्दसे इष्ट कार्यकी सिद्धि हो जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मंदबुद्धि शिष्योंके अनुग्रहार्थ सूत्रमें तीन स्थानोंपर 'वा' शब्दका प्रयोग किया गया है ।

किन्तु उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका असंयतत्व औदयिकभावसे है ॥ २९ ॥ यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे पंचेन्द्रियपर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ३० ॥

१ इन्द्रियाख्यान एकैन्द्रियविकलेन्द्रियाणामौदयिको भाव । पंचेन्द्रियेषु मित्यादृष्टयाधयोगिकेवत्यन्तानां सामान्यत्वं । स मि १, ८.

कुदो ? पृथक्पुण्ड्रगुणमोघपुण्ड्रगुणोहिंतो अपिदभानं पडि भेदाभावा । पृथ्विय-नेर्द्वि-नेर्द्वि-चउरिर्द्वि-चिद्विदियथपञ्चमिच्छादिद्विणं भावो किण्ण परुविदो ? ण गम देवो, परुपणाए विणा णि तत्थ भावोवलद्वीदो । परुपणा कीरेदे परावोहण्डं, ण च आगयअट्टपरुपणा फलमत्ता, परुपणाकज्जस्स अगमस्स पुव्वमेवुप्पणत्तादो ।

एवमिदियमगणा समत्ता ।

**कायगुणवादेण तसकाइय-तसकाइयपञ्चत्तएसु मिच्छादिद्विपहुडि जाव अजोगिकेवल्लि ति ओधं ॥ ३१ ॥**

कुदो ? ओघपुण्ड्रगुणोहिंतो एत्थतणुण्ड्रगुणमण्ड्रगुणमण्ड्रिदभावोहि भेदाभावा । सब्व-पुड्डी-सब्वआउ-मवतेउ-मवचाउ-सब्ववणणफदि-तमअपज्जत्तमिच्छादिद्विणं भावपरुपणा मुत्ते ण रुदा, अगदपरुपणाए फलाभावा । तस-तसपज्जत्तपुण्ड्रगुणभावो ओघादो चव णज्जदि ति तंभापपरुपणमणत्थयमिदि तपरुपणं पि मा किज्जटु ति मणिदे ण, तत्थ क्योकिं, पचेन्द्रियपर्याप्ततां होनेवाले गुणस्थानोंका ओघगुणस्थानोंकी अपेक्षा विगतित्त भावोंके प्रति नेई भेद नहीं है ।

गुंका—यहांपर पचेन्द्रिय, छीन्द्रिय, व्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय अथ-यौनक विद्यादृष्टि जीवोंके भावोंकी प्ररूपणा स्यों नहीं की ?

समाधान—यह तोई देण नहीं, क्योकि, प्ररूपणाके विना भी उनमें होनेवाले भावोंका गान पाया जाता है । प्ररूपणा दूसरोंके परिगानके लिये की जाती है, किन्तु जाने हुए अर्थकी प्ररूपणा फलती नहीं होती है, क्योकि, प्ररूपणाका कार्यभूत ज्ञान प्ररूपणा करनेके पूर्वमें ही उत्पन्न हो चुका है ।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई ।

कायमार्गणाके अनुवादसे त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्ततांमिं मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ३१ ॥

स्योकि, जोगगुणस्थानोंकी अपेक्षा त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्ततांमिं होने-वाले गुणस्थानोंका विवक्षित भावोंके साथ कोई भेद नहीं है । सर्वे शुथिवीकायिक, सर्वे जज्जकायिक, सर्वे तेजस्कायिक, सर्वे वायुकायिक, सर्वे वनस्पतिकायिक और त्रस लब्ध-पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीवोंकी भावप्ररूपणा सूत्रमें नहीं की गई है, क्योकि, जाने हुए भावोंकी प्ररूपणा करनेमें कोई फल नहीं है ।

गुंका—त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें सम्भव गुणस्थानोंके भाव ओघसे ही गत हो जाते हैं, इसलिए उनके भावोंका प्ररूपण करना अनर्थक है, जल. उनका प्ररूपण भी नहीं करना चाहिए ?

१ माण्डानेन स्मारत्तशिमनामोदग्गिहो मा । तसकायिस्तानां सामान्यमेव । त. सि. १, ८.

बहुसु गुणद्वयणसु संतेसु किण्णु कस्सइ अण्णो भावो होदि, ण होदि ति संदेहो मा होहदि ति तपडिसेहडं तपरुपणणाकरणादो ।

एव कायमगणा समत्ता ।

**जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरा-लियकायजोगीसु मिच्छादिद्विपहुडि जाव सजोगिकेवल्लि ति ओधं ॥ ३२ ॥**

सुगममेदं ।

**ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वि-सासणसम्मादिद्विणं ओधं ॥ ३३ ॥**

एदं पि सुगमं ।

**असंजदसम्मादिद्वि ति को भावो, खइओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ ३४ ॥**

कुदो ? खइय-वेदगसम्मादिद्विणं देव-णइय-मणुसाणं तिरिक्ख-मणुसेसु उप्पज्ज-समाधान—नहीं, क्योकि, त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्ततांमिं बहुतसे गुण-स्थानोंके होनेपर स्या किसी जीवके कोई अन्य भाव होता है, अथवा नहीं होता है, इस प्रकारका सन्देह न होवे, इस कारण उसके प्रतिषेध करनेके लिए उनके भावोंकी प्र-रूपणा की गई है ।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगीमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ३२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिकमिश्रकाययोगीमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियोंके भाव ओघके समान हैं ॥ ३३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? धार्मिक भाव भी है और धार्योपशमिक भाव भी है ॥ ३४ ॥

क्योकि, तिर्यच और मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले धार्मिकसम्यग्दृष्टि तथा चेदक-

१ योगाहुननेन कायवाख्यानसयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगिकेऽन्यत्तातामयोगिकेऽल्लिनां च मामान्यमेव ।

त. सि. १, ८.



माणसुवलंभा । ओवसमिओ भावा एत्थ किण्ण परूविदो ? ण, चउग्गइउवसमसम्मा-  
दिट्ठीणं मरणाभावादो ओरालियमिस्सिह्हे उवसमसम्मत्तसुवलंभाभावा । उवसमसेडिं  
चढत्त-ओअंतंसजदाणसुवसमसम्मत्तेण मरणं अत्थि ति चे सच्चमत्थि, किंतु ण ते  
उवसमसम्मत्तेण ओरालियमिस्सकायजोगिणो होति, देवगदिं मोचूण तेसिमण्णत्थ  
उप्पत्तीए अभावा ।

**ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ ३५ ॥**

सुगममेदं ।

**सजोगिकेवलि ति को भावो, खइओ भावो ॥ ३६ ॥**

एदं पि सुगमं ।

**वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिण्हुडि जाव असंजदसम्मा-  
दिट्ठि ति ओघमंगो ॥ ३७ ॥**

सस्यग्दट्ठि देव, नारकी और मनुष्य पाये जाते हैं ।

शंका—यहां, अर्थात् औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें, औपशमिकभाव क्यों  
नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, चारों गतियोंके उपशमसस्यग्दट्ठि जीवोंका मरण नहीं  
होनेसे औदारिकमिश्रकाययोगमें उपशमसस्यक्त्वका सद्भाव नहीं पाया जाता ।

शंका—उपशमश्रेणीपर चढ़ते और उतरते हुए संयत जीवोंका उपशमसस्यक्त्वके  
साथ तो मरण पाया जाता है ?

समाधान—यह कथन सत्य है, किन्तु उपशमश्रेणीमें मरनेवाले वे जीव उपशम-  
सस्यक्त्वके साथ औदारिकमिश्रकाययोगी नहीं होते हैं, क्योंकि, देवगतिको छोड़कर  
उनकी अन्यत्र उत्पत्तिका अभाव है ।

किन्तु औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसस्यग्दट्ठिका असंयतत्व औदारिक  
भावसे है ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली यह कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव  
है ॥ ३६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टिसं लेकर असंयतसस्यग्दट्ठि गुणस्थान तक  
भाव ओघके समान है ॥ ३७ ॥

एदं पि सुगमं ।

**वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असं-  
जदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ३८ ॥**

कुदो ? मिच्छादिट्ठीणमोदइएण, सासणसम्मादिट्ठीणं, पारिणापिएण, असंजद-  
सम्मादिट्ठीणं ओवसमिय-खइय-खओवसमियभावोहि ओघमिच्छादिट्ठिआदीहि साध-  
सुवलंभा ।

**आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा ति को  
भावो, खओवसमिओ भावो ॥ ३९ ॥**

कुदो ? चारित्तावरणचहुंसंजलण-सत्तणोक्कसायाणसुदए संते वि पमादाणुविद्धसंज-  
सुवलंभा । कथमेत्थ खओवसमो ? पत्तोदयएक्कारसचारित्तमोहणीयपयडिदेसघादिफद-  
याणसुवसससणणा, गिरवसेसेण चारित्तघायणसत्तीए तथुवससुवलंभा । तेसिं चेव सव्व-  
धादिफदयाणं खयसणणा, णट्ठोदयभावत्तादो । तेहि दोहिं मि उप्पणो संजमो खओव-

यह सूत्र भी सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसस्यग्दट्ठि और असंयतसस्य-  
ग्दट्ठि ये भाव ओघके समान हैं ॥ ३८ ॥

क्योंकि, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके औदारिकभावसे, सासादन-  
सस्यग्दृष्टियोंके पारिणापिकभावसे, तथा असंयतसस्यग्दृष्टियोंके औपशमिक, क्षायिक  
और क्षायोपशमिक भावोंकी अपेक्षा ओघ मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंके भावोंके साथ  
समानता पाई जाती है ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत यह कौनसा  
भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ३९ ॥

क्योंकि, यथाव्ययताचारित्रके आवरण करनेवाले चारों संज्वलन और सात  
नोकपयोंके उदय होने पर भी प्रमादसंयुक्त संयम पाया जाता है ।

शंका—यहां पर क्षायोपशमिकभाव कैसे कहा ?

समाधान—आहारक और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें क्षायोपशमिकभाव  
होनेका कारण यह है कि उदयको प्राप्त चार संज्वलन और सात नोकपय, इन ग्यारह  
चारित्रमोहनीय प्रकृतियोंके देशघाती स्पर्धकोकी उपशमसंज्ञा है, क्योंकि, सम्पूर्णरूपसे  
चारित्र घातनेकी शक्तिका वहां पर उपशम पाया जाता है । तथा, उन्ही ग्यारह चारित्र-  
मोहनीय प्रकृतियोंके सर्वघाती स्पर्धकोंकी क्षयसंज्ञा है, क्योंकि, वहां पर उनका उदयमें  
आना नष्ट हो चुका है । इस प्रकार क्षय और उपशम, इन दोनोंसे उत्पन्न होनेवाला

समिधो । अथवा एरुत्तराम् कम्पणमुदयस्तेव सजोवससण्णा । कुदो ? चारित्तायण-  
मसीए अमानस्तेन तच्चमएयादो । तेण उप्पण ङटि खजोवससिओ पमादाणुविद्वंसजसो ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजद-  
सम्मादिट्ठी सजोगिकेवली ओधं ॥ ४० ॥

हुदो ? मिच्छादिट्ठीणमोढइएण, सासणणं परिणामिएण, कम्मइयकायजोगिसं-  
जदयम्मादिट्ठीणं ओत्तसमिय-सइय-सजोवससियभावेहि, सजोगिकेवलीणं खइएण भावेण  
ओघम्मि' गदगुणद्वणेहि साधम्ममुलंभा ।

एव जोगमगणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेद-णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठी-  
पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति ओधं ॥ ४१ ॥

सुगममेदं, एदस्सहृवरूवणाए विणा वि अत्योवलद्वीदो ।

संयम क्षायोपशमिक कहलता हे । अथवा, चारित्तमोहसम्बन्धी उक्त ग्यारह कर्मप्रकृतियोंके  
उदयकी ही क्षयोपशमसंज्ञा है, क्योंकि, चारित्रिके घातनेकी शक्तिके अभावकी ही क्षयो-  
पशमसंज्ञा है । इस प्रकारके क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेवाला प्रमादयुक्त संयम क्षायोप-  
शमिक है ।

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और  
सयोजिकेवली ये भाव ओघके समान हैं ॥ ४० ॥

क्योंकि, तार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके औदधिकभावसे, सासादनसम्यग्दृष्टि-  
योंके परिणामित्भावसे, असंयतसम्यग्दृष्टियोंके औपशमिक, क्षयिक और क्षायोप-  
शमित भावोंकी अपेक्षा, तथा सयोजिकेवलियोंके क्षायिकभावोंकी अपेक्षा ओघमें कहे गये  
गुणस्थानोंके भावोंके साथ समानता पाई जाती है ।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणके अनुवादसे त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यादृष्टिसे  
लेकर अनियुत्तिकरण गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ४१ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, इसके अर्थकी प्ररूपणके विना भी अर्थका ज्ञान हो  
जाता है ।

अवगदवेदएसु अणियट्ठिपहुडि जाव अजोगिकेवली ओधं  
॥ ४२ ॥

एत्थ चोदगो भणदि-जोणि-भेहणादीहि समण्णिदं सरिरं वेदो, ण तस्स  
विणासो अत्थि, सजदानं मरणप्पसंगा । ण भाववेदविणासो वि अत्थि, सरिरे अविण्णे  
तव्भात्तस्स विणासविरोहा । तदो गावगदवेदत्तं जुज्जे इदि ? एत्थ परिहारो उच्चवेद- ण  
सरिरमित्थि-पुरिसवेदो, णामकम्मजण्णिदस्स सरिरस्स मोहणीयत्तविरोहा । ण मोहणीय-  
जण्णिदमवि सरिरं, जीवविवाइणां मोहणीयस्स पोग्गलविवाइत्तविरोहा । ण सरिरभावो वि  
वेदो, तस्स तदो पुथभूदस्स अणुवलंभा । परिसेसादो मोहणीयदव्वकम्मवसंधो तज्जण्णिद-  
जीवपरिणामो वा वेदो । तत्थ तज्जण्णिदजीवपरिणामस्स वा परिणामेण सह कम्मवसंधस्स  
वा अभावेण अवगदवेदो हेदि त्ति तेण णेस दोसो त्ति सिद्धं । सेसं सुगमं ।

एव वेदमगणा समत्ता ।

अपगतवेदियोंमें अनियुत्तिकरणसे लेकर अयोजिकेवली गुणस्थान तक भाव  
ओघके समान हैं ॥ ४२ ॥

शंका—यहापर शंकाकार कहता है कि योनि और लिंग आदिसे संयुक्त शरीर  
वेद कहलाता है । सो अपगतवेदियोंके इस प्रकारके वेदका विनाश नहीं होता है, क्योंकि,  
यदि योनि, लिंग आदिसे समन्वित शरीरका विनाश माना जाय, तो अपगतवेदी संय-  
तोंके मरणका प्रसंग प्राप्त होगा । इसी प्रकार अपगतवेदी जीवोंके भाववेदका विनाश  
भी नहीं है, क्योंकि, जब तक शरीरका विनाश नहीं होता, तब तक शरीरके  
धर्मका विनाश माननेमें विरोध आता है । इसलिए अपगतवेदता युक्तिसंगत नहीं है ?

समाधान—अब यहां उपर्युक्त शंकाका परिहार कहते हैं— न तो शरीर, ली या  
पुरुषवेद है, क्योंकि, नामकर्मसे उत्पन्न होनेवाले शरीरके मोहनीयपनेका विरोध है ।  
और न शरीर मोहनीयकर्मसे ही उत्पन्न होता है, क्योंकि, जीवविपाकी मोहनीयकर्मके  
पुद्गलविपाकी होनेका विरोध है । न शरीरका धर्म ही वेद है, क्योंकि, शरीरसे पृथग्भूत  
वेद पाया नहीं जाता । पारिशेष न्यायसे मोहनीयके द्रव्यकर्मस्कंधको, अथवा मोहनीय-  
कर्मसे उत्पन्न होनेवाले जीवके परिणामको वेद कहते हैं । उनमें वेदजनित जीवके परि-  
णामका, अथवा परिणामके साथ मोहकर्मस्कंधका अभाव होनेसे जीव अपगतवेदी होता  
है । इसलिए अपगतवेदता माननेमें उपर्युक्त कोई दोष नहीं आता है, यह सिद्ध हुआ ।  
शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु  
भिच्छादिद्विण्हडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं ॥४३॥  
सुगममदं ।

अकसाईसु चटुडणी ओघं ॥ ४४ ॥

चोदओ भणदि-कसाओ गाम जीवगुणो, ण तस्स विणासो अत्थि, गाण-दंस-  
गाणमिव । विणासे वा जीवस्स विणासेण होदन्तं, गाण-दंसणविणासेणेव । तदो ण  
अकसायत्तं षडदे इदि ? होदु गाण-दंसणाणं विणासन्दि जीवविणासो, तेसिं तल्लक्खण-  
चादो । ण कसाओ जीवस्स लक्खणं, कम्मजणिदस्स तल्लक्खणत्तविरोहा । ण कसायाणं  
कम्मजणिदत्तमसिद्धं, कसायवड्डीए जीवलक्खणणाणह्णाणिअणहाणुवचोदो तस्स कम्म-  
जणिदत्तसिद्धीदो । ण च गुणो गुणंतरविरोहे, अणत्थ तहाणुवलंभा । सेसं सुगमं ।

एव कसायमग्गणा समत्ता ।

कपायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकपायी, मानकपायी, मायकपायी और लोभ-  
कपायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर स्रहसाम्पराय उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक  
भाव ओघके समान हैं ॥ ४३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अकपायी जीवोंमें उपशान्तकपाय आदि चारों गुणस्थानवर्ती भाव ओघके  
समान हैं ॥ ४४ ॥

शंका—यहां शंकाकार कहता है कि कपाय नाम जीवके गुणका है । इसलिये  
उसका विनाश नहीं हो सकता, जिस प्रकार कि ज्ञान और दर्शन, इन दोनों जीवके  
गुणोंका विनाश नहीं होता है । यदि जीवके गुणोंका विनाश माना जाय, तो ज्ञान और  
दर्शनके विनाशके समान जीवका भी विनाश हो जाना चाहिए । इसलिये सूत्रमें कही  
गई अकपायता घटित नहीं होती है ?

समाधान—ज्ञान और दर्शनके विनाश होनेपर जीवका विनाश भले ही हो  
जावे, क्योंकि, वे जीवके लक्षण हैं । किन्तु कपाय तो जीवका लक्षण नहीं है, क्योंकि,  
कर्मजनित कपायको जीवका लक्षण माननेमें विरोध आता है । और न कपायोंका कर्मसे  
उत्पन्न होना असिद्ध है, क्योंकि, कपायोंकी वृद्धि होनेपर जीवके लक्षणमूल ज्ञानकी  
हानि अन्यथा बन नहीं सकती है । इसलिये कपायका कर्मसे उत्पन्न होना सिद्ध है ।  
तथा गुण गुणान्तरका विरोधी नहीं होता, क्योंकि, अन्यत्र वेसा देखा नहीं जाता ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

इस प्रकार कपायमार्गणा समाप्त हुई ।

१ कपायाउवादेण कोधमानमायलोभमन्पायाणा X X सामान्यवत् । स ति १, ८  
२ X X X अक्कायाणी च सामान्यवत् । स ति १, ८ ३ प्रतिगु 'तदो शुक्कायच' इति पाठ ।

गाणानुवादेण मदिअण्णाणि-सुइअण्णाणि-विभंगणाणीसु मिच्छा-  
दिद्वी सासणसम्मादिद्वी ओघं ॥ ४५ ॥

कथं मिच्छादिद्विणाणस्स अण्णाणत्तं ? गाणकज्जाकरणादो । किं गाणकज्जं ?  
णादत्थसदहणं । ण तं मिच्छादिद्विम्हि अत्थि । तदो गाणमेव अण्णाणं, अण्णाहा  
जीवविणासप्यसंगा । अत्रगयदवधम्मणाइसु मिच्छादिद्विम्हि सदहणमुवलंभए चे ण,  
अचागमपयत्थसदहणविरहियस्स दवधम्मणाइसु जहइसदहणविरोहा । ण च एस ववहारो  
लोभे अप्पसिद्धो, पुत्तकज्जमज्जुणंते पुत्ते वि लोभे अपुत्तववहारदंसणादो । तिसु  
अण्णाणेषु गिरुद्धेषु सम्मामिच्छादिद्विभावो किण्ण परूविदो ? ण, तस्स सदहणासदहणेहि

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्त्वज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें  
मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भाव ओघके समान है ॥ ४५ ॥

शंका—मिथ्यादृष्टि जीवोंके ज्ञानको अज्ञानपना कैसे कहा ?

समाधान—स्योंकि, उनका ज्ञान ज्ञानका कार्य नहीं करता है ।

शंका—ज्ञानका कार्य क्या है ?

समाधान—जाने हुए पदार्थका श्रद्धान करना ज्ञानका कार्य है ।

इस प्रकारका ज्ञानकार्य मिथ्यादृष्टि जीवमें पाया नहीं जाता है । इसलिये उनके  
ज्ञानको ही अज्ञान कहा है । (यहांपर अज्ञानका अर्थ ज्ञानका अभाव नहीं लेना चाहिए)  
अन्यथा (ज्ञानरूप जीवके लक्षणका विनाश होनेसे लक्ष्यरूप) जीवके विनाशका प्रसंग  
प्राप्त होगा ।

शंका—दयाधर्मसे रहित जातियोंमें उत्पन्न हुए मिथ्यादृष्टि जीवमें तो श्रद्धान  
पाया जाता है ( फिर उसके ज्ञानको अज्ञान क्यों माना जाय ) ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, आस, आगम और पदार्थके श्रद्धानसे रहित जीवके  
दयाधर्म आदिमें यथार्थ श्रद्धानके होनेका विरोध है (अतएव उनका ज्ञान अज्ञान ही है) ।  
ज्ञानका कार्य नहीं करने पर ज्ञानमें अज्ञानका व्यवहार लोकमें अप्रसिद्ध भी नहीं है,  
क्योंकि, पुत्रकार्यको नहीं करनेवाले पुत्रमें भी लोकके भीतर अपुत्र कहनेका व्यवहार  
देखा जाता है ।

शंका—तीनों अज्ञानोंको निरुद्ध अर्थात् आश्रय कर उनकी भावप्ररूपणा करते  
हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका भाव क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, श्रद्धान और अश्रद्धान, इन दोनोंसे एक साथ अनुविद्ध

१ ज्ञानउवादेण मय्यज्ञानिश्रुताज्ञानिविभंगानिनां X X सामान्यवत् । स ति १, ८

देहिं मि अक्कमेण अणुविद्वस्स संजटासंजदो व्व पत्तजच्चत्तरस्स णाणेषु अण्णाणेषु वा अत्थियणिविरोहा । मेणं सुगमं ।

आभिणिवोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिपहुडि  
जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ॥ ४६ ॥

सुगममेदं, ओघादो मानं पडि भेदाभात्ता ।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदपहुडि जाव खीणकसायवीदराग-  
छदुमत्था ओघं ॥ ४७ ॥

एदं पि सुगमं ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ॥ ४८ ॥

कुदो ? रहइभावं पडि भेदाभात्ता । सजोगो ति को भावो ? अणादिपारिणामिओ  
भाओ । णोपत्तिसिओ, मोहणीए अणुपत्ते वि जोसुवलंभा । ण खइओ, अणुप्यसरूचस्स  
कम्माणं उणुपुत्तिविरोहा । ण घादिकम्मोदयजिणियो, ण्हे वि घादिकम्मोदए केव-

होनेके कारण संयतान्वयतके समान भिन्नजातीयताको प्राप्त सम्यग्मिथ्यात्वका पांचों  
नाचार्य, अथवा तीनों धर्मानोंमें अस्तित्व होनेका विरोध है ।

शेष सूत्रार्थं सुगमं हे ।

आभिनिवोधिक्कजानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर  
क्षीणकसायवीतरागछदुमत्था गुणस्थान तरु भाव ओघके समान हैं ॥ ४६ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, ज्ञानमार्गणमें ओघसे भावकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है ।  
मनःपर्यायज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीणकसायवीतरागछदुमत्था गुणस्थान  
तरु भाव ओघके समान है ॥ ४७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

कालज्ञानियोंमें संयोगिकेवली भाव ओघके समान है ॥ ४८ ॥

क्योंकि, क्षायिकभावके प्रति कोई भेद नहीं है ।

शुंक्रा—'सयोग' यह कौनसा भाव है ?

समाधान—'सयोग' यह अनादि पारिणामिक भाव है । इसका कारण यह है  
कि यह योग न तो ओपशामिक भाव है, क्योंकि, मोहनीयकर्मके उपशम नहीं होने पर  
भी योग पाया जाता है । न यह क्षायिक भाव है, क्योंकि, आत्मस्वरूपसे रहित योगकी  
कर्मोंके क्षयसे उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है । योग घातिकर्मोदय-जनित भी नहीं है,

१. ४४ x x मति युतामधिगम एयत्तेवल्लहानिना च सत्तान्वयत् । स. सि. १, ८.

लिप्हिं जोगुवलंभा । णो अघादिकम्मोदयजिणियो वि, सेते वि अघादिकम्मोदए अजोगिम्हि  
जोगाणुवलंभा । ण सरीरणामकम्मोदयजिणियो वि, पोग्गलविवाइयाणं जीवपरिफुट्ठणेहउत्त-  
विरोहा । कम्मइयसरीरं ण पोग्गलविवाइ, तदो पोग्गलाणं वण्ण-रस-गंध-फास-संठाणा-  
गमणादीणमणुवलंभा । तदुप्पाइदो जोगो होहु चे ण, कम्मइयसरीरं पि पोग्गलविवाइ  
चेव, सच्चकम्माणमासयत्तादो । कम्मइओदयविणट्ठुसमए चेव जोगविणासदंसणादो  
कम्मइयसरीरजिणियो जोगो चे ण, अघाइकम्मोदयविणासाणंतरं विणसंतंभवियत्तस्स  
पारिणामियस्स ओदइयत्तप्पसंगा । तदो सिद्धं जोगस्स पारिणामियत्तं । अघवा ओदइओ  
जोगो, सरीरणामकम्मोदयविणासाणंतरं जोगविणासुवलंभा । ण च भवियत्तेण विउवचारी,  
कम्मसंबंधविरोहिणो तस्स कम्मजणिदत्तविरोहा । सेसं सुगमं ।

एव णाणसगणा समत्ता ।

क्योंकि, घातिकर्मोदयके नष्ट होने पर भी सयोजिकेवलीमें योगका सद्भाव पाया  
जाता है । न योग अघातिकर्मोदय-जनित भी है, क्योंकि, अघातिकर्मोदयके रहने पर भी  
अयोजिकेवलीमें योग नहीं पाया जाता । योग शरीररत्नामकर्मोदय-जनित भी नहीं है,  
क्योंकि, पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंके जीव-परिस्पंदनका कारण होनेमें विरोध है ।

शुंक्रा—कर्मणशरीर पुद्गलविपाकी नहीं है, क्योंकि, उससे पुद्गलोंके वर्ण, रस,  
गन्ध, स्पर्श और संस्थान आदिका आगमन आदि नहीं पाया जाता है । इसलिए योगको  
कर्मणशरीरसे उत्पन्न होनेवाला मान लेना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सर्व कर्मोंका आश्रय होनेसे कर्मणशरीर भी पुद्गल-  
विपाकी ही है । इसका कारण यह है कि वह सर्व कर्मोंका आश्रय या आधार है ।

शुंक्रा—कर्मणशरीरके उदय विनष्ट होनेके समयमें ही योगका विनाश देखा  
जाता है । इसलिए योग कर्मणशरीर-जनित है, ऐसा मानना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यदि ऐसा माना जाय तो अघातिकर्मोदयके विनाश  
होनेके अनन्तर ही विनष्ट होनेवाले पारिणामिक भव्यत्वभावके भी औदयिकपत्तेका प्रसंग  
प्राप्त होगा ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचनसे योगके पारिणामिकपत्ता सिद्ध हुआ । अथवा,  
'योग' यह औदयिकभाव है, क्योंकि, शरीररत्नामकर्मके उदयका विनाश होनेके पश्चात्  
ही योगका विनाश पाया जाता है । और, ऐसा माननेपर भव्यत्वभावके साथ व्यभिचार  
भी नहीं आता है, क्योंकि, कर्मस्वन्धके विरोधी पारिणामिकभावकी कर्मसे उत्पत्ति  
माननेमें विरोध आता है । शेष सूत्रार्थं सुगमं है ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

१. निरुपमोगमन्त्यम् । त. ए. ३, ४४ । अन्ते समगन्त्यम् । किं तत् ? कर्मणम् । इत्थियमणालिकया  
सन्धादीनामुपलब्धियपसोगाः । तदभावाविनिषयोणम् । स. सि. ३, ४४.

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदपहुडि जाव अजोगिकेवली ओर्धं ॥ ४९ ॥

सुगममेदं ।

सामाइयछेदोवद्वावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदपहुडि जाव आणि यट्टि ति ओर्धं ॥ ५० ॥

एदं पि सुगमं ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अपमत्तसंजदा ओर्धं ॥ ५१ ॥

कुदो ? खओवससियं मावं यडि विसेसाभावा । पमत्तापमत्तसंजदेसु अणो वि भावा संति, एत्थ ते किण्ण परूविदा ? ण, तेसिं पमत्तापमत्तसंजमत्ताभावा । पमत्ता-पमत्तसंजदानं भावेसु पुच्छेदेसु ण हि सम्मत्तादिभावाणं परूवणा णाओववणोत्ति ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइया उवसमा खवा ओर्धं ॥ ५२ ॥

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोमं प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान है ॥ ४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमं प्रमत्तसंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक भाव ओघके समान है ॥ ५० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

परिहारशुद्धिसंयतोमं प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत ये भाव ओघके समान हैं ॥ ५१ ॥

क्योंकि, क्षायोपरामिक भावके प्रति दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

शंका — प्रमत्त और अप्रमत्त संयत जीवोंमें अन्य भाव भी होते हैं, यहांपर वे क्यों नहीं कहे ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, वे भाव प्रमत्त और अप्रमत्त संयम होनेके कारण नहीं हैं । दूसरी बात यह है कि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोके भाव पूछनेपर सम्यक्त्व आदि भावोंकी प्ररूपणा करना न्याय सगत नहीं है ।

सुद्धिसाम्परायिकशुद्धिसंयतोमं सुद्धिसाम्परायिक उपशामक और क्षपक भाव ओघके समान है ॥ ५२ ॥

१ सयमाउवादेन संवेषां सयतानां ××× सामान्यवत् । स ति १, ८

२ प्रतियु ' णाओववणो' ति' इति पाठ ।

उवसामराणसुवससिओ भावो, खवराणं खइओ भावो ति उचं होदि ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चटुट्टाणी ओर्धं ॥ ५३ ॥

सुगममेदं ।

संजदासंजदा ओर्धं ॥ ५४ ॥

एदं पि सुगमं ।

असंजदेसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि ति ओर्धं ॥ ५५ ॥

सुगममेदं, पुवं परूविदत्तादो ।

एव सजममराणा समत्ता ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसायीदरागछुदुमत्था ति ओर्धं ॥ ५६ ॥

उपशामकोंके औपशामिक भाव और क्षपकोंके क्षायिक भाव होता है, यह अर्थ सूत्रद्वारा कहा गया है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोमं उपशान्तकषाय आदि चारों गुणस्थानवर्ती भाव ओघके समान हैं ॥ ५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतासंयत भाव ओघके समान है ॥ ५४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

असंयतोमं मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक भाव ओघके समान है ॥ ५५ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, पहले प्ररूपण किया जा चुका है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्य गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ५६ ॥

१ ×× सयतासयतानां ×× सामान्यवत् । स ति १, ८

२ ××× असयतानां च सामान्यवत् । स ति १, ८

३ दर्शनाउवादेन चक्षुदर्शनाचक्षुदर्शनावधिदर्शनकेवलदर्शनिनां सामान्यवत् । स ति १, ८

द्वे ? मिच्छादिद्विष्यद्वि लीणकसायपज्जंतसन्मगुणद्वयानं चक्षु-अचक्षु-  
द्वयभिरद्वियानमनुलभा ।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ॥ ५७ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ ५८ ॥

पदाणि द्वे नि मुत्तानि सुगमाणि ।

एत दसगमगणा समत्ता ।

लेसाणुवादेण किण्हलेसिसयणीललेसिसय काउलेसिसए सु चट्ट-  
द्वणी ओधं ॥ ५९ ॥

चट्टुहं ठाणाणं समाहारो चट्टुद्वणी । केण समाहारो ? एगलेसाए । सेसं सुगमं ।

तेउलेसिसय-पमलेसिसए सु मिच्छादिद्विष्यद्वि जाव अपमत्त-  
संजदा ति ओधं ॥ ६० ॥

एदं सुगमं ।

क्योंकि, मिथ्यादृष्टिसे लेकर दर्शनरूपय पर्यंत कोई गुणस्थान चक्षुदर्शन और  
अक्षुर्दर्शननाले जीवोंके स्थित नहीं पाया जाता है ।

अधिदर्शनी जीवोंके भाव अधिदानियोंके भावोंके समान हैं ॥ ५७ ॥

केवलदर्शनी जीवोंके भाव केवलज्ञानियोंके भावोंके समान हैं ॥ ५८ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेस्यमार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेस्या, नीललेस्या और कापोतलेस्या बालोंमें  
आदिके चार गुणस्थानमतीं भाव ओषके समान हैं ॥ ५९ ॥

चार स्थानोंके समाहारको चतु-स्थानी कहते हैं ।

शंका—चारों गुणस्थानोंका समाहार किस अपेक्षासे है ?

यमाधान—एक लेस्यानी अपेक्षासे है, अर्थात् आदिके चारों गुणस्थानोंमें एकसी  
लेस्या पाई जाती है ।

दोम स्थायें सुगम है ।

तेजोलेस्या और पमलेस्या बालोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपमत्तसंपत्त गुणस्थान  
तक भाव ओषके समान हैं ॥ ६० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ लेसाणुवादेण पल्लेयानमलेसयानां ष सामान्यत्वं । स. सि. १, ८.

सुककलेसिसए सु मिच्छादिद्विष्यद्वि जाव सजोगिकेवलि ति  
ओधं ॥ ६१ ॥

सुगममेदं ।

एवं लेससामगणा समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिए सु मिच्छादिद्विष्यद्वि जाव अजोगि-  
केवलि ति ओधं ॥ ६२ ॥

कुदो ? एत्थत्तणगुणद्वयानं ओघगुणद्वयानेहितो भवियत्तं पडि भेदाभावा ।

अभवसिद्धिय ति को भावो, पारिणाभिओ भावो ॥ ६३ ॥

कुदो ? कम्मणसुदएण उवसेण एएण सओवसेण वा अभवियत्ताणुप्पचीदो ।  
भवियत्तस्स वि पारिणाभिओ चैय भावो, कम्मणसुदय-उवसम-सय-सओवसेसिहि भविय-  
त्ताणुप्पचीदो । गुणद्वयानस्स भावमभणिय मग्गणद्वयानभावं परुत्तस्स कोभिप्पाओ ?

शुक्कलेस्यानालामें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओषके  
समान हैं ॥ ६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार लेस्यमार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिकोमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली  
गुणस्थान तक भाव ओषके समान हैं ॥ ६२ ॥

क्योंकि, भव्यमार्गणासम्बन्धी गुणस्थानोंका ओघ गुणस्थानोंसे भव्यत्व नामक  
पारिणामिकभावके प्रति कोई भेद नहीं है ।

अभव्यसिद्धिक यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ६३ ॥

क्योंकि, कर्मोंके उदयसे, उपरामसे, क्षयसे, अथवा क्षयोपरामसे अभव्यत्व भाव  
उत्पन्न नहीं होता है । इसी प्रकार भव्यत्व भी पारिणामिक भाव ही है, क्योंकि, कर्मोंके  
उदय, उपराम, क्षय और क्षयोपरामसे भव्यत्व भाव उत्पन्न नहीं होता ।

शंका—यहाँपर गुणस्थानके भावको न कह कर मार्गणास्थानसम्बन्धी भावका  
प्ररूपण करते हुए आचार्यका क्या अभिप्राय है ?

१ मव्याणुवादेण मव्यानां मियादथयायोगकेवल्लानां सामान्यत्वं । स. सि. १, ८.

२ अव्यानां पारिणामिको भाव । स. सि. १, ८.

गुणद्वयभावो अउत्तो वि णाणिज्जओ । अभवियत्तं पुण उवेदसमेवेक्खेदं, पुब्बसपरू-  
विदसरूत्तदादो । तेण मग्गणाभावो उत्तो ति ।

एव भवियमग्गणा समत्ता ।

समत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिपुहुडि जाव  
अजोगिकेवलि ति ओघं ॥ ६४ ॥

सुगममेदं ।

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि ति को भावो, खइओ  
भावो ॥ ६५ ॥

कुदो ? दंसणमोहणीयस्स णिमूलम्बखएणुप्पणसम्मत्तादो ।

खइयं सम्मत्तं ॥ ६६ ॥

खइयसम्मादिट्ठीसु सम्मत्तं खइयं चैव होदि ति अणुत्तिसिद्धीदो णेदं सुत्ताढवे-  
दव्वं ? ण एस दोसो । कुदो ? ण ताव खइयसम्मादिट्ठी सण्णा खइयस्स सम्मत्तस्स

समाधान—गुणस्थानसम्बन्धी भाव तो विना कहे भी जाना जाता है । किन्तु  
अभव्यत्व ( कौनसा भाव है यह ) उपदेशकी अपेक्षा रखता है, क्योंकि, उसके स्वरूपका  
पहले प्ररूपण नहीं किया गया है । इसलिए यहाँपर ( गुणस्थानका भाव न कह कर )  
मार्गणासम्बन्धी भाव कहा है ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समान्त हुई ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगि-  
केवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ६४ ॥  
यह सूत्र सुगम है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव  
है ॥ ६५ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मके निर्मूल क्षयसे क्षायिकसम्यक्त्व उत्पन्न होता है ।

उक्त जीवोंके क्षायिक सम्यक्त्व होता है ॥ ६६ ॥

शंका—क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है, यह बात अनुक-  
स्तिष्ठ है, इसलिए इस सूत्रका आरम्भ नहीं करना चाहिए ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि यह संज्ञा क्षायिक-

१ सम्यक्त्वावकाशेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेः क्षायिको भाव । स. ति १, ८.

२ क्षायिक सम्यक्त्वम् । स. ति १, ८

अत्थित्तं गमयदि, तवण-भक्खरादिणामस्स अणुअट्ठस्स वि उवलंभा । ण च अण्णं किञ्चि  
खइयसम्मत्तस्स अत्थित्तमिह चिण्हमत्थि । तदो खइयसम्मादिट्ठिस्स खइयं चैव सम्मत्तं  
होदि ति जाणाविदं । अवरं च ण सब्बे सिस्सा उपपण्णा चैव, किंतु अउप्पण्णा  
वि अत्थि । तेहि खइयसम्मादिट्ठीणं किंखुवसमसम्मत्तं, किं खइयसम्मत्तं, किं वेदगसम्मत्तं  
होदि ति पुच्छेदे एदस्स सुत्तस्स अवयारो जादो, खइयसम्मादिट्ठीणं खइयं चैव सम्मत्तं  
होदि, ण सेसदोसम्मत्ताणि ति जाणावणं अणुवक्खणक्खवयाणं खइयभावाणं खइय-  
चरित्तस्सेव दंसणमोहखवयाणं पि खइयभावाणं तस्सबंधेण वेदयसम्मत्तोदए संते वि  
खइयसम्मत्तस्स अत्थित्तप्पसंगे तप्पडिसेहंउं वा ।

ओदइएण भवेण पुणो असंजदो ॥ ६७ ॥

सुगममेदं ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ति को भावो, खओवसमिओ  
भावो ॥ ६८ ॥

सम्यक्त्वके अस्तित्वका ज्ञान नहीं कराती है । इसका कारण यह है लोकमें तपन, भास्कर  
आदि अनन्वर्थ ( अर्थयूत्य या रूढ ) नाम भी पाये जाते हैं । इसके अतिरिक्त अन्य कोई  
चिन्ह क्षायिकसम्यक्त्वके अस्तित्वका है नहीं । इसलिए क्षायिकसम्यग्दृष्टिके क्षायिक  
सम्यक्त्व ही होता है, यह बात इस सूत्रसे स्थापित की गई है । दूसरी बात यह भी है कि  
सभी शिष्य व्युत्पन्न नहीं होते, किन्तु कुछ अब्युत्पन्न भी होते हैं । उनके द्वारा क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टियोंके क्या उपशमसम्यक्त्व है, किंवा क्षायिकसम्यक्त्व है, किंवा वेदकसम्यक्त्व  
होता है, ऐसा पूछने पर क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायिक ही सम्यक्त्व होता है, शेष  
दो सम्यक्त्व नहीं होते हैं, इस बातके जतलानेके लिए, अथवा क्षायिकभाववाले अपूर्व-  
करण गुणस्थानवर्ती क्षपकोंके क्षायिक चारित्रिकके समान क्षायिकभाववाले भी जीवोंके  
दर्शनमोहनीयका क्षपण करते हुए उसके सम्बन्धसे वेदकसम्यक्त्वप्रकृतिके उदय रहने  
पर भी क्षायिकसम्यक्त्वके अस्तित्वका प्रसंग प्राप्त होनेपर उसका प्रतिबंध करनेके लिए  
इस सूत्रका अवतार हुआ है ।

किन्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत यह कौनसा  
भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ६८ ॥

१ असंयतत्वमौदयिकेन भावेन । स. ति १, ८

२ संयतासंयतप्रमत्तप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भाव । स. ति १, ८

कृदो ? चारिचारणकर्मोदए गंतो नि जीवसहचरित्तोदेसस्स संजमांसंजम-  
पमत्तअप्पमत्तसंजमम्म चात्तिवामस्सुवलंभा ।

खइयं सम्मत्तं ॥ ६९ ॥  
सुगममेदं ।

चटुण्हसुवसमा ति को भावो, ओवसमिओ भावो ॥ ७० ॥  
मोहणीयसुमुममेणुप्पण्णचारित्तत्तादो, मोहोवसमण्हेदुचारित्तसमण्णित्तत्तादो य ।  
खइयं सम्मत्तं ॥ ७१ ॥

पारदंणमोहणीयस्सवणो क्कट्ठकरणिज्जो वा उवसमसेट्ठि ण चट्ठदि ति जाणा-  
ण्णट्ठमेदं युत्तं भणिट्ठं । सेसं सुगमं ।

चटुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि ति को भावो,  
खइओ भावो ॥ ७२ ॥

न्यायिके, चारिवावरणकर्मके उदय होने पर भी जीवके स्वभावभूत चारित्रके  
एक देशत्वा संसारागम, प्रगतसयम जोर अप्रमत्तसंयमका ( उक्त जीवके कर्मश.)  
आभिर्भात पाया जाता है ।

उक्त जीवके सम्यग्दर्शन धायिक ही होता है ॥ ६९ ॥  
यह सूत्र सुगम है ।

अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंके धायिकसम्यग्दृष्टि उपशामक यह कौनसा  
भाा है ? औपशामिक भाव है ॥ ७० ॥

न्यायिक, उपशान्तकपायकं मोहनीयकर्मके उपशामसे उत्पन्न हुआ चारित्र पाया  
जानेसे जोर जोर तीन उपशामकोंके मोहोपशामके कारणभूत चारित्रसे समन्वित होनेसे  
औपशामिकभाव पाया जाता है ।

धायिकसम्यग्दृष्टि चारों उपशामकोंके सम्यग्दर्शन धायिक ही होता है ॥ ७१ ॥  
दर्शनमोहनीयकर्मके क्षपणका प्रारम्भ करनेवाला जीव, अथवा कृतकृत्यवेदक  
सम्यग्दृष्टि जीव, उपशामथेणीपर नहीं चढ़ता है, इस बातका ज्ञान करानेके लिए यह सूत्र  
कहा गया है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

धायिकसम्यग्दृष्टि चारों गुणस्थानोंके क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली  
यह कौनसा भाा है ? धायिक भाा है ॥ ७२ ॥

१ साधित्तं सम्यग्गम् । स. सि. १, ८.

२ पुण्णोपशामकानोपनिमित्तो माः । स. सि. १, ८.

३ धारिक गगत्तम् । य. नि १, ८.

४ जेयाणां गगान्यवत् । स. सि. १, ८

कृदो ? मोहणीयस्स सवणहेदुअपुव्वसण्णित्तत्तादो मोहकसएणु-  
प्पण्णचारित्तत्तादो धादिकखएणुप्पण्णणवकेवलल्लीहितो ।

खइयं सम्मत्तं ॥ ७३ ॥  
सुगममेदं ।

वेदयसम्मादिट्ठिसु असंजदसम्मादिट्ठि ति को भावो, खओव-  
समिओ भावो ॥ ७४ ॥  
सुगममेदं ।

खओवसमियं सम्मत्तं ॥ ७५ ॥

ओवसिम् असंजदसम्मादिट्ठिस्स तिण्णि भावा सामण्णेण परूविदा, एदं सम्मत्त-  
मोवसमियं सइयं खओवसमियं वेत्ति ण परूविदं । संपहि सम्मत्तमग्गणाए एदं सम्मत्त-  
मोवसमियं सइयं खओवसमियं वेत्ति एदेहि सुत्तेहि जाणाविदं । सेसं सुगमं ।

न्यायिक, अपूर्वकरण आदि तीन क्षपकोंका मोहनीयकर्मके क्षपणके कारणभूत  
अपूर्वसंवावाले चारित्रसे समन्वित होनेके कारण, क्षीणकपायचीतरागछद्मस्थके मोहक्षयसे  
उत्पन्न हुआ चारित्र होनेके कारण, तथा सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके धातिया  
कर्मोंका क्षय हो जानेसे उत्पन्न नन केवललब्धियोंकी अपेक्षा धायिक भाव पाया जाता है ।

चारो क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके सम्यग्दर्शन धायिक ही होता  
है ॥ ७३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशामिक  
भाव है ॥ ७४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके सम्यग्दर्शन क्षायोपशामिक होता है ॥ ७५ ॥  
ओवप्ररूपणमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके सामान्यसे तीन भाव कहे हैं, किन्तु  
उनका यह सम्यग्दर्शन औपशामिक है, या धायिक है, किंवा क्षायोपशामिक है, यह प्ररूपण  
नहीं किया है । अब सम्यन्तत्वमार्गणमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका यह सम्यग्दर्शन  
औपशामिकसम्यक्चित्तियोंके औपशामिक होता है, धायिकसम्यग्दृष्टियोंके धायिक होता है  
और वेदकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायोपशामिक होता है, यह बात इन सूत्रोंसे सूचित की गई  
है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

१ क्षायोपशामिकसम्यग्दृष्टि उक्खयत्तस्यग्दृष्टे क्षायोपशामिको मात्र । स. सि. १, ८.

२ क्षायोपशामिक सम्यक्त्वम् । स. सि. १, ८.



ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ ७६ ॥

अवगयत्थमेदं ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥ ७७ ॥

णादुहेमयं ।

खओवसमियं सम्मत्तं ॥ ७८ ॥

कुदो ? दंसणमोहोदए संते वि जीवपुणीभूदसदहणस्स उप्पत्तीए उवलंभा ।

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि ति को भावो, उवसमिओ भावो ॥ ७९ ॥

कुदो ? दंसणमोहवसमेणुप्पणसम्मत्तादो ।

उवसामियं सम्मत्तं ॥ ८० ॥

किन्तु वेदकसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ७६ ॥

इस सूत्रका अर्थ जाना हुआ है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अग्रमत्तसंयत यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिकभाव है ॥ ७७ ॥

इस सूत्रका अर्थ ज्ञात है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन क्षायोपशमिक होता है ॥ ७८ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयके ( अंगभूत सम्यक्त्वप्रकृतिके ) उदय रहने पर भी जीवके गुणस्वरूप श्रद्धानकी उत्पत्ति पाई जाती है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव है ॥ ७९ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टियोंका सम्यक्त्व दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमसे उत्पन्न हुआ है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है ॥ ८० ॥

१ अयत्त पुनरौदयिनेन भावेन । स सि १, ८

२ सयतासयत्तप्रमत्तप्रमत्तसयत्ताना क्षायोपशमिको भाव । स सि १, ८,

३ क्षायोपशमिक सम्यक्त्वम् । स सि १, ८

४ औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असयत्तसम्यग्दृष्टेरोपशमिको भाव । स सि १, ८

५ औपशमिक सम्यक्त्वम् । स सि १, ८

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ ८१ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥ ८२ ॥

सुगममेदं ।

उवसमियं सम्मत्तं ॥ ८३ ॥

एदं पि सुगमं ।

चटुण्हसुवसमा ति को भावो, उवसमिओ भावो ॥ ८४ ॥

उवसमियं सम्मत्तं ॥ ८५ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी ओवं ॥ ८६ ॥

किन्तु उपशमसम्यक्त्वी असंयतसम्यग्दृष्टि जीविका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ८१ ॥

ये दोनो ही सूत्र सुगम हैं ।

उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अग्रमत्तसंयत यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ८२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है ॥ ८३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंके उपशमसम्यग्दृष्टि उपशमिक यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव है ॥ ८४ ॥

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है ॥ ८५ ॥

ये दोनो ही सूत्र सुगम हैं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि भाव ओवके समान है ॥ ८६ ॥

१ असयत्त पुनरौदयिनेन भावेन । स सि १, ८

२ सयतासयत्तप्रमत्तप्रमत्तसयत्ताना क्षायोपशमिको भावः । स सि १, ८

३ औपशमिक सम्यक्त्वम् । स सि १, ८

४ चतुण्हसुवसमानासौपशमिको भावः । स सि १, ८

५ आपशमिक सम्यक्त्वम् । स सि १, ८ ६ सासादनसम्यग्दृष्टे परिणामिको भाव । स सि १, ८

समामिच्छादिद्वी ओषं ॥ ८७ ॥

मिच्छादिद्वी ओषं ॥ ८८ ॥

तिष्णि धि युत्तानि अवगयत्याणि ।

एव समत्तमगणा समत्ता ।

सणियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिद्विपहुडि जाव खीणकसाय-  
वीदरागच्छुमत्था त्ति ओषं ॥ ८९ ॥

सुगममेदं ।

असण्णि त्ति को भावो, ओदइओ भावो ॥ ९० ॥

बुद्धो ? गोदंदिपानरुणस्स सच्चवादिफइयाणसुदएण असण्णित्तुप्पत्तीदो । असण्णि-  
गुणद्वयगतो क्खिण परुविदो ? ण, उवदेसमंतरेण तदवगामादो ।

एव सण्णिमगणा समत्ता ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि भाव ओषके समान है ॥ ८७ ॥

मिथ्यादृष्टि भाव ओषके समान है ॥ ८८ ॥

इन तीनों ही सूत्रोंका अर्थ यात है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

मंतिमार्गणाके अनुवादमे संज्ञियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणक्रपायवीतराग-  
छत्रय तक यात्र ओषके समान है ॥ ८९ ॥

यत् सूत्र सुगम है ।

जर्मनी यह कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है ॥ ९० ॥

फ्योंकि, नोगच्छियानरणकर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे असंखित्व भाव  
उत्पन्न होता है ।

अंके—यहाँपर असंखी जीवोंके गुणस्थानसम्बन्धी भावको फ्यों तहीं बतलाया ?  
समाधान—तहीं, फ्योंकि, उपदेशके बिना ही उसका ज्ञान हो जाता है ।

इस प्रकार संज्ञीमार्गणा समाप्त हुई ।

१ मत्तमिण्यथे. ज्ञायोपजनिरो भावः । स ति १, ८

२ विपपरेशेभंतीरो भावः । म ति १, ८. ३ सत्ताउवादेन सत्तिनां सामान्यवत् । स. ति. १, ८.

४ अ. सत्तिनामीश्रीरो भावः । स. ति १, ८. ५ तदुभयव्यपदेशदक्षितानां सामान्यवत् । स. ति. १, ८.

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिद्विपहुडि जाव सज्जोगि-  
केवलि त्ति ओषं ॥ ९१ ॥

सुगममेदं ।

अणाहारारणं कम्मइयभंगो ॥ ९२ ॥

एदं पि सुगमं । कम्मइयादो विसेसपटुप्पायणहं उत्तरसुचं भणदि-

णवरि विसेसो, अजोगिकेवलि त्ति को भावो, खइओ भावो  
॥ ९३ ॥

सुगममेदं ।

( एव आहारासमगणा समत्ता )

एवं भावाणुगमो त्ति समत्तमण्णिओगहारं ।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोंगिकेवली तक  
भाव ओषके समान है ॥ ९१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अनाहारक जीवोंके भाव कर्मणकाययोगियोंके समान हैं ॥ ९२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

कर्मणकाययोगियोंमें विशेषता प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—  
किन्तु विशेषता यह है कि कर्मणकाययोगी अयोगिकेवली यह कौनसा भाव है ?

क्षायिक भाव है ॥ ९३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

( इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई । )

इस प्रकार भवानुगमनामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

१ आहाराउवादेन आहारकर्णां × × सामान्यवत् । स ति. १, ८.

२ × × अनाहारकर्णां च सामान्यवत् । स ति १, ८

३ भाव परिसमाप्त । स ति. १, ८.

**एतद्गणितम्**



सिरि-भगवंत-पुष्पकंदन-भूदचलि-पणीदेो

## छत्रखंडागमो

सिरि-धीरसेणाहरिय-विरड्य-धचला-दीका-समणिणदो

तस्स

पडमखंडे जीवट्टाणे

## अप्पावहुगाणुगमो

केलणणुजोडयलोयलोए जिणे णमंसिचा ।  
अप्पवहुआणुओअं जहेवएसं पस्सेमो ॥

अप्पावहुआणुगमेण दुविहो णिहेसो, ओधेण आदेसेण यं ॥१॥

तय णाम-ट्टणा-द्व-भामभेएण अप्पावहुअं चउव्विहं । अप्पावहुअसदो णामप्पा-  
वहुअं । एदम्हादो एदस्स बहुत्तमपत्तं वा एदमिदि एयत्तज्जारोवेण इविदं ठवणप्पा-  
वहुगं । दव्यप्पावहुअं दुविहं आगम-णोआगमभेएण । अप्पावहुअपाहुडजाणओ अणुवजुत्तो

केवलजानके द्वारा लोक ओर अलोकको प्रकाशित करनेवाले श्री जिनेन्द्र देवोंको  
नमस्कार करके जिस प्रकारसे उपदेश प्राप्त हुआ है, उसके अनुसार अल्पबहुत्व अनुयोग-  
धारता प्ररूपण करते हैं ॥

अल्पाहुत्तानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओषनिर्देश और आदेश-  
निर्देश ॥ १ ॥

नाम, स्थापना इव्य ओर भावके भेदसे अल्पबहुत्व चार प्रकारका है । उनमेंसे  
अन्यत्रुत्त शब्द नामअल्पबहुत्व है । यह इससे बहुत है, यथवा यह इससे अल्प है,  
इस प्रकार परन्तुके अच्यारोपने स्थापना करना स्थापनाअल्पबहुत्व है । इव्यअल्प-  
बहुत्व आगम और नो-आगमके भेदसे दो प्रकारका है । जो अल्पबहुत्व-विषयक प्राभृतको  
जाननेवाला है, परंतु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित है उसे आगमद्रव्य अल्पबहुत्व

१ अप्पावहुआणुगमे । त्तरु विणिता तत्तानेत विणपय व । त ति १, ८

आगमद्रव्यप्पावहुअं । णोआगमद्रव्यप्पावहुअं तिविहं जाणुअसरीर-भविय-तव्वदिरित्तभेदा ।  
तय जाणुअसरीरं भविय-वड्डमाण-समुज्जादमिदि तिविहमवि अवगयत्थं । भवियं भविस्स-  
काले अप्पावहुअपाहुडजाणओ । तव्वदिरित्तअप्पावहुअं तिविहं सच्चित्तमचित्तं भिस्समिदि ।  
जीवदव्यप्पावहुअं सचित्तं । सेसदव्यप्पावहुअमचित्तं । दोणं पि अप्पावहुअं भिस्सं ।  
भावप्पावहुअं दुविहं आगम-णोआगमभेएण । अप्पावहुअपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगम-  
भावप्पावहुअं । णाण-दंसणाणुभाग-जोगादिविसयं णोआगमभावप्पावहुअं ।

एदसु अप्पावहुएसु केण पयदं ? सच्चित्तदव्यप्पावहुएण पयदं । किमप्पावहुअं ?  
सखाधम्मो, एदम्हादो एदं तिणुणं चदुणुणमिदि दुद्धिगेज्जो । कस्सप्पावहुअं ? जीव-  
दव्वस्स, धम्मिवदिरित्तिसंखाधम्मणाणुवलंभा । केणप्पावहुअं ? परिणाभिएण भवेण ।

कहते हैं । नोआगमद्रव्यअल्पबहुत्व शायकरारीर, भावी ओर तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन  
प्रकारका है । उनमेंसे भावी, वर्तमान ओर अतीत, इन तीनों ही प्रकारके शायकरारीरका  
अर्थ जाना जा चुका है । जो भवियकालमें अल्पबहुत्व प्राभृतका जाननेवाला होगा, उसे  
भावी नोआगमद्रव्य अल्पबहुत्वनिक्षेप कहते हैं । तद्व्यतिरिक्त अल्पबहुत्व तीन प्रकारका  
है- सचित्त, अचित्त और मिश्र । जीवद्रव्य विषयक अल्पबहुत्व सचित्त है, शेष इव्य-  
विषयक अल्पबहुत्व अचित्त है, और इन दोनोंका अल्पबहुत्व मिश्र है । आगम और  
नोआगमके भेदसे भाव-अल्पबहुत्व दो प्रकारका है । जो अल्पबहुत्व-प्राभृतका जानने-  
वाला है ओर वर्तमानमें उसके उपयोगसे युक्त है उसे आगमभाव अल्पबहुत्व कहते हैं ।  
आत्माके ज्ञान ओर दर्शनको, तथा पुद्गलकर्मोंके अनुभाग ओर योगादिको विषय करने-  
वाला नोआगमभाव अल्पबहुत्व है ।

शंका—इन अल्पबहुत्वोंमेंसे प्रकृतमें किससे प्रयोजन है ?

समाधान—प्रकृतमें सचित्त इव्यके अल्पबहुत्वसे प्रयोजन है ।

(अव निर्देश, स्वामित्वादि प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारोंसे अल्पबहुत्वका निर्णय  
किया जाता है ।)

शंका—अल्पबहुत्व क्या है ?

समाधान—यह उससे तिगुणा है, अथवा चतुर्गुणा है, इस प्रकार बुद्धिके द्वारा  
प्राहण करने योग्य संख्याके धर्मको अल्पबहुत्व कहते हैं ।

शंका—अल्पबहुत्व किसके होता है, अर्थात् अल्पबहुत्वका स्वामी कौन है ?

समाधान—जीवद्रव्यके अल्पबहुत्व होता है, अर्थात् जीवद्रव्य उसका स्वामी है,  
पर्यंकि, धर्मको छोड़कर संख्याधर्म पृथक् नहीं पाया जाता ।

शंका—अल्पबहुत्व किससे होता है, अर्थात् उसका साधन क्या है ?

समाधान—अल्पबहुत्व परिणामिक भावसे होता है ।

कथप्पावहुअं ? जीवद्वये । केवचिरमप्पावहुअं ? अणादि-अपज्जवसिदं । कुदो ? सब्वेसि गुणद्वयणमेदेणैव पमाणेण सव्वकालमवहाणादो । कइविहमप्पावहुअं ? मग्गणभेयभिण्ण-गुणद्वयणमेत्तं ।

अप्यं च बहुअं च अप्पावहुआणि । तेसिमगुमो अप्पावहुआणुमो । तेण अप्पावहुआणुमेण णिद्वेसो दुनिहो हेदि ओघो ओद्वेसो ति । संगहिद्वयणफलावो दव्वट्टियणिंघणो ओघो णाम । असंगहिद्वयणफलाओ पुव्विच्छत्थं वयवणिंघो पज्जव-द्वियणिंघणो ओद्वेसो णाम ।

**ओघेण तिसु अद्दासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवां ॥ २ ॥**

तिसु अद्दासु ति वयणं चत्तारि अद्दाओ पडिसेहं । उवसमा ति वयणं खवया-दिपडिसेहफलं । पवेसणेण च वयणं संचयपडिसेहफलं । तुल्ला ति वयणेण विसरिस-च-पडिसेहो कदो । आदिमसु तिसु गुणद्वयेण उवसामया पवेसणेण तुल्ला सरिसा । कुदो ?

शंका—अल्पवहुत्व किसमें होता है, अर्थात् उसका अधिकरण क्या है ?

समाधान—जीवद्रव्यमें, अर्थात् जीवद्रव्य अल्पवहुत्वका अधिकरण है ।

शंका—अल्पवहुत्व कितने समय तक होता है ?

समाधान—अल्पवहुत्व अनादि और अनन्त है, क्योंकि, सभी गुणस्थानोंका इसी प्रमाणसे सर्वकाल अवस्थान रहता है ।

शंका—अल्पवहुत्व कितने प्रकारका है ?

समाधान—मार्गणाओंके भेदसे गुणस्थानोंके जितने भेद होते हैं, उतने प्रकारका अल्पवहुत्व होता है ।

अल्प और बहुत्वको अर्थात् हीनता और अधिकताको अल्पवहुत्व कहते हैं । उनका अनुगम अल्पवहुत्वानुगम है । उससे अर्थात् अल्पवहुत्वानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । जिसमें सम्पूर्ण वचन-कलाप संगृहीत है, और जो द्रव्यार्थिकनय-निमित्तक है, वह ओघनिर्देश है । जिसमें सम्पूर्ण वचन-कलाप संगृहीत नहीं है, जो पूर्वांक अर्थवयव अर्थात् ओघानुगममें बतलाये गये भेदोंके आश्रित है और जो पर्यार्थिकनय-निमित्तक है वह आदेशनिर्देश है ।

ओघनिर्देशसे अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा परस्पर तुल्य हैं, तथा अन्य सब गुणस्थानोंके प्रमाणसे अल्प हैं ॥ २ ॥

‘तीनों गुणस्थानोंमें’ यह वचन चार उपशामक गुणस्थानोंके प्रतिषेध करनेके लिए दिया है । ‘उपशामक’ यह वचन क्षपकादिके प्रतिषेधके लिए दिया है । ‘प्रवेशकी अपेक्षा’ इस वचनका फल संचयका प्रतिषेध है । ‘तुल्य’ इस वचनसे विसदृशताका प्रतिषेध किया है । श्रेणीसम्बन्धी आदिके तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी

१ प्रतिपु ‘पुव्विच्छत्ता’ इति पाठ । मप्रती तु स्वीहृत्पाठ ।

२ सामान्येन तावत् नय उपशामकाः सर्वत स्तीका स्वगुणस्थानकालेषु प्रवेशेन तुल्यवस्था । स सि १, ८

एआदिचउण्णमेत्तजीवाण पनेसं पडि पडिसेहाभावा । ण चं सव्वद्धं तिसु उवसामगेषु पविस्तंतीविह सिरिसत्तणियमो, संभवं पडुच्च सरिसत्तउचीदो । एद्वेसि संचओ सरिसो असरिसो चि वा किण्ण परूविदो ? ण एम दोसो, पवेससारिच्छेण तेसिं संचयसारिच्छस्स वि अवगमादो । पविससमाणजीवाणं विसरिससे संते संचयस विसरिसत्तं, अण्णहा दिद्धविरोहादो । अणुव्वादिअद्वणं थोत्र-बहुत्तादो विसरिसत्तं संचयस्स किण्ण होदि चि पुच्छिदं ण हेदि, तिण्हसुवसामगणमद्वाहिंतो उक्कस्सपवेसंतरस्स बहुत्तुवेसादो । तद्वा तिण्हं संचओ वि सरिसो चेय । थोवा उवरि उच्चमाणगुणद्वयणण संख पेक्खिय थोवा चि भणिदा ।

अपेक्षा तुल्य अर्थात् सदृश होते हैं, क्योंकि, एकसे लेकर चौपन मात्र जीवोंके प्रवेशके प्रति कोई प्रतिषेध नहीं है । किन्तु सर्वकाल तीनों उपशामकोंमें प्रवेश करनेवाले जीवोंकी अपेक्षा सदृशताका नियम नहीं है, क्योंकि, संभावनाकी अपेक्षा सदृशताका कथन किया गया है ।

शंका—इन तीनों उपशामकोंका संचय सदृश होता है, या असदृश होता है, इस बातका प्ररूपण क्यों नहीं किया ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, प्रवेशकी सदृशतासे उनके संचयकी सदृशताका भी ज्ञान हो जाता है । प्रविश्यमान जीवोंकी विसदृशता होने पर ही संचयकी विसदृशता होती है, यदि ऐसा न माना जाय तो प्रत्यक्षसे विरोध आता है ।

शंका—अपूर्वकरण आदिके कालोंमें परस्पर अल्पवहुत्व होनेसे संचयके विसदृशता क्यों नहीं हो जाती है ?

समाधान—ऐसी आशंकापर आचार्य उत्तर देते हैं कि अपूर्वकरण आदिके कालके हीनाधिक होनेसे संचयके विसदृशता नहीं होती है, क्योंकि, तीनों उपशामकोंके कालोंसे उच्छेद प्रवेशान्तरका काल बहुत है ऐसा उपदेश पाया जाता है । इसलिए तीनोंका संचय भी सदृश ही होता है ।

विशेषार्थ—यहां पर शंकाकारने यह शंका उठाई है कि जब अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंका काल हीनाधिक है, अर्थात् अपूर्वकरणका जितना काल है, उससे संख्यात-गुणा हीन अनित्यिकरणका काल है और उससे संख्यातगुणा हीन सूक्ष्मसाम्प्रयायका काल है, तब इन गुणस्थानोंमें संचित होनेवाली जीवराशिका प्रमाण भी हीनाधिक ही होना चाहिए, सदृश नहीं होना चाहिए ? इसके समाधानमें यह कहा गया है कि तीनों उपशामकोंके कालोंसे उच्छेद प्रवेशान्तरके बहुत होनेका उपदेश पाया जाता है । इसका अभिप्राय यह है कि यद्यपि अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंका काल हीनाधिक है, तथापि वह प्रत्येक अन्तर्गुह्यं या असंख्यात समयप्रमाण है । किन्तु इन गुणस्थानोंमें प्रवेश कर संचित होनेवाले जीव संख्यात अर्थात् उपशामश्रेणिके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक तीन

१ प्रतिपु ‘पडिसेहमात्राण च’ इति पाठ ।

२ मतिपु ‘णण्णहा’ इति पाठ ।

उपनिषत्कसायवीदरागच्छदुमत्या तत्तिया चैयं ॥ ३ ॥

पुथुगुणारंभो हिमदो ? उर्गतकसायस्य कसाउवसाभरणं च पचासतीए  
असास्य मंदंमणकलो । जेपि पचासती अन्थि तेभिमेगजोगो, इदरेमि भिणजेगो  
येदि ति एदेण जणादिं ।

सवा संखेजगुणां ॥ ४ ॥

कुरो ? उगामगुणद्वणमुक्कसेण परिस्समाणचउवणजनिहितो खवगेगुण-  
गो चार ( ३०४ ) अंत क्षपकत्रेणिके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक छह सो आठ  
( ३०८ ) ही होते हैं । यदि सर्वान्य प्रमाणकी भी अपेक्षासे एक समयमें एक ही जीवका  
प्रवेश माना जाय, तो भी प्रत्येक गुणस्थानके प्रवेशकालके समय संख्यात अर्थात्  
उपशामर्थेणिके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक तीन सो चार और क्षपकत्रेणिके  
प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक छह सो आठ ही होंगे । यहाँ यह स्मरण रखना  
चाहिए कि उपशाम या क्षपकत्रेणिके निरन्तर प्रवेश करनेका सर्वात्कष्ट काल आठ समय  
ही है । इससे ऊपर जितना भी प्रवेशकाल है, वह सब सान्तर ही है । इससे यह अर्थ  
निरकृता है कि अपूर्णकरणदि गुणस्थानोंमें प्रवेशान्तर अर्थात् जीवोंके प्रवेश नहीं  
करनेका काल अनगण्यत समयप्रमाण है । चूँकि, खदमसाम्पराय गुणस्थानसे अनिवृत्ति-  
करणका काल संख्यातगुणा है इसलिए उसके प्रवेशान्तरका उत्कृष्ट काल भी संख्यात-  
गुणा ही होगा । इसी प्रकार चूँकि अनिवृत्तिरणिके कालसे अपूर्णकरणका काल संख्यात-  
गुणा है, अतः उसके प्रवेशान्तरका काल भी संख्यातगुणा ही होगा । इसका यही निष्कर्ष  
निरकृता है कि तीनों उपशामकोंके कालोंसे तीनोंके उत्कृष्ट प्रवेशान्तरका काल बहुत है,  
यद्यपि प्रवेश करनेके समय समान है, अतएव उनका संचय भी सदृश ही होता है ।

अपूर्वक जीव अंगे कही जलियली गुणस्थानोंकी संख्याको 'देराकर अल्प है'  
ऐसा कहा है ।

उपगान्ताहपायवीतरागच्छदुमत्या पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३ ॥

अंका—पुत्रक सूत्रका प्रारम्भ किस लिये किया है ?

समाधान—उपशान्तकरायका और करायके उपशाम करनेवाले उपशामकोंकी  
परस्पर प्रत्यारसिका अभाव दिराना इसका फल है । जिनकी प्रत्यासत्ति पाई जाती है  
उनका ही एक योग अर्थात् एक समास हो सकता है और दूसरोंका भिन्न योग होता  
है, यह बात इस सूत्रसे सूचित की गई है ।

उपगान्ताहपायवीतरागच्छदुमत्यासे क्षपक संख्यातगुणित है ॥ ४ ॥

अर्थात्, उपशामकोंके गुणस्थानमें उत्कर्षसे प्रवेश करनेवाले चोपन जीवोंकी

१ वाक्यभाष्यभाष्य । पृ. १, ८

२ अतः शान्त करणगुणा । पृ. १, ८

सुक्कसेण परिस्समाणअहुत्तरसदजीवाणं दुगुणचुचलंभा, पंचूण-चदुरुत्तरातिसदमेचेगुण-  
सामगुणद्वणुक्कसेमंचयादो वि खवगेगुणद्वणुक्कसेसंचयस्स दुरुउणछस्सद-  
मेत्तस्स दुगुणचंदसगादो ।

खीणकसायवीदरागच्छदुमत्या तत्तिया चैयं ॥ ५ ॥

पुथुगुणारंभस्स कारणं पुवं व वत्तवं । सेसं सुगमं ।

सजोगकेवली अजोगकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया  
चैयं ॥ ६ ॥

वाइयवादिक्कम्माणं छदुमत्येहि पचासतीए अभावादो पुथसचारंभो जादो ।  
पवेसणेण तेत्तिया चैवेत्ति उत्ते पवेस-संचयेहि अहुत्तरसददुरुउणछस्सदमेत्ता कमेण हेत्ति  
चि वेत्तवं । दो वि तुल्ला चि उत्ते दो वि अणोणेण सरिसा चि भणिदं हेदि ।  
अजोगिकेवलिसंचयो पुच्चिल्लगुणद्वणुसंचयेहि सरिसो जथा, तथा सजोगिकेवलि-  
संचयस्स वि सरिसत्ती । विसरिसत्तपदुपायणद्वणुत्तरसुत्तं भणदि-

अपेक्षा क्षपकके एक गुणस्थानमें उत्कर्षसे प्रवेश करनेवाले एकसो आठ जीवोंके दुगुणता  
पाई जाती है । तथा संचयकी अपेक्षा उपशामकोंके एक गुणस्थानमें उत्कृष्टरूपसे पांच  
कम तीनसो चार अर्थात् दो सो नित्यानवे ( २९९ ) संचयसे भी क्षपकके एक गुणस्थानको  
दो कम छह सो ( ५९८ ) रूप संचयके दुगुणता देखी जाती है ।

क्षीणकपायवीतरागच्छदुमत्या पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ५ ॥

पुत्रक सूत्र बनानेका कारण पहलेके समान कहना चाहिए । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।  
सयोगिकेवली और अयोगिकेवली प्रवेशकी अपेक्षा दोनों ही तुल्य और पूर्वोक्त  
प्रमाण है ॥ ६ ॥

वाक्-कर्मोंका वात करनेवाले सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीकी छत्रस्य  
जीवोंके साथ प्रत्यासत्तिका अभाव होनेसे पुत्रक सूत्र बनाया गया है । प्रवेशकी अपेक्षा  
पूर्वोक्त प्रमाण ही है, ऐसा कहनेपर प्रवेशसे एक सो आठ ( १०८ ) और संचयसे दो कम  
छह सो अर्थात् पाच सो अट्टानवे ( ५९८ ) कमसे होते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना  
चाहिए । दोनों ही तुल्य हैं, ऐसा कहनेसे दोनों ही परस्पर समान हैं, ऐसा अर्थ सूचित  
होता है । जिस प्रकार अयोगिकेवलीका संचय पूरी गुणस्थानोंके संचयके सदृश होता  
है, उसी प्रकार सयोगिकेवलीके संचयके भी सदृशताकी प्राप्ति होती है, अतएव उनके  
संचयकी विसदृशताके प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं-

१ क्षीणकपायवीतरागच्छदुमत्यास्तान्त पृ. १, ८.

२ सयोगिकेवलिनोऽयोगिकेवलिनम प्रवेशेन तुल्यमत्या । पृ. १, ८.

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणां ॥ ७ ॥

कुदो ? दुरुवृणछस्सदमेत्तजीविहितो अट्टलक्ख-अट्टाणउदिसहस्स-दुराहियंपयसद-  
मेत्तजीवानं संखेज्जगुणजुवलंभा। हेट्ठिमरासिणा उवरिमरासिं छेचूण गुणयारो उप्पोदेव्वो।  
अपमत्तसंजदा अक्खवा अनुवसमा संखेज्जगुणां ॥ ८ ॥  
खवगुवसामगअपमत्तसंजदपडिसेहो किमहं कीरेदे ? ण, अपमत्तसामण्णेण  
तेसिं पि गहणपसंगा। सजोगिरासिणा वेकोडि-छण्णउदिलक्ख-णवणउइसहस्स-तिउत्तर-  
सदमेत्तअपमत्तरासिंभिह भागे हिदे जं लद्धं सो गुणगारो होदि।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणां ॥ ९ ॥

को गुणगारो ? दोण्णिण रूचाणि। कुदो णव्वदे ? आरियपरंपरागदुवदेसादो।

सयोगिकेवली कालकी अपेक्षा संख्यातगुणित है ॥ ७ ॥

क्योंकि, दो कम छह सौ, अर्थात् पांच सौ अट्टानवे मात्र जीवोंकी अपेक्षा आठ  
लाख, अट्टानवे हजार पांच सौ दो संख्याप्रमाण जीवोंके संख्यातगुणितता पाई जाती  
है। यहां पर अधस्तराशिसे उपरिम राशिको छेदकर (भाग देकर) गुणकार उत्पन्न  
करना चाहिए।

सयोगिकेवलियोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यात-  
गुणित है ॥ ८ ॥

शंका—यहांपर क्षपक और उपशामक अप्रमत्तसंयतोंका निषेध किस लिए  
किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'अप्रमत्त' इस सामान्य पदसे उनके भी ग्रहणका  
प्रसंग आता है, इसलिए क्षपक और उपशामक अप्रमत्तसंयतोंका निषेध किया गया है।  
सयोगिकेवलीकी राशिसे दो करोड़ छानवे लाख नित्यानवे हजार एक सौ तीन संख्या-  
प्रमाण अप्रमत्तसंयतोंकी राशिमैं भाग देनेपर जो लब्ध आवे, वह यहां पर गुणकार  
होता है।

अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित है ॥ ९ ॥

गुणकार क्या है ? दो संख्या गुणकार है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्य-परम्पराके द्वारा आये हुये उपदेशसे जाना जाता है।

- १ सयोगिकेवलिन स्वमलिन समुदिताः सत्येयगुणाः। (८९८५०२)। स सि १, ८
- २ अप्रमत्तमयता सत्येयगुणाः (२९६९९१०३)। स सि १, ८
- ३ प्रमत्तमयताः सत्येयगुणा (५९३९८२०६)। स सि १, ८

पुवुत्तअपमत्तरासिणा पंचकोडि-तिण्णउइलक्ख-अट्टाणउइसहस्स-छब्भहियदोसदमेत्तभिह  
पमत्तरासिंभिह भागे हिदे जं भागलद्धं सो गुणगारो।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ १० ॥

कुदो ? पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तचादो। माणुसखेत्तभंतरे चय  
संजदासंजदा होंति, णो वहिद्धा; भोगभूमिंभिह संजमांसजमभावविरोहा। ण च माणुस-  
खेत्तभंतरे असंखेज्जाणं सजदासंजदाणमत्थि संभवो, तेत्थियमेत्ताणमेत्थैवद्वान्णविरोहा।  
तदो संखेज्जगुणेहि संजदासंजदेहि होदव्वमिदि ? ण, सयंपहपव्वदपरभागे असंखेज्ज-  
जोयणवित्थडे कम्मभूमिपडिभाए तिरिक्खाणमसंखेज्जाणं संजमांसजमगुणसहिदाण-  
मुवलंभा। को गुणगारो ? पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदेवमपठम-  
वग्गमूलाणि। को पडिभागो ? अंतोमुहुत्तगुणिदपमत्तसंजदरासी पडिभागो।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ११ ॥

पूर्वोक्त अप्रमत्तराशिसे पांच करोड़ तिरानवे लाख, अट्टानवे हजार, दो सौ छह  
संख्याप्रमाण प्रमत्तसंयतराशिमैं भाग देनेपर जो भाग लब्ध आवे, वह यहांपर गुणकार है।

प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणित है ॥ १० ॥

क्योंकि, वे पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

शंका—संयतासंयत मनुष्यक्षेत्रके भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं, क्योंकि, भोग-  
भूमिमैं संयमासंयमके उत्पन्न होंनेका विरोध है। तथा मनुष्यक्षेत्रके भीतर असंख्यात संयता-  
संयतोंका पाया जाना सम्भव नहीं है, क्योंकि, उतने संयतासंयतोंका यहां मनुष्यक्षेत्रके  
भीतर अवस्थान माननेमें विरोध आता है। इसलिए प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत  
संख्यातगुणित होना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, असंख्यात योजन विस्तृत एवं कर्मभूमिके प्रतिभाग-  
रूप स्वयंप्रभ पर्वतके परभागमें संयमासंयम गुणसहित असंख्यात तिर्यंच पाये जाते हैं।

गुणकार क्या है ? पत्योपमका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो पत्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण है। प्रतिभाग क्या है ? अन्तर्मुहूर्तसे प्रमत्तसंयतराशिको  
गुणित करनेपर जो लब्ध आवे, वह प्रतिभाग है।

संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है ॥ ११ ॥

- १ सयतासयता असत्येयगुणाः। स सि १, ८.
- २ प्रतियु ' मेत्ता-' इति पाठः।
- ३ सासादनसम्यग्दृष्टकेऽसत्येयगुणा। स सि १, ८

हृदो ? तिष्ठन्ममचिद्विदमंजदागमंजदं हितो एगुममसम्मत्तादो सामणुणं पडि-  
विजिय छुमु आमलियापु मंचिद्वजीपाणममंसेज्जगुणुवेदसादो । तं पि कथं गव्वदे ?  
एगममयमिह मंजममंजमं पडिवज्जमाणजीवीहितो एककसमयमिह चैव मासणगुणं पडि-  
वज्जमाणजीपाणममंसेज्जगुणुचंदसादो । तं पि क्वदो ? अणंतंससारविच्छेयहेउसंजमा-  
नंजमलंभम्म अट्टुल्लभत्तादो । को गुणगारो ? आवालियाए असंसेज्जदिभागो । हेड्डिम-  
गमिणा उाभिगामिभिह भागे हिदं गुणगारो आगच्छदि, उवरिमरासिअवहारकालेण  
अट्टिमगमिअवहार कालं भागे हिदं गुणगारो हेदि, उवरिमरासिअवहारकालगुणिदहेड्डिम-  
रासिणा पडिदोमे भागे हिदं गुणगारो हेदि । एवं तीहि पयोरेहि गुणयारो समाण-  
भज्जमाणगामीसु मच्चरथ साहेद्व्यो । णवरि हेड्डिमरासिणा उवरिमरासिभिह भागे हिदं  
गुणगारो आगच्छदि ति एदं समाणममाणभज्जमाणरामीणं साहारणं, वेसु नि एदस्स  
पउचीए वाहाणुलभा ।

क्योंकि, तीन प्रकारके सम्यग्भवके साथ स्थित संयतासंयतोंकी अपेक्षा एक  
उपशमसम्यग्भवसे मानादनगुणस्थानको प्राप्त होकर छह आवलियोंसे संचित जीव  
शरणागतगुणित हं, ऐसा उपदेश पाया जाता है ।

यंता — यह भी कैसे जाना जाता है ?

रामायान—एक समयमें संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंसे एक समयमे  
ही सामान्यगुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित देरे जाते हैं ।

यंता—इसका भी कारण क्या है ?

गमयान—स्योंकि, अनन्त संसारके विच्छेदका कारणभूत समयमासंयमका  
पाना अनिटुलंभ है ।

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । अद्यस्ततराशिसे  
उपरिमराशिमं भाग देनेपर गुणकारका प्रमाण आता है । अथवा, उपरिमराशिके अवहार-  
कालमें अद्यस्ततराशिके अवहारकालमें भाग देनेपर गुणकार होता है । अथवा, उपरिम-  
राशिके अवहारकालसे अद्यस्ततराशिको गुणित करके जो लब्ध आवे उसका पल्योपममें  
भाग देनेपर गुणकार आता है । ऐसे इन तीन प्रकारोंसे समान भव्यमान राशियोंमें सर्वत्र  
गुणकार साधित कर लेना चाहिए । केवल विशेषता यह है कि अद्यस्ततराशिका उपरिम-  
राशिमं भाग देनेपर गुणकार आता है, यह नियम समान और असमान, दोनों भव्यमान  
राशियोंमें साधारण है, क्योंकि, उक्त दोनों राशियोंमें भी इस नियमकी प्रवृत्ति होनेमें  
काथा नहीं पाई जाती है ।

१. कतिपु ' तं रि ' इति पाठः ।

## सम्माभिच्छादिद्वी संसेज्जगुणां ॥ १२ ॥

एदस्सत्थो उच्चदे- सम्माभिच्छादिद्विअद्धा अतोमुहुत्तमेत्ता, सासणसम्मादिद्वि-  
अद्धा वि छावलियमेत्ता । किंतु सासणसम्मादिद्विअद्धादो सम्माभिच्छादिद्विअद्धा संसेज्ज-  
गुणा । संसेज्जगुणद्व्याए उवक्कमणकालो वि सासणद्ववक्कमणकालादो संसेज्जगुणो  
उवक्कमणविरोहा निरहकालाणमुहयत्थ साधम्मादो । तेण दोगुणद्व्याणि पडिवज्जमाण-  
रासी जदि वि सरिसो, तो वि सासणसम्मादिद्वीहितो सम्माभिच्छादिद्वी संसेज्जगुणा  
होति । किंतु सासणगुणसुवससम्मादिद्विणो चैय पडिवज्जंति, सम्माभिच्छात्तगुणं पुण  
वेदगुवससम्मादिद्विणो अट्टवीसंतकस्मियमिच्छादिद्विणो य पडिवज्जंति । तेण सासणं  
पडिवज्जमाणरासीदो' सम्माभिच्छं पडिवज्जमाणरासी संसेज्जगुणो । तदो संसेज्ज-  
गुणयादो संसेज्जगुणउवक्कमणकालादो च सासणेहितो सम्माभिच्छादिद्विणो संसेज्ज-  
गुणा, उवससम्मादिद्वीहितो वेदगसम्मादिद्विणो असंसेज्जगुणा, 'कारणाणुसारिणा कज्जेण  
होद्वचमिदि' णायादो । सासणेहितो सम्माभिच्छादिद्विणो असंसेज्जगुणा किण हति  
ति उत्ते ण हति, अणेयणिगमादो । जदि तेहि पडिवज्जमाणगुणद्व्याणमेक्कं चैव होदि,

सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्भिध्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १२ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- सम्यग्भिध्यादृष्टि गुणस्थानका काल अनन्तमुहूर्तमात्र  
है और सासादनसम्यग्दृष्टिका काल भी छह आवलीप्रमाण है, किंतु फिर भी सासादन-  
सम्यग्दृष्टिके कालसे सम्यग्भिध्यादृष्टिका काल संख्यातगुणा है । संख्यातगुणित कालका  
उपक्रमणकाल भी सासादनके कालके उपक्रमणकालसे संख्यातगुणा है । अन्यथा उपक्रमण-  
कालमें विरोध आजायगा, क्योंकि, विरहकाल दोनों जगह समान है । इसलिए इन दोनों  
गुणस्थानोंको प्राप्त होनेवाली राशि यद्यपि समान है तो भी सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे  
सम्यग्भिध्यादृष्टि संख्यातगुणित है । किंतु सासादन गुणस्थानको उपशमसम्यग्दृष्टि ही  
प्राप्त होते हैं, परन्तु सम्यग्भिध्यात्व गुणस्थानको वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और  
मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले सिध्यादृष्टि जीव भी प्राप्त होते हैं । इसलिये  
सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेवाली राशिसे सम्यग्भिध्यात्वको प्राप्त होनेवाली  
राशि संख्यातगुणी है । अतः संख्यातगुणी आय होनेसे और संख्यातगुणा उपक्रमणकाल  
होनेसे सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्भिध्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं । उपशम-  
सम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, ' कारणके अनुसार  
कार्य होता है' ऐसा न्याय है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्भिध्यादृष्टि असंख्यातगुणित  
क्यों नहीं होते हैं, ऐसा पूछने पर आचार्य उत्तर देते हैं कि नहीं होते हैं, क्योंकि,  
निर्गमके अर्थात् जानेके मार्ग अनेक हैं । यदि वेदकसम्यग्दृष्टियोंके द्वारा प्राप्त किया

१. सम्यग्भिध्यादृष्टयः संख्यातगुणाः । स. सि १, ८.

२. कतिपु ' पडिमाणरासीदो ' इति पाठ ।

३. कतिपु ' मेघ ' इति पाठ ।



तो एस णाओ वोटुं जुचो । किंतु वेदरासम्मादिद्विणो मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं च पडिवज्जंति, सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणोहितो मिच्छत्तं पडिवज्जमाणवेदरासम्मादिद्विणो असंखेज्जगुणा, तेण पुब्बुत्ते ण घडदे इदि । ण चासंखेज्जगुणारासिवओ अणारासिम-वेक्खियं होदि, तस्स अप्पणो आयाणुसरणसहावत्तादो । एदमेवं चेव होदि चि कथं णव्वेदं ? सासणेहितो सम्मामिच्छादिद्विणो संखेज्जगुणा चि मुत्तणहाणुववत्तीदो णव्वेद ।

**असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणां ॥ १३ ॥**

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सम्मामिच्छादिद्विरासी अंतो-मुहुत्तसंचिदो, असजदसम्मादिद्विरासी पुण वेसागरोवमसंचिदो । सम्मामिच्छादिद्विअद्वादो वेसागरोवमकालो पल्लिवोवमासंखेज्जदिभागगुणो । सम्मामिच्छादिद्विउवक्कमणकालादो चि असंजदसम्मादिद्विउवक्कमणकालो पल्लिवोवमस्स संखेज्जदिभागगुणो, उवक्कमण-कालस्स अद्वाणुसारिचदसणादो । तेण पल्लिवोवमस्स असंखेज्जदिभागोण गुणगारोण होद्वन्मिदि ? ण, असंजदसम्मादिद्विरासिस्स असंखेज्जपल्लिवोवमप्पमाणप्पसणा । तं

जानेवाला गुणस्थान एक ही हो, तो यह न्याय कहने योग्य है । किन्तु वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों गुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं । तथा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले वेदकसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले वेदक-सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, इसलिये पूर्वोक्त कथन घटित नहीं होता है । दूसरी बात यह है कि असंख्यातगुणी राशिका व्यय अन्य राशिकी अपेक्षासे नहीं होता है, क्योंकि, वह अपने आपके अनुसार व्ययशील स्वभाववाला होता है ।

शंका—यह इसी प्रकार होता है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं, यह सूत्र अन्यथा वन नहीं सकता है, इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १३ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शंका—सम्यग्मिथ्यादृष्टि राशि अन्तर्मुहुत्तं संचित है और असंयतसम्यग्दृष्टि राशि दो सागरोपम संचित है । सम्यग्मिथ्यादृष्टिके कालसे दो सागरोपमकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग गुणितप्रमाण है । सम्यग्मिथ्यादृष्टिके उपक्रमणकालसे भी असंयत-सम्यग्दृष्टिका उपक्रमणकाल पल्योपमके संख्यातवें भागगुणित है, क्योंकि, उपक्रमण-काल गुणस्थानकालके अनुसार देखा जाता है । इसलिये पल्योपमके असंख्यातवें भाग-प्रमाण गुणकार होना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, गुणकारको पल्योपमके असंख्यातवें भाग मानने पर असंयतसम्यग्दृष्टि राशिको असंख्यात पल्योपमप्रमाण होनेका प्रसंग प्राप्त होगा ।

१ प्रक्रियु 'जोयु' इति पाठ ।

२ अमयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्यगुणा । स सि १, ८

३ म २ प्रती 'दो वि असजदसम्मादिद्वि उवक्कमणकालो' इति पाठो नास्ति ।

जधा— 'एदेहि पल्लिवोवमवहिरिदि अंतोमुहुत्तेण कालेणेत्ति' दव्वाणिओगहारसुत्तादो णव्वेदि जथा पल्लिवोवमंतोमुहुत्तेण खंडिदेयखंडमेत्ता सम्मामिच्छादिद्विणो होति चि । पुणो एदं रासिं पल्लिवोवमस्स असंखेज्जदिभागोण गुणिदे असंखेज्जपल्लिवोवममेत्तो' असं-जदसम्मादिद्विरासी होदि । ण चेदं, एदेहि पल्लिवोवमवहिरिदि अंतोमुहुत्तेण कालेणेत्ति एदेण सुत्तेण सह विरोहा । कथं पुण आवलियाए असंखेज्जदिभागगुणारस्स सिद्धी ? उच्चदे- सम्मामिच्छादिद्विअद्वादो तप्पाओगअसंखेज्जगुणद्व्याए संचिदो असंजदसम्मा-दिद्विरासी घेत्तव्वाओ, एदिस्से अद्वाए सम्मामिच्छादिद्विउवक्कमणकालादो असंखेज्जगुण-उवक्कमणकालखंडंभा । एत्थ संचिद-असंजदसम्मादिद्विरासीए चि आवलियाए असंखे-ज्जदिभागोण गुणिदमेत्तो होदि । अधवा दोण्हं उवक्कमणकाला जदि चि सरिसा होति चि तो चि सम्मामिच्छादिद्विहिंतो असंजदसम्मादिद्वी आवलियाए संखेज्जभागगुणा । कुदो ? सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणारासीदो सम्मत्तं पडिवज्जमाणारासिस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागगुणत्तादो ।

**मिच्छादिद्वी अणंतगुणां ॥ १४ ॥**

उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है— इन सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंकी अपेक्षा अन्तर्मुहुत्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है, इस द्रव्यायुयोगद्वारके सूत्रसे जाना जाता है कि पल्योपमको अन्तर्मुहुत्तसे खंडित करने पर एक खंडप्रमाण सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते हैं । पुनः इस राशिको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित करने पर असंख्यात पल्यो-पमप्रमाण असंयतसम्यग्दृष्टिराशि होती है । परंतु यह ठीक नहीं है, क्योंकि, ' इन गुण-स्थानवर्ती जीवोंकी अपेक्षा अन्तर्मुहुत्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है ' इस सूत्रके साथ पूर्वोक्त कथनका विरोध आता है ।

शंका— फिर आवलिके असंख्यातवें भागरूप गुणकारकी सिद्धि कैसे होती है ?

समाधान—सम्यग्मिथ्यादृष्टिके कालसे उसके योग्य असंख्यातगुणित कालसे संचित असंयतसम्यग्दृष्टि राशि ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, इस कालका सम्यग्मिथ्या-दृष्टिके उपक्रमणकालसे असंख्यातगुणा उपक्रमणकाल पाया जाता है । यहां पर संचित असंयतसम्यग्दृष्टि राशि भी आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र है । अथवा, दोनोंके उपक्रमणकाल यद्यपि सदृश होते हैं, तो भी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्य-दृष्टि जीव आवलीके संख्यात भागगुणित हैं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाली राशिसे सम्यग्त्वको प्राप्त होनेवाली राशि आवलिके असंख्यातवें भागगुणित है ।

असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ १४ ॥

१ दव्वाणु ६ ( मा. ३ पृ ६३ )

२ व स्सयो ' पल्लिवोवत्तो ' इति पाठः ।

३ सिप्पादृष्टयोऽनन्तगुणा । स सि १, ८ प्रक्रियु ' अणतगुणो ' इति पाठ ।

बुद्धो ? सिद्धादिद्वीणमाणंतिदादो । को गुणगारो ? अभवमिद्विहृदि अणंतगुणो, मिद्विहृदि वि अणंतगुणो, अणंतानि मन्वजीवराणिपढमवगमूलाणि । को पडिभागो ? अणंतदम्यम्मादिद्वी पडिभागो ।

**असंजदसम्मादिद्विद्विणे सवत्थोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ १५ ॥**  
मंजदमंजदादिद्विद्विणपडिमंहेहं असंजदसम्मादिद्विद्विणवयणं । उवरियुच्चमाणारासि-  
अरेसुं मन्वथोवयणं । रोसमम्मादिद्विपडिसंहेहद्वुवसमसम्मादिद्विवयणं ।

**सहयसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १६ ॥**

उपयमममत्तादो सहयमममत्तमडुहं, दंसणमोहणीयक्खएण उक्खसेण छम्मास-  
मंतरिय उक्खसेण अट्टुत्तरसदमेत्ताणं चेत्त उप्पज्जमाणत्तादो । सहयसममत्तादो उवसम-  
ममत्तामहगुलं, सत्तरादिदियाणि अंतरिय एगसमएण पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभाग-  
भेत्तजीवसु तट्टुत्तदंयणादो । तदो सहयसम्मादिद्वीहितो उवसमसम्मादिद्वीहि असंखेज्ज-  
गुणेहि होदवामिदि ? सन्नेदं, किंतु मंचयकालमाहाएण उवसमसम्मादिद्वीहितो सहय-

क्योंकि, मियादृष्टि अनन्त होते हैं ।

शंका—गुणकार क्या है ?

समाधान—अभ्यन्तिसिद्धौसे अनन्तगुणा और सिद्धौसे भी अनन्तगुणा गुणकार  
है, जो सम्पूर्ण जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

शंका—अनिभाग क्या है ?

समाधान—असंयतसम्यग्दृष्टि राशिका प्रमाण प्रतिभाग है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १५ ॥  
संयतसंयत आदि गुणस्थानोंका नियेध करनेके लिये सूत्रमें 'असंयतसम्यग्दृष्टि-  
स्थान' यह रचन दिया है । जगो कही जानेवाली राशियोंकी अपेक्षा 'सन्नेस कम' यह  
रचन दिया है । शेर सम्यग्दृष्टियोंका प्रतिनेध करनेके लिये 'उपशमसम्यग्दृष्टि' यह रचन  
दिया है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव  
असंयतागुणित हैं ॥ १६ ॥

शंका—उपशमसम्यग्दृष्टि क्षायिकसम्यक्त्व अतिदुर्लभ है, क्योंकि, दर्शन-  
मोहनीयके क्षयकारा उत्कृष्ट छह मासके अंतरालसे अधिकरसे अधिक एकसौ आठ  
जीवोंकी ही उत्पत्ति होती है । परंतु क्षायिकसम्यक्त्वसे उपशमसम्यक्त्व अतिसुलभ है,  
क्योंकि, मात रात दिनेके अंतरालसे एक समयमें पल्योगमके असंख्यातवें भागप्रमित  
जीवोंमें उपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्ति देरी जाती है । इसलिये क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे  
उपशमसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित होना चाहिए ?

समाधान—यह कष्टना सत्य है, किंतु संचयकालके माहात्म्यसे उपशमसम्य-

सम्माइद्विणो असंखेज्जगुणा जादा । तं जहा- उवसमसमत्तद्धा उक्कस्सिया वि अंतो-  
सुहुत्तमेत्ता चेय । सहयसममत्तद्धा पुण जहणिया अंतोसुहुत्तं, उक्कस्सिया दोपुव्यकोडि-  
अवभहियतेत्तिसागरोवमेत्ता । तत्थ मच्चिसकालो दिवट्टुपल्लिदोवमेत्तो । एत्थ  
अंतोसुहुत्तमंतरिय संखेज्जोवक्कमणसमएसु घेप्पमाणेसु पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभाग-  
भेतोवक्कमणकालो लब्भइ । एदेण कालेण संचिदजीवा वि पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदि-  
भागमेत्ता होदूण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालेण समयं पडि उवक्कत्त-  
पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजीवेण संचिदउवसमसम्मादिद्वीहितो असंखेज्जगुणा  
होति । ण सेसवियया संभवंति, ताणमसंखेज्जगुणसुत्तेण सह विरोहा ।

एत्थ चोदथो भणदि- आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तरेण सहयसममादिद्वीण  
सोहम्मे जइ संचओ कीरिदि पवेसाणुसारिणिगमादो मणुसेस्सु असंखेज्जा सहयसम्मा-  
दिद्विणो पवंति । अह संखेज्जालियंतरेण द्विइसंचओ कीरिदि, तो संखेज्जावलियाहि  
पल्लिदोवमे संखेद्वे एयक्खंडमेत्ता सहयसममादिद्विणो पवंति । ण च एवं, आवलियाए  
असंखेज्जदिभागमेत्तभागहारवुवगमादो । तदो दोहि वि पयाहि दोसो चेय दुक्कदि

ग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हो जाते हैं । वह इस प्रकार है- उपशम-  
सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्तमात्र ही है । परन्तु क्षायिकसम्यक्त्वका जघत्य  
काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल दो पूर्वकोटिसे अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण है ।  
उसमें मध्यम काल डेढ़ पल्योगमप्रमाण है । यहाँ पर अन्तर्मुहूर्तकालको अन्तरित करके  
उपक्रमणके सख्यात समयोंके ग्रहण करने पर पल्योगमके असंख्यातवें भागमात्र उप-  
क्रमणकाल प्राप्त होता है । इस उपक्रमणकालके द्वारा संचित हुए जीव पल्योगमके  
असंख्यातवें भागमात्र हो करके भी आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालके  
द्वारा प्रत्येक समयमें प्राप्त होनेवाले पल्योगमके असंख्यातवें भागमात्र जीवोंसे संचित  
हुए उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा असंख्यातगुणित होते हैं । यहाँ शेष विक्रम संमच  
नहीं है, क्योंकि, उन विकल्पोंका असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें 'उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे  
क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं' इस सूत्रके साथ विरोध आता है ।

शंका—यहा पर शंकाकार कहता है कि आवलीके असंख्यातवें भागमात्र  
अन्तरसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका सौधमं स्वर्गमें यदि संचय किया जाता है तो प्रवेशके  
अनुसार निर्गम होनेसे अर्थात् आयेके अनुसार व्यय होनेसे मनुष्योंमें असंख्यात क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टि जीव प्राप्त होते हैं । और यदि संख्यात आवलियोंके अन्तरालसे स्थितिका  
संचय करते हैं तो संख्यात आवलियोंसे पल्योगमके लंडित करने पर एक खंडमात्र  
क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्राप्त होते हैं । परंतु ऐसा है नहीं, क्योंकि, आवलिके असंख्यातवें  
भागमात्र भागहार स्वीकार किया गया है । इसलिए दोनों प्रकारोंसे भी दोष ही प्राप्त  
होता है ?

त्ति ? न एस दोसो, खइयसम्मादिद्वीणं पमाणगमणइं पल्लिदोवमस्स संखेज्जावलियमेत्त-  
भागहारस्स जुत्तीए उवलंभादो । तं जहा- अट्टसमयवभहियछम्मासंभंतरे जदि संखेज्जुव-  
क्कमणसमया लभंति, तो दिवहुपल्लिदोवमंभंतरे किं लभामो ति पमाणेण फलगुणि-  
दिच्छाए ओवड्ढिदाए उवक्कमणकालो लभदि । तम्मि संखेज्जजीवेहि गुणिदे संखेज्जाव-  
लियाहि ओवड्ढिदपल्लिदोवमेत्ता खइयसम्मादिद्वीणो लभंति । तेण आवलियाए असंखे-  
ज्जदिभागो भागहारो ति न धेत्तव्वो । उवक्कमणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागो संते  
एदं ण घडदि ति णासंक्कणज्जं, मणुसेसु खइयसम्मादिद्वीणं असंखेज्जाणमत्थित्थप्पसंगादो ।  
एवं संते सासणादीणमसंखेज्जावलियाहि भागहारेण होदव्वं ? ण एस दोसो, इड्ढत्तादो ।  
ण अणोसिमाहरियाणं वक्खणोण विरुद्धं ति एदस्स वक्खणपस्स अभइत्तं, सुत्तेण सह  
अविरुद्धस्स अभइत्तविरोहादो । एदेहि पल्लिदोवममवहरिदि अंतोपुहुत्तेण कालोत्ति सुत्तेण  
वि ण विरोहो, तस्स उवयारणिबंधणात्तादो ।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाण  
लानेके लिए पल्योपमका संख्यात आवलित्वात्र भागहार युक्तिसे प्राप्त हो जाता है।  
जैसे—आठ समय अधिक छह मासके भीतर यदि संख्यात उपक्रमणके समय प्राप्त होते  
हैं, तो इन्हें पल्योपमके भीतर कितने समय प्राप्त होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर  
प्रमाणराशिसे फलराशिको गुणित करके और इच्छाराशिसे भाजित कर देने पर उप-  
क्रमणकाल प्राप्त होता है। उसे संख्यात जीवोंसे गुणित कर देने पर पल्योपममें संख्यात  
आवलियोंका भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव प्राप्त होते हैं।  
इसलिए यहा आवलीका असंख्यातवां भाग भागहार है, ऐसा नहीं ग्रहण करना चाहिए।

उपक्रमणकालका अन्तर आवलीका असंख्यातवां भाग होने पर उपर्युक्त व्याख्यान  
घटित नहीं होता है, ऐसी आशंका भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि, ऐसा मानने पर  
मनुष्योंमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके अस्तित्वका प्रसंग आता है।

शंका—यदि ऐसा है तो सासादनसम्यग्दृष्टि आदिके असंख्यात आवलियां  
भागहार होना चाहिए ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, वह इष्ट ही है।

तथा, यह व्याख्यान अन्य आचार्योंके व्याख्यानसे विरुद्ध है, इसलिये इस-  
व्याख्यानके अभद्रता (अयुक्ति-संगतता) भी नहीं है, क्योंकि, इस व्याख्यानका सूत्रके  
साथ विरोध नहीं है, इसलिये उसके अभद्रताके माननेमें विरोध आता है। 'इन राशि-  
योंके प्रमाणकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है' इस द्रव्यानुयोग-  
द्वारेके सूत्रके साथ भी उक्त व्याख्यानका विरोध नहीं आता है, क्योंकि, वह सूत्र उप-  
चार-निमित्तक है।

## वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १७ ॥

कुदो ? दंसणमोहणीयक्खएणुप्पण्णखइयसम्मत्तादो खओवसमियवेदगसम्मत्तस्स  
सुट्टु सुलहत्तुवलंभा। को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। कुदो ? ओघसोहम्म-  
असंजदसम्मादिद्विभागहारस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागपमाणत्तादो ।

## संजदासंजदद्वेणे सब्वथोवा खइयसम्मादिद्वी ॥ १८ ॥

कुदो ? अणुव्यसिहदखइयसम्मादिद्वीणमइडुल्लभत्तादो । ण च तिरिक्खेसु  
खइयसम्मत्तेण सह संजमांसजमो लब्भदि, तत्थ दंसणमोहणीयक्खवणाभावा । तं पि कुदो  
णव्वदे ? 'णियमा मणुसगदीए' इदि सुत्तादो' । जे वि पुवं वद्वतिरिक्खालआ मणुसा  
तिरिक्खेसु खइयसम्मत्तेणुप्पज्जंति, तेसिं ण संजमांसजमो अत्थि, भोगभूमिं भोत्तुण  
अणत्थुप्पत्तीए असंभवादो । तेण खइयसम्मादिद्वीणो संजदासंजदा संखेज्जा चैय,

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव  
असंख्यातगुणित हैं ॥ १७ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीय कर्मके क्षयसे उत्पन्न हुए क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा  
क्षायोपराशिक वेदकसम्यक्त्वका पाना अति सुलभ है।

शंका—गुणकार क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, सामान्यसे  
सौधर्मस्वर्गके असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका भागहार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण  
होता है।

संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १८ ॥

क्योंकि, अणुव्रतसहित क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका होना अत्यन्त दुर्लभ है। तथा  
तिर्यंचोंमें क्षायिकसम्यक्त्वके साथ संयमासंयम पाया नहीं जाता है, क्योंकि, तिर्यंचोंमें  
दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणका अभाव है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'दर्शनमोहनीयका क्षपण करतेवाले जीव नियमसे मनुष्यगतमें  
होते हैं' इस सूत्रसे जाना जाता है।

तथा जिन्होंने पहले तिर्यंचायुका वंध कर लिया है ऐसे जो भी मनुष्य क्षायिक  
सम्यक्त्वके साथ तिर्यंचोंमें उत्पन्न होते हैं उनके संयमासंयम नहीं होता है, क्योंकि,  
भोगभूमिको छोड़कर उनकी अन्यत्र उत्पत्ति असंभव है। इसलिये क्षायिकसम्यग्दृष्टि  
संयतासंयत जीव संख्यात ही होते हैं, क्योंकि, संयमासंयमके साथ क्षायिकसम्यक्त्व

१ दंसणमोहसखणणद्वग्गो कम्मभूमिजादो डु। णियमा मणुसगदीए णिट्ठवगो चावि सब्बत्थ ॥ १॥  
क्खायपाहुडे, खवणाहियारो, १.

अग्रपञ्चमे मोक्षेण अण्णयाभावा । अदो नेय भणिसमाणासंखेज्जरासीहितो शेवा ।  
उवसमसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ १९ ॥

को गुणगारो ? पल्लोवमस अग्रवेज्जिभागो, असंखेज्जाणि पल्लोवमपदम-  
ग्रममूलाणि । को पडभागो ? गहयमसमादिद्धिमंजदासंजदमेत्संखेज्जरापडिभागो । कुदो ?  
अग्रवेज्जापणियाहि पल्लोवमे रंजिदे तथ एयसंडमेत्ताणमुवमसम्मत्तेण सह संजदा-  
संजदाणमग्रमंभा ।

वेदगसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ २० ॥

को गुणगारो ? आतलियाए असंखेज्जिभागो । एतो उवमसम्मादिद्धिउकस्स-  
संखयादो वेदगसम्मादिद्धिउकस्ससंचयस्स सांतरस्स गुणगारो, अण्णहा पुण पल्लो-  
वमस असंखेज्जिभागो गुणगारो, उवसमसम्मादिद्धिरासिस्स सांतरस्स कयाइ एग-  
जीयन्नि उवल्ला । वेदगसम्मादिद्धिराभी पुण सब्बकालं पल्लोवमस असंखेज्जिदि-  
भागमेत्तो नेय, णिरंतरम्म ममाणायव्वयस्स अण्णरुवात्तिविरोहा ।

पर्याप्त मयुष्योक्तो श्रावणः क्व नरी गतिं नर्ही पाया जाता है । और इसीलिये संयता-  
अयत्न श्रायिक्रमस्यगृष्टि आगे कहीं जानेवाली असंख्यात राशियोंसे क्रम होते हैं ।

संयतासंयत गुणस्थानमें श्रायिक्रमस्यगृष्टियोंसे उपशमसम्यगृष्टि संयतासंयत  
असंख्यातगुणित है ॥ १९ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोवमका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो पल्लोवमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलाप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? श्रायिक्रमस्यगृष्टि संयतासंयतोंकी  
जिनकी संख्या है तद्वर्माण मत्यातरूप प्रतिभाग है, क्योंकि, असंख्यात आचलियोंसे  
पल्लोवमके गणित करते पर उनमेंसे एक एउ मात्र उपशमसम्यक्त्वके साथ संयता-  
संयत तीन पाये जाने हैं ।

संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यगृष्टियोंसे वेदक्रमस्यगृष्टि असंख्यातगुणित  
है ॥ २० ॥

गुणकार क्या है ? आचलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है । उपशमसम्यगृष्टि-  
योंके उच्छेद संचयने वेदक्रमस्यगृष्टियोंके उच्छेद सांतर संचयका यह गुणकार है ।  
अण्णया पल्लोवमका असंख्यातवा भाग गुणकार होता है, क्योंकि, उपशमसम्यगृष्टिराशि  
सांतर है, इसलिए तद्व्यति एक जीवकी भी उपलब्धि होती है । परंतु वेदक्रमस्यगृष्टि-  
राशि संप्रकाल पल्लोवमके असंख्यातवै भागमात्र ही रहती है, क्योंकि, जिस राशिका  
आप और व्यय समान है और जो अन्तर-रहित है, उसको अन्यरूप माननेमें विरोध  
माला है ।

१ 'मानस्य' इति पाठः 'वेद' न । प्रती अस्ति, अन्यप्रतिपु नास्ति ।

पमत्तापमत्तसंजदद्वुणे सब्बथोवा उवसमसम्मादिद्धी ॥ २१ ॥  
कुदो ? अंतोमुहुत्तद्वुत्तसंचयादो, उवसमसम्मत्तेण सह पाएण संजमं पडिवज्जं-  
ताणमभावादो च ।

खइयसम्मादिद्धी संखेज्जगुणा ॥ २२ ॥

अंतोमुहुत्तेण संचिदउवसमसम्मादिद्धीहितो देवणपुव्वकोडीसंचिदखइयसम्मा-  
दिद्धीणं संखेज्जगुणत्तं पडि विरोहाभावा । को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

वेदगसम्मादिद्धी संखेज्जगुणा ॥ २३ ॥

कुदो ? खइयादो खओवसमियस्स सम्मत्तस्स पाएण संभवा । को गुणगारो ?  
संखेज्जा समया ।

एवं तिसु वि अद्वासु ॥ २४ ॥

जथा पमत्तापमत्तसंजदानं सम्मत्तप्पावहुअं परुविदं, तथा तिसु उवसामगद्वासु  
परुवेदव्वं । तं जहा- सब्बथोवा उवसमसम्मादिद्धी । खइयसम्मादिद्धी संखेज्जगुणा ।

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यगृष्टि जीव सबसे कम  
हैं ॥ २१ ॥

क्योंकि, एक तो उपशमसम्यगृष्टियोंके संचयका काल अन्तर्मुहुत्तमात्र है, और  
दूसरे उपशमसम्यक्त्वके साथ बहुलतासे संयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंका अभाव है ।

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यगृष्टियोंसे श्रायिक-  
सम्यगृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२ ॥

अन्तर्मुहुत्तसे संचित होनेवाले उपशमसम्यगृष्टियोंकी अपेक्षा कुछ कम पूर्वकोटि  
कालसे संचित होनेवाले श्रायिक्रमस्यगृष्टियोंके संख्यातगुणित होनेमें कोई विरोध नहीं  
है । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें श्रायिक्रमस्यगृष्टियोंसे वेदक्रमस्यगृष्टि  
जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३ ॥

क्योंकि, श्रायिक्रमस्यक्त्वकी अपेक्षा श्रायोपशमिक्रमस्यक्त्वका होना अधिक-  
तासे सम्भव है । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी  
अल्पबहुत्व है ॥ २४ ॥

जिस प्रकार प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंके सम्यक्त्वका अल्पबहुत्व कहा  
है, उसी प्रकार आदिके तीन उपशामक गुणस्थानोंमें भी प्ररूपण करना चाहिए । वह इस  
प्रकार है- तीनों उपशामक गुणस्थानोंमें उपशमसम्यगृष्टि जीव सबसे कम हैं । उनसे

कारणं, दन्वाहियत्तादो । वेदगसम्मादिद्वी गत्थि, तेण सह उवससेडीआरोहणाभावा । उवसंत-रसाएसु सम्मत्तप्पावहुंगं किण्ण परूविदं ? ण एस दोसो, तिसु अद्वासु सम्मत्त-प्पावहुणे अवगदे तत्थ वि तद्वगमादो । सुहं गहणहं चदुसु उवसमाएसु त्ति' किण्ण परूविदं ? ण, 'एगजोगिणिह्णिण्णमेगेदेसो णाणुवड्ढि' त्ति णायदो उवरे चदुहमणुउत्ति-प्पसंगां । होदु चे ण, पडिजोगीणं चदुण्हसुवसामगणमभावा ।

### संवत्थोवा उवसमा ॥ २५ ॥

कुदो ? थोवायुपदेसादो संकल्लिदसचयस्स' वि थोवत्तस्स णायसिद्धत्तादो ।

क्षायिकसस्यग्दष्टि जीव संख्यातगुणित है, क्योंकि, क्षायिकसस्यग्दष्टियोंका यहां द्रव्यप्रमाण अधिक पाया जाता है । उपशमश्रेणीमें वेदकसस्यग्दष्टि जीव नहीं पाये जाते हैं, क्योंकि, वेदकसस्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीके आरोहणका अभाव है ।

शंका—उपशान्तकपाय गुणस्थानवर्ती जीवोंमें सम्यक्त्वका अल्पवहुत्व क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, तीनों उपशामक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वका अल्पवहुत्व ज्ञात हो जाने पर उपशान्तकपाय गुणस्थानमें भी उसका ज्ञान हो जाता है ।

शंका—सुख अर्थात् सुगमतापूर्वक ज्ञान होनेके लिए 'चारों उपशामक गुणस्थानोंमें' ऐसा सूत्रमें क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'जिनका निर्देश एक समासके द्वारा किया जाता है उनके एक देशकी अनुवृत्ति नहीं होती है' इस न्यायके अनुसार आगे कहे जानेवाले सूत्रोंमें चारों गुणस्थानोंकी अनुवृत्तिका प्रसंग प्राप्त होगा ।

शंका—यदि आगे चारों उपशामकोंकी अनुवृत्तिका प्रसंग आता है, तो आने दो, क्या दोष है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, चारों उपशामकोंके प्रतियोगियोंका अभाव है । अर्थात् जिस प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंके भीतर उपशामक और उनके प्रतियोगी क्षपक पाये जाते हैं, उसी प्रकार चौथे उपशामक अर्थात् ग्यारहवें गुणस्थानमें उपशामकोंके प्रतियोगी क्षपक नहीं पाये जाते हैं ।

अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २५ ॥  
क्योंकि, अल्प आयका उपदेश होनेसे सचित होनेवाली राशिके स्तोत्रकपना अर्थात् कम होना न्यायसिद्ध है ।

१ प्रतिपु ' उवसामए सुहे ' इति पाठः ।

२ प्रतिपु ' -मणउत्तिप्पसगा ' इति पाठः ।

३ प्रतिपु ' थोवए पदमादो ' इति पाठः ।

४ प्रतिपु ' मणल्लिदसचयस्स ' इति पाठः ।

### खवा संखेज्जगुणा ॥ २६ ॥

कुदो ? संखेज्जगुणायादो संचउवलंभा । उवसस-खवगणमेदमप्पावहुंगं पुवं परूविदिमिदि एत्थ ण परूविदवं ? ण, पुवसुवसामग-खवगपेसगाणमप्पावहुगकथणादो । तदो चेव संचयप्पावहुगसिद्धीए होदीदि चे सच्चं होदि, उचीदो । उत्तिवादे अणि-उणसत्ताणुगहंमेदमप्पावहुअं पुणो वि परूविदं । खवगसेडीए सम्मत्तप्पावहुअं किण्ण परूविदं ? ण, तेसि खइयसम्मत्तं मोत्तूण अण्णसम्मत्ताभावा । तं कुदो णव्वदे ? खवगेसु उवसस-वेदगसम्मादिह्ठिद्ववादिपरूवयसुत्ताणुवलंभा । उवसमा खवा त्ति सद्दा उवसस-सम्मत्त-खइयसम्मत्तानं वाचया ण होति त्ति भणंताणमभिप्पाएण खइयसम्मत्तस्स अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती उपशामकोंसे तीनों गुणस्थानवर्ती क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २६ ॥

क्योंकि, संख्यातगुणित आयसे क्षपकोंका संचय पाया जाता है ।

शंका—उपशामक और क्षपकोंका यह अल्पवहुत्व पहले कह आये हैं, इसलिये यहां नहीं कहना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पहले उपशामक और क्षपक जीवोंके प्रवेशकी अपेक्षा अल्पवहुत्व कहा है ।

शंका—उसीसे संचयके अल्पवहुत्वकी सिद्धि हो जायगी ( फिर उसे पृथक् क्यों कहा ) ?

समाधान—यह सत्य है कि युक्तिसे अल्पवहुत्वकी सिद्धि हो सकती है । किन्तु जो शिष्य युक्तिवादमें निपुण नहीं हैं, उनके अनुग्रहके लिये यह अल्पवहुत्व पुनः भी कहा है ।

शंका—क्षपकश्रेणीमें सम्यक्त्वका अल्पवहुत्व क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, क्षपकश्रेणीवालोंके क्षायिकसस्यक्त्वको छोड़कर अन्य सम्यक्त्व नहीं पाया जाता है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि, क्षपकश्रेणीवाले जीवोंमें उपशमसस्यग्दष्टि और वेदक-सस्यग्दष्टि जीवोंके द्रव्य अर्थात् संख्या और आदि पदसे क्षेत्र, स्पर्शन आदिके प्ररूपक सूत्र नहीं पाये जाते हैं । उपशामक और क्षपक, ये दोनों शब्द क्रमशः उपशमसस्यक्त्व और क्षायिकसस्यक्त्वके वाचक नहीं हैं, ऐसा कथन करनेवाले आचार्योंके अभिप्रायसे

१ प्रतिपु ' अणिकणसत्ताणुगहं- ' इति पाठः ।

नृपान्द्रुपस्त्वयानि, पुत्रमपद्रुविद्वानुवसागमंचयस्म अप्पावहुवपस्त्वयानि वा दो  
नि मुत्तानि चि धेत्तवंचं ।

**आदेसेण गदियाणुवादेण गिरयगदीए णेरइएसु सव्वथोवा  
सासणसम्मादिद्धी ॥ २७ ॥**

ए१ ओपप्ररुणा समवा ।

जादेयसणं ओघपडिसेहकलं । सेसमगणादिपडिसेहकं गदियाणुवादेवयणं ।  
मेसगदिपडिसेहकण्हो गिरयगदिणिहेसो । सेमगुण्हणपडिसेहकण्हो सासणणिहेसो । उवरि  
उच्चमाणगुण्हणद्वेहेहितो सासणा दव्वपमाणेण थोवा अप्पा इदि उचं हेदि ।

**सम्मामिच्छादिद्धी संखेज्जगुणां ॥ २८ ॥**

कुदो ? सासणुरत्तनणकालादो सम्मामिच्छादिद्धिउवक्कमणकालस्स संखेज्ज-  
गुणस्स उअंलभा । को गुणगारो ? संखेज्जसमया । हेट्टिमरासिणा उवरिमरासिन्दि भागे

ये गंतो मरु श्रायित्तसस्यस्त्वके अरुपयहुत्वके प्ररूपक हं, तथा पहले नहीं प्ररूपण किये  
गये शपक और उग्रशामरत्तनन्धी संचयेके अल्परुत्वके प्ररूपक है, पेसा अर्थ ग्रहण  
रुत्तना चाहिए ।

इस प्रकार ओघप्ररूपणा रामान्त हुई ।

ओददाही अपेधा गतिमार्गान्ते अनुवादेसे नरकगतिसं नारकियोंमें सासादन-  
मय्यग्दृष्टि जी मन्ने कम हं ॥ २७ ॥

सूत्रमें 'ओदेश' यह वचन ओघका प्रतिषेध कर्त्तेके लिए है । शेष मार्गणा  
श्रायित्त प्रतिषेध करनेके लिए 'गतिमार्गान्ते अनुवादेसे' यह वचन कहा है । शेष  
गतियोंके प्रतिषेधके लिए 'नरकगति' इस पदका निर्देश किया । शेष गुणस्थानोंके  
प्रतिषेधार्थ 'नासादन' इस पदका निर्देश किया । ऊपर कहे जानेवाले शेष गुणस्थानोंके  
द्रव्यप्रमाणोंकी अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणसे स्तोक अर्थात् अल्प होते  
हैं, यह अर्थ कहा गया है ।

नारकियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मित्थ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित  
हं ॥ २८ ॥

स्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टियोंके उपक्रमणकालसे सम्यग्मित्थ्यादृष्टियोंका उप-  
क्रमणका संख्यानगुणा पाया जाता है । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।  
अपस्तनराशिका उपरिमराशियोंमें भाग देने पर गुणकारका प्रमाण आता है । अधस्तन-

१ विद्वेष नृपान्तेन नरगतां मर्त्यां प्रविर्त्तितु सर्वतः स्तोत्राः मानदानसम्यग्दृष्टय । स. सि. १, ८.

२ तन्मूर्तिमपाद्वर मर्त्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

हिदे गुणगारो आगच्छदि । को हेट्टिमरासी ? जो थोवो । जो गुण बहु सो उवरिमरासी ।  
एदसत्थपदं जहावसरं सव्वत्थ वत्तवंचं ।

**असंजदसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणां ॥ २९ ॥**

कुदो ? सम्मामिच्छादिद्धिउवक्कमणकालादो असंजदसम्मादिद्धिउवक्कमणकालस्स  
असंखेज्जगुणस्स संभवुअंलभा, सम्मामिच्छं पडिअज्जमाणजीवेहितो सम्मचं पडिअज्ज-  
माणजीवाणमसंखेज्जगुणत्तादो वा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । हेट्टिस-  
रासिणा उवरिमरासिमोवद्विय गुणगारो साहेव्यवो ।

**मिच्छादिद्धी असंखेज्जगुणां ॥ ३० ॥**

को गुणगारो ? असंखेज्जाओ सेडीओ पदरस्स असंखेज्जदिभागो । तारिं सेठीणं  
विव्खंभस्सची अंगुलस्म असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि अंगुलवग्गमूलाणि निदियवग्ग-  
मूलस्स असंखेज्जभागमेत्ताणि । तं जथा - असंजदसम्मादिद्धीहि सूचिअंगुलविदियवग्गमूलं  
गुणेदूण तेण सूचिअंगुले भागे हिदे लद्धमंगुलस्स असंखेज्जदिभागो । असंखेज्जाणि अंगुल-  
वग्गमूलाणि गुणगारिविक्खंभस्सची होदि चि कथं णव्वदे ? उच्चदे - असंजदसम्मादिद्धीहि  
राशि कौनसी है ? जो अरुप होती है, वह अधस्तनराशि है, और जो वरुत होती है, वह  
उपरिमराशि है । यह अर्थपद यथावसर सर्वत्र कहना चाहिए ।

नारकियोंमें सम्यग्मित्थ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हं ॥ २९ ॥  
स्योंकि, सम्यग्मित्थ्यादृष्टियोंके उपक्रमणकालसे असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपक्रमण-  
काल असंख्यातगुणा पाया जाता है । अथवा, सम्यग्मित्थ्यात्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंसे  
सम्यस्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित होते हैं । गुणकार क्या है ?  
आवलीता असंख्यातवां भाग गुणकार है । अधस्तनराशिसे उपरिमराशिको अपवर्तित  
करके गुणकार सिद्ध कर लेना चाहिए ।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हं ॥ ३० ॥  
गुणकार क्या है ? असंख्यात जगत्रेणियां गुणकार है, जो जगत्रेणियां जगत्रतरेके  
असंख्यातवें भागप्रमाण है । उन जगत्रेणियोंकी विक्खंभस्सची अंगुलके असंख्यातवें भाग-  
प्रमाण है । जिसका प्रमाण अंगुलके द्वितीय वर्गमूलके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात  
प्रथम वर्गमूल है, वह इस प्रकार है - असंयतसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाणसे सूख्यंगुलके द्वितीय  
वर्गमूलको गुणित करके जो लब्ध आवे, उससे सूख्यंगुलमें भाग देने पर अंगुलका  
असंख्यातवां भाग लब्ध आता है ।

शुक्रा—अंगुलके असंख्यात वर्गमूल गुणकार विक्खंभस्सची है, यह कैसे जाना  
आता है ?

समाधान—असंयतसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाणसे सूख्यंगुलके द्वितीय वर्गमूलके

१ अस्तपतमम्यग्दृष्टयोऽस्तस्येयगुणा । स. सि. १, ८. २ मिपाद्वर्योऽस्तस्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

स्त्रिअंगुलविदियवगमूले भागे हिदे लद्धम्मि जत्तियाणि रूवाणि तत्तियाणि अंगुलपटम-  
वगमूलाणि । कुदो ? दव्वविक्खंभस्सची घणंगुलविदियवगमूलेत्ता, असंजदसम्मा-  
दिद्धीहि तम्मि घणंगुलविदियवगमूले ओवद्धिदे असंखेज्जाणि सूचिअंगुलपटमवग-  
मूलाणि होति त्ति तंत-ञ्चत्तिसिद्धीदो । तत्थ जेत्तियाणि रूवाणि तेत्तियमेत्ता सेडीओ  
गुणगारो होदि ।

**असंजदसम्माइट्टिद्वाने सव्वथोवा उवसमसम्मादिद्धी ॥ ३१ ॥**

कुदो ? अंतोपुहुत्थेत्तुवसमसम्मतद्वाए उवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जिदि-  
भागेण संचिदत्तादो उच्चमाणसव्वसम्मादिद्धिरासीहितो उवसमसम्मादिद्धी थोवा होति ।

**खइयसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ ३२ ॥**

कुदो ? सहावदो चैव उवसमसम्मादिद्धीहितो असंखेज्जगुणसरूवेण खइयसम्मा-  
इद्धीमणाइणिहणमवद्वाणादो, संखेज्जपल्लिदोवम्भंतरे पल्लिदोवसस असंखेज्जदिभाग-  
भेत्तुवक्कमणकालेण संचिदत्तादो असंखेज्जगुणा त्ति बुत्तं होदि । एत्थत्तणखइयसम्मा-  
दिद्धीणं भागहारो असंखेज्जावलियाओ । कुदो ? ओघासंजदसम्मादिद्धीहितो असंखेज्ज-

भाजित करने पर लब्धमें जितना प्रमाण आवे, उतने सूत्र्यंगुलके प्रथम वर्गमूल गुणकार-  
विक्रमसूत्रमें होते हैं, क्योंकि, द्व्यविक्रमसूत्री घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलमात्र है ।  
इसलिए असंयतसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाणसे उस घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलके अपवर्तित  
कर देनेपर सूत्र्यंगुलके असंब्यात प्रथम वर्गमूल होते हैं, यह प्रकार आगम और युक्तिसे  
सिद्ध है । अतएव वहांपर जितनी संख्या हो तन्मात्र जगश्रेणियां वहांपर गुणकार है ।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम है ॥३१॥

क्योंकि, अन्तर्मुहूर्तमात्र उपशमसम्यक्त्वके कालमें आवलीके असंब्यातवै भाग-  
प्रमाण उपक्रमणकाल द्वारा संचित होनेके कारण आगे कहे जानेवाले सर्व प्रकारके  
सम्यग्दृष्टियोंकी राशियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव थोड़े होते हैं ।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि  
असंब्यातगुणित है ॥ ३२ ॥

क्योंकि, स्वभावसे ही उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका  
असंब्यातगुणितरूपसे अन्नादिनिधन अवस्थान है, जिसका तात्पर्य यह है कि संब्यात  
पत्योपमके भीतर पत्योपमके असंब्यातवै भागमात्र उपक्रमणकाल द्वारा संचित होनेसे  
क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे असंब्यातगुणित हैं । यहा नारकियोंमें जो  
क्षायिकसम्यग्दृष्टि है उनके प्रमाणके लानेके लिए भागहारका प्रमाण असंब्यात आवलियां  
हैं, क्योंकि, ओघ असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे असंब्यातगुणित हीन ओघ क्षायिकसम्यग्दृष्टि

गुणहीणओघखइयसम्मादिद्धीणं असंखेज्जदिभागमेत्तादो । ण वासपुधचंतरसुत्तेण सह  
विरोहो, सोहम्मीसाणकरुपं मोत्तूण अणत्थ द्दिदखइयसम्मादिद्धीणं वासपुधत्तस्स विललत्त-  
वाइणो गहणादो । तं तथा धेप्पदि त्ति कुदो णव्वदे ? ओघुवसमसम्मादिद्धीहितो  
ओघखइयसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा त्ति अप्पावहुअसुत्तादो ।

**वेदगसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ ३३ ॥**

कुदो ? खइयसम्मात्तादो खओवसमियस्स वेदगसम्मात्तस्स सुलहत्तुवलंभा । को  
गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कधमेदं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदु-  
वदसादो ।

**एवं पटमाए पुठवीए गेरइया ॥ ३४ ॥**

जहा सामणणेइयाणमप्पावहुअं परूविदं, तथा पटमपुठवीणेइयाणमप्पावहुअं परू-  
वेदव्वं, ओघणेइयअप्पावहुआलावादो पटमपुठवीणेइयाणमप्पावहुआलावस्स भेदाभावा ।

जीव असंब्यातवै भाग ही होते हैं । इस कथनका वर्षपृथक्त्व अन्तर वतानेवाले सूत्रके  
साथ विरोध भी नहीं आता है, क्योंकि, सौधर्म और पेशानकल्पको छोड़कर अन्यत्र  
स्थित क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके अन्तरमें कहे गये वर्षपृथक्त्वके 'पृथक्त्व' शब्दको वैपुल्य-  
वाची ग्रहण किया गया है ।

शंका—यहां पर पृथक्त्वका अर्थ वैपुल्यवाची ग्रहण किया गया है, यह कैसे  
जाना जाता है ?

समाधान—'ओघ उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे ओघ क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असं-  
ख्यातगुणित हैं,' इस अल्पबहुत्वके प्रतिपादक सूत्रसे जाना जाता है ।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि  
असंब्यातगुणित है ॥ ३३ ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा क्षायोपशमिक वेदकसम्यक्त्वकी प्राप्ति  
सुलभ है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंब्यातवै भाग गुणकार है ।  
शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्य परंपरासे आये हुए उपदेशके द्वारा जाना जाता है ।

इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकियोंका अल्पबहुत्व है ॥ ३४ ॥

जिस प्रकार सामान्य नारकियोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार पहली पृथि-  
विके नारकियोंका अल्पबहुत्व कहना चाहिए, क्योंकि, सामान्य नारकियोंके अल्पबहुत्वके  
कथनसे पहली पृथिवीके नारकियोंके अल्पबहुत्वके कथनमें कोई भेद नहीं है । किन्तु

पञ्चाद्वियुगलं नलं निज्जमाणे अत्थि विमेषो, सो जाणिय वचव्वो ।

**विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु सव्वथोवा सासण-  
सम्मादिट्ठी ॥ ३५ ॥**

विदियादिच्छहं पुढवीणं सामणमम्मादिट्ठिणो बुद्धीए पुथ पुथ इविय सव्वथोवा  
ति उचं । बुद्धो ? छह्मण्णवद्दुग्गणमेयचचिराहादो । सव्वोहितो थोवा सव्वथोवा ।  
आदि-अंतंणु णेरइएसु णिदिहेसु सेसमस्सिमणेरइया सव्वे णिदिट्ठा चेष, जावसद्दुच्चार-  
णणहायणपत्तंदो । जामरेण सत्तमपुढवीणेरहयणं मज्जादत्ताए ठविदाए, विदियपुढवी-  
णेरइयाणमाटिचामादिदं । आदी अंता न मज्जेण पिणा ण होति ति चट्ठुहं पुढवी-  
णेरइयाणं मस्सिमचं पि जामयेणप पत्तंदिदं । तदो पुथ पुथ पुढवीणसुच्चारणा ण कदा ।

**सम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३६ ॥**

विदियपुढवीआदिसत्तमपुढवीपज्जंतसासणाणसुवरि पुथ पुथ छपुढवीसम्माभिच्छा-  
दिट्ठिणो संखेज्जगुणा, मासणसम्मादिट्ठिवक्कमणकालादो सम्माभिच्छादिट्ठिवक्कमण-  
पयांयाथिरुत्तयका अयलम्बन करने पर कुछ विशेषता है, सो जानकर कहना चाहिए ।  
(येसो भाग ३, पृ. १६२ इत्यादि ।)

नारकियोंमें दूसरीमें लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे  
क्रम है ॥ ३५ ॥

दूसरीको आदि लेकर ऊहों पृथिवियोंके सासादनसम्यग्दृष्टियोंको बुद्धिके द्वारा  
पृथक् पृथक् स्थापित करके प्रत्येक सबसे क्रम है, ऐसा अर्थ कहा गया है, क्योंकि, छहों  
पृथक्पृथक्को एक माननेमें विरोध आता है । सबसे थोड़ोंको सर्वस्तोक कहते हैं ।  
आदिम और अन्तिम नारकियोंके निर्देश कर देने पर शेष मध्यम सभी नारकियोंका  
निर्देश हो ही जाता है, अन्यथा यावत् शब्दका उच्चारण नहीं बन सकता है । यावत्  
शब्दके तारा सातवीं पृथिवीके नारकियोंके मर्यादारूपसे स्थापित किये जानेपर  
दूसरी पृथिवीके नारकियोंके आदिपना अपने आप आ जाता है । आदि और अन्त मध्यके  
पिना नहीं होते हैं, इसलिए चार पृथिवियोंके नारकियोंके मध्यमपना भी यावत् शब्दके  
द्वारा ही प्रकृतित कर दिया गया । इसी कारण पृथक् पृथक् रूपसे पृथिवियोंका नाम-  
निर्देशपूर्ण उच्चारण नहीं किया गया है ।

नारकियोंमें दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्य-  
ग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६ ॥

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंके ऊपर पृथक्  
पृथक् छह पृथिवियोंके सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, सासादन-  
सम्यग्दृष्टियोंके उपक्रमणकालसे सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उपक्रमणकाल युक्तिके संख्यात-

१ आ रूपयोः 'नेरसा' इति पाठः ।

२ प्रतिपु 'मविदा' इति पाठ ।

कालस्स खुचीए संखेज्जगुणुवलंभा । को गुणगरो ? संखेज्जा समया ।

**असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३७ ॥**

कुदो ? छपुढविसम्माभिच्छादिट्ठिवक्कमणकालेहितो छपुढविअसंजदसम्मा-  
दिट्ठिवक्कमणकालाणमसंखेज्जगुणुचंदसणादो, एरासमएण सम्माभिच्छाचमुवक्कमंतजीवेहितो  
एरासमएण वेदयसम्मचमुवक्कमंतजीवाणमसंखेज्जगुणत्तादो वा । को गुणगरो ? आन-  
लियाए असंखेज्जदिभागो । कथमेदं णव्वेदे ? ' एदेहि पल्लिवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण  
कालेणत्ति' सुत्तादो । असंखेज्जावलियाहि अंतोमुहुत्तचं किण्ण विरुज्जदि ति उत्ते ण,  
ओअसंजदसम्मादिट्ठिवहाराकालं मोत्तूण सेसगुणपडिवण्णाणमवहारकालस्स कज्जे  
कारणोवयाणेण अंतोमुहुत्तसिद्धीदो ।

**भिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३८ ॥**

छहं पुढवीणमसंजदसम्मादिट्ठीहितो सेडीवारस्स-दसम-अट्टम-छट्ठ-तइय-विदियवग्ग-

गुणा पाया जाता है । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

नारकियोंमें दूसरीसे सातवीं पृथिवी तक सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि  
जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३७ ॥

स्व्योंकि, छह पृथिवियोंसम्वन्धी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके उपक्रमणकालोंसे छह  
पृथिवीगत असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपक्रमणकाल असंख्यातगुणा देखा जाता है । अथवा,  
एक समयके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा एक समयके  
द्वारा वेदरुसम्यग्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित होते हैं । गुणकार क्या है ?  
आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—' इन जीवराशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता  
है, ' इस द्रव्यानुयोगद्वारेके सूत्रसे जाना जाता है ।

शंका—अन्तर्मुहूर्तका अर्थ असंख्यात आवलियां लेनेसे उसका अन्तर्मुहूर्तपना  
विरोधको क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, स्व्योंकि, ओअसंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके अवहारकालको छोड़-  
कर शेष गुणस्थान-प्रतिपन्न जीवोंके अवहारकालका कार्यमें कारणका उपचार कर लेनेसे  
अन्तर्मुहूर्तपना सिद्ध हो जाता है ।

नारकियोंमें दूसरीसे सातवीं पृथिवी तक असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि  
जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३८ ॥

द्वितीयादि छहों पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे जगश्रेणिकि बारहवें, दशवें,



मूलेष्विदंसेडीमेचछपुढविमिच्छादिद्विणो असंखेज्जगुणा हंति । को गुणगारो ? सेडीए असंखेज्जजिणो, असंखेज्जजिण सेडीपढमवगममूलाणि । को पडिभागो ? असंखेज्जजिण सेडीवारसम-दसम-अडुम-छट्ट-तदिय-विदियवगममूलाणि । कुदो ? असंजदसम्मादिद्विरासिणा गुणिदत्तादो ।

**असंजदसम्मादिद्विणो उवसथोवा सन्वथोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ ३९ ॥**

सन्वेहि उच्चमाणद्वणोहितो थोवा त्ति सन्वथोवा । कुदो ? आबलियाए असंखेज्जिभागमेत्तउवक्कमणकालेण संचिदत्तादो ।

**वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ४० ॥**

एत्थ पुवं व तीहि पयोरोहि सेवियसरूवेहि गुणयारो परूवेदव्वो । एत्थ खइयसम्मादिद्विणो ण परूविदा, हेड्डिमछपुढवीसु तेसिसुववादाभावा, मणुसगइं सुच्चा अणत्थ दंसणमोहणीयखवणाभावादो च ।

आठवें, छठवें, तीसरे और दूसरे वर्गमूलसे भाजित जगश्रेणीप्रमाण छह पृथिवियोंके भिन्न्यादृष्टि नारकी असंख्यातगुणित होते हैं । गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? जगश्रेणीके वारहवें, दशवें, आठवें, छठवें, तीसरे और दूसरे असंख्यात वर्गमूलप्रमाण प्रतिभाग है, क्योंकि, ये सब असंयतसम्यग्दृष्टिप्राप्तिसे गुणित हैं ।

नारकियोंमें द्वितीयादि छह पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशम-सम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ३९ ॥

आगे कहे जानेवाले स्थानोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि थोड़े होते हैं, इसलिये वे सर्व-स्तोक कहलाते हैं, क्योंकि, आवलीके असंख्यातवे भागमात्र उपक्रमणकालसे उनका संचय होता है ।

नारकियोंमें द्वितीयादि छह पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशम-सम्यग्दृष्टियोंसे वेदप्रसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४० ॥

यहां पर पहलेके समान सेविकस्वरूप अर्थात् मापके विशेष भेदस्वरूप तीनों प्रकारोंसे गुणकारका प्ररूपण करना चाहिए (देखो पृ २४९) । यहा क्षयिकसम्यग्दृष्टियोंका प्ररूपण नहीं किया है, क्योंकि, नीचेकी छह पृथिवियोंमें क्षयिकसम्यग्दृष्टियोंकी उत्पत्ति नहीं होती है, और मनुष्यगतिको छोड़कर अन्य गतियोंसे दर्शनमोहनीयकी क्षयणा नहीं होती है ।

**तिरिखसगदीए तिरिख-पंचिदियतिरिख-पंचिदियपज्जत्त-तिरिख-पंचिदियजोणिणीसु सन्वथोवा संजदासंजदा ॥ ४१ ॥**

पयदचउव्विहतिरिखेसु जे देसव्वइणो ते तेसिं चेव सेसगुणद्वणजोविहितो थोवा त्ति चट्टुण्हमप्पावहुआणं मूलपदमेदेण परूविदं । किमइं देसव्वइणो थोवा ? संजया-संजयुवलभस्स सुटुल्लहत्तादो ।

**सासणसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ४२ ॥**

चउव्विहतिरिखणं जे सासणमम्मादिद्विणो ते सग-सगसंजदासंजदेहितो असंखेज्जगुणा, संजमासंजमुवलंभादो सासणगुणलभस्स सुल्लहुवलंभा । को गुणगारो ? आबलियाए असंखेज्जदिभागो । तं कथं णव्वेदं ? अंतोसुहुत्तमुत्तादो, आइरियपरंपरा-गटुवेदादो वा ।

**सम्मामिच्छादिद्विणो संखेज्जगुणा ॥ ४३ ॥**

तिर्यचगत्तिमे तिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रियपर्याप्त और पंचेन्द्रिययोनिमती तिर्यच जीवोंमें संयतासंयत सबसे कम हैं ॥ ४१ ॥

प्रकृत चारो प्रकारोंके तिर्यचोंमे जो तिर्यच देशव्रती है, वे अपने ही नेप गुण-स्थानवर्ती जीवोंसे थोड़े हैं, इस प्रकार इससे चारों प्रकारके तिर्यचोंके अल्पबहुत्वका मूलपद प्ररूपण किया गया है ।

शंका—देशव्रती अल्प क्यों होते हैं ?

समाधान—क्योंकि, संयमासंयमकी प्राप्ति अतिदुर्लभ है ।

उक्त चारों प्रकारके तिर्यचोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात-गुणित हैं ॥ ४२ ॥

चारों प्रकारके तिर्यचोंमें जो सासादनसम्यग्दृष्टि जीव है, वे अपने अपने संयता-संयतोंसे असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, संयमासंयम-प्राप्तिकी अपेक्षा सासादन गुण-स्थानकी प्राप्ति सुलभ है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—अन्तर्मुहूर्त अवहारकालके प्रतिपादक सूत्रसे और आचार्य परम्परसे आये हुए उपदेशसे यह जाना जाता है ।

उक्त चारो प्रकारके तिर्यचोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ४३ ॥

चतुर्भिर्निरिक्रमसाधनसम्मादिद्वीहितो सग-सगसम्मादिद्विगो संखेज्ज-  
गुणा । कुदो ? मामयु रक्रमणकालादो सम्मादिद्विगुणमुवक-रुमणकालस्स तंत-सुत्तीए  
संखेज्जगुणगुणलभा । को गुणगो ? नखेज्जममया ।

**असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ४४ ॥**

चतुर्भिर्निरिक्रमसम्मादिद्वीहितो तेमिं च न असंजदसम्मादिद्विगो अराखेज्ज-  
गुणा । कुदो ? गम्मादिद्विगुणमुवक-रुमणकालस्स तंत-सुत्तीए सम्मत्तमुवक-रुमणकालस्स संखेज्जगुण-  
गो । को गुणगो ? आनलियाए असंखेज्जदिभागो । तं कुदो णवन्दे ? 'पल्लिदोवमम-  
नहिरिदि अतोपुत्तुत्तेत्ति' सुचादो, आहारियपरंपरागदुवदेसादो वा ।

**मिच्छादिद्वी अणंतगुणा, मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ४५ ॥**

नदुहं निरिसाणमसंजदसम्मादिद्वीहितो तेसिं च न मिच्छादिद्वी अणंतगुणा  
अमरोज्जगुणा य । त्रिपडिसिद्धमिदं । जदि अणंतगुणा, कथमसंखेज्जगुणत्तं ? अह

चारो प्रकारके नामादनसम्यग्दष्टि तिर्यचोंसे अपने अपने समयमिथ्यादष्टि  
निर्यच संख्यातगुणित है, क्योंकि, मासादनसम्यग्दष्टियोंके उपक्रमणकालसे सम्यग्मिथ्या-  
दष्टियोंका उपक्रमणकाल आगम और शुकितसे संख्यातगुणा पाया जाता है । गुणकार  
नया है ? मन्यात नमय गुणकार है ।

उक्त चारों प्रकारके तिर्यचोंमें सम्यग्मिथ्यादष्टियोंसे असंयतसम्यग्दष्टि जीव  
असंख्यातगुणित है ॥ ४४ ॥

चारों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादष्टि तिर्यचोंसे उनके ही असंयतसम्यग्दष्टि जीव  
असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंसे सम्यक्त्वको प्राप्त  
होनेवाले जीव असंख्यातगुणित होते हैं । गुणकार नया है ? आचलिका असंख्यातवां  
भाग गुणकार है ।

शंका—क्यों जाने जाना जाता है ?

समाधान—'इत जीवतद्विषयोंके प्रमाणद्वारा अन्तर्बुद्धत कालसे पल्योपम अपदृत  
होना है' इस प्रमाणद्वाराके सुनसे और आचार्य परम्परासे आये हुए उपदेशसे  
जाना जाना है ।

उक्त चारों प्रकारके तिर्यचोंमें असंयतसम्यग्दष्टियोंसे मिथ्यादष्टि जीव अनन्त-  
गुणित हैं, और मिथ्यादष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४५ ॥

चारों प्रकारके असंयतसम्यग्दष्टि तिर्यचोंसे उनके ही मिथ्यादष्टि तिर्यच अनन्त-  
गुणित हैं और असंख्यातगुणित भी हैं ।

शंका—यह बात तो विप्रतिपक्ष अर्थात् परस्पर विरोधी है । यदि अनन्त-  
गुणित हैं, तो क्या असंख्यातगुणत्व नहीं बन सकता है, और यदि असंख्यातगुणित हैं, तो

असंखेज्जगुणा, कथयणंतगुणत्तं; दोणहमकक्रमेण एवत्थ पडत्तिविरोहा ? एत्थ परिहारो  
उच्चदे— 'जहा उदेसो तथा णिदेसो' चि णयादो 'तिरिक्खमिच्छादिद्वी केणडिया,  
अणंता, सेसतिरिक्खतियमिच्छादिद्वी असंखेज्जा' इदि सुचादो वा एवं संबंधो कीरदे-  
तिरिक्खमिच्छादिद्वी अणंतगुणा, सेसतिरिक्खतियमिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ति, अण्णाहा  
दोणहुच्चारणाए विहलत्तपसंगा । को गुणगो ? तिरिक्खमिच्छादिद्वीणगभवसिद्धिएहि  
अणंतगुणो, सिद्धेहि त्रि अणंतगुणो, अणंतगुणो, अणंतगुणो, अणंतगुणो, अणंतगुणो ।  
को पडिभागो ? तिरिक्खअसंजदसम्मादिद्विरासी पडिभागो । मेसतिरिक्खतियमिच्छा-  
दिद्वीणं गुणगो पदरसस असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ असंखेज्जसेडीपढमवग-  
मूलमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, पल्लिदोवमस्सासंखेज्जदि-  
भागमेत्तपदरंगुलाणि वा पडिभागो । अधवा सग-सगद्वानणमसंखेज्जदिभागो  
(गुणगो) । को पडिभागो ? सग-सगअसंजदसम्मादिद्वी पडिभागो ।

**असंजदसम्मादिद्विगुणे सवत्थोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ ४६ ॥**

अनन्तगुणत्व कैसे बन सकता है, क्योंकि, दोनोंकी एक साथ एक अर्थमें प्रवृत्ति होनेका  
विरोध है ?

समाधान—इस शंकाका परिहार करते हैं— 'उद्देशके अनुसार निर्देश किया  
जाता है' इस न्यायसे, अथवा 'मिथ्यादष्टि सामान्य तिर्यच भित्तमे है ? अनन्त है,  
शेष तीन प्रकारके मिथ्यादष्टि तिर्यच असंख्यात हैं' इस सूत्रसे इस प्रकार सम्यक्  
करना चाहिए— मिथ्यादष्टि सामान्यतिर्यच अनन्तगुणित है और शेष तीन प्रकारके  
मिथ्यादष्टि तिर्यच असंख्यातगुणित हैं । यदि ऐसा न माना जायगा, तो दोनों परमोंही  
उच्चारणोंके विफलताका प्रसंग प्राप्त होगा ।

यहांपर गुणकार नया है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्त-  
गुणा तिर्यच मिथ्यादष्टियोंका गुणकार है, जो सम्पूर्ण जीवतद्विषयोंके अनन्त प्रथम वर्गमूल-  
प्रमाण है । प्रतिभाग नया है ? असंयतसम्यग्दष्टि तिर्यचराशि प्रतिभाग है । शेष तीर  
प्रकारके तिर्यच मिथ्यादष्टियोंका गुणकार जगप्रतरका असंख्यातवा भाग है, जो जग-  
श्रेणीके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमित असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ?  
घनंगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है । अथवा, पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित  
प्रतरंगुल प्रतिभाग है । अथवा, अपने अपने इत्येका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।  
प्रतिभाग क्या है ? अपने अपने असंयतसम्यग्दष्टि जीवोंका प्रमाण प्रतिभाग है ।

तिर्यचोंमें असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें उपग्रामसम्यग्दष्टि जीव सबसे कम  
हैं ॥ ४६ ॥

तं जहा- चउब्बिहेसु तिरिक्खेसु भणिस्समाणसव्वसम्माइट्ठिदव्वादो उवसम-  
सम्माइठी थोवा, आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तउवक्कमणकालम्भंतरे संचिदत्तादो ।

**खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ४७ ॥**

कुदो ? असंखेज्जवस्साउगोसु पल्लोदोवस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालेण संचि-  
दत्तादो, अणाइणिहणसरूवेण उवसमसम्मादिट्ठीहितो खइयसम्मादिट्ठीणं आवलियाए  
असंखेज्जदिभागगुणत्तेण अवट्ठणादो वा । आवलियाए असंखेज्जदिभागो गुणगारो त्ति  
कथं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदुव्वदेसादो ।

**वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ४८ ॥**

कुदो ? दंसणमोहणीयक्खएणुप्पणखइयसम्मत्ताणं सम्मत्तुप्पत्तीदो पुब्बमेव  
नद्धतिरिक्खाउआणं पउरं संभवाभावा । ण य लोए सारदव्वाणं दुल्लहत्तमप्पसिद्धं, अस्स-  
हत्थि-पत्थरादिसु साराणं लोए दुल्लहत्तुवलंभा ।

वह इस प्रकार है- चारों प्रकारके तिर्यचोंमे आगे कहे जानेवाले सर्वे सम्यग्दृष्टि-  
योंके द्रव्यप्रमाणसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अल्प है, क्योंकि, आवलीके असंब्यतावै भाग-  
मात्र उपक्रमणकालके भीतर उनका संचय होता है ।

तिर्यचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि  
जीव असंब्यतागुणित हैं ॥ ४७ ॥

क्योंकि, असंब्यता वर्षकी आयुवाले जीवोंमें पल्योपमेके असंब्यतावै भागमात्र  
कालके द्वारा संचित होनेसे, अथवा अनादिनिधनस्वरूपसे उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी  
अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका आवलीके असंब्यतावै भाग गुणितप्रमाणसे अवस्थान  
पाया जाता है ।

शंका—यहां आवलीका असंब्यतावै भाग गुणकार है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्य परम्परासे आप हुए उपदेशसे जाना जाता है ।

तिर्यचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि  
जीव असंब्यतागुणित हैं ॥ ४८ ॥

क्योंकि, जिनहोंने सम्यक्त्वकी उत्पत्तिसे पूर्व ही तिर्यच आयुका बंध कर लिया  
है, ऐसे दर्शनमोहनीयके क्षयसे उत्पन्न हुए क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका प्रचुरतासे होना  
संभव नहीं है । और, लोकमें सार पदार्थोंकी दुर्लभता अप्रसिद्ध भी नहीं है, क्योंकि,  
अद्व, हस्ती ओर पाषाणादिकोंमें सार पदार्थोंकी सर्वत्र दुर्लभता पाई जाती है ।

**संजदासंजदट्ठोणे सव्वथोवा उवसमसम्माइठी ॥ ४९ ॥**

कुदो ? देसव्वयाणुविद्धुवसमसम्मत्तस्स दुल्लहत्तादो ।

**वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ५० ॥**

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एदम्हदो गुणगारादो णव्वदे  
समयं पडि तदुवचयादो असंखेज्जगुणत्तेणुवचिदा त्ति असंखेज्जगुणत्तं । एत्थ खइय-  
सम्माइठीणमप्पावहुअं किण्ण परूविदं ? ण, तिरिक्खेसु असंखेज्जवस्साउएसु चैय खइय-  
सम्मादिट्ठीणसुववादुवलंभा । पंचिदियतिरिक्खजोणिणिसु सम्मत्तप्पावहुअविसिसपदु-  
प्पायणट्ठुत्तसुत्तं भणदि-

**णवरि विसेसो, पंचिदियतिरिक्खजोणिणिसु असंजदसम्मादिट्ठि-  
संजदासंजदट्ठोणे सव्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ५१ ॥**

सुगमभेदं ।

**वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ५२ ॥**

तिर्यचोंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम है ॥४९॥  
क्योंकि, देशत्रतसहित उपशमसम्यक्त्वका होना दुर्लभ है ।

तिर्यचोंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव  
असंब्यतागुणित हैं ॥ ५० ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंब्यतावै भाग गुणकार है । इस गुणकारसे  
यह जाना जाता है कि प्रतिसमय उनका उपचय होनेसे वे असंब्यतागुणित संचित हो  
जाते हैं, इसलिए उनके प्रमाणके असंब्यतागुणितता वन जाती है ।

शंका—यहां संयतासंयत गुणस्थानमे क्षायिकसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंका अल्पवहुत्व  
क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, असंब्यता वर्षकी आयुवाले भोगभूमियां तिर्यचोंमें  
ही क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपाद पाया जाता है ।

अब पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें सम्यक्त्वके अल्पवहुत्वसम्बन्धी विशेषके  
प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेषता यह है कि पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमे असंयतसम्यग्दृष्टि और  
संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें  
उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंब्यतागुणित हैं ॥ ५२ ॥

को गुणगो ? आमलियाए अमनेज्जदिआगो । एत्थ सइपसम्मदिट्ठीणमप्या-  
बहुअं गत्थि, मनिअथीसु मन्मादिट्ठीणमुत्तादाभावा, मणुसगइवदिरित्तण्णगईसु दसण-  
भोअणीयस्वभाणाभावाच्च ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु तिसु अइआसु उव-  
समा पवेसणेण तुल्ला शोवां ॥ ५३ ॥

तिसु रि मणुससु तिणिण वि उरसामया पवेसणेण अण्णेणमवेक्सिय तुल्ला  
मरिमा, चउत्तणोपचत्तादो । ने ज्जेय थोच, उरिसगुणह्वाणजीवावेक्खाए ।

उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था तेत्तिया चेव ॥ ५४ ॥

कुदो ? देड्ढिमणुह्वाणे पडिवण्णजीवाणं चेय उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्थ-  
पज्जाण्ण परिणामुत्तंथा । संचयस्स अप्पावहुअं किण्ण परुत्तिदं ? ण, पवेसप्पावहुएण  
चेय तददगमादो । जदो संचओ गाम पवेसाहीणो, तदो पवेसप्पावहुएण सरिसो  
संचयपामदो ति पुथ ण उत्तो ।

गुणकार क्या हे ? आवलीका जसंत्यानवांमगा गुणकार हे । यहां पंचेन्द्रियतयंच  
गोनिनितियांमं गारिकमय्यग्घि जीवोंका अरुपमुत्त्व नहीं है, क्योंकि, सर्व प्रकारकी  
भित्तियोंमें मन्मन्ध्रि जीवोंका उपपाद नहीं होता है, तथा मनुष्यगतिको छोड़कर अन्य  
भित्तियोंमें दंतमौलीयकर्मही क्षणज्ञान भी अज्ञान हे ।

मनुष्यगतियों मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन  
गुणन्मानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ५३ ॥

पूर्वोक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अपूर्वकरण आदि तीनों ही उपशामक जीव  
प्रवेशके परस्परही अपेक्षा तुल्य पर्याप्त सदृश हैं, क्योंकि, एक समयमें अधिकसे अधिक  
चोपन जीवोंका प्रवेश पाया जाता है । तथा, ये जीव ही उपरिम गुणस्थानोंके जीवोंकी  
अपेक्षा अल्प हैं ।

उपशान्तहापायवीतरागछप्रथ जीव प्रवेशसे पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ५४ ॥

क्योंकि, अग्रन्तन गुणस्थानोंको प्राप्त हुए जीवोंका ही उपशान्तकपायवीतराग-  
छप्रस्थरूप पर्यायमे परिणमण पाया जाता है ।

अज्ञा—यहा उपशामकोंके संचयका अरुपवहुत्त्व क्यों नहीं बतलाया ?

ममानान—नहीं, क्योंकि, प्रवेशसम्बन्धी अरुपवहुत्वसे ही उसका ज्ञान हो  
जाता है । चूंकि, सचय प्रवेशके आधीन होता है, इसलिए प्रवेशके कल्पयवुत्वसे  
संचयका अरुपवहुत्त्व समझा है, अतएव उसे पृथक् नहीं बतलाया ।

१ मणुसगो मन्वानावुपगतमिअमत्ततान्तानां मामान्याए । स ति. १, ८.

२ उ व मा ' पवेसाहीणो ' या सत्तो ' पवेसाहिणो ' इति पाठः ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ ५५ ॥

कुदो ? अहुत्तरसदमेत्तत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ५६ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया  
चेय ॥ ५७ ॥

कुदो ? खीणकसायपज्जाएण परिणदानं चेय उत्तरगुणह्वाणुवक्कमुवलंभा ।

सजोगिकेवली अइं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ५८ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्तएसु ओघसजोगिरासिं ठविय देड्ढिमरासिणा ओघइय गुणगारो  
उपपादेद्ववो । मणुसिणीसु पुण तप्पाओगसंखेज्जसजोगिजीवे इविय अहुत्तरसदं मुच्चा  
तप्पाओगसंखेज्जखीणकसाएहि ओघइय गुणगारो उपपादेद्ववो ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें उपशान्तकपायवीतरागछप्रस्थोंसे क्षपक जीव सख्यात-  
गुणित हैं ॥ ५५ ॥

क्योंकि, क्षपकसम्बन्धी एक गुणस्थानमे एक साथ प्रवेश करनेवाले जीवोंका  
प्रमाण एक सौ आठ है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें क्षीणकपायवीतरागछप्रस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही  
हैं ॥ ५६ ॥

यह स्रज सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दोनों भी प्रवेशसे  
तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ५७ ॥

क्योंकि, क्षीणकपायरूप पर्यायसे परिणत जीवोंका ही आगेके गुणस्थानोंमें  
उपक्रमण ( गमन ) पाया जाता है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित  
हैं ॥ ५८ ॥

सामान्य मनुष्य और पर्याप्त मनुष्योंमेंसे ओघ सयोगिकेवलीराशिको स्थापित  
करके और उसे अधस्तनराशिले भाजित करके गुणकार उत्पन्न करना चाहिए । किन्तु  
मनुष्यनियोंमें उनके योग्य संख्यात सयोगिकेवली जीवोंको स्थापित करके एक सौ आठ  
संख्याको छोड़कर उनके योग्य संख्यात क्षीणकपायवीतरागछप्रस्थोंके प्रमाणमे भाजित  
करके गुणकार उत्पन्न करना चाहिए ।

अपमत्तसंजदा अक्खवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ५९ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्तानं ओघमिह उत्त-अप्पमत्तरासी चैव हेदि । मणुसिणीसु पुण तप्पाओगसंखेज्जमेत्तो हेदि । सेसं सुगमं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ६० ॥

एदं पि सुगमं ।

संजदासंजदा संखेज्जगुणा ॥ ६१ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्तएसु संजदासंजदा संखेज्जकोडिमेत्ता । मणुसिणीसु पुण तप्पाओगसंखेज्जरूपमेत्ता ति धेत्तब्बा, वट्टमाणकाले एत्थिया ति उवदेसाभावा । सेसं सुगमं ।

सासणसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६२ ॥

कुदो ? ततो संखेज्जगुणकोडिमेत्तत्तादो । मणुसिणीसु तदो संखेज्जगुणा, तप्पाओगसंखेज्जरूपमेत्तत्तादो । सेसं सुगमं ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेबलीसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्त-संयत संख्यातगुणित हैं ॥ ५९ ॥

ओघरूपणामें कही हुई अप्रमत्तसंयतोंकी राशि ही मनुष्य-सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तक अप्रमत्तसंयतोंका प्रमाण है । किन्तु मनुष्यनियोंमें उनके योग्य संख्यात भाग-मात्र राशि होती है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अप्रमत्तसंयतयोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ६० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ६१ ॥ मनुष्य सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तकामें संयतासंयत जीव संख्यात कोटिप्रमाण होते हैं । किन्तु मनुष्यनियोंमें उनके योग्य संख्यात रूपमात्र होते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, वे इतने ही होते हैं, इस प्रकारका वर्तमान कालमें उपदेश नहीं पाया जाता । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६२ ॥

क्योंकि, वे संयतासंयतोंके प्रमाणसे संख्यातगुणित कोटिमात्र होते हैं । मनुष्य-नियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मनुष्य-सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण उनके योग्य संख्यात रूपमात्र है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

१ प्रतिपु 'सज्जा' इति पाठ ।

२ तत सत्थेयगुणा सयतासयता । स ति १, ८

३ सासादनसम्यग्दृष्टय सत्थेयगुणा । स ति १, ८

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणां ॥ ६३ ॥

एदं पि सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणां ॥ ६४ ॥

कुदो ? सत्तकोडिसयमेत्तत्तादो । सेसं सुगमं ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणां ॥ ६५ ॥

असंखेज्ज-संखेज्जगुणामेत्तथ संभवाभावा एवं संबंधो कीरेदे- मणुसमिच्छा-दिट्ठी असंखेज्जगुणा । कुदो ? सेड्डीए असंखेज्जदिभागपरिमाणत्तादो । मणुसपज्जत्त-मणुसिणी मिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा, संखेज्जरूपपरिमाणत्तादो । सेसं सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठिद्वाने सव्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ६६ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यात-गुणित हैं ॥ ६३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६४ ॥

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका प्रमाण सात सौ कोटिमात्र है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं, और मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६५ ॥

असंख्यातगुणित और संख्यातगुणित जीवोंका एक अर्थमें होना संभव नहीं है, इसलिए इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिए- असंयतसम्यग्दृष्टि सामान्य मनुष्योंसे मिथ्यादृष्टि सामान्य मनुष्य असंख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण जगत्रेणिकि असंख्यातवै भाग है । तथा मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मनुष्य-पर्याप्त और मनुष्यनी मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण संख्यात रूपमात्र ही पाया जाता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ६६ ॥

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टय सत्थेयगुणाः । स. ति १, ८

२ असंयतसम्यग्दृष्टय सत्थेयगुणा । स ति १, ८

३ मिथ्यादृष्टयोऽसत्थेयगुणा । स ति १, ८

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६७ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६८ ॥

एदामि तिण्णि नि सुत्ताणि सुगमाणि ।

संजदासंजदद्वाने सव्वथोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ ६९ ॥

स्त्रीणदंयणमोहणीयाणं देससंजमे वट्टताणं बहूणमभावा । स्त्रीणदंयणमोहणीया पाएण अमंजदा होदूण अञ्जंति । ते संजम पडिवज्जंता पाएण महव्वयाइं चैव पडिवज्जंति, ण देसव्वयाइं नि उचं होदि ।

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७० ॥

मइयमसम्मादिट्ठिसंजदासंजदेहंतो उवसमसम्मादिट्ठिसंजदासंजदाणं बहूणमुवलंभा ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७१ ॥

कुदो ? बहूवायत्तादो, संचयकालस्स बहूत्तादो वा, उवसमसम्मतं पेक्खिय वेदगसम्मतस्स सुलहत्तादो वा ।

उपशमसम्पग्दट्ठियोसे क्षायिकसम्पग्दट्ठि संख्यातगुणित है ॥ ६७ ॥

क्षायिकसम्पग्दट्ठियोसे वेदकसम्पग्दट्ठि संख्यातगुणित है ॥ ६८ ॥

ये तीनों ही चार सुगम हैं ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्पग्दट्ठि सबसे कम है ॥ ६९ ॥

स्वयंकि, दर्शनमोहनीयकर्मका क्षय करनेवाले और करनेवाले में वर्तमान बहुत जीवोंका उभावा है । दर्शनमोहनीयता क्षय करनेवाले मनुष्य प्रायः असंयमी होकर रहते हैं । ये संयमही प्राप्त होते हुए प्रायः महाव्रतोंको ही धारण करते हैं, अणुव्रतोंको नहीं, यह अर्थ कहा गया है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्पग्दट्ठियोसे उपशमसम्पग्दट्ठि संख्यातगुणित है ॥ ७० ॥

स्वयंकि, क्षायिकसम्पग्दट्ठि संयतासंयतोंसे उपशमसम्पग्दट्ठि संयतासंयत मनुष्य हुए पाये जाते हैं ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्पग्दट्ठियोसे वेदकसम्पग्दट्ठि संख्यातगुणित है ॥ ७१ ॥

स्वयंकि, उपशमसम्पग्दट्ठियोंकी अपेक्षा वेदकसम्पग्दट्ठियोंकी वाय अधिक है, अथवा संचयकाल बहुत है, अथवा उपशमसम्पग्दट्ठियोंको देखते हुए अर्थात् उसकी अपेक्षा वेदकसम्पग्दट्ठियोंका पाता सुलभ है ।

पमत्त-अपमत्तसंजदद्वाने सव्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ७२ ॥

कुदो ? थोवकालसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७३ ॥

बहुकालसंचयादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७४ ॥

खइयसम्मत्तेण संजमं पडिवज्जमाणजीवोहिंतो वेदगसम्मत्तेण संजमं पडिवज्जमाणजीवाणं बहूमुवलंभा । मणुसिणीयविसेसपदुप्पायणहं उवरिमसुत्तं भणदि-

णवरि विसेसो, मणुसिणीसु असंजद-संजदासंजद-पमत्तापमत्त-संजदद्वाने सव्वथोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ ७५ ॥

कुदो ? अप्यसत्थवेदोदएण दंसणमोहणीयं खवेत्तजीवाणं बहूणमणुवलंभा ।

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७६ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्पग्दट्ठि सबसे कम है ॥ ७२ ॥

स्वयंकि, इनका संचयकाल अल्प है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्पग्दट्ठियोसे क्षायिकसम्पग्दट्ठि संख्यातगुणित है ॥ ७३ ॥

स्वयंकि, इनका संचयकाल बहुत है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्पग्दट्ठियोसे वेदकसम्पग्दट्ठि संख्यातगुणित है ॥ ७४ ॥

स्वयंकि, क्षायिकसम्पग्दट्ठिके साथ संयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा वेदकसम्पग्दट्ठिके साथ संयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी अधिकता पाई जाती है । अब मनुष्यनियोंमें होनेवाली विशेषताके प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

केवल विशेषता यह है कि मनुष्यनियोंमें असंयतसम्पग्दट्ठि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्पग्दट्ठि जीव सबसे कम हैं ॥ ७५ ॥

स्वयंकि, अप्रमत्त वेदके उदयेके साथ दर्शनमोहनीयको क्षपण करनेवाले जीव बहुत नहीं पाये जाते हैं ।

असंयतसम्पग्दट्ठि आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्यनियोंमें क्षायिकसम्पग्दट्ठियोसे उपशमसम्पग्दट्ठि संख्यातगुणित है ॥ ७६ ॥

अप्यसत्त्ववेदोदरणं दंसणमोहणीयं खर्वेतजीविहितो अप्यसत्त्ववेदोदरणं चैव दंसणमोहणीयं उवसमेतजीवाणं मणुसेसु संखेज्जगुणसुवर्लमा ।

**वेदगसम्मादिद्धी संखेज्जगुणा ॥ ७७ ॥**

सुगममेदं ।

**एवं तिसु अद्वासु ॥ ७८ ॥**

एदस्सत्थो- मणुस-मणुसपज्जत्तएसु गिरुद्धेसु तिसु अद्वासु उवसमसम्मादिद्धी थोवा, थोवकारणत्तादो । खइयसम्मादिद्धी संखेज्जगुणा, बहुकारणादो । मणुसिणीसु पुण खइयसम्मादिद्धी थोवा, उवसमसम्मादिद्धी संखेज्जगुणा । एत्थ पुव्वुत्तमेव कारणं । उवसामग-खवराणं संचयस्स अप्पावहुअपरूणहुत्तमुत्तरसुत्तं भणदि-

**सव्वथोवा उवसमा ॥ ७९ ॥**

थोवपवेसादो ।

क्योंकि, अप्रशस्त वेदके उदयके साथ दर्शनमोहनीयका क्षण करनेवाले जीवोंसे अप्रशस्त वेदके उदयके साथ ही दर्शनमोहनीयका उपशम करनेवाले जीव मनुष्योंमें संख्यातगुणित पाये जाते हैं ।

असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्यनियोंमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ७७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इसी प्रकार तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अपूर्वकरण आदि तीन उपशमक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ ७८ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- मनुष्य-सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तकोसे निरुद्ध अपूर्वकरण आदि तीन उपशमक गुणस्थानोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अल्प होते हैं, क्योंकि, उनके अल्प होनेका कारण पाया जाता है । उनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनके बहुत होनेका कारण पाया जाता है । किन्तु मनुष्यनियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव अल्प हैं, और उनसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित है । यहा संख्यातगुणित होनेका कारण पूर्वोक्त ही है (देखो सूत्र नं ७५) । उपशमक और क्षपकोंके संचयका अल्पबहुत्व प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं-

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें उपशमक जीव सबसे कम हैं ॥ ७९ ॥

क्योंकि, इनका प्रवेश अल्प होता है ।

१ प्रतिपु 'अप्यसत्त्ववेदोदरण' इति पाठः ।

**खवा संखेज्जगुणा ॥ ८० ॥**

बहुपपवेसादो ।

**देवगदीए देवेषु सव्वथोवा सासणसम्मादिद्धी ॥ ८१ ॥**

**सम्माभिच्छादिद्धी संखेज्जगुणा ॥ ८२ ॥**

**असंजदसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ ८३ ॥**

एदाणि तिणिण वि सुत्ताणि सुवोच्चाणि, बहुसो परूविदत्तादो ।

**मिच्छादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ ८४ ॥**

को गुणगारो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ । केत्तिय-मेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदि-भागो, असंखेज्जपदरंगुलाणि वा पडिभागो । सेसं सुगमं ।

**असंजदसम्मादिद्धिद्वाने सव्वथोवा उवसमसम्मादिद्धी ॥ ८५ ॥**

सुवोच्चासिदं सुत्तं ।

**खइयसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ ८६ ॥**

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें उपशमकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ८० ॥  
क्योंकि, इनका प्रवेश बहुत होता है ।

देवगतिमें देवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ८१ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्भिध्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ८२ ॥

सम्यग्भिध्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं ॥ ८३ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुवोच्य अर्थात् सरलतासे समझने योग्य है, क्योंकि, इनका बहुत वार प्ररूपण किया जा चुका है ।

देवोमे अमंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८४ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । वे जगश्रेणिया कितनी है ? जगश्रेणिके असंख्यातवे भागमात्र है । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवा भाग प्रतिभाग है, अथवा असंख्यात प्रतरगुल प्रतिभाग है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ८५ ॥  
यह सूत्र सुवोच्य है ।

देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८६ ॥

२ देवगतौ देवानां नारकत्वं । स सि १, ८

को गुणगारो ? आनलियाए असंखेज्जदिभागो । मेसे सुवोच्चं ।

वेदगमस्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ८७ ॥

को गुणगारो ? आनलियाए असंखेज्जदिभागो । मेसे सुगमं ।

भवनवागिय-वाणवंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप-  
वासियदेवीओ च सत्ताए पुढवीए भंगो ॥ ८८ ॥

एदमिमिदि एत्यज्जाहरो कायवो, अण्णहा गंवंधाभावा । सह्यसस्मादिद्वीणम-  
भारं पटि तागममुल्लंभा सत्ताए पुढवीए भंगो एदमिं देटि । अत्यदो पुण विसेसो  
अत्थि, वं भणिस्सामो- नव्वत्थोवा भवणवासियसासणमस्माद्वी । सम्मामिच्छादिद्वी  
भंगेज्जगुणा । अयंजदमस्मादिद्वी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आनलियाए असंखे-  
ज्जदियागो । मिच्छाद्वी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो,  
अयंखेज्जाओ मेडीओ । केचियमेत्ताओ ? घणंगुलपडमरगमूलस्स असंखेज्जदिभाग-  
मेत्ताओ । को पडिभागो ? अयंजदमस्मादिद्विरामि पडिभागो ।

गुणकार क्या है ? आवलीका असन्यातवा भाग गुणकार है । शेप सूत्रार्थ  
मुणोय ( मुगम ) है ।

देवोंमें धायिकसस्यग्दृष्टियोंसे वेदकसस्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८७ ॥

गुणकार क्या है ? आनलीका असन्यातवा भाग गुणकार है । शेप सूत्रार्थ  
मुगम है ।

देवोंमें भवनवासी, वागव्यन्तर, ज्योतिष्क देव और देवियां, तथा सौधर्म-ईशान-  
रूपवासिनी देवियां, इनका अल्पबहुत्व सातवीं प्रथिवीके अल्पबहुत्वके समान है ॥ ८८ ॥

इस ग्रंथमें ' इनका ' इस पदका अर्थाहार करना चाहिए, अन्यथा प्रकृतमें  
इसका समन्वय नहीं बनता है । धायिकसस्यग्दृष्टियोंके अभावकी अपेक्षा समात्ता पाई  
जानेसे इन सूत्रोंके देव देवियोंका सातवीं प्रथिवीके समान अल्पबहुत्व है । किन्तु अर्थकी  
प्रपेक्षा कुछ विशेषता है, उसे कहते हैं- भवनवासी मासादनसस्यग्दृष्टि देव आगे कही  
जानेवाली राशियोंकी अपेक्षा समसे कम है । उनसे भवनवासी सम्यग्मिथ्यादृष्टि  
सन्त्यागगुणित हैं । उनसे भवनवासी असंयतसस्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं । गुणकार  
क्या है ? आनलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है । उनसे भवनवासी मिथ्यादृष्टि असं-  
ख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असं-  
ख्यात जगत्रेणीप्रमाण है । वे जगत्रेणिया कितनी हैं ? घनांगुलके प्रथम वर्गमूलके  
असंख्यातवें भागमार हैं । प्रतिभाग क्या है ? असंयतसस्यग्दृष्टि जीवरशि प्रतिभाग है ।

सव्वत्थोवा वाणवंतरसासणसस्मादिद्वी । सम्मामिच्छादिद्वी संखेज्जगुणा ।  
अयंजदमस्मादिद्वी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आनलियाए असंखेज्जदिभागो ।  
मिच्छादिद्वी अयंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ  
सेडीओ । केचियमेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणं-  
गुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जपदरंगुलाणि वा पडिभागो । एवं जोदिसियाणं पि  
वत्तवं । सग-सगइत्थिवेदानं सग-सगोघभंगो । मेसे सुगमं ।

सोहमीसाण जाव सदर-सहस्सारकपवासियदेवेषु जहा देवगह-  
भंगो ॥ ८९ ॥

जहा देवोघमिह अप्पावहुअं उच्चं, तथा एदेसिमप्पावहुगं वत्तवं । तं जहा-  
सव्वत्थोवा सग-सगकपत्था सासणा । सग-सगकपसस्मामिच्छादिद्विणो संखेज्जगुणा ।  
सग-सगकपअयंजदमस्मादिद्विणो असंखेज्जगुणा । सग-सगमिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ।  
एत्थ गुणगारो जाणिय वत्तवो, एगसरुत्तवाभावा । अणंतरउत्तकण्येसु अयंजदसस्मा-

वानव्यन्तर मासादनसस्यग्दृष्टि देव आगे कही जानेवाली राशियोंकी अपेक्षा  
सबसे कम हैं । उनसे वानव्यन्तर सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं । उनसे वान-  
व्यन्तर असंयतसस्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? आवलीका अस-  
ख्यातवां भाग गुणकार है । वानव्यन्तर असंयतसस्यग्दृष्टि देवोंसे वानव्यन्तर मिथ्यादृष्टि  
देव असंख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है,  
जो असंख्यात जगत्रेणीप्रमाण है । वे जगत्रेणिया कितनी हैं ? जगत्रेणीके असंख्यातवें  
भागमार हैं । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, अथवा  
असंख्यात प्रतरांगुल प्रतिभाग है ।

इसी प्रकार ज्योतिष्क देवोंके अल्पबहुत्वको भी कहना चाहिए । भवनवासी  
आदि निकायोंमें अपने अपने स्त्रीदेवियोंका अल्पबहुत्व अपने अपने ओघ-अल्पबहुत्वके  
समान है । शेप सूत्रार्थ सुगम है ।

सौधर्म-ईशान कल्पसे लेकर शतार-सहस्रार कल्प तक कल्पवासी देवोंमें अल्प-  
बहुत्व देवगति सामान्यके अल्पबहुत्वके समान हैं ॥ ८९ ॥

जिस प्रकार सामान्य देवोंमें अल्पबहुत्वका कथन किया है, उसी प्रकार इनके  
अल्पबहुत्वको कहना चाहिए । वह इस प्रकार है- अपने अपने कल्पमें रहनेवाले सासा-  
दनसस्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं । इनसे अपने अपने कल्पके सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव  
संख्यातगुणित हैं । इनसे अपने अपने कल्पके असंयतसस्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं ।  
इनसे अपने अपने कल्पके मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं । यहाँपर गुणकार जानकर  
कहना चाहिए, क्योंकि, इन देवोंमें गुणकारकी एकरूपताका अभाव है । अभी इन पदों



दिद्विहृणो सवत्थोवा उवसमसम्मादिह्ठी । खइयसम्मादिह्ठी असंखेज्जगुणा । वेदगसमा-  
दिह्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? सवत्थ आवलियाए असंखेज्जदिभागो चि ।  
सेसं सुगमं ।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु सवत्थोवा सासण-  
सम्मादिह्ठी ॥ ९० ॥

सुगममेदं सुत्त ।

सम्माभिच्छादिह्ठी संखेज्जगुणा ॥ ९१ ॥

एदं पि सुगमं ।

भिच्छादिह्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ९२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कथमेदं णवदे ? दव्याणि-  
ओगद्धारसुत्तादो ।

असंजदसम्मादिह्ठी संखेज्जगुणा ॥ ९३ ॥

कहे गये कल्पोमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं ।  
इनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित है । इनसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यात-  
गुणित हैं । गुणकार क्या है ? सर्वत्र आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । दोष  
स्वार्थ सुगम है ।

आनत-प्राणत कल्पसे लेकर नवश्रेयिक विमानों तक विमानवासी देवोंमें सासा-  
दनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ९० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त विमानोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित  
हैं ॥ ९१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त विमानोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ९२ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—द्रव्यानुयोगद्धारसूत्रसे जाना जाता है कि उक्त कल्पोंमें मिथ्यादृष्टि  
देवोंका गुणकार आवलीका असंख्यातवा भाग है ।

उक्त विमानोंमें मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ९३ ॥

कुदो ? मणुसेहितो आणदादिसु उप्पज्जमाणमिच्छादिह्ठी पेक्खिय तत्थुप्पज्ज-  
माणसम्मादिह्ठीणं संखेज्जगुणत्तादो । देवलोए सम्मत्तमिच्छत्ताणि पडिवज्जमाणजीवाणं  
क्किण पहणत्तं ? ण, तेसिं मूलरासिस्स असंखेज्जदिभागत्तादो । को गुणगारो ?  
संखेज्जसमया ।

असंजदसम्मादिद्विहृणो सवत्थोवा उवसमसम्मादिह्ठी ॥ ९४ ॥

कुदो ? अंतोयुत्तकालसंचिदत्तादो ।

खइयसम्मादिह्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ९५ ॥

कुदो ? संखेज्जसागरोवमकालेण संचिदत्तादो । को गुणगारो ? आवलियाए  
असंखेज्जदिभागो । संचयकालपडिभागेण पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो गुणगारो  
क्किण उच्चदे ? ण, एगसमएण पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजीवाणं उवसम-  
सम्मतं पडिवज्जमाणसुवलंभा ।

क्योंकि, मनुष्योंसे आनत आदि विमानोंमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टियोंकी  
अपेक्षा वहांपर उत्पन्न होनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं ।

शंका—देवलोकेमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी प्रधानता क्यों  
नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मूलराशिके असंख्यातवे  
भागमात्र होते हैं ।

उक्त विमानोंमें सम्यग्दृष्टियोंका गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

आनत-प्राणत कल्पसे लेकर नवश्रेयिक तक असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें  
उपशमसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं ॥ ९४ ॥

क्योंकि, वे केवल अन्तर्बुद्धते कालके द्वारा संचित होते हैं ।

उक्त विमानोंमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ९५ ॥

क्योंकि, वे संख्यात सागरोपम कालके द्वारा संचित होते हैं । गुणकार क्या है ?  
आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है ।

शंका—संचयकालरूप प्रतिभाग होनेकी अपेक्षा पल्योपमका असंख्यातवां भाग  
गुणकार क्यों नहीं कहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, एरु समयके द्वारा पल्योपमके असंख्यातवे भागमात्र  
जीव उपशमसम्यग्दृष्टिको प्राप्त होते हुए पाये जाते हैं ।

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ९६ ॥

कुदो ? ननुप्यज्जमाणरुइयमम्मादिद्वीहितो संखेज्जगुणवेदगसम्मादिद्वीणं तरु-  
ण्णत्तिरुण्णदो ।

अयुदिसादि जाव अवराइदविमाणवासियदेवेषु असंजदसम्मा-  
दिद्विद्विणो सब्वत्थोवा उवसससम्मादिद्वी ॥ ९७ ॥

कुदो ? उवससमेडीचउणोरण्णत्तिरियावावदुवसससम्मात्तसिहिदसंखेज्जसंजदाण-  
भेत्तुप्यण्णाम्तोमुत्तुत्तत्तिदाणमुत्तमा ।

खइयसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ९८ ॥

को गुणगरो ? पल्लोवमस्त असंखेज्जदिभागस्त संखेज्जदिभागो । को षडि-  
भागो ? संखेज्जत्तसमम्मादिद्विजीना षडिभागो ।

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ९९ ॥

कुदो ? रुइयसमत्तेणुप्यज्जमाणनंजेद्वितो वेदगसमत्तेणुप्यज्जमाणसंजदाणं संखेज्ज-

उक्त विमानोंमें श्रायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित  
हैं ॥ ९६ ॥

स्योंकि, उन आन्तारिक रूपरूपानी देवोंमें उत्पन्न होनेवाले श्रायिकसम्यग्दृष्टि-  
योंमें संख्यातगुणित वेदकसम्यग्दृष्टियोंकी वहा उत्पत्ति देखी जाती है ।

नम अनुदिशोंको आदि लेकर अणुरहित नामक अनुत्तरविमान तक विमानवासी  
देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ९७ ॥

स्योंकि, उपशमसंश्रणीपर आरोहण और अवतरणरूप क्रियामें लगे हुए, अर्थात्  
चरते और उतरते हुए मरुत उपशमसम्यग्दृष्टि यहाँ उत्पन्न हुए, और अन्तर्मुहूर्त-  
कालके द्वारा सञ्चित हुए संख्यात उपशमसम्यग्दृष्टि सयत पाये जाते हैं ।

उक्त विमानोंमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे श्रायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ९८ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमके असंख्यातवें भागका संख्यातवां भाग गुणकार है ।  
प्रतिभाग क्या है ? मर्यात उपशमसम्यग्दृष्टि जीव प्रतिभाग है ।

उक्त विमानोंमें श्रायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित  
हैं ॥ ९९ ॥

स्योंकि, श्रायिकसम्यग्दृष्टिके साथ मरण कर यहाँ उत्पन्न होनेवाले संयतोंकी

गुणत्तादो । तं पि कथं गवन्दे ? कारणणुसारिकज्जदंस्सणादो मणुसेसु सइयसम्मादिद्वी  
संजदा थोवा, वेदगसम्मादिद्वी संजदा संखेज्जगुणा; तेण तेहितो देवेषुप्यज्जमाणसंजदा  
वि तप्पडिसागिया चेत्ति चेत्तवं । एत्थ सम्मात्तप्पवहुअं चेम, सेसगुणट्टाणाभावा  
कथमेदं गवन्दे ? एदम्हादो चेम सुत्तादो ।

सव्वट्ठिसिद्धिविमाणवासियदेवेषु असंजदसम्मादिद्विद्विणो सव्व-  
त्थोवा उवसससम्मादिद्वी ॥ १०० ॥

खइयसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १०१ ॥

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १०२ ॥

एदाणि सिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि । सव्वट्ठिसिद्धिम्हि तेत्तीसाउट्ठिदिम्हि  
असंखेज्जजीवरासी किण्ण हेदि ? ण, तत्थ पल्लोवमस्त संखेज्जदिभागमेत्तंतरिम्हि  
अपेक्षा वेदकसम्यग्दृष्टिके साथ मरण कर यहाँ उत्पन्न होनेवाले संयत संख्यातगुणित  
होते हैं ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—स्योंकि, 'कारणके अनुसार कार्य देखा जाता है,' इस न्यायके  
अनुसार मनुष्योंमें श्रायिकसम्यग्दृष्टि संयत अल्प होते हैं, उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि सयत  
संख्यातगुणित होते हैं । इसलिए उनसे देवोंमें उत्पन्न होनेवाले सयत भी तत्प्रतिभागी ही  
होते हैं, यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए । इन कल्पोंमें यही सत्यसत्यसम्बन्धी अल्पमहुत्व  
है, स्योंकि, वहाँ श्रेय गुणस्थानोंका अभाव है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—इस सूत्रसे ही जाना जाता है कि अनुदिश आदि विमानोंमें केवल  
एक असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान होता है, श्रेय गुणस्थान नहीं होते हैं ।

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि  
सबसे कम हैं ॥ १०० ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे श्रायिकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ १०१ ॥

श्रायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ १०२ ॥  
ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

शंका—तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले सर्वार्थसिद्धिविमानमें असंख्यात  
जीवराशि क्यों नहीं होती है ?

समाधान—नहीं, स्योंकि, वहाँपर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालका  
अन्तर है, इसलिए वहाँ असंख्यात जीवराशिका होना असम्भव है ।

तदसंभवा । जदि एवं, तो आणदादिदेवेषु वासपुत्रंतेसु संखेज्जावल्लिओवद्विदपल्लिदो-  
वमसेत्ता जीवा क्रिणा हँति ? ण, तत्थतणमिच्छादिद्विआदीणमवहारकालस्स असंखेज्जा-  
वल्लयत्तं फिद्विदूण संखेज्जावल्लियमेत्तअवहारकालप्पसंगा । होदु चे ण, ' आणद-पाणद  
जाव णवगेवज्जविमाणवासियेदेवेषु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव असंजदसम्मदिद्वी दव्व-  
पमाणेण केवडिया, पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एदेहि पल्लिदोवमवहिरदि अंतो-  
मुहुत्तेण । अणुदिसादि जाव अत्रराहदविमाणवासियेदेवेषु असंजदसम्मदिद्वी दव्वपमाणेण  
केवडिया, पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एदेहि पल्लिदोवमवहिरदि अंतोप्पुहुत्तेणत्ति' ।  
एदेण दव्वसुत्तेण जुत्तीए सिद्धअसंखेज्जावल्लियभागहारगम्भेण सह विरोहा ।

एव गदिसगणा समत्ता ।

शंका—यदि ऐसा है तो वर्षपृथक्त्वके अन्तरसे युक्त आनतादि कल्पवासी  
देवोंमें सख्यात आवल्लियोंसे भाजित पत्योपमप्रमाण जीव क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर वहाँके मिथ्यादृष्टि आदिकोंके अव-  
हारकालके असंख्यात आवलीपना न रहकर संख्यात आवलीमात्र अवहारकाल प्राप्त  
होनेका प्रसंग आ जायगा ।

शंका—यदि मिथ्यादृष्टि आदि जीवोंके अवहारकाल संख्यात आवलीप्रमाण  
प्राप्त होते हैं, तो होने दो ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा मानने पर 'आनत-प्राणतकल्पसे लेकर नवत्रैवेयक  
विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक  
जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने है ? पत्योपमके असंख्यातवै भागप्रमाण हैं । इन  
जीवरशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकालसे पत्योपम अपहृत होता है । नव अनुदिराँसे लेकर  
अपरजितनामक अनुत्तर विमान तक विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीव  
द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने है ? पत्योपमके असंख्यातवै भागप्रमाण हैं । इन जीव-  
राशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकालसे पत्योपम अपहृत होता है' । इस प्रकार युक्तिसे सिद्ध  
असख्यात आवलीप्रमाण भागहार जिनके गर्भमें है, ऐसे इन द्रव्याजुयोगद्वारके सूत्रोंके  
साथ पूर्वोंके कथनका विरोध आता है ।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

इंदियाणुवादेण पंचिदियपंचिदियपज्जत्तएसु ओधं । णवरि  
मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणां ॥ १०३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे- सेसिंदिएसु एगगुणङ्गणेसु अप्पावहुअस्साभाव-  
पटुप्पायणप्पुहेण पंचिदियप्पावहुअपटुप्पायणं पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तगहणं कदं ।  
जथा ओघम्मि अप्पावहुअं कदं, तथा एत्थ वि अणूणाहियमप्पावहुअं कायव्वं । णवरि  
एत्थ असंजदसम्मदिद्वीहितो मिच्छादिद्वी अणंतगुणा त्ति अभणिदूण असंखेज्जगुणा  
त्ति वत्तव्वं, अणंताणं पंचिदियाणमभावा । को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो,  
असंखेज्जाओ सेडीओ । केत्तियमेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ?  
घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि । अधवा पंचिदिय-पंचिदिय-  
पज्जत्तमिच्छादिद्वीणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? सण-सगअसंजदसम्मदिद्विरासी ।

इन्द्रियमार्गणके अनुवादसे पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्तिकोम अल्पगहुत्व  
ओषके समान है । केवल विशेषता यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव  
असंख्यातगुणित हैं ॥ १०३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— शेष इन्द्रियवाले अर्थात् पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-  
पर्याप्तिकोंसे अतिरिक्त जीवोंमें एक गुणस्थान होता है, इसलिए उनमें अल्पगहुत्वके  
अभावके प्रतिपादनद्वारा पंचेन्द्रियोंके अल्पगहुत्वके प्रतिपादन करनेके लिए सूत्रमें पंचे-  
न्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तक पदका ग्रहण किया है । जिस प्रकार ओषमें अल्पगहुत्वका  
कथन किया है, उसी प्रकार यहाँ भी हीनता और अधिकतासे रहित अल्पगहुत्वका कथन  
करना चाहिए । केवल इतनी विशेषता है कि यहापर असंयतसम्यग्दृष्टि पंचेन्द्रियोंसे  
मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय अनन्तगुणित हैं, ऐसा न कहकर असंख्यातगुणित हैं, ऐसा कहना  
चाहिए, क्योंकि, अनन्त पंचेन्द्रिय जीवोंका अभाव है । पंचेन्द्रिय असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे  
पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, यहाँ गुणकार क्या है ? जगप्रतरका  
असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगत्रेणीप्रमाण है । वे जगत्रेणिया कितनी  
हैं ? जगत्रेणिके असंख्यातवै भागप्रमाण हैं । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां  
भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरंगुलप्रमाण है । अथवा, पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-  
पर्याप्तक मिथ्यादृष्टियोंका असंख्यातवा भाग गुणकार है । प्रतिभाग क्या है ? अपनी  
अपनी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवराशि प्रतिभाग है ।

१ इन्द्रियाह्लादेन एनेन्द्रिय विक्लेन्द्रियेण गुणस्थानमेदो नास्त्यल्पगहुत्वाभाव । इन्द्रिय प्रत्युच्यते-  
पंचेन्द्रियापेनेन्द्रियाता उत्तरोत्तर बहवः । पंचेन्द्रियार्णा सामान्यवत् । अयं तु विशेष-मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणा ।  
स ति १, ८

मत्याग-मन्यपन्यणअप्यावदुगणुगि एत्य क्रिण्ण परुनिदाणि? ण, परत्याणादो चैव तेमिं  
दोणुसराणा ।

कायानुवादेण तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु ओधं । णवरि  
मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणां ॥ १०४ ॥

पदम्भयो- क्यगुणद्व्याण-नेयकाएसु अप्यावदुअं णत्थि चि जाणावणइं तसकाइय-  
तमकाइयपज्जत्तगणं कइं । एदेसु देसु नि अप्यावदुअं जधा ओघम्मि कइं, तथा  
तादर्यं, विवेयाभाणा । णारि मग-सगअमजदसम्मादिद्वीहितो मिच्छादिद्वीणं अणंतगुणत्ते  
पत्ते तप्यदिदेहदुमगंसेउगुणा चि उच्चं, तमकाइय-तमकाइयपज्जत्ताणमाणत्तियाभावादो ।  
को गुणगो? पदस्स अमंखेज्जदिमागो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए असंखेज्जदि-

अंका-एस्थान अल्पबहुत्व और सर्वपरस्थान अल्पबहुत्व यहांपर म्यों नहीं कहे?  
गमाधान- नार्थी, स्वीक, परस्थान अल्पबहुत्वसे ही उन दोनों प्रकारके अल्प-  
बहुत्वोंका ज्ञान ही जाता है ।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई ।  
कायमार्गणाके अनुवादसे त्रसकायिक और त्रसकायिक-पर्याप्तकोंमें अल्पबहुत्व  
ओषके समान है । केवल विवेयता यह है कि अमंयतसम्पद्यष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव  
अमंख्यातगुणित है ॥ १०४ ॥

इस सूत्रगत अर्थ कहते हैं- एकमात्र मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवाले शेष स्थावर-  
त्तायिक और त्रसकायिक लक्ष्यपर्याप्तकोंमें अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता है, यह ज्ञान  
करतंत्रके लिए सूत्रमें त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक पदका ग्रहण किया है ।  
जिस प्रकार ओषप्रकरणमें अल्पबहुत्व कह आया है, उसी प्रकार त्रसकायिक और  
त्रसकायिक पर्याप्तक, इन दोनोंमें भी अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिए, स्वीक, ओष-  
प्रणामुक्ताने इनके अल्पबहुत्वमें कोई विशेषता नहीं है । केवल अपने अपने असंयत-  
सम्पद्यष्टियोंके प्रमाणसे मिथ्यादृष्टियोंके प्रमाणके अनन्तगुणत्व प्राप्त होनेपर उसके  
प्रतिशेष करतंत्रके लिए असंयतसम्पद्यष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित है, ऐसा  
कहा है, स्वीक, त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक जीवोंका प्रमाण अनन्त नहीं  
है । गुणकार क्या है? जगप्रतरका असंख्यातत्वां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके अलं-

१ गणप्रतरेण स्यामगोणं गुणान्तंसागात्परुणुवात्तर । मय प्रयुच्यते । मंतत्तैजस्वयिका  
५था । म्यो मयाः प्रमितीतापिनः । ततोऽजयिका । ततो जगममिमा । मंतोऽज्जगुणा वत्सत्य ।  
५मममिभलो पत्ते-एत्त । म मि १, ८ ।

एव कायमगणा समत्ता ।

जोगानुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालिय-  
कायजोगीसु तीसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवां ॥१०५॥  
एदेहि उच्चसवजोमेहि सह उवसमेसिं चंहेताणं बुक्कस्सेण चउवणत्तमत्थि चि  
तुल्लत्तं परुविदं । उवरिसगुणद्व्याणजीवेहितो ज्जा चि थोवा चि परुविदा । एदेमि वारस-  
ण्हमप्यावदुथाणं तिसु अद्वासु द्विदउवसमगा मूलपदं जादा ।

उवसंतकसायवीदरागछटुमत्था तेत्तिया चैव ॥ १०६ ॥  
सुगमेदं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १०७ ॥

अहुत्तरसदपरिमाणत्तादो ।

ख्यातवै भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है? घनांगुलका असं-  
ख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और  
औदारिककाययोगियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी  
अपेक्षा परस्पर तुल्य और अत्य है ॥ १०५ ॥

इन सूत्रोक्त सर्व योगोंके साथ उपशामश्रेणी पर चढ़नेवाले उपशामक जीवोंकी  
संख्या उत्कर्षसे चोपन होती है, इसलिए उनकी तुल्यता कही है । तथा उपरिम अर्थात्  
क्षयश्रेणीसम्बन्धी गुणस्थानवर्ती जीवोंसे कम होते हैं, इसलिए उन्हें अत्य कहा है ।  
इस प्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगी, इन  
चारह अल्पबहुत्वोंका प्रमाण लानेके लिए अपूर्वकरण आदि तीनों गुणस्थानोंमें स्थित  
उपशामक मूलपद अर्थात् अल्पबहुत्वके आधार हुए ।

उक्त चारह योगवाले उपशान्तक्रपायवीतरागछटुमत्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही  
हैं ॥ १०६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त चारह योगवाले उपशान्तक्रपायवीतरागछटुमत्थोंसे क्षपक जीव संख्यात-  
गुणित हैं ॥ १०७ ॥

स्वीक, क्षपकोंकी संख्याका प्रमाण एक सौ आठ है ।

१ योगछटुमत्थिन वारुमानमयोगिनां पचेन्द्रियवत् । काययोगिनां गणप्रत्यवत् । म मि १, ८.

खीणकसायीदरागच्छुमत्था तत्तिया चैव ॥ १०८ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चैव ॥ १०९ ॥

एदं पि सुगमं । जेसु जोगेसु सजोगिगुणद्वयं संभवदि, तेसिं चैवेदमप्याबहुअं वेत्तव्वं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुव्व संखेज्जगुणा ॥ ११० ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । जहा ओघमिह संखेज्जसमयासाहर्णं कदं, तथा एत्थ वि कायव्वं ।

अपमत्तसंजदा अमखवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १११ ॥

एत्थ वि जहा ओघमिह गुणगारो साहिदो तथा साहेदव्वो । गवरि अप्पिदजोग-जीवरिसिपमाणं गादूण अप्पाबहुअं कायव्वं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ११२ ॥

उक्त वारह योगवाले क्षीणकपायीतरागच्छस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सयोगिकेवली जीव प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ १०९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है । किन्तु उपर्युक्त वारह योगोंसे जिन योगोंमें सयोगिकेवली गुणस्थान सम्भव है, उन योगोंका ही यह अल्पबहुत्व ग्रहण करना चाहिए ।

सयोगिकेवली संबयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ११० ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । जिस प्रकार ओघमें संख्यात समयरूप गुणकारका साधन किया है, उसी प्रकार यहाँपर भी करना चाहिए ।

सयोगिकेवलीसे उपर्युक्त वारह योगवाले अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्त-संयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १११ ॥

जिस प्रकारसे ओघमें गुणकार सिद्ध किया है, उसी प्रकारसे यहाँपर भी सिद्ध करना चाहिए । केवल विशेषता यह है कि विवक्षित योगवाली जीवरशिके प्रमाणको जानकर अल्पबहुत्व करना चाहिए ।

उक्त वारह योगवाले अप्रमत्तमंतयोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ११२ ॥

सुगममेदं ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ११३ ॥

को गुणगारो ? पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागस्स संखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ११४ ॥

को गुणगारो ? आमलियाए असंखेज्जदिभागो । कारणं जाणिदूण वत्तव्वं ।

सभामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ११५ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । एत्थ वि कारणं गिहालिय वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ११६ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । जोगद्वयं समासं कादूण तेण साम्णरासिसोवहिय अप्पिदजोगद्वयए गुणिदे इच्छिद-इच्छिदरासीओ हेंति । अणेण पयरेण सब्बत्थ दव्वपमाणसुप्पाह्य अप्पाबहुअ वत्तव्वं ।

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त वारह योगवाले प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ११३ ॥ गुणकार क्या है ? पल्योपमके असंख्यातवें भागका संख्यातवां भाग गुणकार है ।

शेष स्वार्थ सुगम है ।

उक्त वारह योगवाले संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ११४ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इसका कारण जानकर कहना चाहिए ( देखो इसी भागका पृ २४९ ) ।

उक्त वारह योगवाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यात-गुणित हैं ॥ ११५ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । यहाँ पर भी इसका कारण स्मरण कर कहना चाहिए ( देखो इसी भागका पृ २५० ) ।

उक्त वारह योगवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात-गुणित हैं ॥ ११६ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है । योगसम्बन्धी कालोंका समास (योग) करके उससे सामान्यराशिको भाजित कर पुनः विवक्षित योगके कालसे गुणा करतेपर इच्छित इच्छित योगवाले जीवकी राशियां हो जाती हैं । इस प्रकारसे सर्वत्र द्रव्यप्रमाणको उत्पन्न करके उनका अल्पबहुत्व कहना चाहिए ।

**मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ॥११७॥**

एत्य एतं संबन्धो कायन्धो । तं जहान् पंचमणजोगि-पंचवचिजोगिअसंजदम्यमा-  
दिद्वीहितो तमिं चेर जोगाणं मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? पदस्स  
असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ मेडीओ । क्कतियेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जादिभाग-  
मेत्ताओ । को पडिआगो ? यणंगुलम्म अमंखेज्जादिभागो, असंखेज्जाणि पदंगुलाणि ।  
कायन्नोगि-ओरालियहायजोगिअमंजदस्समादिद्वीहितो तेसं चेर जोगाणं मिच्छादिद्वी  
अणंतगुणा । को गुणगारो ? अभवमिदिदिहिं अणंतगुणो, सिद्धेहिं वि अणंतगुणो,  
अणंतगुणि मवाजीनराभिपडमवगमभूलाणि चि ।

**असंजदस्समादिद्वि-संजदासंजद-पमत्तापमत्तसंजदद्वीणे सम्भत्त-  
पावहुअमोधं ॥ ११८ ॥**

एद्वेयिं गुणद्वीणाणं जथा ओवमिह सम्भत्तत्पावहुअं उच्चं, तथा एत्य वि  
अणूणादिंयं मत्तन् ।

उक्त वारह योगवाले अमंयतसम्यग्दृष्टियोंमें ( पांचों मनोयोगी, पांचों वचन-  
योगी ) मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, और ( त्राययोगी तथा औदारिक-  
काययोगी ) मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ ११७ ॥

यहांपर इस प्रकार मन्थन करना चाहिए । जैसे- पांचों मनोयोगी और पांचों  
वचनयोगी पंचयत्तमम्यग्दृष्टियोंमें उन्हीं योगोंके मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ।  
गुणकार क्या है ? जगप्रतरका अमन्यातया भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगत्रेणी-  
प्रमाण है । ये जगत्रेणियों कितनी हैं ? जगत्रेणीके असंख्यातवं भागप्रमाण है । प्रतिभाग  
क्या है ? यन्मगुलका असंख्यातया भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है ।  
काययोगी और औदारिककाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे उन्हीं योगोंके मिथ्यादृष्टि  
जीव अनन्तगुणित हैं । गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणित और सिद्धोंसे  
भी अनन्तगुणित राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

उक्त वारह योगवाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और  
अप्रमत्तसंयत गुणप्राप्तमें मन्थस्त्वसन्धन्धी अल्पवहुत्व ओषके समान है ॥ ११८ ॥

इस प्रकार चारों गुणस्वानोंका जिस प्रकार ओषमें सम्यक्त्वसन्धन्धी अल्प-  
वहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहांपर भी हीनता और अधिरुतासे रहित अर्थात् तत्प्रमाण  
भी अल्पवहुत्व कहना चाहिए ।

**एवं तिसु अद्वासु ॥ ११९ ॥**  
सुगममेदं ।

**सव्वथोवा उवसमा ॥ १२० ॥**  
एदं पि सुगमं ।

**खवा संखेज्जगुणा ॥ १२१ ॥**

अपिदजोगउवसासरोहितो अपिदजोगाणं सवा संखेज्जगुणा । एत्य पक्खेव-  
संखेवेण मूलरासिमोवहिय अपिदपक्खेवेण गुणिय इच्छिदरासिपमाणमुत्पाएदव्वं ।

**ओरालियमिस्सकायजोगीसु सव्वथोवा सजोगिकेवली ॥१२२॥**  
कनाडे चडणोयरणक्रिययावावदचालीसजीवमनलादो थोवा जादा ।

**असंजदसम्भादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १२३ ॥**

कुदो ? देव-णोरइय-मणुसेहितो आगंतूण तिरिक्खमणुसेसुप्पणाणं असंजद-  
सम्भादिद्वीणमोसालियमिरसिम्ह सजोगिकेवलीहितो संखेज्जगुणाणमुवलंभा ।

इसी प्रकार उक्त वारह योगवाले जीवोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें  
सम्यक्त्वसन्धन्धी अल्पवहुत्व है ॥ ११९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त वारह योगवाले जीवोंमें उपशामक जीन सबसे कम हैं ॥ १२० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त वारह योगवाले उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १२१ ॥

विवक्षित योगवाले उपशामकोंसे विवक्षित योगवाले क्षपक जीव संख्यातगुणित  
होते हैं । यहांपर प्रक्षेप के द्वारा मूलजीवराशिको भाजित करके विवक्षित प्रक्षेप-  
राशिके गुणा कर इच्छित राशिका प्रमाण उत्पन्न कर लेना चाहिए ( देखो द्रव्यप्र  
भाग ३ पृ. ४८-४९ ) ।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सयोगिकेवली सबसे कम हैं ॥ १२२ ॥

क्योंकि, कपाटसमुद्रातके समय आरोहण और अवतरणक्रियामें संलग्न चालीस  
जीवोंके अवलम्बनसे औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सयोगिकेवली सबसे कम हो जाते हैं ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव  
संख्यातगुणित हैं ॥ १२३ ॥

क्योंकि, देव, नारकी और मनुष्योंसे आकर तिर्यच और मनुष्योंमें उत्पन्न होने-  
वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे संख्यात-  
गुणित पाये जाते हैं ।

सासनसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १२४ ॥

को गुणगारो ? पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदेवमपढम-  
वग्गमूलाणि ।

मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ॥ १२५ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिइहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि  
सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि ।

असंजदसम्माइट्ठिहाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिद्वी ॥ १२६ ॥

दंसणमोहणीयखएणुप्पणसइहणाणं जीवाणमइदुल्लभत्तादो ।

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १२७ ॥

खओवसमियसम्मत्ताणं जीवाणं वहुणयुवलंभा । को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

वेउव्वियकायजोगीसु देवगदिमंगो ॥ १२८ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोमैं असंयतसम्यग्दृष्टियोसि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव  
असंख्यातगुणित हैं ॥ १२४ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोमैं सासादनसम्यग्दृष्टियोसि मिथ्यादृष्टि जीव अनन्त-  
गुणित हैं ॥ १२५ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धौसे अनन्तगुणित और सिद्धौसे भी अनन्तगुणित  
राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोमैं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि  
जीव सबसे कम हैं ॥ १२६ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मके क्षयसे उत्पन्न हुए श्रद्धानवाले जीवोंका होना  
अतिदुर्लभ है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोमैं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोसि  
वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ १२७ ॥

क्योंकि, क्षायोपशमिक सम्पम्बवाले जीव बहुत पाये जाते हैं । गुणकार क्या  
है ? संख्यात समय गुणकार है ।

वैक्रियिककाययोगियोमैं ( संभव गुणस्थानवर्ती जीवोंका ) अल्पबहुत्व देवगतिके  
समान है ॥ १२८ ॥

जथा देवगदिमिह अप्पावहुअं उच्चं, तथा वेउव्वियकायजोगीसु वत्तव्वं । तं जथा-  
सव्वत्थोवा सासनसम्मादिद्वी । सम्मामिच्छादिद्वी संखेज्जगुणा । असंजदसम्मादिद्वी  
असंखेज्जगुणा । मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा । असंजदसम्मादिद्विहाणे सव्वत्थोवा उवसम-  
सम्मादिद्वी । खइयसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा । वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सासनसम्मादिद्वी ॥ १२९ ॥

कारण पुव्वं व वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १३० ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एत्थ कारणं संभालिय वत्तव्वं ।

मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १३१ ॥

को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए  
असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि  
पदंगुलाणि ।

जिस प्रकार देवगतिमें जीवोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार वैक्रियिककाय-  
योगियोमें कहना चाहिए । जैसे- वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे  
कम है । उनसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित है । उनसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव  
असंख्यातगुणित है । उनसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित है । असंयतसम्यग्दृष्टि  
गुणस्थानमें वैक्रियिककाययोगी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं । उनसे क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है । उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोमैं सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १२९ ॥  
इसका कारण पूर्वके समान कहना चाहिए ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोमैं सासादनसम्यग्दृष्टियोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव  
संख्यातगुणित है ॥ १३० ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । यहांपर कारण  
संभालकर कहना चाहिए ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोमैं असंयतसम्यग्दृष्टियोसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात-  
गुणित हैं ॥ १३१ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो असंख्यात  
जगश्रेणिप्रमाण है । वे जगश्रेणिया भी जगश्रेणिके असंख्यातवै भागमात्र है । प्रशिभाग  
क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवा भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है ।

अमंजदसम्मादिद्विद्विणे सब्वथोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ १३२ ॥

कृतो ? उवसमसम्मात्तेण मह उवसममेदिमिह मदजीनाणमइथोवत्तादो ।

खइयसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १३३ ॥

उत्तामसंकिंतां मंरोज्जगुणअसंजदयम्ममादिद्विआदिगुणद्वानेहिंतो संचयसंभवादो ।

वेदगमम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १३४ ॥

निगिणंकिंतां पलिदेवमस अस्सेज्जदिभागमेत्तेवदगसम्मादिद्विजीनाणं देवेसु उतादसंभादो । ते गुणगारो ? पलिदेवमस अस्सेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदेवमपडमग्गमूलाणि ।

आहारकायजोगिआहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदद्विणे  
सब्वथोवा खइयसम्मादिद्वी ॥ १३५ ॥

सुगममेदं ।

नैक्रियकमिश्रकाययोगियों असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दष्टि  
जीव सबवे रूप है ॥ १३२ ॥

स्यौकि, उपजन्मसम्यक्त्वके माय उपशमश्रेणीमें मरे हुए जीवोंका प्रमाण अत्यन्त  
नग्य होना है ।

नैक्रियकमिश्रकाययोगियों असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दष्टि-  
योगोंमें क्षायिकसम्यग्दष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १३३ ॥

स्यौकि, उपशमश्रेणीमें मरे हुए उपनामकोंसे संख्यातगुणित असंयतसम्यग्दष्टि  
आदि गुणस्थानोंकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दष्टियोंका संचय सम्भव है ।

नैक्रियकमिश्रकाययोगियों अमंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दष्टियोंसे  
वेदरूपम्यग्दष्टि जीव अमंख्यातगुणित हैं ॥ १३४ ॥

स्यौकि, तिर्यन्तोंसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र वेदकसम्यग्दष्टि जीवोंका  
रूपमें उत्पन्न होना संभव है । गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग  
गुणकार है, जो पल्योपमके जन्मस्थान प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

आहारकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियों प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें  
क्षायिकसम्यग्दष्टि जीव सबवे रूप हैं ॥ १३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १३६ ॥

एदं पि सुगमं । उवसमसम्मादिद्वीणमेत्थ संभवाभावा तेसिमप्पावहृगं ण कहिदं ।  
किमइं उवसमसम्मात्तेण आहाररिद्वी ण उप्पज्जदि ? उवसमसम्मात्तकालमिह अइदहरमिह  
तदुप्पत्तीए संभवाभावा । ण उवसमसेदिमिह उवसमसम्मात्तेण आहाररिद्वीओ लब्भइ,  
तत्थ पमादाभावा । ण च ततो ओइणणाण आहाररिद्वी उवलब्भइ, जत्तियमेत्तेण कालेण  
आहाररिद्वी उप्पज्जइ, उवसमसम्मात्तस्स तत्तियमेत्तकालमवहृगाणाभावा ।

कम्मइयकायजोगीसु सब्वथोवा सजोगिकेवली ॥ १३७ ॥

कुदो ? पदर-लेणरूणेषु उक्कस्सेण सट्ठिमेत्तसजोगिहालीणमुवलभा ।

सासणसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १३८ ॥

को गुणगारो ? पलिदेवमस अस्सेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदेवमपडम-  
वग्गमूलाणि ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियों प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें  
क्षायिकसम्यग्दष्टियोंमें वेदकसम्यग्दष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १३६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है । इन दोनों योगोंमें उपशमसम्यग्दष्टि जीवोंका होना  
सम्भव नहीं है, इसलिए उनका अल्पवहुत्व नहीं कहा है ।

शंका—उपशमसम्यक्त्वके साथ आहाररूपकद्वि स्यों नहीं उत्पन्न होती है ?

समाधान—स्यौकि, अत्यन्त अल्प उपशमसम्यक्त्वके कालमें आहाररूपकद्विका  
उत्पन्न होना सम्भव नहीं है । न उपशमसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीमें आहाररूपकद्वि पाई  
जाती है, स्यौकि, बहुपर प्रमादका अभाव है । न उपशमश्रेणीसे उत्तरे हुए जीवोंके भी उप-  
शमसम्यक्त्वके साथ आहाररूपकद्वि पाई जाती है, स्यौकि, जितने कालके द्वारा आहाररू-  
पकद्वि उत्पन्न होती है, उपशमसम्यक्त्वका उतने काल तक अवस्थान नहीं रहता है ।

कार्मणकाययोगियों सयोगिकेवली जिन सबसे कम हैं ॥ १३७ ॥

स्यौकि, प्रतर और लोकपूरणसमुदातमें अधिकसे अधिक केवल साठ सयोगि-  
केवली जिन पाये जाते हैं ।

कार्मणकाययोगियों सयोगिकेवली जिनोंसे सासादनसम्यग्दष्टि जीव असंख्यात-  
गुणित हैं ॥ १३८ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।



असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १३९ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एत्थ कारणं णादूण वत्तवं ।

मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ॥ १४० ॥

को गुणगारो ? असमसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि

सच्चजीवरासिपढमवगणभूलाणि ।

असंजदसम्मादिद्विहाणे सवत्थोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ १४१ ॥

कुदो ? उवसमसेडिग्घि उवसमसम्मत्तेण मदसंजदणं संखेज्जत्तादो ।

खइयसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १४२ ॥

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तखइयसम्मादिद्वीहिंतो असंखेज्जजीवा विग्गहं  
किण कंति ति उत्ते उच्चदे- ण ताव देवा खइयसम्मादिद्विणां असंखेज्जा अक्कमेण  
मंरति, मणुसेसु असंखेज्जखइयसम्मादिद्विप्पसंगा । ण च मणुसेसु असंखेज्जा मंरति,

कार्मणकाययोगियोंमें सात्वादनसम्यग्दृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात-  
गुणित हैं ॥ १३९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । यहाँपर इसका  
कारण जानकर कहना चाहिए । ( देखो इसी भागका पृ. २५१ और तृतीय भागका  
पृ. ४११ )

कार्मणकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित  
हैं ॥ १४० ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणा  
गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

कार्मणकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव  
सबसे कम हैं ॥ १४१ ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणीमें उपशमसम्यग्दृष्टिके साथ मरे हुए संयतोंका प्रमाण  
संख्यात ही होता है ।

कार्मणकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे  
क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४२ ॥

शंका—पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे असंख्यात  
जीव विशद क्यों नहीं करते हैं ?

समाधान—पेस्ली आशंकापर आचार्य कहते हैं कि न तो असंख्यात क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टि देव एक राशय मरते हैं, अन्यथा मनुष्योंमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके  
होनेका प्रसंग का जायगा । न मनुष्योंमें ही असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव मरते हैं,

तथासंखेज्जाणं सम्मादिद्वीणमभावा । ण तिरिक्खा असखज्जा मारणंतिंयं कंति, तत्थ  
आयाणुसारिवयत्तादो । तेण विग्गहर्दीए खइयसम्मादिद्विणो संखेज्जा चैव हेति ।  
होंता वि उवसमसम्मादिद्वीहिंतो संखेज्जगुणा, उवसमसम्मादिद्विहारणादो खइयसम्मा-  
दिद्विकारणस्स संखेज्जगुणत्तादो ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १४३ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवगण-  
भूलाणि । को पडिभागो ? खइयसम्मादिद्विरासिगुणिदअसंखेज्जावलियाओ ।

एव जोगमगणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु दोसु वि अद्वासु उवसमा पवेसणेण  
तुल्ला थोवां ॥ १४४ ॥

क्योंकि, उनमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका अभाव है । न असंख्यात क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टि तिर्यच ही मारणान्तिकसमुद्धात करते हैं, क्योंकि, उनमें आयके अनुसार व्यय  
होता है । इसलिए विशदगतिमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यात ही होते हैं । तथा  
संख्यात होते हुए भी वे उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उपशम-  
सम्यग्दृष्टियोंके ( आयके ) कारणसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके ( आयका ) कारण संख्यात-  
गुणा है ।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगमें पाये जानेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीव तो केवल  
उपशमश्रेणीसे मरकर ही आते हैं, किन्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीके अतिरिक्त  
असंयतसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानोंसे मरकर भी कार्मणकाययोगमें पाये जाते हैं । अतः  
उनका संख्यातगुणित पाया जाना स्वतः सिद्ध है ।

कार्मणकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे  
वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४३ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो पल्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? क्षायिकसम्यग्दृष्टि राशिसे गुणित  
असंख्यात आचलियां प्रतिभाग है ।

इस प्रकार जोगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्वीविदियोंमें अपूर्वकरण और अनिष्टचिकरण, इन दोनों  
ही गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १४४ ॥

दसपरिमाणवादी ।

स्ववा संखेज्जगुणा ॥ १४५ ॥

नीमपरिमाणवादी ।

अपमत्तसंजदा अस्ववा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १४६ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जगमया ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १४७ ॥

को गुणगारो ? दो रूमाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १४८ ॥

को गुणगारो ? पल्लिदोपमसा असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-  
वगमूलाणि । को पडिगारो ? संखेज्जरूचगुणिदअसंखेज्जाणलियाओ ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १४९ ॥

को गुणगारो ? आपलियाए असंखेज्जदिभागो । किं कारणं ? अणुहसासणगुणस्स

त्तोकि, त्तिंयिं उपशामक जीवोका प्रमाण वूम हे ।

स्त्रीदियोंमें उपशामकोंगे क्षपक जीव मंख्यातगुणित हैं ॥ १४५ ॥

स्पर्शिक, उन्नक्त परिमाण थीस ही ।

स्त्रीदियोंमें क्षपकोंगे अक्षपक और अणुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यात-  
गुणित हैं ॥ १४६ ॥

गुणकार क्या है ? सख्यात समय गुणकार है ।

स्त्रीदियोंमें अप्रमत्तसंयतोसि प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४७ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

स्त्रीदियोंमें मत्तसंयतोसि संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४८ ॥

गुणकार क्या है ? पट्योपमका असख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके  
भसंख्यात पढम मंमूप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? सख्यात रूपोंसे गुणित असं-  
ख्यात आपत्तियां प्रतिभाग हैं ।

स्त्रीदियोंमें संयतासंयतोसि सामादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४९ ॥  
गुणकार क्या है ? आत्मीका नसंख्यातवां भाग गुणकार है ।

मंमू — इसका कारण क्या है ?

सामादान—स्त्रीकि, अणुम सासादनगुणस्यानका पाना सुल्लम हे ।

१४) श्री १२०. श्रीविष्णोपा. २२४. का. ५३.

सुल्लहादो ।

सम्मागिच्छइट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५० ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । किं कारणं ? मासणायदो संखेज्जगुणाय-  
संभादो ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५१ ॥

को गुणगारो ? आपलियाए असंखेज्जदिभागो । किं कारणं ? सम्माभिन्नादिट्ठि-  
आयं पेक्सिदूण असंखेज्जगुणायचादो ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५२ ॥

को गुणगारो ? पदस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए  
असंखेज्जदिभागमेचाओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, अर्मसेज्जाणि  
पदंगुलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठिसंजदासंजदट्ठोणे सव्वथोवा खइयसम्मादिट्ठी

॥ १५३ ॥

स्त्रीदियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ १५० ॥

गुणकार क्या है ? सख्यात समय गुणकार है । इसका कारण यह है कि  
सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानकी आयसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंकी संख्यातगुणित आय  
सम्भव है, जयत्ति दूस्से गुणस्थानमें जितने जीव आते हैं, उनसे संख्यातगुणित जीव  
तसिसे गुणस्थानमें आते हैं ।

स्त्रीदियोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ १५१ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असख्यातवा भाग गुणकार है । इसका कारण  
यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंकी आयको देखते हुए असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी  
असंख्यातगुणी आय होती है ।

स्त्रीदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५२ ॥  
गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीक  
असंख्यातवां भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका  
असंख्यातवा भाग प्रतिभाग है जो असंख्यात प्रतरंगुलप्रमाण है ।

स्त्रीदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें क्षाधिकसम्यग्दृष्टि  
जीव सबसे कम हैं ॥ १५३ ॥

संखेज्जमेत्तत्तादो ।

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५४ ॥

को गुणगारो ? पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदोवमपढम-  
वग्गमूलाणि । को पडिभागो ? असंखेज्जावलियपडिभागो ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५५ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

पमत-अपमतसंजदद्वणो सब्वत्थोवा खहयसम्मादिट्ठी ॥ १५६ ॥

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५७ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५८ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवं दोसु अद्वासु ॥ १५९ ॥

क्योंकि, खीवेदियोंमें सख्यात रूपमात्र ही क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव पाये जाते हैं।  
स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्य-  
ग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५४ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात आवलियां प्रतिभाग है ।  
स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे  
वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

स्त्रीवेदियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव  
सबसे कम हैं ॥ १५६ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १५७ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १५८ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें स्त्रीवेदियोंका  
अल्पबहुत्व है ॥ १५९ ॥

सब्वत्थोवा खहयसम्मादिट्ठी, उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा, इच्चेदेण साधम्मामो ।  
सब्वत्थोवा उवसमा ॥ १६० ॥

एदं सुत्तं पुणरुत्त क्रिण्णा होदि ? ण, एत्थ य्वेसएहि अहियाराभात्ता । संचएण  
एत्थ अहियारो, ण सो पुब्बं परूविदो । तदो ण पुणरुत्तत्तमिदि ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १६१ ॥

सुगममेदं ।

पुरिसवेदएसु दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा  
॥ १६२ ॥

चउवण्णपमाणत्तादो ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १६३ ॥

अहुत्तरसदमेत्तत्तादो ।

क्योंकि, इन दोनों गुणस्थानोंमें खीवेदी क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं,  
और उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उनसे संख्यातगुणित होते हैं, इस प्रकार ओघके साथ  
समानता पाई जाती है ।

स्त्रीवेदियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ १६० ॥

शंका—यह सूत्र पुनरुक्त क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहां पर प्रवेशकी अपेक्षा इस सूत्रका अधिकार नहीं  
है, किन्तु सचयकी अपेक्षा यहांपर अधिकार है और वह संवय पहले प्ररूपण नहीं किया  
गया है । इसलिये यहांपर कहे गये सूत्रके पुनरुक्तता नहीं है ।

स्त्रीवेदियोंमें उपशामकोसे क्षपक जीव संख्यातगुणित है ॥ १६१ ॥  
यह सूत्र सुगम है ।

पुरुषवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक  
जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प है ॥ १६२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

पुरुषवेदियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानोंमें उपशामकोमें क्षपक जीव संख्यात-  
गुणित है ॥ १६३ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण एक सौ आठ है ।

अपमत्तसंजदा अमखवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १६४ ॥

हो गुणगणो ? मनेज्जपमया ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १६५ ॥

हो गुणगणो ? देणिण रुत्ताणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १६६ ॥

हो गुणगणो ? पल्लिदोमस्स मसंखेज्जदिभागो, अमंखेज्जाणि पल्लिदोवमपडम-  
ग्गमूल्लणि ।

सासगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १६७ ॥

हो गुणगणो ? आल्लियाए अमंखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

सामभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १६८ ॥

हो गुणगणो ? मंखेज्जसमया । सेसं सुगमं ।

पुत्तोदियोमं देतो गुणस्थानोमं क्षपत्तोमे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्त-  
मंयन संख्यातगुणित हैं ॥ १६४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

पुत्तोदियोमं अप्रमत्तमंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १६५ ॥

गुणकार क्या है ? ते रूप गुणकार है ।

पुत्तोदियोमं प्रमत्तमंयतोमे मंयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १६६ ॥

गुणकार क्या है ? पत्थापमत्ता अमख्यातवा भाग गुणकार है, जो पत्थोपमके  
अमख्यात मयम यमंमूल्यप्रमाण है ।

पुत्तोदियोमं संयतामंयतोमे सामादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ १६७ ॥

गुणकार क्या है ? आवर्तीका असंयतवा भाग गुणकार है । शेष स्वार्थ  
सुगम है ।

पुत्तोदियोमं सामादनसम्यग्दृष्टियोमे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ १६८ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । शेष स्वार्थ सुगम है ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १६९ ॥

हो गुणगणो ? आल्लियाए अमंखेज्जदिभागो ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १७० ॥

हो गुणगणो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ मेडीओ सेडीए  
असंखेज्जदिभागमेत्ताओ ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदद्वुणे सम्मत्त-  
प्पावहुअमोधं ॥ १७१ ॥

एदसिं जथा ओघस्सिह् सम्मत्तप्पावहुअं उत्तं तथा वत्तन्नं ।

एवं दोसु अद्वासु ॥ १७२ ॥

सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी, राह्यसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा; इच्चदेहि माधम्माम्मदो ।

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ १७३ ॥

पुरुषवेदियोमं सम्यग्मिथ्यादृष्टियोसे असंयतरसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ १६९ ॥

गुणकार क्या है ? आवर्तीका अराख्यातवां भाग गुणकार है ।

पुरुषवेदियोमं असंयतसम्यग्दृष्टियोमे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ १७० ॥

गुणकार क्या है ? जगत्प्रतरका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो जगत्श्रेणीक  
असंख्यातवे भागमात्र असंख्यात जगत्श्रेणीप्रमाण है ।

पुरुषवेदियोमं असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत  
गुणस्थानमं सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ १७१ ॥

इन गुणस्थानोंका जिस प्रकार ओघमं सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है,  
उसी प्रकार यहाँपर कहना चाहिए ।

इसी प्रकार पुरुषवेदियोमं अपूर्वकरण और अनिच्छित्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमं  
सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ १७२ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम है और क्षाप्रिकसम्यग्दृष्टि जीव  
उनसे संख्यातगुणित है, इस प्रकार ओघके साथ समानता पाई जाती है ।

पुरुषवेदियोमं उपगामक जीव सबसे कम हैं ॥ १७३ ॥

अवगदेवदणुसु दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवां  
॥ १९१ ॥

उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ १९२ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १९३ ॥

कुदो ? अहुत्तरमदस्मानत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ १९४ ॥

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया  
चेव ॥ १९५ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ १९६ ॥

एदं पि सुगमं ।

एव वेदमगणा समत्ता ।

अपगतवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिष्टित्करण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उप-  
शामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १९१ ॥

उपशान्तकपायवीतरागछुदुमत्था जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९२ ॥  
ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

अपगतवेदियोंमें उपशान्तकपायवीतरागछुदुमत्थासे क्षपक जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ १९३ ॥

क्योंकि, इनका प्रमाण एक सौ आठ है ।

अपगतोदियोंमें क्षीणरूपायवीतरागछुदुमत्था पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९४ ॥

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और  
पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९५ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

सयोगिकेवली संवयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ १९६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु  
दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवां ॥ १९७ ॥

सुगममेदं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १९८ ॥

को गुणगरो ? दो रूवाणि ।

णवरि विसेसा, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइय-उवसमा विसेसा-  
हिया ॥ १९९ ॥

दोउवसामयपवेसएहितो संखेज्जगुणे दोगुणद्वानपवेसयक्खवए पेविखदूण  
कथं सुहुमसांपराइयउवसामया विसेसाहिया ? ण एस दोसो, लोभकसाएण खवएसु  
पविसंतजीवे पेविखदूण तेसिं सुहुमसांपराइयउवसामएसु पविसंतानं चउवणपरिमाणणं

कपायमार्गणोके अनुवादसे क्रोधकपायी, मानकपायी, मायाकपायी और लोभ-  
कपायियोंमें अपूर्वकरण और अनिष्टित्करण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक जीव  
प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १९७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चारो कपायवाले जीवोंमें उपशामकोसे क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ १९८ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

केवल विशेषता यह है कि लोभकपायी जीवोंमें क्षपकोसे सूक्ष्मसाम्परायिक  
उपशामक-विशेष अधिक हैं ॥ १९९ ॥

शंका—अपूर्वकरण और अनिष्टित्करण, इन दो उपशामक गुणस्थानोंमें प्रवेश  
करनेवाले जीवोंसे संख्यातगुणित प्रमाणवाले इन्हीं दो गुणस्थानोंमें प्रवेश करनेवाले  
क्षपकोंको देखकर अर्थात् उनकी अपेक्षासे सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक विशेष अधिक  
कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, लोभकपायके उदयसे क्षपकोंमें प्रवेश  
करनेवाले जीवोंका देखते हुए लोभकपायके उदयसे सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामकोंमें  
प्रवेश करनेवाले और चौपन संख्यारूप परिमाणवाले उन लोभकपायी जीवोंके विशेष

१ मयाप्राप्तवित्तं क्रोयमानमायाक्खयाणां पुवेदवत् । ५×५ लोभकपायाणां द्रयोपशमक्रयोस्तुल्ला  
सख्या । क्षपकां सखेयगुणा । सूक्ष्मसाम्परायणुसुपुशमकसयत्तां । विशेषाधिना । त्सममाप्यायक्षपका  
सखेयगुणा । शेषाणां मामायत्त । स. सि १, ८

२ प्रतिपु 'सखेज्जगुणे' इति पाठ. ।

विमोक्षयित्वाभिन्ना । इतो ? लोभकर्मार्थं चि विमोक्षणदो ।

स्वया संखेज्जगुणा ॥ २०० ॥

उपनिषद्गोहितो मरणार्णं दुगुणतुलंभा ।

अप्रमत्तसंजदा अमस्ववा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २०१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समय ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २०२ ॥

को गुणगारो ? दो रूचाणि । चतुक्सायअपमत्तमंजदाणमेत्थ संदिद्धी २।३।

४।७। पमत्तमंजदाणं संदिद्धी ४।६।८।९।१४।

अधिक होनेमें कोई विशेष नहीं है । विशेष न होनेका कारण यह है कि स्वयं 'लोभ-  
कर्मणी जीवोंमें' वेग विमोक्षणपर दिया गया है ।

लोभकर्मणी जीवोंमें अस्मत्प्रारथिक उपशामकोंमें अस्मत्प्रारथिक क्षपक  
संख्यातगुणित हैं ॥ २०० ॥

न्यौकि, उपशामकोंसे अक्षक जीवोंका प्रमाण दुगुणा पाया जाता है ।

चारों कर्पायवाले जीवोंमें क्षपकोंमें अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत  
संख्यातगुणित हैं ॥ २०१ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

चारों कर्पायवाले जीवोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २०२ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है । यहा चारों कर्पायवाले अप्रमत्तसंयतोंका  
प्रमाण या अल्पमृत्तन उत्तमोन्वाली अंकसंख्या इत्य प्रकार है- २।३।४।७। तथा  
चारों कर्पायवाले प्रमत्तसंयतोंकी अंकसंख्या ४।६।८ और १४ है ।

विशेषार्थ—यहा पर चतु कर्पायी अप्रमत्त और प्रमत्त संयतोंके प्रमाणका ज्ञान  
करनेके लिये जो अंकसंख्या बतलाई गई है, उसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य तिर्यचोंमें  
मान कर्पायका काल समझे कम है, उससे जोध, माया और लोभकर्मका काल उत्तरो-  
पर विशेष अधिक होता है । (दोरो भाग ३, पृ. ४२५) । तदनुसार यहाँ पर अप्रमत्त-  
संयत और प्रमत्तसंयतोंका अंकसंख्या द्वारा प्रमाण बतलाया गया है कि मानकर्पाय-  
वाले अप्रमत्तसंयत समझे कम है, जिनका प्रमाण अंकसंख्या (२) दो बतलाया गया  
है । इनमें लोभकर्मका प्रमाण अंकसंख्या (३) तीन बतलाया गया है । इनसे मायाकर्पायवाले अप्रमत्तसंयत विशेष  
अधिक होते हैं, जिनका प्रमाण अंकसंख्या (४) चार बतलाया गया है । इनसे लोभ-  
कर्पायवाले अप्रमत्तसंयत विशेष अधिक होते हैं, जिनका प्रमाण अंकसंख्या (७) सात  
बतलाया गया है । चूंकि अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयतोंका प्रमाण दुगुणा माना गया है,  
इसलिए यहाँ अंकसंख्या में भी उनका प्रमाण क्रमशः दूना ४, ६, ८ और १४ बतलाया गया  
है । यह अंकसंख्या कालनिक है, और उसका अभिप्राय स्थूल रूपसे चारों कर्पायोंका

संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ २०३ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपडम-  
वगमूलाणि ।

सासणसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ २०४ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

सम्माभिच्छादिद्धी संखेज्जगुणा ॥ २०५ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समय ।

असंजदसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ २०६ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

मिच्छादिद्धी अणंतगुणां ॥ २०७ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणे, सिद्धेहि वि अणंतगुणे, अणंताणि  
सव्वजीवरासिपडमवगमूलाणि ।

परस्पर आपेक्षिक प्रमाण बतलाना मात्र है । इसी हीनाधिकताके लिए देखो भाग ३,  
पृ ४३३ आदि ।

चारों कर्पायवाले जीवोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं ॥ २०३ ॥  
गुणकार क्या है ? पल्योपमता असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

चारों कर्पायवाले जीवोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित  
हैं ॥ २०४ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

चारों कर्पायवाले जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यात-  
गुणित हैं ॥ २०५ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

चारों कर्पायवाले जीवोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यात-  
गुणित हैं ॥ २०६ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है ।

चारों कर्पायवाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणित  
हैं ॥ २०७ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणा  
प्रमाण गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

१ प्रथिणु 'सज्जामज्जासखेज्जगुणा' इति पाठः ।

२ अप तु विशेषः मियादृष्टोऽनन्तगुणा । स. सि. १, ८.

असंजदस्मादिट्टि-संजदासंजद-पमत-अपमतसंजददृष्टाणे सम्मत्त-

प्पावहुअमोघं ॥ २०८ ॥

एदंस्सि जघा ओघमिह सम्मत्त-प्पावहुअं उतं तथा वचवं, विसेसाभावादो ।

एवं दोसु अद्दासु ॥ २०९ ॥

जघा पमत्तापमत्ताण सम्मत्त-प्पावहुअं परूविदं, तथा दोसु अद्दासु परूवेदवं ।  
णवरि लोभकस्सायस्स एवं तिसु अद्दासु चि वचवं, जाव सुहुमसांपराइओ चि लोभ-  
कमायउवलंभा । एवं सुत्ते किण्ण परूविदं ? परूविदमेव पवेसप्पावहुअसुवेण । तेणैव  
एतो अत्थो णव्वदि चि पुध ण परूविदो ।

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २१० ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २११ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

चारों कपायमाले जीवोमे असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और  
अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ २०८ ॥  
इन सूत्रोंक गुणस्थानोंका जिस प्रकार ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व  
कहा है, उसी प्रकार यहापर कहना चाहिए, क्योंकि, दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिष्टचिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें चारों कपाय-  
वाले जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ २०९ ॥

जिस प्रकारसे चारों कपायवाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी  
अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिष्टचिकरण, इन दो गुणस्थानोंमें  
कहना चाहिए । किन्तु विशेषता यह है कि लोभकपायका इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि  
तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है, ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि, सूक्ष्म-  
साम्पराय गुणस्थान तक लोभरूपायका सद्भाव पाया जाता है ।

शंका—यदि ऐसा है, तो इसी प्रकारसे सूत्रमें क्यों नहीं प्ररूपण किया ?

समाधान—प्रवेशसम्बन्धी अल्पबहुत्व सूत्रके द्वारा सूत्रमें उक्त बात प्ररूपित की  
हो गई है । और उसी प्रवेशसम्बन्धी अल्पबहुत्व सूत्रके द्वारा यह ऊपर कहा गया अर्थ  
जाना जाता है, इसलिए उसे यहांपर पृथक् नहीं कहा है ।

चारों कपायवाले उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २१० ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २११ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

अकसाईसु सव्वत्थोवा उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था ॥ २१२ ॥  
चउवणपरिसाणत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था संखेज्जगुणा ॥ २१३ ॥

अहुत्तरसदपरिसाणत्तादो ।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया  
चेव ॥ २१४ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ २१५ ॥

कुदो ? अणूणाधियओघरासिचादो ।

एवं कसायमगणा समत्ता ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु सव्व-  
त्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ २१६ ॥

अकपायी जीवोंमें उपशान्तकपायवीतरागछदुमत्त सबसे कम हैं ॥ २१२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चोपन है ।

अकपायी जीवोंमें उपशान्तकपायवीतरागछदुमत्तसे क्षीणकपायवीतरागछदुमत्त  
संख्यातगुणित हैं ॥ २१३ ॥

क्योंकि, उनका परिमाण एक सौ आठ है ।

अकपायी जीवोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दोनों ही प्रवेशकी  
अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २१४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अकपायी जीवोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ २१५ ॥  
क्योंकि, उनका प्रमाण ओघघरासिसे न कम है, न अधिक है ।

इस प्रकार कपायमार्गणा समाप्त हुई ।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादेसे मत्तज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें  
सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ २१६ ॥

कृत्ये ? पल्लितोमस्स अमंसेज्जदिभागपरिमाणत्तादो ।

**मिच्छादिद्वी अणंतगुणा, मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥२१७॥**

पत्य पदं मंचंथो शीरे- मदि-सुदअण्णाणिमासणेहितो मिच्छादिद्वी अणंतगुणा । को गुणगारो ? तब्बजीपराभिस्स अमंसेज्जदिभागो । विमंगणाणिसासणेहितो तेसिं चैव मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? पदस्स अमंसेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ मेडीओ, मेडीए अमंसेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? दणंगुलस्स अमंसेज्जदिभागो, अमंसेज्जाणि पदंगुलाणि ति । अण्णा विप्पडिमेहत्तादो ।

**आभिणिचोहिय-सुद-ओधिणाणीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवे-  
सणेण तुल्ला थोवां ॥ २१८ ॥**

गुणममेदं ।

**उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चैव ॥ २१९ ॥**

स्वार्थिक, उक्तका परिमाण पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र है ।

उक्त तीनों अज्ञानी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणित हैं, मिथ्यादृष्टि असंख्यात-  
गुणित हैं ॥ २१७ ॥

यहांपर इस प्रकार सूत्रार्थ मन्मथ्य करना चाहिए- मत्स्यजानी और श्रुताज्ञानी मान्यतत्त्व-संख्यातव्योने मत्स्यजानी और श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं । गुणकार क्या है? नरं जीवराशिका असंख्यातवां भाग गुणकार है । विभगजानी रासादन-मन्मथ्यपियांस उनके ही मिथ्यादृष्टि अर्थात् विभगजानी मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात-गुणित हैं । गुणकार क्या है? जगत्तरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगत्त्रेणिकि असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगत्त्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है । यदि इस प्रकार सूत्रका अर्थ न किया जायगा, तो परस्पर विरोध प्राप्त होगा ।

**आभिनिचोधिकरानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अपूर्वकरण आदि तीन  
गुणव्याप्तोंमें उपनामक प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २१८ ॥**

यह सूत्र सुगम है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानिनियोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्वयस्य पूर्वोक्त प्रमाण  
ही है ॥ २१९ ॥

१ विप्रापदयोऽनस्येकताः । म. सि. १, ८.

२ अणिपु 'पुदं' इति पाठ ।

३ नविशुवापिवाणिपु पवंत तोमपन्ना उपपन्न । म. सि. १, ८.

पदं पि सुगमं ।

**खवा संखेज्जगुणां ॥ २२० ॥**

को गुणगारो ? दोष्णि रूत्ताणि ।

**खीणकसायवीदरागछुदुमत्था तेत्तिया चैव ॥ २२१ ॥**

सुगममेदं ।

**अपमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणां ॥ २२२ ॥**

कुदो ? अण्णाहियओधरासित्तादो ।

**पमत्तसंजदा संखेज्जगुणां ॥ २२३ ॥**

को गुणगारो ? दोष्णि रूत्ताणि ।

**संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ २२४ ॥**

यह सूत्र भी सुगम है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानिनियोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्वयस्यैसे क्षपक जीव  
संख्यातगुणित हैं ॥ २२० ॥

गुणकार क्या है? दो रूप गुणकार है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानिनियोंमें क्षपकसै खीणकषायवीतरागछद्वयस्य पूर्वोक्त  
प्रमाण ही है ॥ २२१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानिनियोंमें खीणकषायवीतरागछद्वयस्यैसे अक्षपक और  
अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२२ ॥

स्वार्थिक, उक्तका प्रमाण ओधरासिसे न कम है, न अधिक है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानिनियोंमें अप्रमत्तसंयतसै अप्रमत्तसंयत जीव संख्यात-  
गुणित हैं ॥ २२३ ॥

गुणकार क्या है? दो रूप गुणकार है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानिनियोंमें प्रमत्तसंयतसै संयतासंयत जीव असंख्यात-  
गुणित हैं ॥ २२४ ॥

१ चत्तार क्षपकाः सत्स्येयुणा । म. सि. १, ८.

२ जमत्तमयता सत्स्येयुणा । म. सि. १, ८

३ प्रमत्तमयता सत्स्येयुणा । म. सि. १, ८.

४ सपतामयता (ज-) सत्स्येयुणाः । म. सि. १, ८.



कुदो ? पल्लिदोवमस्म असंखेज्जदिभागपरिमाणत्तादो । को गुणगारो ? पल्लिदो-  
वमस्म असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदोवमपढमवगमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा' ॥ २२५ ॥

कुदो ? पहाणीकयदेवअसंजदसम्मादिट्ठिरासित्तादो । को गुणगारो ? आवलियाए  
असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत-अपमतसंजदद्वहणे सम्मत-  
प्पावहुगमोधं ॥ २२६ ॥

जधा ओवम्हि एदेसिं सम्मतप्पावहुअं परूविदं, तथा परूवेदव्वमिदि वुत्तं होदि ।  
एवं तिसु अद्वासु ॥ २२७ ॥

सव्वथोवा उवसमा ॥ २२८ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २२९ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

क्योंकि, उक्तका परिमाण पल्लोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । गुणकार क्या  
है ? पल्लोपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूल-  
प्रमाण है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें संयतासंयतोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असं-  
ख्यातगुणित है ॥ २२५ ॥

क्योंकि, यहापर असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंकी राशि प्रधानतासे स्वीकार की गई  
है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत  
और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ २२६ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है,  
उसी प्रकार यहांपर भी प्ररूपण करना चाहिये, यह अर्थ कहा गया है ।

इसी प्रकार मति, श्रुत और अवधिज्ञानी जीवोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुण-  
स्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ २२७ ॥

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २२८ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२९ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

१ जमयतमप्यग्दृष्टय (अ) मल्लेयगुणा । स ति १, ८

मणपज्जवणाणीसु तिसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा  
॥ २३० ॥

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिथा चेव ॥ २३१ ॥

खवा संखेज्जगुणा' ॥ २३२ ॥

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिथा चेव ॥ २२३ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अपमतसंजदा अम्बवा अणुवसमा संखेज्जगुणा' ॥ २३४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जरूवाणि ।

पमतसंजदा संखेज्जगुणा' ॥ २३५ ॥

को गुणगारो ? दोणि रूवाणि ।

पमत-अपमतसंजदद्वहणे सव्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २३६ ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव  
प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २३० ॥

उपशान्तकपायवीतरागछद्वस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २३१ ॥

उपशान्तकपायवीतरागछद्वस्योसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३२ ॥

क्षीणकपायवीतरागछद्वस्य पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २३३ ॥

ये सूत्र सुगम है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें क्षीणकपायवीतरागछद्वस्योसे अक्षपक और अनुपशामक  
अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात रूप गुणकार है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३५ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशामसम्यग्दृष्टि  
जीव सबसे कम हैं ॥ २३६ ॥

१ मन पर्ययज्ञानियु सर्वत स्तोकात्तत्वार उपशामका । स ति १, ८. तेषां सख्या १० । गो. जी. ६३०

२ चत्वार क्षपकाः सल्लेयगुणा । स ति १, ८ तेषां सख्या २० । गो जी ६३०

३ अप्रमत्तसंयताः सल्लेयगुणा । स ति १, ८

४ प्रमत्तमयता सल्लेयगुणाः । स ति १, ८

उपसर्गमर्दोऽत्रोद्विगणोऽत्रमर्ममर्दिः षड्विगणो वा उपसर्गमर्मत्वेण शोवाणं जीवामुमुलंभा ।

खड्यसम्माद्वी संखेज्जगुणा ॥ २३७ ॥

एतद्यस्यमर्त्वेण मणपञ्जगणामुणितरणं षड्विगुणमुलंभा ।

वेदगसम्माद्वी संखेज्जगुणा ॥ २३८ ॥

गुणमर्मदं ।

एवं तिसु अद्वासु ॥ २३९ ॥

सम्बल्योवा उपसमा ॥ २४० ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २४१ ॥

एद्वानि त्रिणि मुत्तानि गुणमणि, षड्विगुणमुमुलंभा ।

केवलगणानीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली प्वेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ २४२ ॥

स्योकि, उपसर्गमर्त्वेण उत्तरनेवाले, अथवा उपसर्गमर्त्वेण चढनेवाले मन.पर्यय-  
जानी थोदु जोउ उपसर्गमर्त्वेण के साय पाये जाते हैं ।

मनःपर्ययवानियों प्रसत्तसंयत और अप्रसत्तसंयत गुणस्थानं उपसर्गमर्त्वेण दृष्टि-  
गोमे थायिःःःःःः जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३७ ॥

स्योकि, उक्त गुणस्थानं क्षायिकस्यस्त्वे के साय षड्विगुणसे मन.पर्ययजानी  
मुत्तर पाये जाते हैं ।

मनःपर्ययवानियों प्रसत्तसंयत और अप्रसत्तसंयत गुणस्थानं क्षायिकस्य-  
मर्त्वेण वेदकस्यमर्त्वे जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३८ ॥

या मूत्र सुगम है ।

इमी प्रकार मनःपर्ययवानियों अपूर्वकरण आदि तीन उपसर्गक गुणस्थानं  
स्यस्त्वेण अल्पाहुत्वं है ॥ २३९ ॥

मनःपर्ययवानियों उपसर्गक जीव सवसे कम है ॥ २४० ॥

उपसर्गक जीवोंमे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २४१ ॥

ये तीनों सूत्र सुगम हैं, स्योकि, वे षड्विगुण चार प्रकरण किये जा चुके हैं ।

केवलगणानीसु सजोगिकेवली और अजोगिकेवली जिन प्रवेगकी अपेक्षा दोनों  
ही तुल्य और तावन्मात्र ही हैं ॥ २४२ ॥

१ य स्तोः ' चोद्विगण ' जसने ' शोविगण ' स्ति पाठः ।

तुल्ला तत्तिया सदा हेउ-हेउमंतभावेण जोजेयव्वा । तं कथं ? जेण तुल्ला, तेण  
तत्तिया त्ति । केत्तिया ते ? अहुत्तरसयसेत्ता ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणां ॥ २४३ ॥

पुव्वकोडिकालहि संचयं गदा सजोगिकेवलीणो एणसमयपवेमगेत्तितो मरोज्ज-  
गुणा, संखेज्जगुणेण ऋलेण मिलित्तादो ।

एव गणसगुणा समत्ता ।

संजमाणुवादेण संजदेसु तिसु अद्वासु उपसमा प्वेसणेण तुल्ला  
शोवा ॥ २४४ ॥

कुदो ? चउवणपमाणत्तादो ।

उवसंतकसायवीदरागच्छुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २४५ ॥

सुगममर्दं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ २४६ ॥

तुल्य और तावन्मात्र, ये दोनों शब्द हेतु हेतुमद्रावमे सम्बन्धित क्रस्ता चारिण।  
शंका—नह कैसे ?

समाधान—चूँकि, सजोगिकेवली और अजोगिकेवली परस्पर तुल्य हैं, इनलिण  
वे तावन्मात्र अर्थात् पूर्वोक्त प्रमाण है ।

शंका—वे कितने हैं ?

समाधान—वे एक सौ आठ संख्याप्रमाण हैं ।

केवलगणानीसु सजोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित है ॥ २४३ ॥  
पूर्वकोटीप्रमाण कालमें संचयको प्राप्त हुए सजोगिकेवली एक समयमें प्रवेग  
करनेवालोंकी अपेक्षा संख्यातगुणित है, स्योकि, वे संख्यातगुणित कालसे संचित  
हुए हैं ।

इस प्रकार शानमार्गणा समाप्त हुई ।  
संयममार्गणके अनुवादेसे संयतोमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उप-  
सर्गक जीव प्रवेगकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २४४ ॥

स्योकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

संयतोमें उपशान्तकपायवीतरागछमस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४५ ॥  
यह सूत्र सुगम है ।

संयतोमें उपशान्तकपायवीतरागछमस्थोसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २४६ ॥

१ केवलगणानीसु अजोगिकेवलीस्य सजोगिकेवलीस्यः सस्येगुणाः । य. ति १, ८

को गुणगारो ? दोषिण रूपाणि । किं कारणं ? जेण णाणवेदादिसव्ववियण्णेषु उवसमसेहिं चंडंतजीविहितो सवगसेहिं चंडंतजीवा दुगुणा ति आइरिओवदेसादो । एण-समएण तित्थयरा छ सवगसेहिं चंडंति । दस पत्तेयबुद्धा चंडंति, बोहियबुद्धा अहुत्तर-सयमेत्ता, सग्गच्छुआ तत्तिया चैव । उक्कस्सोगाहाणए दोषिण खवगसेहिं चंडंति, जहण्णोगाहाणए चत्तारि, मच्चिमोगाहाणए अह । पुरिसवेदेण अहुत्तरसयमेत्ता, णंडंसय-वेदेण दस, इत्थिवेदेण वीस । एदेसिमद्धमेत्ता उवसमसेहिं चंडंति ति वेत्तन्वं ।

**स्त्रीणकसायवीदरागच्छुमत्था तत्तिया चैव ॥ २४७ ॥**  
केचित्तिया ? अहुत्तरसयमेत्ता । कुदो ? संजमसामणविवक्खादो ।

गुणकार स्या है ? दो रूप गुणकार है ।

शंका—क्षपकोका गुणकार दो होनेका कारण क्या है ?

समाधान—चूंकि, ज्ञान, वेद आदि सर्व विकल्पोंमें उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवोंसे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीव दुगुणे होते हैं, इस प्रकार आचार्योंका उपदेश पाया जाता है ।

एक समयमें एक साथ छह तीर्थंकर क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । दश प्रत्येकबुद्ध, एक सौ आठ बोधितबुद्ध और स्वर्गसे च्युत होकर आये हुए उतने ही जीव अर्थात् एक सौ आठ जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । उत्कृष्ट अवगाहनावाले दो जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । जबव्य अवगाहनावाले चार और ठीक मध्यम अवगाहनावाले आठ जीव एक साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । पुरुषवेदके उदयके साथ एक सौ आठ, नपुंसकवेदके उदयसे दश और स्त्रीवेदके उदयसे वीस जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । इन उपर्युक्त जीवोंके आधे प्रमाण जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

संयतोमं क्षीणरुणायवीतरागच्छस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४७ ॥

शंका—क्षीणरुणायवीतरागच्छस्य कित्तेने होते हैं ?

समाधान—एक सौ आठ होते हैं, क्योंकि, यहांपर सयम-सामान्यकी विवक्षा की गई है ।

१ दो चैकुओमाए चउर जह्नाए मच्चिमाए उ । अह्मिय मय खुउ मिच्चइ ओगाहाणइ तहा ॥ प्रवच डा ५०, ४७५

२ त्हांति खवा इमिस्समये नोहियबुद्धा य पुरिसवेदा य । उक्कस्सोणहुत्तरसयमा सगदो य बुद्धा ॥ पत्तेयबुद्धति यपरासिणडयमणोहिणपहदा । दमक्कवमिदमयमोद्धावीम जहाणमनो ॥ जेद्धावत्तहुमच्चिमओगाहाणा इ चारि अहेत्त । रुणव त्त्वति वपणा उवसमणा अद्धसेदमि ॥ गो जी. ३२९-५३१

**सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चैव ॥ २४८ ॥**

सुबोद्धमेदं ।

**सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ २४९ ॥**

कुदो ? एणसमयादो संचयकालसमूहस्स संखेज्जगुणलुवलंभा ।

**अपमत्तसंजदा अक्खवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २५० ॥**

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । एत्थ ओषकारणं वित्ति यत्तव्वं ।

**पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २५१ ॥**

को गुणगारो ? दोषिण रूपाणि ।

**पमत्त-अपमत्तसंजदट्टाणे सब्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २५२ ॥**

कुदो ? अतोसुहुत्तसंचयादो ।

**खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २५३ ॥**

संयतोमे सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतोमे सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ २४९ ॥

क्योंकि, एक समयकी अपेक्षा संचयकालका समूह संख्यातगुणा पाया जाता है ।

संयतोमं सयोगिकेवली जिनोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५० ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । यहांपर राशिके ओघके समान होनेका कारण चिन्तवन कर कहना चाहिए । इसका कारण यह है कि दोनों स्थानोंपर संयम-सामान्य ही विवाश्रित है ( देखो सूत्र नं ८ ) ।

संयतोमे अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५१ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

संयतोमं प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २५२ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल अन्तर्बुद्धत है ।

संयतोमं प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे अधिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५३ ॥

कुदो ? पुव्वकोडिमंचयादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २५४ ॥

नञोपममियम्मत्तादो ।

एवं तिसु अद्वासु ॥ २५५ ॥

मन्वथोवा उवसमा ॥ २५६ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २५७ ॥

एदाणि तिण्णि नि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सामाहयच्छेदोवद्वावणसुद्धिसंजदेसु दोसु अद्वासु उवसमा एवे-  
सणेण तुल्ला शोवां ॥ २५८ ॥

खवा संखेज्जगुणां ॥ २५९ ॥

अप्पमत्तसंजदा अब्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणां ॥ २६० ॥

क्यांकि, उनका संचयकाल पूर्वकोटी वर्ष हे ।

संयतोमं प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानंमं शायिकसम्यग्दृष्टियोसे  
वेदकसम्यग्दृष्टि जीन गंन्यातगुणित हैं ॥ २५४ ॥

क्यांकि, वेदकसम्यग्दृष्टियोके श्रायोपशमिक सम्यन्त्व होता है ( जिसकी प्राप्ति  
सुलभ है ) ।

इसी प्रकार संयतोमं अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोमं नम्यक्त्वसम्बन्धी  
अल्पवहुत्व हैं ॥ २५५ ॥

उक्त गुणस्थानोमं उपशामक जीव मवसे कम है ॥ २५६ ॥

उपशामकोसे शपक जीन संख्यातगुणित हैं ॥ २५७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हे ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमं अपूर्वकरण और अनिष्टिकरण,  
इन दोनों गुणस्थानोमं उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २५८ ॥

उपशामकोमं शपक जीन संख्यातगुणित हैं ॥ २५९ ॥

शपकोसे अत्रापक और अतुपशामक अप्रमत्तसंयत मंख्यातगुणित हैं ॥ २६० ॥

१ सपना, एतेर सामायिकच्छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमं श्रायोपशमिकसम्यन्त्व । स नि १, ८.

२ नह मन्वथोवा उवसमा । म नि. १, ८.

३ उत्पत्तान्तं नीन्द्राणं । म नि १, ८

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणां ॥ २६१ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदद्वाने सव्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २६२ ॥

कुदो ? अंतोमुहुत्तसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २६३ ॥

पुव्वकोडिमंचयादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २६४ ॥

सथोवसमियम्मत्तादो ।

एवं दोसु अद्वासु ॥ २६५ ॥

सव्वथोवा उवसमा ॥ २६६ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २६७ ॥

एदाणि तिण्णि नि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २६१ ॥

ये सूत्र सुगम हे ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमं प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुण-  
स्थानोमं उपशामसम्यग्दृष्टि जीन सवसे कम हैं ॥ २६२ ॥

क्यांकि, उनका संचयकाल अन्तमुहूर्त हे ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमं प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुण-  
स्थानोमं उपशामसम्यग्दृष्टियोसे शायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २६३ ॥

क्यांकि, उनका संचयकाल पूर्वकोटी वर्ष हे ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमं प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुण-  
स्थानोमं शायिकसम्यग्दृष्टियोसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २६४ ॥

क्यांकि, वेदकसम्यग्दृष्टियोके श्रायोपशमिक सम्यन्त्व होता है ( जिसकी प्राप्ति  
सुलभ है ) ।

इसी प्रकार उक्त जीवोका अपूर्वकरण और अनिष्टिकरण, इन दोनों गुणस्थानोमं  
सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व है ॥ २६५ ॥

उक्त जीवोमं उपशामक सवसे कम हैं ॥ २६६ ॥

उपशामकोमं शपक संख्यातगुणित हैं ॥ २६७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

१ प्रमत्ताः मत्थेयुणा । म नि १, ८.

परिहारशुद्धिसंज्ञदेसु सन्वथोवा अप्पमत्तसंज्ञदा' ॥ २६८ ॥  
सुगममेदं ।

पमत्तसंज्ञदा संखेज्जगुणां ॥ २६९ ॥  
को गुणगारो ? दो रूपाणि ।

पमत्त-अप्पमत्तसंज्ञदट्टणे सन्वथोवा खहयसम्मादिट्ठी ॥ २७० ॥  
कुदो ? खहयसम्तत्तस्स पउरं संभवाभावा ।  
वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २७१ ॥

कुदो ? खओवसमियसम्मत्तस्स पउरं संभवादो । एत्थ उवसमसम्मत्तं गत्थि,  
तीसं वासेण विणा परिहारशुद्धिसंज्ञमस्स संभवाभावा । ण च तेत्तियकालमुवसमसम्म-  
त्तस्सावट्टाणमत्थि, जेण परिहारशुद्धिसंज्ञमेण उवसमसम्मत्तस्सुवल्लो होज्ज ? ण च  
परिहारशुद्धिसंज्ञमछंदत्तस्स उवसमसेडीचउणहं दंसणमोहणीयस्सुवसामणं पि संभवह,  
जेशुवसमसेडिग्घि दोणं पि संजोगो होज्ज ।

परिहारशुद्धिसंज्ञतोंमें अप्रमत्तसंज्ञत जीव सबसे कम हैं ॥ २६८ ॥  
यह सूत्र सुगम है ।

परिहारशुद्धिसंज्ञतोंमें अप्रमत्तसंज्ञतोंसे प्रमत्तसंज्ञत संख्यातगुणित हैं ॥ २६९ ॥  
गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार हैं ।

परिहारशुद्धिसंज्ञतोंमें प्रमत्तसंज्ञत और अप्रमत्तसंज्ञत गुणस्थानमें क्षायिकसम्य-  
ग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७० ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वका प्रचुरतासे होना संभव नहीं है ।

परिहारशुद्धिसंज्ञतोंमें प्रमत्तसंज्ञत और अप्रमत्तसंज्ञत गुणस्थानमें क्षायिकसम्य-  
ग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २७१ ॥

क्योंकि, क्षायोपशमिकसम्यक्त्वका प्रचुरतासे होना संभव है । यहाँ परिहारशुद्धि-  
संज्ञतोंमें उपशमसम्यक्त्व नहीं होता है, क्योंकि, तीस वर्षके विना परिहारशुद्धिसंज्ञतसंज्ञका  
होना संभव नहीं है । और न उतने काल तक उपशमसम्यक्त्वका अवस्थान रहता  
है, जिससे कि परिहारशुद्धिसंज्ञतोंके साथ उपशमसम्यक्त्वकी उपलब्धि हो सके ?  
दूसरी बात यह है कि परिहारशुद्धिसंज्ञतोंमें नहीं छोड़नेवाले जीवोंके उपशमश्रेणीपर  
चढ़नेके लिए दर्शनेमोहनीयकर्मका उपशमन होना भी संभव नहीं है, जिससे कि उपशम-  
श्रेणीमें उपशमसम्यक्त्व और परिहारशुद्धिसंज्ञत, इन दोनोंका भी संयोग हो सके ।

१ परिहातसंज्ञिसंज्ञतों अप्रमत्तसंज्ञ प्रमत्ता सम्येयगुणा । म सि १, ८

सुहुमसांपराहयसुद्धिसंज्ञदेसु सुहुमसांपराहयउवसमा थोवा'  
॥ २७२ ॥

कुदो ? चउवणपमाणात्तादो ।

खवा संखेज्जगुणां ॥ २७३ ॥

को गुणगारो ? दोणिण रूपाणि ।

जथाक्खादविहारशुद्धिसंज्ञदेसु अकसाइभंगो ॥ २७४ ॥

जथा अकसाईणमपावहुगं उत्तं तथा जहाक्खादविहारशुद्धिसंज्ञदाणं पि कादव्व-  
मिदि उत्तं होदि ।

संज्ञदासंज्ञदेसु अप्पावहुअं गत्थि' ॥ २७५ ॥

एयपदत्तादो । एत्थ सम्मत्तप्पावहुअं उच्चदे । तं जहा-

संज्ञदासंज्ञदट्टणे सन्वथोवा खहयसम्मादिट्ठी ॥ २७६ ॥

कुदो ? संखेज्जपमाणात्तादो ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंज्ञतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक जीव अल्प  
हैं ॥ २७२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंज्ञतोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ २७३ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार हैं ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंज्ञतोंमें अल्पवहुत्व अकपायी जीवोंके समान हैं ॥ २७४ ॥

जिस प्रकार अकपायी जीवोंका अल्पवहुत्व कहा है, उसी प्रकार यथाख्यात-  
विहारशुद्धिसंज्ञतोंका भी अल्पवहुत्व करना चाहिए, यह अर्थ कहा गया है ।

संज्ञतासंज्ञत जीवोंमें अल्पवहुत्व नहीं है ॥ २७५ ॥

क्योंकि, संज्ञतासंज्ञत जीवोंके एक ही गुणस्थान होता है । यहाँपर सम्यक्त्व-  
सम्बन्धी अल्पवहुत्व कहते हैं । वह इस प्रकार है-

संज्ञतासंज्ञत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७६ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण संख्यात ही है ।

१ सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंज्ञतोंमें उपशामकेभ्य क्षपका सम्येयगुणा । म सि १, ८

२ यथाख्यातविहारशुद्धिसंज्ञतोंमें उपशान्तगामेभ्य क्षीणन्याया मध्येयगुणा । अयोभिन्वलिमस्ताकत  
एव । सयोभिन्वलि मध्येयगुणा । म सि १, ८.

३ मयतामयानां नास्त्यल्पवहुत्वम् । म सि १, ८

उवसमसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ २७७ ॥

को गुणगारो ? पल्लितमस्य असंखेज्जदिभागो, अमंखेज्जाणि पल्लितोवमपडम-  
रगमूलाणि ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ २७८ ॥

को गुणगारो ? आमलियाए अमंखेज्जदिभागो । कारणं जाणिदूण वत्तव्वं ।

असंजदेसु सब्वथोवा सासणसम्मादिद्वी ॥ २७९ ॥

कुदो ? अतिसुहृत्तसंचयादो ।

सम्माभिच्छादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ २८० ॥

कुदो ? मंखेज्जावलियसंचयादो ।

असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ २८१ ॥

को गुणगारो ? आमलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? साभावियादो ।

मंत्रतामंत्रयत गुणस्थानमं क्षायिकसम्यग्दृष्टियोसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात-  
गुणित हैं ॥ २७७ ॥

गुणकार क्या है ? पश्योपमका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो पश्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

मंत्रतामंत्रयत गुणस्थानमं उपशमसम्यग्दृष्टियोसे वेदकमस्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित  
हैं ॥ २७८ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है । इसका कारण  
जानकर जाना चाहिए । (वेदो मूल नं २०) ।

अमंत्रयतोमं मामादनसम्यग्दृष्टि जीव सवसे कम हैं ॥ २७९ ॥

स्व्यौकि, उनका संचयकाल छह आवलीमात्र है ।

अमंत्रयतोमं मामादनसम्यग्दृष्टियोसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ २८० ॥

स्व्यौकि, उनका संचयकाल संख्यात आवलीप्रमाण है ।

अमंत्रयतोमं नम्यग्मिथ्यादृष्टियोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ २८१ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है, स्व्यौकि, यह  
स्वाभाविक है ।

१ पश्योपमं मंत्रं, सोहा मामादनसम्यग्दृष्टय । म वि. १, ८

२ नम्यग्मिथ्यादृष्टय मंखेयदुजा । म वि. १, ८

३ असंयतसम्यग्दृष्टयोंउत्तयेयगुणा । म वि. १, ८

मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ॥ २८२ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धियेहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि  
सब्वजीवरासिपडमरगमूलाणि । कुदो ? साभावियादो ।

असंजदसम्मादिद्विद्विद्वेणो सब्वथोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ २८३ ॥

कुदो ? अंतिसुहृत्तसंचयादो ।

खइयसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ २८४ ॥

कुदो ? सागरोवमसंचयादो । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो  
कुदो ? साभावियादो ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ २८५ ॥

को गुणगारो ? आमलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? साभावियादो ।

एव सजममगणा समत्ता ।

अमंत्रयतोमं असंयतसम्यग्दृष्टियोसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ २८२ ॥  
गुणकार क्या है ? अव्यसिद्धोसे अनन्तगुणित ओर सिद्धोसे भी अनन्तगुणित  
राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है, स्व्यौकि, यह  
स्वाभाविक है ।

अमंत्रयतोमं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमं उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सवसे कम  
हैं ॥ २८३ ॥

स्व्यौकि, उनका संचयकाल अनन्तमुहूर्त है ।

अमंत्रयतोमं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमं उपशमसम्यग्दृष्टियोसे क्षायिकसम्य-  
ग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २८४ ॥

स्व्यौकि, उनका संचयकाल सागरोपम है । गुणकार क्या है ? आवलीका अस-  
ख्यातवां भाग गुणकार है, स्व्यौकि, यह स्वाभाविक है ।

अमंत्रयतोमं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमं क्षायिकसम्यग्दृष्टियोसे वेदकसम्य-  
ग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २८५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, स्व्यौकि, यह  
स्वाभाविक है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

दंसणानुवादेण चक्खुदंसणीअक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि  
जाव खीणकसाथवीदरागछुदुमत्था ति ओधं ॥ २८६ ॥

जथा ओघमिह एदेसिमप्यावहुगं परुविदं तथा एत्थ वि परुवेद्वं, विसेसाभावा ।  
विसेसपरुवणहुमुत्तरसुत्तं भणदि-

णवरि चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २८७ ॥

को गुणगारो ? पदरस असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ, सेडीए<sup>१</sup>  
असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । कुदो ? साभावियादो ।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ २८८ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ २८९ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एव दसणमगणा समत्ता ।

दर्शनमार्गणके अनुवादसे चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे  
लेकर क्षीणकपायवीतरागलभस्य गुणस्थान तक अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ २८६ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानवर्ती जीवोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार  
यहांपर भी कहना चाहिए, क्योंकि, दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है । अब चक्षुदर्शनी  
जीवोंमें सम्भव विशेषताके प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेषता यह है कि चक्षुदर्शनी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि  
असंख्यातगुणित है ॥ २८७ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असंख्यात  
जगश्रेणिप्रमाण है । वे जगश्रेणिया भी जगश्रेणिके असंख्यातवै भागमात्र हैं । इसका  
कारण क्या है ? ऐसा स्वभावसे है ।

अवधिदर्शनी जीवोंका अल्पबहुत्व अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २८८ ॥

केवलदर्शनी जीवोंका अल्पबहुत्व केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २८९ ॥

वे दोनों ही सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

१ दर्शनानुवादेन चक्षुदर्शनिनां मनोयोगिवत् । अचक्षुदर्शनिनां काययोगिवत् । स सि १, ८

२ अतिपु 'सेडीओ खगसेडी असंखेज्जदिभागो वेडीए' इति पाठ ।

३ अत्रविदर्शनिनामपथिभानिवत् । स मि १, ८ ४ केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिवत् । स सि १, ८

लेस्सानुवादेण किणहलेस्सिय-णीलेस्सिय-काउलेस्सिएसु सव्व-  
त्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ २९० ॥

सुगममेदं ।

सम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २९१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? साभावियादो ।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ २९३ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंतगणि  
सव्वजीवरासिपढवगगमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठिणो सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ २९४ ॥

लेश्यामार्गणके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीलेश्या और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें  
सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ २९० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालोमे सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि  
जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २९१ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि  
जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९२ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, यह  
स्वभावविक है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव  
अनन्तगुणित हैं ॥ २९३ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोसे अनन्तगुणित और सिद्धोसे भी अनन्तगुणित  
राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालोमे असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें शायिक-  
सम्यग्दृष्टि सबसे कम है ॥ २९४ ॥

कुदो ? मणुमकिरु-णील्लेस्सियसंरोज्जखडयम्ममादिट्ठिपरिगहादो ।

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९५ ॥

तो गुणगारो ? पल्लिदोवमस्स असंखेज्जिभागो । कुदो ? णेरइएसु किण्हलेस्सिएसु पल्लिदोवमस्स असंखेज्जिभागमेत्तउवसममम्मादिट्ठिणमुवलभा ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९६ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जिभागो । सेसं सुगमं ।

णवरि विमेषो, काउलेस्सिएसु असंजदसम्मादिट्ठिद्विणो सब्व-  
त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २९७ ॥

कुदो ? अंतोपुत्तमंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९८ ॥

कुदो ? पडमपुड्ढिहिं मंचिदसइयसम्मादिट्ठिगहादो । को गुणगारो ? आन-  
लियाए अयंखेज्जिभागो ।

क्योंकि, यहाँ पर कृष्ण और नीललेख्यावालों संख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका प्रारण किया गया है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेख्यावालों असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अमंख्यातगुणित हैं ॥ २९५ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, कृष्ण-  
लेख्यावालों नारक्तियोंमें पल्योपमके असंख्यातवर्गे भागमात्र उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका  
सद्भारण पाया जाता है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेख्यावालों असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशम-  
सम्यग्दृष्टियोंमें नेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९६ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ  
सुगम है ।

कैवल विशेषता यह है कि कापोतलेख्यावालों असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें  
उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २९७ ॥

क्योंकि, उनका संन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

कापोतलेख्यावालों असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९८ ॥

क्योंकि, यहाँ पर प्रथम पृथिवीमें संचित क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका ग्रहण  
का गया है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९९ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए अमंखेज्जिदिभागो ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु सब्वत्थोवा अपमत्तसंजदा ॥ ३०० ॥

कुदो ? संखेज्जपरिमाणचादो ।

पमतसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३०१ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ३०२ ॥

को गुणगारो ? पल्लिदोवमस्स असंखेज्जिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदोवमपडम-  
वगमूलाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३०३ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जिदिभागो । कुदो ? सोहम्मसीसाण-सणवकुमार-  
माहिंदराभिपरिगहादो ।

कापोतलेख्यावालों असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदक-  
सम्यग्दृष्टि जीव अमंख्यातगुणित हैं ॥ २९९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

तेजोलेख्या और पत्रलेख्यावालोंमें अप्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं ॥ ३०० ॥

क्योंकि, उनका परिमाण संख्यात है ।

तेजोलेख्या और पत्रलेख्यावालोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ ३०१ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

तेजोलेख्या और पत्रलेख्यावालोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यात-  
गुणित हैं ॥ ३०२ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

तेजोलेख्या और पत्रलेख्यावालोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव  
असंख्यातगुणित हैं ॥ ३०३ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, यहाँ पर  
सौधर्म ईशान और सन्तुमार माहेन्द्र कल्पसम्बन्धी देवराशिको ग्रहण किया गया है ।

१ तेजःपत्रलेख्यातां संवत्, स्तोका कथयता । स. सि. १, ८

२ प्रमत्ताः मल्येपशुणाः । स. सि. १, ८

३ पृथगित्तरेणो पचेन्द्रियत्त्वं । स. सि. १, ८



सम्पामिच्छादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ३०४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ३०५ ॥

को गुणगारो ? आबलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुवोच्चं ।

मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ३०६ ॥

को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ, सेडीए असंखेज्जदिभागमेचाओ । को पडिभागो ? वणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदंगुलाणि ।

असंजदसम्मादिद्विसंजदासंजदपमत-अप्पमतसंजदद्वुणे सम्मत-  
प्पावहुअसोधं ॥ ३०७ ॥

जधा ओवाम्हि अप्पावहुअमेदेसि उत्तं सम्मतं पडि, तथा एत्थ सम्मतत्त्पावहुगं वत्तव्यमिदि वुत्तं होइ ।

तेजोलेश्या और पन्नलेश्यावालोमे सासादनसम्यग्दृष्टियोसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३०४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

तेजोलेश्या और पन्नलेश्यावालोमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है ॥ ३०५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष स्वार्थ सुगम है ।

तेजोलेश्या और पन्नलेश्यावालोमें असंयतसम्यग्दृष्टियोसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३०६ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणिके असंख्यातवै भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? घनागुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरगुलप्रमाण है ।

तेजोलेश्या और पन्नलेश्यावालोमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमतसंयत और अप्रमतसंयत गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओषके समान है ॥३०७॥

जिस प्रकार ओषमें इन गुणस्थानोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहापर सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहना चाहिए, यह अर्थ कहा गया है ।

सुक्कलेस्सिएसु तिसु अद्दासु उवसमा पवेसणेण<sup>१</sup>, तुल्ला थोवां  
॥ ३०८ ॥

सुगममेदं ।

उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३०९॥

कुदो ? चउवणपमाणात्तादो ।

खवा संखेज्जगुणां ॥ ३१० ॥

अहुत्तरसदपरिमाणत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३११ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव ॥ ३१२ ॥

एदं पि सुगमं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणां ॥ ३१३ ॥

शुक्कलेश्यावालोमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प है ॥ ३०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्कलेश्यावालोमें उपशान्तकषायवीतरागछन्नस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३०९ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

शुक्कलेश्यावालोमें उपशान्तकषायवीतरागछन्नस्थोसे क्षपक जीव संख्यातगुणित है ॥ ३१० ॥

क्योंकि, उनका परिमाण एक सो आठ है ।

शुक्कलेश्यावालोमें क्षीणकषायवीतरागछन्नस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥३११॥ यह सूत्र सुगम है ।

शुक्कलेश्यावालोमें सयोगिकेवली प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥३१२॥ यह सूत्र भी सुगम है ।

शुक्कलेश्यावालोमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित है ॥३१३॥

<sup>१</sup> शुक्कलेश्याना सर्वत स्तोत्रा उपशमका । स मि १, ८

<sup>२</sup> क्षपका संखेयगुणा । स सि १, ८

<sup>३</sup> सयोगिकेवलिन संखेयगुणा । स मि १, ८

को गुणगारो ? ओत्रमिदो ।

अपमत्तमंजदा अस्ववा अणुवसमा संखेज्जगुणां ॥ ३१४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जममया ।

पमत्तमंजदा संखेज्जगुणां ॥ ३१५ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रुत्ताणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ ३१६ ॥

को गुणगारो ? पल्लितोमस अमंखेज्जदिभागो, अमंखेज्जाणि पल्लितोवमपढम-  
गगमूलाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ३१७ ॥

को गुणगारो ? आबलियाए अमंखेज्जदिभागो ।

सम्मानिच्छदिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३१८ ॥

गुणकार क्या है ? ओत्रमें नतलाया गया गुणकार ही यहाँपर गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें ययोगिकेनीली जिनोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत  
जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३१४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें अप्रमत्तसंयतोसे अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३१५ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३१६ ॥

गुणकार क्या है ? पत्योपमत्ता असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो पत्योपमके  
प्रमत्त्यात प्रथम गंमूलप्रमाण है ।

शुक्कलेश्यावालोमें संयतासंयतोसे सामादनसम्यग्दष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ३१७ ॥

गुणकार क्या है ? आबलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।  
शुक्कलेश्यावालोमें सामादनसम्यग्दष्टियोसे सम्यग्मिथ्यादष्टि जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ ३१८ ॥

१ पत्योपमत्ता: संच्येयुत्ता: । म. नि. १, ८.

२ प्रमत्तवत्ता सत्केरुत्ता: । स. नि. १, ८

३ सामादनवत्ता: (अ) मत्केययुत्ता: । म. नि. १, ८.

४ सामादनसम्यग्दष्टय: (अ) सत्केययुत्ता । म. नि. १, ८.

५ सम्यग्मिथ्यादष्टय: सत्केरुत्ता । स. नि. १, ८.

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

मिच्छदिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ३१९ ॥

को गुणगारो ? आबलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणां ॥ ३२० ॥

आरणच्चुरामिस्स पहाणत्तपरियप्पणादो ।

असंजदसम्मादिट्ठिणाणे सव्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ३२१ ॥  
कुदो ? अतोसुहुत्तमंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३२२ ॥

को गुणगारो ? आबलियाए असंखेज्जदिभागो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३२३ ॥

खओवसमियसम्मत्तादो ।

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें सम्यग्मिथ्यादष्टियोसे मिथ्यादष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ३१९ ॥

गुणकार क्या है ? आबलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें मिथ्यादष्टियोसे असंयतसम्यग्दष्टि जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ ३२० ॥

क्योंकि, यहाँपर आरण-अच्युतकल्पसम्बन्धी देवराशिकी प्रधानता विवक्षित है ।

शुक्कलेश्यावालोमें असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दष्टि जीव सव्वमे  
क्रम हैं ॥ ३२१ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

शुक्कलेश्यावालोमें असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दष्टियोसे धायिक-  
सम्यग्दष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३२२ ॥

गुणकार क्या है ? आबलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें धायिकसम्यग्दष्टियोसे वेदक-  
सम्यग्दष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ३२३ ॥

क्योंकि, वेदकसम्यग्दष्टियोके शायोपशमिक समयक्त्व होता है ( जिसकी प्राप्ति  
सुलभ है ) ।

१ मिथ्यादष्टयोऽसत्केययुत्ता । स. नि. १, ८.

२ अपयतसम्यग्दष्टयोऽमंखेययुत्ता (?) । स. नि. १, ८.

संजदासंजद-पमत-अप्पमतसंजदद्वुणे  
॥ ३२४ ॥

जधा ऐदिसिमोघमिह्द सम्मत्तप्पावहुगं बुत्तं, तहा वत्तव्वं ।

एवं तिसु अद्दासु ॥ ३२५ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ३२६ ॥

खवा संवेज्जगुणा ॥ ३२७ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एव लेस्सामग्गां<sup>१</sup> समत्ता ।

भविआणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छइही जाव अजोगिकेव्वलि  
त्ति ओघं ॥ ३२८ ॥

एत्थ ओघअप्पावहुअं अण्णाहियं वत्तव्वं ।

शुक्कलेइयावालोमे संयतासंयत, प्रमतसंयत और अप्रमतसंयत गुणस्थानों  
सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३२४ ॥

जिस प्रकार इन गुणस्थानोंका ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है,  
उसी प्रकार यहापर भी कहना चाहिए ।

इसी प्रकार शुक्कलेइयावालोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व-  
सम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ ३२५ ॥

उक्त गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ ३२६ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३२७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम ह ।

इस प्रकार लेख्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुण-  
स्थान तक जीवोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३२८ ॥

यहापर ओघसम्बन्धी अल्पबहुत्व हीनता और अधिकतासे रहित अर्थात्  
तत्प्रमाण ही कहना चाहिए ।

<sup>१</sup> थ-आप्तलो 'लेस्सामग्गा' इति पाठ ।

<sup>२</sup> भच्चावुवादेन भव्यानां नाम्मायवत् । म. सि १, ८

अभवसिद्धिएसु अप्पावहुअं णत्थि<sup>१</sup> ॥ ३२९ ॥  
कुदो ? एगपदत्तादो ।

एव भवियमग्गा समत्ता ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु ओधिणाणिभंगो ॥ ३३० ॥

जधा ओधिणाणीणमप्पावहुगं परुविदं, तथा एत्थ परुवेदव्वं । गवरि सजोगि-  
अजोगिपदाणि वि एत्थ अत्थि, सम्मत्तसामण्णे अहियारादो ।

खइयसम्मदिट्ठीसु तिसु अद्दासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा<sup>२</sup>  
॥ ३३१ ॥

तप्पाओगसंवेज्जपमाणत्तादो ।

उवसंतकसायवीदरागछुमत्था तत्तिया चेव<sup>३</sup> ॥ ३३२ ॥  
सुगममेदं ।

अभव्यसिद्धोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३२९ ॥

क्योंकि, उनके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अल्पबहुत्व अवधिज्ञानियोंके  
समान है ॥ ३३० ॥

जिस प्रकार ज्ञानमार्गणमें अवधिज्ञानियोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार  
यहांपर भी कहना चाहिए । केवल विशेषता यह है कि सयोगिकेवली और अयोगि-  
केवली, ये दो गुणस्थानपद यहांपर होते हैं, क्योंकि, यहांपर सम्यक्त्वसामान्यका  
अधिकार है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव  
प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३३१ ॥

क्योंकि, उनका तस्यायोग्य संख्यात प्रमाण है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें उपशान्तकपायवीतरागछद्मस्य जीव श्लोक्त प्रमाण ही  
है ॥ ३३२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

<sup>१</sup> अवव्याना नात्थयव्वहुत्वम् । म सि १, ८.

<sup>२</sup> सम्यक्त्वाद्युवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु सर्वत स्तोत्राश्रयत्वा उपशामका । म सि १, ८

<sup>३</sup> इतीयां प्रवृत्तानां सामान्यवत् । म. सि १, ८.

स्वभा संखेज्जगुणा ॥ ३३३ ॥

स्त्रीणकसायवीदरागछटुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३३४ ॥

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवंसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ ३३५ ॥

पद्दाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ३३६ ॥

गुणगारो ओघमिद्धो, सहयसम्मचरिहिटसजोगीणमभावा ।

अप्रमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ३३७ ॥

को गुणगारो ? तप्पाओग्गसंखेज्जगुणाणि ।

प्रमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३३८ ॥

को गुणगारो ? दो रूत्ताणि ।

धायिकसम्यग्दृष्टियोंमें उपशान्तकपायवीतरागछवस्योसे क्षपक जीव संख्यात-  
गुणित हैं ॥ ३३३ ॥

स्त्रीणकसायवीतरागछवस्य पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३३४ ॥

सजोगिकेवली और अजोगिकेवली, ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और  
पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३३५ ॥

ये नून सुगम है ।

मजोगिकेवली जिन संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ३३६ ॥

यथापर गुणकार ओघ कथित है, क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वसे रहित सजोगि-  
केवली नहीं पाये जाते हैं ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यात-  
गुणित हैं ॥ ३३७ ॥

गुणकार क्या है ? अप्रमत्तसंयतोंके योग्य सख्यातरूप गुणकार है ।

धायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ ३३८ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

संजदासंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३३९ ॥

मणुसगदि मोत्तूण अणत्थ खइयत्तम्मदिट्ठिसंजदासंजदाणमभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३४० ॥

को गुणगारो ? पल्लिदोवसस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदोवमपडम-  
वग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदद्वारेण खइय-  
सम्मत्तस्स भेदो णत्थि ॥ ३४१ ॥

एदस्स अहिप्पाओ-जेण खइयसम्मत्तस्स एदेषु गुणद्वारेणु भेदो णत्थि, तेण  
णत्थि सम्मत्तप्पावहुगं, एयपयत्तादो । एसो अत्थो एदेण परूविदो हेदि ।

वेदगसम्मादिट्ठीसु सव्वत्थोवा अपमत्तसंजदा ॥ ३४२ ॥

कुदो ? तप्पाओग्गसंखेज्जपमाणत्तादो ।

धायिकसम्यग्दृष्टियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३३९ ॥  
क्योंकि, मणुष्यगतिको छोड़कर अन्य गतियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत  
जीवोंका अभाव है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ३४० ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

धायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और  
अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यक्त्वका भेद नहीं है ॥ ३४१ ॥

इस सूत्रका अभिप्राय यह है कि इन असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चारों गुणस्थानोंमें  
क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है, इसलिए उनमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्प-  
बहुत्व नहीं है, क्योंकि, उन सबमें क्षायिकसम्यक्त्वरूप एक पद ही विवक्षित है । यह  
अर्थ इस सूत्रके द्वारा प्ररूपित किया गया है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं ॥ ३४२ ॥

क्योंकि, उनका तत्प्रायोग्य संख्यातरूप प्रमाण है ।

१ तत्त. संयतासंयताः सखेयगुणा । स. सि. १, ८.

२ असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसखेयगुणा । स. सि. १, ८.

३ क्षायोपचमिन्मस्यग्दृष्टिषु सर्वांत लोका अप्रपत्ताः । स. सि. १, ८.

पमतसंजदा संखेज्जगुणां ॥ ३४३ ॥

को गुणगरो ? दो रूपाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ ३४४ ॥

को गुणगरो ? फलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि फलिदोवमपढम-  
वग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ३४५ ॥

को गुणगरो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-यमत-अपमतसंजदद्वणे वेदग-  
समतस्स भेदो णत्थि ॥ ३४६ ॥

एत्थ भेदसदो अप्पावहुअपज्जाओ धेत्तवो, सदाणमणेयत्थत्तादो । वेदगसम्मत्तस्स  
भेदो अप्पावहुअं णत्थि ति उत्तं होदि ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोमं अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३४३ ॥  
गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोमं प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३४४ ॥  
गुणकार क्या है ? फल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो फल्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोमं संयतासंयतोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ३४५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असख्यातवा भाग गुणकार है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोमं असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त-  
संयत गुणस्थानोंमें वेदकसम्यक्त्वका भेद नहीं है ॥ ३४६ ॥

यथापर भेद शब्द अल्पमहुत्वका पर्यायवाचक ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि,  
शब्दोंके अनेक अर्थ होते हैं । इस प्रकार इस सूत्र द्वारा यह अर्थ कहा गया है कि इन  
गुणस्थानोंमें वेदकसम्यक्त्वका भेद अर्थात् अल्पमहुत्व नहीं है ।

१ नमो महेरेरुणा । म. नि. १, ८.

२ सतान्मता (सं) मर्येयुणा स. नि. १, ८

३ अप्रमत्तसम्यग्दृष्टयो-नरोरुणा । म. नि. १, ८.

उवसमसम्मादिट्ठीसु तिसु अद्दासु उवसमा प्वेसणेण तुल्ला  
थोवां ॥ ३४७ ॥

उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३४८ ॥

अपमतसंजदा अणुवसमा संखेज्जगुणां ॥ ३४९ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

पमतसंजदा संखेज्जगुणां ॥ ३५० ॥

को गुणगरो ? दो रूपाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ ३५१ ॥

को गुणगरो ? फलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि फलिदोवमपढम-  
वग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ३५२ ॥

उपशामसम्यग्दृष्टियोमे अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव  
प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३४७ ॥

उपशान्तकपायवीतरागछन्नस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३४८ ॥

उपशान्तकपायवीतरागछन्नस्थोंसे अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ ३४९ ॥

ये सूत्र सुगम है ।

उपशामसम्यग्दृष्टियोमं अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ ३५० ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

उपशामसम्यग्दृष्टियोमं प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ३५१ ॥

गुणकार क्या है ? फल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो फल्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

उपशामसम्यग्दृष्टियोमं संयतासंयतोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ३५२ ॥

१ अप्पावमि-रूपम्यग्दृष्टीनां सर्वत स्तोकाश्रवार उपशामका । स. नि. १, ८

२ अप्रमत्ताः सखेययुणा । स. नि. १, ८

३ संयतासंयता (अ-) सखेययुणा । स. नि. १, ८

५ असंयतसम्यग्दृष्टयो-जमखेययुणा । म. नि. १, ८

को गुणनामो ? आत्मलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदद्वुणो उव-  
समसम्मत्तस्स भेदो णत्थि ॥ ३५३ ॥

सुगममेदं ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मा(मिच्छादिट्ठि)-मिच्छादिट्ठिणं णत्थि अप्पा-  
वहुअं ॥ ३५४ ॥

कुरो ? एगपदत्तादो ।

एव नमत्तमगणा समत्ता ।

सणियाणुवादेण सणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसाय-  
वीदरागच्छुमत्था ति ओघं ॥ ३५५ ॥

जथा ओघन्कि अप्पानहुगं परुविदं तथा एत्थ परूवेद्वं, सणित्तं पडि उह-  
यन्व भेदाभावा । विमेमपदुप्पायणहुमुचरसुत्तं भणदि-

गुणकार स्या ते ? आवच्छीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियामें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अग्रमत्त-  
संयत गुणस्थानमें उपशमसम्यक्त्वका अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सागादनसम्यग्दृष्टि, सम्यगभिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व  
नहीं है ॥ ३५४ ॥

स्यौकि, तीनों प्रकारके जीवोंके एक गुणस्थानरूप ही पद है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञिमार्गणाके अनुवादमें संज्ञियामें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय-  
नीनरागजमल्य गुणस्थान तक जीवोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३५५ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहाँ  
पर भी प्ररूपण करना चाहिए, स्यौकि, सखित्वकी अपेक्षा दोनों स्थानोंपर कोई भेद  
नहीं है । पर संज्ञियामें संभव विशेषके प्रतिपादनके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

१ शोभां गारुत्वमुत्तम, निपधे एहेत्थुत्पत्तानप्रदग्धात् । स णि. १, ८.

२ मन्नादुत्तमेत्त सन्निता च्छूर्धेधनिवत् । स. णि. १, ८.

णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३५६ ॥

ओघमिदि बुत्ते अणत्तगुणत्तं पत्तं, तणिरायणहं असंखेज्जगुणा इदि उत्तं । गुण-  
गारो पदस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ' सेडीओ, सेडीए असंखेज्जदि-  
भागसेत्ताओ ।

असणीसु णत्थि अप्पावहुअं ॥ ३५७ ॥  
कुरो ? एगपदत्तादो ।

एव सणिमगणा समत्ता ।

आहारणुवादेण आहारएसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण  
तुल्ला शोवां ॥ ३५८ ॥

चउवण्णपमाणात्तादो ।

उवसंतकसायवीदरागच्छुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३५९ ॥  
सुगममेदं ।

विशेषता यह है कि संज्ञियामें असंयतसम्यग्दृष्टियोंने मिथ्यादृष्टि जीव असं-  
ख्यातगुणित है ॥ ३५६ ॥

उपर्युक्त सूत्रमें 'ओघ' इस पदके कह देने पर असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे सजी  
मिथ्यादृष्टि जीवोंके अनन्तगुणितता प्राप्त होती थी, उसके निराकरणके लिए इस सूत्रमें  
'असंख्यातगुणित है' ऐसा पद कहा है । यहाँ पर गुणकार जगप्रतरका असंख्यातवां  
भाग है, जो जगश्रेणीके असंख्यातवां भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है ।

असंजी जीवोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३५७ ॥

स्यौकि, उनमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है ।

इस प्रकार संज्ञिमार्गणा समाप्त हुई ।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकामें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें  
उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प है ॥ ३५८ ॥  
स्यौकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

आहारकामें उपशान्तकपायवीतरागच्छमस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३५९ ॥  
यह सूत्र सुगम है ।

१ प्रतिपु 'जगतो गुणत्त' इति पाठः ।

२ प्रतिपु 'असंखेज्जदि' इति पाठः ।

३ असाहिनां नाल्लय्यबहुत्वम् । स. णि. १, ८

४ आहाणउत्तमेत्त आहाणानाणो काययोगिवत् । स. णि. १, ८.

स्वा संखेज्जगुणा ॥ ३६० ॥

अहुत्तरसदप्रमाणत्वादे ।

खीणकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३६१ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव ॥ ३६२ ॥

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ३६३ ॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ३६४ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३६५ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ३६६ ॥

को गुणगारे ? पल्लिदोवमस्त असंखेज्जदिमाणो ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३६७ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३६८ ॥

आहारकामे उपशान्तकषायवीतरागछुदुमत्थोसे क्षपक जीव संख्यातगुणित है ॥ ३६० ॥

क्योकि, उनका प्रमाण एरू सौ आठ है ।

आहारकामे क्षीणकषायवीतरागछुदुमत्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारकामे सयोगिकेवली जिन श्वेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३६२ ॥

सयोगिकेवली जिन संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित है ॥ ३६३ ॥

सयोगिकेवली जिनोसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित है ॥ ३६४ ॥

अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित है ॥ ३६५ ॥

ये सूत्र सुगम है ।

आहारकामे प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित है ॥ ३६६ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमका असत्त्यातवा भाग गुणकार है ।

आहारकामे संयतासंयतोसे सामादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है ॥ ३६७ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोमे सम्यग्भिध्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित है ॥ ३६८ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३६९ ॥

मिच्छादिट्ठी अणतगुणा ॥ ३७० ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठिसंजदासंजद-पमत-अप्पमत्तसंजदद्वहणे सम्मत्त-प्पावहुअमोघं ॥ ३७१ ॥

एवं तिसु अद्वासु ॥ ३७२ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ३७३ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ ३७४ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अणाहारएसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली ॥ ३७५ ॥

कुदो ? सद्धिपमाणत्वादे ।

अजोगिकेवली संखेज्जगुणा ॥ ३७६ ॥

कुदो ? दुल्लज्जणछस्सदप्रमाणत्वादे ।

सम्यग्भिध्यादृष्टियोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है ॥ ३६९ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टियोसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित है ॥ ३७० ॥

ये सूत्र सुगम है ।

आहारकामे असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत

गुणस्थानमे सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३७१ ॥

इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोमे सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व

ओघके समान है ॥ ३७२ ॥

उक्त गुणस्थानोमे उपशाराक जीव सबसे कम है ॥ ३७३ ॥

उपशामकोसे क्षपक जीव संख्यातगुणित है ॥ ३७४ ॥

ये सूत्र सुगम है ।

अनाहारकामे सयोगिकेवली जिन सबसे कम है ॥ ३७५ ॥

क्योकि, उनका प्रमाण साठ है ।

अनाहारकामे अयोगिकेवली जिन संख्यातगुणित है ॥ ३७६ ॥

क्योकि, उनका प्रमाण दोग कम छद् सौ अर्थात् पांच सौ अठ्यानेच (५९८) है ।

१ अनाहारकामे संमत. स्तोत्रा सयोगचैवलिनः । स सि १, ८.

२ अयोगिकेवलिन संखेयगुणा । स. सि २, ८.

सासगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणां ॥ ३७७ ॥

को गुणगारो ? पल्लिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदेवमपढम-  
गममूलाणि ।

असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणां ॥ ३७८ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए अमंखेज्जदिभागो ।

मिच्छादिद्वी अणंतगुणां ॥ ३७९ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिदिह्मि अणंतगुणो, सिद्धेदिहि मि अणंतगुणो, अणंतणि  
सब्बजीवमिपढमगममूलाणि ।

असंजदसम्मादिद्विद्विणुणे सव्वथोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ ३८० ॥

द्वो ? संखेज्जजीवपमाणत्तादो ।

अनाहारकर्म अयोगिकम्मली जिनासे सासादनसम्यग्दष्टि जीव अमंख्यातगुणित  
हैं ॥ ३७७ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमत्ता असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके  
अमंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

अनाहारकर्म मागादनसम्यग्दष्टियौसे अमंयतसम्यग्दष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ३७८ ॥

गुणकार क्या है ? आवलिका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

अनाहारकर्म अमंयतसम्यग्दष्टियौसे मिथ्यादष्टि जीम अनन्तगुणित हैं ॥ ३७९ ॥  
गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धासि अनन्तगुणित, सिद्धीसे भी अनन्तगुणित  
राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

अनाहारकर्म अमंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दष्टि जीव सबसे कम  
हैं ॥ ३८० ॥

स्फोटि, अनाहारक उपशमसम्यग्दष्टि जीवींका प्रमाण संख्यात है ।

१ सासादनसम्यग्दष्टोऽसंखेयगुणा । स वि. १, ८.

२ अयतनसम्यग्दष्टोऽनसंखेयगुणा । स वि. १, ८

३ भिष्यादष्टोऽनन्तगुणाः । स वि. १, ८

खइयसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ३८१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जससया ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ३८२ ॥

को गुणगारो ? पल्लिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदेवमस्स  
पढमवगममूलाणि ।

( एव आहारगणा समत्ता । )

एवमप्पावहुगणगो चि समत्तमणिओगदारं ।

अनाहारकर्म असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दष्टियौसे क्षायिक-  
सम्यग्दष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३८१ ॥

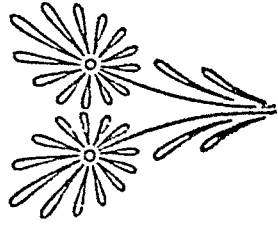
गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

अनाहारकर्म अमंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दष्टियौसे वेदकसम्य-  
ग्दष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३८२ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमत्ता असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

( इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई । )

इस प्रकार अल्पबहुत्वानुगम नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।







पुस्तक







पुस्तक



पद्य संख्या	पद्य	पद्य संख्या	पद्य	पद्य संख्या	पद्य
३६५	पमरमंजदा मंसंखजगुणा ।	३४७	३७४	खवा संखेज्जगुणा ।	३४८
३६६	मंजदांमंजदा असंखेज्जगुणा ।	"	३७५	अणाहारएसु सख्योवा	"
३६७	मानणमम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	"	"	मजोगिकेवली ।	"
३६८	मम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"	३७६	अजोगिकेवली संखेज्जगुणा ।	"
३६९	अंजदमम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	"	३७७	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	३४९
३७०	भिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ।	३४८	३७८	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	"
३७१	अंजदमम्मादिट्ठी-मंजदा-मंजद-पमर-अपमचसंजद-गुणे सम्मचपानद्दमोघं ।	"	३७९	भिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ।	"
३७२	एवं तिसु अद्वासु ।	"	३८०	असंजदसम्मादिट्ठीगुणे सख्योवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	"
३७३	सख्योवा उवसमा ।	"	३८१	सइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	३५०
		"	३८२	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	"

## २ अवतरण-गाथा-सूची

( भावप्ररूपणा )

क्रम संख्या	गाथा	पद्य	अन्यत्र कहा	क्रम संख्या	गाथा	पद्य	अन्यत्र कहा
१	अण्णिरुआरुआयो	१८६		९	णणणणाणं च तथा	१९१	
११	इगिनीस अट्ट तां णव	१९२		२	णामिणि धम्ममुचयारो	१८६	
१२	णकोत्तरपवट्ठो	१९३		१४	देसे सओचसमिण	१९४	
१०	परं ठाणं तिण्णिण विय-	१९२		१३	भिच्छत्ते दस भगा	"	
५	ओदरओ उवसमिओ	१८७		८	लद्धीओ सम्मत्तं	१९१	
४	रावए य रीणमोहे	१८६	पररंडा वेदनारंडा- गो जी. ६७.	३	सम्मचुण्णतीय वि	१८६	पदबंधा- वेदनारंडा, गो जी. ६६
६	गदि-लिंण-कसाया वि	१८९		७	सम्मत्तं चरित्तं दो	१९०	

## ३ न्यायोक्तियां

क्रम संख्या	न्याय	पद्य	क्रम संख्या	न्याय	पद्य
१	एगलोगणिदिट्ठाणमेगदेसो णाणुवट्ठदि ति णायादो ।	२५९	३	कारणाणुसारिणा कल्लेण होदव्वमिदि णायादो ।	२५०
२	जहा उहेसो तथा णिहेसो ।	४, ९, २५, २७, ७१, १९४, २७०	४	समुदाएसु पयट्ठाणं तवेग-देसे वि पउत्तिदंसणादो ।	१९९

## ४ ग्रन्थोल्लेख

## १ चूलियासुत्त

१ तं कथं णव्वदे ? 'पंचिदिपसु उवसामंतो गओवकंतिपसु उवसामेदि, गो ससुच्छिमेसु' ति चूलियासुत्तादो । ११८

## २ दव्वाणिओगद्दार

१ पदेहि पल्लिदोवममवहिरदि अंतोसुत्तेण कालेणेति दव्वाणिओगद्दार-सुत्तादो णव्वदि । २५२

२ आणद-पाणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिपट्ठि जाव असंजदसम्मादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, पल्लिदोवमसस असंखेज्जविभागो । पदेहि पल्लिदोवममवहिरदि अंतोसुत्तेण । अणुदिसादि जाव अवरइदविमाण-वासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, पल्लिदोवमसस असंखेज्जवि-भागो । पदेहि पल्लिदोवममवहिरदि अंतोसुत्तेणेति पदेण दव्वसुत्तेण । २८७

## ३ पाहुडसुत्त ( कपायप्राभुत्त )

१. चट्ठण्हं कसायाणसुत्तसंतस्स छम्मासमेत्तस्सेव सिद्धीदो । ण पाहुड-सुत्तेण वियहिचारो, तस्स भिण्णोवदेसत्तादो । ११२

२ तं पि कुदो णव्वदे ? 'णियमा मणुगसवीए' इदि सुत्तादो । २५६

## ४ सूत्रपुस्तक

१. केसु वि सुत्तपोत्थएसु पुरिसेवदस्संतं छम्मासा । १०६

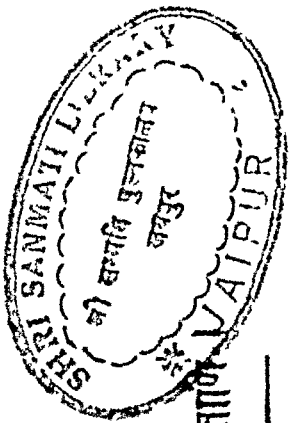


शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
नो आगमनासमान	१८४	सम्यक्त्व	६	सम्यक्त्व	६
नो आगमनान्तर	३	सम्यग्मिथ्यात्व	७	सम्यग्मिथ्यात्व	७
नो आगममिश्रष्टन्यमान	१८४	सर्वघातित्व	१९८	सर्वघातित्व	१९८
नो आगमष्टन्यापयदुल	२४२	सर्वघातिस्पर्धक	१९९, २३७	सर्वघातिस्पर्धक	१९९, २३७
नो आगमशासकयदुल	२४२	सर्वघाती	१९९, २०२	सर्वघाती	१९९, २०२
नो आगमसन्निवृत्तन्यमान	१८४	सर्वपरस्थानाल्पवहुत्व	२८९	सर्वपरस्थानाल्पवहुत्व	२८९
नो द्विष्टयावरण	२३७	सागरोपम	६	सागरोपम	६
		सागरोपमपृथक्त्व	१०	सागरोपमपृथक्त्व	१०
परमाने	७	सागरोपमशतपृथक्त्व	७२	सागरोपमशतपृथक्त्व	७२
परम्यानापयदुल	२८९	सातासातबंधपरवृत्ति	१३०, १४२	सातासातबंधपरवृत्ति	१३०, १४२
परिपाटी	२०	साधारणभाव	१९६	साधारणभाव	१९६
पल्लयोगम	७, ९	सान्तर	२५७	सान्तर	२५७
पारिणागिहमात्र	१८५, २०७, १९६, २३०	सान्निपातिभाव	१९३	सान्निपातिभाव	१९३
पुण्ड्रपरिवर्तन	५७	सासादनगुण	७	सासादनगुण	७
पुण्ड्रनिपाकित्य	२२२	सासादनपञ्चादागतमिथ्यावृष्टि	१०	सासादनपञ्चादागतमिथ्यावृष्टि	१०
पुण्ड्ररीपाकी	२२६	सासादनसम्यक्त्व	१६	सासादनसम्यक्त्व	१६
पुण्ड्रनैरोपशामनात्	१९०	सिद्धयत्काल	१०४	सिद्धयत्काल	१०४
पुण्ड्रोद्योप्यस्त्र	४२, ५२, ७२	सङ्गमाद्धा	१९	सङ्गमाद्धा	१९
प्रक्षेपसंक्षेप	२९३	सौचिकस्वरूप	२६७	सौचिकस्वरूप	२६७
प्रसंगगुण	३१७, ३३५				
प्रतिभाग	२७०, २९०				
प्रत्यय	१९४				
प्रत्येकतुल	३२३				
येधितुल	३२३				
भज्यस्त्र	१८८				
भा	१८६				
भायवद्	२२२				
भुग	६३				
महाजत	२७७				
मानोपशामनात्	१९०				
मायोपशामनात्	१९०				
मासपुण्यस्त्र	३२, ९३				

ह







### अंतरपरुवणासुताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	अंतराणुरगमेण द्रुमिहो णिदेसो, ओषेण आदेसेण य ।	१	११ उक्कस्सेण अद्रुपोगलपरियद्धं देवणं ।	१४
२	ओषेण मिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिंरं णिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	४	१२ चद्रुण्हद्रुवसामाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच जहण्णेण एगसमयं ।	१७
३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	५	१३ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	१८
४	उक्कस्सेण वे छागद्धिसागरोव-माणि देवणाणि ।	६	१४ एगजीवं पडुच जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	"
५	सासनसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा-दिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच जहण्णेण एगसमयं ।	७	१५ उक्कस्सेण अद्रुपोगलपरियद्धं देवणं ।	१९
६	उक्कस्सेण पलिदेवमस्स असं-रेज्जदिभागो ।	८	१६ चद्रुण्हं सवग-अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच जहण्णेण एगसमयं ।	२०
७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलि-दोवमस्स असंखेजदिभागो, अंतो-मुहुत्तं ।	९	१७ उक्कस्सेण छम्मासं ।	२१
८	उक्कस्सेण अद्रुपोगलपरियद्धं देवणं ।	९	१८ एगजीवं पडुच णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"
९	असंजदमस्मादिद्विप्पडुडि जाव अप्पमत्तजंजदा चि अंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	११	१९ सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"
१०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	"	२० एगजीवं पडुच णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"
"	"	"	२१ आदेसेण गदियाणुवादेण णिरय-गदीए गेरहएसु मिच्छादिद्वि-असं-जदसम्मादिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	२२

### ( २ ) अंतरपरुवणासुताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	२२	२२ उक्कस्सेण पलिदेवमस्स असंखे-ज्जदिभागो ।	२९
२३	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देवणाणि ।	२३	२३ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलि-दोवमस्स असंखेजदिभागो, अंतो-मुहुत्तं ।	"
२४	सासनसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा-दिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	२४	२४ उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वार्वास तेत्तीसं सागरोवमाणि देवणाणि ।	"
२५	उक्कस्सेण पलिदेवमस्स असंखे-ज्जदिभागो ।	"	२५ तिरिक्खेवगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	३१
२६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलि-दोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ।	२५	२६ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	"
२७	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देवणाणि ।	२६	२७ उक्कस्सेण तिण्णि पलिदेवमाणि देवणाणि ।	३२
२८	पढमादि जाव सत्तमीए पुढधीए गेरहएसु मिच्छादिद्वि-असंजद-सम्मादिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	२७	२८ सासनसम्मादिद्विप्पडुडि जाव संजदासंजदा चि ओवं ।	३३
२९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	"	२९ पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख-पञ्जत्त-पंचिदियतिरिक्ख-जोणिणीसु मिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	३७
३०	उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वार्वास तेत्तीसं सागरोवमाणि देवणाणि ।	"	३० एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	३८
३१	सासनसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा-दिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच जहण्णेण एगसमयं ।	२९	३१ उक्कस्सेण तिण्णि पलिदेवमाणि देवणाणि ।	"
"	"	"	३२ सासनसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा-दिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो	



सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
६७	संजदासंजदपहुडि जाव अप्यमत्त- संजदाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	५१	८२	एदं गदि पडुच्च अंतरं ।	५७
६८	एगजीवं पडुच्च जहणेण अतो- मुहुत्तं ।	"	८३	गुणं पडुच्च उभयदो वि गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
६९	उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ।	५२	८४	देवगदीए देसेसु मिच्छादिडि- असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
७०	चटुण्हमुधसामगाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	५३	८५	एगजीवं पडुच्च जहणेण अतो- मुहुत्तं ।	"
७१	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"	८६	उक्कस्सेण एककत्तीसं सागरो- वमाणि देहणाणि ।	५८
७२	एगजीवं पडुच्च जहणेण अतो- मुहुत्तं ।	५४	८७	सासणसम्मादिट्ठी-सम्मासिच्छा- दिट्ठीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	५९
७३	उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ।	"	८८	उक्कस्सेण पलिदोवमसस असंखे- ज्जदिभागो ।	"
७४	चटुण्हं खवा अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	५५	८९	एगजीवं पडुच्च जहणेण पलिदो- वमसस असंखेज्जदिभागो, अतो- मुहुत्तं ।	"
७५	उक्कस्सेण छम्मासं, वासपुधत्तं ।	"	९०	उक्कस्सेण एककत्तीसं सागरो- वमाणि देहणाणि ।	६०
७६	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	५६	९१	मवणवासिय-वाणवेतर-जोदिसिय- सोधम्मीसाणपहुडि जाव सदार- सहस्सारकूपवासियदेसेसु मिच्छा- दिट्ठी-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	६१
७७	सजोगिकेवली ओध ।	"	९२	एगजीवं पडुच्च जहणेण अतो- मुहुत्तं ।	"
७८	मणुमअपज्जत्ताणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एवत्तमयं ।	"			
७९	उक्कस्सेण पलिदोवमसस असंखे- ज्जदिभागो ।	"			
८०	एगजीवं पडुच्च जहणेण सुदा- भवग्गहणं ।	"			
८१	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- योगलपरियट्ठं ।	५७			

पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३८	५५	एदं गदि पडुच्च अंतरं ।	४६
३९	५६	गुणं पडुच्च उभयदो वि गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
"	५७	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त- मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
४०	५८	एगजीवं पडुच्च जहणेण अतो- मुहुत्तं ।	४७
४१	५९	उक्कस्सेण तिण्णिण पलिदोवमाणि देहणाणि ।	"
४२	६०	सासणसम्मादिट्ठी-सम्मासिच्छा- दिट्ठीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	४८
"	६१	उक्कस्सेण पलिदोवमसस असंखे- ज्जदिभागो ।	"
४३	६२	एगजीवं पडुच्च जहणेण पलि- दोवमसस असंखेज्जदिभागो, अतोमुहुत्तं ।	"
"	६३	उक्कस्सेण तिण्णिण पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणभहियाणि ।	४९
४४	६४	असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	५०
४५	६५	एगजीवं पडुच्च जहणेण अतो- मुहुत्तं ।	"
"	६६	उक्कस्सेण तिण्णिण पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणभहियाणि ।	"



परिशिष्ट	( ७ )	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
जीवं पठुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	७९	८५	१४७	ओषं । एगजीवं पठुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	
१३७ एगजीवं पठुच्च जहण्णेण सुदा-भवग्गहणं ।	८०	"	१४८	उक्कस्सेण वे सागरोवमसह-स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहि-याणि, वे सागरोवमसहस्साणि देवणाणि ।	
१३८ उक्कस्सेण अद्दुहज्जयोग्गल-परियटं ।	"	८६	१४९	चटुण्हं खवा अजोगिकेवली ओषं ।	
१३९ तसकाहय-तसकाहयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी ओषं ।	"	"	१५०	सजोगिकेवली ओषं ।	
१४० सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छा-दिट्ठीणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पठुच्च ओषं ।	"	"	१५१	तसकाहयअपज्जत्तणं पंचिदिय-अपज्जत्तभंगो ।	
१४१ एगजीवं पठुच्च जहण्णेण पलि-दोयमसस असरेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ।	८१	"	१५२	एदं कायं पठुच्च अंतरं । गुणं पठुच्च उभयदो वि गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	८७
१४२ उक्कस्सेण वे सागरोवमसह-स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहि-याणि, वे सागरोवमसहस्साणि देवणाणि ।	"	"	१५३	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छा-दिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदा-संजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजद-सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पठुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	
१४३ अमंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पठुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	८२	"	१५४	सासणसम्मादिट्ठि सम्माभिच्छा-दिट्ठीणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पठुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	
१४४ एगजीवं पठुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	८३	"	१५५	उक्कस्सेण पलिदोवमसस असंसे-ज्जदिभागो ।	
१४५ उक्कस्सेण वे सागरोवमसह-स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहि-याणि, वे सागरोवमसहस्साणि देवणाणि ।	"	"	१५६	एगजीवं पठुच्च गत्थि अंतरं कालादो होदि, गाणाजीवं पठुच्च	

( ८ )	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
गिरंतरं ।	८८	१५७	चटुण्हमुवसागाणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पठुच्च ओषं ।	९१	णीणं मणजोगिभंगो ।	१७०	वेउच्चियमिस्सकायजोगीसु मि-च्छादिट्ठीणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पठुच्च जह-ण्णेण एगसमयं ।
१५८ एगजीवं पठुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	८९	१५९	चटुण्हं खवाणमोषं ।	९२	उक्कस्सेण वासस मुहुत्तं ।	१७१	उक्कस्सेण वासस मुहुत्तं ।
१६० ओरालियमिस्सकायजोगीसु मि-च्छादिट्ठीणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणेगजीवं पठुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"	१६१	सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केव-चिं कालादो होदि, गाणाजीवं पठुच्च ओषं ।	"	आहार-कायजोगीसु	१७४	आहार-मिस्सकायजोगीसु पमत्तसंज-दाणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पठुच्च जह-ण्णेण एगसमयं ।
१६२ एगजीवं पठुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	९०	१६३	असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केव-चिं कालादो होदि, गाणा-जीवं पठुच्च जहण्णेण एग-समयं ।	"	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	१७५	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।
१६४ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"	१६५	एगजीवं पठुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"	वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छा-दिट्ठीणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पठुच्च गत्थि अंतरं गिरंतरं ।	१७८	वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छा-दिट्ठीणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पठुच्च गत्थि अंतरं गिरंतरं ।
१६६ सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पठुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	"	१६७	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"	एगजीवं पठुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	१७९	एगजीवं पठुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।
१६८ एगजीवं पठुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"	१६९	वेउच्चियत्रायजोगीसु चटुट्ठा-	"	उक्कस्सेण पणवण्ण पलिदोव-माणि देवणाणि ।	१८०	उक्कस्सेण पणवण्ण पलिदोव-माणि देवणाणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२०५	पटुच्च जहणेण एगसमयं ।	१०५	२१७	उक्कस्सेण अंतोसुहुत्तं ।	११०
२०६	उक्कस्सेण वासं सादिरयं ।	१०६	२१८	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था- णमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	"
२०७	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"	२१९	उक्कस्सेण वासपुघत्तं ।	"
२०८	णुंसयवेदएसु मिच्छादिद्वीण- मंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	१०६	२२०	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं ।	१११
२०९	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुत्तं ।	१०७	२२१	अणियहिखवा सुहुमखवा रणीणकसायवीदरागछदुमत्था अजोगिकेवली ओघं ।	"
२१०	उक्कस्सेण तेचीसं सागरोव- माणि देखणाणि ।	"	२२२	सजोगिकेवली ओघं ।	"
२११	सासणसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अणियहिउवसामिदो चि मूलोघं ।	"	२२३	कसायाणुवादेण कोधकसाह- माणकसाह-मायकसाह-लोह- कसाईसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा चि मणजोगिभंगो ।	"
२१२	दोण्हं खवाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	१०९	२२४	अकसाईसु उवसंतकसायवीद- रागछदुमत्थाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	११३
२१३	उक्कस्सेण वासपुघत्तं ।	"	२२५	उक्कस्सेण वासपुघत्तं ।	"
२१४	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"	२२६	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"
२१५	अवगदेदएसु अणियहिउव- सम-सुहुमउवसमाणमंतरं केव- चिंरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च जहणेण एग- समयं ।	"	२२७	खीणकसायवीदरागछदुमत्था अजोगिकेवली ओघं ।	"
२१६	उक्कस्सेण वासपुघत्तं ।	"	२२८	सजोगिकेवली ओघं ।	"
२१७	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुत्तं ।	११०	२२९	गाणाणुवादेण मदिअणाणि- सुदअणाणि—विभंगणाणीसु मिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिंरं	११०

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१८१	सागणमम्मादिद्वि-मम्माभिच्छा- दिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च ओघं ।	१००	१९३	पुरिसवेदएसु मिच्छादिद्वी ओघं ।	१००
१८२	एगजीवं पडुच्च जहणेण पत्थिदोवमस असंसेज्जदि- भागो, अंतोसुहुत्तं ।	१०१	१९४	सागणमम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा- दिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	१०१
१८३	उक्कस्सेण पल्लिदोवमसद- पुघत्तं ।	"	१९५	उक्कस्सेण पल्लिदोवमस असंसेज्जदिभागो ।	"
१८४	अपमत्तजदाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"	१९६	एगजीवं पडुच्च जहणेण पल्लिदोवमस असंसेज्जदि- भागो, अंतोसुहुत्तं ।	"
१८५	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुत्तं ।	"	१९७	उक्कस्सेण सागरोवमसद- पुघत्तं ।	"
१८६	उक्कस्सेण पल्लिदोवमसद- पुघत्तं ।	"	१९८	असंजदसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अपमत्तजदाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	१०२
१८७	दोण्हं युरासमाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	"	१९९	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुत्तं ।	"
१८८	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुत्तं ।	१०३	२००	उक्कस्सेण सागरोवमसद- पुघत्तं ।	१०३
१८९	उक्कस्सेण पल्लिदोवमसद- पुघत्तं ।	"	२०१	दोण्हं युरासमाणमंतरं केव- चिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च ओघं ।	१०४
१९०	दोण्हं समाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	"	२०२	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुत्तं ।	"
१९१	उक्कस्सेण वासपुघत्तं ।	"	२०३	उक्कस्सेण सागरोवमसद- पुघत्तं ।	"
१९२	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"	२०४	दोण्हं खवाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं	"

## परिशिष्ट ( ११ )

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२३०	कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं । ११४		२४१	चटुण्हसुवसामगणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । १२२	
२३१	सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च ओधं ।		२४२	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	
२३२	एगजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं ।		२४३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	
२३३	आभिणिवोहिय-सुद-ओहि- गाणीसु असंजदसम्मादिट्ठीण- मंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं ।		२४४	उक्कस्सेण छावट्टिसागरो- वमाणि सादिरैयाणि ।	
२३४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	११५	२४५	चटुण्हं खवाणमोधं । णव्वरि विसेसो ओधिणाणीसु खवाणं वासपुधत्तं । १२३	
२३५	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं		२४६	मणपज्जवणाणीसु पमत्त- अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं ।	
२३६	संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं । ११६		२४७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	
२३७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।		२४८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	
२३८	उक्कस्सेण छावट्टिसागरोव- माणि सादिरैयाणि ।		२४९	चटुण्हसुवसामगणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । १२५	
२३९	पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं । ११९		२५०	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	
२४०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१२०	२५१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	
२४१	उक्कस्सेण तेचीवं सागरोवमाणि सादिरैयाणि ।		२५२	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं ।	
			२५३	चटुण्हं खवाणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । १२७	
			२५४	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	

## ( १२ ) अतरपरुवणसुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२५५	एगजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं गिरंतरं । १२७		२७०	कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं । १३१	
२५६	केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओधं ।		२७१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	
२५७	अजोगिकेवली ओधं ।		२७२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	
२५८	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्त- संजदप्पहुट्टि जाव उवसंत- कसायवीदिरागछटुमत्था चि मणपज्जवणाणिमंगो । १२८		२७३	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सु- हुमसांपराइयउवसमाणमंतरं के- वचिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं । १३२	
२५९	चटुण्हं खवा अजोगिकेवली ओधं ।		२७४	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	
२६०	सजोगिकेवली ओधं ।		२७५	एगजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं ।	
२६१	सामाहय-छेदोवट्टावणसुद्धि- संजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाण- मंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं ।		२७६	खवाणमोधं ।	
२६२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।		२७७	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइमंगो ।	
२६३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	१२९	२७८	संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं । १३३	
२६४	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।		२७९	असंजदेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं ।	
२६५	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।		२८०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	
२६६	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	१३०	२८१	उक्कस्सेण तेचीवं सागरोव- माणि देखणाणि । १३४	
२६७	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं ।		२८२	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मादिट्ठि- विट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमोधं ।	
२६८	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	१३१			
२६९	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्ता- पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं				



सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३५५	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरो- वमाणि सादिरियाणि ।	"	३७०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१६९
३५६	उवससम्मदिट्ठीसु असंजद- सम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिंरं	"	३७१	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
	कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	१६५	३७२	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था- णमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	"
३५७	उक्कस्सेण सत्त रादिदियाणि ।	"	३७३	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"
३५८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१६६	३७४	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
३५९	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	१६६	३७५	सासणसम्मादिट्ठी—सम्मा — मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	१७०
३६०	संजदासंजदाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	"	३७६	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असेय- ज्जदिसागो ।	"
३६१	उक्कस्सेण चोदस रादिदियाणि ।	"	३७७	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१७१
३६२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१६७	३७८	मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
३६३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३७९	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीणमोधं ।	"
३६४	पमत्त—अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	"	३८०	सासणसम्मदिट्ठीप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था त्ति पुरिसेवदंभंगो ।	१७२
३६५	उक्कस्सेण पण्णारस रादि- दियाणि ।	"	३८१	चदुण्हं रवाणमोधं ।	"
३६६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१६८	३८२	असण्णीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
३६७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"			
३६८	त्तिण्हसुवसागाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	"			
३६९	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३२९	अमयासिदियाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१५४	३४२	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरो- वमाणि सादिरियाणि ।	१५७
३३०	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"	३४३	चदुण्हसुवसागाणमंतरं केव- चिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	१६०
३३१	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मदिट्ठीणमंतरं केव- चिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१५५	३४४	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"
३३२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३४५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
३३३	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं ।	"	३४६	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरो- वमाणि सादिरियाणि ।	"
३३४	संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था ओधिणाणिभंगो ।	"	३४७	चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओधं ।	१६१
३३५	चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओधं ।	१५६	३४८	सजोगिकेवली ओधं ।	"
३३६	सजोगिकेवली ओधं ।	"	३४९	वेदरासम्मदिट्ठीसु असंजद- सम्मदिट्ठीणं सम्मादिट्ठीभंगो ।	१६२
३३७	सइयसम्मदिट्ठीसु असंजद- सम्मदिट्ठीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"	३५०	संजदासंजदाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
३३८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३५१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
३३९	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं ।	"	३५२	उक्कस्सेण छावडिसागरोवमाणि देखणाणि ।	"
३४०	संजदासंजद-पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१५७	३५३	पमत्त—अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१६३
३४१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१५४	३५४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१६४

पृष्ठ संख्या	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३८३	एराजीवं पटुच्च गलिय अंतरं, गिरंतरं ।	१७२	अंतोमुहुत्तं ।	१७५
३८४	आहाराणुवोदण आहाराएसु मिच्छादिद्वीणमोघं ।	१७३	ज्जदिभागो असखेज्जाओ ओसपिणि-उस्सपिणीओ ।	"
३८५	साणसम्मदिट्ठि-सम्मामिच्छा-दिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणा-होदि, गाणाजीवं पटुच्च ओघं ।	१७४	चटुण्हमुवसामाणमंतरं केव-चिरं कालादो होदि, गाणा-जीवं पटुच्च ओघंभंगो ।	१७७
३८६	एराजीवं पटुच्च जहण्णेण वलिदानम्म असखेज्जदि-भागो, अंतोमुहुत्तं ।	"	अंतोमुहुत्तं ।	"
३८७	उक्कस्सेण अंगुलस्स असखे-ज्जदिभागो, असखेज्जासंखे-ज्जाओ ओसपिणि-उस्स-पिणीओ ।	"	उक्कस्सेण अंगुलस्स असखे-ज्जदिभागो असखेज्जासंखे-ज्जाओ ओसपिणि-उस्सपि-णीओ ।	"
३८८	असंजदसम्मदिट्ठिप्पहुडि जाव अपमचसंजदणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पटुच्च गलिय अंतरं, गिरंतरं ।	१७४	चटुण्हं खवाणमोघं ।	१७८
३८९	एराजीवं पटुच्च जहण्णेण	१७५	सजोगिकेवली ओघं ।	"
		१७६	अणाहारा कम्मइयकायजोगि-भंगो ।	"
		१७७	गवरि विसेसा, अजोगि-केवली ओघं ।	१७९

## भावपरुवणासुत्ताणि ।

पृष्ठ संख्या	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	भाणुगमेण दुमिहो गिदसो, ओघेण आदेसेण य ।	१८३	भावो, परिणामिओ भावो ।	१९६
२	ओघेण मिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, ओदइओ भावो ।	१९४	सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, सओवसमिओ भावो ।	१९८
३	सासणसम्मदिट्ठि त्ति को		असंजदसम्मदिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खइओ	

पृष्ठ संख्या	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
६	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	१९९	वा सओवसमिओ वा भावो ।	२१०
७	संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्त-संजदा त्ति को भावो, खओव-समिओ भावो ।	२०१	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२११
८	चटुण्हमुवसमा त्ति को भावो, ओवसमिओ भावो ।	२०४	संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्त-संजदा त्ति को भावो, खओव-समिओ भावो ।	२१२
९	चटुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति को भावो, खइओ भावो ।	२०५	गवरि विसेसो, पंचदिय-तिरिक्खजोणिणीसु असंजद-सम्मदिट्ठि त्ति को भावो, ओवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ।	२१२
१०	आदेसेण गइयाणुवोदण गिरय-गइए गेरइएसु मिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, ओदइओ भावो ।	२०६	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२१३
११	सासणसम्मदिट्ठि त्ति को भावो, परिणामिओ भावो ।	२०७	मणुसगदीए मणुस-मणुसपजत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	"
१२	सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो ।	२०८	देवगदीए देवेषु मिच्छादिट्ठि-प्पहुडि जाव असंजदसम्मदिट्ठि त्ति ओघं ।	२१४
१३	असंजदसम्मदिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खइओ वा सओवसमिओ वा भावो ।	"	भवणवासिय-वाणवैतर-जोदि-सियेदेवा देवीओ, सोधम्मसाण-कप्पवासियेदधीओ च मिच्छा-दिट्ठी सासणसम्मदिट्ठी सम्मा-मिच्छादिट्ठी ओघं ।	"
१४	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२०९	असंजदसम्मदिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा सओवसमिओ वा भावो ।	२१५
१५	एवं पढमाए पुढवीए गेरइयाणं ।	"	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२१५
१६	त्रिदियाए जाव सचमीए पुढवीए गेरइएसु मिच्छादिट्ठि-सासण-सम्मदिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीण-मोघं ।	२१०	सओवसमिओ वा भावो ।	"
१७	असंजदसम्मदिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खओवसमिओ		ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२१५
			सओवसमिओ वा खओवसमिओ	



सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३७	गोत्रप्रतिभाषणमाश्रित्यदेसु मिच्छादिद्विप्पह्णुडि जात असंजदसम्मादिद्वि ति ओघं ।	२१५	रइओ भावो ।	२२९
२८	अणुदिमादि जाव सव्वड्ढसिद्धिनिमाणमासियदेवेसु असंजदसम्मादिद्वि ति को भावो, ओयममिओ ना रइओ वा सओममिओ ना भावो ।	"	वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिद्विप्पह्णुडि जाव असंजदसम्मादिद्वि ति ओघं ।	"
२९	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२१६	नेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वि सासणसम्मादिद्वि असंजदसम्मादिद्वि ओघं ।	२२०
३०	इंदियाणुवादेण पंचिदियपजसएसु मिच्छादिद्विप्पह्णुडि जाव अजोगिकेवल ति ओघं ।	"	आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसजदा ति को भावो, सओममिओ भावो ।	"
३१	कायाणुवादेण तसकाइयत्तसकाइयपजसएसु मिच्छादिद्विप्पह्णुडि जाव अजोगिकेवल ति ओघं ।	२१७	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिद्वि सासणसम्मादिद्वि असंजदसम्मादिद्वि सजोगिकेवली ओघं ।	२२१
३२	जोगाणुवादेण पंचमणजोगिपंचवच्चिजोगि-कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिद्विप्पह्णुडि जाव सजोगिकेवल ति ओघं ।	"	वेदाणुवादेण इत्थियेद-पुरिसवेदणसंयवेदएसु मिच्छादिद्विप्पह्णुडि जाव अणियच्चि ओघं ।	"
३३	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वि—सासणसम्मादिद्वीणं ओघं ।	२१८	अवगदेवएसु अणियच्चिप्पह्णुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ।	२२२
३४	असंजदनसम्मादिद्वि ति को भावो, सइओ ना सओममिओ वा भावो ।	"	कसायाणुवादेण कोघकसाइमाणकसाइ-मायकसाइ-लोमकसाइसु मिच्छादिद्विप्पह्णुडि जाव सुहुमसापराइयउवसमा सवा ओघं ।	२२३
३५	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२१९	अकसाईसु चट्टुडणी ओघं ।	"
३६	सचेगिकेवल ति को भावो,	"	गाणाणुवादेण मदियणाणिसुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु मिच्छादिद्वि सासणसम्मादिद्वि ओघं ।	२२४

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४६	आभिणिवोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिद्विप्पह्णुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ।	२२५	५७ ओहिदंसणी ओधिणाणिमंगो ।	२२९
४७	मणपज्जवणणीसु पमत्तसंजदप्पह्णुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ।	"	५८ केवलदंसणी केवलणाणिमंगो ।	"
४८	केवलणाणीसु सजोगिकेवली (अजोगिकेवली) ओघं ।	"	५९ लेससाणुवादेण किण्हलेस्सियणीलेस्सिय-काउलेस्सिएसु चट्टुडणी ओघं ।	"
४९	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पह्णुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ।	२२७	६० तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिद्विप्पह्णुडि जाव अप्पमत्तसंजदा ति ओघं ।	"
५०	सामाइयछेदेवद्ववाणसुदिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पह्णुडि जाव अणियच्चि ति ओघं ।	"	६१ सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिद्विप्पह्णुडि जाव सजोगिकेवल ति ओघं ।	२३०
५१	परिहारसुदिसंजदेसु पमत्त-अपमत्तसंजदा ओघं ।	"	६२ भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिद्विप्पह्णुडि जाव अजोगिकेवल ति ओघं ।	"
५२	सुहुमसांपराइयसुदिसंजदेसु सुहुमसांपराइया उवसमा सवा ओघं ।	"	६३ अभवसिद्धिय ति को भावो, परिणामिओ भावो ।	"
५३	जहाक्खादविहारसुदिसंजदेसु चट्टुडणी ओघं ।	२२८	६४ सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिद्वीसु असंजदसम्मादिद्विप्पह्णुडि जाव अजोगिकेवल ति ओघं ।	२३१
५४	संजदासंजदा ओघं ।	"	६५ खइयसम्मादिद्वीसु असंजदसम्मादिद्वि ति को भावो, खइओ भावो ।	"
५५	असंजदेसु मिच्छादिद्विप्पह्णुडि जाव असंजदसम्मादिद्वि ति ओघं ।	"	६६ खइयं सम्मत्तं ।	"
५६	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीअचक्खुदंसणीसु मिच्छादिद्विप्पह्णुडि जाव खीणकसायवीदरागउदुमत्था ति ओघं ।	"	६७ ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२३२
		"	६८ संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदा ति को भावो, सओममिओ भावो ।	"
		"	६९ खइयं सम्मत्तं ।	२३३

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
७०	चतुष्टयमुत्तमा चि क्रो भावो, आनमभियो भावो ।	२३३	८२ संजदासंजद-पमत्त-अप्यमत्त-संजदा चि क्रो भावो, खओव-समियो भावो ।	२३६
७१	सहयं सम्मत्तं ।	"	८३ उवसमियं सम्मत्तं ।	"
७२	चतुष्टयं सत्ता मजोगिकेवली अजागिकेवल्लि चि क्रो भावो, सइओ भावो ।	"	८४ चटुण्हसुवसमा चि क्रो भावो, उवसमियो भावो ।	"
७३	सहयं सम्मत्तं ।	२३४	८५ उवममियं सम्मत्तं ।	"
७४	वेदयसम्मादिह्दीसु असंजदसम्मा-दिह्दि चि क्रो भावो, सओव-समियो भावो ।	"	८६ सासणसम्मादिह्दी ओधं ।	"
७५	सओवसमियं सम्मत्तं ।	"	८७ सम्माभिच्छादिह्दी ओधं ।	२३७
७६	ओट्टण्ण भायेण पुणो असंजदो ।	२३५	८८ मिच्छादिह्दी ओधं ।	"
७७	संजदासंजद-पमत्त-अप्यमत्त-संजदा चि क्रो भावो, सओव-समियो भावो ।	"	८९ सणियाशुवादेण सण्णीसु मिच्छा-दिह्दिप्पहुडि जाव सीणकसाय-चीदरागलुदुमत्था चि ओधं ।	"
७८	सओवसमियं सम्मत्तं ।	"	९० असण्णि चि क्रो भावो, ओदइओ भावो ।	"
७९	उत्तममयम्मादिह्दीसु अमंजद-सम्मादिह्दि चि क्रो भावो, उव-समियो भावो ।	"	९१ आहारशुवादेण आहारएसु मिच्छादिह्दिप्पहुडि जाव सजोगि-केवल्लि चि ओधं ।	२३८
८०	उत्तसमियं सम्मत्तं ।	"	९२ अणहारणं कम्मसहयभंगो ।	"
८१	ओट्टण्ण भायेण पुणो असंजदो ।	२३६	९३ णवरि विसेसो, अजोगिकेवल्लि चि क्रो भावो, सइओ भावो ।	"

### अपपावहुगपरूवणासुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	अपपावहुआशुमेण दुविहो णिदिमो, ओधेण आदेसेण य ।	२४१	२ ओधेण तिसु अद्दासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	२४३

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३	उवसंतकसायचीदरागलुदुमत्था तत्तिया चेष ।	२४५	२२ त्थोवा उवससयसम्मादिह्दी ।	२५८
४	खवा संसेज्जगुणा ।	"	२३ खइयसम्मादिह्दी संसेज्जगुणा ।	"
५	सीणकसायचीदरागलुदुमत्था त-त्तिया चेष ।	२४६	२३ वेदगसम्मादिह्दी संसेज्जगुणा ।	"
६	सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेष ।	"	२४ एवं तिसु वि अद्दासु ।	"
७	सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संसेज्जगुणा ।	२४७	२५ सब्बत्थोवा उवसमा ।	२६०
८	अपपत्तंसंजदा अवखवा अणुव-समा संसेज्जगुणा ।	"	२६ खवा संसेज्जगुणा ।	"
९	पमत्तंसंजदा संसेज्जगुणा ।	"	२७ आदेसेण गदियाणुवादेण णिरय-गदीए णेरइएसु सब्बत्थोवा सासणसम्मादिह्दी ।	२६१
१०	संजदासंजदा असंसेज्जगुणा ।	२४८	२८ सम्माभिच्छादिह्दी संसेज्जगुणा ।	"
११	सासणसम्मादिह्दी असंसेज्जगुणा ।	"	२९ असंजदसम्मादिह्दी असंसेज्ज-गुणा ।	२६२
१२	सम्माभिच्छादिह्दी संसेज्जगुणा ।	२५०	३० मिच्छादिह्दी असंसेज्जगुणा ।	"
१३	असंजदसम्मादिह्दी असंसेज्ज-गुणा ।	२५१	३१ असंजदसम्मादिह्दिह्दिणे सब्ब-त्थोना उवससम्मादिह्दी ।	२६३
१४	मिच्छादिह्दी अणंतगुणा ।	२५२	३२ खइयसम्मादिह्दी असंसेज्ज-गुणा ।	"
१५	असंजदसम्मादिह्दिह्दिणे सब्ब-त्थोवा उवससम्मादिह्दी ।	२५३	३३ वेदगसम्मादिह्दी असंसेज्जगुणा ।	२६४
१६	सइयसम्मादिह्दी असंसेज्जगुणा ।	"	३४ एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ।	"
१७	वेदगसम्मादिह्दी असंसेज्जगुणा ।	२५६	३५ विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु सब्बत्थोवा सासण-सम्मादिह्दी ।	२६५
१८	संजदासंजदङ्गणे सब्बत्थोवा सइयसम्मादिह्दी ।	"	३६ सम्माभिच्छादिह्दी संसेज्जगुणा ।	"
१९	उवससम्मादिह्दी असंसेज्ज-गुणा ।	२५७	३७ असंजदसम्मादिह्दी असंसेज्ज-गुणा ।	२६६
२०	वेदगसम्मादिह्दी असंसेज्जगुणा ।	"	३८ मिच्छादिह्दी असंसेज्जगुणा ।	"
२१	पमत्तापमत्तंसंजदङ्गणे सब्ब-		३९ असंजदसम्मादिह्दिह्दिणे सब्ब-त्थोवा उवससम्मादिह्दी ।	२६७
			४० वेदगसम्मादिह्दी असंसेज्जगुणा ।	"

पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	पृष्ठ	( २३ )	पृष्ठ
४१	तिरिक्त्सगदीए	तिरिक्त्स-पंचि- दियतिरिक्त्स-पंचिदियपञ्जत- तिरिक्त्स-पंचिदियजोणिणिसु सञ्चत्योना संजदासंजदा ।	२६८	५३	मणुसगदीए मणुस-मणुसपञ्जत- मणुसिणीसु तिसु अद्वासु उव- समा पमसणेण तुल्ला थोवा ।	२७३
४२	सागणसम्मादिट्ठी	असंखेज्ज- गुणा ।	"	५४	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिया चेव ।	"
४३	सम्माभिच्छादिट्ठिणे	संखेज्ज- गुणा ।	"	५५	खवा संखेज्जगुणा ।	२७४
४४	असंजदसम्मादिट्ठी	असंखेज्ज- गुणा ।	"	५६	सीणकसायवीदरागछदुमत्था त- त्तिया चेव ।	"
४५	भिच्छादिट्ठी अणंतगुणा, मिच्छा- दिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	२६९	"	५७	सजोगिकेवली अजोगिकेवली प्वेसणेण दो वि तुल्ला, तत्तिया चेव ।	"
४६	असंजदसम्मादिट्ठिणाणे	सञ्च- त्योना उवसमसम्मादिट्ठी ।	"	५८	सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ।	"
४७	सइयसम्मादिट्ठी	असंखेज्ज- गुणा ।	२७०	५९	अप्यमत्तसंजदा अक्त्त्वा अणु- वसमा संखेज्जगुणा ।	२७५
४८	वेदगसम्मादिट्ठी	असंखेज्ज- गुणा ।	२७१	६०	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	"
४९	संजदासंजदहाणे	सञ्चत्योवा उवसमसम्माइड्ठी ।	२७२	६१	संजदासंजदा संखेज्जगुणा ।	"
५०	वेदगसम्मादिट्ठी	असंखेज्ज- गुणा ।	"	६२	सासणसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"
५१	गवरि विमसो, पंचिदिय- तिरिक्त्सजोणिणिसु	असंजद- सम्मादिट्ठि-संजदासंजदहाणे	"	६३	सम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७६
५२	वेदगसम्मादिट्ठी	असंखेज्ज- गुणा ।	"	६४	असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"
				६५	भिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, भिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"
				६६	असंजदसम्मादिट्ठिणाणे	सञ्च- त्योना उवसमसम्मादिट्ठी ।
				६७	सइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७७
				६८	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"
				६९	संजदासंजदहाणे	सञ्चत्योवा सइयसम्मादिट्ठी ।
				७०	उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"

( २४ )	सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	पृष्ठ	अप्यावहुगपरूपासुत्ताणि	पृष्ठ
७१	वेदगसम्मादिट्ठी	संखेज्जगुणा ।	८९	२७७	सोहम्मीसाण जाव सदर-सह- स्सारकपवासियदेवेषु जहा देवगहंभंगो ।	२८२
७२	पमत्त-अप्यमत्तसंजदहाणे	सञ्च- त्योवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	९०	२७८	आणद जाव णवगेवज्जविमाण- वासियदेवेषु सञ्चत्योवा सासणसम्मादिट्ठी ।	३८३
७३	खइयसम्मादिट्ठी	संखेज्जगुणा ।	"	"	"	"
७४	वेदगसम्मादिट्ठी	संखेज्जगुणा ।	"	"	"	"
७५	गवरि विमसो, मणुसिणीसु	असंजद-संजदासंजद-पमत्तापमत्त- संजदहाणे सञ्चत्योवा खइय- सम्मादिट्ठी ।	९१	"	सम्माभिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	"
७६	उवसमसम्मादिट्ठी	संखेज्जगुणा ।	"	"	असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"
७७	वेदगसम्मादिट्ठी	संखेज्जगुणा ।	९४	२७९	असंजदसम्मादिट्ठिणाणे सञ्च- त्योवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	२८४
७८	एवं तिसु अद्वासु ।	"	९५	"	सइयसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	"
७९	सञ्चत्योवा उवसमा ।	२७९	"	"	"	"
८०	खवा संखेज्जगुणा ।	२८०	"	"	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२८५
८१	देवगदीए देवेषु	सञ्चत्योवा सासणसम्मादिट्ठी ।	"	"	अणुदिसादि जाव अवराइद- विमाणवासियदेवेषु असंजद- सम्मादिट्ठिणाणे सञ्चत्योवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	"
८२	सम्माभिच्छादिट्ठी	संखेज्जगुणा ।	"	"	"	"
८३	असंजदसम्मादिट्ठी	असंखेज्ज- गुणा ।	९८	"	खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	"
८४	भिच्छादिट्ठी	असंखेज्जगुणा ।	९९	"	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"
८५	असंजदसम्मादिट्ठिणाणे	सञ्च- त्योवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	१००	"	सञ्चत्योवा उवसमसम्मादिट्ठिणाणे सञ्च- असंजदसम्मादिट्ठिणाणे सञ्च- त्योवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	२८६
८६	खइयसम्मादिट्ठी	असंखेज्जगुणा ।	"	"	"	"
८७	वेदगसम्मादिट्ठी	असंखेज्जगुणा ।	१०१	"	सइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"
८८	भणणवासिय-चाणवत्तर-जोदि- सियदेवा देवीओ सोधम्मीसाण- कपवासियदेवीओ च सत्ताए पुढवीए भंगो ।	"	१०२	"	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"
			१०३	"	इदियाणुचोदेण पंचिदिय-पंचि- दियपञ्जत्तएसु ओध । गवरि भिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	२८८

मूल मन्त्रा	मूल	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१०४ त्रयाणु तान्त्र तम त्राह्य तम- राइयपत्रतएसु श्रोत्रं । णपरि मिच्छादिद्वी अर्धवेज्जगुणा । २८९			मंजद--पमत्तपमत्तसंजदद्विणे मम्मत्तपावहुअमोवं ।	२९३
१०५ जोगाणुदेण पंनमणजोगि- पद्वानिजोगि--कायजोगि- ओगालिय तायजोगीसु तीसु अद्रासु पवेसणेण तुह्वा थोवा । २९०			११९ एवं तिसु अद्रासु । १२० मन्वत्थोवा उवममा । १२१ खवा संरोज्जगुणा । १२२ ओगालियमिस्सकायजोगीसु सन्वत्थोवा मजोगिकेवली	" " "
१०६ उगंतकरुमयपीदरागछदुमत्था नेत्तिया चेत्त ।			१२३ असंजदसम्मादिद्वी संरोज्ज- गुणा ।	"
१०७ वत्ता संरोज्जगुणा ।			१२४ सासनसम्मादिद्वी असंरोज्ज- गुणा ।	"
१०८ गीणरुसायदिदरागछदुमत्था नेत्तिया चेत्त । २९१			१२५ मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ।	२९५
१०९ गजोवि ताली पवेसणेण तत्तिया चेत्त ।			१२६ अणंजदसम्मादिद्विद्विणे सन्व- त्थोवा राइयसम्मादिद्वी ।	"
११० सजोगिकेवली अदं पडुच्च संरोज्जगुणा ।			१२७ वेदगसम्मादिद्वी संरोज्जगुणा ।	"
१११ अपमत्तसंजदा अरुसना अणु- मगमा संरोज्जगुणा ।			१२८ वेज्जियकायजोगीसु देवगदि- भणो ।	"
११२ पमत्तसंजदा संरोज्जगुणा ।			१२९ वेज्जियमिस्सकायजोगीसु सन्वत्थोवा सासनसम्मादिद्वी । २९६	"
११३ मंजदासंजदा अर्धवेज्जगुणा । २९२			१३० असंजदसम्मादिद्वी संरोज्ज- गुणा ।	"
११४ मायणमम्मादिद्वी असंरोज्ज- गुणा ।			१३१ मिच्छादिद्वी असंरोज्जगुणा ।	"
११५ मम्मामिच्छादिद्वी संरोज्ज- गुणा ।			१३२ असंजदसम्मादिद्विद्विणे सन्व- त्थोवा उवससम्मादिद्वी । २९७	"
११६ अणंजदसम्मादिद्वी अणंरोज्ज- गुणा ।			१३३ राइयसम्मादिद्वी संरोज्जगुणा ।	"
११७ मिच्छादिद्वी असंरोज्जगुणा, मिच्छादिद्वी अणंतगुणा । २९३			१३४ वेदगसम्मादिद्वी असंरोज्ज- गुणा ।	"
११८ अणंजदसम्मादिद्वि--संजदा--			१३५ आहारकायजोगि-आहारमिस्स-	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१२५ कायजोगीसु पमत्तसंजदद्विणे सन्वत्थोवा राइयसम्मादिद्वी । २९७			१५२ मिच्छादिद्वी असंरोज्जगुणा । ३०२		
१२६ वेदगसम्मादिद्वी संरोज्जगुणा । २९८			१५३ असंजदसम्मादिद्वि-संजदासंजद- द्विणे सन्वत्थोवा खइयसम्मा- दिद्वी ।		"
१२७ रुम्मइयकायजोगीसु सन्व- त्थोवा सजोगिकेवली ।		"	१५४ उवसससम्मादिद्वी असंरोज्ज- गुणा । ३०३		"
१२८ सासनसम्मादिद्वी असंरोज्ज- गुणा ।		"	१५५ वेदगसम्मादिद्वी असंरोज्ज- गुणा ।		"
१२९ असंजदसम्मादिद्वी असंरोज्ज- गुणा । २९९			१५६ पमत्त-अप्यमत्तसंजदद्विणे सन्व- त्थोवा खइयसम्मादिद्वी ।		"
१३० मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ।		"	१५७ उवसससम्मादिद्वी संरोज्जगुणा ।		"
१३१ असंजदसम्मादिद्विद्विणे सन्व- त्थोवा उवसससम्मादिद्वी ।		"	१५८ वेदगससम्मादिद्वी संरोज्ज- गुणा ।		"
१३२ राइयसम्मादिद्वी संरोज्जगुणा ।		"	१५९ एवं दोसु अद्रासु ।		"
१३३ वेदगससम्मादिद्वी असंरोज्ज- गुणा । ३००			१६० सन्वत्थोवा उवसमा । ३०४		"
१३४ वेदाणुवोदेण इत्थिवेदएसु दोसु वि अद्रासु उवससा पवेसणेण तुह्वा थोवा ।		"	१६१ खवा संरोज्जगुणा ।		"
१३५ खवा संरोज्जगुणा । ३०१			१६२ पुरिसवेदएसु दोसु अद्रासु उवससा पवेसणेण तुह्वा थोवा ।		"
१३६ अप्यमत्तसंजदा अक्खवा अणुवससा संरोज्जगुणा ।		"	१६३ खवा संरोज्जगुणा ।		"
१३७ पमत्तसंजदा संरोज्जगुणा ।		"	१६४ अप्यमत्तसंजदा अक्खवा अणुवससा संरोज्जगुणा । ३०५		"
१३८ संजदासंजदा असंरोज्जगुणा ।		"	१६५ पमत्तसंजदा संरोज्जगुणा ।		"
१३९ सासनसम्मादिद्वी असंरोज्ज- गुणा ।		"	१६६ संजदासंजदा असंरोज्जगुणा ।		"
१४० मम्मामिच्छादिद्वी संरोज्ज- गुणा । ३०२			१६७ सासनसम्मादिद्वी असंरोज्ज- गुणा ।		"
१४१ असंजदसम्मादिद्वी असंरोज्ज- गुणा ।		"	१६८ मम्मामिच्छादिद्वी संरोज्ज- गुणा ।		"
		"	१६९ असंजदसम्मादिद्वी असंरोज्ज-		"

पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या	परीशिष्ट	( २७ )	पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या
३०६	गुणा ।	३१०	गुणा ।	३१०					
१७०	मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ।	१८७	वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ।	३११					
१७१	अंजदसम्मादिद्वि-संजदा- संजद-पमत्त-अपमत्तसंजदद्विगुणे सम्मतत्पावहुअमोघं ।	१८८	एवं दोसु अद्वासु ।	३११					
१७२	एवं दोसु अद्वासु ।	१८९	सवत्थोभा उवसमा ।	३११					
१७३	मज्जन्थोभा उवसमा ।	१९०	सवा सखेज्जगुणा ।	३११					
१७४	सना संखेज्जगुणा ।	१९१	अवगदेदएसु दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३११					
१७५	णउंसयेदएसु दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	१९२	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ।	३११					
१७६	सवा संखेज्जगुणा ।	१९३	सवा संखेज्जगुणा ।	३११					
१७७	अपमत्तसंजदा अक्खवा अणु- वममा संखेज्जगुणा ।	१९४	खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ।	३११					
१७८	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	१९५	सजोगेक्खली अजोगेक्खली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ।	३११					
१७९	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ।	१९६	सजोगेक्खली अद्दं पडुच्च संखेज्जगुणा ।	३११					
१८०	साणसम्मादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	१९७	कसायणुवादेण कोधकसाह- माणकसाह-मायकसाह-लोभ- कसाहसु दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३१२					
१८१	सम्माभिच्छादिद्वी संखेज्ज- गुणा ।	१९८	सवा संखेज्जगुणा ।	३१२					
१८२	असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	१९९	णवरि विमसा, लोभकसाहसु सुहुमंसापराहयउवसमा विसे- साहिया ।	३१२					
१८३	मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ।	२००	सवा संखेज्जगुणा ।	३१३					
१८४	असंजदसम्मादिद्वि-संजदा- संजदद्विगुणे ममत्तत्पावहुअ- मोघं ।	२०१	अपमत्तसंजदा अक्खवा अणु- वसमा संखेज्जगुणा ।	३१३					
१८५	पमत्त-अपमत्तसंजदद्विगुणे सव्व- त्थोभा सव्वयसम्मादिद्वी ।	२०२	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	३१३					
१८६	उवसमासम्मादिद्वी संखेज्ज-								

( २८ ) अप्पावहुगपरुक्खणासुत्ताणि

पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या
२०३	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ।	३१४	णीसु तिसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३१७
२०४	साणसम्मादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	३१४	२१९ उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ।	३१८
२०५	सम्माभिच्छादिद्वी संखेज्ज- गुणा ।	३१४	२२० सवा संखेज्जगुणा ।	३१८
२०६	असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	३१४	२२१ खीणकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिया चेव ।	३१८
२०७	मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ।	३१४	२२२ अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणु- वसमा संखेज्जगुणा ।	३१९
२०८	असंजदसम्मादिद्वि-संजदा- संजद-पमत्त-अपमत्तसंजद- द्विगुणे सम्मतत्पावहुअमोघं ।	३१५	२२३ पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	३१९
२०९	एवं दोसु अद्वासु ।	३१५	२२४ संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ।	३१९
२१०	सव्वत्थोभा उवसमा ।	३१५	२२५ असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	३१९
२११	सवा संखेज्जगुणा ।	३१५	२२६ असंजदसम्मादिद्वि-संजदा- संजद-पमत्त-अपमत्तसंजदद्विगुणे सम्मतत्पावहुअमोघं ।	३१९
२१२	अकसाहसु सव्वत्थोभा उवसंत- कसायवीदरागछदुमत्था ।	३१६	२२७ एवं तिसु अद्वासु ।	३१९
२१३	खीणकसायवीदरागछदुमत्था संखेज्जगुणा ।	३१६	२२८ सव्वत्थोभा उवसमा ।	३१९
२१४	सजोगेक्खली अजोगेक्खली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ।	३१६	२२९ सवा संखेज्जगुणा ।	३१९
२१५	सजोगेक्खली अद्दं पडुच्च संखेज्जगुणा	३१६	२३० मणपज्जवणणीसु तिसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३२०
२१६	णाणायुवादेण मदिअण्णाणि- सुदअण्णाणि-विभगण्णाणीसु सव्वत्थोभा साणसम्मादिद्वी ।	३१६	२३१ उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ।	३२०
२१७	मिच्छादिद्वी अणंतगुणा, मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ।	३१७	२३२ सवा संखेज्जगुणा ।	३२०
२१८	आभिणिमोहिय-सुद-ओधिणा-	३१७	२३३ खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ।	३२०
			२३४ अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणु- वसमा संखेज्जगुणा ।	३२०
			२३५ पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	३२०

पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या
२३६	पमत्त-अप्यमत्तमंजदङ्गणे सब्ध- त्योवा उवसमसम्मादिङ्गी ।	३२०	त्योवा उवसमसम्मादिङ्गी ।	३२४
२३७	सह्यमसम्मादिङ्गी संसेज्जगुणा ।	३२१	सह्यमसम्मादिङ्गी संसेज्जगुणा ।	३२५
२३८	वेदगसम्मादिङ्गी संसेज्जगुणा ।	३२१	वेदगसम्मादिङ्गी संसेज्जगुणा ।	३२५
२३९	एवं तिसु अद्वासु ।	३२१	एवं तिसु अद्वासु ।	३२५
२४०	सव्वत्थोवा उवसमा ।	३२१	सव्वत्थोवा उवसमा ।	३२५
२४१	समा संसेज्जगुणा ।	३२१	समा संसेज्जगुणा ।	३२५
२४२	केवल्लणणीसु सजोगिकेत्तली अजोगिकेत्तली पसेणेण दो पि तुल्ला तत्तिया चेव ।	३२२	समासह्यच्छेदोवदङ्गणसुद्विसंज- देसु दोसु अद्वासु उवसमा पवसेणेण तुल्ला थोवा ।	३२६
२४३	सजोगिकेत्तली अद्दं पडुच्च संसेज्जगुणा ।	३२२	समा संसेज्जगुणा ।	३२६
२४४	संजमाणुदणे संजदेसु तिसु अद्वासु उवसमा पवसेणेण तुल्ला थोवा ।	३२२	अप्यमत्तसंजदा अक्खवा अणु- वसमा संसेज्जगुणा ।	३२६
२४५	उत्तंत्तण्णायपीदरागछुदुमन्था तत्तिया चेव ।	३२३	त्योवा उवसमसम्मादिङ्गी ।	३२६
२४६	समा संसेज्जगुणा ।	३२३	सह्यसम्मादिङ्गी संसेज्जगुणा ।	३२६
२४७	तीणरूपायपीदरागछुदुमन्था तत्तिया चेव ।	३२३	वेदगसम्मादिङ्गी संसेज्जगुणा ।	३२६
२४८	सजोगिकेत्तली अजोगिकेत्तली पसेणेण दो पि तुल्ला तत्तिया चेव ।	३२४	एवं दोसु अद्वासु ।	३२७
२४९	सजोगिकेत्तली अद्दं पडुच्च संसेज्जगुणा ।	३२४	सव्वत्थोवा उवसमा ।	३२७
२५०	अप्यमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संसेज्जगुणा ।	३२४	समा संसेज्जगुणा ।	३२७
२५१	पमत्तसंजदा संसेज्जगुणा ।	३२४	परिहारसुद्विसंजदेसु सब्ध- त्योवा अप्यमत्तसंजदा ।	३२७
२५२	पमत्त-अप्यमत्तसंजदङ्गणे सब्ध- त्योवा उवसमसम्मादिङ्गी ।	३२८	पमत्तसंजदा संसेज्जगुणा ।	३२७

पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या
२७३	सवा संसेज्जगुणा ।	३२८	दिङ्गी असंखेज्जगुणा ।	३३१
२७४	जधाक्खादविहारसुद्विसंजदेसु अक्खसाइसंगो ।	३२८	ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ।	३३१
२७५	संजदासंजदेसु अप्पावडुअं णत्थि ।	३२८	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ।	३३१
२७६	संजदासंजदङ्गणे सव्वत्थोवा सह्यसम्मादिङ्गी ।	३२८	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिएसु णील्लेस्सिएसु- काउलेस्सिएसु	३३२
२७७	उवसमसम्मादिङ्गी असंखेज्ज- गुणा ।	३२९	असंजदसम्मादिङ्गी असंखेज्ज- गुणा ।	३३२
२७८	वेदगसम्मादिङ्गी असंखेज्ज- गुणा ।	३२९	मिच्छादिङ्गी अणंतगुणा ।	३३२
२७९	असंजदेसु सव्वत्थोवा सासण- सम्मादिङ्गी ।	३२९	असंजदसम्मादिङ्गणे सब्ध- त्योवा सह्यसम्मादिङ्गी ।	३३२
२८०	सम्मासिच्छादिङ्गी संखेज्ज- गुणा ।	३२९	उवसमसम्मादिङ्गी असंखेज्ज- गुणा ।	३३३
२८१	असंजदसम्मादिङ्गी असंखेज्ज- गुणा ।	३२९	वेदगसम्मादिङ्गी असंखेज्ज- गुणा ।	३३३
२८२	मिच्छादिङ्गी अणंतगुणा ।	३३०	णवरि विसो, काउलेस्सिएसु असंजदसम्मादिङ्गणे सब्ध- त्योवा उवसमसम्मादिङ्गी ।	३३३
२८३	असंजदसम्मादिङ्गणे सब्ध- त्योवा उवसमसम्मादिङ्गी ।	३३०	सह्यसम्मादिङ्गी असंखेज्ज- गुणा ।	३३३
२८४	सह्यसम्मादिङ्गी असंखेज्ज- गुणा ।	३३०	वेदगसम्मादिङ्गी असंखेज्ज- गुणा ।	३३४
२८५	वेदगसम्मादिङ्गी असंखेज्ज- गुणा ।	३३०	तेउलेस्सिएसु-पम्मलेस्सिएसु सव्वत्थोवा अप्यमत्तसंजदा ।	३३४
२८६	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि- अक्खुदंसणीसु मिच्छादिङ्गि- प्पहुडि जाव खीणत्तसायवीद- रागछुदुमन्था चि ओधं ।	३३१	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	३३४
२८७	णवरि चक्खुदंसणीसु मिच्छा- गुणा ।	३३१	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ।	३३४
			सासणसम्मादिङ्गी असंखेज्ज- गुणा ।	३३४



सादिरियाणि उक्तरसंस्तरं । एतं विषयमजोगद्वयं उचं । विषये जोहञ्जमाणे अंतरब्धमणो अंतरब्धमणो अपमचद्राओ तासि अंतर-वाहिरिया एका स्वगसेदीपाओगअपमचद्रा तथेगद्वोदो दुगुणा नग्निमा चि अपणेदव्या । पुणो अंतरब्धमणोओ छ उवनामगद्वोओ अलिय, तासि चान्दिल्लगसु अनिदुमचसु अंतोमुहुचेसु तिण्णि स्वगद्वोओ अवणेदव्या । एक्किस्से उवमवद्व्याए एगवगद्वदं निमोहिदं अभिमिद्विहि अद्रुडंतोमुहुचेहि छणियाए पुव्वकोडीए सादिरियाणि तेचींमं सागरोवमाणि अंतरं होदि । ओधियाणिएपमचसंजदसपमचदिगुणं णेद्वयं अंतराणिए पुव्वं व उक्तरसंस्तरं वचचवं, णलिय एतथ विसेसो ।

अपमचस उचचदे- एकओ आपमचो अपुव्वो ( १ ) अणियद्वी ( २ ) सुहुमो ( ३ ) उमंतो ( ४ ) होद्वय पुणो वि सुहुमो ( ५ ) अणियद्वी ( ६ ) अपुव्वो होद्वय ( ७ ) कालं गदो ममळणतेचीमयागरोवमाडड्विगिसु देवेसु उवणणो । ततो बुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उवणणो । अंतोमुहुचामसेसे संसारे अपमचो जादो । लद्वमंतरं ( १ ) । तदो पमचो ( २ ) अपमचो ( ३ ) । उवरि छ अतोमुहुचा । अंतरस्स अब्धंतरिमाओ छ उव-  
नामगद्वोओ अलिय, तासि अंतरवाहिरिल्लाओ तिण्णि स्वगद्वोओ अवणेदव्या । अंतर-

मंतोम सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है । इस प्रकारसे यह अन्तर विशेषको नहीं जोड़ करके कटा है । विशेषके जोड़ जाने पर अन्तरके आभ्यन्तरसे अग्रमत्तसंयतना काल और उनके अन्तरका वाहिरि गरु क्षपकत्रेणिके योग्य अग्रमत्तसंयतना काल होता है । उनमें एक गुणस्थानके कालने दुगुणा सदृशकाल निकाल देना चाहिए । पुनः अन्तरके आभ्यन्तर एक उपाशामकाल होते ह । उनके वाहिरि अवशिष्ट सात अन्तमुहुतोंसे तीन क्षपक गुणस्थानोंकाले क्षपककाल निकाल देना चाहिए । एक उपशान्तकालमेंसे एक क्षपककालका आधा भाग घटा देनेपर अवशिष्ट उत्कृष्ट अन्तर होता है । अवधिजानी प्रमत्तसंयतको अग्रमत्त गादि गुणस्थानमें ले जाकर और अन्तरको मात्र करारकर पूर्वके समान ही उत्कृष्ट अन्तर कठना चाहिए, इसमें और कोई विशेषता नहीं है ।

तीनों ज्ञानवाले अग्रमत्तसंयतना उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक अग्रमत्तसंयत, अग्रमत्त ( १ ) अनिदृत्तिकरण ( २ ) सक्षमसाम्प्रदाय ( ३ ) उपशान्तकृपाय ( ४ ) हो करके फिर भी सक्षमसाम्प्रदाय ( ५ ) अनिदृत्तिकरण ( ६ ) और अपूर्वकरण हो कर ( ७ ) मरणको प्राप्त हुआ और एक समय कम तैतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहलें च्युत होकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । संसारके अन्तमुहुतं अवशेष रह जाने पर अग्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ( १ ) । पश्चात् प्रमत्तसंयत ( २ ) अग्रमत्तसंयत हुआ ( ३ ) । इनमें क्षपकत्रेणीसम्बन्धी ऊपरके छह अन्तमुहुतं मिलाये । अन्तरके आभ्यन्तर उपशामकसम्बन्धी छह काल होते हैं । उनके अन्तरसे वाहिरि तीन क्षपककाल कम कर देना चाहिए । अन्तरके आभ्यन्तरवाले उपशान्त

अंतरमिमाए उवसंतद्व्याए अंतर-वाहिरिस्वगद्व्याए अद्रमणोदव्वं । अवसिद्वेहि अद्रुडंतो-  
मुहुचेहि उणपुव्वकोडीए सादिरियाणि तेचींसं सागरोवमाणि उक्तरसंस्तरं होदि । सरिस-  
पक्खे अंतरस्सअंतरसचअंतोमुहुचेसु अंतर-वाहिरिणअंतोमुहुचेसु सोहिदेसु अवसेसा वे  
अंतोमुहुचा । एदेहि उणाए पुव्वकोडीए सादिरियाणि तेचींसं सागरोवमाणि उक्तरसंस्तरं  
होदि । एवमोहिण्णाणियो नि वचचवं, विसेसाभागा ।

चदुण्हयुवसमगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं  
पडुव्व जहणेण एगसमयं ॥ २४१ ॥

सुगममेदं ।

उक्करसेण वासपुधत्तं ॥ २४२ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुव्व जहणेण अंतोमुहुतं ॥ २४३ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्करसेण छावडि सागरोवमाणि सादिरियाणि ॥ २४४ ॥

कालमेंसे अन्तरसे वाहिरि क्षपककालका आधा काल निकालना चाहिए । अवशिष्ट वचे हुए साढ़े पांच अन्तमुहुतोंसे कम पूर्वकोटिसे साधिक तैतीस सागरोपम उत्कृष्ट अन्तर होता है । सद्यः पदमें अन्तरके भीतरी सात अन्तमुहुतोंको अन्तरके वाहरी नौ अन्त-  
मुहुतोंमेंसे घटा देने पर अवशेष दो अन्तमुहुतं रहते हैं । इनसे कम पूर्वकोटिसे साधिक तैतीस सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकारसे अवधिज्ञानीका भी अन्तर कहना चाहिए, क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है ।

तीनों ज्ञानवाले चारों उपाशामकोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जवन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २४१ ॥

यह सख सुगम है ।

उक्त जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २४२ ॥

यह सख भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जवन्य अन्तर अन्तमुहुतं है ॥ २४३ ॥

यह सख भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागरोपम है ॥ २४४ ॥

१ चतुर्णांशुपममना नानाजीवपेक्षया सामान्यत् । स. सि. १, ८

२ पुक्खवि मति जपयनान्तमुहुतः । स. सि. १, ८

३ उत्तरेण पट्टिमागरोपमाणि सातिरेकाणि । स. सि. १, ८



तं जहा- एकको अद्वीवीसंतकामिमओ पुव्वकोडाउअमणुसेसु उववणो । अइ-  
चरिसओ वेदगसम्मत्तमत्तणुयं च जुगवं पडियणो ( १ ) । तदो पमत्तापमत्तपरामत्त-  
सहस्सं कादूण ( २ ) उवसमसेदीपाओगविसोहीए विसुद्धो ( ३ ) अपुवो ( ४ ) अणि-  
यद्दी ( ५ ) सुहुमो ( ६ ) उवसंतो ( ७ ) पुणो वि सुहुमो ( ८ ) अणियद्दी ( ९ )  
अपुवो ( १० ) हेदूण हेद्दा पडिय अंतरिदो । देवणुपुव्वकोडिं संजमणुपालेदूण मदो  
तेत्तीससागरोमआडिदिएसु देवेसु उववणो । तदो जुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उव-  
वणो । खइयं पडुविय संजमं कादूण कालं गदो तेत्तीससागरोवमाउडिदिएसु देवेसु उव-  
वणो । तदो जुदो पुव्वकोडाउओ मणुसो जादो संजमं पडियणो । अंतोसुहुचावसेसे  
संसारे अपुवो जादो । लद्धमंतरं ( ११ ) । अणियद्दी ( १२ ) सुहुमो ( १३ ) उवसंतो  
( १४ ) भूओ सुहुमो ( १५ ) अणियद्दी ( १६ ) अपुवो ( १७ ) अप्पमत्तो ( १८ )  
पमत्तो ( १९ ) अप्पमत्तो ( २० ) । उवरि छ अंतोसुहुत्ता । अइहि वस्मेहि छव्वीसंतो-  
सुहुत्तेहि य जणा तीहि पुव्वकोडीहि सादिरेयाणि छावडिसागरोवमाणि उक्कस्संतरं होदि ।  
अथवा चत्तारि पुव्वकोडीओ तेरसन्नावीस-एक्कत्तीससागरोवमाउडिदिदेवेसु उपाइय

जेसे- मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव पूर्वकोटीकी  
आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । आठ वर्षका हाकर वेदकसम्पत्त्व और अप्रमत्त-  
गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ ( १ ) । तत्पश्चात् प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थान-  
सम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके ( २ ) उपशमभ्रणिके प्रायोग्य विद्युद्धिसे नियुद्ध  
होता हुआ ( ३ ) अपूर्वकरण ( ४ ) अनिवृत्तिकरण ( ५ ) सूक्ष्मसाम्पराय ( ६ ) उपशान्त-  
कपाय ( ७ ) होकर फिर भी सूक्ष्मसाम्पराय ( ८ ) अनिवृत्तिकरण ( ९ ) अपूर्वकरण ( १० )  
होकर तथा नचि निरकर अन्तरको प्राप्त हुआ । कुछ कम पूर्वकोटीकालप्रमाण  
संयमको परिपालन कर मरा और तेतीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ ।  
पश्चात् च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और क्षायिकसम्पत्त्वको  
धारण कर और संयम धारण करके मरणको प्राप्त हो तेतीस सागरोपमत्ती आयुस्थिति-  
वाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहसि च्युत होकर पूर्वकोटी आयुवाला मनुष्य हुआ और  
यथासमय संयमको प्राप्त हुआ । पुनः संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जाने पर अपूर्व-  
करणगुणस्थानवर्ती हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ( ११ ) । पश्चात् अनिवृत्ति-  
करण ( १२ ) सूक्ष्मसाम्पराय ( १३ ) उपशान्तकपाय ( १४ ) होकर पुनः सूक्ष्मसाम्पराय ( १५ )  
अनिवृत्तिकरण ( १६ ) अपूर्वकरण ( १७ ) अप्रमत्तसंयत ( १८ ) प्रमत्तसंयत हुआ ( १९ ) ।  
पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ ( २० ) । इनमें ऊपरके क्षपकश्रेणीसम्बन्धी ओर भी छह अन्त-  
र्मुहूर्त मिलीये । इस प्रकार आठ वर्ष और छब्बीस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तीन पूर्वकोटियोंसे  
साधिक ज्यासठ सागरोपम उत्कृष्ट अन्तर होता है । अथवा, तेरह, बाईस और इकतीस

वत्तव्याओ । एवं चेव त्तिण्हसुववासमगाणं । णवरि चहुवीस वावीस तीस अंतोसुहुत्ता  
जणा कादव्वा । एवमोहिणाणीणं पि वत्तव्वं, विसेसाभावा ।

चटुण्हं खवगाणमोधं । णवरि विसेसो ओधिणाणीसु खवाणं  
वासपुधत्तं ॥ २४५ ॥

कुदो ? ओधिणाणीणं पाएणं संभवाभावा ।

मणपजवणाणीसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २४६ ॥  
सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोसुहुत्तं ॥ २४७ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अंतोसुहुत्तं ॥ २४८ ॥

सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न कराकर मनुष्यभवसम्बन्धी चार पूर्वकोटियों  
कहना चाहिए । इसी प्रकारसे शेष तीन उपशामकोंका भी अन्तर कहना चाहिए । विशेष  
जात यह है कि अनिवृत्तिकरणके चौबीस अन्तर्मुहूर्त, सूक्ष्मसाम्परायके बाईस अन्तर्मुहूर्त  
और उपशान्तकपायके बीस अन्तर्मुहूर्त कम कहना चाहिए । इसी प्रकारसे उपशामक  
अवधिज्ञानियोंका भी अन्तर कहना चाहिए, क्योंकि, उसमें भी कोई विशेषता नहीं है ।  
तीनों ज्ञानवाले चारों क्षपकोंका अन्तर औघके समान है । विशेष जात यह है  
कि अवधिज्ञानियोंमें क्षपकोंका अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २४५ ॥

क्योंकि, अवधिज्ञानियोंके प्राय होनेका अभाव है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है ?  
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २४६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४८ ॥

१ चतुर्णां सप्तमणां सामान्यवत् । तिन्यु अवधिज्ञानिन्यु नानाजीवोपेक्षया जघन्येनैक समय , उत्कर्षेण  
वर्षपृथक्त्वम् । एतन्नात्र प्रति नास्त्यन्त्यस्य । स ति १, ८ २ प्रतिषु 'उपाएण' इति पाठः ।

३ मनःपर्ययज्ञानिन्यु प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवोपेक्षया नास्त्यन्त्यस्य । स ति १, ८

४ एतन्नात्र प्रति जघन्ययुत्कृष्ट चान्तर्मुहूर्तः । स. ति. १, ८.

तं जहा- एकको एमत्तो मणपञ्जवणाणी अप्पमत्तो होदूण उवरी चडिय हेडा अण्णमिण पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । अप्पमत्तस्स उच्चदे- एकको अप्पमत्तो मणपञ्जवणाणी पमत्तो होदूणतरिय मच्चिरेण कालेण अप्पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । उवसमसेदि न्दामिय किण्णतरविदो ? ण, उवसमसेदिमच्चद्वहिंत्तो पमत्तद्वा एकका चेव संखेज्जगुणा ति गुरुवदेमादो ।

चटुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो हेदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ २४९ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २५० ॥

एदं पि सुगमं ।

जैसे- एक मनःपर्ययज्ञानी प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत हो ऊपर चढ़कर और नीचे उतर कर प्रमत्तसंयत हो गया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयतका अन्तर रहते हैं- एक मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तसंयत होकर अन्तरको प्राप्त हो अति दीर्घकालसे अप्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।

शंका-मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयतको उपशमथेणी पर चढ़ाकर पुनः अन्तरको प्राप्त क्यों नहीं करताया ?

समाधान-नहीं, क्योंकि, उपशमथेणीसम्बन्धी सभी अर्थात् चार चढ़नेके ओर तीन उतरनेके, इन सब गुणस्थानोंसम्बन्धी कालोंसे अकेले प्रमत्तसंयतका काल ही संप्रगतगुणा होता है, ऐसा शुकका उपदेश है ।

मनःपर्ययज्ञानी चारों उपशमकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २५० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

१ चतुर्गुणप्रमत्तनां नानाजीवपेक्षया मामान्यत्त्वं । स. ति. १, ६.

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५१ ॥  
सुगममेदं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ २५२ ॥

तं जहा- एकको पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववणो अंतोमुहुत्तवभहियअट्टवस्सेहि संजमं पडिवणो ( १ ) । पमत्तापमत्तसंजदद्वणे सादासादबंधपरवत्तसहस्सं कादूण ( २ ) विमुद्धो मणपञ्जवणाणी जादो ( ३ ) । उवसमसेडीपाओगअप्यमत्तो होदूण सेडीमुवगदो ( ४ ) । अपुव्वो ( ५ ) अणियद्धी ( ६ ) सुहुमो ( ७ ) उवसंतो ( ८ ) पुणो वि सुहुमो ( ९ ) अणियद्धी ( १० ) अपुव्वो ( ११ ) पमत्तापमत्तसंजदद्वणे ( १२ ) पुव्वकोडि-मच्छिदूण अणुदिसादिसु आउअं बंधिदूण अंतोमुहुत्तवावसेसे जीविए विसुद्धो अपुव्वुवसामगो जादो । णिदा-पयलाणं बंधमोच्छिण्णे कालं गदो देवो जादो । अट्टवस्सेहि वारसअंतो-मुहुत्तेहि य ऊणिया पुव्वकोडी उक्कस्संतरं । एवं तिण्हमुवसामगाणं । णवरि जहाकमेण दस णव अट्ट अंतोमुहुत्ता समओ य पुव्वकोडीदो ऊणा ति वत्तव्यं ।

मनःपर्ययज्ञानी चारों उपशमकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर जघन्यसे अन्तमुहुत्तं है ॥ २५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥ २५२ ॥  
जैसे- कोई एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और अन्त-मुहुत्तसे अधिक आठ वर्षके द्वारा संयमको प्राप्त हुआ ( १ ) । पुनः प्रमत्त-अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमे साता और असाताप्रकृतियोंके सहस्रों बंध परिवर्तनोंको करके ( २ ) विमुद्ध हो मनःपर्ययज्ञानी हुआ ( ३ ) । पश्चात् उपशमथेणिके योग्य अप्रमत्तसंयत होकर श्रेणीको प्राप्त हुआ ( ४ ) । तब अपूर्वकरण ( ५ ) अनिच्छित्तिहरण ( ६ ) सूक्ष्मसाम्पराय ( ७ ) उपशान्तक्रयाय ( ८ ) पुनरपि सूक्ष्मसाम्पराय ( ९ ) अनिच्छित्तिहरण ( १० ) अपूर्वकरण ( ११ ) होकर प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें ( १२ ) पूर्वकोटीकाल तक रहकर अत्रुदिश आदि विमानवासी देवोंमें आयुको बांधकर जीवनके अन्तमुहुत्त अवशेष रहने पर विमुद्ध हो अपूर्वकरण उपशामक हुआ । पुनः निद्रा तथा प्रचला, इन दो प्रकृतियोंके बंध-विच्छेद हो जाने पर मरणको प्राप्त हो देव हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और चारह अन्तमुहुत्तोंसे कम पूर्वकोटी कालप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकार शेष तीन मनःपर्ययज्ञानी उप-शामकोंका भी अन्तर होता है । विशेषता यह है कि उनके यथाक्रमसे दश, नौ और आठ अन्तमुहुत्त तथा एक समय पूर्वकोटीसे कम कहना चाहिए ।

१ पुरुजीव प्रति जघन्येनात्तमुहुत्तं । स. ति. १, ६.

२ इत्तरेण पूर्वकोटी देशोत्तम-क. ति. १, ६.

चटुण्हं खवगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च  
जहणेण एगसमयं ॥ २५३ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २५४ ॥

इदो ? मणपज्जवणणेण खग्गसेहिं चढमाणं पडरं संबन्नाभावा ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २५५ ॥

एदं पि सुगमं ।

केवल्लणाणीसु सजोगिकेवली ओधं ॥ २५६ ॥

गाणेगजीवअंतराभावेण साधम्मदादो ।

अजोगिकेवली ओधं ॥ २५७ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एव गाणमगणा समत्ता ।

मनःपर्ययज्ञानी चारों क्षपकोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी  
अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २५४ ॥

क्योंकि, मनःपर्ययज्ञानके साथ क्षपकअग्नीपर चढ़नेवाले जीवोंका प्रचुरतासे  
होना संभव नहीं है ।

मनःपर्ययज्ञानी चारों क्षपकोका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर  
है ॥ २५५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

केवलज्ञानी जीवोंमें सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ २५६ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे समानता है ।

अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ २५७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

१ चतुर्णा क्षपकाणामवधिज्ञानिकत् । स सि १, ८

२ द्वयो केवलज्ञानिनो सामान्यन् । स सि १, ८

संजमाणुवादेण संजदेसु पमतसंसजदप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-  
वीदरागछट्टमत्था ति मणपज्जवणाणिभंगो ॥ २५८ ॥

पमत्तापमत्तसंसजाणं गाणजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं; एगजीवं पडुच्च  
जहणुक्कस्सेण अंतोसुहुत्तं । चटुण्हमुत्तसामगाणं गाणजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ,  
उक्कस्सेण वासपुधत्तं; एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुत्तं, उक्कस्सेण देहणपुवक्कोडी  
अंतरमिदि तदो विसेसाभावा ।

चटुण्हं खवा अजोगिकेवली ओधं ॥ २५९ ॥

सुगमं ।

सजोगिकेवली ओधं ॥ २६० ॥

एदं पि सुगमं ।

सामाइय-छेदोवट्टावणसुद्धिसंसजदेसु पमत्तापमतसंसजदाणमंतरं केव-  
चिरं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २६१ ॥  
गयत्थं ।

संयममार्गणाके अजुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयतको आदि लेकर उपशान्तकपाय-  
वीतरागछट्टस्य तक संयतोंका अन्तर मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है ॥ २५८ ॥

प्रमत्त और अग्रमत्तसंयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है,  
एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । चारों उपशामकोंका नाना  
जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । एक जीवकी  
अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण अन्तर है, इसलिये  
उससे यहांपर कोई विशेषता नहीं है ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवली संयतोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २५९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सयोगिकेवली संयतोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २६० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्त तथा अग्रमत्त संयतोंका अन्तर  
कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २६१ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है ।

१ संयमाहुवादेन सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताग्रमत्तयोर्नानाजीवपेक्षया नास्त्यन्तर ।  
स सि १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६२ ॥

तं जहा- पमत्तो अप्पमत्तसु गंतूण सव्वजहण्णेण कालेण पुणो पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । एत्तपपमत्तस वि वत्तव्वं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६३ ॥

तं जहा- एत्तो पमत्तो अप्पमत्तो होदूण चिरकालमच्छिय पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । अप्पमत्तम्म उच्चदे- एक्को अप्पमत्तो पमत्तो होदूण सव्वचिरमंतोमुहुत्तमच्छिय अप्पमत्तो जादो । लद्धमंतरं ।

दोण्हमुवसामागणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २६४ ॥

अवगयत्थं ।

उक्कस्सेण वासपुथत्तं ॥ २६५ ॥

सुगममेदं ।

उक्त संयत्तिका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६२ ॥

जैसे- एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तगुणस्थानको जाकर सर्वजघन्य कालसे पुनः प्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । इसी प्रकार अप्रमत्तसंयतका भी अन्तर कहना चाहिए ।

उक्त संयत्तिका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६३ ॥

जैसे- एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत होकर और दीर्घ अन्तर्मुहूर्तकाल तक रह करके प्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं- एक अप्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तसंयत हो करके सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर अप्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।

सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों उपशामकका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २६४ ॥

इस सूत्रका अर्थ ज्ञात है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथस्त्व है ॥ २६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ पृथ्वीम प्रति जघन्यसु इह वातर्मुहूर्त । स ति १, ८.

२ इदोपशामकान्योनान्जीमोपेक्षया सामान्यम् । स. ति १, ८

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६६ ॥

तं जहा- एक्को ओदरमाणो अपुब्बो अप्पमत्तो पमत्तो पुणो अप्पमत्तो होदूण अपुब्बो जादो । लद्धमंतरं । एवमणियट्ठिस्स वि । गवरि पंच अंतोमुहुत्ता जहण्णंतरं होदि ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ २६७ ॥

तं जहा- एक्को पुव्वकोडाएएसु मणुसेसु उववण्णो । अट्ठस्साणमुवरि संजमं पडिवण्णो (१) । पमत्तापमत्तसजदट्ठणो सादासादबंधपरावत्तिसहस्सं कादूण (२) उवसमसेडीपाओगअप्पमत्तो (३) अपुब्बो (४) अणियट्ठी (५) सुहुमो (६) उवसंतो (७) पुणो वि सुहुमो (८) अणियट्ठी (९) अपुब्बो (१०) हेट्ठा पडिय अंतरिदो । पमत्तापमत्तसजदट्ठणो पुव्वकोडिमच्छिदूण अनुदिसादिसु आउअं बंधिय अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए अपुब्बुवसामगो जादो । णिदा-पयलाणं बंधे वोच्छिण्णे कालं गदो देवो जादो । अट्ठहि वस्सेहि एक्कारसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया पुव्वकोडी अंतरं । एवमणियट्ठिस्स वि ।

सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी दोनों उपशामकका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६६ ॥

जैसे- उपशामश्रेणीसे उतरनेवाला एक अपूर्वकरणसंयत, अप्रमत्तसंयत व प्रमत्तसंयत होकर पुनः अप्रमत्तसंयत हो अपूर्वकरणसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । इसी प्रकार अनिवृत्तिकरणसंयतका भी अन्तर कहना चाहिए । विशेषता यह है कि इनके पांच अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर होता है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥ २६७ ॥

जैसे- कोई एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और आठ वर्षके पश्चात् संयमको प्राप्त हुआ (१) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें साता और असातावेदनीयके सहस्रों बंध परावर्तनोंको करके (२) उपशामश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (३) । पश्चात् अपूर्वकरण (४) अनिवृत्तिकरण (५) सूक्ष्मसाम्पराय (६) उपशान्तकयाय (७) होकर फिर भी सूक्ष्मसाम्पराय (८) अनिवृत्तिकरण (९) अपूर्वकरण (१०) हो नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ । प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें पूर्वकोटी काल तक रहकर अनुदिश आदि विमानोंमें आयुको बांधकर जीवन्तके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशिष्ट रहनेपर अपूर्वकरण उपशामक हुआ और निद्रा तथा प्रचला प्रकृतियोंके बंधसे व्युच्छिन्न होनेपर मरणको प्राप्त हो वेच हुआ । इस प्रकार आठ बंध और ग्यारह अन्तर्मुहूर्तसे कम पूर्वकोटीप्रमाण सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अपूर्वकरण उपशामकका उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकार सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अनिवृत्तिकरण उपशामकका भी उत्कृष्ट अन्तर है । विशेषता यह है कि

१ एक्कीम प्रति जघन्येनात्तर्मुहूर्त । स. ति १, ८. २ उत्तरेण पूर्वकोटी वेद्वेना । स. ति १, ८.

णवरि समयाहियणवअंतोसुहुचा उणा कादब्बा ।

दोण्हं खवाणमोर्धं ॥ २६८ ॥

सुगममेदं ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २६९ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोसुहुत्तं ॥ २७० ॥

तं जहा- एकको पमत्तो परिहारसुद्धिसंजदो अप्पमत्तो होदूण सव्वलहुं पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । एवमप्पमत्तस्स वि पमत्तगुणेण अंतराविय वत्तव्वं ।

उक्कस्सेण अंतोसुहुत्तं ॥ २७१ ॥

एदस्सत्थो जथा जहणस्स उत्तो, तथा वत्तव्वो । णवरि सव्वचियेण कालेण पल्लद्वैवेदव्वो ।

इनका अन्तर एक समय अधिरु नो अन्तर्मुहूर्त कम करना चाहिए ।

सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों क्षपकोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है ॥ २६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

परिहारसुद्धिसंयतोमिं प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७० ॥ जैसे- परिहारसुद्धिसंयमवाला कोई एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत होकर सर्वलघु कालसे प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया । इसी प्रकार परिहारसुद्धिसंयमी अप्रमत्तसंयतको भी प्रमत्तगुणस्थानके द्वारा अन्तरको प्राप्त कराकर अन्तर कहना चाहिए ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७१ ॥

इस सूत्रका अर्थ जैसा जघन्य अन्तर बतलाते हुए कहा है, उसी प्रकारसे कहना चाहिए । विशेषतया यह हे कि इसे यहां पर सर्व दीर्घकालसे पलटाना चाहिए ।

१ द्रव्यो क्षपकयोः सामान्यवत् । स सि १, ८

२ परिहारसुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवोपेक्षया नारूप्यन्तरम् । स सि १, ८

३ एकजीव इति वचनयुक्त्यै चान्तर्मुहूर्तः । स सि १, ८

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयउवसमाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ २७२ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २७३ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २७४ ॥

कुदो ? अधिगदंसजमाविणोसेण अंतरावणे उवायाभावो ।

खवाणमोर्धं ॥ २७५ ॥

कुदो ? गाणाजीवगदजहणुक्कस्सेगसमय-छम्मासेहि एगजीवस्संतराशारेण य साधम्ममादो ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो ॥ २७६ ॥

सुद्धिसाम्परायसुद्धिसंयतोमिं सुद्धिसाम्पराय उपशाम-ऊँका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २७२ ॥ यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २७३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २७४ ॥

क्योंकि, प्राप्त क्रिये गये संयमके विनाश हुए विना अन्तरको प्राप्त होनेके उपायका अभाव है ।

सुद्धिसाम्परायसंयमी क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २७५ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह मासके साथ, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे ओघके साथ समानता पाई जाती है ।

यथाख्यातविहारसुद्धिसंयतोमिं चारो गुणस्थानिके संयमी जीवोंका अन्तर अकपायी जीवोंके समान है ॥ २७६ ॥

१ सुद्धिसाम्परायसुद्धिसंयतेषुप्रथमकस्य नानाजीवोपेक्षया सामान्यवत् । स सि. १, ८.

२ एकजीव इति नारूप्यन्तरम् । स सि. १, ८.

३ अ मतो ' अतरावणो उवाया-' आ-कखो ' अतरावणो उवाया-' इति पाठ ।

४ तस्यैव क्षपकस्य सामान्यवत् । स सि १, ८. ५ यथाख्याते अकपायवत् । स सि १, ८

कृदो ? अकमायाणं जहास्तादसंजमेण विणा अण्णसंजमाभावा ।

संजदासंजदाणमंतरें केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २७७ ॥

कृदो ? गुणतरग्गहणे मग्गणाविणासा, गुणतरग्गहणेण विणा अंतरकरणे उवायाभावा ।

असंजदेसु मिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणा- जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २७८ ॥

कृदो ? मिच्छादिद्विप्पवाहोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७९ ॥

कृदो ? गुणंतरं गंतूणंतरिय अविणहुअसंजमेण जहणकालेण पछट्टिय मिच्छत्तं पडिवण्णस्स अंतोमुहुत्तत्तत्तल्लभा ।

क्योंकि, अक्रमायी जीवोंके यथाव्याप्तसंयमके विना अन्य संयमका अभाव है ।

संयतासंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २७७ ॥

क्योंकि, अपने गुणस्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानके ग्रहण करने पर मार्ग- णाका विनाश होता है और अन्य गुणस्थानको ग्रहण किये विना अन्तर करनेका कोई उपाय नहीं है ।

असंयतोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २७८ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता ।

असंयमी मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७९ ॥

क्योंकि, अन्य गुणस्थानको जाकर और अन्तरको प्राप्त होकर असंयमभावके नहीं नष्ट होनेके साथ ही जघन्य कालसे पलटकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुए जीवके अन्त- मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

१ उक्तप्रकारसे नानाजीवापेक्षया एवजीवापेक्षया न नास्त्यन्तरम् । स मि १, ८

२ अत्रान्तरेण मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । म. मि. १, ८.

३ एवजीव प्रति अन्तरेणान्तर्मुहूर्तः । म. मि. १, ८.

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ २८० ॥

तं जहा- एकको अट्ठावीसमोहसंतकम्मिथो मिच्छादिद्वी सत्तमाए पुडवीए उव- ण्णो । छहि पज्जचीहि पज्जत्तयदो ( १ ) विस्संतो ( २ ) विमुद्धो ( ३ ) सम्मत्तं पडिवज्जिय अंतरिदो अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए मिच्छत्तं गदो ( ४ ) । लद्धमंतरं । त्तिरिक्खाउअं वंधिय ( ५ ) विस्समिय ( ६ ) मदो त्तिरिक्खो जादो । छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि मिच्छत्तुक्कस्संतरं ।

सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्वि-असंजदसम्मादिद्वीणमोधं ॥ २८१ ॥

कृदो ? सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्वीणिं णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एग- समओ, पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहणणेण पल्लिदोवमस्स असंखे- ज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं; उक्कस्सेण अद्धपोगलपरियइं देहणं । असंजदसम्मादिद्वीसु णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं; एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं; उक्कस्सेण अद्धपोगलपरियइं देहणमिच्चदेहि तदो भेदाभावा ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम है ॥ २८० ॥

जैसे- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो ( १ ) विश्राम ले ( २ ) विशुद्ध हो ( ३ ) सम्यक्त्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ और जीवनेके अन्तर्मुहूर्त काल- प्रमाण अवशेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ( ४ ) । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पछि तिर्यच आयुको बांधकर ( ५ ) विश्राम ले ( ६ ) मरा और तिर्यच हुआ । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपमकाल मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

असंयमी सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर ओषके समान है ॥ २८१ ॥

क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और पल्योपमका असंख्यातवां भाग अन्तर है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त अन्तर है । तथा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल है । असंयतसम्यग्दृष्टियोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है, इस प्रकार ओषसे कोई भेद नहीं है ।

१ उत्तर्येण त्रयंत्रिकालसागरोपमाणि देसोणानि । स मि. १, ८.

२ वेपणां त्रयाणां सामान्यत्वं । स मि ३, ८.

असंजदसम्मादिहिसस उक्कस्संतरं णादमवि' मंदमेहाविजाणुगहइं परूवेमो-  
एक्को अणादियमिच्छादिहो तिणिण वि ऋणाणि कादूण अद्धयोगलपरियट्टादिसमए  
पढमसम्मचं पडिवणो (१) । उवसमसम्मचद्धाए छावलियाओ अत्थि चि सासणं गदो ।  
अंतरिदो अद्धयोगलपरियइं परियट्टिदूण अपच्छिमे भवगहणे असंजदसम्मादिहो जादो ।  
लद्धमंतरं (२) । तदो अर्णातणुवंधी विसंजोइय (३) विस्संतो (४) दंसणमोहं खविय  
(५) विस्संतो (६) अप्पमत्तो जादो (७) । पमत्तापमत्तपरवचसहस्सं कादूण (८)  
खवगसेढीयाओगअप्पमत्तो जादो (९) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । एवं पणारसेहि अंतो-  
मुहुत्तेहि उणमद्धयोगलपरियइमसंजदसम्मादिहिसस उक्कस्संतरं ।

एव सजमगणा समत्ता ।

**दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिहोणमोघं ॥ २८२ ॥**

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च अंतराभावेण, एगजीवगयअंतोमुहुत्तमेत्तजहणत्तरेण

असयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर यथापि ज्ञात है, तथापि मंदबुद्धि जनोके अनु-  
ग्रहार्थ प्ररूपण करते हैं- एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तीनों करणोंको करके अर्धपुद्गल-  
परिवर्तनेके आदि समयमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१) । उपशमसम्यक्त्वके  
कालमें छह आवलियां अवशिष्ट रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ । पश्चात्  
अन्तरको प्राप्त हो अर्धपुद्गलपरिवर्तन तक परिवर्तन करके अन्तिम भवमें असंयतसम्य-  
ग्दृष्टि हुआ । इस प्रकार अन्तर प्राप्त होगया (२) । तत्पश्चात् अन्तानुबन्धीकी विसंयोजना  
करके (३) विश्राम ले (४) दर्शनमोहनीयका शय्य करके (५) विश्राम ले (६) अप्रमत्त-  
संयत हुआ (७) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको  
करके (८) क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (९) । इन्में ऊपरके छह अन्त-  
सुहृत् और मिलायें । इस प्रकार पन्द्रह अन्तसुहृत्तोसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल असंयत-  
सम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके  
समान है ॥ २८२ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, तथा एक जीवगत

१ प्रतियु 'णादमदि' इति पाठ । २ प्रतियु 'पमो' इति पाठ ।

३ दर्शनानुवादेन चक्षुदर्शनीयु मिय्यादो सामायवत् । स सि १, ८

४ अ प्रती 'जीवेषु' इति पाठ ।

देक्षणवे-छावहिसागरोवमेत्तउक्कस्संतरेण य तदो भेदाभावा ।

**सासणसम्मादिहिसम्माभिच्छादिहोणमंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ २८३ ॥**

कुदो ? णाणाजीवगयएगसमय-पल्लिदोवमासंखेज्जदिभागजहणुक्कस्संतरेहि  
साधम्युवलंभा ।

**एगजीवं पडुच्च जहणेण पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,  
अंतोमुहुत्तं ॥ २८४ ॥**

सुगममेदं ।

**उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ २८५ ॥**

तं जहा-एको भमिदअचक्खुदंसणद्धिदो अस्सणिणपंचिदियसु उववणो । पंचहि  
पज्जत्तीहि पज्जत्तयो (१) विस्संतो (२) विमुद्धो (३) भवणवासिय-चाणवंतरदेवसु  
अन्तसुहृत्तमात्र जघन्य अन्तर होनेसे और कुछ कम दो छयासठ सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट  
अन्तर होनेकी अपेक्षा ओघसे कोई भेद नहीं है ।

चक्षुदर्शनी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल  
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ २८३ ॥

क्योंकि, नाना जीवगत जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका  
असंख्यातवा भाग है, इस प्रकार इन दोनोंकी अपेक्षा ओघके साथ समानता पाई  
जाती है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका  
असंख्यातवा भाग और अन्तसुहृत्त है ॥ २८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम  
है ॥ २८५ ॥

जैसे-अचक्षुदर्शनकी स्थितिप्रमाण परिश्रमण किया हुआ कोई एक जीव अस्की  
पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । पाचों पर्यसियोंसे पर्यसि हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध  
हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें आयुको बाधकर (४) विश्राम ले (५)

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८

२ एस्कीव इति जघन्येन पल्योपमासल्लोयमागोऽन्तसुहृत्तम् । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण वे सागरोपमसहसे देवोने । स. सि. १, ८

आइतं बंधिय (४) विस्संतो (५) देवेषु उपवण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयो (६) विस्संतो (७) विमुदो (८) उवणमम्मत्तं पडिक्खणो (९) सासणं गदो। मिच्छत्तं भंज्जन्तरिय चम्भुदुंदसणिद्धिदि परिममिय अण्णोणं सासणं गदो। लद्धमंतरं। अचक्खु-दंमणिपाओगमालियाण् अण्णोणं सासणं गदो। अचक्खुदंसाणी जादो। एवं पण्णो अतोमुदुत्तेहि आणियाण् अण्णोणं सासणं गदो। अचक्खुदंसाणिद्धिदी साण्णुत्तंरुत्तं।

मम्मामिच्छदिद्धिस्स उच्चदे- एको अचक्खुदंसाणिद्धिमिच्छदो असण्णिपंचि-दिग्गु उपवण्णो। पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयो (१) विस्संतो (२) विमुदो (३) भाण्णामिय-वाण्णोत्तरेवेषु आउअं बंधिय (४) विस्संतो (५) देवेषु उपवण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयो (६) विस्संतो (७) विमुदो (८) उवणमम्मत्तं पडिक्खणो (९) मम्मामिच्छत्तं गदो (१०)। मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो चम्भुदंसाणिद्धिदि परिममिय अण्णोणं सम्मामिच्छत्तं गदो (११)। लद्धमंतरं। मिच्छत्तं गंतूण (१२) अचक्खु-दंसाणीयु उपवण्णो। एवं वासअतोमुदुत्तेहि आणिया चम्भुदंसाणिद्धिदी उक्कसंतरं।

देवोंस उतान हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विग्रह हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)। पश्चात् सासादनगुणस्थानको गया। पुनः मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो चक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिश्रमण करने अन्तमें सामादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया। पुनः अचक्षु-दर्शनीके बंध प्रयोग्य आवलीके असत्यात्वं भागप्रमाण काल रह कर मरा और अचक्षु-दर्शनी होगया। इस प्रकार तो अन्तर्मुहूर्तोंसे ओर आवलीके असत्यात्वं भागसे कम चक्षुदर्शनीकी स्थिति चक्षुदर्शनी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर है।

चक्षुदर्शनी सम्यग्मिथ्यादृष्टिका अन्तर कहते हैं- अचक्षुदर्शनीकी स्थितिको प्राप्त हुआ एक जीव अमर्जी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विग्रह हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें आयुको बांधकर (४) विश्राम ले (५) मरा और देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विग्रह हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)। पश्चात् सम्य-ग्मिथ्यात्वको गया (१०) और मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ। चक्षु-दर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिश्रमण कर अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (११)। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया। पुनः मिथ्यात्वको जाकर (१२) अचक्षुदर्शनीमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार वाए अन्तर्मुहूर्तोंसे कम चक्षुदर्शनीकी स्थिति चक्षुदर्शनी सम्य-ग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर है।

असंजदसम्मादिट्ठिपहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णस्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २८६ ॥ सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २८७ ॥

कुदो ? एदेसिं सन्वेसिं पि अण्णगुणं गंतूण जहणक्कालेण अप्पिदगुणं गदाणमंतो-मुहुत्तंरुत्तंरुत्तं।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ २८८ ॥

तं जथा- एको अचक्खुदंसाणिद्धिमिच्छदो असण्णिपंचिदियसम्मिच्छिमपज्जत्तएसु उपवण्णो। पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयो (१) विस्संतो (२) विमुदो (३) भाण्ण-वासिय-वाण्णोत्तरेवेषु आउअं बंधिय (४) विस्संतो (५) कालं गदो देवेषु उपवण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयो (६) विस्संतो (७) विमुदो (८) उवणमम्मत्तं पडिक्खणो (९)। उवणमम्मत्तद्वाए छ आवलियाओ अस्थि चि सासणं गंतूणंतरिदो। मिच्छत्तं गंतूण

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अग्रमत्तसंयत गुणस्थान तक चक्षुदर्शनीयोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २८६ ॥ यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८७ ॥

क्योंकि, इन सभी गुणस्थानवर्ती जीवोंके अन्य गुणस्थानको जाकर पुनः जघन्य कालसे विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होनेपर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम है ॥ २८८ ॥

जैसे- अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव अवंशी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न हुआ। पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विग्रह हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तरोंमें आयुको बांध कर (४) विश्राम ले (५) मरणको प्राप्त हुआ और देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विग्रह हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)। उपशम-सम्यक्त्वके कालमें छह आवलियाँ अवरोप रहने पर सासादनको जाकर अन्तरको प्राप्त

१ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तानां नानज्जीवेषुक्षया नास्त्यन्तत्त्वं । स सि. १, ६.

२ एक्कीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । स सि. १, ६.

३ उत्तरेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोति । स सि. १, ६.



चक्खुंदंसणिद्धिं भूमिय अवसाणे उवसमसम्मचं पडिक्खणो (१०) । लद्धमंतरं । पुणो सांसणं गदो अक्खुंदंसणीसु उवक्खणो । दसहि अंतोसुहुत्तेहि ऊणिया सगहिदी असंजद-सम्मादिट्ठीणसुक्कसंतरं ।

संजदासंजदस्स उच्चदे । तं जहा- एकको अक्खुंदंसणिद्धिमच्छिदो गब्भो-क्खंतिपंचिदियपज्जत्तएसु उवक्खणो । सणिपंचिदियसम्मच्छिमपज्जत्तएसु किण्ण उप्पा-दिदो ? ण, सम्मुच्छिमेसु पढमसम्मत्तुप्पीए असंभवादो । ण च असंखेज्जलोगमणंतं वा कालमक्खुदयणीसु परिभमियाण वेदगसम्मत्तगहणं संभवदि, विरोहा । ण च थोव-कालमच्छिदो चक्खुंदंसणिद्धिदीए समाणणक्खमा । तिणिय पक्ख तिणिय दिवस अंतो-सुहुत्तेण य पढमसम्मचं संजमासंजमं च जुगवं पडिक्खणो (२) । पढमसम्मत्तद्वाए छावलियाओ अत्थि चि सासणं गदो । अंतरिदो भिच्छत्तं गंतूण सगहिदि परिभमिय अपच्छिमे भवे कदकरणिज्जो होदूण संजमासंजमं पडिक्खणो (३) । लद्धमंतरं । अप्पमत्तो

हुआ । पुनः मिथ्यात्वको जाकर चक्षुदर्शनकी स्थितिप्रमाण परिश्रमण कर अन्तमें उपशम-सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः सासादनको गया और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार दश अन्तर्मुहूर्तसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी असंयतसम्यक्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

चक्षुदर्शनी संयतसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं । जैसे-अचक्षुदर्शनकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव गर्भोपकान्तिक पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ ।

शंका—उक्त जीवको संक्षी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें क्यों नहीं उत्पन्न कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्मूर्च्छिम जीवोंमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्ति असंभव है । तथा असंख्यात लोकप्रमाण या अनन्तकाल तक अचक्षुदर्शनियोंमें परिश्रमण किये हुए जीवोंके वेदकसम्यक्त्वका ग्रहण करना सम्भव नहीं है, क्योंकि, ऐसे जीवोंके सम्यक्त्वोत्पत्तिका विरोध है । और न अल्पकाल तक रहा हुआ जीव चक्षुदर्शनकी स्थितिके समाप्त करनेमें समर्थ है ।

पुनः वह जीव तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्तसे प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (२) । प्रथमोपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलिया अवशिष्ट रह जाने पर सासादनको प्राप्त हुआ । पुनः अन्तरको प्राप्त हो मिथ्यात्वको जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिश्रमणकर अन्तिम भवमें कृतकृत्यवेदक होकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (३) । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः अप्पमत्तसंयत (४)

१ त्रिष्टु 'असंखेजा लोगमणत्त' इति पाठ ।

(४) प्पमत्तो (५) अप्पमत्तो (६) । उवरि छ अंतोसुहुत्ता । एवमडदालीसदिवेसहि चारसंतोसुहुत्तेहि य ऊणा सगहिदी संजदासंजदुक्कसंतरं ।

प्पमत्तस्म उच्चदे- एकको अक्खुंदंसणिद्धिमच्छिदो मणुसेसु उवक्खणो गब्भादि-अद्ववसेण उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिक्खणो । (१) । पुणो प्पमत्तो जादो (२) । हेट्ठा पडिदूगंतरिदो । चक्खुंदंसणिद्धिं परिभमिय अपच्छिमे भवे मणुसो जादो । कदकरणिज्जो होदूण अंतोसुहुत्तावसेसे जीणिए अप्पमत्तो होदूण प्पमत्तो जादो (३) । लद्धमंतरं । भूओ अप्पमत्तो (४) । उवरि छ अंतोसुहुत्ता । एवमद्ववसेसहि दसअंतो-सुहुत्तेहि ऊणिया सगहिदी प्पमत्तस्सुक्कसंतरं ।

( अप्पमत्तस्स उच्चदे- ) एकको अक्खुदंसणिद्धिमच्छिदो मणुसेसु उवक्खणो । गब्भादिअद्ववसेण उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिक्खणो (१) । हेट्ठा पडिदूण अंतरिदो चक्खुंदंसणिद्धिं परिभमिय अपच्छिमे भवे मणुसेसु उवक्खणो । कदकरणिज्जो होदूण अंतोसुहुत्तावसेसे संसारे विपुट्ठो अप्पमत्तो जादो (२) । लद्धमंतरं । तदो प्पमत्तो

प्पमत्तसंयत (५) और अप्पमत्तसंयत हुआ (६) । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाने । इस प्रकार अडतालीस दिवस और बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी संयतसंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर है ।

चक्षुदर्शनी प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं-अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भको आदि लेकर आठ वर्षसे उपशम-सम्यक्त्व और अप्पमत्तगुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (२) । पश्चात् नीचेके गुणस्थानोंमें गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ । चक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिश्रमण करके अन्तिम भवमें मनुष्य हुआ । पश्चात् कृतकृत्यवेदक होकर जीवनके अन्तर्मुहूर्तकाल अवशेष रह जाने पर अप्पमत्तसंयत होकर प्रमत्तसंयत हुआ (३) । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पुनः अप्पमत्तसंयत हुआ (४) । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाने । इस प्रकार आठ वर्ष और दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

चक्षुदर्शनी अप्पमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि लेकर आठ वर्षके द्वारा उपशमसम्यक्त्व और अप्पमत्तगुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । फिर नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हो अचक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिश्रमणकर अन्तिम भवमें मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । पुनः कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वकी होकर संसारके अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण अवशिष्ट रहने पर विशुद्ध हो अप्पमत्तसंयत हुआ (२) । इस प्रकार अन्तर प्राप्त

(३) अप्पमत्तो (४) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । एवमद्भवस्सेहि दसअंतोमुहुत्तेहि उणिया चामुदंयणिद्धिदी अप्पमत्तुक्कसंतरं हेदि ।

**चटुहमुवसामगणमंतरं केवचिरं कालादो हेदि, णाणाजीवं पडुच्च ओधं ॥ २८९ ॥**

सुगममेदं ।

**एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९० ॥**

एदं पि सुगमं ।

**उयक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ २९१ ॥**

तं जहान्- एकको अचक्कुदंमणिद्धिमच्छिदो मणुत्सेसु उववण्णो । गब्भादिअद्दु- तस्सण उयममत्तमपमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो (१) । अंतोमुहुत्तेण वेदगासम्मत्तं गदो (२) । तदो अंतोमुहुत्तेण अणंताणुवंधिं विंसलोजिदो (३) । दंसणमोहणीयमुव- सामिय (४) पमत्तापमत्तपरावत्तमहस्सं कादूण (५) उवसमसेडीपाओग्गअप्पमत्तो जादो (६) । अपुव्वो (७) अणियद्धी (८) सुहुमो (९) उवसंतो (१०) सुहुमो आ । पुन. प्रमत्तसयत हो (३) अप्रमत्तसयत हुआ (४) । इनमें ऊपरके छह अन्तमुहुत्ते और मिलीये । इस प्रकार आठ वर्ष और दश अन्तमुहुत्तसे कम चक्षुदर्शनीकी स्थिति ही चक्षुदर्शनी प्रमत्तसयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

चक्षुदर्शनी चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर औधके समान है ॥ २८९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जवन्व्य अन्तर अन्तमुहुत्त है ॥ २९० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम है ॥ २९१ ॥

जंसे- अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको गारि देकर आठ वर्षके द्वारा उपशामसयत्त और अप्रमत्तसयत गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । अन्तमुहुत्तके पश्चात् वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (२) । पुनः अन्तमुहुत्तसे अनन्तानुवन्धीता विसंयोजन किया (३) । पुनः दर्शनमोहनीयको उपशाम कर (४) प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहचौं परिवर्तनको करके (५) उप- शामोष्णीके योग्य अप्रमत्तसयत हुआ (६) । पुनः अपूर्वकरण (७) अनिवृत्तिकरण (८)

१ चतुर्गुणुपमानी नानाजीवमेक्षया सामान्यत् । स सि. १, ८

२ एतन्ती प्रति जस्येनात्तमुहुत्तः । म सि १, ८

३ जन्तेण दे सागरोपमादूरे दशाने । स सि. १, ८.

(११) अणियद्धी (१२) अपुव्वो (१३) हेद्दा ओदरिय अंतरिदो चक्कुदंसणिद्धिदि परिभमिय अंतिमे भवे मणुत्सेसु उववण्णो । कदकरणिज्जो होदूण अंतोमुहुत्तापमेसे संसारे विसुद्धो अप्पमत्तो जादो । सादासादबंधपरावत्तसहस्सं कादूण उवसमसेडीपाओग्गअप्पमत्तो होदूण अपुव्वुवसामगो जादो (१४) । लद्धमंतरं । तदो अणियद्धी (१५) सुहुमो (१६) उवसंतो (१७) पुणो पि सुहुमो (१८) अणियद्धी (१९) अपुव्वो (२०) अप्पमत्तो (२१) पमत्तो (२२) अप्पमत्तो (२३) होदूण खवगसेडीमारुद्धो । उवरि छ अंतो- मुहुत्ता । एवमद्भवस्सेहि एगूणत्तीसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया सगिद्धिदी अपुव्वकरणुक्कसंतरं । एवं चेव तिण्हवुवसामगणं । गवरि सचात्तीस पंचवीस तेवीस अंतोमुहुत्ता ऊणा कायव्वा ।

**चटुहं खवाणमोधं ॥ २९२ ॥**

सुगममेदं ।

सूक्ष्मसाम्पराय (९) उपशान्तमोह (१०) सूक्ष्मसाम्परायं (११) अनिवृत्तिकरण (१२) और अपूर्वकरणसंयत होकर (१३) तथा नीचे उतरकर अन्तरको प्राप्त हो चक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिश्रमणकर अन्तिम भवमें मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । यहांपर कृतकलययेदक- सम्यक्त्वी होकर ससारके अन्तमुहुत्त अवशिष्ट रह जाने पर विद्युद्द हो अप्रमत्तसंयत हुआ । वहापर साता और असाता वेदनीयके बंध-परावर्तन-सहचौंको करके उपशाम- श्रेणीके योग्य अप्रमत्तसयत होकर अपूर्वकरण उपशामक हुआ (१४) । इस प्रकार अन्तर प्राप्त होगया । तत्पश्चात् अनिवृत्तिकरण (१५) सूक्ष्मसाम्पराय (१६) उपशान्तकपाय (१७) पुनरपि सूक्ष्मसाम्पराय (१८) अनिवृत्तिकरण (१९) अपूर्वकरण (२०) अप्रमत्त- संयत (२१) प्रमत्तसंयत (२२) और अप्रमत्तसंयत होकर (२३) क्षपकश्रेणीपर चढ़ा । इनमें ऊपरके छह अन्तमुहुत्त और मिलीये । इस प्रकार आठ वर्ष और उन्तीस अन्तमुहुत्तसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी अपूर्वकरण उपशामकका उत्कृष्ट अन्तर है ।

इसी प्रकार चक्षुदर्शनी शेष तीन उपशामकोंका भी अन्तर जानना चाहिए । विशेषता यह है कि अनिवृत्तिकरण उपशामकके सत्ताईस अन्तमुहुत्त, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकके पचीस अन्तमुहुत्त और उपशान्तकपायके तेवीस अन्तमुहुत्त कम करना चाहिए ।

चक्षुदर्शनी चारों क्षपकोंका अन्तर औधके समान है ॥ २९२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अचम्बुदंसणीसु मिच्छादिद्विष्णुहृदि जाव खीणकसायवीद-

रागछट्टुमत्था ओर्थं ॥ २९३ ॥

कुदो ? ओषादो भेदाभावा ।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ २९४ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ २९५ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एव दसणमग्गणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु  
मिच्छादिद्वि-असंजदसम्मादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणा-  
जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २९६ ॥

सुगममंदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहत्तं ॥ २९७ ॥

अच्छुदर्शनयोमं मिथ्यादृष्टिसे लेकर धीणकयावीतरागछन्नस्य गुणस्थान तक  
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोका अन्तर ओषके समान है ॥ २९३ ॥

क्योंकि, ओषसे इनके अन्तरसे कोई भेद नहीं है ।

अवधिदर्शनी जीवोका अन्तर अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २९४ ॥

केवलदर्शनी जीवोका अन्तर केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २९५ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीलेश्या और कापोत लेश्यावालोंमें  
मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्पद्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना  
जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २९६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहत्तं है ॥ २९७ ॥

१ अचच्छुदर्शनोपु मिथ्यादृष्टयादिधीणम्यायान्ताना सामा योक्तमन्तरम् । स सि १, ८

२ अवधिदर्शनीनोऽवधिज्ञानिवत् । स सि १, ८ ३ केवलदर्शनीनः केवलज्ञानिवत् । स सि १, ८

४ लेश्याख्यादेन कृष्णनीलकापोतलेश्यापु मिथ्यादृष्टयसंयतसम्पद्दृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ।

स सि १, ८

५ एगजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहत्तं । स सि १, ८

तं जहा- सत्तम-पंचम-पढमपुढविमिच्छादिद्वि-असंजदसम्मादिद्विणो किण्ह-णील-  
काउलेस्सिया अण्णगुणं गंतूण ओवकालेण पडिणियत्तिय तं चेव गुणमागदा । लद्धं  
दोण्हं जहण्णंतरं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि  
॥ २९८ ॥

तं जहा- तिणिण मिच्छादिद्विणो किण्ह-णील-काउलेस्सिया सत्तम-पंचम-त्तदिय-  
पुढवीसु कमेण उववणा । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदा ( १ ) विस्संता ( २ ) विस्सुद्धा  
( ३ ) सम्मत्तं पडिवण्णा अंतरिदा अवसाणे मिच्छत्तं गदा । लद्धमंतरं ( ४ ) । मदा  
मणुसेसु उववणा । गवरि सत्तमपुढवीणेण्हओ तिरिक्खाउअं वंधिय ( ५ ) विस्समिय  
( ६ ) तिरिक्खेसु उववज्जदि त्ति धेत्तवं । एवं छ-चहु-चहुअंतोमुहुचेहि ऊणाणि तेत्तीस-  
सत्तारस-सत्त-सागरोवमाणि किण्ह-णील-काउलेस्सियमिच्छादिद्विउक्कस्संतरं होदि । एवम-  
संजदसम्मादिद्विस्स वि वत्तवं । गवरि अह्म-पंच-पंचअंतोमुहुचेहि ऊणाणि तेत्तीस-सत्तारस-

जैसे- सातवीं पृथिवीके कृष्णलेश्यावाले, पांचवीं पृथिवीके नीललेश्यावाले और  
प्रथम पृथिवीके कापोतलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्पद्दृष्टि नारकी जीव अन्य  
गुणस्थानको जाकर अल्प कालसे ही लौटकर उसी गुणस्थानको प्राप्त हुए । इस प्रकार  
दोनों गुणस्थानोंका जघन्य अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः कुछ कम तेतीस,  
सत्तरह और सात सागरोपम है ॥ २९८ ॥

जैसे- कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले तीन मिथ्यादृष्टि जीव क्रमसे सातवीं,  
पांचवीं और तीसरी पृथिवीमें उत्पन्न हुए । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो ( १ ) विश्राम  
ले ( २ ) विशुद्ध हो ( ३ ) सम्यक्त्वको प्राप्त कर अन्तरको प्राप्त हो आयुके अन्तमें  
मिथ्यात्वको प्राप्त हुए । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ( ४ ) । पश्चात् मरण कर मनुष्योंमें  
उत्पन्न हुए । विशेषता यह है कि सातवीं पृथिवीका नारकी तिर्यच आयुको बांध कर ( ५ )  
विश्राम ले ( ६ ) तिर्यचोंमें उत्पन्न होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए । इस प्रकार  
छह अन्तर्मुहत्तोंसे कम तेतीस सागरोपम कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट अन्तर है । चार अन्त-  
र्मुहत्तोंसे कम सत्तरह सागरोपम नीललेश्याका उत्कृष्ट अन्तर है । तथा चार अन्तर्मुहत्तोंसे  
कम सात सागरोपम कापोतलेश्याका उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकार असंयत-  
सम्पद्दृष्टिका भी अन्तर कहना चाहिए । विशेषता यह है कि कृष्णलेश्यावाले  
असंयतसम्पद्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर आठ अन्तर्मुहत्तोंसे कम तेतीस सागरोपम,  
नीललेश्यावाले असंयतसम्पद्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर पांच अन्तर्मुहत्तोंसे कम सत्तरह

सत्तन्त्रागरोपमाणि उत्कृतसंलं ।

मासणसम्मादिट्टिसम्माभिच्छादिट्टिणमंतरं केवचिरं कालदो  
होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओवं ॥ २९९ ॥

सुगममंदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,  
अंतोसुहुरं ॥ ३०० ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण तेतीसं सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि  
॥ ३०१ ॥

तं जहा- निणिण मिच्छादिट्टी जीवा सत्तम-पंचम-तदियपुढवीसु किण्ह-णील-काउ-  
लेमिया उपण्णा । छहि पज्जचीहि पज्जचयदा (१) विस्संता (२) विसुद्धा (३)  
उपममममं पडिउण्णा (४) सारणं गदा । मिच्छं गंतूणंतग्गिदा । अंतोसुहुरावसे

सागरोपम और नापोतलेइयावाले नसंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर पांच अन्त-  
मुहूर्तमे तम सान सागरोपम होता है ।

उक्त तीनों अशुभलेइयावाले मारादनमम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका  
अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥२९९॥

यह एत सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असं-  
रयातना भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम,  
सत्तरह सागरोपम और सात सागरोपम है ॥ ३०१ ॥

जैसे- कृष्ण, नील और कापोतलेइयावाले तीन मिथ्यादृष्टि जीव क्रमशः सातवीं,  
पांचवीं और तीसरी पृथिवीमें उत्पन्न हुए । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम  
ले (२) विद्युत् हो (३) उपरामसम्यक्त्वको प्राप्त हुए (४) । पुनः सासादनगुण-  
स्थानको गये । पद्धान् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुए । पुनः जीवनके अन्तर्मुहूर्त

१ सागरोपमदृष्टि तन्मिथ्यादृष्टि जीवोंकी अपेक्षा सामान्यत् । स. सि. ९, ८

२ पृथ्वी यदि जघन्ये पत्न्योपमानसंयगगोऽन्तर्मुहूर्तमेव । स. सि. १, ८

३ उत्तरेण पार्थिवत्वसत्त्वमन्त्रागरोपमाणि देशोनाति । स. सि. १, ८.

जीविए उद्यममममं पडिउण्णा । सासणं गंतूण विदियसमए मदा मणुसेसु उगवण्णा ।  
णवरि सत्तमपुढवीए मान्णा मिच्छं गंतूण (५) तिरिकरोववज्जंति चि वत्तवं ।  
एवं पंच-चतु-चतु-अंतोसुहुरेहि उणाणि तेतीस-सत्तारस-सत्त-सागरोवमाणि किण्ह-णील-  
काउलेस्सियसासणुऋसंतरं होदि । एवासमओ अंतोसुहुरेहि उणाणि तेतीस-सत्तारस-सत्त-  
एवं सम्माभिच्छादिट्टिस्स वि । णवरि छहि अंतोसुहुरेहि उणाणि तेतीस-सत्तारस-सत्त-  
सागरोवमाणि किण्ह-णील-काउलेस्सियसम्माभिच्छादिट्टिउक्कसंतरं ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्टिअसंजदसम्मादिट्टिणमंतरं  
केवचिरं कालदो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं  
॥ ३०२ ॥

सुगमयेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुरं ॥ ३०३ ॥

तं जहा- चत्तारि जीवा मिच्छादिट्टि-सम्मादिट्टिणो तेउ-पम्मलेस्सिया अण्णगुणं

अवशिष्ट रहने पर उपरामसम्यक्त्वको प्राप्त हुए । पश्चात् सासादनगुणस्थानमें जाकर  
क्रितीय समयमें मेरे और मनुष्योंमें उत्पन्न हुए । विशेषता यह है कि सातवी पृथिवीके  
सासादनसम्यग्दृष्टि नारकी मिथ्यात्वको प्राप्त होकर (५) तिरिचोंमें उत्पन्न होते हैं,  
पेसा कहना चाहिए । इस प्रकार पाच, चार और चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम क्रमशः तेतीस,  
सत्तरह और सात सागरोपम कालप्रमाण कृष्ण, नील और कापोत लेइयावाले सासादन-  
सम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है । सासादनगुणस्थानमें जाकर रहनेका एक समय  
अन्तर्मुहूर्तके ही भीतर प्रविष्ट है, इसलिये पृथक् नहीं कहा । इसी प्रकार तीनों अशुभ-  
लेइयावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका भी उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिए । विशेषता यह है  
कि यहाँपर छह-छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस, सत्तरह और सात सागरोपमकाल क्रमशः  
कृष्ण, नील और कापोत लेइयावालोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

तेजोलेइया और पबलेइयावालोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका  
अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥३०२॥  
यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०३ ॥

जैसे- तेजोलेइया और पबलेइयावाले मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि चार जीव

१ तेज-पबलेइयायोर्मिथ्यादृष्टयसत्तसम्यग्दृष्टयोर्नानाजीविमेषया नास्त्यन्तरत् । स. सि. १, ८.

२ पृथ्वीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । स. सि. १, ८.

गंतूण सच्चजहणकालेण पडिणियत्तिय तं चेत्र गुणमागदा । लद्धमंतरं ।

**उक्कस्सेण वे अट्टारस सागरोवमाणि सादिरैयाणि ॥ ३०४ ॥**

तं जहा- वे मिच्छादिद्विणो तेउ-पम्मलेस्सिया सादिरिय-वे-अट्टारससागरोवमाउ-  
द्विदिएसु देवेषु उववणा । छहि पज्जचीहि पज्जत्तयदा (१) विस्सता (२) विमुद्धा  
(३) सम्मत्तं धेत्तूणंतरिदा । सगद्धिदिं जीविय अवसाणे भिच्छत्तं गदा (४) । लद्धं  
सादिरिय-वे-अट्टारससागरोवममेत्तरं । एवं सम्मादिद्विस्स वि । णत्तरि पंचहि अंतोसुहुत्तेहि  
ऊणियाओ सगद्धिदीओ अंतरं ।

**सासनसम्भादिद्वि-सम्भाभिच्छादिद्विणमंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओर्ध्वं ॥ ३०५ ॥**

सुगमभेदं ।

अन्य गुणस्थानको जाकर सर्वजघन्य कालसे लौटकर उसी ही गुणस्थानको आगये ।  
इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागरोपम और  
साधिक अट्टारह सागरोपम है ॥ ३०४ ॥

जैसे- तेज और पद्म लेख्यावाले दो मिथ्यादृष्टि जीव साधिक दो सागरोपम और  
साधिक अट्टारह सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए । छहों पर्याप्तियोंसे  
पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विमुद्ध हो (३) और सम्यक्त्वको ग्रहण कर अन्तरको  
प्राप्त हुये । पुनः अपनी स्थितिप्रमाण जीवित रहकर आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त  
हुए (४) । इस प्रकार साधिक दो सागरोपमकाल तेजोलेख्यावाले मिथ्यादृष्टिका और  
साधिक अट्टारह सागरोपमकाल पद्मलेख्यावाले मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त  
होगया । इसी प्रकार तेज और पद्म लेख्यावाले असयतसम्यग्दृष्टि जीवका भी अन्तर कहना  
चाहिए । विशेषता यह है कि पाच अन्तर्मुहूर्तसे कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण अन्तर  
होता है ।

तेजोलेख्या और पद्मलेख्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि  
जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओर्ध्वके समान  
है ॥ ३०५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ उत्तरपेण दे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि । स सि १, ८

२ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवपेक्षया सामा यवत् । स सि १, ८

**एगजीवं पडुच्च जहणेण पल्लिदोवयस्स असंखेज्जदिभागो,  
अंतोसुहुत्तं ॥ ३०६ ॥**

एदं पि सुगम ।

**उक्कस्सेण वे अट्टारस सागरोवमाणि सादिरैयाणि ॥ ३०७ ॥**  
तं जहा- वे सासणा तेउ-पम्मलेस्सिया सादिरिय-वे-अट्टारससागरोवमाउद्विदिएसु  
देवेषु उववणा । एगसमयमच्छिय विदियसमए निच्छत्तं गंतूणतरिदा । अवसाणे वे नि  
उवसमसम्भत्तं पडिचणा । पुणो सासणं गंतूण विदियसमए सदा । एवं सादिरिय-वे-अट्टारस-  
सागरोवमाणि दुग्ममऊणाणि सासणुककस्संतरं होदि । एवं सम्भाभिच्छादिद्विस्स नि ।  
णत्तरि छहि अंतोसुहुत्तेहि ऊणियाओ उचछिदीओ अंतरं ।

**संजदांसजद-पमत्त-अपमत्तसंसजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि,  
णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३०८ ॥**

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके  
असंख्यात्वेन भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः साधिक दो सागरोपम  
और अट्टारह सागरोपम है ॥ ३०७ ॥

जैसे- तेज और पद्म लेख्यावाले दो सासादनसम्यग्दृष्टि जीव साधिक दो सागरो-  
पम और साधिक अट्टारह सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए । वहाँ एक  
समय रहकर दूसरे समयमें मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुए । आयुके अन्तमें दोनों  
ही उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए । पश्चात् सासादनयुणस्थानको जाकर दूसरे समयमें  
मरे । इस प्रकार दो समय कम साधिक दो सागरोपम और साधिक अट्टारह सागरोपम  
उक्त दोनों लेख्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकार  
उक्त दोनों लेख्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका भी अन्तर जानना चाहिए । विशेषता  
यह है कि इनके छह अन्तर्मुहूर्तसे कम अपनी उक्त स्थितियोंप्रमाण अन्तर होता है ।

तेज और पद्म लेख्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका  
अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर  
है ॥ ३०८ ॥

१ एक्कीज्ज प्रति जघनेन पल्योपमालेख्ययागोऽन्तर्मुहूर्तत्र । स सि १, ८.

२ उत्तरपेण दे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि । स सि १, ८

३ सम्यग्मिथ्यादृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवपेक्षया एक्कीवपेक्षया च नाल्लत्तरय् । स सि १, ८



संजदासंजद-पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणेग-  
जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३१५ ॥

कुदो ? गाणाजीवपवाहस्स बोच्छेदाभावा, एगजीवस्स लेस्सद्वादो गुणद्वाए  
नहुसुवदेसादो ।

अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च  
गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३१६ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१७ ॥

तं जहा- एको अपमत्तो सुक्कलेस्साए अच्चिदो उवसमसेदिं पडिदणंतरिय  
सव्वजहणकालेण पडिणियत्तिय अपमत्तो जादो । लद्धमंतरं ।

उक्कस्समंतोमुहुत्तं ॥ ३१८ ॥

शुक्कलेश्यावाले संयतासंयत और अमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ?  
नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३१५ ॥

क्योंकि, उक्त गुणस्थानवर्ती नाना जीवोंके प्रवाहका कभी न्युच्छेद नहीं होता  
है । तथा एक जीवकी अपेक्षा भी अन्तर नहीं है, क्योंकि, लेश्याके कालसे गुणस्थानका  
काल बहुत होता है, ऐसा उपदेश पाया जाता है ।

शुक्कलेश्यावाले अप्रमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी  
अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३१६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१७ ॥

जैसे- शुक्कलेश्यामें विद्यमान कोई एक अप्रमत्तसयत उपशमश्रेणीपर चढ़कर  
अन्तरको प्राप्त हो सर्वजघन्य कालसे लौटकर अप्रमत्तसयत हुआ । इस प्रकार अन्तर  
प्राप्त होगया ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उच्छ्रष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१८ ॥

१ संयतासयतप्रमत्तसयतयोस्तेजोलेश्यावत् । स सि १, ८

२ अप्रमत्तसयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यतरम् । स सि १, ८

३ एरुजीव प्रति जघन्यमुच्छ्रष्ट चात्तर्मुहूर्तः । स सि १, ८

एदस्स जहण्णभंगो । गवरि सव्वचिरेण कालेण उवसमसेदीदो ओदिण्णस्स  
वत्तवं ।

तिण्हमुवसामाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं  
पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ ३१९ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३२० ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२१ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२२ ॥

एदसि दोण्हं सुत्ताणमत्थे भण्णमाणे खिप्प-चिरकालेहि उवसमसेदिं चडिय ओदि-  
ण्णाणं जहण्णुक्कस्सकाला वत्तन्वा ।

इसका अन्तर भी जघन्य अन्तरपरूपाणाके समान है । विशेषता यह है कि  
सर्वदीर्घकालात्मक अन्तर्मुहूर्त द्वारा उपशमश्रेणीसे उतरे हुए जीवके उच्छ्रष्ट अन्तर  
कहना चाहिए ।

शुक्कलेश्यावाले अपूर्वकरण, अनिष्टविकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती  
तीनों उपशामक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे  
एक समय अन्तर है ॥ ३१९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्कलेश्यावाले तीनों उपशामकोंका उच्छ्रष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३२० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२१ ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उच्छ्रष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२२ ॥

इन दोनों सूत्रोंका अर्थ कहने पर क्षिप्र ( लघु ) कालसे उपशमश्रेणी पर चढ़कर  
उतरे हुए जीवोंके जघन्य अन्तर कहना चाहिए, तथा चिर ( दीर्घ ) कालसे उपशमश्रेणी  
पर चढ़कर उतरे हुए जीवोंके उच्छ्रष्ट अन्तर कहना चाहिए ।

१ नयाणामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स सि १, ८

२ एरुजीव प्रति जघन्यमुच्छ्रष्ट चात्तर्मुहूर्तः । स सि १, ८

३ मत्तिपु ' ओधिणाण ' इति पाठ ।

उवसंतकसायवीद्रागछटुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि,  
णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ ३२३ ॥

गुणसमंते ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३२४ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३२५ ॥

उवसंतको उवरे उवसंतकमाण पडिवज्जमाणगुणद्वयाभावा, हेद्वा ओदिणस्स  
पि लेसंतमंतिमंतरेण पुणो उवसंतगुणसमहणाभावा ।

चटुण्हं खवगा ओधं ॥ ३२६ ॥

शुक्लेस्यावाले उपशान्तकणायवीतरागछटुस्योका अन्तर कितने काल होता है ?  
नाना जीवोंकी अपेक्षा जन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३२३ ॥

यह नून सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३२४ ॥

या एर भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३२५ ॥

क्योंकि, उपशान्तकणाय गुणस्थानसे ऊपर उपशान्तकणायी जीवके द्वारा प्रतिपद्य-  
मान गुणस्थानका अभाव है, तथा नीचे उतरे हुए जीवके भी अन्य लेख्याके संक्रमणके  
बिना पुन. उपशान्तकणाय गुणस्थानका ग्रहण हो नहीं सकता है ।

विशेषार्थ—उपशान्तकणायगुणस्थानके अन्तरका अभाव वतानेका कारण यह है  
कि ग्यारहवें गुणस्थानसे ऊपर तो वह चढ़ नहीं सकता है, क्योंकि, वहांपर क्षपकोंका  
ही गमन होता है । और यदि नीचे उतरकर पुन. उपशमश्रेणीपर चढ़े, तो नीचेके गुण-  
स्थानमें शुक्लेस्यासे पीत पद्मादि लेख्याका परिवर्तन हो जायगा, क्योंकि, वहांपर एक  
लेख्याके कालसे गुणस्थानका काल बहुत वताया गया है ।

शुक्लेस्यावाले चारों क्षपकोंका अन्तर ओधके समान है ॥ ३२६ ॥

१ उपशान्तकणाय नानाजीवपेक्षा सामान्यत्वं । न सि १, ८

२ पृच्छीम प्री नारुणत्वं । स सि १, ८. ३ प्रतिपु 'लेस्तर' इति पाठ ।

४ चतुर्णा क्षपसामो मयोगेत्त्वलिनामलेस्यानां च सामान्यत्वं । स सि १, ८.

सजोगिकेवली ओधं ॥ ३२७ ॥

दो चि सुत्ताणि सुगसाणि ।

एव लेस्सामगणां समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव अजोगि-  
केवलि ति ओधं ॥ ३२८ ॥

कुदो ? सव्वपयोरेण ओघपरुवणादो भेदाभावा ।

अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च  
णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३२९ ॥

कुदो ? अवव्यपवाहवोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३३० ॥

कुदो ? गुणंतरसंकतीए तत्थाभावा ।

एव भवियसगणा समत्ता ।

शुक्लेस्यावाले सयोगिकेवलीका अन्तर ओधके समान है ॥ ३२७ ॥  
ये दोनों सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार लेख्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणके अनुवादसे भव्यसिद्धिकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली  
तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती भव्य जीवोंका अन्तर ओधके समान है ॥ ३२८ ॥

क्योंकि, सर्व प्रकार ओघप्ररूपणसे भव्यमार्गणकी अन्तरप्ररूपणमें कोई  
भेद नहीं है ।

अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा  
अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३२९ ॥

क्योंकि, अव्य जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है ।

अभव्य जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३३० ॥

क्योंकि, अव्यमें अन्य गुणस्थानके परिवर्तनका अभाव है ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

१ प्रतिपु 'लेस्समगणा' इति पाठ ।

२ भव्यादेवादेन भव्येणु भियादृष्टथाययोगेत्त्वयत्तानां सामान्यत्वं । स. सि १, ८.

३ अव्ययानां नानाजीवपेक्षा पृच्छीमपेक्षा च नारुणत्वं । स सि. १, ८.



सम्पत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥३३१॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३२ ॥

तं जहा- एगो असंजदसम्मादिट्ठी संजमासजमगुणं गंतूणं सव्वजहणेण कालेण पुणो असंजदसम्मादिट्ठी जादो । लद्धमंतरं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ ३३३ ॥

तं जहा- एगो भिच्छादिट्ठी अट्ठावीसंतकम्मिओ पंचदियतिग्गखसणिसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उवयणो । छहि पज्जत्तोहि पज्जत्तयोदो ( १ ) विस्सतो ( २ ) विसुद्धो ( ३ ) वेदगसम्मत्तं पडिपणो ( ४ ) । संजमासंजमगुणं गंतूणंतरिदो पुव्वकोडि जीविय मदो देवो जादो । एवं चट्ठहि अंतोमुहुत्तेहि जणिया पुव्वकोडी उक्कस्संतरं ।

'संजदासंजदपहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछट्टुमत्था ओधिणामंगो ॥ ३३४ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियेमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३३१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३२ ॥

जैसे- एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सयमासंयम गुणस्थानको प्राप्त होकर सर्वजघन्य कालसे पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥३३३॥ जैसे- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव पंचेन्द्रिय विश्राम ले ( २ ) विद्युद्ध हो ( ३ ) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ ( ४ ) । पुनः संयमासंयम गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त हो पूर्वकोटी वर्तक जीवित रह कर मरा और देव हुआ । इस प्रकार चार अन्तर्मुहूर्तोंस कम पूर्वकोटी वर्ष असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकपायवितरागछत्रस्य गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवती सम्यग्दृष्टियोंका अन्तर अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ ३३४ ॥

१ मत्तियु 'सव्वरप्पहुडि' इति पाठ ।

जया ओधिणाणमगणाए संजदासंजदादीणिमंतरपरुचणा कदा, तथा कादव्वा, गत्थि एत्थ कोह विसो ।

चटुण्हं खवगा अजोगिकेवली ओधं ॥ ३३५ ॥

सजोगिकेवली ओधं ॥ ३३६ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३३७ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३८ ॥

तं जहा- एगको असंजदसम्मादिट्ठी अणगुणं गंतूण सव्वजहणकालेण असंजदसम्मादिट्ठी जादो । लद्धमंतरं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ ३३९ ॥

जिस प्रकारसे अवधिशान्तमार्गणमें सयतासंयत आदिकोंके अन्तरकी प्ररूपणा की है, उसी प्रकार यहां पर भी करना चाहिए, क्योंकि, उससे यहां पर कोई विशेषता नहीं है ।

सम्यग्दृष्टि चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३३५ ॥

सम्यग्दृष्टि सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३३६ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियेमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३३७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३८ ॥

जैसे- एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव अन्य ( संयतासंयतादि ) गुणस्थानको जाकर सर्वजघन्य कालसे पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी वर्ष है ॥ ३३९ ॥

१ सम्यक्त्वावुवादेण क्षापिसम्यग्दृष्टिचसयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवोपेक्षया नात्स्यन्तस्य स ति. १, ८.

२ पुव्वजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । स ति १, ८ ३ उत्तरेण पूर्वकोटी देवोना । स ति. १, ८

तं जन्ना- एकको पुत्रकोडाउएसु मणुसेसुवजिय गन्भादिअहुवस्सियो जादो ।  
दंयणमोहणीय मीय रइयमम्मादिही जादो (१) । अतोमुहुचमच्छिद्रण (२) संजमासंजमं  
संजमं या पडिवजिय पुत्रकोडिं गमिय काल गदो देवो जादो । अहुवस्सेहि चि-  
अतोमुहुचेहि य ऊणिया पुत्रकोडी अंतरं ।

संजदासंजद-पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि णाणा-  
जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३४० ॥

सुगमपदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३४१ ॥

पदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरैयाणि ॥ ३४२ ॥

तं जन्ना- एकको पुत्रकोडाउएसु मणुसेसु उवण्णो । गन्भादिअहुवस्साणसुविरि  
अतोमुहुचेण (१) राइयं पट्टमिय (२) विस्समिय (३) संजमासंजमं पडिवजिय (४)

जेमे- एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर गर्भसे लेकर आठ  
वर्षका हुआ और अर्जुनमोहनीयका शय्य करके श्वाथिकसम्यग्दृष्टि होगया (१) । वहाँ  
अन्तर्मुहूर्तों रह करके (२) संयमासंयम या संयमको प्राप्त होकर और पूर्वकोटी वर्ष  
निनाकर मरणको प्राप्त हो देने हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और दो अन्तर्मुहूर्तोंसे कम  
पूर्वकोटी वर्ष अत्यंत श्वाथिकसम्यग्दृष्टिज्ञ उत्कृष्ट अन्तर है ।

श्वाथिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत और प्रमत्तसंयत जीवोंका अन्तर कितने काल  
होता है ? नाचा जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३४० ॥

यत् सूत सुगम हे ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जवन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३४१ ॥

यत् सूत भी सुगम हे ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साथिक तेत्तीस सागरोपम  
है ॥ ३४२ ॥

जेमे- एक जीव पूर्वकोटि वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि  
लेकर आठ वर्षोंके पश्चात् अन्तर्मुहूर्तोंसे (१) श्वाथिकसम्यग्भवका प्रस्थापनकर (२)  
विश्राम ले (३) संयमासंयमको प्राप्त कर (४) संयमको प्राप्त हुआ । संयमसहित

१ गणागणप्रमत्तवापणत्तगणानि नागजीवोपेक्षया नास्त्यन्तरे । स ति १, ८.

२ इत्थीति अति जन्त्येनात्तर्मुहूर्तं । स. ति. १, ८.

३ उच्चर्ण पत्तिसागरोपमाणि सादिरैयाणि । म ति १, ८. ४ प्रतिपु 'पट्टमिय' इति पाठ ।

संजमं पडिवण्णो । पुत्रकोडिं गमिय मदो समऊणतेत्तीससागरोवमाउद्धिदिएसु उव-  
वण्णो । तदो चुदो पुत्रकोडाउएसु मणुसेसुवण्णो । थोवानसेसे जीविए संजमासंजमं  
गदो (५) । तदो अप्पमत्तादिणवहि अंतोमुहुचेहि सिद्धो जादो । अहुवस्सेहि चोइस-  
अंतोमुहुचेहि य ऊणदोपुत्रकोडीहिं सादिरैयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं  
संजदासंजदस्स ।

पमत्तस्स उच्चदे- एकको पमत्तो अप्पमत्तो (१) अपुत्रो (२) अणियद्धी  
(३) सुहुमो (४) उवसंतो (५) पुणो वि सुहुमो (६) अणियद्धी (७) अपुत्रो  
(८) अप्पमत्तो (९) अद्वाखएण कालं गदो । समऊणतेत्तीससागरोवमाउद्धिदिएसु  
देवेषु उवण्णो । तदो चुदो पुत्रकोडाउएसु मणुसेसु उवण्णो । अंतोमुहुचावसेसे जीविए  
पमत्तो जादो । लद्धमंतरं (१) । तदो अप्पमत्तो (२) । उवरि छ अतोमुहुत्ता । अंतरस्स  
चाहिया' अहु अंतोमुहुत्ता, अंतरस्स अब्भंतरिमा वि णत्त, तेणगतोमुहुत्तवभहियपुत्रकोडीए  
सादिरैयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं ।

पूर्वकोटीकाल वितार मरा और एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले  
वैष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहासे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । जीव-  
नके अल्प अवशेष रह जाने पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (५) । इसके पश्चात्  
अप्रमत्तादि गुणस्थानसम्बन्धी चो अन्तर्मुहूर्तोंसे (श्रेण्यारोहण करता हुआ) सिद्ध  
होगया । इस प्रकार आठ वर्ष और चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम दो पूर्वकोटियोंसे साथिक  
तेतीस सागरोपमकाल श्वाथिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

श्वाथिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक श्वाथिकसम्यग्दृष्टि  
प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत (१) अपूर्वकरण (२) अनिचुत्तिकरण (३) सूक्ष्मसाप्प-  
राय (४) उपरान्तकराय (५) पुनः सूक्ष्मसाप्पराय (६) अनिचुत्तिकरण (७) अपूर्व-  
करण (८) अप्रमत्तराय (९) होकर (गुणस्थान और आयुके) कालक्षयसे मरणको  
प्राप्त हो एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले वैष्योंमें उत्पन्न हुआ । पुनः  
वहाँसे च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ जीवनके अन्तर्मुहूर्त  
अवशिष्ट रह जाने पर प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया (१) । पश्चात्  
अप्रमत्तसंयत हुआ (२) । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाए । अन्तरके बाहरी  
आठ अन्तर्मुहूर्त है और अन्तरके भीतरी नौ अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए नौमेंसे आठके घटा  
देने पर शेष बचे हुए एक अन्तर्मुहूर्तसे अधिक पूर्वकोटीसे साथिक तेतीस सागरोपम  
श्वाथिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अथवा अंतरसम्भंतराओ दो अप्पमत्तद्वाओ, तासिं बाहिरिया एक्का पमत्तद्वा सुद्धा । अंतरम्भंतराओ छ उवसामगद्वाओ, तासिं बाहिरियाओ तिणि खवगद्वाओ सुद्धाओ । अंतरम्भंतरिमाए उवसंतद्वाए एक्किक्किस्से खवगद्वाए अद्धं सुद्धं । अवसेसा अद्धुद्धा अंतोमुहुत्ता । तेहि ज्जणियाए पुव्वकोडीए सादिरियाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि पमत्तस्सुक्कसंतंरं ।

अप्पमत्तस्स उच्चदे- एक्को अप्पमत्तो खइयस्समादिद्धी अपुव्वो (१) अणियद्धी (२) सुहुमो (३) उवसंतो (४) पुणो वि सुहुमो (५) अणियद्धी (६) अपुव्वो होदूण (७) कालं गदो समज्जणतेत्तीससागरोवमाउद्धिदिएसु देवेसुववण्णो । तदो उदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो, अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे अप्पमत्तो जादो । लद्धमंतंरं (१) । तदो पमत्तो (२) पुणो अप्पमत्तो (३) । उवरी छ अंतोमुहुत्ता । अंतरस्स अब्भंतरिसाओ छ उवसामगद्वाओ बाहिरिल्लियासु तिसु खवगद्वासु सुद्धाओ । अब्भं-

अथवा, अन्तरके आभ्यन्तरी दो अप्रमत्तकाल हे और उनके बाहरी एक प्रमत्तकाल शुद्ध है । (अतएव घटाने पर शून्य शेष रहा, क्योंकि, अप्रमत्तसंयतके कालसे प्रमत्तसंयतका काल ढूना होता है ।) तथा अन्तरके भीतरी छह उपशामककाल हैं, और उनके बाहरी तीन क्षपककाल शुद्ध हैं । (अतएव घटा देने पर शेष कुछ नहीं रहा, क्योंकि उपशामकेतिके कालसे क्षपकश्रेणीका काल दुगुना होता है ।) अन्तरके भीतरी उपशामककालमेंसे एक क्षपककालके आधा घटाने पर क्षपककालका आधा शेष रहता है । इस प्रकार सब मिलाकर साढ़े तीन अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहे । उन साढ़े तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल क्षायिकसम्पद्यष्टि प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

क्षायिकसम्पद्यष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक अप्रमत्तसंयत क्षायिकसम्पद्यष्टि जीव अपूर्वकरण (१) अनिवृत्तिकरण (२) सूक्ष्मसाम्पराय (२) उपशान्तकपाय (४) होकर पुनरपि सूक्ष्मसाम्पराय (५) अनिवृत्तिकरण (६) अपूर्वकरण (७) होकर मरणको प्राप्त हुआ और एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और ससारके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर अप्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया (१) । पश्चात् प्रमत्तसंयत (२) पुनः अप्रमत्तसंयत (३) हुआ । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलायें । अन्तरके आभ्यन्तरी छह उपशामककाल हैं और बाहरी तीन क्षपककाल हैं, अतएव घटा देने पर शेष कुछ नहीं रहा ।

तरिमाए उवसंतद्वाए खवगद्वाए अद्धं सुद्धं । अवसेसा एअद्धद्धंअंतोमुहुत्ता । एदेहि ज्जण-पुव्वकोडीए सादिरियाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि अप्पमत्तुक्कसंतंरं ।

चटुण्हमुवसामगणमंतंरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३४३ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुथंतं ॥ ३४४ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३४५ ॥

एदं पि अवगदत्थं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरियाणि ॥ ३४६ ॥

तं जहा- एक्को पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । अद्धवस्सेहि अंतोमुहुत्त-ब्भहिएहि (१) अप्पमत्तो जादो (२) । पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण तम्मिह चैव

अन्तरके भीतरी उपशान्तकालमेंसे क्षपककालका आधा घटाने पर आधा काल शेष रहा । अवशिष्ट साढ़े पांच अन्तर्मुहूर्त रहे । उनसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल क्षायिकसम्पद्यष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

क्षायिकसम्पद्यष्टि चारों उपशामकोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३४३ ॥

यह सब सुगम है ।

उक्त जीवोंमें उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३४४ ॥

यह सब भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३४५ ॥

इस सूत्रका भी अर्थ ज्ञात है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरोपम है ॥ ३४६ ॥

जैसे- एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षोंके द्वारा (१) अप्रमत्तसंयत हुआ (२) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत-संबंधी सहस्रों परिवर्तनोंको करके उसी कालमें क्षायिकसम्पद्यष्टिको भी प्रस्थापनकर (३)

१ प्रतिशु 'चट्ट' इति पाठः ।

२ चतुर्णामुपशमनानां नानाजीवोपेक्षया सामान्यवत् । स सि १, ८.

३ पुस्वीव मति जक्क्येनान्तर्मुहूर्तः । स सि १, ८

४ उत्तरेण वयश्रिल्लसागरोवमाणि सादिरियाणि । स सि १, ८

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।  
वेदगसम्मादिष्टिसु असंजदसम्मादिष्टिणं सम्मादिष्टिभंगो ॥३४९॥  
सम्मत्तमगणाए ओघमिह जघा असंजदसम्मादिष्टिणमंतरं परुविदं तथा एत्थ  
वि परुविदव्वं ।

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च  
णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३५० ॥

सुगमसेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुतं ॥ ३५१ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण छावट्ठि सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३५२ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियौमे असंयतसम्यग्दृष्टियौका अन्तर सम्यग्दृष्टिसामान्यके समान  
है ॥ ३४९ ॥

जिस प्रकारसे सम्यक्स्वमार्गणके ओघमें असंयतसम्यग्दृष्टियौका अन्तर कहा है,  
उसी प्रकारसे यहां पर भी कहना चाहिए ।

वेदकसम्यग्दृष्टियौमे संयतासंयतौका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी  
अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३५० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जवन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३५१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छयासठ सागरोपम  
है ॥ ३५२ ॥

१ क्षायोपशमितसम्यग्दृष्टिचगयतम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव इति जवन्येनात-  
पेहूर्तं । उत्तर्येण पूर्वतोटी देशोना । स पि १, ८.

२ सयतासयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

३ एकजीव इति जवन्येनात्तर्मुहूर्तः । स. सि १, ८

४ उत्तर्येण पर्यष्टिसागरोपमाणि देशोनाति । स. पि १, ८.

गडयं पट्टयिय (३) उययममेडीपाओगत्रियोहीए विमुद्धो (४) अणुच्चो (५) अणियद्धी  
(६) मुद्धुमो (७) उयमंतो (८) पुणो सुद्धुमो (९) अणियद्धी (१०) अणुच्चो  
जादो (११) अतिरिदो । पुब्बकोटिं संजममणुपालिय तेचीससागरोवमाउट्टिदिग्गेषु देवेषु  
उत्तरणो । नदो चुदो पुब्बकोडाउगेषु मणुगेषु उयवणो । अंतोसुहुत्तावमेषे जीविए  
अणुच्चो जादो (१२) । लद्धमंतरं । नदो अणियद्धी (१३) सुद्धुमो (१४) उयसंतो  
(१५) पुणो मुद्धुमो (१६) अणियद्धी (१७) अणुच्चो जादो (१८) । उवरि अप-  
मत्ताटिणअंतोमुद्धुत्तेहि सिद्धि गदो । एवमद्धवस्सेहि सत्तावीसअंतोसुहुत्तेहि उणदोपुब्ब-  
कोटीति मादिय्याणि तेत्तौमं सागरोवमाणि अंतरं । एवं चेत्त तिणहमुवसमगणं । णवरि  
पंचमीम तेत्तौम एत्तन्नीम मुद्धुत्ता उणा कादव्वा ।

चटुणहं खवा अजोगिकेवली ओघं ॥ ३४७ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३४८ ॥

उपशामोर्णिके योग्य विगृह्णित्ते विगृह्ण हो (४) अपूर्वकरण (५) अनित्यचित्करण (६)  
सूक्ष्मसाधारण्य (७) उपशान्तकण्य (८) हो, पुन सूक्ष्मसाधारण्य (९) अनित्यचित्-  
करण (१०) अपूर्वकरण दुग्गा (११) और अन्तरको प्राप्त होगया । पुन. पूर्वकोटि तक  
संयमको परियाल्लन कर तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहासे  
ज्युन हो पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । जीवन्तके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह  
जात पर अपूर्वकरण दुग्गा (१२) । इत्त प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पुन. अनित्यचित्-  
करण (१३) सूक्ष्मसाधारण्य (१४) उपशान्तकण्य (१५) पुनः सूक्ष्मसाधारण्य (१६)  
अनित्यचित्करण (१७) और अपूर्वकरण (१८) हुआ । पश्चात् ऊपरके अप्रमत्तादि गुण-  
स्थानसम्पत्ती ना अन्तर्मुहूर्तमि सिद्धिको प्राप्त हुआ । इस प्रकार आठ वर्षोंसे और  
सत्ताईस अन्तर्मुहूर्तोंके कम दो पूर्वकोटियोंसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टि अपूर्वकरणसयतका उत्कृष्ट अन्तर है । इसी प्रकार शेष तीन उपशामकोका भी  
अन्तर जानना चाहिए । विदोपता यह है कि अनित्यचित्सयन उपशामकेके पच्चीस  
अन्तर्मुहूर्त, सूक्ष्मसाधारण्य उपशामकेके तेवीस अन्तर्मुहूर्त और उपशान्तकण्यकेके रक्कीस  
अन्तर्मुहूर्त कम करना चाहिए ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि चागे क्षपक और अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान  
है ॥ ३४७ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टि सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३४८ ॥

तं जहा- एकको भिच्छादिही वेदगसम्मरां संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो । अतोमुहुचमच्छिय संजमं पडिवण्णो अंतरिदो । जचितयं कालं संजमासंजमेण संजमेण च अच्छिदो तेत्तियमेचेणूणतेत्तीससागरोवमाउड्डिदिदेवसु उववण्णो । तदो चुदो मणुसेसु उववण्णो । तत्थ जचितयं काल असजमेण सजमेण वा अच्छदि, पुणो सग्गदो मणुसग्गदि-मांगत्तूण जं वासपुघत्तिकासलमच्छिस्सदि तेहि दोहि वि कालेहि उण्णतेत्तीससागरोवमआउ-ड्डिदिएसु देवसु उववण्णो । तदो चुदो मणुसो जादो । वे अतोमुहुचावसेसे वेदगसम्मत्त-काले परिणामपच्चएण संजनासंजमं पडिवण्णो । लद्धमंतरं । तदो अतोमुहुचेण दंसण-मोहणीयं खियि खइयसम्मादिही जादो । आदिल्लमेक्कं अंतिल्ला दुवे' अतोमुहुचा, एदेहि तीहि अतोमुहुचेहि उण्णाणि छावड्डिसागरोवमाणि संजदासंजदुकस्संतरं ।

**पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३५३ ॥**

सुगममंदं ।

जैसे- एक मिथ्यादृष्टि जीव वेदकसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ । अन्तर्मुहूर्त रह कर पुनः संयमको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हुआ । पुनः मरणकर जितने काल संयमासंयम और संयमके साथ रहा था उतने ही कालसे कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहासे च्युत हो मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहा पर जितने काल असंयमके अथवा संयमके साथ रहा है और स्वर्गसे मनुष्य-गतिमें आकर जितने वर्षपृथस्त्वादि काल असयम अथवा सयमके साथ रहेगा उन दोनों ही कालोंसे कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहांसे च्युत हो मनुष्य हुआ । इस प्रकार वेदकसम्यक्त्वके जालमें दो अन्तर्मुहूर्त अवधिष्ट रह जाने पर परिणामोंके निमित्तसे सयमासंयमको प्राप्त हुआ । तब अन्तर लब्ध हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्तसे दर्शनमोहनीयका क्षणकर क्षायिकसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार आदिका एक और अन्तके दो अन्तर्मुहूर्त, इन तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम छयासठ सागरोपमकाल वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ मप्रतो 'दुवे' इति पाठ । २ प्रमत्तप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवोपेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

**एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्तं ॥ ३५४ ॥**

एदं वि सुगमं ।

**उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरैयाणि ॥ ३५५ ॥**

तं जहा- एकको पमत्तो अप्पमत्तो होदूण अतोमुहुचमच्छिय तेत्तीससागरोवमाउ-ड्डिदिएसु देवसुवण्णो । तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसुवण्णो । अतोमुहुचावसेसे संसारे पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । खइयं पडुविय खवगसेडीयाओगअप्पमत्तो होदूण (२) खवगसेडिभालदो अपुव्वादि छअतोमुहुचेहि णिवुदो । अंतरस्स आदिल्लमेक्कमंतो-मुहुत्तं अंतरवाहिरैसु अड्डअतोमुहुचेसु सोहिदे अवसेसा सत्त अतोमुहुत्ता । एदेहि उण-पुव्वकोडीए सादिरैयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि पमत्तसंजदुकस्संतरं ।

अप्पमत्तरस उच्चदे- एकको अप्पमत्तो पमत्तो होदूण अतोमुहुत्तमच्छिय ( १ ) समउण्णतेत्तीससागरोवमाउड्डिदिदेवसु उववण्णो । तदो चुदो पुव्वकोडाएसु मणुसेसु उव-

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३५४ ॥ यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरोपम है ॥ ३५५ ॥

जैसे- एक प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत हो अन्तर्मुहूर्त रहकर तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहासे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । ससारके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवधिष्ट रह जाने पर प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः क्षायिकसम्यक्त्वको प्रस्थापितकर क्षपकश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हो (२) क्षपकश्रेणीपर चढ़ा और अपूर्वकरणदि छह अन्तर्मुहूर्तोंसे निर्वाणको प्राप्त हुआ । अन्तरके आदिके एक अन्तर्मुहूर्तको अन्तरके वाहिरी आठ अन्तर्मुहूर्तोंमेंसे कम कर देने पर अवधिष्ट सात अन्तर्मुहूर्त रहते हैं, इनसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं- एक अप्रमत्तसंयत जीव, प्रमत्तसंयत हो अन्तर्मुहूर्त रहकर ( १ ) एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थिति-वाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहासे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ ।

१ एक्कीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । स सि १, ८

२ उत्सर्पेण त्रयशिक्षासागरोपमाणि सातिरेणाणि । स सि १, ८

वणो । अंतोमुहुत्वात्संज्ञे आउए अप्पमत्तो जादो । लद्धमंतरं ( १ ) । पमत्तापमत्तसंज्ञद-  
द्वणे मत्तं पट्टमिय ( २ ) सुममत्तं पाजोग्गअप्पमत्तो होदूण ( ३ ) खवगसेदीमाल्ढो  
अपुव्यादिच्छिदि अंतोमुहुत्तेहि पिबुदो । अंतमसादिल्लमेक्कं चाहिरिसु णवसु अंतोमुहुत्तेसु  
गोहिंटे जामेमा जट्ट । एदेहि उणपुव्वकोडीए सादिरियाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि  
अणमरुत्तम्यंतरं ।

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, णाणजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ ३५६ ॥

णितंणमुणमममत्तं पट्टिज्जपणजीवासावा ।

उक्कस्सेण सत्त रादिंदियाणि ॥ ३५७ ॥

किमत्थो मत्तगदिंदियविरलणियमो ? समावदो ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३५८ ॥

तं जहा- एक्को उवसमसेदीदो ओदरिय असंजदो जादो । अंतोमुहुत्तमच्छिदूण

आयुते जन्तुमुहुत्तं अचशिष्टं म्हा ज्ञाने पर अप्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध  
होगया ( १ ) । तत्पश्चात् प्रमत्त या अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षयिकसम्यक्त्वको प्रस्था-  
पितकर ( २ ) क्षणश्रेणीक प्रायोग्य अप्रमत्तसंयत होकर ( ३ ) क्षणश्रेणीपर चढ़ा और  
पूर्वजन्त्यादि द्वा जन्तुमुहुत्तसे निर्वाणको प्राप्त हुआ । अन्तरके आदिका एक अन्तमुहुत्त  
गह्वरी नो अन्तमुहुत्तसे घटा देने पर अचशिष्ट आठ अन्तमुहुत्त रहे । इनसे कम  
पूर्वजन्तुसे सात्त्विक तेत्तीस रागरोगमकाल वेदकसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट  
अन्तर होता है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता  
है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ३५६ ॥

स्यौक्ति, निरन्तर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका अभाव है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर सात रात-दिन ( अहोरात्र ) है ॥ ३५७ ॥

शंभो—सात रात दिनोंके अन्तरका नियम किसलिए है ?

समाधान—स्वभावानं ही हे ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तमुहुत्त है ॥ ३५८ ॥

जैसे- एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ और अन्तमुहुत्त

१ अप्रमत्तसम्यग्दृष्टि-समपत्तास्य रवेर्गोणविषेसया जघन्यैक समय । स ति १, ८.

२ उत्तरेण न्त रादिंदियाणि । स ति १, ८.

३ एब्जीव मति जणपुव्वकट्ट चात्तमुहुत्तः । स ति १, ८.

संजमांसंजमं पडिअणो । अंतोमुहुत्तेण पुणो असंजदो जादो । लद्धं जहणमंतरं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३५९ ॥

तं जहा- एक्को सेडीदो ओदरिय असंजदो जादो । तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छि  
संजमांसंजमं पडिअणो । तदो अप्पमत्तो पमत्तो होदूण असंजदो जादो । लद्धमुक्कसंतरं ।

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणजीवं पडुच्च  
जहणणेण एगसमयं ॥ ३६० ॥

सुवममेदं ।

उक्कस्सेण चौदस रादिंदियाणि ॥ ३६१ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६२ ॥

तं जहा- एक्को उवसमसेदीदो ओदरिय सजमांसंजमं पडिअणो । अंतोमुहुत्त-

रहकर संयमासयमको प्राप्त हुआ । अन्तमुहुत्तसे पुनः असंयत होगया । इस प्रकार  
जघन्य अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहुत्त है ॥ ३५९ ॥

जैसे- एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ । वहां अन्त-  
मुहुत्त रहकर संयमांसंयमको प्राप्त हुआ । पश्चात् अप्रमत्त और प्रमत्तसंयत होकर  
असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ ।

उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोक्का अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी  
अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ३६० ॥

यह खूब सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर चौदह रात-दिन है ॥ ३६१ ॥

यह खूब भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तमुहुत्त है ॥ ३६२ ॥

जैसे- एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर संयमांसंयमको प्राप्त हुआ और अन्त-

१ संयतासंयतस्य नानाजीवोपेक्षया जघन्यैक समय । स ति १, ८.

२ उत्तरेण चतुर्दश रादिंदियाणि । स ति १, ८.

३ एब्जीव मति जणपुव्वकट्ट चात्तमुहुत्तः । स ति १, ८.

१, ६, ३६३ ]

छक्खंडागमे जीवद्वुण

[ ११७

मच्छिय असंजदो जादो । पुणो वि अंतोमुहुत्तेण संजमांसंजमं पडियणो । लद्धं जहणंत्तरं ।

**उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६३ ॥**

तं जहा- एक्को सेडीदो ओदरिय संजदासंजदो जादो । अंतोमुहुत्तमच्छिय अप्पमत्तो पमत्तो असंजदो च होदूण संजदासंजदो जादो । लद्धमुक्कस्संत्तरं ।

**पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणजीविं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ ३६४ ॥**

सुगममंदं ।

**उक्कस्सेण पणारस रादिदियाणिं ॥ ३६५ ॥**

एद पि सुगमं ।

**एगजीविं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६६ ॥**

तं जहा- एक्को उवसमसेडीदो ओदरिय पमत्तो होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय अप्प-

मुहुत्तं रहकर असयतसम्यग्दृष्टि होगया । फिर भी अन्तर्मुहुत्तसे समयसंयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकार जघन्य अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहुत्तं है ॥ ३६३ ॥

जैसे- एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर संयतासंयत हुआ । अन्तर्मुहुत्तं रहकर अप्रमत्तसंयत, प्रमत्तसंयत और असंयतसम्यग्दृष्टि होकर संयतासंयत होगया । इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ ।

उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ३६४ ॥ यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह रात-दिन है ॥ ३६५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहुत्तं है ॥ ३६६ ॥

जैसे- एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर प्रमत्तसंयत हो अन्तर्मुहुत्तं रह कर

१ प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवोपेक्षया जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८

२ उत्कर्षेण पचदश रातिदियानि । स. सि. १, ८

३ एस्वीव मति जघन्यमुत्कृष्ट चान्तर्मुहुत्तं । स. सि. १, ८.

१६८ ]

अतराणुगमे उवसमसम्मादिट्ठि-अतरपरुवण

[ १, ६, ३६९.

मत्तो जादो । पुणो वि पमत्तसं गदो । लद्धमंतरं । एवं चैव अप्पमत्तस्स वि जहणंत्तरं वृत्तव्यं ।

**उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६७ ॥**

तं जहा- एक्को उवसमसेडीदो ओदरिय पमत्तो होदूण पुणो संजदासंजदो असं-जदो अप्पमत्तो च होदूण पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । अप्पमत्तस्स उच्चदे- एक्को सेडीदो ओदरिय अप्पमत्तो जादो । पुणो पमत्तो असंजदो संजदासंजदो च होदूण भूओ अप्पमत्तो जादो । लद्धमुक्कस्संत्तरं ।

**तिण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणजीविं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ ३६८ ॥**

**उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३६९ ॥**

एदयाणि दो वि सुचाणि सुगमाणि ।

अप्रमत्तसंयत हुआ । फिर भी प्रमत्त गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । इसी प्रकारसे उपशमसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका भी जघन्य अन्तर कहना चाहिये ।

उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर्मुहुत्तं है ॥ ३६७ ॥

जैसे- एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर प्रमत्तसंयत होकर पुनः संयतासंयत, असंयत और अप्रमत्तसंयत होकर प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । उपशमसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर अप्रमत्तसंयत हुआ । पुनः प्रमत्तसंयत, असंयत और संयतासंयत होकर फिर भी अप्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ ।

उपशमसम्यग्दृष्टि अपूर्वकरण, अनिष्टचित्करण और सूक्ष्मसाम्पराय, इन तीनों उपशमकोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३६८ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३६९ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

१ त्रयाणासुपशमकाना नानाजीवोपेक्षया जघन्येनैक समय । स. सि. १, ८

२ उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । । स. सि. १, ८

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोसुहत्तं ॥ ३७० ॥

तं जला- उागममेदिं चडिय आदिं करिय पुणेो उतरिं गंतूण ओदरिय अपिपद-  
गुणं पट्टिणम्म अंतोसुहत्तमंतरं होदि ।

उक्कस्सेण अंतोसुहत्तं ॥ ३७१ ॥

एदम्म जहणमंगो । णवरि विमिसा विदियवारं चडमाणस्स जहणंतरं, पडमवारं  
चडिय ओदिणम्म उक्कस्संतरं वत्तवं ।

उवसंतकसाथीदरागछुदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि,  
णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ ३७२ ॥

उक्कस्सेण वासपुथत्तं ॥ ३७३ ॥

एदाणि दो मि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३७४ ॥

उक्त तीनों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त  
है ॥ ३७० ॥

जेभे- उपशमश्रेणीपर चडकर आदि करके फिर भी ऊपर जाकर ओर उतरकर  
पियशित गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवमें अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर होता है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३७१ ॥

इन उत्कृष्ट अन्तरकी प्ररूपणा भी जघन्य अन्तरकी प्ररूपणाके समान जानना  
पारिए । किन्तु विशेषता यह है कि उपशमश्रेणीपर छितीय वार चडनेवाले जीवके जघन्य  
अन्तर होला है और प्रथम वार चडकर उतरे हुए जीवके उत्कृष्ट अन्तर होता है, ऐसा  
करना चाहिए ।

उपशान्तरूपायवीतरागछमस्य जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना  
जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ३७२ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३७३ ॥

ये दोनों ही स्वर सुगम ह ।

उपशान्तरूपायवीतरागछमस्योका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर  
है ॥ ३७४ ॥

१ पृजोत प्रति जरायुपृष्ठ वातर्मुहूर्त । म ति १, ८

२ उपशान्तरूपायस्य नानाजीवोपेक्षया सामान्यत् । म ति १, ८.

३ पृजोत प्रति वातल्लत्तत् । म ति १, ८.

हेट्टिमयुगट्ठाणेषु अंतराथिय सव्वजहणणेण कालेण पुणेो उवसंतकसायभावं गयस्स  
जहणंतरं किण्ण उच्चदे ? ण, हेट्टा ओइणस्स वेदगसम्मचमपडिवज्जिय पुब्बुनसम-  
सम्मचेणुवसमसेढीसमारुहणे संभवाभावादो । तं पि कुदो ? उवसमसेढीसमारुहणपा-  
ओगकालादो सेसुवसमसम्मचद्वाए त्थोवत्तुवलंभादो । तं पि कुदो णव्वदे ? उवसंत-  
कसायएगजीवसंतराभाणणाणुववचीदो ।

सासणसम्यादिट्ठि-सम्यामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो  
होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एयसमयं ॥ ३७५ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३७६ ॥

एदं पि सुगमं ।

शंका—नीचके गुणस्थानमें अन्तरको प्राप्त कराकर सर्वजघन्य कालसे पुनः  
उपशान्तरूपायताको प्राप्त हुए जीवके जघन्य अन्तर क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमश्रेणीसे नीचे उतरे हुए जीवके वेदकसम्य-  
क्तको प्राप्त हुए बिना पहलेवाले उपशमसम्यक्त्वके द्वारा पुनः उपशमश्रेणीपर  
समारोहणकी सम्भावनाका अभाव है ।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—क्योंकि, उपशमश्रेणीके समारोहणयोग्य कालसे शेष उपशम-  
सम्यक्त्वका काल अल्प पाया जाता है ।

शंका—यह भी कैसे जाना ?

समाधान—उपशान्तरूपायवीतरागछमस्यके एक जीवके अन्तरका अभाव  
अन्यथा वन नहीं सकता, इससे जाना जाता है कि उपशान्तरूपाय गुणस्थान एक जीवकी  
अपेक्षा अन्तर रहित है ।

सासादनसम्यग्दट्टि और सम्यग्मिथ्यादट्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता  
है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३७५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥ ३७६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

१ सासादनसम्यग्दट्टिसम्यग्मिथ्यादट्टयोर्नानाजीवोपेक्षया जघन्येनैकः समय । स ति. १, ८.

२ उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयमाग । स ति. १, ८.



एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३७७ ॥

गुणसंकतीए असंभवादो ।

मिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च  
णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३७८ ॥

कुदो ? णाणाजीवपवाहस्स वोच्छेदाभावा, गुणंतरसंकतीए अभावादो ।  
एव सम्मतमगणा समत्ता ।

सणियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिद्वीणमोर्धं ॥ ३७९ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च अंतराभावेण, एगजीवं पडुच्च अंतिसुहुचं देखणेवे-  
छावडिसारोपमेत्तजहणुक्कस्संतरेहि य साधम्भुवलंभा ।

सासणसम्भादिद्विपुहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था  
त्ति पुरिसवेदभंगो ॥ ३८० ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३७७ ॥

क्योंकि, इन दोनोंके गुणस्थानका परिवर्तन असम्भव है ।

मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी  
अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३७८ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है । तथा एक जीवका  
अन्य गुणस्थानोंमें संक्रमण भी नहीं होता है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञीमार्गणके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके समान  
है ॥ ३७९ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, एक जीवकी अपेक्षा  
जबन्ध अन्तर्मुहूर्त और उत्कट कुल कम दो छयासठ सारोपममात्र अन्तरोंकी अपेक्षा  
ओघसे समानता पाई जाती है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर उपशान्तकपायवीतरागछस्थ तक संज्ञी जीवोंका  
अन्तर पुरुषवेदियोंके अन्तरके समान है ॥ ३८० ॥

१ एवञ्चिन्व प्रति नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

२ मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवोपेक्षया एवञ्चिन्वोपेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

३ सत्ताडवादेन सत्तिसु मिथ्यादृष्टे सामान्यवत् । स सि १, ८

४ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवोपेक्षया सामान्यवत् । एवञ्चिन्व प्रति जबन्धेन पश्योपमा-

कुदो ? सागरोपमसदपुधत्तद्विदिं पडि दोण्हं साधम्भुवलंभा । णवरि असण्णिणद्विदि-  
मच्छिय सण्णीसुवणणस्स उक्कस्सद्विदी वत्तव्वा ।

चदुण्हं खवाणमोर्धं ॥ ३८१ ॥

सुगमभेदं ।

असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च  
णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३८२ ॥

कुदो ? असण्णिणपवाहस्स वोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३८३ ॥

कुदो ? गुणसंकतीए अभावादो ।

एव सण्णिगमगणा समत्ता ।

क्योंकि, सागरोपमगतपृथक्त्वस्थितिकी अपेक्षा दोनोंके अन्तरोंमें समानता पाई  
जाती है । विशेषता यह है कि असंज्ञी जीवोंकी स्थितिमें रहकर संज्ञी जीवोंमें उत्पन्न हुए  
जीवके उत्कट स्थिति कहना चाहिए ।

संज्ञी चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंज्ञी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर  
नहीं है, निरन्तर है ॥ ३८२ ॥

क्योंकि, असंज्ञी जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है ।

असंज्ञी जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३८३ ॥

क्योंकि, असंज्ञियोंमें गुणस्थानके परिवर्तनका अभाव है ।

इस प्रकार संज्ञीमार्गणा समाप्त हुई ।

सत्येयमागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण सागरोपमशतपुथक्त्वम् । असयततम्यदृष्टयायमपचानानां नानाजीवोपेक्षया  
नास्त्यन्तरम् । एवञ्चिन्व प्रति जबन्धेर्नान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण सागरोपमशतपुथक्त्वम् । चतुर्णोपपशमकानां नामाजीवा-  
वेक्षया सामान्यवत् । एवञ्चिन्व प्रति जबन्धेर्नान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण सागरोपमशतपुथक्त्वम् । स सि १, ८-

१ चतुर्णो क्षपकानां सामान्यवत् । स सि १, ८-

२ अमक्षिर्नां नानाजीवोपेक्षयेऽस्तीवोपेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८-

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिद्वीणमोर्धं ॥ ३८४ ॥

सुगममेदं ।

सासणसम्मादिद्वि-सम्मादिद्वीणसंतरं केवचिरं कालदो  
होदि, गाणजीवं पडुच्च ओर्थं ॥ ३८५ ॥

एदं पि सुगमं ।

एराजीवं पडुच्च जहणणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,  
अंतोसुहुत्तं ॥ ३८६ ॥

एदं पि अगमयत्ये ।

उत्तकस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ  
ओसपिणि-उस्सपिणीओ ॥ ३८७ ॥

तं जहान् एत्थो सामणद्वारं दो समयया अत्थि ति कालं गदो । एराविगहं

आहारमार्पिणोके अनुदासे आहारक जीवोमिं मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओषके  
ममानं है ॥ ३८४ ॥

यह मूल सुगम है ।

आहारक सामादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल  
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओषके समान है ॥ ३८५ ॥

यह मूल भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपयका असं-  
ख्यातां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३८६ ॥

इस सूत्रका अर्थ नात है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवै भागप्रमाण असंख्याता-  
उत्तमर्पिणी और अवसर्पिणी काल है ॥ ३८७ ॥

नैमि- एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सासादनगुणस्थानके कालमें दो समय

१ आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिद्वीणमोर्धं । स मि. १, ८.

२ सामादनसम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टियोंकी अपेक्षा सामान्यम् । स मि. १, ८

३ एराजीवं पडुच्च जहणणेण पलिदोवमस्स । स मि. १, ८

४ उत्तमर्पिणी उत्तमर्पिणी अन्तर्मुहूर्तवै । स मि. १, ८

कादूण विदियसमए आहारी होदूण तदियसमए मिच्छं गंतूणंतरिदो । असंखेज्जा-  
संखेज्जाओ ओसपिणि-उस्सपिणीओ परिभामिय अंतोसुहुचावसेसे आहारकाले उवसम-  
सम्मचं पडिवणो । एरासमयावसेसे आहारकाले सासणं गंतूण विगहं गदो । दोहि  
समएहि ऊणो आहारकस्सकालो सासणुक्कस्संतरं ।

एको अट्टानीसंतकम्मिओ निगहं कादूण देवेसुगणो । छहि पज्जत्तोहि  
पज्जत्तयो ( १ ) निस्सतो ( २ ) विसुद्धो ( ३ ) सम्माभिच्छं पडिवणो ( ४ ) ।  
मिच्छं गंतूणंतरिदो । अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परियमिय सम्माभिच्छं पडिवणो  
( ५ ) । लद्धसंतरं । तदो सम्मत्तेण वा मिच्छत्तेण वा अंतोसुहुत्तमच्छिदूण ( ६ ) विगहं  
गदो । छहि अंतोसुहुत्तेहि ऊणओ आहारकालो सम्माभिच्छादिद्विस्स उक्कस्संतरं ।

असंजदसम्मादिद्विपहुडि जाव अप्पमतसंजदाणमंतरं केवचिरं  
कालदो होदि, गाणजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३८८ ॥

सुगममेदं ।

अवशिष्ट रहने पर मरणको प्राप्त हुआ । एक विग्रह ( मोड़ा ) करके छितीय समयमें  
आहारक होकर और तीसरे समयमें मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ । अस्-  
व्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों तक परिभ्रमणकर आहारककालमें  
अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः आहारककालके एक  
समयमात्र अवशिष्ट रहने पर सासादनको जाकर विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार दो  
समयोंसे कम आहारकका उत्कृष्ट काल ही आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट  
अन्तर होता है ।

मोहकर्मकी अट्टाईच प्रकृतियोंकी सरावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके  
देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्यक्तियोंसे पर्याप्त हो ( १ ) विश्राम ले ( २ ) विद्युद्ग हो ( ३ )  
सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ( ४ ) और मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ ।  
अंगुलके असंख्यातवै भाग कालप्रमाण परिभ्रमण कर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ( ५ ) ।  
इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पीछे सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वके साथ अन्तर्मुहूर्त रह  
कर ( ६ ) विग्रहगतिको प्राप्त हुआ । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारककाल  
ही आहारक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अग्रमत्तसंयत गुणस्थान तक आहारक जीवोंका अन्तर  
कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३८८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ असंयतसम्यग्दृष्टयथयवचान्ताना नानाजीवोपेक्षया नाल्पन्तरम् । म मि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३८९ ॥

कुदो ? गुणंतरं गंतूण सव्वजहणकालेण पुणो अपिपदगुणपडियणस्स जहणं-  
तरवल्भा ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओस-  
पिणि-उस्सपिणीओ ॥ ३९० ॥

असंजदसम्मदिद्विस्स उच्चदे- एकको अट्टावीससंतकम्मिओ विग्गहं कादूण  
देवेषुववणो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मचं  
पडिवणो (४) । मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंते उवसम-  
सम्मत्तं पडिवणो (५) । लद्धमंतरं । उवसमसम्मचद्वाए छावलियावसेसाए सासणं  
गंतूण विग्गहं गदो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि उणओ आहारकालो उक्कस्संतरं ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३८९ ॥

क्योंकि, विवक्षित गुणस्थानसे अन्य गुणस्थानको जाकर और सर्वजघन्य  
कालसे लौटकर पुनः अपने विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके जघन्य अन्तर  
पाया जाता है ।

उक्त असंयत्तादि चार गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा  
उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवै भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और  
उत्सर्पिणी काल है ॥ ३९० ॥

आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्टाईस  
प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों  
पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त  
हुआ (४) । पीछे मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अंगुलके असंख्यातवै  
भागप्रमाण कालतक परिभ्रमण करके अन्तमें उपरामसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (५) ।  
इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पुनः उपरामसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशिष्ट  
रह जाने पर सासादनमें जाकर विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम  
आहारककाल ही आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

१ एकजीव प्रति जघयेनात्तर्मुहूर्त । स सि १, ८

२ उत्तरेणंगुलासख्येयमाणा असख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य । स सि १, ८

संजदासंजदस्स उच्चदे- एकको अट्टावीससंतकम्मिओ विग्गहं कादूण सममु-  
च्छिमेसु उववणो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३)  
वेदगसम्मचं संजमासंजमं च समगं पडिवणो (४) । मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो अंगुलस्स  
असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंते पढमसम्मचं संजमासंजमं च समगं पडिवणो (५) ।  
लद्धमंतरं । उवसमसम्मचद्वाए छावलियावसेसाए सासणं गंतूण विग्गहं गदो । पंचहि  
अंतोमुहुत्तेहि उणओ आहारकालो उक्कस्संतरं ।

पमत्तस्स उच्चदे- एकको अट्टावीससंतकम्मिओ विग्गहं कादूण मणुसेसुववणो ।  
गम्भादिअट्टवस्सेहि अप्पमत्तो (१) पमत्तो होदूण (२) मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो ।  
अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंते पमत्तो जादो । लद्धमंतरं (३) । कालं  
कादूण विग्गहं गदो । तिहि अंतोमुहुत्तेहि अट्टवस्सेहि य उणओ आहारकालो उक्कस्संतरं ।

अप्पयत्तस्स एवं चैव । णवरि अप्पमत्तो (१) पमत्तो होदूण अंतरिदो समद्विदिं  
परिभमिय अप्पमत्तो होदूण (२) पुणो पमत्तो जादो (३) । कालं करिय विग्गहं

आहारक संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी  
सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके पंचेन्द्रिय समसूच्छिछमोंमें उत्पन्न हुआ ।  
छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्व  
और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (४) । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको  
प्राप्त हो अंगुलके असंख्यातवै भागप्रमाण काल तक परिभ्रमणकर अन्तमें प्रथमोपराम-  
सम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (५) । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।  
पश्चात् उपरामसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहते पर सासादनको जाकर  
विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारककाल ही आहारक  
संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

आहारक प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी  
सत्तावाला एक जीव विग्रह करके मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि ले आठ वर्षोंसे  
अप्रमत्तसंयत (१) और प्रमत्तसंयत हो (२) मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ ।  
अंगुलके असंख्यातवै भागप्रमाण कालतक परिभ्रमण करके अन्तमें प्रमत्तसंयत होगया ।  
इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (३) । पश्चात् मरण करके विग्रहगतिको प्राप्त हुआ । इस  
प्रकार तीन अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्षोंसे कम आहारककाल ही आहारक प्रमत्तसंयतका  
उत्कृष्ट अन्तर है ।

आहारक अप्रमत्तसंयतका भी अन्तर इसी प्रकार है । विशेषता यह है कि अप्रमत्त-  
संयत जीव (१) प्रमत्तसंयत होकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर  
अप्रमत्तसंयत हो (२) पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (३) । पश्चात् मरण करके विग्रहको प्राप्त

गदो । निदि अंतोमुहुचेहि ऊगओ आहारकालो उक्कसंतरं ।

चटुण्हमुवसामगणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, गाणाजीवं

पडुच ओघभंगो ॥ ३११ ॥

सुगममेदं, चटुणो उचचादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुचं ॥ ३१२ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कसेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ  
ओसपिणि-उस्सपिणीओ ॥ ३१३ ॥

तं जहा- एत्तो अट्ठवीमसंतत्तम्मिओ विग्गहं काट्ठण मणुसेसुवण्णो । अट्ठ-  
वसिओ सम्मचं अपमत्तभावणेण संजमं च समगं पडिवण्णो (१) । अणत्ताशुवंधी विसंजोए-  
ण (२) दंयणमोहणीयपुग्गामिय (३) पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं काट्ठण (४) तदो  
अणुवो (५) अपियट्ठी (६) सुहुमो (७) उवमंतो (८) पुणो वि परिवडमाणो

ट्ठुआ । इस प्रकार तीन अन्तर्मुहुत्तौसे कम आहारककाल ही आहारक अप्रमत्तसंयतका  
उत्कृष्ट अन्तर है ।

आहारक चारों उपगामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी  
ओघा अन्तर ओघके समान है ॥ ३११ ॥

या सूत्र सुगम है, स्वॉक्ति, रमत्ता अर्थे पहले बहुत बार कहा जा चुका है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी ओघा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहुत्त है ॥ ३१२ ॥

या सूत्र भी सुगम है ।

आहारक चारों उपगामकोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके  
असंख्यतों भागप्रमाण अंगुल्यानांमूल्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी है ॥ ३१३ ॥

मोक्षक्रमकी अद्वारंग प्रकृतियोंकी सत्तावादा एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके  
मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । आठ वर्षका होकर सत्यस्वकी ओर अप्रमत्तभावके साथ संयमको  
एक साथ प्राप्त हुआ (१) । पुन अन्तत्ताशुवन्धीका विसंयोजन करके (२) दर्शनमोह-  
नीयता उपशमनकर (३) प्रमत्त ओर अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको  
करके (४) पञ्चात् अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) और उप-

१ चतुर्णां उपशमनानां नानार्जितोपेक्षा तामाचवत् । म सि १, ८

२ एतन्वीर्यं च तत्रेवान्तर्मुहुत्तैः । म सि १, ८.

३ अन्तर्मुहुत्तौ नालास्ये रमाणा अण्वेयमस्येया उन्मर्षिण्यवसर्पिण्य । म सि १, ८

सुहुमो (९) अपियट्ठी (१०) अपुवो जादो (११) । हेडा ओदरिदण्णतरिदो अंगुलस्स  
असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंति अपुवो जादो । लद्धमंतरं । तदो णिदा-पयलाणं बंधे  
चोच्छिण्णो मरिय विग्गहं गदो । अट्ठवस्सेहि वारस्सअंतोमुहुचेहि य ऊगओ आहारकालो  
उक्कसंतरं । एवं चेव तिण्हमुवसामगणं । णवरि दस णव अट्ठ अंतोमुहुचा समयाहिया  
ऊणा कादव्वा ।

चटुण्हं खवाणमोघं ॥ ३१४ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३१५ ॥

एदं पि सुगमं ।

अणाहारां कम्मइयकायजोगिभंगो ॥ ३१६ ॥

शान्तकथाय होकर (८) फिर भी गिरता हुआ सूक्ष्मसाम्पराय (९) अनिवृत्तिकरण (१०)  
और अपूर्वकरण हुआ (११) । पुनः नीचे उत्तरकर अन्तरको प्राप्त हो अंगुलके असंख्यातवें  
भाग कालप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तमें अपूर्वकरण उपशामक हुआ । इस प्रकार अन्तर  
लब्ध हुआ । तत्पश्चात् निद्रा ओर प्रचला, इन दोनों प्रकृतियोंके वधसे व्युच्छिन्न होनेपर  
मरकर विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और बारह अन्तर्मुहुत्तोंसे कम आहारक-  
काल ही अपूर्वकरण उपशामकता उत्कृष्ट अन्तर है । इसी प्रकार शेष तीनों उपशामकोंका  
भी अन्तर कहना चाहिए । विशेषता यह है कि आहारककालमें अनिवृत्तिकरण उप-  
शामकके दश, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकके नौ और उपशान्तकथाय उपशामकके आठ  
अन्तर्मुहुत्त और एक समय कम करना चाहिए ।

आहारक चारों धपकोका अन्तर ओघके समान है ॥ ३१४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक सयोगिकिवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३१५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अनाहारक जीवोंका अन्तर कर्मणकाययोगियोंके समान है ॥ ३१६ ॥

१ चतुर्णां धपमणां सयोगिकिवलिना च मामानयत् । म सि १, ८.

२ प्रतिशु 'अणाहार' इति पाठ ।

३ अनाहाररेणु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एतन्वीर्यपेक्षया च नास्त्यन्तरम् । सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवा-  
पेक्षया जघन्येनैकं समम् । उत्सर्पेण पश्योपमामत्येयमाग- । एतन्वीर्यं प्रति नास्त्वन्तरम् । अप्रमत्तसम्यग्दृष्टेर्नाना-  
जीवापेक्षया जघन्येनैकं समम् । उत्सर्पेण मासपृथक्त्वम् । एतन्वीर्यं प्रति नास्त्यन्तरम् । सयोगिनैर्नलिनां नाना-  
जीवापेक्षया जघन्येनैकं समम् । उत्सर्पेण वर्षपृथक्त्वम् । एतन्वीर्यं प्रति नास्त्यन्तरम् । म. सि. १, ८.

मिच्छादिद्विणीं गाणेरजीवं पडुच्च अंतराभावेण, सासणसम्मादिद्विणीं गाणार्जीवं पडुच्च एगसमयपल्लिदेवमस्स असंखेज्जिदिभागजहणुक्कस्संतरेहि य, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण य, असंजदसम्मादिद्विणीं गाणार्जीवं पडुच्च एगसमय-मासपुथत्तरेहि य, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण य, सजोगिकेवलीणं गाणार्जीवं पडुच्च एगसमय-वासपुथत्त-जहणुक्कस्संतरेहि य, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण य दोण्हं साधम्म्युवलंभादो ।

विसेसपहुप्पायणइसुत्तरसुत्तं भणदि-

**णवरि विसेसा, अजोगिकेवली ओधं ॥ ३९७ ॥**

सुगममेदं ।

( एव आहारमरण समत्ता । )

एवमंतराणुगमो ति समत्तमणिओगहारं ।

क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे सासादनसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्लो-पमका असंख्यातवां भाग अन्तरोसे, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, असंयतसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट मास पृथक्त्व अन्तरोंके द्वारा, और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, सयोगिके-बलियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अन्तरसे, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे दोनोंमें समानता पाई जाती है ।

अनाहारक जीवोंमें विशेषता प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं-

किन्तु विशेषता यह है कि अनाहारक अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३९७ ॥

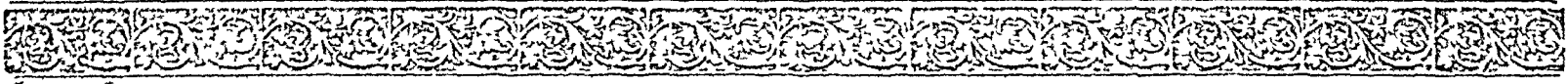
यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।

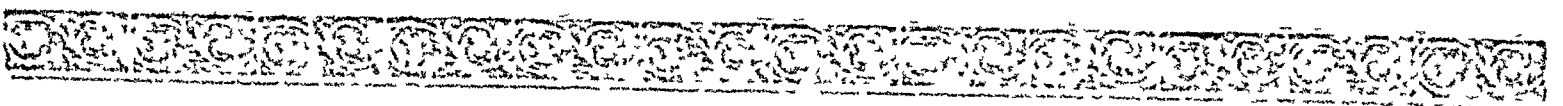
इस प्रकार अन्तरानुगम अनुयोगद्वारा समाप्त हुआ ।

१ अयोगिकेवलिनो नानाजीवोपेक्षया जघन्येते ऋः समय । उत्कर्षेण षण्मासाः । एकजीव प्रति नास्त्य-न्तस्य । स. सि १, ८.

२ अन्तमवगतम् । स सि १, ८



शतात्पुत्राणां



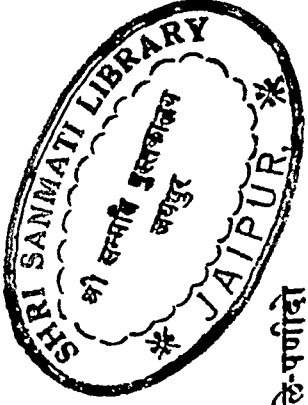
भावो । तस्य दृश्यभावो दुविहो आगम-गोआगमभेदेण । भावपाहुडजाणओ अणुव-  
जुवो आगमदृश्यभावो होदि । जो गोआगमदृश्यभावो सो तिविहो जाणुगसरीर-भवि-  
तवदिरिचभेदेण । तस्य गोआगमजाणुगसरीरदृश्यभावो तिविहो भवि-चडुमाण-समुज्झाद-  
भेदेण । भावपाहुडपञ्जायपरिणदजीवस्स आहारो जं होसदि सरीरं तं भविंयं गाम ।  
भावपाहुडपञ्जायपरिणदजीव जं पुद्यभूदं सरीरं तं वडुमाणं गाम । भावपाहुडपञ्जाएण  
परिणदजीवण एगत्तमुवणमिय जं पुद्यभूदं सरीरं तं समुज्झादं गाम । भावपाहुडपञ्जाय-  
सरुवेण जो जीवो परिणमिस्सदि सो गोआगमभविदृश्यभावो गाम । तवदिरिच-  
गोआगमदृश्यभावो तिविहो सच्चित्तचिच्च-मिस्सभेदेण । तस्य सच्चित्तो जीवदृश्यं । अचिच्चो  
पोगल-धम्मधम्म-कालागासदृवाणि । पोगल-जीवदृवाणं संजोगो कधंचि जच्चतरत्तमा-  
वणो गोआगममिस्सदृश्यभावो गाम । कधं दृश्यस्स भावव्यवहसो ? ण, भवनं भावः,  
भूर्तिर्वा भाव इति भावमदृश्य विउप्पत्तिअवलंणोदो । जो भावभावो सो दुविहो आगम-  
गोआगमभेदेण । भावपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगमभावभावो गाम । गोआगमभावभावो  
पंचविहं ओदइओ ओवसमिओ खइओ खओवसमिओ पारिणासिओ चेदि । तस्य कम्मोदय-

नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है । भावप्राभृतज्ञायक किन्तु वर्तमानमे अतुपयुक्त जीव  
आगमदृश्यभाव कहलाता है । जो नोआगमदृश्य भावनिक्षेप है वह ज्ञायकशरीर, भव्य  
और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार होता है । उनमे नोआगमज्ञायकशरीर दृश्यभाव-  
निक्षेप भव्य, वर्तमान और समुच्चित्तके भेदसे तीन प्रकारका है । भावप्राभृतपर्यायसे  
परिणत जीवका जो शरीर आधार होगा, वह भव्यशरीर है । भावप्राभृतपर्यायसे परि-  
णत जीवके साथ जो एकीभूत शरीर है, वह वर्तमानशरीर है । भावप्राभृतपर्यायसे परि-  
णत जीवके साथ एकत्वको प्राप्त होकर जो पृथक् हुआ शरीर है वह समुच्चित्तशरीर है ।  
भावप्राभृतपर्यायस्वरूपसे जो जीव परिणत होगा, वह नोआगमभव्यदृश्य भावनिक्षेप है ।  
तद्व्यतिरिक्त नोआगमदृश्य भावनिक्षेप, सच्चित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन  
प्रकारका है । उनमें जीवदृश्य सच्चित्तभाव है । पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल  
और आकाश दृश्य अचित्तभाव है । कथंचित् जाल्यन्तर भावको प्राप्त पुद्गल और जीव  
दृश्योका संयोग नोआगमभिश्रदृश्य भावनिक्षेप है ।

शंका—द्रव्यके 'भाव' ऐसा व्यपदेश कैसे हो सकता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, 'भवनं भाव.' अथवा 'भूर्तिर्वा भाव' इस प्रकार  
भावशब्दकी व्युत्पत्तिके अवलम्बसे दृश्यके भी 'भाव' ऐसा व्यपदेश बन जाता है ।

जो भावनामक भावनिक्षेप है, वह आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका  
है । भाव प्राभृतका ज्ञायक और उपयुक्त जीव आगमभावनामक भावनिक्षेप है । नोआगम-  
भाव भावनिक्षेप औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षयोपशमिक और पारिणामिकके भेदसे



स्तिरि-भगवंत-पुष्पदंत-भूदबलि-पणीदो

## छवखंडागमो

स्तिरि-धीरसेणाहरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तस्स

पढमखडे जीवदृवाणे

## भावाणुगमो

अवगयअसुद्धभावे उवगयकम्मखउच्चउवभावो ।

पणमिय सव्परहते भावणिओगं परुवेमो ॥

भावाणुगमेण दुविहो णिदिसो, ओवेण आदिसेण यं ॥ १ ॥

णाम-दृशणा-दृश्य-भावो सि चउच्चिहो भावो । भावसदो बज्जत्थणिरिवेक्खो  
अप्पाणहि चैव पयडो णामभावो होदि । तस्य उवणभावो सन्भावोसन्भावभेदेण दुविहो ।  
विराग-सरागादिभावे अणुहरंती उवणा सन्भावदृवणभावो । तच्चिवरीदो असन्भावदृवण-

अशुद्ध भावोंसे रहित, कर्मक्षयसे प्राप्त हुए हैं चार अनन्तभाव जिनको, ऐसे  
सर्व अर्हंतोंको प्रणाम करके भावालयोगद्वाराका प्ररूपण करते हैं ।

भावाणुगमद्वारकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेश-  
निर्देश ॥ १ ॥

नाम, स्थापना, दृश्य और भावकी अपेक्षा भाव चार प्रकारका है । वाहा अर्थसे  
निरपेक्ष अपने आपमें प्रवृत्त 'भाव' यह शब्द नामभावनिक्षेप है । उन चार निक्षेपोंमेंसे  
स्थापनाभावनिक्षेप, सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारका है । उनमेंसे विरागी  
और सरागी आदि भावोंका अनुकरण करनेवाली स्थापना सद्भावस्थापना भावनिक्षेप  
है । उससे विपरंत असद्भावस्थापना भावनिक्षेप है । दृश्यभावनिक्षेप आगम और

चण्डो भानां श्रोत्रश्रो गाम । रुम्युसमेण समुद्भूदो ओमममिओ गाम । कम्मणं नोण पवडीभूदजीभोओ गडओ गाम । रुम्योदए संते नि जं जीणुणकसंडंमुल्लंभदि सो नओममिओ भोओ गाम । जो चउहि भवेहि पुब्बुचेहि वडिदिओ जीवाज्जिगओ मो परिणामिओ गाम' ( ५ ) ।

एंसु चट्टु मोंसु केण भवेण अहियाओ ? पोआगममानसोण । तं कथं णओ ? णामटिंमसोदि चोदसजीवमामणणपभूदेहि इह पओजणाभाना । निब्धि चैर इ परिणमा हँतु, णाम-डुवणणं विसासावादो ? ण, णामे णामवत-दयन्तारोणियमाभादो, णामस्स इणणियमाभादा, इवणए इव आयराणुगहाणम-णान प्रकारका हे । उनमेंने कर्मोंयजनित भावना नाम ओदयिक हं । कर्मणि उपशमसे न्यस इए मत्तका नाम ओपजमिक हे । कर्मोंनि शयसे प्रकट हेवेवाला जीवका भाव आयिक हे । कर्मोंनि उदय एते पुण भी जो जीवगुणका सड ( अका ) उपलब्ध रहता हे, तर शायेपरमिस्कार ए । जो पूतक चारों भावोंसे व्यतिरिक्त जीव और अजीवगत भाव हे, तत परिणामित भाव हे ।

अंका—उक चार निक्षेपत्प भावोंसे यहा पर किस भावसे अधिकार या प्रयोजन हे ?

समाधान—यहा नोथान्तरभावभावसे अधिकार हे ।

अंका—यह केने जाना जाता हे ?

समाधान—चोदत जीवसमावोंके लिए अनात्मभूत नामादि शेष भावनिक्षेपोंसे यहाँ पर कोई प्रयोजन नहीं हे, इसीसे जाना जाता हे कि यहाँ नोआगमभाव भाव-निर्वापरो ही प्रयोजन हे ।

अंका—यहाँ पर तीन ही निक्षेप होना चाहिए, क्योंकि, नाम और स्थापनामें कोई विशेषता नहीं हे ?

समाधान—नहाँ, क्योंकि, नामनिक्षेपमें नामवत द्रव्यके अध्यारोपका कोई निक्षेप नहीं हे इसलिये, तथा नामवाली वस्तुकी स्थापना हेती ही चाहिए, ऐसा कोई निक्षेप नहीं हे इसलिये, एने स्थापनाके समान नामनिक्षेपमें आदर और अनुग्रहका भी

१ गीए 'जाणा नः' इति पाठः ।

२ समुत्तममि उगममाओ गीणमि गरगामो इ । उदयो जंसल गुणो लोणममिओ हवे माता ॥ समुत्तममिओ ओदयो तय शीदि माओ इ । माल्लिरोत्तमयो समावियो होदि परिणामो ॥

पि - ८१६८५

३ श्चिपु 'आरा' इति पाठ ।

भावादो च' । भणिदं च—

अपिदआदरगतो अणुगहयत्तो य धग्गभाओ ।

उवणाए कीरते ण होति णाममि एए टु ॥ १ ॥

णामिणि धमुवयोरो णाम इवणा य जस्स त ठणदि ।

तद्धमे ण नि जादो युगाम-टणणणमतिभिस ॥ २ ॥

तन्हा चउडिहो चैव गिहखेवो चि सिदं । तत्थ पंचसु भानेसु केण भवेण इह पओजणं ? पंचहि मि । कुदो ? जीनेसु पंचभावाणमुवलंभा । ण च सेसदवेसु पंच भावा अत्थि, पोगलदवेसु ओदइय-परिणामियाणं दोणहं चैव भावाणमुवलंभा, धम्म-कालागासदवेसु एक्कस्स परिणामियभावसेवुवलंभा । भावो णाम जीवपरिणामो तिन्व-मंदगिज्जरा नामादित्थेण अणेयपयारो । तत्थ तिन्व-मंदभावो णाम—

समनुणत्तय वि सावयविदे अणत्तकमसे ।

दसणमोहइखवए कसायउवसाए य उवसते ॥ ३ ॥

खए य खीणमोहे विये य णियमा भये असलेउजा ।

तठिवरीदो कोलो सखेज्जगुणए सेडोए ॥ ४ ॥

अभाव हे, इसलिये दोनो निक्षेपोंमें भेद हे ही । ऋहा भी हे—

वियक्षित वस्तुके प्रति आदरभान, अनुग्रहभाव और धर्मभाव स्थापनामें क्रिया जाता हे । किन्तु ये घाते नामनिक्षेपमें नहीं हेती हे ॥ १ ॥

नामप धर्मात्ता उपचार करना नामनिक्षेप हे, और जहाँ उस धर्मकी स्थापना की जाती हे, वर स्थापनानिक्षेप हे । इस प्रकार धर्मके वियसे भी नाम और स्थापनाकी अवशेषता अर्थात् एकता सिद्ध नहीं हेती ॥ २ ॥

इसलिये निक्षेप चार प्रकारका ही हे, यह चात सिद्ध हुई ।

अंका—पूतक पांच भावोंसे यहाँ किस भावसे प्रयोजन हे ?

समाधान—पांचों ही भावोंसे प्रयोजन हे, क्योंकि, जीवोंमें पांचों भाव पाये जाते हे । किन्तु शेष द्रव्योंमें तो पांच भाव नहीं हे, क्योंकि, पुद्गल द्रव्योंमें औद्ययिक और परिणामिक, इन दोनों ही भावोंकी उपलब्धि होती हे, और धर्मास्तिकाय अथवास्ति-काय, आकाश और काल द्रव्योंमें केवल एक परिणामिक भाव ही पाया जाता हे ।

अंका—भाजगाम जीवके परिणामका हे, जो कि तीन, मद निर्जराभाव आदिके रूपसे अनेक प्रकारका हे । उनमें तीव्र मंदभाव नाम हे—

सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें, श्रावकमें, विरत्तमें, अनन्तानुवन्धी कपायके विसंयोजनमें, दर्शनमोहके श्रपणमें, कपायोंके उपशामकोंमें, उपगान्तरुपायमें, शपकोंमें, क्षीणमोहमें, और जिन भगवान्के वियसे असंख्यातगुणीनिर्जा होती हे । किन्तु कालका प्रमाण एक गुणश्रेणी निर्जरामें संख्यात गुणश्रेणी क्रमसे विपरित अर्थात् उत्तरोत्तर हीन हे ॥३-४॥

१ नामस्थापनयोरत्त, सत्तामविशेषादिति चैव, आदरतुग्रहादशिलास्थापनायाए । त. ग. वा १, ५.

२ गी जी ६६-६७.



एदेसिं सुद्धिइपरिणामाणं पगरिसापगरिसत्तं तिब्ब-मंदभावो गाम । एदेहि चैव परिणामेहि असखेज्जगुणाए सेडीए कम्मसडणं कम्मसडणजणिदजीवपरिणामो वा णिज्जारा-भावो गाम । तम्हा पंचेव जीवभावा इदि णियमो ण जुज्जे ? ण एस दोसो, जदि जीवादिद्ववादो तिब्ब-मंदादिभावा अभिण्णा होति, तो ण तेसिं पंचभावेषु अंतवभावो, दवत्तादो । अह भेदो अवलंबेज्ज, पंचण्हमणदरो होज्ज, एदेहितो पुधभूदछड्डावाणु-वलंभा । भणिंदं च-

ओदइओ उवसमिओ खइओ तह वि य खओवसमिओ य ।  
परिणामिओ दु भावो उदएण दु पोगलण दु ॥ ५ ॥

भावो गाम किं ? दव्वपरिणामो पुव्वावरकोडिवदिरिचवड्डमाणपरिणामुवलक्खिय-दव्वं वा । कस्स भावो ? छण्हं दव्वानं । अथवा ण कस्सइ, परिणामि-परिणामाणं

इन सूत्रोद्विष्ट परिणामोंकी प्रकर्षताका नाम तीव्रभाव और अप्रकर्षताका नाम मंदभाव है । इन्हीं परिणामोंके द्वारा असख्यतात गुणश्रेणीरूपसे कर्मोंका झरना, अथवा कर्म-झरेसे उत्पन्न हुए जीवके परिणामोंको निर्जराभाव कहते हैं । इसलिये पांच ही जीवके भाव हैं, यह नियम युक्तिसंगत नहीं है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यदि जीवादि द्रव्यसे तीव्र, मंद आदि भाव अभिन्न होते हैं, तो उनका पांच भावोंमें अन्तर्भाव नहीं होता है, क्योंकि, वे स्वयं द्रव्य ही होते हैं । अथवा, यदि भेद माना जाय, तो पांचों भावोंमेंसे कोई एक होगा, क्योंकि, इन पांच भावोंसे पृथग्भूत छठा भाव नहीं पाया जाता है । कहा भी है—

औदयिकभाव, औपशमिकभाव, क्षायिकभाव, क्षायोपशमिकभाव और परिणामिकभाव, ये पांच भाव होते हैं । इनमें पुद्गलोंके उदयसे (औदयिकभाव) होता है ॥५॥ (अब निर्देश, स्वामित्व आदि प्रसिद्ध छह अयुयोगद्वारोंसे भावनामक पदार्थका निर्णय किया जाता है—)

शंका—भाव नाम किस वस्तुका है ?

समाधान—द्रव्यके परिणामको अथवा पूर्वपर कोटिसे व्यतिरिक्त वर्तमान पर्यायसे उपलक्षित द्रव्यको भाव कहते हैं ।

शंका—भाव किसके होता है, अर्थात् भावका स्वामी कौन है ?

समाधान—छहों द्रव्योंके भाव होता है, अर्थात् भावोंके स्वामी छहों द्रव्य हैं । अथवा, किसी भी द्रव्यके भाव नहीं होता है, क्योंकि, परिणामी और परिणामके सग्रह-

संग्रहणयादो भेदाभावा । केण भावो ? कम्माणसुदएण खएण खओवसमेण कम्माणसुवसमेण सभावदो वा । तत्थ जीवदव्वसस भावा उचपंचकारणेहितो होति । पोगलदव्वभावा पुण कम्मोदएण विस्सदादो वा उप्पज्जंति । सेसाणं चटुण्ह दव्वानं भावा सहावदो उप्पज्जंति । कत्थ भावो ? दव्वमिह चैव, गुणिव्वदिरोगेण गुणाणमसंभवा । केवचिरो भावो ? अणादिओ अपज्जवसिदो जहा-अभव्वाणमसिद्धदा, धम्मस्थिअस्स गमणहेटुत्तं, अधम्मस्थिअस्स ठिदिहेउत्तं, आगासस्स ओगाहणलक्खणत्तं, कालदव्वस्स परिणामहेटुत्तमिच्चादि । अणादिओ सपज्जवसिदो जहा-भवस्स असिद्धदा भवत्तं मिच्छत्तमसंजमो इच्चादि । सादिओ अपज्जवसिदो जहा-केवलणानं केवलदंसणमिच्चादि । सादिओ सपज्जवसिदो जहा-सम्मत्तंसंजमपच्छायदानं मिच्छत्तांसंजमा इच्चादि । कदिविधो भावो ? ओदइओ उवसमिओ खइओ खओवसमिओ परिणामिओ ति पंचविहो । तत्थ जो सो ओदइओ जीवदव्वभावो नयसे कोई भेद नहीं है ।

शंका—भाव किससे होता है, अर्थात् भावका साधन क्या है ?

समाधान—भाव, कर्मोंके उदयसे, क्षयसे, क्षयोपशमसे, कर्मोंके उपशमसे, अथवा स्वभावसे होता है । उनमेंसे जीवद्रव्यके भाव उक्त पांचों ही कारणोंसे होते हैं, किन्तु पुद्गलद्रव्यके भाव कर्मोंके उदयसे, अथवा स्वभावसे उत्पन्न होते हैं । तथा शेष चार द्रव्योंके भाव स्वभावसे ही उत्पन्न होते हैं ।

शंका—भाव कहां पर होता है, अर्थात् भावका अधिकरण क्या है ?

समाधान—भाव द्रव्यमें ही होता है, क्योंकि गुणोंके विना गुणोंका रहना असम्भव है ।

शंका—भाव कितने काल तक होता है ?

समाधान—भाव अनादि-निधन है । जैसे-अभव्यजीवोंके असिद्धता, धर्मास्तिकायके गमनहेटुता, अधर्मास्तिकायके स्थितिहेटुता, आकाशाद्रव्यके अवगाहनस्वरूपता, और कालद्रव्यके परिणमनहेटुता, इत्यादि । अनादि-सान्तभाव, जैसे- भव्यजीवकी असिद्धता, भव्यत्व, मिथ्यात्व, असंयम, इत्यादि । सादि-अन्तभाव जैसे-केवलज्ञान, केवलदर्शन, इत्यादि । सादि-सान्त भाव, जैसे- सम्यक्त्व और संयम धारणकर पण्डि थाए हुए जीवोंके मिथ्यात्व, असंयम इत्यादि ।

शंका—भाव कितने प्रकारका होता है ?

समाधान—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और परिणामिकके भेदसे भाव पांच प्रकारका है । उनमेंसे जो औदयिकभाव नामक जीवद्रव्यका भाव

मो ठाणदो अहुविहो, नियपदो एवकीमविहो। किं ठाणं? उप्पत्तिहेऊ द्वाणं। उत्तं च-

गदि-द्विय-कनाया नि य मिच्छादसणमिमिद्धदण्णाण।

लेन्ता अत्तनो चिय होति उदयस्स द्वाणाड ॥ ६ ॥

मंपहि एदंति नियपो उच्चदे- गई चउच्चिहो गिरय-तिरिय-गर-देवगई चेदि। लिंगमिदि निमिहं ल्थी-पुरिम णंसयं चेदि। क्साओ चउच्चिहो कोहो माणो माया लोहो चेदि। मिच्छादंयणमेयविहं। असिद्धत्तमेयविहं। किमसिद्धं? अहुकम्मोदयसामणं। अण्णाणमेयविहं। लेस्सा छच्चिहा। असंजसो एयविहो। एदे सवेने वि एस्सवीस वियपा हंति (२१)। पंचजादि-छंसंठाण-छंसंघडणादिओडइया भावा कत्थ णिवदंति? गदीए, एदेमिपुदयस्स गदिउदयामिणाभाभिचादो। ण लिंगादीहि वियहिचारो, तत्थ तहविह-मिक्साभावादो।

हे, यह स्थानकी अपेक्षा आठ प्रकारका और विकल्पकी अपेक्षा इकोस प्रकारका है।

अंका—स्थान क्या वस्तु है?

समाधान—भावकी उत्पत्तिके कारणको स्थान कहते हैं। कहा भी है-

गति, लिंग, कणाय, मित्यादर्शन, असिद्धत्व, अज्ञान, लेदया और असंयम, ये औरियक भावके आठ स्थान होते हैं ॥ ६ ॥

अथ इन आठ स्थानोंके विकल्प कहते हैं। गति चार प्रकारकी है- नरकगति, तिरियगति, मनुयगति और देवगति। लिंग तीन प्रकारका है- खल्लिंग, पुरुषलिंग और नपुंसकलिंग। कणाय चार प्रकारका है- कोय, मान, माया और लोभ। मित्यादर्शन एक प्रकारका है। अमिद्धत्व एक प्रकारका है।

अंका—असिद्धत्व क्या वस्तु है?

समाधान—अथ कर्मोंके सामान्य उदयको असिद्धत्व कहते हैं।

अज्ञान एक प्रकारका है। लेदया छह प्रकारका है। असंयम एक प्रकारका है।

इस प्रकार ये सग मिलकर ओदयिकभावके इकीस विकल्प होते हैं (२१)।

अंका—पांच जातिया, छह संस्थान, छह संहनन आदि ओदयिकभाव कहां, अर्थात् किस भावमें अन्तर्गत होते हैं?

समाधान—उक्त जातियों आदिका गतिनामक ओदयिकभावमें अन्तर्भव होता है, क्योंकि, इन जाति, संस्थान आदिका उदय गतिनामकर्मके उदयका अविनाभावी है। इस व्यसर्गोंमें लिंग, कणाय आदि ओदयिकभावोंसे भी व्यभिचार नहीं आता है, क्योंकि, उन भावोंमें उस प्रकारकी विवक्षाका अभाव है।

१ गतिद्वेषणलिंगमिदिगिरयगरदेवगतिद्विलेसाणुपुस्सुत्तयेकेकेकास्सेवा। त ॥ २, ६

उवसमिओ भावो ठाणदो हुविहो। वियपदो अहुविहो। भणिदं च-

सम्मत्त चारितं दो चेय द्वाणाइमुनस्समे होति।

अहुवियपा य तहा कोहाईया मुणेदव्वा ॥ ७ ॥

उवसमियस्स भावस्स सम्मत्तं चारितं चेदि दोणि द्वाणाणि<sup>१</sup>। कुदो? उवसम-सम्मत्तं उवसमचारित्तमिदि दोणं चे उवलंभा। उवससम्मत्तमेयविहं। उवसमियं चारितं सत्तविहं। तं जहा - णंसयवेदुवसामणद्धाए एयं चारित्तं, इत्थिवेदुवसामणद्धाए विदियं, पुरिस-छण्णोक्कसायउवसामणद्धाए तदियं, कोहुवसामणद्धाए चउत्थं, माणुव-सामणद्धाए पंचमं, माओवसामणद्धाए छंडं, लोहुवसामणद्धाए सत्तममोवसमियं चारित्तं। भिण्णकज्जल्लिणेण कारणभेदसिद्धीदो उवसमियं चारित्तं सत्तविहं उत्तं। अण्णाहा पुण अण्येयपरारं, समयं पडि उवसमसेडिंमिह पुध पुध असंखेज्जणुणसेडिणिज्जरणिमित्त-परिणामुवलंभा। खइओ भावो ठाणदो पंचविहो। वियपादो णवविहो। भणिदं च—

ओपशमिकभावस्थानकी अपेक्षा दो प्रकार और विकल्पकी अपेक्षा आठ प्रकारका है। कहा भी है-

ओपशमिकभावमें सम्यक्त्व और चारित्र ये दो ही स्थान होते हैं। तथा औपशमिकभावके विकल्प आठ होते हैं, जो कि क्रोधादि कर्मायोंके उपशमनरूप जानना चाहिए ॥ ७ ॥

ओपशमिकभावके सम्यक्त्व और चारित्र, ये दो ही स्थान होते हैं, क्योंकि, औपशमिकसम्यक्त्व और औपशमिकचारित्र ये दो ही भाव पाये जाते हैं। इनमेंसे औपशमिकसम्यक्त्व एक प्रकारका है और औपशमिकचारित्र सात प्रकारका है। जैसे- नपुंसकवेदके उपशमनकालमें एक चारित्र, खीवेदके उपशमनकालमें दूसरा चारित्र, पुरुषवेद और छह नोकर्मायोंके उपशमनकालमें तीसरा चारित्र, क्रोधसंज्वलनमें उपशमनकालमें चौथा चारित्र, मानसंज्वलनके उपशमनकालमें पांचवां चारित्र, मायासंज्वलनके उपशमनकालमें छठा चारित्र और लोभसंज्वलनके उपशमनकालमें सातवां औपशमिक-चारित्र होता है। भिन्न-भिन्न कार्योंके लिंगसे कारणोंमें भी भेदकी सिद्धि होती है, इसलिये औपशमिकचारित्र सात प्रकारका कहा है। अन्यथा, अर्थात् उक्त प्रकारकी विवक्षा न की जाय तो, वह अनेक प्रकारका है, क्योंकि, प्रति समय उपशमत्रेणीमें पुत्रक् पृथक् असंख्यात-गुणत्रेणी निर्जराके निमित्तभूत परिणाम पाये जाते हैं।

क्षायिकभाव स्थानकी अपेक्षा पांच प्रकारका है, और विकल्पकी अपेक्षा नौ प्रकारका है। कहा भी है-

१ सम्यक्चारित्रे। त. घ. २, १.

लद्धीओ सम्मत् चारिच दसण तहा णाण ।

ठाणाइ पच खइए भावे जिणभासियाइ उ ॥ ८ ॥

लद्धी सम्मत्तं चारिच्चं णाणं दंसणमिदि पंच ठाणाणि । तथ लद्धी पंच वियप्पा दाण-लाह-भोगुवभोग-वीरियमिदि । सम्मत्तमेयवियपं । चारिचमेयवियपं । केवलणाण-मेयवियपं । केवलदंसणमेयवियपं । एवं खइओ भावो णववियपो' । खओवसमिओ भावो ठाणो सत्तविहो । वियप्पो अट्टारसविहो । भणिदं च—

णाणणाण च तहा दसण-लद्धी तहेव सम्मत्त ।

चारिच देसजमो सत्तेव य होति ठाणाइ ॥ ९ ॥

णाणणाणाणां दंसणं लद्धी सम्मत्तं चारिच्चं संजमांसजमो चेदि सत्त द्वाणाणि । तथ णाणं चउच्चिह मदि-सुद-ओधि-मणपज्जवणाणमिदि । केवलणाणं किण गहिदं ? ण, तस्स खाइयभावादो । अणाणां तिविहं मदि-सुद-विहंगअणाणमिदि । दंसणं तिविहं चक्खु-अचक्खु-ओधिदंसणमिदि । केवलदंसण ण गहिदं । कुदो ? अप्पो विरोहिकम्मस्स

दानादि लब्धियां, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक दर्शन, तथा क्षायिक ज्ञान, इस प्रकार क्षायिक भावमें जिन-भाषित पांच स्थान होते हैं ॥ ८ ॥

लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, ये पांच स्थान क्षायिकभावमें होते हैं । उनमें लब्धि पाच प्रकारकी है— क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उप-भोग, और क्षायिक वीर्य । क्षायिक सम्यक्त्व एक विकल्पात्मक है । क्षायिक चारित्र एक भेदरूप है । केवलज्ञान एक विकल्पात्मक है और केवलदर्शन एक विकल्परूप है । इस प्रकारसे क्षायिक भावके नौ भेद हैं । क्षायोपशमिकभाव स्थानकी अपेक्षा सात प्रकार और विकल्परकी अपेक्षा अठारह प्रकारका है । कहा भी है—

ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र और देशसंयम, ये सात स्थान क्षायोपशमिक भावमें होते हैं ॥ ९ ॥

ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र और संयमासयम, ये सात स्थान क्षायोपशमिकभावके हैं । उनमें मति, श्रुत, अवधि और मन-पर्यथके भेदसे ज्ञान चार प्रकारका है ।

शंका—यहांपर ज्ञानोंमें केवलज्ञानका ग्रहण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वह क्षायिक भाव है ।

कुमति, कुश्रुत और विभगके भेदसे अज्ञान तीन प्रकारका है । चक्षु, अचक्षु और अवधिके भेदसे दर्शन तीन प्रकारका है । यहांपर दर्शनोंमें केवलदर्शनका ग्रहण नहीं

१ ज्ञानदर्शनदानलाममोगोमवीर्याणि च । त सू २, ४

खएण समुत्थवादो । लद्धी पंचविहा दाणादिभएण । सम्मत्तमेयविहं वेदगसम्मत्तत्रदिरकेण अणसम्मत्ताणमणुवलंभा । चारिचमेयविहं, सामाइयछेदोवद्वुवण-परिहारसुद्धिसंजम-विवस्खाभाव । संजमांसजमो एयविहो । एवमेदे सत्ते वि वियप्पा अट्टारस होति' (१८) । परिणामिओ तिविहो भव्वाभव्व-जीवत्तमिदि' । उचं च—

एय ठाण तिणिण वियप्पा तह परिणामिए होति ।

भव्वाभव्वा जीवा अत्तवणदो' चैव वोद्धव्वा' ॥ १० ॥

एदेसिं पुव्वुत्तभाववियप्पाणं संगहगाहा—

इगिवीस अह तह णव अट्टारस तिणिण चैव वोद्धव्वा ।

ओद्धइयादी भावा वियप्पो आणुपुव्वीए' ॥ ११ ॥

किया गया है, क्योंकि, वह अपने विरोधी कर्मके क्षयसे उत्पन्न होता है । दानादिकके भेदसे लब्धि पांच प्रकारकी है । सम्यक्त्व एक प्रकारका है, क्योंकि, इस भावमें वेदक-सम्यक्त्वको छोड़कर अन्य सम्यक्त्वोंका अभाव है । चारित्र एक विकल्परूप ही है, क्योंकि, यहांपर सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धिसंयमकी विवक्षाका अभाव है । संयमांसयम एक भेदरूप है । इस प्रकार मिलकर ये सब विकल्प अठारह होते हैं (१८) । परिणामिकभाव, भव्य, अभव्य और जीवत्वके भेदसे तीन प्रकारका है । कहा भी है—

परिणामिकभावमें स्थान एक तथा भव्य, अभव्य और जीवत्वके भेदसे विकल्प तीन प्रकारके होते हैं । ये विकल्प आत्माके असाधारण भाव होनेसे ग्रहण किये गये जानना चाहिए ॥ १० ॥

इन पूर्वोक्त भावोंके विकल्पोंको वतलानेवाली यह संग्रह-गाथा है—

औदयिक आदि भाव विकल्पोंकी अपेक्षा आठपूर्वसिं इकीस, आठ, नौ, अट्टारह और तीन भेदवाले हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥ ११ ॥

१ ज्ञानाज्ञानदर्शनलभयश्चलुत्तिपचमेदा' सम्यक्त्वचारित्रसयमासयमात्र । त सू २, ५

२ जीवित्व्याभव्ववचानि च । त सू, २, ७

३ अ उभत्यो 'अट्टवणदो' आपत्तौ 'अट्टवणदो' मत्तौ 'अट्टवणदो' सत्तौ 'अट्टवणदो' इति पाठ ।

४ असाधारण जीवित्व भावा परिणामिकादय एव । स ति २, ७ अन्यद्व्यासाधारणाक्षय-परिणामिना । X X X अस्तित्वादयोऽपि परिणामिका, भावा सन्ति X X सूत्रे तेषां ग्रहण कस्मान् कृत ? अन्यद्व्यासाधारणत्वाद्गृहिता । त रा वा २, ७

५ द्विनवाष्टादशैर्कनिशात्तिविमेदा यथात्मम् । त सू २, ३

अथवा सण्णिसाट्ठियं पडुच्च छत्तीसभंगं । सण्णिवदिएत्ति का सण्णा ? एकस्मिं गुणद्वारेण जीवगमांसं वा वदन्तो भावा जस्मिं सण्णिवदंति तेसिं भावाणं सण्णिसादिएत्ति सण्णा । एगं दुत्ति नदु-पंचमं जोगेण भंगा परुवियज्जंति । एगसंजोगेण जथा- ओदइओ ओदइओ ति ' मिच्छादिद्वी अमंजदो य ' । दंरणमोहणीयस्म उदएण मिच्छादिद्वि ति भावो, अमंजदो ति मंजमवादीर्णं कस्माणमुदएण । एदएण कस्मिण मन्वे नियप्पा परुवेदव्वा । एत्थं सुचगाहा-

एत्तोत्तणपददुत्तो रूपोवेभाजितं च पददुत्तं ।

मच्छः सपानफलं समाहृतं । सनिपातफलं ॥ १२ ॥

एदस्म भावस्स अणुगमो भावाणुगमो । तेण दुविहो णिदिसो, ओवण संगहिदो, आदंसेण अमंगहिदो ति णिदिसो दुविहो होदि, तदियस्स णिदिसस्स संभवाभावा ।

अथवा. सानिपातिककी अपेक्षा भावोंके छत्तीस भंग होते हैं ।

शंक्रा--सानिपातिक यह कौनसी संज्ञा है ?

समाधान--एक ही गुणस्थान या जीवसमासमें जो बहुतसे भाव आकर एकचित होते हैं, उन भावोंकी सानिपातिक ऐसी संज्ञा है ।

अब उक्त भावोंके एक, दो, तीन, चार और पांच भावोंके संयोगसे होनेवाले भंग कौं जाते हैं । उनमेंसे एकसंयोगी भंग इस प्रकार है-- ओदयिक-ओदयिकभाव, जंत-यह जीव मिथ्यादृष्टि और अन्त्यत है । दर्शनमोहनीयकर्मके उदयसे मिथ्यादृष्टि यह भाव उत्पन्न होता है । सयमचाली कर्मोंके उदयसे ' अंत्यत ' यह भाव उत्पन्न होता है । इसी नामसे सभी विकल्पोंकी प्ररूपणा करना चाहिए । इस चित्रमें सूत्र गाथा है--

एक एक उत्तर पदमें गढ़ते हुए गच्छको रूप ( एक ) आदि पदप्रमाण बढ़ाई हुई सजिमे भाजित करे, और परस्पर गुणा करे, तब सम्पातफल अर्थात् एक-संयोगी, छिन्त्ययोगी आदि भगोक्ता प्रमाण आता है । तथा इन एक, दो, तीन आदि भगोक्तो जोत् देने पर सनिपातफल अर्थात् सानिपातिकभंग प्राप्त हो जाते हैं ॥ १२ ॥

( इस सरणगाथाका विशेष अर्थ और भंग निकालनेका प्रकार समझनेके लिए देखते भाग ४, गृह १४३ का विशेषार्थ । )

इस उक्त प्रकारके भावके अणुगमको भावाणुगम कहते हैं । उसकी अपेक्षा निर्देश ही प्रकारका होता है । अंशमे संशुहीत और आदेशसे असंशुहीत, इस प्रकार निर्देश ही प्रकारका होता है, क्योंकि, तीसरे निर्देशका होना संभव नहीं है ।

१ अर्थात्कः सानिपातिस्यान' कतिमिय दयमेच्यते-गुणानीविध पर्यैबदिध एकत्वानिश्चिध

इत्येत्तानिमे उत । त रा मा २, ७

२ अथ मंदित न्युगमादिरे स्मेय देरे । लद मिच्छजउके केने तजोगणुगारा ॥ गो क ७९९

ओवण मिच्छादिद्वि ति को भावो, ओदइओ भावो ॥ २ ॥

' जहा उदेसो तथा णिदिसो ' ति जाणावणहुमोवेणेत्ति भणिदं । अत्थाविहाण-पचया तुल्लणामथेया इदि णायादो इदि-करणपरो' मिच्छादिद्विसदो मिच्छत्तभानं भणदि । पंचसु भावेषु एसो को भावो ति पुच्छेदे ओदइओ भावो ति तित्थयवयणादो दिव्व-ज्झणी विणिगया । को भावो, पंचसु भावेषु कदमो भावो ति भणिदं होदि । उदये भवो ओदइओ, मिच्छत्तकम्मस्स उदएण उप्पणामिच्छत्तपरिणामो कम्मोदयजणिदो सि ओदइओ । णण मिच्छादिद्विस्स अण्णे वि भावा अत्थि, णण-दंसण-गदि-लिंग-कसाय-भव्वाभव्वादिभावाभावे जीवस्स संसारिणो अभावप्पसंगा । भणिदं च-

मिच्छत्ते दस भगा आसादण-मिस्सर वि बोदव्वा ।

तिगुणा ते चदुहीणा अविरदसम्मस्स एमेव ॥ १३ ॥

देसे खओवसमिए विदेदे खवगाण ऊणवीसं तु ।

ओसामगेसु पुध पुध पणलीस भावदो भगा ॥ १४ ॥

ओवनिर्देशकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि यह कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है ॥ २ ॥

' जेसा उद्वेग होता है उसी प्रकार निर्देश होता है ' इस न्यायके तापनार्थ सूत्रमें ' ओव ' ऐसा पद कहा । अर्थ, अभिधान ( शब्द ) और प्रत्यय ( शाल ) तुल्य नामवाले होते हैं, इस न्यायसे ' इति ' करणपरक अर्थात् जिसके पश्चात् हेतुवाचक इति शब्द आया है, ऐसा ' मिथ्यादृष्टि ' यह शब्द मिथ्यात्वके भावको कहता है । पांचों भावोंमेंसे यह कौन भाव है ? ऐसा पूछनेपर यह औदयिक भाव है, इस प्रकार तीर्थकरके मुखसे दिव्यध्वनि निकली है । यह कौन भाव है, अर्थात् पांचों भावोंमेंसे यह कौनसा भाव है, यह तात्पर्य होता है । उदयसे जो हो, उसे औदयिक कहते हैं । मिथ्यात्वकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाला मिथ्यात्वपरिणाम कर्मोदयजनित है, अतएव औदयिक है ।

शंक्रा--मिथ्यादृष्टिके अन्य भी भाव होते हैं, उन ज्ञान, दर्शन, गति, लिंग, कपाय, भव्यत्व, अभव्यत्व आदि भावोंके अभाव माननेपर संसारी जीवके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है । कहा भी है--

मिथ्यात्वगुणस्थानमें उक्त भावोंसम्बन्धी दश भंग होते हैं । सामान्य और मिथ्य-गुणस्थानमें भी इसी प्रकार दश दश भंग जानना चाहिए । अविरतसम्बन्धि गुण-स्थानमें वे ही भंग विगुणित और चतुर्हीन अर्थात् ( १० x ३ - ४ = २६ ) छब्बीस होते हैं । इसी प्रकार ये छब्बीस भंग क्षायोपशमिक देशघिरत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें भी होते हैं । क्षपकत्रेणीवाले चारों क्षपकोंके उन्नीस उन्नीस भंग होते हैं ।

' सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टित्यौदयिको माय । स. सि १, ८ मिच्छे खलु ओदइओ । गो. जी. १२.

२ प्रतिदु ' इदिकरणपरे ' इति पाठ ।

उपशमथेणीवाले चारो उपशमकामे पृथक् पृथक् पैतीस भंग भावकी अपेक्षा होते हैं ॥ १३-१४ ॥

विशेषार्थ—ऊपर बतलाये गये भंगोंका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—औदयिकादि पाँचों मूल भावोंसे मिथ्यात्वगुणस्थानमे औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक, ये तीन भाव होते हैं। अतः असंयोगी या प्रत्येकसंयोगकी अपेक्षा ये तीन भंग हुए। इनके द्विसंयोगी भंग भी तीन ही होते हैं— औदयिक क्षायोपशमिक, औदयिक-पारिणामिक और क्षायोपशमिक-पारिणामिक। तीनों भावोंका संयोगरूप त्रिसंयोगी भंग एक ही होता है। इन सात भगोके सिवाय स्वसंयोगी तीन भंग और होते हैं। जैसे— औदयिक-औदयिक, क्षायोपशमिक-क्षायोपशमिक और पारिणामिक-पारिणामिक। इस प्रकार ये सब मिलाकर (३ + ३ + १ + ३ = १०) मिथ्यात्वगुणस्थानमें दश भंग होते हैं। ये ही दश भंग सासादन और मिथ्य गुणस्थानमें भी जानना चाहिए। अद्वितीयस्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पाँचों मूलभाव होते हैं, इसलिए यहाँ प्रत्येकसंयोगी पाँच भंग होते हैं। पाँचों भावोंके द्विसंयोगी भंग दश होते हैं। किन्तु उनमेंसे इस गुणस्थानमें औपशमिक और क्षायिकभावना संयोगी भंग सम्भव नहीं, क्योंकि, वह उपशमथेणीमें ही सम्भव है। अतः दशमेंसे एक घटा देने पर द्विसंयोगी भंग नौ ही पाये जाते हैं। पाँचों भावोंके त्रिसंयोगी भंग दश होते हैं। किन्तु उनमेंसे यहापर क्षायिक-औपशमिक-औदयिक, क्षायिक-औपशमिक-पारिणामिक और क्षायिक औपशमिक-क्षायोपशमिक, ये तीन भंग सम्भव नहीं हैं, अतएव शेष सात ही भंग होते हैं। पाचो भावोंके चतुःसंयोगी पाँच भंग होते हैं। उनमेंसे यहापर औदयिक-क्षायोपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक, तथा औदयिक क्षायोपशमिक औपशमिक पारिणामिक, ये दो ही भंग सम्भव हैं, शेष तीन नहीं। इसका कारण यह है कि यहापर क्षायिक और औपशमिकभाव साथ साथ नहीं पाये जाते हैं। इसी कारण पंचसंयोगी भंगका भी यहा अभाव है। इनके अतिरिक्त स्वसंयोगी भंगों-मेंसे क्षायोपशमिक-क्षायोपशमिक, औदयिक-औदयिक और पारिणामिक-पारिणामिक, ये तीन भंग और भी होते हैं। औपशमिक और क्षायिकके स्वसंयोगी भंग यहाँ सम्भव नहीं है। इस प्रकार प्रत्येकसंयोगी पाँच, द्विसंयोगी नौ, त्रिसंयोगी सात, चतुःसंयोगी दो और स्वसंयोगी तीन, ये सब मिलाकर (५ + २ + ७ + २ + ३ = २६) असयतस्यग्दृष्टि गुणस्थानमें छब्बीस भंग होते हैं। ये ही छब्बीस भंग देशविरत, प्रमत्तसयत और अप्र-मत्तसयत गुणस्थानमें भी होते हैं। क्षपकथेणीसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंमें औपशमिक-भावके विना शेष चार भाव ही होते हैं। अतएव उनके प्रत्येकसंयोगी भंग चार, द्विसंयोगी भंग छह, त्रिसंयोगी भंग चार और चतुःसंयोगी भंग एक होता है। तथा चारों भावोंके स्वसंयोगी चार भंग और भी होते हैं। इस प्रकार सब मिलाकर (४ + ६ + ४ + १ + ४ = १९) उन्नीस भंग क्षपकथेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें होते हैं। उपशमथेणीसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंमें पाचों ही मूल भाव सम्भव हैं, क्योंकि, यहापर क्षायिकस्यक्त्वके साथ औपशमिकचरित्र भी पाया जाता है। अतएव पाँचों भावोंके प्रत्येकसंयोगी पाँच भंग, द्विसंयोगी दश भंग, त्रिसंयोगी दश भंग, चतुःसंयोगी पाच

तदो मिच्छादिद्विस्स ओदइओ चव भावो अत्थि, अण्णे भावा गत्थि ति णेदं वडदे ? ण एस दोसो, मिच्छादिद्विस्स अण्णे भावा गत्थि ति सुत्ते पडिसेहाभावा । किंतु मिच्छत्तं मोत्तूण जे अण्णे गदि-लिंणादओ साधारणभावा ते मिच्छादिद्विस्स कारणं ण होति । मिच्छत्तोदओ एकओ चव मिच्छत्तस्स कारणं, तेण मिच्छादिद्वि ति भावो ओदइओ ति परूविदो ।

**सासणसम्मादिद्वि ति को भावो, पारिणामिओ भावो ॥ ३ ॥**

एत्थ चोदओ भणदि— भावो पारिणामिओ ति णेदं वडदे, अण्णेहिंतो अणु-पण्णस्स पारिणामस्स अत्थिचविरोहा । अह अण्णेहिंतो उप्पत्ती इच्छिज्जदि, ण सो पारिणामिओ, णिककारणस्स सकारणत्तविरोहा इदि । परिहारो उच्चदे । तं जहा— जो कम्मणपुदय-उत्तसम-सइय-खओवसेहि विणा अण्णेहिंतो उप्पणो पारिणामो सो पारि-णामिओ भणदि, ण णिककारणो कारणमंतरेणुप्पणपारिणामाभावा । सत्त-पमेयत्तादओ भंग होते हं और पंचसंयोगी एक भंग होता है। तथा स्वसंयोगी भंग चार ही होते हैं, क्योंकि यहापर क्षायिकस्यक्त्वके साथ क्षायिकभावका अन्य भेद सम्भव नहीं है। इस प्रकार सब मिलाकर (५ + १० + १० + ५ + १ + ४ = ३५) पैतीस भंग उपशमथेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें होते हैं।

इसलिए मिथ्यादृष्टि जीवके केवल एक औदयिक भाव ही होता है, और अन्य भाव नहीं होते हैं, यह कथन घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, 'मिथ्यादृष्टिके औदयिक भावके अतिरिक्त अन्य भाव नहीं होते हैं, इस प्रकारका सूत्रमे प्रतिषेध नहीं किया गया है। किन्तु मिथ्यात्वको छोड़कर जो अन्य गति, लिंग आदिक साधारण भाव हैं, वे मिथ्या-दृष्टित्वके कारण नहीं होते हैं। एक मिथ्यात्वका उदय ही मिथ्यादृष्टित्वका कारण है, इसलिए 'मिथ्यादृष्टि' यह भाव औदयिक कहा गया है।

सासादनस्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ३ ॥

शंका—यहाँ पर शंकाकार कहता है कि 'भाव पारिणामिक है' यह बात घटित नहीं होती है, क्योंकि, दूसरोसे नहीं उत्पन्न होनेवाले पारिणामिके अस्तित्वका विरोध है। यदि अन्यसे उत्पत्ति मानी जावे तो पारिणामिक नहीं रह सकता है, क्योंकि, निष्कारण वस्तुके सकारणत्वका विरोध है ?

समाधान—उक्त शंकाका परिहार कहते हैं। वह इस प्रकार है— जो कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपमके विना अन्य कारणोंसे उत्पन्न हुआ पारिणाम है, वह पारिणामिक कहा जाता है। न कि निष्कारण भावको पारिणामिक कहते हैं, क्योंकि, निष्कारण वस्तुके सकारणत्वका विरोध है ?

१ सासादनस्यग्दृष्टिति पारिणामिको भाव । स ति १, ८ विदिये ण पारिणामिओ भावो । नो जी. ११



सम्प्रापिच्छत्सम्भवाभावो । किन्तु सहहृणभागो असहहृणभागो ण होदि, सहहृणा-सहहृणाभेयत्तविरोहा । ण च सहहृणभागो कम्मोदयजणिओ, तत्थ विवरीयचाभावो । ण य तत्थ सम्प्रापिच्छत्तववएसभावो, ससुदाएसु पयड्डाणं तदेगसे वि पउत्तिदंसणादो । तदो सिद्धं सम्प्रापिच्छत्तं खओवसमियमिदि । मिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेन संतोवसेण सम्भत्तस्स देसधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेन संतोवसेण अणुदओवसमेण वा सम्प्रापिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदएण सम्प्रापिच्छत्तभावो होदि त्ति सम्प्रापिच्छत्तस्स खओवसमियत्तं केइं परूइयत्ति, तण्णा घड्ढे, मिच्छत्तभावस्स वि खओवसमियत्तप्पसंगा । झुदो ? सम्प्रापिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेन संतोवसेण सम्भत्तदेसधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेन संतोवसेण अणुदओवसमेण वा मिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदएण मिच्छत्तभावुप्पचीए उवलंभा ।

**असंजदसम्माइट्टि ति को भावो, उवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो' ॥ ५ ॥**

जात्यन्तरभूत सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके सम्यक्त्वताका अभाव है । किन्तु श्रद्धानभाग अश्रद्धान-भाग नहीं हो जाता है, क्योंकि, श्रद्धान और अश्रद्धानके एकताका विरोध है । और श्रद्धानभाग कर्मोदय-जनित भी नहीं है, क्योंकि, इसमें विपरीतताका अभाव है । और न उनमें सम्यग्मिथ्यात्व संज्ञाका ही अभाव है, क्योंकि, समुदायोंमें प्रवृत्त हुए शब्दोंकी उनके एक देशोंमें भी प्रवृत्ति देखी जाती है । इसलिए यह सिद्ध हुआ कि सम्यग्मिथ्यात्व क्षायोपशमिक भाव है ।

कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, अथवा अनुदयरूप उपशमसे और सम्यग्मिथ्यात्व कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे सम्यग्मिथ्यात्वभाव होता है, इसलिए सम्यग्मिथ्यात्वके क्षायोपशमिकता सिद्ध होती है । किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, ऐसा मानने पर तो मिथ्यात्वभावके भी क्षायोपशमिकताका प्रसंग प्राप्त होगा, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे और सम्यक्त्वदेशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, अथवा अनु-दयरूप उपशमसे, तथा मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे मिथ्यात्वभावकी उत्पत्ति पार्ई जाती है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है, क्षायिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ ५ ॥

१ असंयतसम्यग्दृष्टिति औपशमिको वा क्षायिको वा क्षायोपशमिको वा भाव । स ति १, ८. भविरदसम्मइ तिण्णव ॥ गो जी ११

तं जहा-मिच्छत्त-सम्प्रापिच्छत्तसव्वधादिफहयाणं सम्भत्तदेसधादिफहयाणं च उवससेण उदयाभावक्खएणेण उवसमसम्भत्तमुप्पज्जदि त्ति त्तोवसमियं । एदेसिं चेव खएण उप्पणो खइओ भावो । सम्भत्तस्स देसधादिफहयाणमुदएण सह वड्डमाणो सम्भत्त-परिणामो खओवसमिओ । मिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोव-समेण सम्प्रापिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसेण अणुद-ओवसमेण वा सम्भत्तस्स देसधादिफहयाणमुदएण खओवसमिओ भावो त्ति केइं भणत्ति, तण्णा घड्ढे, अइयत्तिदेसप्पसंगादो । कथं पुण घड्ढे ? जहड्डियसुहहृणघायणसची सम्भत्तफहएसु खीणा त्ति तेसिं खइयसण्णा । खयाणमुदयसमो पसण्णादां खओवसमो । तत्थुप्पणत्तादो खओवसमियं वेदगसम्मत्तमिदि घड्ढे । एतं सम्भत्तं तिण्णि भावा, अण्णे णत्थि । गदिलिगादओ भावा तत्थुवलंभंत इदि चे होदु णाम तेसिमत्थित्तं, किन्तु ण तेहिंतो सम्भत्तमुप्पज्जदि । तदो सम्माइट्टी वि ओइयादिववएसं ण लहदि त्ति घेत्तव्वं ।

जैसे-मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके तथा सम्यक्त्व-प्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयाभावरूप लक्षणवाले उपशमसे उपशमसम्यक्त्व-उत्पन्न होता है, इसलिए 'असंयतसम्यग्दृष्टि' यह भाव औपशमिक है । इन्हीं तीनों प्रकृतियोंके क्षयसे उत्पन्न होनेवाले भावको क्षायिक कहते हैं । सम्यक्त्वप्रकृतिके देश-घाती स्पर्धकोंके उदयके साथ रहनेवाला सम्यक्त्वपरिणाम क्षायोपशमिक कहलाता है । मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावरूप क्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, तथा उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदयोपशमनसे, और सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे क्षायोपशमिक भाव कितने ही आचार्य कहते हैं, किन्तु यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, वैसा मानने पर अतिव्याप्ति दोषका प्रसंग आता है ।

शंका—तो फिर क्षायोपशमिकभाव कैसे घटित होता है ?

समाधान—यथास्थित अर्थके श्रद्धानको घात करनेवाली शक्ति जब सम्यक्त्व-प्रकृतिके स्पर्धकोंमें क्षीण हो जाती है, तब उनकी क्षायिकसंज्ञा है । क्षीण हुए स्पर्धकोंके उपशमको अर्थात् प्रसन्नताको क्षयोपशम कहते हैं । उसमें उत्पन्न होनेसे वेदकसम्यक्त्व-क्षायोपशमिक है, यह कथन घटित हो जाता है । इस प्रकार सम्यक्त्वमें तीन भाव होते हैं, अन्य भाव नहीं होते हैं ।

शंका—असंयतसम्यग्दृष्टिमें गति, लिंग आदि भाव पाये जाते हैं, फिर उनका ग्रहण यहाँ क्यों नहीं किया ?

समाधान—असंयतसम्यग्दृष्टिमें भले ही गति, लिंग आदि भावोंका अस्तित्व रहा अर्थात्, किन्तु उनसे सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता है, इसलिए सम्यग्दृष्टि भी औदयिक आदि भावोंके व्यपदेशको नहीं प्राप्त होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

१ प्रतिपु 'पसण्णदो' इति पाठः ।

## औदङ्गाण भवेण पुणो असंजदो ॥ ६ ॥

मम्मट्टिणीए निणिण भवे भणिज्जण अमंजदत्तस्स कदमो भावो होदि ति जाणा-  
णदुमदं मुत्तमागदं । मंजमादीर्णं कम्ममाणमुदएण जेणसो असंजदो तेण असंजदो ति  
ओदङ्गो भावो । हेट्टिल्लणं गुणदुणाणमोदइयमंजदत्तं निण्ण पस्सुविदं ? ण एस दोसो,  
एदंणो तेणिमोदइयअमंजदमात्रोमलद्वीदो । जेणदमंतदीमयं सुत्तं तेणंते ठाइदण अइकंत-  
मव्यमुत्ताणमवयमह्वं पडियज्जदि, तत्थ अप्पणो अत्थितं वा पयासेदि, तेण अदीद-  
गुणदुणाणं मव्यमिमोदइयो असंजमभावो अत्थि ति सिद्धं । एदमादीए अभणिण एत्थ  
मंणत्तस्स तो अभिप्पाओ ? उच्चदे- असंजमभावस्स पज्जवसाणपरूवणहुमुवरिसाणम-  
मंजममात्रयडिसेहदं नेत्थेदं उच्चदे ।

## संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥ ७ ॥

किन्तु असंयतसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिकभावसे है ॥ ६ ॥

सम्यग्दृष्टिके तीनों भाव कहेकर असयतके उसके असंयतत्वकी अपेक्षा  
कौनसा भाग होता है, इस गतके बतलानेके लिए यह सूत्र आया है । चूंकि संयमके  
गत करनेवाले कर्मोंके उदयसे यह असयतरूप होता है, इसलिए 'असंयत' यह  
औदयिकभाव है ।

शंका—अधस्तन गुणस्थानोंके असयतपनेको औदयिक क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इसी ही सूत्रसे उन अधस्तन गुण-  
स्थानोंके औदयिक असंयतभावकी उपलब्धि होती है । चूंकि यह सूत्र अन्तदीपक है,  
इसलिए असयतभावको अन्तमें रख देनेसे यह पूर्वोंके सभी सूत्रोंका अंग बन जाता है ।  
अथवा, अतीत सर्व सूत्रोंमें अपने अस्तित्वको प्रकाशित करता है, इसलिए सभी अतीत  
गुणस्थानोंका असंयमभाव औदयिक होता है, यह बात सिद्ध हुई ।

शंका—यह 'असंयत' पद आदिमें न कहकर यहापर कहनेका क्या अभिप्राय है ?  
समाधान—यहां तकके गुणस्थानोंके असंयमभावकी अन्तिम सीमा बतलानेके  
लिए और अगरेके गुणस्थानोंके असंयमभावके प्रतिबंध करनेके लिए यह असंयत पद  
यहांपर कहा है ।

संयतामंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत, यह कौनसा भाव है ? शायोप-  
शुभिक भाव है ॥ ७ ॥

१ अथवा 'पुनोत्पत्ति' में भावेण । स. नि. १, ८.

२ अथवा 'पुनोत्पत्ति' में भावेण । स. नि. १, ८. देखिये  
पुनरे एदो य मज्जीमनिमाओ ३ । तो सुउ चरिणोह पइव मणिण तथा व्वरि । गो. जी १३.

तं जहा- चरित्तमोहणीयकम्मोदए खओवसमसणिणदे संते जदो संजदासंजद-  
पमत्तसंजद-अप्पमत्तसंजदत्तं च उपपज्जदि, तेणेदे तिणिण वि भावा खओवसमिया ।  
पच्चक्खाणावरण-चदुसंजलण-णवणोक्सायाणमुदयस्स सवप्पणा चारित्तविणासणसत्तीए  
अभावो तस्स खयसण्णा । तेसिं चैव उपपणचरित्तं सेडिं वावारांतस्स उवसमसण्णा ।  
तेहि दोहितो उपपणा एदे तिणिण वि भावा खओवसमिया जादा । एं संते पच्चक्खाणा-  
वरणस्स सव्वधादित्तं फिद्धिदि चि उत्ते ण फिद्धिदि, पच्चक्खाणं सव्वं घादयदि  
चि तं सव्वधादी उच्चदि । सव्वमपच्चक्खाणं ण घादेदि, तस्स तत्थ वावारा-  
भावा । तेण तप्परिणदस्स सव्वधादिसण्णा । जस्सोदए संते जमुप्पज्जमाणु-  
वल्लभदि ण तं पडि तं सव्वधाइवएसं लहइ, अइप्पसंगादो । अपच्चक्खाणा-  
वरणचउक्कस्स सव्वधादिफहदयाणमुदयक्खाण तेषिं चैव संतोवसमेण चदुसंज-  
लण-णवणोक्सायाणं सव्वधादिफहदयाणमुदयक्खाण तेषिं चैव सतोवसमेण देस-  
धादिफहदयाणमुदएण पच्चक्खाणावरणचदुक्कस्स सव्वधादिफहदयाणमुदएण देससंजमो

चूंकि शयोपशमनामक चारित्रमोहनीयकर्मका उदय होने पर सयतासंयत,  
प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसयतपना उत्पन्न होता है, इसलिए ये तीनों ही भाव शायोप-  
शुभिक हैं । प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, संज्वलनचतुष्क और नव नोरुपायोंके उदयके सर्व  
प्रकारसे चारित्र विनाश करनेकी शक्तिका अभाव है, इसलिए उनके उदयकी क्षय संशा  
है । उन्हीं प्रकृतियोंकी उत्पन्न हुए चारित्रको अथवा श्रेणीको आवरण नहीं करनेके कारण  
उपशम सजा है । क्षय और उपशम, इन दोनोंके द्वारा उत्पन्न हुए ये उक्त तीनों भाव भी  
शायोशुभिक हो जाते हैं ।

शंका—यदि पेसा माना जाय, तो प्रत्याख्यानावरण कपायका सर्वघातिपना  
नष्ट हो जाता है ?

समाधान—पैसा माननेपर भी प्रत्याख्यानावरण कपायका सर्वघातिपना नष्ट  
नहीं होता है, क्योंकि, प्रत्याख्यानावरण कपाय अपने प्रतिपक्षी सर्व प्रत्याख्यान (संयम)  
गुणको घातता है, इसलिए वह सर्वघाती कहा जाता है । किन्तु सर्व अप्रत्याख्यानको  
नहीं घातता है, क्योंकि, उसका इस विषयमें व्यापार नहीं है । इसलिए इस प्रकारसे  
परिणत प्रत्याख्यानावरण कपायके सर्वघाती संशा सिद्ध है । जिस प्रकृतिके उदय होने  
पर जो गुण उत्पन्न होता हुआ देखा जाता है, उसकी अपेक्षा वह प्रकृति सर्वघाति  
संशाको नहीं मान्त होती है । यदि पेसा न माना जाय तो अतिप्रसंग दोष आजायगा ।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे और उन्हींके सद्-  
वस्थारूप उपशमसे, तथा चारों संज्वलन और नवों नोरुपायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके  
उदयाभावी क्षयसे और उन्हींके सद्बस्थारूप उपशमसे तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे  
और प्रत्याख्यानावरण कपायचतुष्कके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे देशसंयम उत्पन्न होता



उप्यज्जदि । वारसकसायाणं सब्वघादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चैव संतोवसेण चटु-  
सेजुलण-णवणोक्कसायाणं सब्वघादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चैव संतोवसेण देसघादि-  
फहयाणमुदएण पमत्तापमत्तसंजमां उपपज्जंति, तेणेदे तिणिण वि भावा खओवसमिया  
इदि के वि भणंति । ण च एदं समंजसं । कुदो ? उदयाभावो उवसमो चि क्खु उदय-  
विरहिसव्वपयडीहि द्विदि-अणुभागफहएहि अ उवसमसण्णा लद्धा । संपहि ण क्खओ  
अत्थि, उदयस्स विज्जमाणस्स खयव्वएसविरोहादो । तदो एदे तिणिण भावा उदओव-  
समियत्तं पत्ता । ण च एवं, एदेसिमुदओवसमियत्तपटुप्पायणसुत्ताभावा । ण च फलं  
दाज्जण णिज्जरियगयकम्मक्खंडाणं खयव्वएसं काज्जण एदेसिं खओवसमियत्तं वोडुं  
जुत्तं, मिच्छादिद्विआदि सब्वभावाणं एवं सिते खओवसमियत्तपसंगा । तद्धा पुव्विल्लो  
चेय अत्थो घेत्तव्वो, णिरवज्जत्तादो । दंसणमोहणीयकम्मस्स उवसम-खय-खओवसमे  
अस्सिदूण संजदासंजदादीणमोवसमियदिभावा किण्ण फरुविदा ? ण, तदो संजमांसंजमादि-  
भावाणमुपपीए अभावादो । ण च एत्थ सम्मचविसया पुच्छा अत्थि, जेण दंसण-

हे । अनन्तावुन्धी आदि वारह कपायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सद-  
वस्थारूप उपशमसे चारों सब्बलन और नवों नोकपायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय-  
क्षयसे, तथा उन्हींके सदवस्थारूप उदुयसे और देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे प्रमत्त  
और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी संयम उत्पन्न होता है, इसलिये एक तीनों ही भाव  
क्षायोपशमिक हैं, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं । किन्तु उनका यह कथन युक्तिसंगत  
नहीं है, क्योंकि, उदयके अभावको उपशम कहते हैं, ऐसा अर्थ करके उदयसे विरहित  
सर्वप्रकृतियोंको तथा उन्हींके स्थिति और अनुभागके स्पर्धकोंको उपशमसंज्ञा प्राप्त हो  
जाती है । अभी वर्तमानमें क्षय नहीं है, क्योंकि, जिस प्रकृतिका उदय विद्यमान है,  
उत्तके क्षय संज्ञा होतिका विरोध है । इसलिये ये तीनों ही भाव उदयोपशमिकपनेको  
प्राप्त होते हैं । किन्तु ऐसा माना नहीं जा सकता है, क्योंकि, एक तीनों गुणस्थानोंके  
उदयोपशमिकपना प्रतिपादन करनेवाले सूत्रका अभाव है । और, फलको देकर एवं  
निर्जराको प्राप्त होकर गये हुए कर्मस्पर्धकोंके 'क्षय' संज्ञा करके उक्त गुणस्थानोंको  
क्षायोपशमिक कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टि आदि सभी  
भावोंके क्षायोपशमिकताका प्रसंग प्राप्त हो जायगा । इसलिये पूर्वोंक ही अर्थ ग्रहण  
करना चाहिये, क्योंकि, वही निरवद्य (निर्दोष) है ।

शंका—दर्शनमोहनीयकर्मके उपशम, क्षय और क्षयोपशमका आशय करके  
सयतासंयतादिकोंके औपशमिफ्रादि भाव क्यों नहीं बताये गये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमादिकसे सयमासंयमादि  
भावोंकी उत्पत्ति नहीं होती । दूसरे, यहां पर सम्यक्त्व-विषयक पुच्छा (प्रश्न) भी नहीं है,

मोहिविंधयणओवसमियादिभावेहि संजदासंजदादीणं ववएसो होज्ज । ण च एवं,  
तथाणुवलंभा ।

**चटुहमुवसमां ति को भावो, ओवसमिओ भावो ॥ ८ ॥**

तं जहा—एकत्रीसपयडीओ उवसामेति ति चटुहं ओवसमिओ भावो । होडु  
गाम उवसंतकसायस्स ओवसमिओ भावो उवसमिदासेसकसायत्तादो । ण सेसाणं, तत्थ  
असेसमोहस्सुवसमाभावा ? ण, अणियद्विवादसांपराहय-सुहुमसांपराहयाणं उवसमिद-  
ओवकसायजणिदुवसमपरिणामाणं ओवसमियभावस्स अत्थित्ताविरोहा । अपुव्यकरणस्स  
अणुवसंतासेसकसायस्स कथमोवसमिओ भावो ? ण, तस्स वि अपुव्यकरणेहि पडि-  
समयमसंखेज्जगुणाए सेडीए कम्मक्खंडे णिज्जरतस्स द्विदि-अणुभागखंडयाणि घादिदूण  
कमेण ठिदि-अणुभागे संखेज्जाणंतगुणहीणे करेतस्स पारदुवसमणकिरियस्स तदनिरोहा ।  
जिससे कि दर्शनमोहनीय निमित्तक औपशमिकादि भावोंकी अपेक्षा संयतासंयतादिकके  
औपशमिकादि भावोंका व्यपदेश हो सके । ऐसा है नहीं, क्योंकि, उस प्रकारकी व्यवस्था  
नहीं पाई जाती है ।

अपूर्वकरण आदि चारों गुणस्थानवर्ती उपशमक यह कौनसा भाव है ?  
औपशमिक भाव है ॥ ८ ॥

वह इस प्रकार है—चारित्रमोहनीयकर्मकी इकीस प्रकृतियोंका उपशमन करते  
हैं, इसलिये चारों गुणस्थानवर्ती जीवोंके औपशमिकभाव माना गया है ।

शंका—समस्त कपाय और नोकपायोंके उपशमन करनेसे उपशान्तकपायवीत-  
रागछद्मस्य जीवके औपशमिक भाव भले ही रहा आवे, किन्तु अपूर्वकरणदि शेष गुण-  
स्थानवर्ती जीवोंके औपशमिक भाव नहीं माना जा सकता है, क्योंकि, उन गुणस्थानोंमें  
समस्त मोहनीयकर्मके उपशमका अभाव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कुछ कपायोंके उपशमन किए जानेसे उत्पन्न हुआ  
है उपशम परिणाम जिनके, ऐसे अनिवृत्तिकरण वादरसात्पराय और सूक्ष्मसात्पराय-  
संयतके उपशमभावका अस्तित्व माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—नहीं उपशमन किया है किसी भी कपायका जिसने, ऐसे अपूर्वकरण-  
संयतके औपशमिक भाव कैसे माना जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अपूर्वकरण परिणामोंके द्वारा प्रतिसमय असंख्यत-  
गुणधेणीरूपसे कर्मस्पर्धकोंकी निर्जरा करनेवाले, तथा स्थिति और अनुभागखंडकोंको  
घात करके क्रमसे कपायोंकी स्थिति और अनुभागको असंख्यात और अनन्तयुगित हीन  
करनेवाले, तथा उपशमनकियाका प्रारंभ करनेवाले, ऐसे अपूर्वकरणसंयतके उपशम-  
भावके माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

कर्मणामुपममेण उपपणो भावो ओपशमिओ भण्ह । अपुव्वकरणस्स तदभावा णोव-  
ममिओ भावो इटि चे ण, उपममणमत्तिसमण्हिअपुव्वकरणस्स तद्विचिचिविरोहा ।  
नया च उपममे जाये उपममियकम्मणमुव्वसमण्हं जादो वि ओवसमिओ भावो ति  
सिद्धं । अथवा भस्सिमाणे भूदोवयारादो अपुव्वकरणस्स ओपसमिओ भावो, सयला-  
संजमे पयइउन्नकहरस्स तित्थयस्सवएसो व्व ।

**चटुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि ति को भावो,  
खइओ भावो ॥ ९ ॥**

नजोगि-अजोगिकेवलीणं एनिदवाइकम्मणं हेदु णाम खइओ भावो । खीण-  
रुणायस्स पि हेदु, सविदमोहणीयचादो । ण सेसाणं, तत्थ कम्मखयाणुमलंभा ? ण,  
चार-पुहुममांपगइयाणं पि सवियमोहेयेदेसाणं कम्मखयजणिदभावोवलंभा । अपुव्व-

शंका—कर्मोंके उपशमनसे उत्पन्न होनेवाला भाव औपशमिक कहलाता है ।  
किन्तु अपूर्णकरणसंयतके कर्मोंके उपशमनका अभाव है, इसलिए उसके औपशमिक भाव  
नहीं मानना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमनशक्तिसे समन्वित अपूर्णकरणसंयतके औप-  
शमिकभावके अस्तित्वको माननेमें कोई निरोध नहीं है ।

इस प्रकार उपशम होनेपर उत्पन्न होनेवाला और उपशमन होने योग्य कर्मोंके  
उपशमनार्थ उत्पन्न हुआ भी भाव औपशमिक कहलाता है, यह बात सिद्ध हुई । अथवा,  
अप्रियमें होनेवाले उपशम भावमें भूतकालका उपचार करनेसे अपूर्णकरणके औपशमिक  
भाव यत्न जाता है, जिस प्रकार कि सर्व प्रकारके असंयममें प्रवृत्त हुए चक्रवर्ती तीर्थकरके  
'तीर्थन्तर' यह व्यपदेश यत्न जाता है ।

चारों क्षणक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, यह कौनसा भाव है ?  
क्षायिक भाव है ॥ ९ ॥

शंका—वातिकर्मोंके क्षय करनेवाले सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके क्षायिक  
भाव भले ही रहा आये । क्षीणरूपय वीतरागछात्रस्यके भी क्षायिक भाव रहा आये,  
पर्यंत, उसके भी मोहनीयकर्मका क्षय हो गया है । किन्तु सुदमसागराय आदि शेष  
क्षयकोंके क्षायिक भाव मानना युक्ति संगत नहीं है, क्योंकि, उनमें किसी भी कर्मका  
क्षय नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मोहनीयकर्मके एक देशके क्षण करनेवाले बादर-  
सागराय और सुदमसागराय क्षयकोंके भी कर्मक्षय-जनित भाव पाया जाता है ।

१ चतुर्थे क्षणमे सयोगमेणहेनखिओव क्षीणो भावः । स सि १, ८. खणेषु खयो भावो निव्वना  
अजोगिकेवली सि सिद्धे ५ ॥ गो जी. २४.

करणस्स अविण्हकम्मस्स कधं खइओ भावो ? ण, तस्स वि कम्मखयणिमिचपरिणासु-  
वलंभा । एत्थ वि कम्मणं खए जादो खइओ, खयण्हं जाओ' वा खइओ भावो इदि  
दुविहा सइउप्पत्ती वेत्तव्वा । उव्वयारेण वा अपुव्वकरणस्स सइओ भावो । उव्वयारे  
आसइज्जमाणे अइप्पसंगो किण्ण होदीदि चे ण, पच्चासत्तीदो अइप्पसंगपडिसेहादो ।

ओघाणुगो समत्तो ।

**आदेसेण गइयाणुवादेण णिरयगईए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि ति  
को भावो, ओदइओ भावो ॥ १० ॥**

कुदो ? मिच्छजुदयजणिदअसइहणपरिणासुवलंभा । सम्मामिच्छत्तसव्वधादि-  
फइयाणमुदयवत्सएण तेसिं चैव संतोवसेमेण सम्मत्तेदसधादिफइयाणमुदयवत्सएण तेसिं  
चैव संतोवसमेण' अणुदओपसमेण वा मिच्छत्तसव्वधादिफइयाणमुदएण मिच्छइड्ढी

शंका—किसी भी कर्मके नष्ट नहीं करनेवाले अपूर्णकरणसंयतके क्षायिकभाव  
कैसे माना जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उसके भी कर्मक्षयके निमित्तभूत परिणाम पाये  
जाते हैं ।

यहां पर भी कर्मोंके क्षय होने पर उत्पन्न होनेवाला भाव क्षायिक है, तथा  
कर्मोंके क्षयके लिए उत्पन्न हुआ भाव क्षायिक है, ऐसी दो प्रकारकी शब्द-व्युत्पत्ति  
ग्रहण करना चाहिए । अथवा उपचारसे अपूर्णकरण संयतके क्षायिक भाव मानना चाहिए ।

शंका—इस प्रकार सर्वत्र उपचारके आश्रय करने पर अतिप्रसंग दोग्य क्यों नहीं  
प्राप्त होगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रत्यासत्ति अर्थात् समीपवर्ती अर्थके प्रसंगसे अति-  
प्रसंग दोग्यका प्रतिषेध हो जाता है ।

इस प्रकार ओघ भावानुगम समाप्त हुआ ।

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणोंके अनुवादसे नरकगतियें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि  
यह कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है ॥ १० ॥

क्योंकि, वहां पर मिथ्यात्वके उदयसे उत्पन्न हुआ अथवादानरूप परिणाम पाया  
जाता है ।

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सद-  
यस्थारूप उपशमसे, तथा सम्यक्चक्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके  
सद्व्यवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदयोपशमसे और मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती

१ प्रतिपु 'खण्हज्जालो' इति पाठः ।

२ विशेषेण गणउवादेन नरकगतौ प्रयमाणां पृथिव्यां नात्कानां मिथ्यादृष्टयायत्तसम्यग्दृष्टयत्तानां  
मानन्नात् । स सि १, ८. ३ अन्तो 'सम्मउदेसधादि' सतोवसमेण' इति पाठस्य दित्थादिः ।

उप्यज्जदि त्ति खओवसमिओ सो किण होदि ? उच्चदे- ण ताव सम्मत्त-सम्माभिच्छत्त-  
देसवादिफहयाणमुदयवखओ संतोवसमो अणुदओवसमो वा मिच्छादिट्ठीए कारणं, सव्वहि-  
चारिचादो । जं जदो णियमेण उप्यज्जदि तं तस्स कारणं, अण्णहा अणवत्थोप्यसंगादो ।  
जदि मिच्छुप्यज्जणकाले विज्जमाणा तक्कारणत्तं पडिवज्जंति तो णाण-दंसण-अंसजमा-  
दओ वि तक्कारणं होति । ण चेरं, तहाविहवहराभावा । मिच्छादिट्ठीए णुण  
मिच्छुदुदओ कारणं, तेण विणा तदणुप्यत्तीए ।

**सासणसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, पारिणामिओ भावो ॥ ११ ॥**

अणंताणुबंधीणमुदएणेण सासणसम्मादिट्ठी होदि त्ति ओदइओ भावो किण्ण  
उच्चदे ? ण, आइल्लेसु चट्टुसु वि गुणह्वाणसु चारित्तवरणत्तिवोदएण पत्तासंजमेसु दंसण-  
मोहणिवंधणेसु चारित्तमोहविवाखाभावा । अप्पिदस्स दंसणमोहणीयस्स उदएण उवसमेण  
खएण खओवसमेण वा सासणसम्मादिट्ठी ण होदि त्ति पारिणामिओ भावो ।

स्पर्धकोके उदयसे मिथ्यादृष्टिभाव उत्पन्न होता है, इसलिए उसे क्षायोपशमिक क्यों न  
माना जाय ?

समाधान—न तो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके देशघाती  
स्पर्धकोका उदयक्षय, अथवा सदवस्थारूप उपशम, अथवा अनुदयरूप उपशम मिथ्यादृष्टि-  
भावका कारण है, क्योंकि, उसमें व्यभिचार दोष आता है । जो जिससे नियमतः उत्पन्न  
होता है, वह उसका कारण होता है । यदि ऐसा न माना जावे, तो अनवस्था दोषका  
प्रसंग आता है । यदि यह कहा जाय कि मिथ्यात्वके उत्पन्न होनेके कालमें जो भाव  
विद्यमान हैं, वे उसके कारणपनेको प्राप्त होते हैं । तो फिर ज्ञान, दर्शन, असंयम आदि भी  
मिथ्यात्वके कारण हो जावेंगे । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, उस प्रकारका व्यवहार नहीं  
पाया जाता है । इसलिए यही सिद्ध होता है कि मिथ्यादृष्टिका कारण मिथ्यात्वका उदय  
ही है, क्योंकि, उसके बिना मिथ्यात्वभावकी उत्पत्ति नहीं होती है ।

नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ११ ॥

शंका—अनन्तानुबन्धी चारों कपायोंके उदयसे ही जीव सासादनसम्यग्दृष्टि  
होता है, इसलिए उसे औदयिकभाव क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयनिवन्धनक आदिके चारों ही गुणस्थानोंमें  
चारित्रको आवरण करनेवाले मोहकर्मके तीव्र उदयसे असंयमभावके प्राप्त होनेपर भी  
चारित्रमोहनीयकी विवक्षा नहीं की गई है । अतएव विवक्षित दर्शनमोहनीय कर्मके  
उदयसे, उपशमसे, क्षयसे, अथवा क्षयोपशमसे सासादनसम्यग्दृष्टि नहीं होता है, इसलिए  
वह पारिणामिक भाव है ।

**सम्माभिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥ १२ ॥**

कुदो ? सम्माभिच्छत्तुदए संते त्ति सम्मदंसणेणदेसमुत्थला । सम्माभिच्छत्तभावे  
पत्तजच्चंतरे अंससीभावो णलिय त्ति ण तत्थ सम्मदंसणस्स एगदेस इदि चे, होदु णाम  
अभेदविक्खाए जच्चंतरत्तं । भेदे णुण त्तिविक्खेदे सम्मदंसणभागो अत्थि चेव, अण्णहा  
जच्चत्तरत्तिरोहा । ण च सम्माभिच्छत्तस्स सव्वधाइत्तमेवं संते विरुज्झह, पत्तजच्चंतरे  
सम्मदंसणसाभावदो तस्स सव्वधाइत्ताविरोहा । मिच्छत्तसव्वधाइफहयाणं उदयवसएण  
तोसं चेव संतोवसमेण सम्मत्तस्स देसवादिफहयाणमुदयवखएण तोसं चेव संतोवसमेण  
अणुदओवसमेण वा सम्माभिच्छत्तसव्वधादिफहयाणमुदएण सम्माभिच्छत्तं होदि त्ति तस्स  
खओवसमियत्तं केइं भणंति, तण्ण घडदे । कुदो ? सव्वहिचारिचादो । विउचारो पुब्बं  
परूविदो त्ति णेह परूविज्जदे ।

**असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा, खइओ वा,  
खओवसमिओ वा भावो ॥ १३ ॥**

नारकी सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ १२ ॥  
क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय होनेपर भी सम्यग्दर्शनका एक देश पाया  
जाता है ।

शंका—जालन्तरत्त्व (भिन्न जातीयता) को प्राप्त सम्यग्मिथ्यात्वभावमें अंशांशी  
( अवयव-अवयवी ) भाव नहीं है, इसलिए उसमें सम्यग्दर्शनका एक देश नहीं है ?

समाधान—अभेदकी विवक्षामें सम्यग्मिथ्यात्वके भिन्नजातीयता भले ही रही  
आवे, किन्तु भेदकी विवक्षा करनेपर उसमें सम्यग्दर्शनका एक भाग ( अंश ) है ही ।  
यदि ऐसा न माना जाय, तो उसके जालन्तरत्वके माननेमें विरोध आता है । और, ऐसा  
माननेपर सम्यग्मिथ्यात्वके सर्वघातिपना भी विरोधको प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि,  
सम्यग्मिथ्यात्वके भिन्नजातीयता प्राप्त होनेपर सम्यग्दर्शनके एक देशका अभाव है, इस-  
लिए उसके सर्वघातिपना माननेमें कोई विरोध नहीं आता ।

कितने ही आचार्य, मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोके उदयक्षयसे, उन्हीके  
सदवस्थारूप उपशमसे, तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोके उदयक्षयसे और  
उन्हींके सदवस्थारूप उपशम, अथवा अनुदयरूप उपशमसे, और सम्यग्मिथ्यात्वके सर्व-  
घाती स्पर्धकोके उदयसे सम्यग्मिथ्यात्वभाव होता है, इसलिए उसके क्षायोपशमिकता  
कहते हैं । किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, उक्त लक्षण सव्यभिचारी  
है । व्यभिचार पहले प्ररूपण किया जा चुका है, ( देखो पृ १९९ ) इसलिये यहां नहीं कहते हैं ।

नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है, क्षायिक-  
भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ १३ ॥

तं जहा- तिष्ठि नि ऋणाणि काञ्चण सम्मत्तं पडिचणजीवाणं ओवसमिओ भावो, अंयमंवादीयस्स तंयुदयाभावा । सविट्ठंयणमोहणीयाणं सम्मादिट्ठीणं खइयो, पडिचणसम्मससणुणणत्तादो । इदंमिं सम्मादिट्ठीणं खओवसमिओ, पडिचणसस- कम्मोदण्ण मइ लद्धप्यमच्चत्तादो । मिच्छत्त-सम्माभिच्छत्ताणं सव्यधादिफइयाणपुदय- क्काण्ण तेषि नेम मंतोवसमेण अनुदओवसमेण वा सम्मत्तदेसधादिफइयाणपुदएण सम्मादिट्ठी उप्पज्जदि ति तिस्से सओवसमियत्तं केइं भणति, तण्ण वडडे, विउचार- देयणादो, इइयंगंवादो वा ।

**ओदइएण भवेण पुणो असंजदो ॥ १४ ॥**

संजमवादीणं ऋम्माणपुदएण अंयजमो होदि, तदो अंयजदो ति ओदइओ भावो । एदंण अंतदीएण मुत्तेण अइकंतगन्वगुणद्वारेणु ओदइयमंसंजदत्तमत्थि ति भणिदं होदि ।

**एवं पढमाए पुढवीए णेरइयाणं ॥ १५ ॥**

कुदो ? मिच्छादिट्ठि ति ओदइओ, सासणसम्मादिट्ठि ति पारिणासिओ, सम्मा- मिच्छादिट्ठि ति सओवसमिओ, असंजदसम्मादिट्ठि ति उनसमिओ सइओ खओव-

अंय- अथऋण आदि तंतो ही करणोतो करके सम्पक्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंके औपशमिक भाव होता है, क्योंकि, वहांपर दर्शनमोहनीयकर्मके उदयका अभाव है । दर्शनमोहनीयकर्मके क्षणण करनेवाले सम्पग्रष्टि जीवोंके क्षायिकभाव होता है, क्योंकि, जा धरणे प्रतिपक्षी कर्मके क्षयसे उत्पन्न होता है । अन्य सम्पग्रष्टि जीवोंके क्षायोपशमिकभाव होता है, क्योंकि, प्रतिपक्षी कर्मके उदयके साथ उसके आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होती है । मिथ्यात्व और सम्पगमिगम्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके नदवस्थारूप उपशमसे, अथवा अनुदयरूप उपशमसे, तथा सम्प- ग्रष्टिके वैराघाती स्पर्धकोंके उदयसे सम्पग्रष्टि उत्पन्न होती है, इसलिए उसके भी क्षायोपशमिकता क्लिप्ते ही आचार्य कहते हैं । किन्तु वह घटित नहीं होती है, क्योंकि, तैना माननेपर व्यभिचार पैदा जाता है, अथवा अतिप्रसंग दोष आता है ।

किन्तु नारसी अंयतसम्पग्रष्टिका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ १४ ॥

चूंकि, प्रसंयमभाव समयमत्तो घात करनेवाले कर्मोंके उदयसे होता है, इसलिए 'अंयन' यह औदयिकभाव है । इस अन्तर्दीपक सूत्रसे अतिकान्त सर्व गुणस्थानोंमें अंयनपना ओदयिक है, यह सूचित किया गया है ।

इस प्रकार प्रथम पृथिवीमें नागक्रियोंके सर्व गुणस्थानोंसम्बन्धी भाव होते हैं ॥ १५ ॥

न्यौंकि, मिथ्यादृष्टि यह औदयिक भाव है, सासादनसम्पग्रष्टि यह पारि- णामिकभाव है, सम्पगमिगम्यादृष्टि यह क्षायोपशमिकभाव है और असंयतसम्पग्रष्टि यह

समिओ वा भावो; संजमवादीणं कम्ममाणपुदएण असंजदो ति इच्छेदेहि णिरओघादो विससाभावा ।

**विदियाए जाव सत्तमीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-सासण- सम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठीणमोचं ॥ १६ ॥**

सुगममेदं ।

**असंजदसम्मादिट्ठि ति को भावो, उवसमिओ वा खओव- समिओ वा भावो ॥ १७ ॥**

तं जहा- दंसणसेहणीयस्स उवसमेण उदयाभावलक्षणेण जेणुप्पज्जइ उवसम- सम्मादिट्ठी तेण सा ओवसमिया । जदि उदयाभावो वि उवसमो उच्चइ, तो देवत्तं पि ओवसमियं होज्ज, तिण्हं गईणसुदयाभावेण उप्पज्जमाणत्तादो ? ण, तिण्हं गईणं स्थिउक्क- संकेणं उदयसुवलंभा, देवगइणामाए उदओवलंभादो वा । वेदगसम्मत्तस्स दंसण- औपशमिकभाव भी है, क्षायिकभाव भी है और क्षायोपशमिकभाव भी है, तथा संयम- घाती कर्मोंके उदयसे असंयत है । इस प्रकार नारकसामान्यकी भावप्ररूपणसे कोई विशेषता नहीं है ।

द्वितीय पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक नारकोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादन- सम्पग्रष्टि और सम्पगमिगम्यादृष्टियोंके भाव ओधके समान हैं ॥ १६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त नारकोंमें असंयतसम्पग्रष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ १७ ॥

चूंकि, दर्शनमोहनीयके उदयभावलक्षणवाले उपशमके द्वारा उपशमसम्पग्रष्टि उत्पन्न होती है, इसलिए वह औपशमिक है ।

शंका—यदि उदयभावको भी उपशम कहते हैं तो देवपना भी औपशमिक होना, क्योंकि, वह शेष तीनों गतियोंके उदयभावसे उत्पन्न होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वहांपर तीनों गतियोंका स्तिदुरुक्तकर्मणके द्वारा उदय पाया जाता है, अथवा देवगतितानकर्मका उदय पाया जाता है, इसलिए देवपर्यायको औपशमिक नहीं कहा जा सकता ।

१ द्वितीयादिवा सप्तम्या मिथ्यादृष्टिसासादनसम्पग्रष्टिसम्पगमिगम्यादृष्टीना साणायकत् । स ति १, ६.

२ प्रतेणु 'वा' इति पाठो नास्ति ।

३ अंयतसम्पग्रष्टेरोपशमिको वा क्षायोपशमिको वा भाव । स ति १, ६.

४ उदयपरिण जा उदयसपाया तीए अणुदययाओ । सक्कामिज्ज वेयदं ज एलो विउशापकामो ॥

मोहणीयावयवस्स देसघादिलक्खणस्स उदयादो उप्पणसम्मादिट्ठिभावो खओवसमिओ । वेदगसम्मत्तफद्दयाणं खयसण्णा, सम्मतपडिबंधणसत्तीए तत्थाभावा । मिच्छत्त-सम्मा-मिच्छत्तणमुदयाभावो उवससो । तेहि देहि उप्पणत्तादो सम्माइट्ठिभावो खइओव-समिओ । खइओ भावो किण्णोवल्लभदे ? ण, विदियादिसु पुढीसु खइयसम्मादिट्ठिण-मुप्पत्तीए अभावा ।

**ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ १८ ॥**

सम्मादिट्ठित्तं दुभावसण्णदं सोच्चा असंजदभावावगमत्थं पुच्छिदसिस्ससंदेह-

विशेषार्थ—गति, जाति आदि पिंड-प्रकृतियोंमेंसे जिस किसी विवक्षित एक प्रकृतिके उदय आने पर अनुदय-प्राप्त शेष प्रकृतियोंका जो उसी प्रकृतिमें संक्रमण होकर उदय आता है, उसे स्तितुकसंक्रमण कहते हैं । जैसे—एकेन्द्रिय जीवोंके उदय-प्राप्त एकेन्द्रिय जातिनामकर्ममें अनुदय-प्राप्त द्वीन्द्रिय जाति आदिका संक्रमण होकर उदयमें आना । गति नामकर्म भी पिंड-प्रकृति है । उसके चारों भेदोंमेंसे किसी एकके उदय होने पर अनुदय-प्राप्त शेष तीनों गतियोंका स्तितुकसंक्रमणके द्वारा संक्रमण होकर विपाक होता है । प्रकृतमें यही बात देवगतिको लक्ष्यमें रखकर कही गई है कि देवगति नाम-कर्मके उदयकालमें शेष तीनों गतियोंका स्तितुकसंक्रमणके द्वारा उदय पाया जाता है ।

दर्शनमोहनीयकर्मकी अवयवस्वरूप और देशघाती लक्षणवाली वेदकसम्यक्त्व-प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दृष्टिभाव क्षायोपशामिक कहलाता है । वेदक-सम्यक्त्वप्रकृतिके स्पर्शकौ क्षय संज्ञा है, क्योंकि, उसमें सम्यग्दर्शनके प्रतिबन्धनकी शक्तिका अभाव है । मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके उदयाभावको उपशाम कहते हैं । इस प्रकार उपर्युक्त क्षय और उपशाम, इन दोनोंके द्वारा उत्पन्न होनेसे सम्यग्दृष्टिभाव क्षायोपशामिक कहलाता है ।

शंका—यहां क्षायिक भाव क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, द्वितीयादि पृथिवियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्तिका अभाव है ।

किन्तु उक्त नारकी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ १८ ॥

द्वितीयादि पृथिवियोंके सम्यग्दृष्टिबन्धको औपशामिक और क्षायोपशामिक, इन दो भावोंसे संयुक्त सुन कर वहां असंयतभावके परिज्ञानार्थ प्रश्न करनेवाले शिष्यके

विणासणहुमागदमिदं सुत्तं । संजमघादिचारित्तमोहणीयकम्मोदयसमुप्पणत्तादो असंजद-भावो ओदइओ । अदीदगुणद्वाणेषु असंजदभावस्स अत्थित्तं एदेण सुत्तेण परुविदं ।

**तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियपजत्त-पंचि-दियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव संजदासंजदाण-मोघं ॥ १९ ॥**

कुदो ? मिच्छादिट्ठि चि ओदइओ, सासणसम्मादिट्ठि चि पारिणामिओ, सम्मा-मिच्छादिट्ठि चि खओवसमिओ, सम्मादिट्ठि चि ओवसमिओ खइओ खओवसमिओ चा; ओदइएण भावेण पुणो असंजदो, संजदासंजदो चि खओवसमिओ भावो इच्चेदहि ओघादो चउब्बिहतिरिक्खणं भेदाभावा । पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु भेदपदुप्पायणहु-मुत्तरसुत्तं भणदि-

**णवरि विससो, पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु असंजदसम्मादिट्ठि ति को भावो, ओवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २० ॥**

संदेहको विनाश करनेके लिए यह सूत्र आया है । द्वितीयादि पृथिवीगत असंयतसम्य-ग्दृष्टि नारकियोंका असंयतभाव संयमघाती चारित्रमोहनीयकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण औदयिक है । तथा, इस सूत्रके द्वारा अतीत गुणस्थानोमे असंयतभावके अस्तित्वका निरूपण किया गया है ।

तिर्यचगतिमें तिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यचपर्याप्त और पंचेन्द्रिय-तिर्यच योनिमतियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ १९ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि यह औदयिकभाव है, सासादनसम्यग्दृष्टि यह पारिणामिक-भाव है, सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह क्षायोपशामिकभाव है, सम्यग्दृष्टि यह औपशामिक, क्षायिक और क्षायोपशामिक भाव है, तथा औदयिकभावकी अपेक्षा वह असंयत है, संयतासंयत यह क्षायोपशामिक भाव है । इस प्रकार ओघसे चारों प्रकारके तिर्यचोंकी भावप्ररूपणमें कोई भेद नहीं है ।

अब पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें भेद प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेष बात यह है कि पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशामिक भाव भी है और क्षायोपशामिक भाव भी है ॥ २० ॥

देवगदीए देवेषु मिच्छादिद्विपहुडि जाव असंजदसम्मादिद्वि ति ओधं ॥ २३ ॥

कुदो ? मिच्छादिद्विणीमोदएण, सासणणं परिणमिणण, सम्मामिच्छादिद्विणीं खओवसमिणण, असंजदसम्मादिद्विणीं ओवसमिय-खइय-सओनसमिणहि भावेहि ओघ-मिच्छादिद्वि-सासणसम्मादिद्वि-सम्मामिच्छादिद्वि-असंजदसम्मादिद्विहि साधम्मवलंभा ।

भवणवासिय-चाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप-वासियदेवीओ च मिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वी सम्मामिच्छादिद्वी ओधं ॥ २४ ॥

कुदो ? एदेसि सुत्तुत्तुणुण्णणं सचपयारेण ओघादो भेदाभावा । असंजदसम्मादिद्वि ति को भावो, उवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २५ ॥

कुदो ? तत्थ उवसम-वेदगसम्मत्तणं दोण्हं चय संभवादो । खइओ भानो एत्थ देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक भाव ओघके समान हैं ॥ २३ ॥

क्योंकि, देवमिथ्यादृष्टियोंकी औदयिकभावसे, देवसासादनसम्यग्दृष्टियोंकी परिणामिकभावसे, देवसम्यग्मिथ्यादृष्टियोंकी क्षायोपशमिकभावसे और देवअसंयत-सम्यग्दृष्टियोंकी औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भावोंकी अपेक्षा ओघ मिथ्या-दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके भावोंके साथ समानता पाई जाती है ।

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देव एवं देवियां, तथा सौधर्म ईशान कल्पवासी देवियां, इनके मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि ये भाव ओघके समान हैं ॥ २४ ॥

क्योंकि, इन सूत्रोक्त गुणस्थानोंका सर्व प्रकार ओघसे कोई भेद नहीं है । असंयतसम्यग्दृष्टि उक्त देव और देवियोंके कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ २५ ॥

क्योंकि, उनमें उपशमसम्यक्त्व और क्षायोपशमिकसम्यक्त्व, इन दोनोंका ही पाया जाना सम्भव है ।

१ देवगती देवानां मिथ्यादृष्ट्यासंयतसम्यग्दृष्ट्यात्ताना सामान्यत् । स. मि. १, ८.

कुदो ? उनमम-वेदयसम्मादिद्विणीं चय तत्थ संभवादो । खइओ भावो किण्ण तत्थ संभाइ ? सदयसम्मादिद्विणीं व द्वाउआणं त्थिवेदएसु उपपत्तीए अभावा, मणुसगइ-वदिरित्तोसगंसु दंसणमोहणीयस्सगणाए अभावादो च ।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ २१ ॥  
सुगमभेदं ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिद्विपहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओधं ॥ २२ ॥

तिविहमणुससयलुणुण्णणं ओघसयलुणुणुण्णोहिंतो भेदाभावा । मणुसअपज्जत्त-तिरिक्खअपज्जत्तमिच्छादिद्विणीं सुत्ते भावो किण्ण परुविदो ? ण, ओघपरुषणादो चय त-भावावगमादो पुथ ण परुविदो ।

क्योंकि, पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि और क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टि जीवोंका ही पाया जाना सम्भव है ।

शंका—उनमें क्षायिकभाव क्यों नहीं सम्भव है ?  
समाधान—क्योंकि, वद्धयुक्त क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंकी स्त्रीवेदियोंमें उत्पत्ति नहीं होती है, तथा मनुष्यगतिके अतिरिक्त शेष गतियोंमें दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणाका अभाव है, इसलिए पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें क्षायिकभाव नहीं पाया जाता ।

किन्तु तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टियोंका असंयतत्व औदयिकभावसे है ॥ २१ ॥  
यह सूत्र सुगम है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ २२ ॥

क्योंकि, तीनों प्रकारके मनुष्योंसम्बन्धी समस्त गुणस्थानोंकी भावप्ररूपणामें ओघके सकल गुणस्थानोंसे कोई भेद नहीं है ।

शंका—लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्य और लक्ष्यपर्याप्तक तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवोंके भावोंका सूत्रमें प्ररूपण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ओघसम्बन्धी भावप्ररूपणाले ही उनके भावोंका परि-ज्ञान हो जाता है, इसलिए उनके भावोंका सूत्रमें पृथक् निरूपण नहीं किया गया ।

१ मणुसगतौ मणुसगानां मिथ्यादृष्ट्यायोगेरेत्यन्ताना सामान्यत् । स. सि. १, ८.







माणसुखलंभा । ओवसमिओ भावा एत्थ किण्ण परूविदो ? ण, चउग्गइउवसमसम्मा-  
दिट्ठीणं मरणाभावादो ओरालियमिस्सिह्हे उवसमसम्मत्तसुखलंभाभावा । उवसमसेडिं  
चढत्त-ओअंतंसजदाणसुवससम्मत्तेण मरणं अत्थि ति चे सच्चमत्थि, किंतु ण ते  
उवसमसम्मत्तेण ओरालियमिस्सकायजोगिणो होति, देवगदिं मोचूण तेसिमण्णत्थ  
उपपत्तीए अभावा ।

**ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ ३५ ॥**

सुगममेदं ।

**सजोगिकेवलि ति को भावो, खइओ भावो ॥ ३६ ॥**

एदं पि सुगमं ।

**वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिण्हुडि जाव असंजदसम्मा-  
दिट्ठि ति ओघमंगो ॥ ३७ ॥**

सम्यग्दृष्टि देव, नारकी और मनुष्य पाये जाते हैं ।

शंका—यहां, अर्थात् औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें, औपशमिकभाव क्यों  
नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, चारों गतियोंके उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका मरण नहीं  
होनेसे औदारिकमिश्रकाययोगमें उपशमसम्यक्त्वका सद्भाव नहीं पाया जाता ।

शंका—उपशमश्रेणीपर चढ़ते और उतरते हुए संयत जीवोंका उपशमसम्यक्त्वके  
साथ तो मरण पाया जाता है ?

समाधान—यह कथन सत्य है, किन्तु उपशमश्रेणीमें मरनेवाले वे जीव उपशम-  
सम्यक्त्वके साथ औदारिकमिश्रकाययोगी नहीं होते हैं, क्योंकि, देवगतिको छोड़कर  
उनकी अन्यत्र उत्पत्तिका अभाव है ।

किन्तु औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदारिक  
भावसे है ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली यह कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव  
है ॥ ३६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टिसं लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक  
भाव ओघके समान है ॥ ३७ ॥

एदं पि सुगमं ।

**वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असं-  
जदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ३८ ॥**

कुदो ? मिच्छादिट्ठीणमोदइएण, सासणसम्मादिट्ठीणं, पारिणामिएण, असंजद-  
सम्मादिट्ठीणं ओवसमिय-खइय-खओवसमियभावोहि ओघमिच्छादिट्ठिआदीहि साध-  
सुखलंभा ।

**आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा ति को  
भावो, खओवसमिओ भावो ॥ ३९ ॥**

कुदो ? चारित्तावरणचहुंसंजलण-सत्तणोक्कसायाणसुदए संते वि पमादाणुविद्धसंज-  
सुखलंभा । कथमेत्थ खओवसमो ? पत्तोदयएक्कारसचारित्तमोहणीयपययिडेसघादिफद-  
याणसुवसससणणा, गिरवसेसेण चारित्तघायणसत्तीए तथुवससुखलंभा । तेसिं चेव सब्व-  
धादिफदयाणं खयसणणा, णट्ठोदयभावत्तादो । तेहि देहिं मि उप्पणो संजमो खओव-

यह सूत्र भी सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्य-  
ग्दृष्टि ये भाव ओघके समान हैं ॥ ३८ ॥

क्योंकि, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके औदारिकभावसे, सासादन-  
सम्यग्दृष्टियोंके पारिणामिकभावसे, तथा असंयतसम्यग्दृष्टियोंके औपशमिक, क्षायिक  
और क्षायोपशमिक भावोंकी अपेक्षा ओघ मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंके भावोंके साथ  
समानता पाई जाती है ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत यह कौनसा  
भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ३९ ॥

क्योंकि, यथाव्ययताचारित्रिके आवरण करनेवाले चारों संज्वलन और सात  
नोकपयोंके उदय होने पर भी प्रमादसंयुक्त संयम पाया जाता है ।

शंका—यहां पर क्षायोपशमिकभाव कैसे कहा ?

समाधान—आहारक और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें क्षायोपशमिकभाव  
होनेका कारण यह है कि उदयको प्राप्त चार संज्वलन और सात नोकपय, इन ग्यारह  
चारित्रमोहनीय प्रकृतियोंके देशघाती स्पर्धकोकी उपशमसंज्ञा है, क्योंकि, सम्पूर्णरूपसे  
चारित्र घातनेकी शक्तिका वहां पर उपशम पाया जाता है । तथा, उन्ही ग्यारह चारित्र-  
मोहनीय प्रकृतियोंके सर्वघाती स्पर्धकोंकी क्षयसंज्ञा है, क्योंकि, वहां पर उनका उदयमें  
आना नष्ट हो चुका है । इस प्रकार क्षय और उपशम, इन दोनोंसे उत्पन्न होनेवाला

समिधो । अथवा एतन्नामकम्मानुद्वयस्तेव सञ्चोत्समसण्णा । कुदो ? चारित्तायण-  
सञ्चोत्समसण्ण तन्वत्समसण्णो । तेण उपण्ण इति सञ्चोत्समसिधो पमादायुविद्धसंजसो ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वी असंजद-  
सम्मादिद्वी सञ्चोत्समसण्णो ओधं ॥ ४० ॥

कुदो ? मिच्छादिद्वीणमोढइएण, सासणणं परिणामिएण, कम्मइयकायजोगिसं-  
जदसम्मादिद्वीणं ओत्समसिध-सइय-सञ्चोत्समसिधो, सञ्चोत्समसिधोणं सइएण सोवण  
ओधम्मि' गदगुणद्वीणेहि साधम्ममुत्समं ।

एव जोगमगणा समत्ता ।

वेदायुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेद-णउंसयवेदएसु मिच्छादिद्वी-  
पहुडि जाव अणियट्टि ति ओधं ॥ ४१ ॥

सुगममेदं, एदस्सहपरुवणाए विणा वि अत्योत्सलद्वीदो ।

संयम क्षायोपशमिक कहलता हे । अथवा, चारित्तमोहसम्बन्धी उक्त ग्यास्सु कर्मप्रकृतियोंके  
उत्पत्ती ही क्षयोपशमसज्ञा हे, क्योंकि, चारित्रिके घातनेकी शक्तिके अभावकी ही क्षयो-  
पशमसंज्ञा हे । इस प्रकारके क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेवाला प्रमादयुक्त संयम क्षायोप-  
शमिक हे ।

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और  
सञ्चोत्समसण्णो ये भाव ओघके समान हैं ॥ ४० ॥

क्योंकि, कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके औद्देशिकभावसे, सासादनसम्यग्दृष्टि-  
योंके परिणामिकभावसे, असंयतसम्यग्दृष्टियोंके औपशमिक, क्षायिक और क्षायोप-  
शमित भावोंकी अपेक्षा, तथा सञ्चोत्समसिधियोंके क्षायिकभावोंकी अपेक्षा ओघमें कहे गये  
गुणस्थानोंके भावोंके साथ समानता पाई जाती है ।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणके अनुवादसे स्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यादृष्टिसे  
लेकर अनियुक्तिरूप गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ४१ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, इसके अर्थकी प्ररूपणके विना भी अर्थका ज्ञान हो  
जाता है ।

१ षष्ठि 'ओत्समि' इति पाठः । २ वेदायुवादेन चापुत्समवेदानां X X सामान्यवत् । स नि १, ८.

अवगदवेदएसु अणियट्टिपहुडि जाव अञ्चोत्समसण्णो ओधं  
॥ ४२ ॥

एथ चोदगो भणदि-जोणि-वेहणादीहि समण्णिदं सरिं वेदो, ण तस्स  
विणासो अत्थि, सजदानं मरणप्पसंगा । ण भाववेदविणासो वि अत्थि, सरिं वेदो, ण तस्स  
तन्वत्समसण्णो विणासविरोहा । तदो गावगदवेदत्तं जुज्जे इदि ? एथ परिहारो उच्चदे- ण  
सरिरमित्थि-पुरिसवेदो, गामकम्मजणिदस्स सरिरस्स मोहणीयत्तविरोहा । ण मोहणीय-  
जणिदमवि सरिं, जीवविवाइणां मोहणीयस्स पोग्गलविवाइत्तविरोहा । ण सरिरभावो वि  
वेदो, तस्स तदो पुथभूदस्स अयुत्समं । परिसेसादो मोहणीयदव्वकम्मवत्संधो तज्जणिद-  
जीवपरिणामो वा वेदो । तथ तज्जणिदजीवपरिणामस्स वा परिणामेण सह कम्मवत्संधस्स  
वा अभावेण अवगदवेदो हेदि ति तेण णेस दोसो ति सिद्धं । सेसं सुगमं ।

एव वेदमगणा समत्ता ।

अपगतवेदियोंमें अनियुक्तिरूपसे लेकर अञ्चोत्समसण्णो गुणस्थान तक भाव  
ओघके समान हैं ॥ ४२ ॥

शंका—यहापर शंकाकार कहता है कि योनि और लिंग आदिसे संयुक्त शरीर  
वेद कहलाता है । सो अपगतवेदियोंके इस प्रकारके वेदका विनाश नहीं होता है, क्योंकि,  
यदि योनि, लिंग आदिसे समन्वित शरीरका विनाश माना जाय, तो अपगतवेदी संय-  
तोंके मरणका प्रसंग प्राप्त होगा । इसी प्रकार अपगतवेदी जीवोंके भाववेदका विनाश  
भी नहीं है, क्योंकि, जब तक शरीरका विनाश नहीं होता, तब तक शरीरके  
धर्मका विनाश माननेमें विरोध आता है । इसलिए अपगतवेदता युक्तिसंगत नहीं है ?

समाधान—अब यहां उपर्युक्त शंकाका परिहार कहते हैं- न तो शरीर, ली या  
पुरुषवेद है, क्योंकि, नामकर्मसे उत्पन्न होनेवाले शरीरके मोहनीयपनेका विरोध है ।  
और न शरीर मोहनीयकर्मसे ही उत्पन्न होता है, क्योंकि, जीवविपाकी मोहनीयकर्मके  
पुद्गलविपाकी होनेका विरोध है । न शरीरका धर्म ही वेद है, क्योंकि, शरीरसे पृथग्भूत  
वेद पाया नहीं जाता । परिशेष न्यायसे मोहनीयके द्रव्यकर्मस्कंधको, अथवा मोहनीय-  
कर्मसे उत्पन्न होनेवाले जीवके परिणामको वेद कहते हैं । उनमें वेदजनित जीवके परि-  
णामका, अथवा परिणामके साथ मोहकर्मस्कंधका अभाव होनेसे जीव अपगतवेदी होता  
है । इसलिए अपगतवेदता माननेमें उपर्युक्त कोई दोष नहीं आता है, यह सिद्ध हुआ ।  
शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

१ X X X अवेदानं च सामान्यवत् । स नि १, ८.

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु  
भिच्छादिट्ठिण्हडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं ॥४३॥  
सुगममदं ।

अकसाईसु चटुडणी ओघं ॥ ४४ ॥

चोदओ भणदि-कसाओ गाम जीवगुणो, ण तस्स विणासो अत्थि, गाण-दंस-  
गाणमिव । विणासे वा जीवस्स विणासेण होदन्तं, गाण-दंसणविणासेणेव । तदो ण  
अकसायत्तं षडदे इदि ? होदु गाण-दंसणाणं विणासन्दि जीवविणासो, तेसिं तल्लक्खण-  
चादो । ण कसाओ जीवस्स लक्खणं, कम्मजणिदस्स तल्लक्खणत्तविरोहा । ण कसायाणं  
कम्मजणिदत्तमसिद्धं, कसायवड्डीए जीवलक्खणणाणह्णाणिअणहाणुवचोदो तस्स कम्म-  
जणिदत्तसिद्धीदो । ण च गुणो गुणंतरविरोहे, अणत्थ तहाणुवलंभा । सेसं सुगमं ।

एव कसायमग्गणा समत्ता ।

कपायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकपायी, मानकपायी, मायकपायी और लोभ-  
कपायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर स्रहसाम्पराय उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक  
भाव ओघके समान हैं ॥ ४३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अकपायी जीवोंमें उपशान्तकपाय आदि चारों गुणस्थानवर्ती भाव ओघके  
समान हैं ॥ ४४ ॥

शंका—यहां शंकाकार कहता है कि कपाय नाम जीवके गुणका है । इसलिये  
उसका विनाश नहीं हो सकता, जिस प्रकार कि ज्ञान और दर्शन, इन दोनों जीवके  
गुणोंका विनाश नहीं होता है । यदि जीवके गुणोंका विनाश माना जाय, तो ज्ञान और  
दर्शनके विनाशके समान जीवका भी विनाश हो जाना चाहिए । इसलिये सूत्रमें कही  
गई अकपायता घटित नहीं होती है ?

समाधान—ज्ञान और दर्शनके विनाश होनेपर जीवका विनाश भले ही हो  
जावे, क्योंकि, वे जीवके लक्षण हैं । किन्तु कपाय तो जीवका लक्षण नहीं है, क्योंकि,  
कर्मजनित कपायको जीवका लक्षण माननेमें विरोध आता है । और न कपायोंका कर्मसे  
उत्पन्न होना असिद्ध है, क्योंकि, कपायोंकी वृद्धि होनेपर जीवके लक्षणमूल ज्ञानकी  
हानि अन्यथा बन नहीं सकती है । इसलिये कपायका कर्मसे उत्पन्न होना सिद्ध है ।  
तथा गुण गुणान्तरका विरोधी नहीं होता, क्योंकि, अन्यत्र वेसा देखा नहीं जाता ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

इस प्रकार कपायमार्गणा समाप्त हुई ।

१ कपायाउवादेण कोधमानमायलोभमन्पायाणा X X सामान्यवत् । स ति १, ८  
२ X X X अक्कायाणी च सामान्यवत् । स ति १, ८ ३ प्रतिगु 'तदो शुक्कायच' इति पाठ ।

गाणानुवादेण मदिअण्णाणि-सुइअण्णाणि-विभंगणाणीसु मिच्छा-  
दिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ४५ ॥

कथं मिच्छादिट्ठिणाणस्स अण्णाणत्तं ? गाणकज्जाकरणादो । किं गाणकज्जं ?  
णादत्थसदहणं । ण तं मिच्छादिट्ठिन्दि अत्थि । तदो गाणमेव अण्णाणं, अण्णाहा  
जीवविणासप्यसंगा । अत्रगयदवधम्मणाइसु मिच्छादिट्ठिन्दि सदहणमुवलंभाए चे ण,  
अचागमपयत्थसदहणविरहियस्स दवधम्मणाइसु जहइसदहणविरोहा । ण च एस ववहारो  
लोभे अप्पसिद्धो, पुत्तकज्जमज्जुणत्ते पुत्ते वि लोभे अपुत्तववहारदंसणादो । तिसु  
अण्णाणेषु गिरुद्धेषु सम्मामिच्छादिट्ठिभावो किण्ण परूविदो ? ण, तस्स सदहणासदहणेहि

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्त्वज्ञानी, श्रुतज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें  
मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भाव ओघके समान है ॥ ४५ ॥

शंका—मिथ्यादृष्टि जीवोंके ज्ञानको अज्ञानपना कैसे कहा ?

समाधान—स्योंकि, उनका ज्ञान ज्ञानका कार्य नहीं करता है ।

शंका—ज्ञानका कार्य क्या है ?

समाधान—जाने हुए पदार्थका श्रद्धान करना ज्ञानका कार्य है ।

इस प्रकारका ज्ञानकार्य मिथ्यादृष्टि जीवमें पाया नहीं जाता है । इसलिये उनके  
ज्ञानको ही अज्ञान कहा है । (यहांपर अज्ञानका अर्थ ज्ञानका अभाव नहीं लेना चाहिए)  
अन्यथा (ज्ञानरूप जीवके लक्षणका विनाश होनेसे लक्ष्यरूप) जीवके विनाशका प्रसंग  
प्राप्त होगा ।

शंका—दयाधर्मसे रहित जातियोंमें उत्पन्न हुए मिथ्यादृष्टि जीवमें तो श्रद्धान  
पाया जाता है ( फिर उसके ज्ञानको अज्ञान क्यों माना जाय ) ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, आस, आगम और पदार्थके श्रद्धानसे रहित जीवके  
दयाधर्म आदिमें यथार्थ श्रद्धानके होनेका विरोध है (अतएव उनका ज्ञान अज्ञान ही है) ।  
ज्ञानका कार्य नहीं करने पर ज्ञानमें अज्ञानका व्यवहार लोकमें अप्रसिद्ध भी नहीं है,  
क्योंकि, पुत्रकार्यको नहीं करनेवाले पुत्रमें भी लोकके भीतर अपुत्र कहनेका व्यवहार  
देखा जाता है ।

शंका—तीनों अज्ञानोंको निरुद्ध अर्थात् आश्रय कर उनकी भावप्ररूपणा करते  
हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका भाव क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, श्रद्धान और अश्रद्धान, इन दोनोंसे एक साथ अनुविद्ध

१ ज्ञानउवादेण मय्यज्ञानिश्रुताज्ञानविभंगानिनां X X सामान्यवत् । स ति १, ८

देदि वि अकमेण अणुविद्वस्य संजडासंजदो व्य पतजञ्चतरस्स णाणेसु अण्णाणेसु वा अत्यिणविरोहा । येणं सुगमं ।

आभिणिवोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिपहुडि  
जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्या ओधं ॥ ४६ ॥

सुगममेदं, ओधादो मानं पडि भेदाभावा ।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदपहुडि जाव खीणकसायवीदराग-  
छदुमत्या ओधं ॥ ४७ ॥

एदं पि सुगमं ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओधं ॥ ४८ ॥

कुदो ? रह्यभावं पडि भेदाभावा । सजोगो ति को भावो ? अणादिपारिणासिओ  
साओ । णोपमासिओ, मोहणीए अणुसंते वि जोगुवलंभा । ण खड्धो, अण्यप्यसरूचस्स  
कम्माणं उण्णुपत्तिविरोहा । ण धादिकम्मोदयजणिओ, ण्हे वि धादिकम्मोदए केव-

होनेके कारण नयताम्यतके समान भिन्नजातीयताको प्राप्त सम्यग्मिथ्यात्वका पांचों  
ताचार्य, अथवा तीनों धर्मानोंमें अस्तित्व होनेका विरोध है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

आभिनिबोधिक्रजानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर  
धीणकसायवीतरागछद्वस्य गुणस्थान तरु भाव ओधके समान हैं ॥ ४६ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, ज्ञानमार्गणमें ओघसे भावकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है ।  
मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रसक्तसंयतसे लेकर क्षीणकसायवीतरागछद्वस्य गुणस्थान  
तरु भाव ओधके समान है ॥ ४७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

केलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली भाव ओधके समान है ॥ ४८ ॥

क्योंकि, क्षायिकभावके प्रति कोई भेद नहीं है ।

शंका—'सयोग' यह कौनसा भाव है ?

समाधान—'सयोग' यह अनादि पारिणामिक भाव है । इसका कारण यह है  
कि यह योग न तो आपराधिक भाव है, क्योंकि, मोहनीयकर्मके उपशम नहीं होने पर  
भी योग पाया जाता है । न यह क्षायिक भाव है, क्योंकि, आत्मस्वरूपसे रहित योगकी  
कर्मोंके क्षयसे उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है । योग धातिकर्मोदय-जनित भी नहीं है,

१ ५×५ मति युतामधिगम पर्ययेत्त्वज्ञानिना च सामान्यत् । स सि. १, ८.

लिप्पि जोगुवलंभा । णो अघादिकम्मोदयजणिदो वि, सेते वि अघादिकम्मोदए अजोगिप्पि  
जोगाणुवलंभा । ण सरीरणामकम्मोदयजणिदो वि, पोगलविवाइयाणं जीवपरिफुहणेहउत्त-  
विरोहा । कम्मइयसरीरं ण पोगलविवाइ, तदो पोगलाणं वण्ण-रस-गंध-फास-संठाणा-  
गमणादीणमणुवलंभा । तदुप्पाइदो जोगो होदु चे ण, कम्मइयसरीरं पि पोगलविवाइ  
चेव, सव्वकम्माणमासयत्तादो । कम्मइओदयविणङ्कसमए चेव जोगविणासदंसणादो  
कम्मइयसरीरजणिदो जोगो चे ण, अघाइकम्मोदयविणासाणंतरं विणस्संतभवियत्तस्स  
पारिणामियस्स ओदइयत्तप्पसंगा । तदो सिद्धं जोगस्स पारिणामियत्तं । अघवा ओदइओ  
जोगो, सरीरणामकम्मोदयविणासाणंतरं जोगविणासुवलंभा । ण च भवियत्तेण विउवचारो,  
कम्मसंबंधविरोहिणो तस्स कम्मजणिदत्तविरोहा । सेसं सुगमं ।

एव णाणमगणा समत्ता ।

क्योंकि, धातिकर्मोदयके नष्ट होने पर भी सयोगिकेवलीमें योगका सद्भाव पाया  
जाता है । न योग अघातिकर्मोदय-जनित भी है, क्योंकि, अघातिकर्मोदयके रहने पर भी  
अयोगिकेवलीमें योग नहीं पाया जाता । योग शरीररत्नामकर्मोदय-जनित भी नहीं है,  
क्योंकि, पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंके जीव-परिस्पंदनका कारण होनेमें विरोध है ।

शंका—कर्मणशरीर पुद्गलविपाकी नहीं है, क्योंकि, उससे पुद्गलोंके वर्ण, रस,  
गन्ध, स्पर्श और संस्थान आदिका आगमन आदि नहीं पाया जाता है । इसलिये योगको  
कर्मणशरीरसे उत्पन्न होनेवाला मान लेना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सर्व कर्मोंका आश्रय होनेसे कर्मणशरीर भी पुद्गल-  
विपाकी ही है । इसका कारण यह है कि वह सर्व कर्मोंका आश्रय या आधार है ।

शंका—कर्मणशरीरके उदय विनष्ट होनेके समयमें ही योगका विनाश देखा  
जाता है । इसलिये योग कर्मणशरीर-जनित है, ऐसा मानना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यदि ऐसा माना जाय तो अघातिकर्मोदयके विनाश  
होनेके अनन्तर ही विनष्ट होनेवाले पारिणामिक भव्यत्वभावके भी औदयिकपत्तेका प्रसंग  
प्राप्त होगा ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचनसे योगके पारिणामिकपत्ता सिद्ध हुआ । अथवा,  
'योग' यह औदयिकभाव है, क्योंकि, शरीररत्नामकर्मके उदयका विनाश होनेके पश्चात्  
ही योगका विनाश पाया जाता है । और, ऐसा माननेपर भव्यत्वभावके साथ व्यभिचार  
भी नहीं आता है, क्योंकि, कर्मस्वन्धके विरोधी पारिणामिकभावकी कर्मसे उत्पत्ति  
माननेमें विरोध आता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

१ निरूपयोगमन्त्यम् । त ए. ३, ४४ । अन्ते मरगन्त्यम् । किं तत् ? कर्मणम् । इत्यियमगालिकाया  
सन्धादीनामुपलब्धिकपमोगः । तदभावात्तद्विषयमोगम् । स. सि. ३, ४४.

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदपहुडि जाव अजोगिकेवली ओर्धं ॥ ४९ ॥

सुगममेदं ।

सामाइयछेदोवद्वावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदपहुडि जाव आणि यट्टि ति ओर्धं ॥ ५० ॥

एदं पि सुगमं ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अपमत्तसंजदा ओर्धं ॥ ५१ ॥

कुदो ? खओवससियं मावं यडि विसेसाभावा । पमत्तापमत्तसंजदेसु अणो वि भावा संति, एत्थ ते किण्ण परूविदा ? ण, तेसिं पमत्तापमत्तसंजमत्ताभावा । पमत्ता-पमत्तसंजदानं भावेसु पुच्छेदेसु ण हि सम्मत्तादिभावाणं परूवणा णाओववणोत्ति ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइया उवसमा खवा ओर्धं ॥ ५२ ॥

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोमं प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान है ॥ ४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमं प्रमत्तसंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक भाव ओघके समान है ॥ ५० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

परिहारशुद्धिसंयतोमं प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत ये भाव ओघके समान हैं ॥ ५१ ॥

क्योंकि, क्षायोपरामिक भावके प्रति दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

शंका — प्रमत्त और अप्रमत्त संयत जीवोंमें अन्य भाव भी होते हैं, यहांपर वे क्यों नहीं कहे ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, वे भाव प्रमत्त और अप्रमत्त संयम होनेके कारण नहीं हैं । दूसरी बात यह है कि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोके भाव पूछनेपर सम्यक्त्व आदि भावोंकी प्ररूपणा करना न्याय सगत नहीं है ।

सुद्धिसाम्परायिकशुद्धिसंयतोमं सुद्धिसाम्परायिक उपशामक और क्षपक भाव ओघके समान है ॥ ५२ ॥

१ सयमाउवादेन संवेषां सयतानां ××× सामान्यवत् । स ति १, ८

२ प्रतियु ' णाओववणो' ति' इति पाठ ।

उवसामगणसुवससिओ भावो, खवगणं खइओ भावो ति उचं होदि ।  
जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चटुट्टाणी ओर्धं ॥ ५३ ॥

सुगममेदं ।

संजदासंजदा ओर्धं ॥ ५४ ॥

एदं पि सुगमं ।

असंजदेसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि ति ओर्धं ॥ ५५ ॥

सुगममेदं, पुवं परूविदत्तादो ।

एव सजममगणा समत्ता ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसायीदरागछुदुमत्था ति ओर्धं ॥ ५६ ॥

उपशामकोंके औपशामिक भाव और क्षपकोंके क्षायिक भाव होता है, यह अर्थ सूत्रद्वारा कहा गया है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोमं उपशान्तकषाय आदि चारों गुणस्थानवर्ती भाव ओघके समान हैं ॥ ५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतासंयत भाव ओघके समान है ॥ ५४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

असंयतोमं मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ५५ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, पहले प्ररूपण किया जा चुका है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछत्रस्य गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ५६ ॥

१ ×× सयतासयतानां ×× सामान्यवत् । स ति १, ८

२ ××× असयतानां च सामान्यवत् । स ति १, ८

३ दर्शनाउवादेन चक्षुदर्शनाचक्षुदर्शनावधिदर्शनकेवलदर्शनिनां सामान्यवत् । स ति १, ८

कुदो ? मिच्छादिद्विष्यद्भुडि खीणकसायपञ्जतसन्धुगुणद्वयाणं चक्खु-अचक्खु-  
दंशणनिरादियणमणुजलभा ।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ॥ ५७ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ ५८ ॥

एदणि दो ति सुत्ताणि सुगमाणि ।

एव दसणमगणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किणहलेस्सिय-णीललेस्सिय काउलेस्सिएसु चट्टु-  
ट्टाणी ओधं ॥ ५९ ॥

चट्टुहं ट्टाणं समाहरो चट्टुट्टणी । केण समाहरो ? एगलेस्साए । सेसं सुगमं ।

तेउलेस्सिय-पमलेस्सिएसु मिच्छादिद्विष्यद्भुडि जाव अपमत्त-  
संजदा ति ओधं ॥ ६० ॥

एदं सुगमं ।

फ्योकि, मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकसाय पर्यंत कोई गुणस्थान चट्टुदर्शन और  
अचत्तुदर्शनवाले जीवोंके रहित नहीं पाया जाता है ।

अत्रधिदर्शनी जीवोंके भाव अवधिदानियोंके भावोंके समान हैं ॥ ५७ ॥

केवलदर्शनी जीवोंके भाव केवलज्ञानियोंके भावोंके समान हैं ॥ ५८ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीलेश्या और कापोतलेश्या बालोंमें  
आदिके चार गुणस्थानमतीं भाव ओघके समान हैं ॥ ५९ ॥

चार स्थानोंके नमोहारको चतु-स्थानी कहते हैं ।

शंका—चारों गुणस्थानोंका समाहार किस अपेक्षासे है ?

समाधान—एक लेश्याती अपेक्षासे है, अर्थात् आदिके चारों गुणस्थानोंमें एकसी  
लेश्या पाई जाती है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तेजोलेश्या और पत्रलेश्या बालोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपमत्तसंपत गुणस्थान  
तक भाव ओघके समान हैं ॥ ६० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ लेश्यादर्शन पर्यन्तानामलेश्यानां च सामान्यत्वं । स. सि. १, ८.

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिद्विष्यद्भुडि जाव सजोगिकेवलि ति  
ओधं ॥ ६१ ॥

सुगममेदं ।

एवं लेस्साणमगणा समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिद्विष्यद्भुडि जाव अजोगि-  
केवलि ति ओधं ॥ ६२ ॥

कुदो ? एत्थत्तणगुणद्वयाणं ओघयुणद्वयाणेहितो भवियत्तं पडि भेदाभावा ।

अभवसिद्धिय ति को भावो, पारिणाभिओ भावो ॥ ६३ ॥

कुदो ? कम्मणसुद्धएण उवसमेण सएण सओघसमेण वा अभवियत्ताणुपपत्तीदो ।  
भवियत्तस्स वि पारिणाभिओ चैय भावो, कम्मणसुद्धय-उवसम-स्य-खओवससेहि भविय-  
त्ताणुपपत्तीदो । गुणद्वयाणस्स भावमभणिय मग्गणद्वयाणभावं परूवेत्तस्स कोधिप्पाओ ?

शुक्कलेश्यानालामें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके  
समान हैं ॥ ६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिक्रोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली  
गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ६२ ॥

क्योंकि, भव्यमार्गणासम्बन्धी गुणस्थानोंका ओघ गुणस्थानोंसे भव्यत्व नामक  
पारिणामिकभावके प्रति कोई भेद नहीं है ।

अभव्यसिद्धिक यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ६३ ॥

क्योंकि, कर्मोंके उदयसे, उपशमसे, क्षयसे, अथवा क्षयोपरशमसे अभव्यत्व भाव  
उत्पन्न नहीं होता है । इसी प्रकार भव्यत्व भी पारिणामिक भाव ही है, फ्योंकि, कर्मोंके  
उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपरशमसे भव्यत्व भाव उत्पन्न नहीं होता ।

शंका—यहांपर गुणस्थानके भावको न कह कर मार्गणास्थानसम्बन्धी भावका  
प्ररूपण करते हुए आचार्यका क्या अभिप्राय है ?

१ मव्यानुवादेण मव्यानां मिथ्यादृष्ट्यायोगिकेवत्यन्तानां सामान्यत्वं । स. सि. १, ८.

२ अमव्यानां पारिणामिको भावः । स. सि. १, ८.

गुणद्वयभावो अउत्तो वि णाणिज्जओ । अभवियत्तं पुण उवदेसमेवकखेदे, पुम्बमपरू-  
विदसरूवत्तादो । तेण मग्गणाभावो उत्तो त्ति ।

एव भवियमग्गणा समत्ता ।

सम्पत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिण्हुडि जाव  
अजोगिकेवल्लि त्ति ओधं ॥ ६४ ॥

सुगममेदं ।

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, खइओ  
भावो ॥ ६५ ॥

कुदो ? दंसणमोहणीयस्स णिमूलक्खएणुप्पणसम्मत्तादो ।

खइयं सम्मत्तं ॥ ६६ ॥

खइयसम्मादिट्ठीसु सम्मत्तं खइयं चैव होदि त्ति अणुत्तसिद्धीदो णेदं सुत्तमाढेव-  
दव्वं ? ण एस दोसो । कुदो ? ण ताव खइयसम्मादिट्ठी सण्णा खइयस्स सम्मत्तस्स

समाधान—गुणस्थानसम्बन्धी भाव तो विना कहे भी जाना जाता है । किन्तु  
अभव्यत्व ( कौनसा भाव है यह ) उपदेशकी अपेक्षा रखता है, क्योंकि, उसके स्वरूपका  
पहले प्ररूपण नहीं किया गया है । इसलिए यहाँपर ( गुणस्थानका भाव न कह कर )  
मार्गणासम्बन्धी भाव कहा है ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगि-  
केवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ६४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव  
है ॥ ६५ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मके निर्मूल क्षयसे क्षायिकसम्यक्त्व उत्पन्न होता है ।  
उक्त जीवोंके क्षायिक सम्यक्त्व होता है ॥ ६६ ॥

शंका—क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है, यह बात अनुक-  
स्तिष्ठ है, इसलिए इस सूत्रका आरम्भ नहीं करना चाहिए ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि यह संज्ञा क्षायिक-

१ सम्यक्त्वउवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेः क्षायिको भाव । स. सि. १, ८.

२ क्षायिक सम्यक्त्वम् । स. सि. १, ८

अत्थित्तं गमयदि, तवण-भक्खरारादिणामस्स अणुअट्ठस्स वि उवलंभा । ण च अण्णं किञ्चि  
खइयसम्मत्तस्स अत्थित्तमिह चिण्हमत्थि । तदो खइयसम्मादिट्ठिस्स खइयं चैव सम्मत्तं  
होदि त्ति जाणाविदं । अवरं च ण सब्बे सिस्सा उपपण्णा चैव, किंतु अउप्पण्णा  
वि अत्थि । तेहि खइयसम्मादिट्ठीणं किमुवसमसम्मत्तं, किं खइयसम्मत्तं, किं वेदगसम्मत्तं  
होदि त्ति पुन्च्छेदे एदस्स सुत्तस्स अवयारो जादो, खइयसम्मादिट्ठीणं खइयं चैव सम्मत्तं  
होदि, ण सेसदोसम्मत्ताणि त्ति जाणावण्हं अपुन्वकरणक्खवयाणं खइयभावाणं खइय-  
चरित्तसेव दंसणमोहखवयाणं पि खइयभावाणं तस्संबंधेण वेदयसम्मत्तोदए संते वि  
खइयसम्मत्तस्स अत्थित्तपसंगे तप्पडिसेहं व ।

ओदइएण भवेण पुणो असंजदो ॥ ६७ ॥  
सुगममेदं ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो, खओवसमिओ  
भावो ॥ ६८ ॥

सम्यक्त्वके अस्तित्वका ज्ञान नहीं कराती है । इसका कारण यह है लोकमें तपन, भास्कर  
आदि अनन्वर्थ ( अर्थशून्य या रूढ ) नाम भी पाये जाते हैं । इसके अतिरिक्त अन्य कोई  
चिन्ह क्षायिकसम्यक्त्वके अस्तित्वका है नहीं । इसलिए क्षायिकसम्यग्दृष्टिके क्षायिक  
सम्यक्त्व ही होता है, यह बात इस सूत्रसे स्थापित की गई है । दूसरी बात यह भी है कि  
सभी शिष्य व्युत्पन्न नहीं होते, किन्तु कुछ अब्युत्पन्न भी होते हैं । उनके द्वारा क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टियोंके क्या उपशमसम्यक्त्व है, किंवा क्षायिकसम्यक्त्व है, किंवा वेदकसम्यक्त्व  
होता है, ऐसा पूछने पर क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायिक ही सम्यक्त्व होता है, शेष  
दो सम्यक्त्व नहीं होते हैं, इस बातके जतलानेके लिए, अथवा क्षायिकभाववाले अपूर्व-  
करण गुणस्थानवर्ती क्षपकोंके क्षायिक चारित्रिके समान क्षायिकभाववाले भी जीवोंके  
दर्शनमोहनीयका क्षपण करते हुए उसके सम्बन्धसे वेदकसम्यक्त्वप्रकृतिके उदय रहने  
पर भी क्षायिकसम्यक्त्वके अस्तित्वका प्रसंग प्राप्त होनेपर उसका प्रतिषेध करनेके लिए  
इस सूत्रका अवतार हुआ है ।

किन्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ६७ ॥  
यह सूत्र सुगम है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत यह कौनसा  
भाव है ? क्षायोपशामिक भाव है ॥ ६८ ॥

१ असंयतत्वमौदयिकेन भावेन । स. सि. १, ८

२ संयतासंयतप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशामिको भाव । स. सि. १, ८

कृदो ? चारित्र्यमक्रमोदए गते वि जीवसहाचारित्तेगदेसस्त संजमांसजम-  
पमत-अप्यमतसंजमस्य त्रिविधमाप्रसुवलंभा ।

खड्यं सम्मत्तं ॥ ६९ ॥

सुगममेदं ।

चटुण्हसुवसमा त्ति को भावो, ओवसमिओ भावो ॥ ७० ॥  
मोहणीयसुप्रममेणुप्यणचारित्तचादो, मोहोवसमणेहुचारित्तसमणिणदचादो य ।

खड्यं सम्मत्तं ॥ ७१ ॥

पारददंगमोहणीयसुवणो कदकरणिज्जो वा उवसमसेडि ण चढदि ति जाणा-  
णडुमेदं मुत्तं भणिटं । सेसं सुगमं ।

चटुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि ति को भावो,  
खड्यो भावो ॥ ७२ ॥

न्यातिके, चारित्र्यावरणकर्मके उदय होने पर भी जीवके स्वभावभूत चारित्र्यके  
एक देहान्त संन्यासयम, प्रमत्तलयम और अप्रमत्तसंयमका ( उक्त जीवोंके क्रमशः )  
आभिर्भावा पाया जाता है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन ध्यायिक ही होता है ॥ ६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंके ध्यायिकसम्यग्दृष्टि उपशामक यह कौनसा  
भाा है ? औपशामिक भाव है ॥ ७० ॥

न्यातिके, उपशान्तकपायकं मोहनीयकर्मके उपशामसे उत्पन्न हुआ चारित्र्य पाया  
जानेने और शेर तीन उपशामकोंके मोहोपशामके कारणभूत चारित्र्यसे समन्वित होनेसे  
औपशामिकभाव पाया जाता है ।

ध्यायिकसम्यग्दृष्टि चारों उपशामकोंके सम्यग्दर्शन ध्यायिक ही होता है ॥७१॥

दर्शनमोहनीयकर्मके क्षपणका प्रारम्भ करनेवाला जीव, अथवा कृतकृत्यवेदक  
सम्यग्दृष्टि जीव, उपशामथेणीपर नहीं चढ़ता है, इस बातका ध्यान करनेके लिए यह सूत्र  
कहा गया है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

ध्यायिकसम्यग्दृष्टि चारों गुणस्थानोंके क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली  
यह कौनसा भाा है ? ध्यायिक भाा है ॥ ७२ ॥

१ ध्यायिक सम्यग्दृष्टि । स. सि. १, ८.

२ उपशामकभावमोहोपशामिके भााः । स. सि. १, ८.

३ ध्यायिक सम्यग्दृष्टि । य. सि. १, ८.

४ ज्ञेयार्ता गमन्यत्वम् । स. सि. १, ८

कृदो ? मोहणीयस्त खणहेहुअपुव्वसणिणदचारित्तसमणिणदचादो मोहकसएण-  
प्यणचारित्तादो धादिकखएणुप्यणणवकेवललद्धीहितो ।

खड्यं सम्मत्तं ॥ ७३ ॥

सुगममेदं ।

वेदयसम्मादिद्वीसु असंजदसम्मादिद्वि ति को भावो, खओव-  
समिओ भावो ॥ ७४ ॥

सुगममेदं ।

खओवसमियं सम्मत्तं ॥ ७५ ॥

ओवसि असंजदसम्मादिद्विस्त तिणिण भावा सामणेण परुखिदा, एदं सम्मत्त-  
मोवसमियं खड्यं खओवसमियं वेत्ति ण परुखिदं । संपहि सम्मत्तमग्गणाए एदं सम्मत्त-  
मोवसमियं खड्यं खओवसमियं वेत्ति एदेहि सुत्तेहि जाणाविदं । सेसं सुगमं ।

न्यातिके, अपूर्वकरण आदि तीन क्षपकोंका मोहनीयकर्मके क्षपणके कारणभूत  
अपूर्वसंभावले चारित्र्यसे समन्वित होनेके कारण, क्षीणकपायवीतरागछद्मस्थके मोहक्षयरो  
उत्पन्न हुआ चारित्र्य होनेके कारण, तथा सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके ध्यायिका  
कर्मोंका क्षय हो जानेसे उत्पन्न नन केवललद्धियोंकी अपेक्षा ध्यायिक भाव पाया जाता है ।

चारो क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके सम्यग्दर्शन ध्यायिक ही होता  
है ॥ ७३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोमे असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? ध्यायोपशामिक  
भाव है ॥ ७४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके सम्यग्दर्शन ध्यायोपशामिक होता है ॥ ७५ ॥

ओवप्ररूपणार्थे असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके सामान्यसे तीन भाव कहे हैं, किन्तु  
उनका यह सम्यग्दर्शन औपशामिक है, या ध्यायिक है, किंवा ध्यायोपशामिक है, यह प्ररूपण  
नहीं किया है । अब सम्यन्त्वमार्गणार्थे असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका यह सम्यग्दर्शन  
औपशामिकसम्यक्चियोंके औपशामिक होता है, ध्यायिकसम्यग्दृष्टियोंके ध्यायिक होता है  
और वेदकसम्यग्दृष्टियोंके ध्यायोपशामिक होता है, यह बात इन सूत्रोंसे सूचित की गई  
है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

१ ध्यायोपशामिकसम्यग्दृष्टिु चकयतसम्यग्दृष्टे ध्यायोपशामिको मात्र । स. सि. १, ८.

२ ध्यायोपशामिक सम्यक्त्वम् । स. सि. १, ८.



ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ ७६ ॥

अवगयत्थमेदं ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥ ७७ ॥

णादहुमेयं ।

खओवसमियं सम्मत्तं ॥ ७८ ॥

कुदो ? दंसणमोहोदए संते वि जीवपुणोभूदसदहणस्स उप्पत्तीए उवलंभा ।

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि ति को भावो, उवसमिओ भावो ॥ ७९ ॥

कुदो ? दंसणमोहवसमेणुप्पणसम्मत्तादो ।

उवसामियं सम्मत्तं ॥ ८० ॥

किन्तु वेदकसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ७६ ॥

इस सूत्रका अर्थ जाना हुआ है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अग्रमत्तसंयत यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिकभाव है ॥ ७७ ॥

इस सूत्रका अर्थ ज्ञात है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन क्षायोपशमिक होता है ॥ ७८ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयके ( अंगभूत सम्यक्त्वप्रकृतिके ) उदय रहने पर भी जीवके गुणस्वरूप श्रद्धानकी उत्पत्ति पाई जाती है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव है ॥ ७९ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टियोंका सम्यक्त्व दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमसे उत्पन्न हुआ है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है ॥ ८० ॥

१ अयत्त पुनरौदयिनेन भावेन । स सि १, ८

२ सयतासयत्तप्रमत्तप्रमत्तसयत्ताना क्षायोपशमिको भाव । स सि १, ८,

३ क्षायोपशमिक सम्यक्त्वम् । स सि १, ८

४ औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असयत्तसम्यग्दृष्टेरोपशमिको भाव । स सि १, ८

५ औपशमिक सम्यक्त्वम् । स सि १, ८

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ ८१ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥ ८२ ॥

सुगममेदं ।

उवसमियं सम्मत्तं ॥ ८३ ॥

एदं पि सुगमं ।

चटुण्हसुवसमा ति को भावो, उवसमिओ भावो ॥ ८४ ॥

उवसमियं सम्मत्तं ॥ ८५ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी ओवं ॥ ८६ ॥

किन्तु उपशमसम्यक्त्वी असंयतसम्यग्दृष्टि जीविका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ८१ ॥

ये दोनो ही सूत्र सुगम हैं ।

उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अग्रमत्तसंयत यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ८२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है ॥ ८३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंके उपशमसम्यग्दृष्टि उपशमिक यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव है ॥ ८४ ॥

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है ॥ ८५ ॥

ये दोनो ही सूत्र सुगम हैं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि भाव ओवके समान है ॥ ८६ ॥

१ असयत्त पुनरौदयिनेन भावेन । स सि १, ८

२ सयतासयत्तप्रमत्तप्रमत्तसयत्ताना क्षायोपशमिको भावः । स सि १, ८

३ औपशमिक सम्यक्त्वम् । स सि १, ८

४ चतुण्हसुवसमानासौपशमिको भावः । स सि १, ८

५ आपशमिक सम्यक्त्वम् । स सि १, ८ ६ सासादनसम्यग्दृष्टे परिणामिको भाव । स सि १, ८

समामिच्छादिद्वी ओषं ॥ ८७ ॥

मिच्छादिद्वी ओषं ॥ ८८ ॥

तिष्णि वि मुत्तानि अवगयत्याणि ।

एव समत्तमगणा समत्ता ।

सणियाणुवादेण सणीसु मिच्छादिद्विपहुडि जाव खीणकसाय-  
वीदरागच्छुमत्था त्ति ओषं ॥ ८९ ॥

सुगममेदं ।

असण्णि त्ति को भावो, ओदइओ भावो ॥ ९० ॥

बुद्धो ? गोदंदिपानरुणस्स सच्चवादिफइयाणसुदएण असण्णित्तुप्पत्तीदो । असण्णि-  
गुणद्वयणयागो क्रिण्ण परुविदो ? ण, उवदेसमंतरेण तदवगामादो ।

एव सण्णिमगणा समत्ता ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि भाव ओषके समान है ॥ ८७ ॥

मिथ्यादृष्टि भाव ओषके समान है ॥ ८८ ॥

इन तीनों ही सूत्रोंका अर्थ यात है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

मंतिमार्गणाके अनुवादमे संज्ञियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणक्रपायवीतराग-  
छत्रय तक यात्र ओषके समान है ॥ ८९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जर्मनी यह कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है ॥ ९० ॥

फर्मेंकि, नोगन्धियाचरणकर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे असंखित्व भाव  
उत्पन्न होता है ।

अंके—यहाँपर असंखी जीवोंके गुणस्थानसम्बन्धी भावको फर्में नहीं बतलाया ?  
समाधान—नहीं, फर्मेंकि, उपदेशके बिना ही उसका ज्ञान हो जाता है ।

इस प्रकार संज्ञीमार्गणा समाप्त हुई ।

१ मत्तमिण्णदो. ज्ञायोपज्जमिरो भावः । स वि १, ८

२ विपपरेशेभंतीरो भावः । म वि १, ८. ३ सत्ताउवादेन सत्तिनां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

४ अ. सत्तिनामीश्रीरो भावः । स. वि १, ८. ५ तदुभयव्यपदेशदक्षितानां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिद्विपहुडि जाव सजोगी-  
केवलि त्ति ओषं ॥ ९१ ॥

सुगममेदं ।

अणाहारारणं कम्मइयभंगो ॥ ९२ ॥

एदं पि सुगमं । कम्मइयादो विसेसपटुप्पायणहं उत्तरसुचं भणदि-

णवरि विसेसो, अजोगिकेवलि त्ति को भावो, खइओ भावो  
॥ ९३ ॥

सुगममेदं ।

( एव आहासमगणा समत्ता )

एवं भावाणुगमो त्ति समत्तमण्णिओगहारं ।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली तक  
भाव ओषके समान है ॥ ९१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अनाहारक जीवोंके भाव कर्मणकाययोगियोंके समान हैं ॥ ९२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

कर्मणकाययोगियोंमें विशेषता प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—  
किन्तु विशेषता यह है कि कर्मणकाययोगी अयोगिकेवली यह कौनसा भाव है ?  
क्षायिक भाव है ॥ ९३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

( इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई । )

इस प्रकार भवानुगमनामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

१ आहाराउवादेन आहारकर्णां × × सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ × × अनाहारकर्णां च सामान्यवत् । स. सि. १, ८

३ भाव परिसमाप्त । स. सि. १, ८.

**एतद्गणितम्**



सिरि-भगवंत-पुष्पदन्त-भूदचलि-पणीदेो

## छत्रखंडागमो

सिरि-धीरसेणाहरिय-विरड्य-धचला-दीका-समणिणेदो

तस्स

पडमखंडे जीवट्टाणे

## अप्पावहुगाणुगमो

केलणाणुजोडयलोयलोए जिणे णमंसिचा ।

अप्पवहुआणिओअं जहेवएसं पस्सेमो ॥

अप्पावहुआणुगमेण दुविहो णिहेसो, ओधेण आदेसेण यं ॥१॥

तय णाम-ट्टणा-द्व-भामभेएण अप्पावहुअंसदो णामप्पा-  
नहुअं । एदम्हादो एदस्स बहुत्तमपत्तं वा एदमिदि एयत्तज्जारोवेण इविदं ठवणप्पा-  
वहुअं । दव्यप्पावहुअं दुविहं आगम-णोआगमभेएण । अप्पावहुअपाहुडजाणओ अणुवजुत्तो

केवलजानके द्वारा लोक ओर अलोकको प्रकाशित करनेवाले श्री जिनेन्द्र देवोंको  
नमस्कार करके जिस प्रकारसे उपदेश प्राप्त हुआ है, उसके अनुसार अल्पबहुत्व अनुयोग-  
धारता प्ररूपण करते हैं ॥

अल्पाहुत्तानुगमत्री अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओषनिर्देश और आदेश-  
निर्देश ॥ १ ॥

नाम, स्थापना द्रव्य ओर भावके भेदसे अल्पबहुत्व चार प्रकारका है । उनमेंसे  
अन्यत्रुत्तर शब्द नामअल्पबहुत्व है । यह इससे बहुत है, यथवा यह इससे अल्प है,  
इस प्रकार परस्परके अन्वयरोपने स्थापना करना स्थापनाअल्पबहुत्व है । द्रव्यअल्प-  
बहुत्व आगम और नो-आगमके भेदसे दो प्रकारका है । जो अल्पबहुत्व-विषयक प्राभृतको  
जाननेवाला है, परंतु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित है उसे आगमद्रव्य अल्पबहुत्व

१ अप्पावहुआणुगमे । त्तरु विजिा ताम्पनेत्त विपेण व । त ति १, ८

आगमद्रव्यप्पावहुअं । णोआगमद्व-प्पावहुअं तिविहं जाणुअसरीर-भविय-तव्वदिरित्तभेदा ।  
तय जाणुअसरीरं भविय-वड्डमाण-समुज्झादमिदि तिविहमवि अवगयत्थं । भवियं भविस्स-  
काले अप्पावहुअपाहुडजाणओ । तव्वदिरित्तअप्पावहुअं तिविहं सच्चित्तमचित्तं भिस्समिदि ।  
जीवद्व-प्पावहुअं सचित्तं । सेसद्व-प्पावहुअमचित्तं । दोणं पि अप्पावहुअं भिस्सं ।  
भावप्पावहुअं दुविहं आगम-णोआगमभेएण । अप्पावहुअपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगम-  
भावप्पावहुअं । णाण-दंसणाणुभाग-जोगादिविसयं णोआगमभावप्पावहुअं ।

एदसु अप्पावहुएसु केण पयदं ? सच्चित्तद्व-प्पावहुएण पयदं । किमप्पावहुअं ?  
सखाधम्मो, एदम्हादो एदं तिणुणं चट्टुणुणमिदि दुद्धिगेज्जो । कस्सप्पावहुअं ? जीव-  
दव्वस्स, धम्मिवदिरित्तिसंखाधम्मणाणुवलंभा । केणप्पावहुअं ? परिणाभिएण भवेण ।

कहते हैं । नोआगमद्रव्यअल्पबहुत्व शायकरारीर, भावी ओर तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन  
प्रकारका है । उनमेंसे भावी, वर्तमान ओर अतीत, इन तीनों ही प्रकारके शायकरारीरका  
अर्थ जाना जा चुका है । जो भवियकालमें अल्पबहुत्व प्राभृतका जाननेवाला होगा, उसे  
भावी नोआगमद्रव्य अल्पबहुत्वनिक्षेप कहते हैं । तद्व्यतिरिक्त अल्पबहुत्व तीन प्रकारका  
है- सचित्त, अचित्त और मिश्र । जीवद्रव्य विषयक अल्पबहुत्व सचित्त है, शेष द्रव्य-  
विषयक अल्पबहुत्व अचित्त है, और इन दोनोंका अल्पबहुत्व मिश्र है । आगम और  
नोआगमके भेदसे भाव-अल्पबहुत्व दो प्रकारका है । जो अल्पबहुत्व-प्राभृतका जानने-  
वाला है ओर वर्तमानमें उसके उपयोगसे युक्त है उसे आगमभाव अल्पबहुत्व कहते हैं ।  
आत्माके ज्ञान ओर दर्शनको, तथा पुद्गलकर्मोंके अनुभाग ओर योगादिको विषय करने-  
वाला नोआगमभाव अल्पबहुत्व है ।

शंका—इन अल्पबहुत्वोंमेंसे प्रकृतमें किससे प्रयोजन है ?

समाधान—प्रकृतमें सचित्त द्रव्यके अल्पबहुत्वसे प्रयोजन है ।

(अब निर्देश, स्वामित्वादि प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारोंसे अल्पबहुत्वका निर्णय  
किया जाता है ।)

शंका—अल्पबहुत्व क्या है ?

समाधान—यह उससे तिगुणा है, अथवा चतुर्गुणा है, इस प्रकार बुद्धिके द्वारा  
प्राहण करने योग्य संख्याके धर्मको अल्पबहुत्व कहते हैं ।

शंका—अल्पबहुत्व किसके होता है, अर्थात् अल्पबहुत्वका स्वामी कौन है ?

समाधान—जीवद्रव्यके अल्पबहुत्व होता है, अर्थात् जीवद्रव्य उसका स्वामी है,  
पर्यंकि, धर्मको छोड़कर संख्याधर्म पृथक् नहीं पाया जाता ।

शंका—अल्पबहुत्व किससे होता है, अर्थात् उसका साधन क्या है ?

समाधान—अल्पबहुत्व परिणामिक भावसे होता है ।

कथप्पावहुअं ? जीवद्वये । केवचिरमप्पावहुअं ? अणादि-अपज्जवसिदं । कुदो ? सब्वेसि गुणद्वयणमेदेणव पमाणेण सव्वकालमवड्ढापादो । कइविहमप्पावहुअं ? मग्गणभेयभिण्ण-गुणद्वयणमेत्तं ।

अप्यं च बहुअं च अप्पावहुआणि । तेसिमगुमो अप्पावहुआणुमो । तेण अप्पावहुआणुमेण णिद्वेसो दुनिहो हेदि ओघो ओद्वेसो ति । संगहिद्वयणफलवो दव्वट्टियणिंघणो ओघो णाम । असंगहिद्वयणफलओ पुब्बिच्छत्थं वयवणिंघो पज्जव-द्वियणिंघणो ओद्वेसो णाम ।

**ओघेण तिसु अद्दासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवां ॥ २ ॥**

तिसु अद्दासु ति वयणं चत्तारि अद्दाओ पडिसेहडं । उवसमा ति वयणं खवया-दिपडिसेहफलं । पवेसणेण च वयणं संचयपडिसेहफलं । तुल्ला ति वयणेण विसरिस-च-पडिसेहो कदो । आदिमसु तिसु गुणद्वयेण उवसामया पवेसणेण तुल्ला सरिसा । कुदो ?

शंका—अल्पवहुत्व किसमें होता है, अर्थात् उसका अधिकरण क्या है ?

समाधान—जीवद्रव्यमें, अर्थात् जीवद्रव्य अल्पवहुत्वका अधिकरण है ।

शंका—अल्पवहुत्व कितने समय तक होता है ?

समाधान—अल्पवहुत्व अनादि और अनन्त है, क्योंकि, सभी गुणस्थानोंका इसी प्रमाणसे सर्वकाल अवस्थान रहता है ।

शंका—अल्पवहुत्व कितने प्रकारका है ?

समाधान—मार्गणाओंके भेदसे गुणस्थानोंके जितने भेद होते हैं, उतने प्रकारका अल्पवहुत्व होता है ।

अल्प और बहुत्वको अर्थात् हीनता और अधिकताको अल्पवहुत्व कहते हैं । उनका अनुगम अल्पवहुत्वानुगम है । उससे अर्थात् अल्पवहुत्वानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । जिसमें सम्पूर्ण वचन-कलाप संगृहीत है, और जो द्रव्यार्थिकनय-निमित्तक है, वह ओघनिर्देश है । जिसमें सम्पूर्ण वचन-कलाप संगृहीत नहीं है, जो पूर्वांक अर्थवयव अर्थात् ओघानुगममें बतलाये गये भेदोंके आश्रित है और जो पर्यार्थिकनय-निमित्तक है वह आदेशनिर्देश है ।

ओघनिर्देशसे अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा परस्पर तुल्य हैं, तथा अन्य सब गुणस्थानोंके प्रमाणसे अल्प हैं ॥ २ ॥

‘तीनों गुणस्थानोंमें’ यह वचन चार उपशामक गुणस्थानोंके प्रतिषेध करनेके लिए दिया है । ‘उपशामक’ यह वचन क्षपकादिके प्रतिषेधके लिए दिया है । ‘प्रवेशकी अपेक्षा’ इस वचनका फल संचयका प्रतिषेध है । ‘तुल्य’ इस वचनसे विसदृशताका प्रतिषेध किया है । श्रेणीसम्बन्धी आदिके तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी

१ प्रतिपु ‘पुब्बिच्छका’ इति पाठ । मप्रती तु स्वीहृतपाठ ।

२ सामान्येन तावत् नय उपशामकाः सर्वत स्तोका स्वगुणस्थानकालेषु प्रवेशेन तुल्यवस्था । स सि १, ८

एआदिचउण्णमेत्तजीवाण पनेसं पडि पडिसेहाभावा । ण चं सव्वद्धं तिसु उवसामगेषु पविस्संतजीवाहि सरिसत्तणियमो, संभवं पडुच्च सरिसत्तउचीदो । एद्वेसि संचओ सरिसो असरिसो चि वा किण्ण परूविदो ? ण एम दोसो, पवेससारिच्छेण तेसिं संचयसारिच्छस्स वि अवगमादो । पविससमाणजीवाणं विसरिससे संते संचयस्स विसरिसत्तं, अण्णहा दिद्धविरोहादो । अणुत्तादिअद्वयणं थोत्र-बहुत्तादो विसरिसत्तं संचयस्स किण्ण होदि चि पुच्छिदं ण हेदि, तिण्हसुवसामगणमद्दाहिंतो उक्कस्सपवेसंतरस्स बहुत्तुवेदसादो । तद्दा तिण्हं संचओ वि सरिसो चेय । थोवा उवरि उच्चमाणगुणद्वयणण संख पेक्खिय थोवा चि भणिद्दा ।

अपेक्षा तुल्य अर्थात् सदृश होते हैं, क्योंकि, एकसे लेकर चौपन मात्र जीवोंके प्रवेशके प्रति कोई प्रतिषेध नहीं है । किन्तु सर्वकाल तीनों उपशामकोंमें प्रवेश करनेवाले जीवोंकी अपेक्षा सदृशताका नियम नहीं है, क्योंकि, संभावनाकी अपेक्षा सदृशताका कथन किया गया है ।

शंका—इन तीनों उपशामकोंका संचय सदृश होता है, या असदृश होता है, इस बातका प्ररूपण क्यों नहीं किया ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, प्रवेशकी सदृशतासे उनके संचयकी सदृशताका भी ज्ञान हो जाता है । प्रविश्यमान जीवोंकी विसदृशता होने पर ही संचयकी विसदृशता होती है, यदि ऐसा न माना जाय तो प्रत्यक्षसे विरोध आता है ।

शंका—अपूर्वकरण आदिके कालोंमें परस्पर अल्पवहुत्व होनेसे संचयके विसदृशता क्यों नहीं हो जाती है ?

समाधान—ऐसी आशंकापर आचार्य उत्तर देते हैं कि अपूर्वकरण आदिके कालके हीनाधिक होनेसे संचयके विसदृशता नहीं होती है, क्योंकि, तीनों उपशामकोंके कालोंसे उच्छेद प्रवेशान्तरका काल बहुत है ऐसा उपदेश पाया जाता है । इसलिए तीनोंका संचय भी सदृश ही होता है ।

विशेषार्थ—यहां पर शंकाकारने यह शंका उठाई है कि जब अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंका काल हीनाधिक है, अर्थात् अपूर्वकरणका जितना काल है, उससे संख्यात-गुणा हीन अनित्यकरणका काल है और उससे संख्यातगुणा हीन सूक्ष्मसाम्प्रदायका काल है, तब इन गुणस्थानोंमें संचित होनेवाली जीवराशिका प्रमाण भी हीनाधिक ही होना चाहिए, सदृश नहीं होना चाहिए ? इसके समाधानमें यह कहा गया है कि तीनों उपशामकोंके कालोंसे उच्छेद प्रवेशान्तरके बहुत होनेका उपदेश पाया जाता है । इसका अभिप्राय यह है कि यद्यपि अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंका काल हीनाधिक है, तथापि वह प्रत्येक अन्तर्गुह्यं या असंख्यात समयप्रमाण है । किन्तु इन गुणस्थानोंमें प्रवेश कर संचित होनेवाले जीव संख्यात अर्थात् उपशामश्रेणिके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक तीन

१ प्रतिपु ‘पडिसेहमात्राण च’ इति पाठ ।

२ मतिपु ‘णण्णहा’ इति पाठ ।

उपसंतकसायवीदरागच्छुमस्था तत्तिया चैव ॥ ३ ॥

पुथगुचारंभो हिमदो ? उग्रतकसायस्य कमाउवसामगणं च पचामचीए  
अभास्य मंदंमणकलो । जैमि पचामची अथि तेमिमेगजोरो, इदरेमि भिणजोरो  
येदि वि एयेण जणादिं ।

सवा संखेज्जगुणां ॥ ४ ॥

कुरो ? उगामगगुणद्वान्मुक्त्सेण पमिस्समाणचउवणजमिहितो खवगेगगुण-

गो चार ( ३०४ ) और क्षणक्रेणिके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक छह सो आठ  
( २०८ ) ही होते हैं । यदि सर्वाज्ञान्य प्रमाणकी भी अपेक्षासे एक समयमें एक ही जीवका  
प्रवेश माना जाय, तो भी प्रत्येक गुणस्थानके प्रवेशकालके समय संख्यात अर्थात्  
उपशमधेर्णिके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक तीन सो चार और क्षणक्रेणिके  
प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक छह सो आठ ही होंगे । यहाँ यह स्मरण रखना  
चाहिए कि उपशम या क्षणक्रेणिके तिरन्तर प्रवेश करनेका सर्वोत्कृष्ट काल आठ समय  
ही है । इससे ऊपर जितना भी प्रवेशकाल है, वह सब सान्तर ही है । इससे यह अर्थ  
निरकृता है कि अपूर्वकरणादि गुणस्थानोंमें प्रवेशान्तर अर्थात् जीवोंके प्रवेश नहीं  
करनेका काल अगंत्यात समयप्रमाण है । चूँकि, सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानसे अनिष्टुत्ति-  
करणका काल संख्यातगुणा है इसलिए उसके प्रवेशान्तरका उत्कृष्ट काल भी संख्यात-  
गुणा ही होगा । इसी प्रकार चूँकि अनिष्टुत्तिकरणके कालसे अपूर्वकरणका काल संख्यात-  
गुणा है, अतः उसके प्रवेशान्तरका काल भी संख्यातगुणा ही होगा । इसका यही निष्कर्ष  
निरकृता है कि तीनों उपशमकोंके कालोंसे तीनोंके उत्कृष्ट प्रवेशान्तरका काल बहुत है,  
अर्थात् प्रवेश करनेके समय समान है, अतएव उनका संचय भी सदृश ही होता है ।

अर्थात् जीव भागे नहीं जलियली गुणस्थानोंकी संख्याको 'देराकर अल्प है'  
पेरना कहा है ।

उपगान्तरपायवीतरागच्छुम्य पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३ ॥

शंका—पृथक् सूत्रका प्रारम्भ किस लिये किया है ?

समाधान—उपशान्तकरायका और करायके उपशम करनेवाले उपशमकोंकी  
परस्पर प्रत्यारत्तिका अभाव दिराना इसका फल है । जिनकी प्रत्यासत्ति पाई जाती है  
उगना ही एक योग अर्थात् एक समास हो सकता है और दूसरोंका भिन्न योग होता  
है, यह बात इस सूत्रसे सूचित की गई है ।

उपगान्तरपायवीतरागच्छुम्यसे क्षपक संख्यातगुणित है ॥ ४ ॥

सर्वोक्ति, उपशमकके गुणस्थानमें उत्कर्षसे प्रवेश करनेवाले चोगन जीवोंकी

१ अक्षरान्तरागतान्तरा एव । म. नि. १, ८

२ उपशमकरणेयगुणा । म. नि. १, ८

शुक्कस्सेण पमिस्समाणअहुत्तरसदजीवाणं दुगुणतुवलंभा, पंचूण-चदुरुत्तरतिसदमेत्तेगुण-  
सामगगुणद्वान्मुक्त्सेण चययो वि खवगेगगुणद्वान्मुक्त्सेण चयस्य दुरुत्तरागच्छुम्यसद-  
मेत्तस दुगुणचदंसगादो ।

खीणकसायवीदरागच्छुमस्था तत्तिया चैव ॥ ५ ॥

पुथसुचारंसस कारणं पुवं व वचवं । सेसं सुगमं ।

सजोगकेवली अजोगकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया  
चैवं ॥ ६ ॥

वाइयघादिकम्माणं छुदुमत्थेहि पचामचीए अभावादो पुथसचारंभो जादो ।  
पवेसणेण तेत्तिया चैवेत्ति उत्ते पवेस-संचएहि अहुत्तरसददुरुत्तरागच्छुम्यसदमेत्ता कमेण हेत्ति  
चि वेत्तवं । दो वि तुल्ला चि उत्ते दो वि अणोणेण सरिसा चि भणिदं हेदि ।  
अजोगिकेवलिसंचओ पुच्चिल्लयुणद्वान्संचएहि सरिसो जया, तथा सजोगिकेवलि-  
संचयसस वि सरिसत्ती । विसरिसत्तपदुपायणद्वयुत्तरसुत्तं भणदि-

अपेक्षा क्षपकके एक गुणस्थानमें उत्कर्षसे प्रवेश करनेवाले एकसो आठ जीवोंके दुगुणता  
पाई जाती है । तथा संचयकी अपेक्षा उपशमकके एक गुणस्थानमें उत्कृष्टरूपसे पांच  
कम तीनसो चार अर्थात् दो सो नित्यानवे ( २९९ ) संचयसे भी क्षपकके एक गुणस्थानको  
दो कम छह सो ( ५९८ ) रूप संचयके दुगुणता देली जाती है ।

क्षीणकपायवीतरागच्छुम्य पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ५ ॥

पृथक् सूत्र बनानेका कारण पहलेके समान कहना चाहिए । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।  
सयोगिकेवली और अयोगिकेवली प्रवेशकी अपेक्षा दोनों ही तुल्य और पूर्वोक्त  
प्रमाण है ॥ ६ ॥

वातिकर्षकोंका वात करनेवाले सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीकी छमस्य  
जीवोंके साथ प्रत्यासत्तिका अभाव होनेसे पृथक् सूत्र बनाया गया है । प्रवेशकी अपेक्षा  
पूर्वोक्त प्रमाण ही है, ऐसा कहनेपर प्रवेशसे एक सो आठ ( १०८ ) और संचयसे दो कम  
छह सो अर्थात् पाच सो अष्टानवे ( ५९८ ) कमसे होते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना  
चाहिए । दोनों ही तुल्य हैं, ऐसा कहनेसे दोनों ही परस्पर समान हैं, ऐसा अर्थ सूचित  
होता है । जिस प्रकार अयोगिकेवलीका संचय पूर्ण गुणस्थानोंके संचयके सदृश होता  
है, उसी प्रकार सयोगिकेवलीके संचयके भी सदृशताकी प्राप्ति होती है, अतएव उनके  
संचयकी विसदृशताके प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं-

१ क्षीणकपायवीतरागच्छुम्यसदमेत्ता एव । म. नि. १, ८.

२ सयोगिकेवलिनोअयोगिकेवलिनम प्रवेशेन तुल्यमस्या । म. नि. १, ८.

**सयोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणां ॥ ७ ॥**

कुदो ? दुरुवृणछस्सदमेत्तजीविहितो अट्टलक्ख-अट्टाणउदिसहस्स-दुराहियंपयसद-  
मेत्तजीवाणं संखेज्जगुणुवलंभा। हेट्ठिमरासिणा उवरिमरासिं छेचूण गुणगारो उप्पोदेव्वो।  
अपमत्तसंजदा अक्खवा अनुवसमा संखेज्जगुणां ॥ ८ ॥  
खवगुवसामगअपमत्तसंजदपडिसेहो किमहं कीरेदे ? ण, अपमत्तसामण्णेण  
तेसिं पि गहणपसंगा। सजोगिरासिणा वेकोडि-छण्णउदिलक्ख-णवणउइसहस्स-तिउत्तर-  
सदमेत्तअपमत्तरासिंभिह भागे हिदे जं लद्धं सो गुणगारो होदि।

**पमत्तसंजदा संखेज्जगुणां ॥ ९ ॥**

को गुणगारो ? दोणिण रूचाणि। कुदो णव्वदे ? आरियपरंपरागदुवदेसादो।

सयोगिकेवली कालकी अपेक्षा संख्यातगुणित है ॥ ७ ॥

क्योंकि, दो कम छह सौ, अर्थात् पांच सौ अट्टानवे मात्र जीवोंकी अपेक्षा आठ  
लाख, अट्टानवे हजार पांच सौ दो संख्याप्रमाण जीवोंके संख्यातगुणितता पाई जाती  
है। यहां पर अधस्तराशिसे उपरिम राशिको छेदकर (भाग देकर) गुणकार उत्पन्न  
करना चाहिए।

सयोगिकेवलियोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यात-  
गुणित है ॥ ८ ॥

शंका—यहांपर क्षपक और उपशामक अप्रमत्तसंयतोंका निषेध किस लिए  
किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'अप्रमत्त' इस सामान्य पदसे उनके भी ग्रहणका  
प्रसंग आता है, इसलिए क्षपक और उपशामक अप्रमत्तसंयतोंका निषेध किया गया है।  
सयोगिकेवलीकी राशिसे दो करोड़ छानवे लाख नित्यानवे हजार एक सौ तीन संख्या-  
प्रमाण अप्रमत्तसंयतोंकी राशिमैं भाग देनेपर जो लब्ध आवे, वह यहां पर गुणकार  
होता है।

अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित है ॥ ९ ॥

गुणकार क्या है ? दो संख्या गुणकार है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्य-परम्पराके द्वारा आये हुये उपदेशसे जाना जाता है।

- १ सयोगिकेवलिन स्वमलिन समुदिताः सत्येयगुणाः। (८९८५०२)। स सि १, ८
- २ अप्रमत्तमयता सत्येयगुणाः (२९६९९१०३)। स सि १, ८
- ३ प्रमत्तमयताः सत्येयगुणा (५९३९८२०६)। स सि १, ८

पुवुत्तअपमत्तरासिणा पंचकोडि-तिण्णउइलक्ख-अट्टाणउइसहस्स-छब्भहियदोसदमेत्तभिह  
पमत्तरासिंभिह भागे हिदे जं भागलद्धं सो गुणगारो।

**संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ १० ॥**

कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तचादो। माणुसखेत्तभंतरे चैय  
संजदासंजदा होंति, णो वहिद्धा; भोगभूमिंभिह संजमांसजमभावविरोहा। ण च माणुस-  
खेत्तभंतरे असंखेज्जाणं सजदासंजदाणमत्थि संभवो, तेत्थियमेत्ताणमेत्थैवद्वान्णविरोहा।  
तदो संखेज्जगुणेहि संजदासंजदेहि होदव्वमिदि ? ण, सयंपहपव्वदपरभागे असंखेज्ज-  
जोयणवित्थडे कम्मभूमिपडिभाए तिरिक्खाणमसंखेज्जाणं संजमांसजमगुणसहिदाण-  
मुवलंभा। को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपठम-  
वग्गमूलाणि। को पडिभागो ? अंतोमुहुत्तगुणिदपमत्तसंजदरासी पडिभागो।

**सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ११ ॥**

पूर्वोक्त अप्रमत्तराशिसे पांच करोड़ तिरानवे लाख, अट्टानवे हजार, दो सौ छह  
संख्याप्रमाण प्रमत्तसंयतराशिमैं भाग देनेपर जो भाग लब्ध आवे, वह यहांपर गुणकार है।

प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणित है ॥ १० ॥

क्योंकि, वे पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

शंका—संयतासंयत मनुष्यक्षेत्रके भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं, क्योंकि, भोग-  
भूमिमैं संयमासंयमके उत्पन्न होंनेका विरोध है। तथा मनुष्यक्षेत्रके भीतर असंख्यात संयता-  
संयतोंका पाया जाना सम्भव नहीं है, क्योंकि, उतने संयतासंयतोंका यहां मनुष्यक्षेत्रके  
भीतर अवस्थान माननेमें विरोध आता है। इसलिए प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत  
संख्यातगुणित होना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, असंख्यात योजन विस्तृत एवं कर्मभूमिके प्रतिभाग-  
रूप स्वयंप्रभ पर्वतके परभागमें संयमासंयम गुणसहित असंख्यात तिर्यंच पाये जाते हैं।

गुणकार क्या है ? पत्योपमका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो पत्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण है। प्रतिभाग क्या है ? अन्तर्मुहूर्तसे प्रमत्तसंयतराशिको  
गुणित करनेपर जो लब्ध आवे, वह प्रतिभाग है।

संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है ॥ ११ ॥

- १ सयतासयता असत्येयगुणाः। स सि १, ८.
- २ प्रतियु ' मेत्ता-' इति पाठः।
- ३ सासादनसम्यग्दृष्टकेऽसत्येयगुणा। स सि १, ८

कुरो ? त्रिहिरमममचद्विदमंजदागंजदेहितो एगुममसमसादादो सासणगुणं पडि-  
गजिय छुअ आमकियागु मंचिअजीनागमसंसेज्जगुणगुवदेसादो । तं पि कथं णव्वेदे ?  
एरासमयमिह मंजमामंजमं पडिवज्जमाणजीवोहितो एककसमयमिह चैव मासणगुणं पडि-  
गज्जमाणजीनागमसंसेज्जगुणचंदसागदो । तं पि कुरो ? अणंतंससारविच्छेयहउसंजमा-  
मंजमलंमम अट्टुल्लमचादो । को गुणगारो ? आवालिपाए असंसेज्जदिभागो । हेडिम-  
गगिणा उतरिगगमिदि भागे हिदे गुणगारो आगच्छदि, उवरिमरासिअवहारकालेण  
हेडिमगमिअमहार कालं भागे हिदे गुणगारो होदि, उवरिमरासिअवहारकालगुणिदेहेडिम-  
रासिणा पल्लित्तोमे भागे हिदे गुणगारो होदि । एवं तीहि पयोरेहि गुणयारो समाण-  
भज्जमाणगामीगु मय्यत्थ साहेद्व्यो । णरि हेडिमरासिणा उवरिमरासिदि भागे हिदे  
गुणगारो आगच्छदि पि एदं समाणामाणभज्जमाणगामीणं साहारणं, दोसु नि एदस्स  
पउचीए वाहाणुअलभा ।

पर्योकि, तान प्रकारके सम्यग्ज्वके साथ स्थित संयतासंयतोंकी अपेक्षा एक  
उपशमसम्यग्ज्वके मानादनगुणस्थानको प्राप्त होकर छह आवलियोंसे संचित जीव  
अरण्यातगुणित ई, ऐसा उपदेश पाया जाता है ।

अंज्ञा — यह भी कैसे जाना जाता है ?

रामायान—एक समयमें संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंसे एक समयमे  
ही सात्वानगुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित देरे जाते हैं ।

अंज्ञा—इसका भी कारण क्या है ?

गमयान—पर्योकि, अतन्त संसारके विच्छेदका कारणभूत समयमासंयमका  
पाना अनितुलंभ है ।

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । अधस्तनराशिसे  
उपरिमराशिमें भाग देनेपर गुणकारका प्रमाण आता है । अथवा, उपरिमराशिके अवहार-  
कारको अज्ञानराशिके अवहारकालमें भाग देनेपर गुणकार होता है । अथवा, उपरिम-  
राशिके अवहारकालसे अधस्तनराशिको गुणित करके जो लब्ध आवे उसका पल्योपममें  
भाग देनेपर गुणकार आता है । ऐसे इन तीन प्रकारोंसे समान भज्यमान राशियोंमें सर्वत्र  
गुणकार साधित कर लेना चाहिए । केवल विशेषता यह है कि अधस्तनराशिका उपरिम-  
राशिमें भाग देनेपर गुणकार आता है, यह नियम समान और अतमान, दोनों भज्यमान  
राशियोंमें साधारण है, पर्योकि, उक्त दोनों राशियोंमें भी इस नियमकी प्रवृत्ति होनेमें  
बाधा नहीं पारि जाती है ।

१ प्रतिगु ' तं रि ' इति पाठः ।

## समामिच्छादिद्वी संसेज्जगुणां ॥ १२ ॥

एदस्सत्थो उच्चदे- सम्मामिच्छादिद्विअद्वा अंतोसुहुचमेचा, सासणसम्मादिद्वि-  
अद्वा वि छावलियमेचा । किंतु सासणसम्मादिद्विअद्वादो सम्मामिच्छाद्विअद्वा संसेज्ज-  
गुणा । संसेज्जगुणद्व्याए उवक्कमणकालो वि सासणद्व्यावक्कमणकालादो संसेज्जगुणो  
उवक्कमणविरोहा निरहकालाणसुहत्थ साथम्मादो । तेण दोगुणद्व्याणि पडिवज्जमाण-  
रासी जदि वि सरिसो, तो वि सासणसम्मादिद्वीहितो सम्मामिच्छादिद्वी संसेज्जगुणा  
होति । किंतु सासणगुणसुवससम्मादिद्विणो चैय पडिवज्जंति, सम्मामिच्छत्तगुणं पुण  
वेदगुवससम्मादिद्विणो अट्टावीसंतकम्मियमिच्छादिद्विणो य पडिवज्जंति । तेण सासणं  
पडिवज्जमाणरासीदो' सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणरासी संसेज्जगुणो । तदो संसेज्ज-  
गुणायदो संसेज्जगुणउवक्कमणकालादो च सासणेहितो सम्मामिच्छादिद्विणो संसेज्ज-  
गुणा, उवसमसम्मादिद्वीहितो वेदगसम्मादिद्विणो असंसेज्जगुणा, 'कारणाणुसरिणा कजेण  
होद्वचमिदि' णायदो । सासणेहितो सम्मामिच्छादिद्विणो असंसेज्जगुणा किण होति  
त्ति उत्ते ण होति, अणेयणिगमादो । जदि तेहि पडिवज्जमाणगुणद्व्याणमेक्कं' चैव होदि,

सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १२ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र  
है और सासादनसम्यग्दृष्टिका काल भी छह आवलीप्रमाण है, किन्तु फिर भी सासादन-  
सम्यग्दृष्टिके कालसे सम्यग्मिथ्यादृष्टिका काल संख्यातगुणा है । सख्यातगुणित कालका  
उपक्रमणकाल भी सासादनके कालके उपक्रमणकालसे संख्यातगुणा है । अन्यथा उपक्रमण-  
कालमें विरोध आजायगा, पर्योकि, विरहकाल दोनों जगह समान है । इसलिए इन दोनों  
गुणस्थानोंको प्राप्त होनेवाली राशि यद्यपि समान है तो भी सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे  
सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित है । किन्तु सासादन गुणस्थानको उपशमसम्यग्दृष्टि ही  
प्राप्त होते हैं, परन्तु सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और  
मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीव भी प्राप्त होते हैं । इसलिये  
सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेवाली राशिसे सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाली  
राशि संख्यातगुणी है । अतः संख्यातगुणी आय होनेसे और संख्यातगुणा उपक्रमणकाल  
होनेसे सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं । उपशम-  
सम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, पर्योकि, 'कारणके अनुसार  
कार्य होता है' ऐसा न्याय है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित  
पर्यो नहीं होते हैं, ऐसा पृच्छने पर आचार्य उत्तर देते हैं कि नहीं होते हैं, पर्योकि,  
निर्गमके अर्थात् जानेके मार्ग अनेक हैं । यदि वेदकसम्यग्दृष्टियोंके द्वारा प्राप्त किया

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टयः सल्यगुणाः । स. सि १, ८.

२ प्रतिगु ' पडिमाणालीदो ' इति पाठ ।

३ प्रतिगु ' मेच ' इति पाठ ।



तो एस ण्याओ वोतुं' जुचो । किंतु वेदरासम्मादिद्विणो मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं च पडिवज्जन्ति, सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणेहितो मिच्छत्तं पडिवज्जमाणवेदरासम्मादिद्विणो असंखेज्जगुणा, तेण पुब्बुत्तं ण घडदे इदि । ण चासंखेज्जगुणारासिवओ अणारासिम-वेक्खियं होदि, तस्स अप्पणो आयाणुसरणसहावत्तादो । एदमेवं चैव होदि चि कथं णव्वेदे ? सासणेहितो सम्मामिच्छादिद्विणो संखेज्जगुणा ति मुत्तण्हाणुववत्तीदो णव्वेदे ।

### असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणां ॥ १३ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सम्मामिच्छादिद्विरासी अंतो-मुहुत्तसंचिदो, असजदसम्मादिद्विरासी पुण वेसागरोवमसंचिदो । सम्मामिच्छादिद्विअद्वादो वेसागरोवमकालो पल्लिवमसंखेज्जदिभागगुणो । सम्मामिच्छादिद्विउक्कमणकालादो वि असंजदसम्मादिद्विउक्कमणकालो पल्लिवमसस संखेज्जदिभागगुणो, उक्कमण-कालस्स अद्वाणुसारित्तदंसणदो । तेण पल्लिवमसस असंखेज्जदिभागेण गुणगारेण होदच्चमिदि ? ण, असंजदसम्मादिद्विरासिस्स असंखेज्जपल्लिवमपपमाणप्पसणा । तं

जानेवाला गुणस्थान एक ही हो, तो यह न्याय कहने योग्य है । किन्तु वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों गुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं । तथा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले वेदकसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले वेदक-सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, इसलिये पूर्वोक्त कथन घटित नहीं होता है । दूसरी बात यह है कि असंख्यातगुणी राशिका व्यय अन्य राशिकी अपेक्षासे नहीं होता है, क्योंकि, वह अपने आयेके अनुसार अनुसार व्ययशील स्वभाववाला होता है ।

शंका—यह इसी प्रकार होता है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं, यह सूत्र अन्यथा वन नहीं सकता है, इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १३ ॥  
गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शंका—सम्यग्मिथ्यादृष्टि राशि अन्तर्मुहूर्त संचित है और असंयतसम्यग्दृष्टि राशि दो सागरोपम संचित है । सम्यग्मिथ्यादृष्टिके कालसे दो सागरोपमकाल पल्योपमके असंख्यातवै भाग गुणितप्रमाण है । सम्यग्मिथ्यादृष्टिके उपक्रमणकालसे भी असंयत-सम्यग्दृष्टिका उपक्रमणकाल पल्योपमके संख्यातवै भागगुणित है, क्योंकि, उपक्रमण-काल गुणस्थानकालके अनुसार देखा जाता है । इसलिये पल्योपमके असंख्यातवै भाग-प्रमाण गुणकार होना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, गुणकारको पल्योपमके असंख्यातवै भाग मानने पर असंयतसम्यग्दृष्टि राशिको असंख्यात पल्योपमप्रमाण होनेका प्रसंग प्राप्त होगा ।

१ प्रतिपु 'जोतु' इति पाठ ।

३ म २ प्रती 'दो वि अत्तज्जयम्मादिद्वि उक्कमणकालो' इति पाठो नास्ति ।

२ अन्यतसम्यग्दृष्टयोऽसंखेज्जगुणा । स सि १, ८

जधा- 'एदेहि पल्लिवममवहिरिदि अंतोमुहुत्तेण कालेणेत्ति' दव्वाणिओगहारसुत्तादो णव्वदि जथा पल्लिवममंतोमुहुत्तेण खंडिदेयखंडमेत्ता सम्मामिच्छादिद्विणो होति चि । पुणो एदं रासिं पल्लिवमसस असंखेज्जदिभागेण गुणिदे असंखेज्जपल्लिवममेत्तो' असं-जदसम्मादिद्विरासी होदि । ण चेदं, एदेहि पल्लिवममवहिरिदि अंतोमुहुत्तेण कालेणेत्ति एदेण सुत्तेण सह विरोहा । कथं पुण आवलियाए असंखेज्जदिभागगुणारस्स सिद्धी ? उच्चवेदे- सम्मामिच्छादिद्विअद्वादो तप्याओगअसंखेज्जगुणद्व्याए संचिदो असंजदसम्मा-दिद्विरासी घेत्तव्वा, एदिस्से अद्वाए सम्मामिच्छादिद्विउक्कमणकालादो असंखेज्जगुण-उक्कमणकालखंडंभा । एत्थ संचिद-असंजदसम्मादिद्विरासीए वि आवलियाए असंखे-ज्जदिभागेण गुणिदमेत्तो होदि । अधवा दोण्हं उक्कमणकाला जदि वि सरिसा होति चि तो वि सम्मामिच्छादिद्विहिंतो असंजदसम्मादिद्वी आवलियाए संखेज्जभागगुणा । कुदो ? सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणारासीदो सम्मत्तं पडिवज्जमाणारासिस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागगुणत्तादो ।

### मिच्छादिद्वी अणंतगुणां ॥ १४ ॥

उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है— इन सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है, इस द्रव्यायुयोगद्वाराके सूत्रसे जाना जाता है कि पल्योपमको अन्तर्मुहूर्तसे खंडित करने पर एक खंडप्रमाण सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते हैं । पुनः इस राशिकी पल्योपमके असंख्यातवै भागसे गुणित करने पर असंख्यात पल्यो-पमप्रमाण असंयतसम्यग्दृष्टिप्राप्ति होती है । परंतु यह ठीक नहीं है, क्योंकि, ' इन गुण-स्थानवर्ती जीवोंकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है ' इस सूत्रके साथ पूर्वोक्त कथनका विरोध आता है ।

शंका— फिर आवलीके असंख्यातवै भागरूप गुणकारकी सिद्धि कैसे होती है ?  
समाधान—सम्यग्मिथ्यादृष्टिके कालसे उसके योग्य असंख्यातगुणित कालसे संचित असंयतसम्यग्दृष्टि राशि ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, इस कालका सम्यग्मिथ्या-दृष्टिके उपक्रमणकालसे असंख्यातगुणा उपक्रमणकाल पाया जाता है । यहां पर संचित असंयतसम्यग्दृष्टि राशि भी आवलीके असंख्यातवै भागसे गुणितमात्र है । अथवा, दोनोंके उपक्रमणकाल यद्यपि सदृश होते हैं, तो भी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्य-दृष्टि जीव आवलीके संख्यात भागगुणित हैं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाली राशिसे सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाली राशि आवलीके असंख्यातवै भागगुणित है ।

असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ १४ ॥

१ दव्वाणु ६ ( भा. ३ पृ ६३ )

२ व स्त्रयो ' पल्लिवमन्तो' इति पाठः ।

३ मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणा । स सि १, ८ प्रतिपु ' अणतगुणो' इति पाठ ।

कुत्र ? सिद्धादिद्वीणमाणंतिदादौ । को गुणगारो ? अभवमिद्विष्टि अणंतगुणो, मिद्विष्टि वि अणंतगुणो, अणंताणि मन्वजीवराणिपढमवगमूलाणि । को पडिभागो ? अमंनदम्यम्मादिद्वी पडिभागो ।

**असंजदसम्मादिद्विष्टाणे सवत्थोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ १५ ॥**  
मंजदाभंजदादिद्विष्टाणपडिमेहं असंजदसम्मादिद्विष्टाणवयणं । उवरियुच्चमाणारासि-  
नेसुं मन्वथोवयणं । तेसमम्मादिद्विष्टिपडिसेहदुवुवसमसम्मादिद्विवयणं ।

**सहयसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १६ ॥**

उपयममत्तादो सहयममत्तमड्डुहं, दंसणमोहणीयक्खएण उक्खसेण छम्मास-  
मंतरिय उक्खसेण अट्टुत्तरसदमेत्ताणं चेत्त उप्पज्जमाणत्तादो । सहयसम्मादादो उवसम-  
मत्तमहगुलं, सत्तरादिदियाणि अंतरिय एगसमएण पल्लिदेवमस्स असंखेज्जदिभाग-  
भेत्तज्जेसु तट्टुपत्तिदंयणादो । तदो सहयसम्मादिद्वीहितो उवसमसम्मादिद्वीहि असंखेज्ज-  
गुणेहि होदवमिदि ? सन्नेदं, किंतु नंचयकालमाहएण उवसमसम्मादिद्वीहितो सहय-

क्यौकि, मियादष्टि अनन्त दोते हे ।

शंता—गुणकार क्या हे ?

समाधान—अभ्यन्तिसिद्धोसे अनन्तगुणा और सिद्धोसे भी अनन्तगुणा गुणकार  
हे, जो सम्पूर्ण जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण हे ।

शंता—अनिभाग क्या हे ?

समाधान—अस्यतस्यगृष्टि राशिका प्रमाण प्रतिभाग हे ।

असंयतस्यगृष्टि गुणस्थानमें उपशमस्यगृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १५ ॥  
न्यतासंयत आदि गुणस्थानोंका नियेध करनेके लिये सूत्रमें 'अस्यतस्यगृष्टि-  
स्थान' यह रचन दिया है । जागे कही जानेवाली राशियोंकी अपेक्षा 'सन्नेस कम' यह  
रचन दिया है । शेर स्यगृष्टियोंका प्रतिनेध करनेके लिये 'उपशमस्यगृष्टि' यह रचन  
दिया है ।

असंयतस्यगृष्टि गुणस्थानमें उपशमस्यगृष्टियोंसे क्षायिकस्यगृष्टि जीव  
असंयतगुणित हैं ॥ १६ ॥

शंता—उपशमस्यगृष्ट्ये क्षायिकस्यगृष्ट्यत्त अतिदुर्लभ है, क्यौकि, दर्शन-  
मोहनीयके शयतारा उत्कृष्ट छद्म मासके अनरालसे अधिकसे अधिक एरुसो आठ  
जीवोंकी ही उत्पत्ति होती है । परंतु क्षायिकस्यगृष्ट्ये उपशमस्यगृष्ट्यत्त अतिदुर्लभ है,  
क्यौकि, मात रात दिनेके अनरालसे एक समयमें पल्योगमके असंख्यातवें भागप्रमित  
जीवोंमें उपशमस्यगृष्ट्यकी उत्पत्ति देरी जाती है । इसलिये क्षायिकस्यगृष्टियोंसे  
उपशमस्यगृष्टि असंख्यातगुणित होना चाहिए ?

समाधान—यह कृत्वा सत्य है, किंतु संचयकालके माहात्म्यसे उपशमस्य-

सम्माइद्विणो असंखेज्जगुणा जादा । तं जहा—उवसमसम्मात्तद्धा उक्कस्सिया वि अंतो-  
सुहुत्तमेत्ता चेय । सहयसम्मात्तद्धा पुण जहणिया अंतोसुहुत्तं, उक्कस्सिया दोपुव्वकोडि-  
अव्भहियतेत्तिसागरोवममेत्ता । तत्थ मच्चिमकालो दिवट्टुपल्लिदेवममेत्तो । एत्थ  
अंतोसुहुत्तमंतरिय संखेज्जोवक्कमणसमएसु घेपमाणेसु पल्लिदेवमस्स असंखेज्जदिभाग-  
भेतोवक्कमणकालो लब्भइ । एदेण कालेण संचिदजीवा वि पल्लिदेवमस्स असंखेज्जदि-  
भागमेत्ता होदूण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालेण समयं पडि उवक्कत्त-  
पल्लिदेवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजीवेण संचिदउवसमसम्मादिद्वीहितो असंखेज्जगुणा  
होति । ण सेसवियया संभवंति, ताणमसंखेज्जगुणसुत्तेण सह विरोहा ।

एत्थ चोदथो भणदि—आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तरेण सहयसम्मादिद्विण  
सोहम्मे जइ संचओ कीरिदि पवेसाणुसारिणिगमादो मणुसेस्सु असंखेज्जा सहयसम्मा-  
दिद्विणो पावंति । अह संखेज्जालियंतरेण द्विइसंचओ कीरिदि, तो संखेज्जावलियाहि  
यल्लिदेवसे संखेज्जे एयक्खंडमेत्ता सहयसम्मादिद्विणो पावंति । ण च एवं, आवलियाए  
असंखेज्जदिभागमेत्तभागहारवुवगमादो । तदो दोहि वि पयाहि दोसो चेय दुक्कदि

गृष्टियोंसे क्षायिकस्यगृष्टि असंख्यातगुणित हो जाते हैं । वह इस प्रकार है—उपशम-  
स्यगृष्ट्यत्त उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्तमात्र ही है । परन्तु क्षायिकस्यगृष्ट्यत्त जघत्य  
काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल दो पूर्वकोटिसे अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण है ।  
उसमें मध्यम काल डेढ़ पल्योगमप्रमाण है । यहां पर अन्तर्मुहूर्तकालको अन्तरित करने  
उपक्रमणके सख्यात समयोंके ग्रहण करने पर पल्योगमके असंख्यातवें भागमात्र उप-  
क्रमणकाल प्राप्त होता है । इस उपक्रमणकालके द्वारा संचित हुए जीव पल्योगमके  
असंख्यातवें भागमात्र हो करके भी आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालके  
द्वारा प्रत्येक समयमें प्राप्त होनेवाले पल्योगमके असंख्यातवें भागमात्र जीवोंसे संचित  
हुए उपशमस्यगृष्टियोंकी अपेक्षा असंख्यातगुणित होते हैं । यहां शेष विकल्प संभव  
नहीं हैं, क्यौकि, उन विकल्पोंका असंयतस्यगृष्टि गुणस्थानमें 'उपशमस्यगृष्टियोंसे  
क्षायिकस्यगृष्टि असंख्यातगुणित हैं' इस सूत्रके साथ विरोध आता है ।

शंता—यहा पर शंकाकार कहता है कि आवलीके असंख्यातवें भागमात्र  
अन्तरसे क्षायिकस्यगृष्टियोंका सौधमें स्वर्गमें यदि संचय किया जाता है तो प्रवेशके  
अनुसार निर्गम होनेसे अर्थात् आयेके अनुसार व्यय होनेसे मनुष्योंमें असंख्यात क्षायिक-  
स्यगृष्टि जीव प्राप्त होते हैं । और यदि संख्यात आवलियोंके अन्तरालसे स्थितिका  
संचय करते हैं तो संख्यात आवलियोंसे पल्योगमके लंडित करने पर एक खंडमात्र  
क्षायिकस्यगृष्टि प्राप्त होते हैं । परंतु ऐसा है नहीं, क्यौकि, आवलिके असंख्यातवें  
भागमात्र भागहार स्वीकार किया गया है । इसलिए दोनों प्रकारोंसे भी दोष ही प्राप्त  
होता है ?

त्ति ? ण एस दोसो, खइयसम्मादिद्वीणं पमाणगमणं पल्लोवमस्स संखेज्जावलियमेत्त-  
भागहारस्स जुत्तीए उवलंभादो । तं जहा- अड्डसमयब्भहियछम्मासब्भंतरे जदि संखेज्जुव-  
क्कमणसमया लब्भंति, तो दिवहुपल्लोवमब्भंतरे किं लभामो ति पमाणेण फलगुणि-  
दिच्छाए ओवड्ढिदाए उवक्कमणकालो लब्भंति । तम्मि संखेज्जजीवेहि गुणिदे संखेज्जाव-  
लियाहि ओवड्ढिपल्लोवमेत्ता खइयसम्मादिद्वीणो लब्भंति । तेण आवलियाए असंखे-  
ज्जदिभागो भागहारो ति ण धेत्तब्बो । उवक्कमणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागो संते  
एदं ण घड्ढि ति णासंक्कणज्जं, मणुसेसु खइयसम्मादिद्वीणं असंखेज्जाणमत्थित्तप्पसंगादो ।  
एवं संते सासणादीणमसंखेज्जावलियाहि भागहारेण होदब्बं ? ण एस दोसो, इड्डादो ।  
ण अणोसिमाहरियाणं वक्खणेण विरुद्धं ति एदस्स वक्खणस्स अभइत्तं, सुत्तेण सह  
अविरुद्धस्स अभइत्तविरोहादो । एदेहि पल्लोवमवहरिदि अंतोपुहुत्तेण कालोत्ति सुत्तेण  
वि ण विरोहो, तस्स उवयारणिवंधणत्तादो ।

समाधान-—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाण  
लानेके लिए पल्योपमका संख्यात आवलिमात्र भागहार युक्तिसे प्राप्त हो जाता है ।  
जैसे- आठ समय अधिक छह मासके भीतर यदि संख्यात उपक्रमणके समय प्राप्त होते  
हैं, तो डेढ़ पल्योपमके भीतर कितने समय प्राप्त होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर  
प्रमाणराशिसे फलराशिको गुणित करके और इच्छाराशिसे भाजित कर देने पर उप-  
क्रमणकाल प्राप्त होता है । उसे संख्यात जीवोंसे गुणित कर देने पर पल्योपममें संख्यात  
आवलियोंका भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव प्राप्त होते हैं ।  
इसलिए यहा आवलीका असंख्यातवां भाग भागहार है, ऐसा नहीं ग्रहण करना चाहिए ।

उपक्रमणकालका अन्तर आवलीका असंख्यातवां भाग होने पर उपर्युक्त व्याख्यान  
घटित नहीं होता है, ऐसी आशंका भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि, ऐसा मानने पर  
मनुष्योंमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके अस्तित्वका प्रसंग आता है ।

शंका-—यदि ऐसा है तो सासादनसम्यग्दृष्टि आदिके असंख्यात आवलियां  
भागहार होना चाहिए ?

समाधान-—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, वह इए ही है ।

तथा, यह व्याख्यान अन्य आचार्योंके व्याख्यानसे विरुद्ध है, इसलिये इस-  
व्याख्यानके अभद्रता ( अयुक्ति-संगतता ) भी नहीं है, क्योंकि, इस व्याख्यानका सूत्रके  
साथ विरोध नहीं है, इसलिये उसके अभद्रताके माननेमें विरोध आता है । ' इन राशि-  
योंके प्रमाणकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है ' इस द्रव्यानुयोग-  
द्वारेके सूत्रके साथ भी उक्त व्याख्यानका विरोध नहीं आता है, क्योंकि, वह सूत्र उप-  
चार-निमित्तक है ।

## वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १७ ॥

कुदो ? दंसणमोहणीयक्खएणुप्यणखइयसम्मात्तादो खओवसमियवेदगसम्मत्तस्स  
सुहु सुलहत्तुवलंभा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? ओघसोहम्म-  
असंजदसम्मादिद्विभागहारस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागपमाणत्तादो ।

## संजदांसजदट्टणे सब्वथोवा खइयसम्मादिद्वी ॥ १८ ॥

कुदो ? अणुव्वयसहिदखइयसम्मादिद्वीणमइदुल्लभत्तादो । ण च तिरिक्खेसु  
खइयसम्मत्तेण सह संजमांसजमो लब्भंति, तत्थ दंसणमोहणीयक्खवणाभावा । तं पि कुदो  
पव्वदे ? ' णियमा मणुसगदीए ' इदि सुत्तादो । जे वि पुवं वद्धतिरिक्खाउआ मणुसा  
तिरिक्खेसु खइयसम्मत्तेणुप्यज्जंति, तेसिं ण संजमांसजमो अत्थि, भोगभूमिं भोत्तूण  
अणत्थुपत्तीए असंभवादो । तेण खइयसम्मादिद्वीणो संजदांसजदा संखेज्जा चैय,

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव  
असंख्यातगुणित हैं ॥ १७ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीय कर्मके क्षयसे उत्पन्न हुए क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा  
क्षायोपराशिक वेदकसम्यक्त्वका पाना अति सुलभ है ।

शंका-—गुणकार क्या है ?

समाधान-—आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, सामान्यसे  
सौधर्मस्वर्गके असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका भागहार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण  
होता है ।

संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १८ ॥

क्योंकि, अणुव्रतसहित क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका होना अत्यन्त दुर्लभ है । तथा  
तिर्यंचोंमें क्षायिकसम्यक्त्वके साथ संयमासंयम पाया नहीं जाता है, क्योंकि, तिर्यंचोंमें  
दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणका अभाव है ।

शंका-—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान-—' दर्शनमोहनीयका क्षपण करतेवाले जीव नियमसे मनुष्यगतमें  
होते हैं ' इस सूत्रसे जाना जाता है ।

तथा जिन्होंने पहले तिर्यंचायुका वंध कर लिया है ऐसे जो भी मनुष्य क्षायिक  
सम्यक्त्वके साथ तिर्यंचोंमें उत्पन्न होते हैं उनके संयमासंयम नहीं होता है, क्योंकि,  
भोगभूमिको छोड़कर उनकी अन्यत्र उत्पत्ति असंभव है । इसलिये क्षायिकसम्यग्दृष्टि  
संयतासंयत जीव संख्यात ही होते हैं, क्योंकि, संयमासंयमके साथ क्षायिकसम्यक्त्व

१ दंसणमोहसखणपणद्वक्को कम्मभूमिजादो इ । णियमा मणुसगदीए णिड्डगो चावि सत्त्वथ ॥ १ ॥  
कसायपाहुडे, खवणहियारो, २.

अनुभवज्ञाने मोक्षेण अण्णयाभावा । अतो नैय भणिसमाणासंखेज्जरासीहिंतो योवा ।  
उवसमसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ १९ ॥

को गुणगारो ? पल्लोपमस्य अग्नयेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लोपमपढम-  
गगामूलाणि । को पडिभागो ? रह्यमसम्मादिद्धिमंजदासंजदमेत्तसेजरुपडिभागो । कुदो ?  
अग्नेयिज्जाप्रक्रियादि पल्लोपमं मंडिदे तथ एयसंडमेत्ताणुवममसम्मेत्तेण सह संजदा-  
मंजदाणमूलांसा ।

वेदगसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ २० ॥

को गुणगारो ? आपलियाए असंखेज्जदिभागो । एतो उवसमसम्मादिद्धिउक्कस्स-  
मंनयादो वेदगसम्मादिद्धिउक्कस्ससंचयस्स सांतरस्सं गुणगारो, अण्णहा पुण पल्लो-  
पमस्य असंखेज्जदिभागो गुणगारो, उनसमसम्मादिद्धिरासिस्स सांतरस्स कयाइ एग-  
जीवम्य नि उवलंभा । वेदगसम्मादिद्धिरामी पुण सब्बकालं पल्लोपमस्य असंखेज्जदि-  
भागमेत्तो नैय, णिरंतरम्म मणायव्ययस्स अण्णरूवावत्तिविरोहा ।

पर्याप्त मनुष्योंको छोड़कर दूसरी गतिमें नहीं पाया जाता है । और इसीलिये संयता-  
स्यत शायिकसम्यग्दृष्टि आगे ऊँची जानेवाली असंख्यात राशियोंसे क्रम होते हैं ।

संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत  
असंख्यातगुणित है ॥ १९ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके  
प्रसंख्यात प्रथम वर्गमूलाप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंकी  
जिनकी संख्या है तद्वत्माण सख्यातरूप प्रतिभाग है, क्योंकि, असंख्यात आचलियोंसे  
पल्लोपमके पडित करते पर उनमेंसे एक एउ मात्र उपशमसम्यक्त्वके साथ संयता-  
संयत जीव पाये जाने हैं ।

संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित  
है ॥ २० ॥

गुणकार क्या है ? आयलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है । उपशमसम्यग्दृष्टि-  
योंके उच्छेप संनयने वेदकसम्यग्दृष्टियोंके उच्छेप सात्तर संचयका यह गुणकार है ।  
अन्या पल्लोपमका असंख्यातवा भाग गुणकार होता है, क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टिराशि  
मान्य है, इसलिए तद्वद्वित एक जीवकी भी उपलब्धि होती है । परंतु वेदकसम्यग्दृष्टि-  
राशि मंत्राल पल्लोपमके असंख्यातवै भागमात्र ही रहती है, क्योंकि, जिस राशिका  
आय और व्यय समान है और जो अन्तर-रहित है, उसको अन्यरूप माननेमें विरोध  
माना है ।

१ ' मोक्षाय ' इति पाठः वेदक म १ प्रथो अस्ति, अन्यमतिशु नास्ति ।

पमत्तापमत्तसंजदट्टाणे सब्बथोवा उवसमसम्मादिद्धी ॥ २१ ॥  
कुदो ? अतोमुहुत्तद्वासंचयादो, उनसमसम्मेत्तेण सह पाएण संजमं पडिवज्जं-  
ताणमभावादो च ।

खइयसम्मादिद्धी संखेज्जगुणा ॥ २२ ॥

अतोमुहुत्तेण संचिदउवसमसम्मादिद्धीहिंतो देसणपुव्वकोडीसंचिदखइयसम्मा-  
दिद्धीणं संखेज्जगुणचं पडि विरोहाभावा । को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

वेदगसम्मादिद्धी संखेज्जगुणा ॥ २३ ॥

कुदो ? खइयादो खओवसमियस्स समत्तस्स पाएण संभवा । को गुणगारो ?  
संखेज्जा समया ।

एवं तिसु वि अद्वासु ॥ २४ ॥

जथा पमत्तापमत्तसंजदणं सम्मत्तप्पावहुअं परुविदं, तथा तिसु उवसागद्वासु  
परुवेदव्वं । तं जहा- सब्बथोवा उवसमसम्मादिद्धी । खइयसम्मादिद्धी संखेज्जगुणा ।

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम  
हैं ॥ २१ ॥

क्योंकि, एक तो उपशमसम्यग्दृष्टियोंके संचयका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है, और  
दूसरे उपशमसम्यक्त्वके साथ बहुलतासे संयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंका अभाव है ।

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२ ॥

अन्तर्मुहूर्तसे संचित होनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा कुछ कम पूर्वकोटि  
कालसे संचित होनेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके संख्यातगुणित होनेमें कोई विरोध नहीं  
है । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि  
जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३ ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा क्षायोपशमितसम्यक्त्वका होना श्रयिक-  
तासे सम्भव है । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी  
अल्पबहुत्व है ॥ २४ ॥

जिस प्रकार प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंके सम्यक्त्वका अल्पबहुत्व कहा  
है, उसी प्रकार आदिके तीन उपशामक गुणस्थानोंमें भी प्ररूपण करना चाहिए । यह इस  
प्रकार है- तीनों उपशामक गुणस्थानोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं । उनसे

कारणं, दन्वाहियत्तादो । वेदगसम्मादिद्वी गत्थि, तेण सह उवससेडीआरोहणाभावा । उवसंत-रसाएसु सम्मत्तप्पावहुगं किण्ण परूविदं ? ण एस दोसो, तिसु अद्वासु सम्मत्त-प्पावहुणे अवगदे तत्थ वि तद्वगमादो । सुहं गहणद्धं चटुसु उवसमाएसु त्ति' किण्ण परूविदं ? ण, 'एगजोगिण्हिङ्गाणमेगेदेसो णाणुवट्टदि' त्ति णायदो उवरे चटुहमणुउत्ति-प्पसंगां । होटु चे ण, पडिजोगीणं चटुण्हसुवसामगाणमभावा ।

### संवत्थोवा उवसमा ॥ २५ ॥

कुदो ? थोवायुपदेसादो संकलित्तसचयस्स' वि थोवत्तस्स णायसिद्धत्तादो ।

क्षायिकसस्यग्दष्टि जीव संख्यातगुणित है, क्योंकि, क्षायिकसस्यग्दष्टियोंका यहां द्रव्यप्रमाण अधिक पाया जाता है । उपशमश्रेणीमें वेदकसस्यग्दष्टि जीव नहीं पाये जाते हैं, क्योंकि, वेदकसस्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीके आरोहणका अभाव है ।

शंका—उपशान्तकपाय गुणस्थानवर्ती जीवोंमें सम्यक्त्वका अल्पवहुत्व क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, तीनों उपशामक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वका अल्पवहुत्व ज्ञात हो जाने पर उपशान्तकपाय गुणस्थानमें भी उसका ज्ञान हो जाता है ।

शंका—सुख अर्थात् सुगमतापूर्वक ज्ञान होनेके लिए 'चारों उपशामक गुणस्थानोंमें' ऐसा सूत्रमें क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'जिनका निर्देश एक समासके द्वारा किया जाता है उनके एक देशकी अनुवृत्ति नहीं होती है' इस न्यायके अनुसार आगे कहे जानेवाले सूत्रोंमें चारों गुणस्थानोंकी अनुवृत्तिका प्रसंग प्राप्त होगा ।

शंका—यदि आगे चारों उपशामकोंकी अनुवृत्तिका प्रसंग आता है, तो आने दो, क्या दोष है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, चारों उपशामकोंके प्रतियोगियोंका अभाव है । अर्थात् जिस प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंके भीतर उपशामक और उनके प्रतियोगी क्षपक पाये जाते हैं, उसी प्रकार चौथे उपशामक अर्थात् ग्यारहवें गुणस्थानमें उपशामकोंके प्रतियोगी क्षपक नहीं पाये जाते हैं ।

अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २५ ॥  
क्योंकि, अल्प आयका उपदेश होनेसे सचित होनेवाली राशिके स्तोत्रकपना अर्थात् कम होना न्यायसिद्ध है ।

१ प्रतिपु ' उवसामए सुहे ' इति पाठः ।

२ प्रतिपु ' -मणउत्तिप्पसगा ' इति पाठः ।

३ प्रतिपु ' थोवए पदमादो ' इति पाठः ।

४ प्रतिपु ' मणलित्तसचयस्स ' इति पाठः ।

### खवा संखेज्जगुणा ॥ २६ ॥

कुदो ? संखेज्जगुणायादो संचउवलंभा । उवसस-खवगणमेदमप्पावहुगं पुवं परूविदिमिदि एत्थ ण परूविदवं ? ण, पुवसुवसामग-खवगपेसगाणमप्पावहुगकथणादो । तदो चेव संचयप्पावहुगसिद्धीए होदीदि चे सच्चं होदि, उचोदो । उचित्तादे अणि-उणसत्ताणुगहंमेदमप्पावहुअं पुणो वि परूविदं । खवगसेडीए सम्मत्तप्पावहुअं किण्ण परूविदं ? ण, तेसि खइयसम्मत्तं मोत्तूण अण्णसम्मत्ताभावा । तं कुदो णव्वदे ? खवगेसु उवसस-वेदगसम्मादिडिद्ववादिपरूवयसुत्ताणुवलंभा । उवसमा खवा त्ति सद्दा उवसस-सम्मत्त-खइयसम्मत्ताणं वाचया ण होति त्ति भणंताणमभिप्पाएण खइयसम्मत्तस्स अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती उपशामकोंसे तीनों गुणस्थानवर्ती क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २६ ॥

क्योंकि, संख्यातगुणित आयसे क्षपकोंका संचय पाया जाता है ।

शंका—उपशामक और क्षपकोंका यह अल्पवहुत्व पहले कह आये हैं, इसलिये यहां नहीं कहना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पहले उपशामक और क्षपक जीवोंके प्रवेशकी अपेक्षा अल्पवहुत्व कहा है ।

शंका—उसीसे संचयके अल्पवहुत्वकी सिद्धि हो जायगी ( फिर उसे पृथक् क्यों कहा ) ?

समाधान—यह सत्य है कि युक्तिसे अल्पवहुत्वकी सिद्धि हो सकती है । किन्तु जो शिष्य युक्तिवादमें निपुण नहीं हैं, उनके अनुग्रहके लिये यह अल्पवहुत्व पुनः भी कहा है ।

शंका—क्षपकश्रेणीमें सम्यक्त्वका अल्पवहुत्व क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, क्षपकश्रेणीवालोंके क्षायिकसस्यक्त्वको छोड़कर अन्य सम्यक्त्व नहीं पाया जाता है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि, क्षपकश्रेणीवाले जीवोंमें उपशमसस्यग्दष्टि और वेदक-सस्यग्दष्टि जीवोंके द्रव्य अर्थात् संख्या और आदि पदसे क्षेत्र, स्पर्शन आदिके प्ररूपक सूत्र नहीं पाये जाते हैं । उपशामक और क्षपक, ये दोनों शब्द क्रमशः उपशमसस्यक्त्व और क्षायिकसस्यक्त्वके वाचक नहीं हैं, ऐसा कथन करनेवाले आचार्योंके अभिप्रायसे

१ प्रतिपु ' अणिकणसत्ताणुगहं- ' इति पाठः ।

न्यायन्यायनि, पुत्रमपहृदिदत्तगुणसामगमंचयस्म अप्पावहुवपल्लव्याणि वा दो  
ति मुत्ताणि ति घेत्तवं ।

५१ औपपत्त्या समवा ।

**आदेसेण गदियाणुवादेण गिरयगदीए णेरइएसु सव्वथोवा  
सासणसम्मादिद्धी ॥ २७ ॥**

जादेयसयणं ओचपडिसेहकलं । सेसमगणादिपडिसेहकं गदियाणुवादेवयणं ।  
मेसगदिपडिसेहकण्हो गिरयगदिणिदिमो । सेमगुणह्वाणपडिसेहकण्हो सासणणिदिमो । उवरि  
उत्तमाणाणुणह्वाणद्वेहेतितो सामणा दव्वपमाणेण थोवा अप्पा इदि उत्तं हेदि ।

**सम्मामिच्छादिद्धी संखेज्जगुणां ॥ २८ ॥**

कुदो ? सासणुत्तमणकालादो सम्मामिच्छादिद्विउवक्कमणकालस्स संखेज्ज-  
गुणस्स उलंभा । को गुणगारो ? संखेज्जसमया । हेट्टिमरासिणा उवरिमरासिन्हि भागे

ये गेलों मूर श्रायिकसम्यक्त्वके अरुपवहुत्वके प्ररूपक हैं, तथा पहले नहीं प्ररूपण किये  
गये शपक और उगशागरुमन्न्धी संचयके अल्पगुत्वके प्ररूपक है, ऐसा अर्थ ग्रहण  
करना चाहिए ।

इस प्रकार औद्यप्ररूपणा समाप्त हुई ।

ओदयती अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें सासादन-  
मय्यग्दृष्टि जी मवने कम है ॥ २७ ॥

सूत्रमें 'ओदेश' यह वचन ओद्यका प्रतिषेध कल्पनेके लिए है । शेष मार्गणा  
श्रायिक प्रतिषेध करनेके लिए 'गतिमार्गणाके अनुवादसे' यह वचन कहा है । शेष  
गतियोंके प्रतिषेधके लिए 'नरकगति' इस पदका निर्देश किया । शेष गुणस्थानोंके  
मतिषेधार्थ 'सासादन' इस पदका निर्देश किया । ऊपर कहे जानेवाले शेष गुणस्थानोंके  
द्रव्यप्रमाणोंकी अपेक्षा सामादनसम्यग्दृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणसे स्तोक अर्थात् अल्प होते  
हैं, यह अर्थ कहा गया है ।

नारकियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मित्यथादृष्टि जीव संख्यातगुणित  
है ॥ २८ ॥

क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टियोंके उपक्रमणकालसे सम्यग्मित्यथादृष्टियोंका उप-  
क्रमणका उच्चतमगुणा पाया जाता है । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।  
अथस्तनराशिका उपरिमराशियोंमें भाग देने पर गुणकारका प्रमाण आता है । अथस्तन-

१ स्थितेण सामादनेन नारकणो मत्तं पृथिवीसु सर्वतः स्तोत्राः सामादनसम्यग्दृश्य । स. सि. १, ८.

२ सम्यग्मित्यथादृश्य मल्लेयगुणाः । स. सि. १, ८.

हिदे गुणगारो आगच्छदि । को हेट्टिमरासी ? जो थोवो । जो गुण बहु सो उवरिमरासी ।  
एदमत्थपदं जहावसरं सव्वत्थ वत्तवं ।

**असंजदसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणां ॥ २९ ॥**

कुदो ? सम्मामिच्छादिद्विउवक्कमणकालादो असंजदसम्मादिद्विउवक्कमणकालस्स  
असंखेज्जगुणस्स संभवुवलंभा, सम्मामिच्छं पडिधज्जमाणजीवेहितो सम्मचं पडिधज्ज-  
माणजीवाणमसंखेज्जगुणत्तादो वा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । हेट्टिम-  
रासिणा उवरिमरासिमोवद्विय गुणगारो साहेयव्वो ।

**मिच्छादिद्धी असंखेज्जगुणां ॥ ३० ॥**

को गुणगारो ? असंखेज्जाओ सेडीओ पदरस्स असंखेज्जदिभागो । तारिं सेठीणं  
विव्खंभस्सची अंगुलस्म असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि अंगुलवग्गमूलाणि निदियवग्ग-  
मूलस्स असंखेज्जभागमेत्ताणि । तं जथा - असंजदसम्मादिद्धीहि सूचिअंगुलविदियवग्गमूलं  
गुणेदूण तेण सूचिअंगुले भागे हिदे लद्धमंगुलस्स असंखेज्जदिभागो । असंखेज्जाणि अंगुल-  
वग्गमूलाणि गुणगारिविक्खंभस्सची होदि चि कथं गव्वदे ? उच्चदे - असंजदसम्मादिद्धीहि  
राशि कौनसी है ? जो अरुप होती है, वह अथस्तनराशि है, और जो वरुत होती है, वह  
उपरिमराशि है । यह अर्थपद यथावसर सर्वत्र कहना चाहिए ।

नारकियोंमें सम्यग्मित्यथादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥२९॥  
क्योंकि, सम्यग्मित्यथादृष्टियोंके उपक्रमणकालसे असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपक्रमण-  
काल असंख्यातगुणा पाया जाता है । अथवा, सम्यग्मित्यथात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंसे  
सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित होते हैं । गुणकार क्या है ?  
आवलीता असंख्यातवां भाग गुणकार है । अथस्तनराशिसे उपरिमराशिको अपवर्तित  
करके गुणकार सिद्ध कर लेना चाहिए ।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥३०॥  
गुणकार क्या है ? असंख्यात जगश्रेणियां गुणकार है, जो जगश्रेणियां जगत्रतरेके  
असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । उन जगश्रेणियोंकी विष्कंभस्सुची अंगुलके असंख्यातवें भाग-  
प्रमाण है । जिसका प्रमाण अंगुलके द्वितीय वर्गमूलके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात  
प्रथम वर्गमूल है, वह इस प्रकार है - असंयतसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाणसे सूच्यंगुलके द्वितीय  
वर्गमूलको गुणित करके जो लब्ध आवे, उससे सूच्यंगुलमें भाग देने पर अंगुलका  
असंख्यातवां भाग लब्ध आता है ।

शुक्रा—अंगुलके असंख्यात वर्गमूल गुणकार विष्कंभस्सुची है, यह कैसे जाना  
आता है ?

समाधान—असंयतसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाणसे सूच्यंगुलके द्वितीय वर्गमूलके

१ अक्षयतमसम्यग्दृष्टयोऽवस्येयगुणा । स. सि. १, ८. २ मिथ्यादृष्टयोऽवस्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

द्विअंगुलविदियवगमूले भागे हिदे लद्धमि जत्तियाणि रूवाणि तत्तियाणि अंगुलपदम-  
वगमूलाणि । कुदो ? दव्वविक्खंभस्सची घणंगुलविदियवगमूलेत्ता, असंजदसम्मा-  
दिद्धीहि तम्मि घणंगुलविदियवगमूले ओवद्धिदे असंखेज्जाणि सूचिअंगुलपदमवग-  
मूलाणि होति त्ति तंत-ञ्चत्तिसिद्धीदो । तत्थ जेत्तियाणि रूवाणि तेत्तियमेत्ता सेडीओ  
गुणगारो होदि ।

**असंजदसम्माइट्टिदुणे सव्वथोवा उवसमसम्मादिद्धी ॥ ३१ ॥**

कुदो ? अंतोपुहुत्तमेत्तुवसमसम्मतद्दाए उवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जिदि-  
भागेण संचिदत्तादो उच्चमाणसव्वसम्मादिद्धिरासीहितो उवसमसम्मादिद्धी थोवा होति ।

**खइयसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ ३२ ॥**

कुदो ? सहावदो चैव उवसमसम्मादिद्धीहितो असंखेज्जगुणसरूवेण खइयसम्मा-  
इद्धीमणाइणिहणमवद्धानादो, संखेज्जपल्लिदोवमभंत्तरे पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभाग-  
भेतुवक्कमणकालेण संचिदत्तादो असंखेज्जगुणा त्ति बुत्तं होदि । एत्थत्तणखइयसम्मा-  
दिद्धीणं भागहारो असंखेज्जावलियाओ । कुदो ? ओघांसंजदसम्मादिद्धीहितो असंखेज्ज-

भाजित करने पर लब्धमें जितना प्रमाण आवे, उतने सूत्र्यंगुलके प्रथम वर्गमूल गुणकार-  
विक्रमसूत्रमें होते हैं, क्योंकि, द्रव्यविक्रमसूत्री घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलमात्र है ।  
इसलिए असंयतसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाणसे उस घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलके अपवर्तित  
कर देनेपर सूत्र्यंगुलके असंब्यात प्रथम वर्गमूल होते हैं, यह प्रकार आगम और युक्तिसे  
सिद्ध है । अतएव वहांपर जितनी संख्या हो तन्मात्र जगश्रेणियां यहांपर गुणकार है ।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥३१॥

क्योंकि, अन्तर्मुहूर्तमात्र उपशमसम्यक्त्वके कालमें आवलीके असंब्यातवै भाग-  
प्रमाण उपक्रमणकाल द्वारा संचित होनेके कारण आगे कहे जानेवाले सर्व प्रकारके  
सम्यग्दृष्टियोंकी राशियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव थोड़े होते हैं ।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि  
असंब्यातगुणित हैं ॥ ३२ ॥

क्योंकि, स्वभावसे ही उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका  
असंब्यातगुणितरूपसे अनादिनिधन अवस्थान है, जिसका तात्पर्य यह है कि संब्यात  
पल्योपमके भीतर पल्योपमके असंब्यातवै भागमात्र उपक्रमणकाल द्वारा संचित होनेसे  
क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे असंब्यातगुणित हैं । यहा नारकियोंमें जो  
क्षायिकसम्यग्दृष्टि है उनके प्रमाणके लानेके लिए भागहारका प्रमाण असंब्यात आवलियों  
हैं, क्योंकि, ओघ असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे असंब्यातगुणित हीन ओघ क्षायिकसम्यग्दृष्टि

गुणहीणओघखइयसम्मादिद्धीणं असंखेज्जदिभागमेत्तादो । ण वासपुधचंतरसुत्तेण सह  
विरोहो, सोहम्मसीसाणकणं मोत्तूण अणत्थ द्दिदखइयसम्मादिद्धीणं वासपुधत्तस्स विउल्ल-  
वाइणो गहणादो । तं तथा धेप्पदि त्ति कुदो णव्वदे ? ओघुयसमसम्मादिद्धीहितो  
ओघखइयसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा त्ति अप्पावहुअसुत्तादो ।

**वेद्गसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ ३३ ॥**

कुदो ? खइयसम्मात्तादो खओवसामियस्स वेद्गसम्मतस्स सुलहत्तुवलंभा । को  
गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कधमेदं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदु-  
वदसादो ।

**एवं पदमाए पुठवीए गेरइया ॥ ३४ ॥**

जहा सामणणेरइयाणमप्पावहुअं परूविदं, तथा पढमपुठवीणेरइयाणमप्पावहुअं परू-  
वेदव्वं, ओघणेरइयअप्पावहुआलावादो पढमपुठवीणेरइयाणमप्पावहुआलावस्स भेदाभावा ।

जीव असंब्यातवै भाग ही होते हैं । इस कथनका वर्षपृथक्त्व अन्तर वतानेवाले सूत्रके  
साथ विरोध भी नहीं आता है, क्योंकि, सौधर्म और ऐशानकल्पको छोड़कर अन्यत्र  
स्थित क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके अन्तरमें कहे गये वर्षपृथक्त्वके 'पृथक्त्व' शब्दको वैपुल्य-  
वाची ग्रहण किया गया है ।

शंका—यहां पर पृथक्त्वका अर्थ वैपुल्यवाची ग्रहण किया गया है, यह कैसे  
जाना जाता है ?

समाधान—'ओघ उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे ओघ क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असं-  
ख्यातगुणित हैं,' इस अल्पबहुत्वके प्रतिपादक सूत्रसे जाना जाता है ।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि  
असंब्यातगुणित हैं ॥ ३३ ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा क्षायोपशमिक वेदकसम्यक्त्वकी प्राप्ति  
सुलभ है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंब्यातवै भाग गुणकार है ।  
शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्य परंपरासे आये हुए उपदेशके द्वारा जाना जाता है ।  
इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकियोंका अल्पबहुत्व है ॥ ३४ ॥

जिस प्रकार सामान्य नारकियोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार पहली पृथि-  
विके नारकियोंका अल्पबहुत्व कहना चाहिए, क्योंकि, सामान्य नारकियोंके अल्पबहुत्वके  
कथनसे पहली पृथिवीके नारकियोंके अल्पबहुत्वके कथनमें कोई भेद नहीं है । किन्तु

१ पुठुवसदो बहुववाई । क. प वृणि

पञ्चाद्विगुणः अलभिज्जमाणे अत्थि निमेसो, सो जाणिय वत्तव्वो ।

**विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु सव्वथोवा सासण-  
सम्मादिट्ठी ॥ ३५ ॥**

विदियादिट्ठहं पुढवीणं सामणमम्मादिट्ठिणो बुद्धीए पुथ पुथ इविय सव्वथोवा  
त्ति उचं । इट्ठो ? छद्दमप्यवद्दुणाणमेयचचिरोहादो । सव्वेहितो योवा सव्वथोवा ।  
आदि-अंतपु णेरइएसु णिदिट्ठेसु सेसमब्धिअणेरइया सव्वे णिदिट्ठा चेष, जावसद्दुच्चार-  
णणमाथमर्त्तदो । जामनेण सत्तमपुढवीणेरइयाणं मज्जादत्ताए ठविदाए, विदियपुढवी-  
णेरइयाणमाटित्तममादिदं । आदी अंता च मज्जेण पिणा ण होति त्ति चट्ठहं पुढवी-  
णेरइयाणं मज्जिमचं पि जामनेणप पक्खिदं । तदो पुथ पुथ पुढवीणसुच्चारणा ण कदा ।

**सम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३६ ॥**

निदियपुढवीआदिसत्तमपुढवीपज्जंतसासणणसुवुरि पुथ पुथ छुढवीसम्माभिच्छा-  
दिट्ठिणो संखेज्जगुणा, मासणसम्मादिट्ठिउवक्कमणकालादो सम्माभिच्छादिट्ठिउवक्कमण-  
पयापयिअत्तयका अयलअन्न करने पर कुछ विशेषता है, सो जानकर कहना चाहिए ।  
(येसो भाग ३, पृ. १६२ इत्यादि ।)

नारक्तियोंमें दूसरीमे लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे  
क्रम है ॥ ३५ ॥

दूसरीको आगे लेकर ऊहों पृथिवियोंके सासादनसम्यग्दृष्टियोंको बुद्धिके द्वारा  
पृथक् पृथक् स्थापित करने प्रत्येक सबसे कम हैं, ऐसा अर्थ कहा गया है, क्योंकि, छहों  
अणुसूक्ष्मोंको एक माननेमें विरोध आता है । सबसे थोड़ोंको सर्वस्तोक कहते हैं ।  
आदिम और अन्तिम नारक्तियोंके निर्देश कर देने पर शेष मध्यम सभी नारक्तियोंका  
निर्देश ही जाता है, अन्यथा यावत् शब्दका उच्चारण नहीं बन सकता है । यावत्  
शब्दके द्वारा सातवीं पृथिवीके नारक्तियोंके मर्यादारूपसे स्थापित किये जानेपर  
दूसरी पृथिवीके नारक्तियोंके आविपना अपने आप आ जाता है । आदि और अन्त मध्यके  
पिना नहीं होते हैं, इसलिए चार पृथिवियोंके नारक्तियोंके मध्यमपना भी यावत् शब्दके  
द्वारा ही प्रकृषित कर दिया गया । इसी कारण पृथक् पृथक् रूपसे पृथिवियोंका नाम-  
निर्देशपूर्णक उच्चारण नहीं किया गया है ।

नारक्तियोंमें दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्य-  
ग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६ ॥

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंके ऊपर पृथक्  
पृथक् छह पृथिवियोंके सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, सासादन-  
सम्यग्दृष्टियोंके उपक्रमणकालसे सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उपक्रमणकाल युक्तिसे संख्यात-

१ आ स्वयोः 'वेसया' इति पाठः ।

२ प्रतिपु 'वविदा' इति पाठ ।

कालस्स बुचीए संखेज्जगुणसुवलंभा । को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

**असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३७ ॥**

कुदो ? छ'पुढविसम्माभिच्छादिट्ठिउवक्कमणकालेहितो छ'पुढविअयंजदसम्मा-  
दिट्ठिउवक्कमणकालाणमसंखेज्जगुणत्तदंसापादो, एरासमएण सम्माभिच्छ'चमुवक्कमंतजीविहितो  
एरासमएण वेदयसम्मचमुवक्कमंतजीवाणमसंखेज्जगुणत्तादो वा । को गुणगारो ? आग-  
लियाए असंखेज्जदिभागो । कधमेदं णव्वेदे ? ' एदेहि पल्लिदोवममवहिरिदि अंतोसुहुत्तेण  
कालेणेत्ति' सुत्तादो । असंखेज्जावलियाहि अंतोसुहुत्तचं किण्ण विरुज्जदि त्ति उत्ते ण,  
ओवअसंजदसम्मादिट्ठिअवहारकालं मोत्तूण सेसगुणपडिवणणमवहारकालस्स कज्जे  
कारणोवयाणेण अंतोसुहुत्तिसिद्धीदो ।

**भिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३८ ॥**

छहं पुढवीणमसंजदसम्मादिट्ठीहितो सेडीवारस्स-दसम-अट्टम-छट्ठ-तइय-विदियवग्ग-  
गुणा पाया जाता है । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

नारक्तियोंमें दूसरीसे सातवीं पृथिवी तक सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि  
जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३७ ॥

क्योंकि, छह पृथिवियोंसम्बन्धी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके उपक्रमणकालोंसे छह  
पृथिवीगत असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपक्रमणकाल असंख्यातगुणा देखा जाता है । अथवा,  
एक समयके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा एक समयके  
द्वारा वेदकसम्यग्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित होते हैं । गुणकार क्या है ?  
आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—' इन जीवराशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता  
है, ' इस द्रव्ययुयोगद्वारेके सूत्रसे जाना जाता है ।

शंका—अन्तर्मुहूर्तका अर्थ असंख्यात आवलियां लेनेसे उसका अन्तर्मुहूर्तपना  
विरोधको क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ओघअसंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके अवहारकालको छोड़-  
कर शेष गुणस्थान-प्रतिपन्न जीवोंके अवहारकालका कार्यमें कारणका उपचार कर लेनेसे  
अन्तर्मुहूर्तपना सिद्ध हो जाता है ।

नारक्तियोंमें दूसरीसे सातवीं पृथिवी तक असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि  
जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३८ ॥

द्वितीयादि छहों पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे जगत्रेणिके बारहवें, दसवें,



मूलेषु द्विसेडीमे च छपुदुविमिच्छादिद्विणो असंखेज्जगुणा हन्ति । को गुणगारो ? सेडीए असंखेज्जजिणो, असंखेज्जजिणो सेडीपढमवगणमूलाणि । को पडिभागो ? असंखेज्जजिणो सेडीवारसम-दसम-अडुम-छट्ट-तदिय-विदियवगणमूलाणि । कुदो ? असंजदसम्मादिद्विरासिणा गुणिदत्तादो ।

**असंजदसम्मादिद्विद्वाने सन्वत्थोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ ३९ ॥**

सन्वेहि उच्चमाणद्वानेहिनो त्थोवा त्ति सन्वत्थोवा । कुदो ? आबलियाए असंखेज्जिभागमेत्तउवक्कमणकालेण संचिदत्तादो ।

**वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ४० ॥**

एत्थ पुवं व तीहि पयरोहि सेवियसरूहेहि गुणयारो परूवेदव्वो । एत्थ खइयसम्मादिद्विणो ण परूविदा, हेड्डिमछपुढवीसु तेसिसुववादाभावा, मणुसगइं सुच्चा अणत्थ दंसणमोहणीयखवणाभावादो च ।

आठवें, छठवें, तीसरे और दूसरे वर्गमूलसे भाजित जगश्रेणीप्रमाण छह पृथिवियोंके भिन्न्यादृष्टि नारकी असंख्यातगुणित होते हैं । गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? जगश्रेणीके वारहवें, दशवें, आठवें, छठवें, तीसरे और दूसरे असंख्यात वर्गमूलप्रमाण प्रतिभाग है, क्योंकि, ये सब असंयतसम्यग्दृष्टिप्राप्तिसे गुणित हैं ।

नारकियोंमें द्वितीयादि छह पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशम-सम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ३९ ॥

आगे कहे जानेवाले स्थानोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि थोड़े होते हैं, इसलिये वे सर्व-स्तोक कहलाते हैं, क्योंकि, आवलीके असंख्यातवे भागमात्र उपक्रमणकालसे उनका संचय होता है ।

नारकियोंमें द्वितीयादि छह पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशम-सम्यग्दृष्टियोंसे वेदप्रसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४० ॥

यहां पर पहलेके समान सेविकस्वरूप अर्थात् मापके विशेष भेदस्वरूप तीनों प्रकारोंसे गुणकारका प्ररूपण करना चाहिए (देखो पृ २४९) । यहाँ क्षयिकसम्यग्दृष्टियोंका प्ररूपण नहीं किया है, क्योंकि, नीचेकी छह पृथिवियोंमें क्षयिकसम्यग्दृष्टियोंकी उत्पत्ति नहीं होती है, और मनुष्यगतिको छोड़कर अन्य गतियोंसे दर्शनमोहनीयकी क्षयणा नहीं होती है ।

**तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियपज्जत्त-तिरिक्ख-पंचिदियजोणिणीसु सन्वत्थोवा संजदासंजदा ॥ ४१ ॥**

पयदचउव्विहतिरिक्खेसु जे देसव्वइणो ते तेसिं चेव सेसगुणद्वानजविहितो थोवा त्ति चटुण्हमप्पावहुआणं मूलपदमेदेण परूविदं । किमइं देसव्वइणो थोवा ? संजया-संजयुवलभस्स सुटुल्लहत्तादो ।

**सासणसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ४२ ॥**

चउव्विहतिरिक्खाणं जे सासणमम्मादिद्विणो ते सग-सगसंजदासंजदेहितो असंखेज्जगुणा, संजमासंजमुवलंभादो सासणगुणलभस्स सुल्लहत्तुवलंभा । को गुणगारो ? आबलियाए असंखेज्जदिभागो । तं कथं णव्वेदं ? अंतोसुहुत्तमुत्तादो, आहरियपरंपरा-गटुवेदादो वा ।

**सम्माभिच्छादिद्विणो संखेज्जगुणा ॥ ४३ ॥**

तिर्यचगत्तिमे तिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रियपर्याप्त और पंचेन्द्रिययोनिमती तिर्यच जीवोंमें संयतासंयत सबसे कम हैं ॥ ४१ ॥

प्रकृत चारों प्रकारोंके तिर्यचोंमें जो तिर्यच देशव्रती है, वे अपने ही रूप गुण-स्थानवर्ती जीवोंसे थोड़े हैं, इस प्रकार इससे चारों प्रकारके तिर्यचोंके अल्पवहुत्वका मूलपद प्ररूपण किया गया है ।

शंका—देशव्रती अल्प क्यों होते हैं ?

समाधान—क्योंकि, संयमासंयमकी प्राप्ति अतिदुर्लभ है ।

उक्त चारों प्रकारके तिर्यचोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात-गुणित हैं ॥ ४२ ॥

चारों प्रकारके तिर्यचोंमें जो सासादनसम्यग्दृष्टि जीव है, वे अपने अपने संयता-संयतोंसे असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, संयमासंयम-प्राप्तिकी अपेक्षा सासादन गुण-स्थानकी प्राप्ति सुलभ है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—अन्तर्मुहूर्त अवहारकालके प्रतिपादक सूत्रसे और आचार्य परम्परसे आये हुए उपदेशसे यह जाना जाता है ।

उक्त चारों प्रकारके तिर्यचोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ४३ ॥

चउन्निस्त्रिस्त्रिसप्तसप्तमणसम्मादिद्विहितो मग-सगसम्माभिच्छादिद्विणो संखेज्ज-  
गुणा । इदो ? माम्पुत्तमणकालादो मम्मामिच्छादिद्विणमुक्कमणकालस्स तंत-उत्तीए  
मंज्जगुणुत्तंभा । को गुणगारो ? मसंखेज्जममया ।

**असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ४४ ॥**

चउन्निस्त्रिस्त्रिसप्तसप्तमणसम्मादिद्विहितो तेमिं चेव असंजदसम्मादिद्विणो अरसंखेज्ज-  
गुणा । इदो ? मम्मामिच्छादिद्विणमुक्कमणकालस्स तंत-उत्तीए मसंखेज्जगुण-  
गारो । को गुणगारो ? आमलियाए अमसंखेज्जदिभागो । तं कुदो णवन्दे ? 'पल्लिदोवमम-  
नहिग्दि उंनोपुत्तुत्तं' मुत्तादो, आहरियपरंपरागदुत्तदेमादो वा ।

**मिच्छादिद्वी अणंतगुणा, मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ४५ ॥**

चउत्तं मिस्त्रिसप्तसप्तमणसंजदसम्मादिद्विहितो तेसिं चेव मिच्छादिद्वी अणंतगुणा  
अणंतगुणा य । त्रिपडिसिद्धमिदं । जदि अणंतगुणा, कथमसंखेज्जगुणत्तं ? अह

चारो प्रकारके मासादनसस्यग्दष्टि तिर्यचोत्से अपने अपने सस्यग्मिथ्यादष्टि  
तिर्यच सस्यत्तगुणित है, क्योंकि, मासादनसस्यग्दष्टियोंके उपक्रमणकालसे सस्यग्मिथ्या-  
दष्टियोंका उपक्रमणकाल आगम और शुकितसे संख्यातगुणा पाया जाता है । गुणकार  
क्या है ? सस्यत्त नसय गुणकार है ।

उक्त चारों प्रकारके तिर्यचोत्से मस्यग्मिथ्यादष्टियोंसे असंयतसस्यग्दष्टि जीव  
असंख्यातगुणित है ॥ ४४ ॥

चारों प्रकारके सस्यग्मिथ्यादष्टि तिर्यचोत्से उनके ही असंयतसस्यग्दष्टि जीव  
असंख्यातगुणित है, क्योंकि, सस्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होतेवाले जीवोंसे सस्यस्त्वको प्राप्त  
होनेवाले जीव असंख्यातगुणित होते हैं । गुणकार क्या है ? आचलिका असंख्यातवां  
भाग गुणकार है ।

गंक्षा—यत्त कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'इत्त जीवराशियोंके प्रमाणद्वारा अन्तर्मुहूर्त कालसे पल्योपम अपदृत  
होता है' इस उच्यारणद्वाराके सुत्रसे और आचार्य परम्परासे आये हुए उपदेशसे  
जाना जाना है ।

उक्त चारों प्रकारके तिर्यचोत्से असंयतसस्यग्दष्टियोंसे मिथ्यादष्टि जीव अनन्त-  
गुणित हैं, और मिथ्यादष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४५ ॥

चारों प्रकारके असंयतसस्यग्दष्टि तिर्यचोत्से उनके ही मिथ्यादष्टि तिर्यच अनन्त-  
गुणित हैं और असंख्यातगुणित भी हैं ।

शंका—यह बात तो विप्रतिपन्न अर्थात् परस्पर विरोधी है । यदि अनन्त-  
गुणित हैं, तो वहां असंख्यातगुणत्व नहीं बन सकता है, और यदि असंख्यातगुणित हैं, तो

असंखेज्जगुणा, कथयणंतगुणत्तं; दोण्हमकमेण एयत्थ पउत्तिविरोहा ? एत्थ परिहारो  
उच्चंदे—'जहा उदेसो तथा णिदेसो' चि पायादो 'तिरिस्समिच्छादिद्वी केणडिया,  
अणंता, सेसतिरिस्सतियमिच्छादिद्वी असंखेज्जा' इदि सुत्तादो वा एवं संबंधो कीरदे-  
तिरिस्समिच्छादिद्वी अणंतगुणा, सेसतिरिस्सतियमिच्छादिद्वी अमंखेज्जगुणा चि, अण्णहा  
दोण्हमुच्चारणाए विहलत्तपसंगा । को गुणगारो ? तिरिस्समिच्छादिद्वीणमभवसिद्धिएहि  
अणंतगुणो, सिद्धेहि त्रि अणंतगुणो, अणंतगुणि सवन्जीवरासिपदमग्गमूलगणि गुणगारो ।  
को पडिभागो ? तिरिस्सअसजदसम्मादिद्विरासी पडिभागो । मेसतिरिस्सतियमिच्छा-  
दिद्वीणं गुणगारो पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ असंरोज्जसेडीपदमवग्ग-  
मूलमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, पल्लिदोवमस्सासखेज्जदि-  
भागमेत्तपदंगुलाणि वा पडिभागो । अधवा सग-सगउत्तगणमसंखेज्जदिभागो  
(गुणगारो) । को पडिभागो ? सग-सगअसंजदसम्मादिद्वी पडिभागो ।

**असंजदसम्मादिद्विणो सवत्थोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ ४६ ॥**

अनन्तगुणत्व कैसे बन सकता है, क्योंकि, दोनोंकी एक साथ एक अर्थमें प्रयुक्ति होनेका  
विरोध है ?

समाधान—इस शंकाका परिहार करते हैं—'उद्देशके अनुसार निर्देश क्रिया  
जाता है' इस न्यायसे, अथवा 'मिथ्यादष्टि सामान्य तिर्यच भित्तिने है ? अनन्त है,  
शेष तीन प्रकारके मिथ्यादष्टि तिर्यच असंख्यात है' इस सूत्रसे इस प्रकार सस्यग्म्य  
करना चाहिए—मिथ्यादष्टि सामान्यतिर्यच अनन्तगुणित है और शेष तीन प्रकारके  
मिथ्यादष्टि तिर्यच असंख्यातगुणित हैं । यदि ऐसा न माना जायगा, तो दोनों पदोंकी  
उच्चारणोंके विकलताका प्रसंग प्राप्त होगा ।

यहपर गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्त-  
गुणा तिर्यच मिथ्यादष्टियोंका गुणकार है, जो सम्पूर्ण जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूल-  
प्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? असंयतसस्यग्दष्टि तिर्यचराशि प्रतिभाग है । शेष तीव  
प्रकारके तिर्यच मिथ्यादष्टियोंका गुणकार जगप्रतरका असंख्यातवा भाग है, जो जग-  
श्रेणीके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमित असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ?  
घनंगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है । अथवा, पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित  
प्रतरंगुल प्रतिभाग है । अथवा, अपने अपने उच्यका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।  
प्रतिभाग क्या है ? अपने अपने असंयतसस्यग्दष्टि जीवोंका प्रमाण प्रतिभाग है ।

तिर्यचोत्से असंयतसस्यग्दष्टि गुणस्थानमें उपजमसस्यग्दष्टि जीव सबसे कम  
हैं ॥ ४६ ॥

तं जहा- चउब्बिहेसु तिरिक्खेसु भणिस्समाणसव्वसम्माइट्ठिदव्वादो उवसम-  
सम्माइठी थोवा, आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तउवक्कमणकालम्भंतरे संचिदत्तादो ।

**खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ४७ ॥**

कुदो ? असंखेज्जवस्साउगोसु पल्लोदोवस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालेण संचि-  
दत्तादो, अणाइणिहणसरूवेण उवसमसम्मादिट्ठीहितो खइयसम्मादिट्ठीणं आवलियाए  
असंखेज्जदिभागगुणत्तेण अवट्ठणादो वा । आवलियाए असंखेज्जदिभागो गुणगारो त्ति  
कथं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदुव्वदेसादो ।

**वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ४८ ॥**

कुदो ? दंसणमोहणीयक्खएणुप्पणखइयसम्मत्ताणं सम्मत्तुप्पत्तीदो पुब्बमेव  
नद्धतिरिक्खाउआणं पउरं संभवाभावा । ण य लोए सारदव्वाणं दुल्लहत्तमप्पसिद्धं, अस्स-  
हत्थि-पत्थरादिसु साराणं लोए दुल्लहत्तुवलंभा ।

वह इस प्रकार है- चारों प्रकारके तिर्यचोंमे आगे कहे जानेवाले सर्वे सम्यग्दृष्टि-  
योंके द्रव्यप्रमाणसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अल्प है, क्योंकि, आवलीके असंब्यतावै भाग-  
मात्र उपक्रमणकालके भीतर उनका संचय होता है ।

तिर्यचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि  
जीव असंब्यतागुणित हैं ॥ ४७ ॥

क्योंकि, असंब्यता वर्षकी आयुवाले जीवोंमें पल्योपमेके असंब्यतावै भागमात्र  
कालके द्वारा संचित होनेसे, अथवा अनादिनिधनस्वरूपसे उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी  
अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका आवलीके असंब्यतावै भाग गुणितप्रमाणसे अवस्थान  
पाया जाता है ।

शंका—यहां आवलीका असंब्यतावै भाग गुणकार है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्य परम्परासे आप हुए उपदेशसे जाना जाता है ।

तिर्यचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि  
जीव असंब्यतागुणित हैं ॥ ४८ ॥

क्योंकि, जिनहोंने सम्यक्त्वकी उत्पत्तिसे पूर्व ही तिर्यच आयुका बंध कर लिया  
है, ऐसे दर्शनमोहनीयके क्षयसे उत्पन्न हुए क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका प्रचुरतासे होना  
संभव नहीं है । और, लोकमें सार पदार्थोंकी दुर्लभता अप्रसिद्ध भी नहीं है, क्योंकि,  
अद्व, हस्ती ओर पाषाणादिकोंमें सार पदार्थोंकी सर्वत्र दुर्लभता पाई जाती है ।

**संजदासंजदट्ठोणे सव्वथोवा उवसमसम्माइठी ॥ ४९ ॥**

कुदो ? देसव्वयाणुविद्धुवसमसम्मत्तस्स दुल्लहत्तादो ।

**वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ५० ॥**

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एदम्हदो गुणगारादो णव्वदे  
समयं पडि तदुवचयादो असंखेज्जगुणत्तेणुवचिदा त्ति असंखेज्जगुणत्तं । एत्थ खइय-  
सम्माइठीणमप्पावहुअं किण्ण परूविदं ? ण, तिरिक्खेसु असंखेज्जवस्साउएसु चैय खइय-  
सम्मादिट्ठीणसुववादुवलंभा । पंचिदियतिरिक्खजोणिणिसु सम्मत्तप्पावहुअविसिसपदु-  
प्पायणट्ठुत्तसुत्तं भणदि-

**णवरि विसेसो, पंचिदियतिरिक्खजोणिणिसु असंजदसम्मादिट्ठि-  
संजदासंजदट्ठोणे सव्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ५१ ॥**

सुगमभेदं ।

**वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ५२ ॥**

तिर्यचोंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम है ॥४९॥  
क्योंकि, देशव्रतसहित उपशमसम्यक्त्वका होना दुर्लभ है ।

तिर्यचोंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव  
असंब्यतागुणित हैं ॥ ५० ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंब्यतावै भाग गुणकार है । इस गुणकारसे  
यह जाना जाता है कि प्रतिसमय उनका उपचय होनेसे वे असंब्यतागुणित संचित हो  
जाते हैं, इसलिए उनके प्रमाणके असंब्यतागुणितता वन जाती है ।

शंका—यहां संयतासंयत गुणस्थानमे क्षायिकसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंका अल्पवहुत्व  
क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, असंब्यता वर्षकी आयुवाले भोगभूमियां तिर्यचोंमें  
ही क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपाद पाया जाता है ।

अब पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें सम्यक्त्वके अल्पवहुत्वसम्बन्धी विशेषके  
प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेषता यह है कि पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमे असंयतसम्यग्दृष्टि और  
संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें  
उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंब्यतागुणित हैं ॥ ५२ ॥

को गुणगानो ? आसन्नियाए अन्नेज्जदिमगो । एत्थ सइयसम्मदिट्ठीणमप्या-  
वडुअं णत्थि, त्तिगिदीसु मम्मदिट्ठीणिमुत्तादामाना, मणुसगइवदिरित्तण्णगइसु दसण-  
मोत्तणीयस्सपणाणाभात्तच्च ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु तिसु अद्दासु उव-  
समा पवेसणेण तुल्ला शोवां ॥ ५३ ॥

तिसु रि मणुसु त्तिणि वि उत्तामया पवेसणेण अण्णेणमवेक्खिसु तुल्ला  
मरिमा, चउत्तणोमचचादो । ने ज्जेय थोवा, उमरिसणुण्णह्णजीवावेक्खाए ।

उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था तेत्तिया चेव ॥ ५४ ॥

कुदो ? देट्ठिमणुण्णह्णे पडिचण्णजीवाणं चेय उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्थ-  
पज्जाण्ण परिणाशुलंथा । मंचयस्स अप्पावडुअं किण्ण परुत्तिदं ? ण, पवेसप्पावडुएण  
चेय तददगमादो । जदो संचओ णाम पवेसाहीणो, तदो पवेसप्पावडुएण सरिसो  
मंचयप्पावडुओ ति पुथ ण उचो ।

गुणकार क्या हे ? आवलीका नसंत्यानवांमगा गुणकार हे । यहाँ पंचेन्द्रियतिर्यंच  
योगिनितियांमं मारिकम्मयग्गट्ठि जीवोंका अत्तपमुत्त्व नहीं है, क्योंकि, सर्व प्रकारकी  
मियाँमें मन्मग्गट्ठि जीवोंका उपपाद नहीं होता है, तथा मनुष्यगतिको छोड़कर अन्य  
मियाँमें दंतमोत्तरीयकर्मही क्षपणात्ता भी अमान हे ।

मनुष्यमियाँमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियाँमें अपूर्वकरण आदि तीन  
गुणन्मानोंमें उपशाक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ५३ ॥

पूर्वोक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अपूर्वकरण आदि तीनों ही उपशाक जीव  
प्रवेशके परस्परकी अपेक्षा तुल्य पर्याप्त सदा है, क्योंकि, एक समयमें अधिकसे अधिक  
नोपन्न जीवोंका प्रवेश पाया जाता है । तथा, ये जीव ही उपरिम गुणस्थानोंके जीवोंकी  
अपेक्षा अल्प हैं ।

उपशान्तहायावीतरागछप्रथ जीव प्रवेशसे पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ५४ ॥

क्योंकि, अधस्तन गुणस्थानोंको प्राप्त हुए जीवोंका ही उपशान्तकपायवीतराग-  
छप्रस्थरूप पर्याप्तये परिणमण पाया जाता है ।

शला—यहा उपशामकोंके मंचयत्ता अत्तपवडुत्त्व क्यों नहीं बतलाया ?

ममानान—नहीं, क्योंकि, प्रवेशसम्बन्धी अत्तपवडुत्त्वसे ही उसका ज्ञान हो  
जाता है । चूंकि, संचय प्रवेशके आधीन होता है, इसलिए प्रवेशके कल्पयणुत्त्वसे  
मंचयत्ता अत्तपवडुत्त्व सदा है, अतएव उसे पृथक् नहीं बतलाया ।

१ मणुसगो मन्वानुत्तणमत्तिसिण्णत्तत्तात्तात्ता नामान्पाए । स ति. १, ८.

२ अ मां ' पवेसाहीणो ' आ स्सतो ' पवेसाहीणो ' इति पाठः ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ ५५ ॥

कुदो ? अहुत्तरसदमेत्तचादो ।

खीणकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ५६ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया  
चेय ॥ ५७ ॥

कुदो ? खीणकसायपज्जाएण परिणदाणं चेय उत्तरगुण्णह्णुवकक्रमुवलंभा ।

सजोगिकेवली अद्दं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ५८ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्तएसु ओघसजोगिरासिं ठविय देट्ठिमरासिणा ओवडुयि गुणगारो  
उपपादेद्ववो । मणुसिणीसु पुण तप्पाओग्गसंखेज्जसजोगिथिलीवि इविय अहुत्तरसदं मुच्चा  
तप्पाओग्गसंखेज्जखीणकसाएहि ओवडुयि गुणगारो उपपादेद्ववो ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें उपशान्तकपायवीतरागछप्रथसे क्षपक जीव संख्यात-  
गुणित हैं ॥ ५५ ॥

क्योंकि, क्षपकसम्बन्धी एक गुणस्थानमें एक साथ प्रवेश करनेवाले जीवोंका  
प्रमाण एक सौ आठ है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें क्षीणकपायवीतरागछप्रथ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही  
हैं ॥ ५६ ॥

यह स्रज सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दोनों भी प्रवेशसे  
तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ५७ ॥

क्योंकि, क्षीणकपायरूप पर्याप्तसे परिणत जीवोंका ही आंगेके गुणस्थानोंमें  
उपक्रमण ( गमन ) पाया जाता है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित  
हैं ॥ ५८ ॥

सामान्य मनुष्य और पर्याप्त मनुष्योंमेंसे ओघ सयोगिकेवलीराशिको स्थापित  
करके और उसे अधस्तनराशिले भाजित करके गुणकार उत्पन्न करना चाहिए । किन्तु  
मनुष्यनियाँमें उनके योग्य संख्यात सयोगिकेवली जीवोंको स्थापित करके एक सौ आठ  
संख्याको छोड़कर उनके योग्य संख्यात क्षीणकपायवीतरागछप्रस्थोंके प्रमाणसे भाजित  
करके गुणकार उत्पन्न करना चाहिए ।

अपमत्तसंजदा अक्खवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ५९ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्तानं ओघमिह उत्त-अप्पमत्तरासी चैव होदि । मणुसिणीसु पुण तप्पाओगसंखेज्जमेत्तो होदि । सेसं सुगमं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ६० ॥

एदं पि सुगमं ।

संजदासंजदा संखेज्जगुणा ॥ ६१ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्तएसु संजदासंजदा संखेज्जकोडिमेत्ता । मणुसिणीसु पुण तप्पाओगसंखेज्जरूपमेत्ता ति धेत्तब्बा, वट्टमाणकाले एत्थिया ति उवदेसाभावा । सेसं सुगमं ।

सासणसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६२ ॥

कुदो ? ततो संखेज्जगुणकोडिमेत्तत्तादो । मणुसिणीसु तदो संखेज्जगुणा, तप्पाओगसंखेज्जरूपमेत्तत्तादो । सेसं सुगमं ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेबलीसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्त-संयत संख्यातगुणित हैं ॥ ५९ ॥

ओघरूपणामें कही हुई अप्रमत्तसंयतोंकी राशि ही मनुष्य-सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तक अप्रमत्तसंयतोंका प्रमाण है । किन्तु मनुष्यनियामें उनके योग्य संख्यात भाग-मात्र राशि होती है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अप्रमत्तसंयतयोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ६० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ६१ ॥ मनुष्य सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तकामें संयतासंयत जीव संख्यात कोटिप्रमाण होते हैं । किन्तु मनुष्यनियामें उनके योग्य संख्यात रूपमात्र होते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, वे इतने ही होते हैं, इस प्रकारका वर्तमान कालमें उपदेश नहीं पाया जाता । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६२ ॥

क्योंकि, वे संयतासंयतोंके प्रमाणसे संख्यातगुणित कोटिमात्र होते हैं । मनुष्य-नियामें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मनुष्य-सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण उनके योग्य संख्यात रूपमात्र है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

१ प्रतिपु 'सज्जा' इति पाठ ।

२ तत सत्थेयगुणा सयतासयता । स ति १, ८

३ सासादनसम्यग्दृष्टय सत्थेयगुणा । स ति १, ८

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणां ॥ ६३ ॥

एदं पि सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणां ॥ ६४ ॥

कुदो ? सत्तकोडिसयमेत्तत्तादो । सेसं सुगमं ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणां ॥ ६५ ॥

असंखेज्ज-संखेज्जगुणामेत्तथ संभवाभावा एवं संबंधो कीरेदे- मणुसमिच्छा-दिट्ठी असंखेज्जगुणा । कुदो ? सेड्डीए असंखेज्जदिभागपरिमाणत्तादो । मणुसपज्जत्त-मणुसिणी मिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा, संखेज्जरूपपरिमाणत्तादो । सेसं सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठिद्वाने सव्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ६६ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यात-गुणित हैं ॥ ६३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६४ ॥

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका प्रमाण सात सौ कोटिमात्र है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं, और मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६५ ॥

असंख्यातगुणित और संख्यातगुणित जीवोंका एक अर्थमें होना संभव नहीं है, इसलिए इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिए- असंयतसम्यग्दृष्टि सामान्य मनुष्योंसे मिथ्यादृष्टि सामान्य मनुष्य असंख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण जगत्रेणिकि असंख्यातवै भाग है । तथा मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मनुष्य-पर्याप्त और मनुष्यनी मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण संख्यात रूपमात्र ही पाया जाता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ६६ ॥

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टय सत्थेयगुणाः । स. ति १, ८

२ असंयतसम्यग्दृष्टय सत्थेयगुणा । स ति १, ८

३ मिथ्यादृष्टयोऽसत्थेयगुणा । स ति १, ८

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६७ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६८ ॥

एदामि तिण्णि नि सुत्ताणि सुगमाणि ।

संजदासंजदहाणे सव्वथोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ ६९ ॥

स्त्रीणदंयणमोहणीयाणं देससंजमे वट्टताणं बहूणमभावा । स्त्रीणदंयणमोहणीया पाएण अमंजदा होदूण अञ्जंति । ते संजम पडिवज्जंता पाएण महव्वयाइं चैव पडि-  
वज्जंति, ण देसव्वयाइं नि उचं होदि ।

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७० ॥

मइयमसम्मादिट्ठिसंजदासंजदेहंतो उवसमसम्मादिट्ठिसंजदासंजदाणं बहूणमुवलंभा ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७१ ॥

कुदो ? बहूवायत्तादो, संचयकालस्स बहूत्तादो वा, उवसमसम्मतं पेक्खिय  
वेदगसम्मतस्स सुलहत्तादो वा ।

उपशमसम्पगदट्ठियोसे क्षायिकसम्पगदट्ठि संख्यातगुणित है ॥ ६७ ॥

क्षायिकसम्पगदट्ठियोसे वेदकसम्पगदट्ठि संख्यातगुणित है ॥ ६८ ॥

ये तीनों ही चार सुगम हैं ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्पगदट्ठि सबसे कम  
है ॥ ६९ ॥

स्वयंकि, दर्शनमोहनीयकर्मका क्षय करनेवाले और करनेवाले में वर्तमान बहुत  
जीनोंका अभाव है । दर्शनमोहनीयता क्षय करनेवाले मनुष्य प्रायः असंयमी होकर रहते  
हैं । ये संयमही प्राप्त होते हुए प्रायः महाव्रतोंको ही धारण करते हैं, अणुव्रतोंको नहीं,  
यह अर्थ कहा गया है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्पगदट्ठियोसे उपशम-  
सम्पगदट्ठि संख्यातगुणित है ॥ ७० ॥

स्वयंकि, क्षायिकसम्पगदट्ठि संयतासंयतोंसे उपशमसम्पगदट्ठि संयतासंयत मनुष्य  
पहुत पाये जाते हैं ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्पगदट्ठियोसे वेदक-  
सम्पगदट्ठि संख्यातगुणित है ॥ ७१ ॥

स्वयंकि, उपशमसम्पगदट्ठियोंकी अपेक्षा वेदकसम्पगदट्ठियोंकी वाय अधिक है,  
अपगत संचयकाल बहुत है, अथवा उपशमसम्पगदट्ठियोंको देखते हुए अर्थात् उसकी अपेक्षा  
वेदकसम्पगदट्ठियोंका पाता सुलभ है ।

पमत्त-अपमत्तसंजदहाणे सव्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ७२ ॥

कुदो ? थोवकालसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७३ ॥

बहुकालसंचयादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७४ ॥

खइयसम्मेत्तेण संजमं पडिवज्जमाणजीविहेतितो वेदगसम्मेत्तेण संजमं पडिवज्जमाण-  
जीवाणं बहुमुवलंभा । मणुसिणीयविसेसपटुप्पायणहं उवरिमसुत्तं भणदि-

णवरि विसेसो, मणुसिणीसु असंजद-संजदासंजद-पमत्तापमत्त-  
संजदहाणे सव्वथोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ ७५ ॥

कुदो ? अप्यसत्थवेदोदएण दंसणमोहणीयं खवेत्तजीवाणं बहूणमणुवलंभा ।

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७६ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशम-  
सम्पगदट्ठि सबसे कम है ॥ ७२ ॥

स्वयंकि, इनका संचयकाल अल्प है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्प-  
गदट्ठियोसे क्षायिकसम्पगदट्ठि संख्यातगुणित है ॥ ७३ ॥

स्वयंकि, इनका संचयकाल बहुत है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्प-  
गदट्ठियोसे वेदकसम्पगदट्ठि संख्यातगुणित है ॥ ७४ ॥

स्वयंकि, क्षायिकसम्पगदट्ठिके साथ संयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा  
वेदकसम्पगदट्ठिके साथ संयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी अधिकता पाई जाती है । अब  
मनुष्यनियोंमें होनेवाली विशेषताके प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

केवल विशेषता यह है कि मनुष्यनियोंमें असंयतसम्पगदट्ठि, संयतासंयत, प्रमत्त-  
संयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्पगदट्ठि जीव सबसे कम हैं ॥ ७५ ॥

स्वयंकि, अप्रमत्त वेदके उदयेके साथ दर्शनमोहनीयको क्षपण करनेवाले जीव  
बहुत नहीं पाये जाते हैं ।

असंयतसम्पगदट्ठि आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्यनियोंमें क्षायिकसम्पगदट्ठियोसे  
उपशमसम्पगदट्ठि संख्यातगुणित है ॥ ७६ ॥

अप्यसत्त्ववेदोदरणं दंसणमोहणीयं खर्वेतजीविहितो अप्यसत्त्ववेदोदरणं चैव दंसणमोहणीयं उवसमेतजीवाणं मणुसेसु संखेज्जगुणानुवर्लमा ।

**वेदगसम्मादिद्धी संखेज्जगुणा ॥ ७७ ॥**

सुगममेदं ।

**एवं तिसु अद्वासु ॥ ७८ ॥**

एदस्सत्थो- मणुस-मणुसपज्जत्तएसु गिरुद्धेसु तिसु अद्वासु उवसमसम्मादिद्धी थोवा, थोवकारणत्तादो । खइयसम्मादिद्धी संखेज्जगुणा, बहुकारणादो । मणुसिणीसु पुण खइयसम्मादिद्धी थोवा, उवसमसम्मादिद्धी संखेज्जगुणा । एत्थ पुव्वुत्तमेव कारणं । उवसामग-खवराणं संचयस्स अप्पावहुअपरूणहुत्तमुत्तरसुत्तं भणदि-

**सव्वथोवा उवसमा ॥ ७९ ॥**

थोवपवेसादो ।

क्योंकि, अप्रशस्त वेदके उदयके साथ दर्शनमोहनीयका क्षण करनेवाले जीवोंसे अप्रशस्त वेदके उदयके साथ ही दर्शनमोहनीयका उपशम करनेवाले जीव मनुष्योंमें संख्यातगुणित पाये जाते हैं ।

असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्यनियोंमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ७७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इसी प्रकार तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अपूर्वकरण आदि तीन उपशमक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ ७८ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- मनुष्य-सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तकोसे निरुद्ध अपूर्वकरण आदि तीन उपशमक गुणस्थानोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अल्प होते हैं, क्योंकि, उनके अल्प होनेका कारण पाया जाता है । उनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनके बहुत होनेका कारण पाया जाता है । किन्तु मनुष्यनियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव अल्प हैं, और उनसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित है । यहा संख्यातगुणित होनेका कारण पूर्वोक्त ही है (देखो सूत्र नं ७५) । उपशमक और क्षपकोंके संचयका अल्पबहुत्व प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं-

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें उपशमक जीव सबसे कम हैं ॥ ७९ ॥

क्योंकि, इनका प्रवेश अल्प होता है ।

१ प्रतिपु 'अप्यसत्त्ववेदोदरण' इति पाठः ।

**खवा संखेज्जगुणा ॥ ८० ॥**

बहुपपवेसादो ।

**देवगदीए देवेषु सव्वथोवा सासणसम्मादिद्धी ॥ ८१ ॥**

**सम्माभिच्छादिद्धी संखेज्जगुणा ॥ ८२ ॥**

**असंजदसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ ८३ ॥**

एदाणि तिणिण वि सुत्ताणि सुवोच्चाणि, बहुसो परूविदत्तादो ।

**मिच्छादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ ८४ ॥**

को गुणगारो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ । केत्तिय-मेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदि-भागो, असंखेज्जपदरंगुलाणि वा पडिभागो । सेसं सुगमं ।

**असंजदसम्मादिट्ठिद्वाने सव्वथोवा उवसमसम्मादिद्धी ॥ ८५ ॥**

सुवोच्चासिदं सुत्तं ।

**खइयसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ ८६ ॥**

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें उपशमकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ८० ॥ क्योंकि, इनका प्रवेश बहुत होता है ।

देवगतिमें देवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ८१ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्भिध्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ८२ ॥

सम्यग्भिध्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं ॥ ८३ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुवोच्य अर्थात् सरलतासे समझने योग्य हैं, क्योंकि, इनका बहुत वार प्ररूपण किया जा चुका है ।

देवोमे अमंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८४ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । वे जगश्रेणिया कितनी है ? जगश्रेणिके असंख्यातवे भागमात्र है । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवा भाग प्रतिभाग है, अथवा असंख्यात प्रतरगुल प्रतिभाग है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ८५ ॥ यह सूत्र सुवोच्य है ।

देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८६ ॥

२ देवगतौ देवानां नारकवत् । स सि १, ८

को गुणगारो ? आपलियाए असंखेज्जदिभागो । मेसं सुवोच्चं ।

वेदरामस्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ ८७ ॥

को गुणगारो ? आपलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

भवणवामिय-चाणवंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप-  
वासियदेवीओ च सत्तमाए पुढवीए भंगो ॥ ८८ ॥

पदेमिमिटि प्पत्यज्जाहारो कायवो, अण्णहा गंवंधाभावा । सह्यसस्मादिद्धीणम-  
भां पटि तायम्ममुलंभा सत्तमाए पुढवीए भंगो एदेमिं देटि । अत्यदो गुण विसेसो  
अत्थि, तं भणिम्मामो- नव्वत्थोवा भवणवासियसासणमस्माइद्धी । सम्मामिच्छादिद्धी  
संखेज्जगुणा । अयंजदमस्मादिद्धी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखे-  
ज्जदियागो । मिच्छाइद्धी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो,  
अयंरोज्जाओ मेडीओ । केत्तियमेत्ताओ ? घणंगुलपडमरगमूलस्स असंखेज्जदिभाग-  
मेत्ताओ । को पडिभागो ? अयंजदमस्मादिद्धिरामी पडिभागो ।

गुणकार स्या है ? आवर्त्तीका असंख्यातवा भाग गुणकार हे । शेष सूत्रार्थ  
सुगम ( सुगम ) हे ।

देवोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८७ ॥

गुणकार स्या है ? आपल्योका अमन्यातवा भाग गुणकार हे । शेष सूत्रार्थ  
सुगम हे ।

देवोंमें भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिक्य देव और देवियां, तथा सौधर्म-ईशान-  
रूपवासिनी देवियां, इनका अल्पबहुत्व सातवीं प्रथियेके अल्पबहुत्वके समान है ॥ ८८ ॥

इस सूत्रमें ' इनका ' इस पदका अर्थाहार करना चाहिए, अन्यथा प्रकृतमें  
इसका समन्वय नहीं बनता है । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके अभावकी अपेक्षा समानता पाई  
जानेमें इस सूत्रके देव देवियोंका सातवीं प्रथियेके समान अल्पबहुत्व है । किन्तु अर्थकी  
अपेक्षा कुछ विशेषता है, उसे कहते हैं- भवनवासी सासादनसम्यग्दृष्टि देव आगे कही  
जानेवाली सशियोंकी अपेक्षा समान है । उनसे भवनवासी सम्यग्मिथ्यादृष्टि  
संख्यातगुणित हैं । उनसे भवनवासी असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं । गुणकार  
स्या है ? आपल्योका असंख्यातवा भाग गुणकार है । उनसे भवनवासी मिथ्यादृष्टि असं-  
ख्यातगुणित हैं । गुणकार स्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असं-  
ख्यात जगत्रेणीप्रमाण है । वे जगत्रेणिया कितनी हैं ? घनांगुलके प्रथम वर्गमूलके  
असंख्यातवां भागमात्र हैं । प्रतिभाग स्या है ? असंयतसम्यग्दृष्टि जीवरशि प्रतिभाग है ।

सवन्थोवा चाणवंतरसासणसम्मादिद्धी । सम्मामिच्छादिद्धी संखेज्जगुणा ।  
असंजदसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आपलियाए असंखेज्जदिभागो ।  
मिच्छादिद्धी अयंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ  
सेडीओ । केत्तियमेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणं-  
गुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जपदंगुलाणि वा पडिभागो । एवं जोदिसियाणं पि  
वत्तवं । सग-सगइत्थिवेदानं सग-सगोवभंगो । सेसं सुगमं ।

सोहमीसाण जाव सदर-सहस्सारकपवासियदेवेषु जहा देवगह-  
भंगो ॥ ८९ ॥

जहा देवोघमिह अप्पावहुअं उच्चं, तथा एदेसिमप्पावहुगं वत्तवं । तं जहा-  
सवन्थोवा सग-सगकपत्था सासणा । सग-सगकपसम्मामिच्छादिद्धिणो संखेज्जगुणा ।  
सग-सगकपअसंजदसम्मादिद्धिणो असंखेज्जगुणा । सग-सगमिच्छादिद्धी असंखेज्जगुणा ।  
एत्थ गुणगारो जाणिय वत्तवो, एगसरुत्तवाभावा । अणंतरउत्तकप्पेषु असंजदसम्मा-

वानव्यन्तर सासादनसम्यग्दृष्टि देव आगे कही जानेवाली सशियोंकी अपेक्षा  
सबसे कम हैं । उनसे वानव्यन्तर सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं । उनसे वान-  
व्यन्तर असंयतसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं । गुणकार स्या है ? आवर्त्तीका असं-  
ख्यातवां भाग गुणकार है । वानव्यन्तर असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंसे वानव्यन्तर मिथ्यादृष्टि  
देव असंख्यातगुणित हैं । गुणकार स्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है,  
जो असंख्यात जगत्रेणीप्रमाण है । वे जगत्रेणिया कितनी हैं ? जगत्रेणीके असंख्यातवां  
भागमात्र है । प्रतिभाग स्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, अथवा  
असंख्यात प्रतरांगुल प्रतिभाग है ।

इसी प्रकार ज्योतिक्य देवोंके अल्पबहुत्वको भी कहना चाहिए । भवनवासी  
आदि निकायोंमें अपने अपने स्त्रीदेवियोंका अल्पबहुत्व अपने अपने ओघ-अल्पबहुत्वके  
समान है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

सौधर्म-ईशान कल्पसे लेकर शतार-सहस्रार कल्प तक कल्पवासी देवोंमें अल्प-  
बहुत्व देवगति सामान्यके अल्पबहुत्वके समान हैं ॥ ८९ ॥

जिस प्रकार सामान्य देवोंमें अल्पबहुत्वका कथन किया है, उसी प्रकार इनके  
अल्पबहुत्वको कहना चाहिए । वह इस प्रकार है- अपने अपने कल्पमें रहनेवाले सासा-  
दनसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं । इनसे अपने अपने कल्पके सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव  
संख्यातगुणित है । इनसे अपने अपने कल्पके असंयतसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं ।  
इनसे अपने अपने कल्पके मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं । यहाँपर गुणकार जानकर  
कहना चाहिए, क्योंकि, इन देवोंमें गुणकारकी एकरूपताका अभाव है । कभी इन पंडि



दिद्विद्वाने सवत्थोवा उवसमसम्मादिद्वी । खइयसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा । वेदगसमा-  
दिद्वी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? सवत्थ आवलियाए असंखेज्जदिभागो चि ।  
सेसं सुगमं ।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु सवत्थोवा सासन-  
सम्मादिद्वी ॥ ९० ॥

सुगममेदं सुत्त ।

सम्माभिच्छादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ९१ ॥

एदं पि सुगमं ।

भिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ९२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कथमेदं णवदे ? दव्याणि-  
ओगद्वारसुत्तादो ।

असंजदसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ९३ ॥

कहे गये कल्पोमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं ।  
इनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित है । इनसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यात-  
गुणित हैं । गुणकार क्या है ? सर्वत्र आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । दोष  
स्वार्थ सुगम है ।

आनत-प्राणत कल्पसे लेकर नवश्रेयिक विमानों तक विमानवासी देवोंमें सासा-  
दनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ९० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त विमानोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित  
हैं ॥ ९१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त विमानोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ९२ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—द्रव्यानुयोगद्वारसूत्रसे जाना जाता है कि उक्त कल्पोंमें मिथ्यादृष्टि  
देवोंका गुणकार आवलीका असंख्यातवा भाग है ।

उक्त विमानोंमें मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ९३ ॥

कुदो ? मणुसेहितो आणदादिसु उप्पज्जमाणमिच्छादिद्वी पेक्खिय तत्थुप्पज्ज-  
माणसम्मादिद्वीणं संखेज्जगुणात्तादो । देवलोए सम्मत्तमिच्छत्ताणि पडिवज्जमाणजीवाणं  
क्किण पहणत्तं ? ण, तेसिं मूलरासिस्स असंखेज्जदिभागत्तादो । को गुणगारो ?  
संखेज्जसमया ।

असंजदसम्मादिद्विद्वाने सवत्थोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ ९४ ॥

कुदो ? अंतोयुत्तकालसंचिदत्तादो ।

खइयसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ९५ ॥

कुदो ? संखेज्जसागरोवमकालेण संचिदत्तादो । को गुणगारो ? आवलियाए  
असंखेज्जदिभागो । संचयकालपडिभागेण पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो गुणगारो  
क्किण उच्चदे ? ण, एगसमएण पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजीवाणं उवसम-  
सम्मतं पडिवज्जमाणसुवलंभा ।

क्योंकि, मनुष्योंसे आनत आदि विमानोंमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टियोंकी  
अपेक्षा वहाँपर उत्पन्न होनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं ।

शंका—देवलोकेमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी प्रधानता क्यों  
नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मूलराशिके असंख्यातवे  
भागमात्र होते हैं ।

उक्त विमानोंमें सम्यग्दृष्टियोंका गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

आनत-प्राणत कल्पसे लेकर नवश्रेयिक तक असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें  
उपशमसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं ॥ ९४ ॥

क्योंकि, वे केवल अन्तर्बुद्धते कालके द्वारा संचित होते हैं ।

उक्त विमानोंमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ९५ ॥

क्योंकि, वे संख्यात सागरोपम कालके द्वारा संचित होते हैं । गुणकार क्या है ?  
आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है ।

शंका—संचयकालरूप प्रतिभाग होनेकी अपेक्षा पल्योपमका असंख्यातवां भाग  
गुणकार क्यों नहीं कहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, एरु समयके द्वारा पल्योपमके असंख्यातवे भागमात्र  
जीव उपशमसम्यग्दृष्टको प्राप्त होते हुए पाये जाते हैं ।

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ९६ ॥

कुनो ? तन्पुण्यज्जमाणसुखयमम्मादिद्वीहितो संखेज्जगुणवेदगसम्मादिद्वीणं तत्थु-  
प्यारिःसणादो ।

अणुदिसादि जाव अवराइदविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मा-  
दिद्विद्विणे सब्वत्थोवा उवससम्मादिद्वी ॥ ९७ ॥

कुनो ? उवससम्मादिद्वीचित्तोयणानिक्कियेवावहुवससम्मात्तसिद्धिसंखेज्जसंजदाण-  
भेत्थुपण्णाणमत्तापुत्तसंविदाणमुत्तमा ।

सुखयसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ९८ ॥

नो गुणगतो ? पल्लोवमस्स असंखेज्जदिभागस्स संखेज्जदिभागो । को पडि-  
भागो ? संखेज्जुत्तममम्मादिद्विजीवा पडिभागो ।

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ९९ ॥

कुनो ? सुखयसम्मात्तेणुपुण्यज्जमाणनंजदेहितो वेदगसम्मात्तेणुपुण्यज्जमाणसंजदाणं संखेज्ज-  
द्वी ॥ ९६ ॥

उक्त विमानोंमें श्वायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित  
हैं ॥ ९६ ॥

स्मॉकि, उन आनतादि करणान्नी देवोंमें उत्पन्न होनेवाले श्वायिकसम्यग्दृष्टि-  
योग संख्यातगुणित वेदकसम्यग्दृष्टियोंकी वहा उत्पत्ति देखी जाती है ।

नर अनुदिशोंको आदि लेकर अपरजित नामक अनुत्तरविमान तक विमानवासी  
देवोंमें अमयनमम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपग्रसमम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ९७ ॥

स्मॉकि, उपग्रसम्यग्दृष्टिपर आरोहण और अवतरणरूप क्रियामें लगे हुए, अर्थात्  
चरतों और उतरते हुए मरकर उपग्रसमम्यग्दृष्टिस्थिति यहां उत्पन्न हुए, और अन्तर्मुहूर्त-  
कालके द्वारा संचित हुए संख्यात उपग्रसमम्यग्दृष्टि संयत पाये जाते हैं ।

उक्त विमानोंमें उपग्रसमम्यग्दृष्टियोंसे श्वायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ९८ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमकं असंख्यातवें भागका संख्यातवां भाग गुणकार है ।  
प्रतिभाग क्या है ? संख्यात उपग्रसमम्यग्दृष्टि जीव प्रतिभाग है ।

उक्त विमानोंमें श्वायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित  
हैं ॥ ९९ ॥

स्मॉकि, श्वायिकसम्यग्दृष्टिके साथ मरण कर यहां उत्पन्न होनेवाले संयतोंकी

गुणत्तादो । तं पि कथं णव्वदे ? कारणणुत्तारिकज्जदंसणादो मणुसेसु सइयसम्मादिद्वी  
संजदा थोवा, वेदगसम्मादिद्वी संजदा संखेज्जगुणा; तेण तेहितो देवेसुपुण्यज्जमाणसंजदा  
वि तप्पडिभागिया चोवेत्ति धेत्तव्वं । एत्थ सम्मत्तप्पावहुअं चेन, सेसगुणद्विणाभावा ।  
कथमेदं णव्वदे ? एदमहादो चेन सुत्तादो ।

सव्वड्डिसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिद्विद्विणे सब्व-  
त्थोवा उवससम्मादिद्वी ॥ १०० ॥

सुखयसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १०१ ॥

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १०२ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि । सव्वड्डिसिद्धिस्सिद्ध तेत्तीसाड्डिदिस्सिद्धि  
असंखेज्जजीवरसी किण्ण हेदि ? ण, तत्थ पल्लोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तंरस्सिद्धि  
अपेक्षा वेदकसम्यग्दृष्टिके साथ मरण कर यहां उत्पन्न होनेवाले संयत संख्यातगुणित  
होते हैं ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—स्मॉकि, ' कारणत्ते अनुत्तार कार्यं देसा जाता हे, ' इस न्यायके  
अनुत्तार मनुष्योंमें श्वायिकसम्यग्दृष्टि संयत अल्प होते हैं, उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि संयत  
संख्यातगुणित होते हैं । इसलिए उनसे देवोंमें उत्पन्न होनेवाले संयत भी तत्पत्तिभागी ही  
होते हैं, यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए । इन कल्पोंमें यही सम्यग्दृष्टिसम्बन्धी अल्पप्रभुत्व  
है, स्मॉकि, वहां और गुणस्थानोंका अभाव है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—इस सूत्रसे ही जाना जाता है कि अनुदिश आदि विमानोंमें केवल  
एक असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान होता है, और गुणस्थान नहीं होते हैं ।

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपग्रसमसम्यग्दृष्टि  
सबसे कम हैं ॥ १०० ॥

उपग्रसमसम्यग्दृष्टियोंसे श्वायिकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ १०१ ॥

श्वायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ १०२ ॥  
ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

शंका—तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले सर्वार्थसिद्धिविमानमें असंख्यात  
जीवरशि स्वों नहीं होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वहांपर पल्लोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालका  
अन्तर है, इसलिए वहां असंख्यात जीवरशिका होना असम्भव है ।

तदसंभवा । जदि एवं, तो आणदादिदेवेषु वासपुत्रंतेसु संखेज्जावल्लिओवड्ढिदपल्लिदो-  
वमसेत्ता जीवा क्रिणा हँति ? ण, तत्थतणमिच्छादिद्विआदीणमवहारकालस्स असंखेज्जा-  
वल्लयत्तं फिड्ढिदूण संखेज्जावल्लियमेत्तअवहारकालप्पसंगा । होदु चे ण, ' आणद-पाणद  
जाव णवगेवज्जविमाणवासियेदेवेषु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव असंजदसम्मदिद्वी दव्व-  
पमाणेण केवडिया, पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एदेहि पल्लिदोवमवहिरदि अंतो-  
मुहुत्तेण । अणुदिसादि जाव अत्रराहदविमाणवासियेदेवेषु असंजदसम्मदिद्वी दव्वपमाणेण  
केवडिया, पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एदेहि पल्लिदोवमवहिरदि अंतोमुहुत्तेणेत्ति' ।  
एदेण दव्वसुत्तेण जुत्तीए सिद्धअसंखेज्जावल्लियभागहारगम्भेण सह विरोहा ।

एव गदिसगणा समत्ता ।

शंका—यदि ऐसा है तो वर्षपृथक्त्वके अन्तरसे युक्त आनतादि कल्पवासी  
देवोंमें सख्यात आवल्लियोंसे भाजित पत्योपमप्रमाण जीव क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर वहाँके मिथ्यादृष्टि आदिकोंके अव-  
हारकालके असंख्यात आवलीपना न रहकर संख्यात आवलीमात्र अवहारकाल प्राप्त  
होनेका प्रसंग आ जायगा ।

शंका—यदि मिथ्यादृष्टि आदि जीवोंके अवहारकाल संख्यात आवलीप्रमाण  
प्राप्त होते हैं, तो होने दो ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा मानने पर 'आनत-प्राणतकल्पसे लेकर नवत्रैवेयक  
विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक  
जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने है ? पत्योपमके असंख्यातवै भागप्रमाण हैं । इन  
जीवरशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकालसे पत्योपम अपहृत होता है । नव अनुदिराँसे लेकर  
अपरजितनामक अनुत्तर विमान तक विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीव  
द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने है ? पत्योपमके असंख्यातवै भागप्रमाण हैं । इन जीव-  
राशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकालसे पत्योपम अपहृत होता है' । इस प्रकार युक्तिसे सिद्ध  
असख्यात आवलीप्रमाण भागहार जिनके गर्भमें है, ऐसे इन द्रव्यानुयोगद्वारके सूत्रोंके  
साथ पूर्वोंके कथनका विरोध आता है ।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

इंदियाणुवादेण पंचिदियपंचिदियपज्जत्तएसु ओधं । णवरि  
मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणां ॥ १०३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे- सेसिंदिएसु एगगुणद्वणेसु अप्पावहुअस्साभाव-  
पटुप्पायणप्पुहेण पंचिदियप्पावहुअपटुप्पायणहं पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तगहणं कदं ।  
जथा ओघम्मि अप्पावहुअं कदं, तथा एत्थ वि अणूणाहियमप्पावहुअं कायव्वं । णवरि  
एत्थ असंजदसम्मदिद्वीहितो मिच्छादिद्वी अणंतगुणा त्ति अभणिदूण असंखेज्जगुणा  
त्ति वत्तव्वं, अणंताणं पंचिदियाणमभावा । को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो,  
असंखेज्जाओ सेडीओ । केत्तियमेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ?  
घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि । अधवा पंचिदिय-पंचिदिय-  
पज्जत्तमिच्छादिद्वीणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? सण-सगअसंजदसम्मदिद्विरासी ।

इन्द्रियमार्गणके अनुवादसे पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्तिकोम अल्पगहुत्व  
ओषके समान है । केवल विशेषता यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव  
असंख्यातगुणित हैं ॥ १०३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— शेष इन्द्रियवाले अर्थात् पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-  
पर्याप्तिकोंसे अतिरिक्त जीवोंमें एक गुणस्थान होता है, इसलिए उनमें अल्पगहुत्वके  
अभावके प्रतिपादनद्वारा पंचेन्द्रियोंके अल्पगहुत्वके प्रतिपादन करनेके लिए सूत्रमें पंचे-  
न्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तक पदका ग्रहण किया है । जिस प्रकार ओषमें अल्पगहुत्वका  
कथन किया है, उसी प्रकार यहाँ भी हीनता और अधिकतासे रहित अल्पगहुत्वका कथन  
करना चाहिए । केवल इतनी विशेषता है कि यहापर असंयतसम्यग्दृष्टि पंचेन्द्रियोंसे  
मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय अनन्तगुणित हैं, ऐसा न कहकर असंख्यातगुणित हैं, ऐसा कहना  
चाहिए, क्योंकि, अनन्त पंचेन्द्रिय जीवोंका अभाव है । पंचेन्द्रिय असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे  
पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, यहाँ गुणकार क्या है ? जगप्रतरका  
असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगत्रेणीप्रमाण है । वे जगत्रेणिया कितनी  
हैं ? जगत्रेणिके असंख्यातवै भागप्रमाण हैं । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां  
भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरंगुलप्रमाण है । अथवा, पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-  
पर्याप्तक मिथ्यादृष्टियोंका असंख्यातवा भाग गुणकार है । प्रतिभाग क्या है ? अपनी  
अपनी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवराशि प्रतिभाग है ।

१ इन्द्रियाह्लादेन एनेन्द्रिय विक्लेन्द्रियेषु गुणस्थानमेदो नास्त्यल्पगहुत्वाभाव । इन्द्रिय प्रत्युच्यते-  
पंचेन्द्रियापेनेन्द्रियाता उत्तरोत्तर बहवः । पंचेन्द्रियार्णा सामान्यवत् । अयं तु विशेष-मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणा ।  
स ति १, ८

मत्प्राग-अन्यपन्थाणअप्यावदुगणुगमे एत्थं किण्णं परुदिदण्णिं ? ण, परत्थाणादो चेव तेमिं  
दोणुसराणमा ।

एव उदियमगणा सम्पत्ता ।

कायानुवादेण तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु ओधं । णवरि  
मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणां ॥ १०४ ॥

पदम्भयो- क्यगुणद्व्याण-नेमकाएसु अप्यावदुअं णत्थि चि जाणावणहं तसकाइय-  
तमकाइयपज्जत्तएणं कटं । एदेसु देसु नि अप्यावदुअं जधा ओघम्मि कटं, तथा  
तादर्यं, विवेयाभावा । णारि मग-सगअमजदसम्मादिद्वीहितो मिच्छादिद्वीणं अणंतगुणत्ते  
पत्ते तप्यदिदेहदुमगंसेउगुणा चि उचं, तमकाइय-तमकाइयपज्जत्ताणमाणत्तियाभावादो ।  
को गुणगो ? पदस्म अमंखेज्जदिमो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए असंखेज्जदि-

अंका-एवस्थान अल्पबहुत्व और सर्वपरस्थान अल्पबहुत्व यहांपर म्यों नहीं कहे ?  
गमाधान- नार्दी, स्वीक, परस्थान अल्पबहुत्वसे ही उन दोनों प्रकारके अल्प-  
बहुत्वोंका ज्ञान हो जाता है ।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई ।

कायमार्गणाके अनुवादसे त्रसकायिक और त्रसकायिक-पर्याप्तकोंमें अल्पबहुत्व  
ओषके समान है । केवल विवेचना यह है कि अमंयतसम्पद्यष्टियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव  
अमंख्यातगुणित है ॥ १०४ ॥

इस सूत्रगत अर्थ कहते हैं- एकमात्र मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवाले शेष स्थावर-  
त्तायिक और त्रसकायिक लक्ष्यपर्याप्तकोंमें अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता है, यह ज्ञान  
करानेके लिए सूत्रमें त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक पदका ग्रहण किया है ।  
जिस प्रकार ओषपरूपणामे अल्पबहुत्व कह आप है, उसी प्रकार त्रसकायिक और  
त्रसकायिक पर्याप्तक, इन दोनोंमें भी अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिए, स्वीक, ओष-  
त्रसकायिकाने इनेके अल्पबहुत्वमें कोई विशेषता नहीं है । केवल अपने अपने असंयत-  
सम्पद्यष्टियोंके प्रमाणसे मिथ्यादृष्टियोंके प्रमाणके अनन्तगुणत्व प्राप्त होनेपर उसके  
प्रतिशेष करकेके लिए असंयतसम्पद्यष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित है, ऐसा  
कहा है, स्वीक, त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक जीवोंका प्रमाण अनन्त नहीं  
है । गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातत्वां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके असं-

१ गणप्रतरके रणागोपे गुणप्रतरकागोपे अल्पबहुत्वका । मय प्रयुच्यते । मत्तत्तेजस्वयिका  
२ म्या । म्यो म्याः प्रमितीतापिनाः । ततोऽजपिना । ततो जगमपिना । मत्तोऽज्जगुणा वत्सपत्तय ।  
३ मत्तपिनामो पत्ते-एत्त । म मि १, ८ ।

भागमेत्ताओ । को पडिभागो ? वणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जजणि पदंगुलाणि ।  
सेमं सुगमं ।

एव कायमगणा सम्पत्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालिय-  
कायजोगीसु तीसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवां ॥ १०५ ॥  
एदेहि उचत्तसवजोमेहि सह उवसमेसिं चंहेताणं बुक्कस्सेण चउवणत्तमत्थि चि  
तुल्लत्तं परुविदं । उवरिसगुणद्व्याणजीवहितो जणा चि थोवा चि परुविदा । एदेमि वारस-  
ण्हमप्यावदुथाणं तिसु अद्वासु द्विदउवसमगा मूलपदं जादा ।

उवसंतकसायवीदरागछटुमत्था तेत्तिया चेव ॥ १०६ ॥  
सुगममेदं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १०७ ॥

अहुत्तरसदपरिमाणत्तादो ।

ख्यातवै भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असं-  
ख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरंगुलप्रमाण है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और  
औदारिककाययोगियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी  
अपेक्षा परस्पर तुल्य और अल्प है ॥ १०५ ॥

इन सूत्रोक्त सर्व योगोंके साथ उपशामश्रेणी पर चढ़नेवाले उपशामक जीवोंकी  
संख्या उत्कर्षसे चोपन होती है, इसलिए उनकी तुल्यता कही है । तथा उपरिम अर्थात्  
क्षयश्रेणीसम्बन्धी गुणस्थानवर्ती जीवोंसे कम होते हैं, इसलिए उन्हें अल्प कहा है ।  
इस प्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगी, इन  
चारह अल्पबहुत्वोंका प्रमाण लानेके लिए अपूर्वकरण आदि तीनों गुणस्थानोंमें स्थित  
उपशामक मूलपद अर्थात् अल्पबहुत्वके आधार हुए ।

उक्त चारह योगवाले उपशान्तक्रपायवीतरागछटुमत्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही  
हैं ॥ १०६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त चारह योगवाले उपशान्तक्रपायवीतरागछटुमत्थोंसे क्षयक जीव संख्यात-  
गुणित हैं ॥ १०७ ॥

स्वीक, क्षयकोंकी संख्याका प्रमाण एक सौ आठ है ।

१ योगछटुमत्थिन वारुमानमयोगिनां पचेन्द्रियवत् । काययोगिनां गणप्रत्यवत् । म मि १, ८ ।

खीणकसायीदरागच्छुमत्था तत्तिया चैव ॥ १०८ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चैव ॥ १०९ ॥

एदं पि सुगमं । जेसु जोगेसु सजोगिगुणद्वयं संभवदि, तेसिं चैवेदमप्याबहुअं वेत्तव्वं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुव्व संखेज्जगुणा ॥ ११० ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । जहा ओघमिह संखेज्जसमयासाहर्णं कदं, तथा एत्थ वि कायव्वं ।

अपमत्तसंजदा अमखवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १११ ॥

एत्थ वि जहा ओघमिह गुणगारो साहिदो तथा साहेदव्वो । गवरि अप्पिदजोग-जीवरिसिपमाणं गादूण अप्पाबहुअं कायव्वं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ११२ ॥

उक्त वारह योगवाले क्षीणकपायीतरागच्छस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सयोगिकेवली जीव प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ १०९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है । किन्तु उपर्युक्त वारह योगोंसे जिन योगोंमें सयोगिकेवली गुणस्थान सम्भव है, उन योगोंका ही यह अल्पबहुत्व ग्रहण करना चाहिए ।

सयोगिकेवली संबन्धकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ११० ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । जिस प्रकार ओघमें संख्यात समयरूप गुणकारका साधन किया है, उसी प्रकार यहाँपर भी करना चाहिए ।

सयोगिकेवलीसे उपर्युक्त वारह योगवाले अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्त-संयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १११ ॥

जिस प्रकारसे ओघमें गुणकार सिद्ध किया है, उसी प्रकारसे यहाँपर भी सिद्ध करना चाहिए । केवल विशेषता यह है कि विवक्षित योगवाली जीवरशिके प्रमाणको जानकर अल्पबहुत्व करना चाहिए ।

उक्त वारह योगवाले अप्रमत्तमंतयोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ११२ ॥

सुगममेदं ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ११३ ॥

को गुणगारो ? पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागस्स संखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ११४ ॥

को गुणगारो ? आमलियाए असंखेज्जदिभागो । कारणं जाणिदूण वत्तव्वं ।

सभामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ११५ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । एत्थ वि कारणं गिहालिय वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ११६ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । जोगद्वयं समासं कादूण तेण साम्णरासिसोवहिय अप्पिदजोगद्वयए गुणिदे इच्छिद-इच्छिदरासीओ हेंति । अणेण पयरेण सब्बत्थ दव्वपमाणसुप्पाह्य अप्पाबहुअ वत्तव्वं ।

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त वारह योगवाले प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ११३ ॥ गुणकार क्या है ? पल्योपमके असंख्यातवें भागका संख्यातवां भाग गुणकार है ।

शेष स्वार्थ सुगम है ।

उक्त वारह योगवाले संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ११४ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इसका कारण जानकर कहना चाहिए ( देखो इसी भागका पृ २४९ ) ।

उक्त वारह योगवाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यात-गुणित हैं ॥ ११५ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । यहाँ पर भी इसका कारण स्मरण कर कहना चाहिए ( देखो इसी भागका पृ २५० ) ।

उक्त वारह योगवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात-गुणित हैं ॥ ११६ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है । योगसम्बन्धी कालोंका समास (योग) करके उससे सामान्यराशिको भाजित कर पुनः विवक्षित योगके कालसे गुणा करतेपर इच्छित इच्छित योगवाले जीवोंकी राशियां हो जाती हैं । इस प्रकारसे सर्वत्र द्रव्यप्रमाणको उत्पन्न करके उनका अल्पबहुत्व कहना चाहिए ।

**मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ॥११७॥**

एतद्युग्मं मंत्रयोः कायव्यो । तं जहा- पंचमणजोगि-पंचवचिजोगिअसंजदममा-  
दिद्वीहितो तेर्मि नेर जोगाणं मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा । को गुणगरो ? पदस्स  
असंखेज्जदिभागो, अर्मरेज्जाओ मेडीओ । क्कतियमेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभाग-  
मेत्ताओ । को पडियागो ? वणंगुलम्म अर्मखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदंगुलाणि ।  
कायजोगि-ओरालियहायजोगिअमंजदसम्मादिद्वीहितो तेस्स चेर जोगाणं मिच्छादिद्वी  
अणंतगुणा । को गुणगरो ? अभवमिदिदिहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो,  
अणंतानि मवाजीवराभिपडयवममूलाणि चि ।

**असंजदसम्मादिद्वि-संजदासंजद-पमत्तापमत्तसंजदद्वीणे सम्भत्त-  
प्पावहुअमोधं ॥ ११८ ॥**

एद्वेयं गुणद्वीणाणं जया ओवमिह सम्भत्तप्पावहुअं उच्चं, तथा एतय वि  
अणूणादिधं मत्तन् ।

उक्त वारह योगवाले अमंयतसम्पदद्वियोंमें ( पांचों मनोयोगी, पांचों वचन-  
योगी ) मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, और ( ताययोगी तथा औदारिक-  
काययोगी ) मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ ११७ ॥

यहपर इस प्रकार मन्बन्ध करना चाहिए । जैसे- पांचों मनोयोगी और पांचों  
वचनयोगी पंचयतसम्पदद्वियोंमें उन्हीं योगोंके मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ।  
गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातया भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगश्रेणी-  
प्रमाण है । ये जगश्रेणियां कितनी हैं ? जगश्रेणीके असंख्यातवं भागप्रमाण है । प्रतिभाग  
क्या है ? पनागुल्का असंख्यातया भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है ।  
काययोगी और औदारिककाययोगी असंयतसम्पदद्वियोंसे उन्हीं योगोंके मिथ्यादृष्टि  
जीव अनन्तगुणित हैं । गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणित और सिद्धोंसे  
भी अनन्तगुणित रहति गुणकार है, जो मंत्र जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

उक्त वारह योगवाले जीवोंमें असंयतसम्पददृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और  
अप्रमत्तसंयत गुणव्यपानमें मन्पत्तसम्बन्धी अल्पवहुत्व ओषके समान है ॥ ११८ ॥

इस प्रकार चारों गुणव्यपानोंका जिस प्रकार ओषमें सम्पत्त्वसम्बन्धी अल्प-  
वहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहांपर भी हीतता और अधिकतासे रहित अर्थात् तत्प्रमाण  
भी अल्पवहुत्व कहना चाहिए ।

**एवं तिसु अद्वासु ॥ ११९ ॥**  
सुगममेदं ।

**सव्वथोवा उवसमा ॥ १२० ॥**  
एदं पि सुगमं ।

**खवा संखेज्जगुणा ॥ १२१ ॥**

अपिदजोगउवसामगेहितो अपिदजोगाणं सवा संखेज्जगुणा । एतय पक्खेव-  
संखेवेण मूलरासिमोव्हिय अपिदपक्खेवेण गुणिय इच्छिदरासिपमाणमुपपाएदव्वं ।

**ओरालियमिस्सकायजोगीसु सव्वथोवा सजोगिकेवली ॥१२२॥**  
कत्ताडे चडणोरणक्रिययावावदचालीसजीवमल्लादो थोवा जादा ।

**असंजदसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १२३ ॥**

कुदो ? देव-णेरइय-मणुसेहितो आगंतूण तिरिक्खमणुसेसुप्पणाणं असंजद-  
सम्मादिद्वीणमोरासालियमिरसमिह सजोगिकेवलीहितो संखेज्जगुणाणमुवलंभा ।

इसी प्रकार उक्त वारह योगवाले जीवोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें  
सम्पत्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व है ॥ ११९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त वारह योगवाले जीवोंमें उपशामरु जीन सबसे कम हैं ॥ १२० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त वारह योगवाले उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १२१ ॥

विवक्षित योगवाले उपशामकोंसे विवक्षित योगवाले क्षपक जीव संख्यातगुणित  
होते हैं । यहांपर प्रक्षेप प्रक्षेपके द्वारा मूलजीवराशिको भाजित करके विवक्षित प्रक्षेप-  
राशिके गुणा कर इच्छित राशिका प्रमाण उत्पन्न कर लेना चाहिए ( देखो द्रव्यम  
भाग ३ पृ. ४८-४९ ) ।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सयोगिकेवली सबसे कम हैं ॥ १२२ ॥

क्योंकि, कपाटसमुद्घातके समय आरोहण और अवतरणक्रियामें संलग्न चालीस  
जीवोंके अवलम्बनसे औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सयोगिकेवली सबसे कम हो जाते हैं ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे असंयतसम्पददृष्टि जीव  
संख्यातगुणित हैं ॥ १२३ ॥

म्योंकि, देव, नारकी और मनुष्योंसे आकर तिर्यच और मनुष्योंमें उत्पन्न होने-  
वाले असंयतसम्पददृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगमें सयोगिकेवली जिनोंसे संख्यात-  
गुणित पाये जाते हैं ।

सासनसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १२४ ॥

को गुणगारो ? पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदेवमपढम-  
वग्गमूलाणि ।

मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ॥ १२५ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि  
सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिद्विहाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिद्वी ॥ १२६ ॥

दंसणमोहणीयखएणुप्पणसहहणं जीवाणमइदुल्लभत्तादो ।

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १२७ ॥

खओवसमियसम्मत्ताणं जीवाणं बहूणव्वुलंभा । को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

वेउव्वियकायजोगीसु देवगदिमंगो ॥ १२८ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोमैं असंयतसम्यग्दृष्टियोसि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव  
असंख्यातगुणित हैं ॥ १२४ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोमैं सासादनसम्यग्दृष्टियोसि मिथ्यादृष्टि जीव अनन्त-  
गुणित हैं ॥ १२५ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धौसे अनन्तगुणित और सिद्धौसे भी अनन्तगुणित  
राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोमैं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमैं क्षायिकसम्यग्दृष्टि  
जीव सबसे कम हैं ॥ १२६ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मके क्षयसे उत्पन्न हुए श्रद्धानवाले जीवोंका होना  
अतिदुर्लभ है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोमैं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमैं क्षायिकसम्यग्दृष्टियोसि  
वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ १२७ ॥

क्योंकि, क्षायोपशमिक सम्मस्ववाले जीव बहुत पाये जाते हैं । गुणकार क्या  
है ? संख्यात समय गुणकार है ।

वैक्रियिककाययोगियोमैं ( संभव गुणस्थानवर्ती जीवोंका ) अल्पबहुत्व देवगतिके  
समान है ॥ १२८ ॥

जथा देवगदिमिह अप्पावहुअं उच्चं, तथा वेउव्वियकायजोगीसु वत्तव्वं । तं जथा-  
सव्वत्थोवा सासनसम्मादिद्वी । सम्मामिच्छादिद्वी संखेज्जगुणा । असंजदसम्मादिद्वी  
असंखेज्जगुणा । मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा । असंजदसम्मादिद्विहाणे सव्वत्थोवा उवसम-  
सम्मादिद्वी । खइयसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा । वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सासनसम्मादिद्वी ॥ १२९ ॥

कारण पुव्वं व वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १३० ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एत्थ कारणं संभालिय वत्तव्वं ।

मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १३१ ॥

को गुणगारो ? पदस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए  
असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि  
पदंगुलाणि ।

जिस प्रकार देवगतिमे जीवोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार वैक्रियिककाय-  
योगियोमे कहना चाहिए । जैसे- वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे  
कम है । उनसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित है । उनसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव  
असंख्यातगुणित है । उनसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित है । असंयतसम्यग्दृष्टि  
गुणस्थानमैं वैक्रियिककाययोगी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं । उनसे क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है । उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोमैं सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १२९ ॥  
इसका कारण पूर्वके समान कहना चाहिए ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोमैं सासादनसम्यग्दृष्टियोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव  
संख्यातगुणित है ॥ १३० ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । यहांपर कारण  
संभालकर कहना चाहिए ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोमैं असंयतसम्यग्दृष्टियोसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात-  
गुणित हैं ॥ १३१ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो असंख्यात  
जगश्रेणिप्रमाण है । वे जगश्रेणिया भी जगश्रेणिके असंख्यातवै भागमात्र है । प्रशिभाग  
क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवा भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है ।

अमंजदसम्मादिद्विद्विणो सब्वथोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ १३२ ॥

कृते ? उवसमसम्मेत्तेण मत्त उवसमेदिमिह मद्दजीनाणमइथोवत्तादो ।

खइयसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १३३ ॥

उत्तामसंनितां मरोज्जगुणअसंजदयम्ममादिद्विआदिगुणद्वानोहिंतो संचयसंभवादो ।

वेदगमम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १३४ ॥

निगिमेहिंतो पलिदोवमसस असंखेज्जदिभागमेत्तेवेदगसम्मादिद्विजीनाणं देवेसु उतादसंभादो । ते गुणगतो ? पलिदोवमसस असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदो-वमपडमवग्गमूलाणि ।

आहारकायजोगिआहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदद्विणो  
सब्वथोवा खइयसम्मादिद्वी ॥ १३५ ॥

सुवममेदं ।

नैत्तिकियकमिथकाययोगियों असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दष्टि  
जीव सबवे कर्म हैं ॥ १३२ ॥

स्वयंकि, उपशमसम्यक्त्वके माय उपशमश्रेणीमें मेरे हुए जीवोंका प्रमाण अत्यन्त  
न्यून होता है ।

नैतिकियकमिथकाययोगियों असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दष्टि-  
योगोंमें धायिकसम्यग्दष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १३३ ॥

स्वयंकि, उपशमश्रेणीमें मेरे हुए उपशामकोंसे संख्यातगुणित असंयतसम्यग्दष्टि  
आदि गुणस्थानोंकी अपेक्षा धायिकसम्यग्दष्टियोंका संचय सम्भव है ।

नैतिकियकमिथकाययोगियों असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें धायिकसम्यग्दष्टियोंसे  
वेदकसम्यग्दष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १३४ ॥

स्वयंकि, तिर्यनोंसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमाय वेदकसम्यग्दष्टि जीवोंका  
उत्पन्न होता संभव है । गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग  
गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

आहारकाययोगी और आहारकमिथकाययोगियों प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें  
धायिकसम्यग्दष्टि जीव सबमे कर्म हैं ॥ १३५ ॥

यह मूल सुगम है ।

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १३६ ॥

एदं पि सुगमं । उवसमसम्मादिद्वीणमेत्थ संभवाभावा तेसिमपावदुगं ण कहिदं ।  
किमइ उवसमसम्मेत्तेण आहाररिद्वी ण उप्पज्जदि ? उवसमसम्मेत्तकालमिह अइदहरमिह  
तदुप्पत्तीए संभवाभावा । ण उवसमसेदिमिह उवसमसम्मेत्तेण आहाररिद्वीओ लब्भइ,  
तत्थ पमादाभावा । ण च ततो ओइण्णाण आहाररिद्वी उवलब्भइ, जत्तियमेत्तेण कालेण  
आहाररिद्वी उप्पज्जइ, उवसमसम्मेत्तस तत्तियमेत्तकालमवद्विणाभावा ।

कम्मइयकायजोगीसु सब्वथोवा सजोगिकेवली ॥ १३७ ॥

कुदो ? पदर-लेगएणसु उक्कस्सेण सट्ठिमत्तसजोगिहालीणमुवलभा ।

सासणसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १३८ ॥

कों गुणगतो ? पलिदोवमसस असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपडम-  
वग्गमूलाणि ।

आहारकाययोगी और आहारकमिथकाययोगियों प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें  
धायिकसम्यग्दष्टियोंमें वेदकसम्यग्दष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १३६ ॥

यह मूल भी सुगम है । इन दोनों योगोंमें उपशमसम्यग्दष्टि जीवोंका होता  
सम्भव नहीं है, इसलिए उनका अल्पवहुत्व नहीं कहा है ।

शंका—उपशमसम्यक्त्वके साथ आहारककच्छि स्वयं नहीं उत्पन्न होती है ?

समाधान—स्वयंकि, अत्यन्त अल्प उपशमसम्यक्त्वके कालमें आहारककच्छिका  
उत्पन्न होना सम्भव नहीं है । न उपशमसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीमें आहारककच्छि पाई  
जाती है, स्वयंकि, बहुपर प्रमादका अभाव है । न उपशमश्रेणीसे उत्तर हुए जीवोंके भी उप-  
शमसम्यक्त्वके साथ आहारककच्छि पाई जाती है, स्वयंकि, जितने कालके द्वारा आहारक-  
कच्छि उत्पन्न होती है, उपशमसम्यक्त्वका उतने काल तक अवस्थान नहीं रहता है ।

कार्मणकाययोगियों सयोगिकेवली जिन सबसे कम हैं ॥ १३७ ॥

स्वयंकि, प्रतर और लोकपूरणसमुदातमें अधिकसे अधिक केवल साठ सयोगि-  
केवली जिन पाये जाते हैं ।

कार्मणकाययोगियों सयोगिकेवली जिनोंसे सासादनसम्यग्दष्टि जीव असंख्यात-  
गुणित हैं ॥ १३८ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।



असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १३९ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एत्थ कारणं णादूण वत्तवं ।

मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ॥ १४० ॥

को गुणगारो ? असमसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि

सच्चजीवरासिपढमवगाम्भूलाणि ।

असंजदसम्मादिद्विहाणे सवत्थोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ १४१ ॥

कुदो ? उवसमसेडिग्घि उवसमसम्मत्तेण मदसंजदणं संखेज्जत्तादो ।

खइयसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १४२ ॥

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तखइयसम्मादिद्वीहिंतो असंखेज्जजीवा विग्गहं  
किण कंति ति उत्ते उच्चदे- ण ताव देवा खइयसम्मादिद्विणां असंखेज्जा अक्कमेण  
मंरति, मणुसेसु असंखेज्जखइयसम्मादिद्विप्पसंगा । ण च मणुसेसु असंखेज्जा मंरति,

कार्मणकाययोगियोंमें सात्वादनसम्यग्दृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात-  
गुणित हैं ॥ १३९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । यहाँपर इसका  
कारण जानकर कहना चाहिए । ( देखो इसी भागका पृ. २५१ और तृतीय भागका  
पृ. ४११ )

कार्मणकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित  
हैं ॥ १४० ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणा  
गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

कार्मणकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव  
सबसे कम हैं ॥ १४१ ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणीमें उपशमसम्यग्दृष्टिके साथ मरे हुए संयतोंका प्रमाण  
संख्यात ही होता है ।

कार्मणकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे  
क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४२ ॥

शंका—पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे असंख्यात  
जीव विशद क्यों नहीं करते हैं ?

समाधान—पेस्ली आशंकापर आचार्य कहते हैं कि न तो असंख्यात क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टि देव एक राशय मरते हैं, अन्यथा मनुष्योंमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके  
होनेका प्रसंग का जायगा । न मनुष्योंमें ही असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव मरते हैं,

तथासंखेज्जाणं सम्मादिद्वीणमभावा । ण तिरिक्खा असखज्जा मारणंतियं कंति, तत्थ  
आयाणुसारिवयत्तादो । तेण विग्गहर्दीए खइयसम्मादिद्विणो संखेज्जा चैव हेति ।  
होंता वि उवसमसम्मादिद्वीहिंतो संखेज्जगुणा, उवसमसम्मादिद्विहाणुगो खइयसम्मा-  
दिद्विहाणुगस्स संखेज्जगुणत्तादो ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १४३ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग-  
मूलाणि । को पडिभागां ? खइयसम्मादिद्विरासिगुणिदअसंखेज्जावलियाओ ।

एव जोगमगणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु दोसु वि अद्वासु उवसमा पवेसणेण  
तुल्ला थोवां ॥ १४४ ॥

क्योंकि, उनमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका अभाव है । न असंख्यात क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टि तिर्यच ही मारणान्तिकसमुद्धात करते हैं, क्योंकि, उनमें आयके अनुसार व्यय  
होता है । इसलिए विशदगतिमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यात ही होते हैं । तथा  
संख्यात होते हुए भी वे उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उपशम-  
सम्यग्दृष्टियोंके ( आयके ) कारणसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके ( आयका ) कारण संख्यात-  
गुणा है ।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगमें पाये जानेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीव तो केवल  
उपशमश्रेणीसे मरकर ही आते हैं, किन्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीके अतिरिक्त  
असंयतसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानोंसे मरकर भी कार्मणकाययोगमें पाये जाते हैं । अतः  
उनका संख्यातगुणित पाया जाना स्वतः सिद्ध है ।

कार्मणकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे  
वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४३ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो पल्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? क्षायिकसम्यग्दृष्टि राशिसे गुणित  
असंख्यात आवलियां प्रतिभाग है ।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्वीविदियोंमें अपूर्वकरण और अनिष्टचिकरण, इन दोनों  
ही गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १४४ ॥

दसपरिमाणत्वात् ।

स्ववा संखेज्जगुणा ॥ १४५ ॥

त्रीणपरिमाणत्वात् ।

अपमत्तसंजदा अस्ववा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १४६ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जगुणा ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १४७ ॥

को गुणगारो ? दो रूपाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १४८ ॥

को गुणगारो ? पल्लिदोपमस्य असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदोवमपदम-  
वगमूलाणि । को पडिभागो ? संखेज्जरूपगुणिदअसंखेज्जाणियाओ ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १४९ ॥

को गुणगारो ? आपलियाए असंखेज्जदिभागो । किं कारणं ? अणुहसासणगुणस्स

त्थोकि, त्थियेयं उपशामक जीवोका प्रमाण वृत्त हे ।

स्त्रीपेदियोंमें उपशामकोसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४५ ॥

व्यर्थिक, उन्नत परिमाण थीस है ।

स्त्रीपेदियोंमें क्षपकोसे अक्षपक और अणुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यात-  
गुणित हैं ॥ १४६ ॥

गुणकार क्या है ? सख्यात समय गुणकार है ।

स्त्रीपेदियोंमें अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४७ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

स्त्रीपेदियोंमें पमत्तसंयतोसे संयतसंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४८ ॥

गुणकार क्या है ? पद्योपमका असख्यातत्वां भाग गुणकार है, जो पद्योपमके  
भारख्यात पदम त्रिभूत्प्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? सख्यात रूपोंसे गुणित असं-  
ख्यात आपत्तियां प्रतिभाग है ।

स्त्रीपेदियोंमें संयतसंयतोसे सामादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४९ ॥

गुणकार क्या है ? आपत्तीका नसंख्यातत्वां भाग गुणकार है ।

शंका — इसका कारण क्या है ?

समाधान — स्त्रीकि, अणुभ सासादनगुणस्थानका पाना सुलभ है ।

१) श्री १३०. शिष्यायोग ३. ३३३. का ५३.

सुलहत्त्वात् ।

सम्मागिच्छइट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५० ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । किं कारणं ? मासणायादो संखेज्जगुणाप-  
संभादो ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५१ ॥

को गुणगारो ? आपलियाए असंखेज्जदिभागो । किं कारणं ? सम्माभिन्नादिट्ठि-  
आयं पेक्खिसदूण असंखेज्जगुणायत्तादो ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५२ ॥

को गुणगारो ? पदस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए  
असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, अमसंखेज्जाणि  
पदंगुलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठिसंजदासंजदट्ठुणे सव्वथोवा खइयसम्मादिट्ठी

॥ १५३ ॥

स्त्रीपेदियोंमें मासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्भिन्नाद्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ १५० ॥

गुणकार क्या है ? सख्यात समय गुणकार है । इसका कारण यह है कि  
सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानकी आयसे सम्यग्भिन्नाद्यादृष्टि जीवोंकी संख्यातगुणित आय  
सम्भव है, अर्थात् दूसरे गुणस्थानमें अितने जीव आते हैं, उनसे संख्यातगुणित जीव  
तीसरे गुणस्थानमें आते हैं ।

स्त्रीपेदियोंमें सम्यग्भिन्नाद्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ १५१ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असख्यातत्वा भाग गुणकार है । इसका कारण  
यह है कि सम्यग्भिन्नाद्यादृष्टि जीवोंकी आयको देखते हुए असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी  
असंख्यातगुणी आय होती है ।

स्त्रीपेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५२ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातत्वा भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके  
असंख्यातत्वं भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका  
असंख्यातत्वा भाग प्रतिभाग है जो असंख्यात प्रतरंगुलप्रमाण है ।

स्त्रीपेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि  
जीव सबसे कम हैं ॥ १५३ ॥

संखेज्जमेतत्तादो ।

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५४ ॥

को गुणगारो ? पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदोवमपढम-  
वग्गमूलाणि । को पडिभागो ? असंखेज्जावलियपडिभागो ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५५ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

पमत-अपमतसंजदद्वणो सव्वत्थोवा खहयसम्मादिट्ठी ॥ १५६ ॥

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५७ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५८ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुग्गमाणि ।

एवं दोसु अद्वासु ॥ १५९ ॥

क्योंकि, स्त्रीवेदियोंमें सख्यात रूपमात्र ही क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव पाये जाते हैं।  
स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्य-  
ग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५४ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात आवलियां प्रतिभाग है ।

स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे  
वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

स्त्रीवेदियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव  
सबसे कम हैं ॥ १५६ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १५७ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित है ॥ १५८ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुग्गम हैं ।

इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें स्त्रीवेदियोंका  
अल्पबहुत्व है ॥ १५९ ॥

सव्वत्थोवा खहयसम्मादिट्ठी, उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा, इच्चेदेण साधम्मदो ।  
सव्वत्थोवा उवसमा ॥ १६० ॥

एदं सुत्तं पुणरुत्त किण्ण होदि ? ग, एत्थ यवेसएहि अहियाराभावा । संचएण  
एत्थ अहियारो, ण सो पुब्बं परूविदो । तदो ण पुणरुत्तत्तमिदि ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १६१ ॥

सुग्गमेदं ।

पुरिसवेदएसु दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा  
॥ १६२ ॥

चउवण्णपमाणत्तादो ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १६३ ॥

अहुत्तरसदमेत्तत्तादो ।

क्योंकि, इन दोनों गुणस्थानोंमें स्त्रीवेदी क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं,  
और उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उनसे संख्यातगुणित होते हैं, इस प्रकार ओघके साथ  
समानता पाई जाती है ।

स्त्रीवेदियोंमें उपशमक जीव सबसे कम हैं ॥ १६० ॥

शंका—यह सूत्र पुनरुक्त क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहां पर प्रवेशकी अपेक्षा इस सूत्रका अधिकार नहीं  
है, किन्तु सचयकी अपेक्षा यहांपर अधिकार है और वह संबय पहले प्ररूपण नहीं किया  
गया है । इसलिये यहांपर कहे गये सूत्रके पुनरुक्ता नहीं है ।

स्त्रीवेदियोंमें उपशमकोसे क्षपक जीव संख्यातगुणित है ॥ १६१ ॥  
यह सूत्र सुग्गम है ।

पुरुषवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशमक  
जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प है ॥ १६२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

पुरुषवेदियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानोंमें उपशमकोसे क्षपक जीव संख्यात-  
गुणित है ॥ १६३ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण एक सौ आठ है ।

अथमत्तसंजदा अस्ववा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १६४ ॥

तो गुणगारो ? मंगेज्जगमया ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १६५ ॥

तो गुणगारो ? त्रेणि रूपाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १६६ ॥

को गुणगारो ? पल्लितोपमस्य असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लितोवमपडम-  
रगमूलाणि ।

सासगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १६७ ॥

को गुणगारो ? आल्लियाण् अमंगेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

साममिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १६८ ॥

को गुणगारो ? मंगेज्जसमया । सेसं सुगमं ।

पुक्तोदियोमं दोनो गुणस्थानोमं क्षपकोमे अक्षपक और अनुपशामक अग्रमत्त-  
मंगन संख्यातगुणित हैं ॥ १६४ ॥

गुणकार क्या है ? सख्यात समय गुणकार है ।

पुक्तोदियोमं अग्रमत्तमंगतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १६५ ॥

गुणकार क्या है ? त्रे रूप गुणकार है ।

पुक्तोदियोमं प्रमत्तमंगतोमे मंग्यतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १६६ ॥

गुणकार क्या है ? पन्थापमत्ता अमख्यातवा भाग गुणकार है, जो पत्थोपमके  
असख्यात मंग्य मंगमूल्यमाण है ।

पुक्तोदियोमं संयतामंगतोमे सामादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ १६७ ॥

गुणकार क्या है ? आवर्तीका असंयतवा भाग गुणकार है । शेष स्वार्थ  
सुगम है ।

पुक्तोदियोमं सामादनसम्यग्दृष्टियोमे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ १६८ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । शेष स्वार्थ सुगम है ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १६९ ॥

को गुणगारो ? आल्लियाण् अमंगेज्जदिभागो ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १७० ॥

को गुणगारो ? पदरस असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ मेडीओ सेडीए  
असंखेज्जदिभागमेत्ताओ ।

असंजदसम्मादिट्ठी-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदद्दुणे सम्मत्त-  
प्पावहुअमोयं ॥ १७१ ॥

एदोसिं जथा ओघस्सिह् सम्मत्तप्पावहुअं उतं तथा वत्तब्बं ।

एवं दोसु अद्वासु ॥ १७२ ॥

सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी, राह्यसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा; इच्चेदिहि माथम्मामो ।

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ १७३ ॥

पुरुषवेदियोमं सम्यग्मिथ्यादृष्टियोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ १६९ ॥

गुणकार क्या है ? आवर्तीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

पुरुषवेदियोमं असंयतसम्यग्दृष्टियोमे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ १७० ॥

गुणकार क्या है ? जगत्प्रतरका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो जगत्प्रेणीक  
असंख्यातवे भागमात्र असंख्यात जगत्प्रेणीप्रमाण है ।

पुरुषवेदियोमं असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत  
गुणस्थानोमं सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ १७१ ॥

इन गुणस्थानोंका जिस प्रकार ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है,  
उसी प्रकार यहाँपर कहना चाहिए ।

इसी प्रकार पुरुषवेदियोमं अपूर्वकरण और अनिष्टचित्करण, इन दोनों गुणस्थानोमं  
सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ १७२ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम है और श्रायिकसम्यग्दृष्टि जीव  
उनसे संख्यातगुणित है, इस प्रकार ओघके साथ समात्ता पाई जाती है ।

पुरुषवेदियोमं उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ १७३ ॥

अवगदेवेदसु दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवां  
॥ १९१ ॥

उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ १९२ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १९३ ॥

कुदो ? अहुत्तरमदस्मानत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ १९४ ॥

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया  
चेव ॥ १९५ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ १९६ ॥

एदं पि सुगमं ।

एव वेदमगणा समत्ता ।

अपगतवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिष्टित्करण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उप-  
शामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १९१ ॥

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९२ ॥  
ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

अपगतवेदियोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थसे क्षपक जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ १९३ ॥

क्योंकि, इनका प्रमाण एक सौ आठ है ।

अपगतोदियोंमें क्षीणरूपायवीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९४ ॥

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और  
पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९५ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

सयोगिकेवली संवयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ १९६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु  
दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवां ॥ १९७ ॥

सुगममेदं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १९८ ॥

को गुणगरो ? दो रूवाणि ।

णवरि विसेसा, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइय-उवसमा विसेसा-  
हिया ॥ १९९ ॥

दोउवसामयपवेसएहितो संखेज्जगुणे दोगुणद्वानपवेसयक्खवए पेविखदूण  
कथं सुहुमसांपराइयउवसामया विसेसाहिया ? ण एस दोसो, लोभकसाएण खवएसु  
पविसंतजीवे पेविखदूण तेसिं सुहुमसांपराइयउवसामएसु पविसंतानं चउवणपरिमाणानं

कषायमार्गणोंके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभ-  
कषायियोंमें अपूर्णकरण और अनिष्टित्करण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक जीव  
प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १९७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चारो कषायवाले जीवोंमें उपशामकसे क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ १९८ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

केवल विशेषता यह है कि लोभकषायी जीवोंमें क्षपकोसे सूक्ष्मसाम्परायिक  
उपशामक-विशेष अधिक हैं ॥ १९९ ॥

शंका—अपूर्वकरण और अनिष्टित्करण, इन दो उपशामक गुणस्थानोंमें प्रवेश  
करनेवाले जीवोंसे संख्यातगुणित प्रमाणवाले इन्हीं दो गुणस्थानोंमें प्रवेश करनेवाले  
क्षपकोंको देखकर अर्थात् उनकी अपेक्षासे सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक विशेष अधिक  
कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, लोभकषायके उदयसे क्षपकोंमें प्रवेश  
करनेवाले जीवोंका देखते हुए लोभकषायके उदयसे सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामकोंमें  
प्रवेश करनेवाले और चौपन संख्यारूप परिमाणवाले उन लोभकषायी जीवोंके विशेष

१ मयाप्राप्तवित्तं क्रोयमानमायाक्खयाणां पुवेदवत् । ५×५ लोभकषायणां द्रयोपशमक्रयोस्तुल्ला  
सख्या । क्षपकां सखेयगुणा । सूक्ष्मसाम्परायगुणुपशमकसयत्तां । विशेषाधिना । त्सममाप्यायक्षपका  
सखेयगुणा । शेषाणां मामायत्त । स. सि १, ८

२ प्रतिपु 'सखेज्जगुणे' इति पाठ. ।

विमेषाद्विजाग्रिमोहा । इदो ? लोभकर्मणुं चि विमेषादो ।

स्वया संखेज्जगुणा ॥ २०० ॥

उपागमोहितो सगणं दुगुणलुपलंभा ।

अप्रमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २०१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

पमतसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २०२ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि । चट्टकसायअप्पमतसंजदाणमेरथ संदिद्धी २ । ३ ।

४ । ७ । पमतसंजदाणं संदिद्धी ४ । ६ । ८ । १ । ४ ।

अधिक नानेमें मोई तिरोध नहीं है । तिरोध न होनेका कारण यह है कि सूत्रमें ' लोभ-  
कयायी जीवोंमें ' केना विशेषणपर दिया गया है ।

लोभकयायी जीवोंमें सुक्ष्ममात्मपर्यायिक उपशामकोमे दुक्ष्मसात्मपर्यायिक क्षपक  
संख्यातगुणित है ॥ २०० ॥

क्योंकि, उपशामकोंसे क्षपक जीवोंका प्रमाण दुगुणा पाया जाता है ।

चारों कयायवाले जीवोंमें क्षपकोंमे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत  
संख्यातगुणित है ॥ २०१ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

चारों कयायवाले जीवोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित है ॥ २०२ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है । यहा चारों कयायवाले अप्रमत्तसंयतोंका  
प्रमाण या बल्ययान्तर वतगोनंवाली अंकसंख्या इस प्रकार है- २ । ३ । ४ । ७ । तथा  
चारों कयायवाले प्रमत्तसंयतोंकी अंकसंख्या ४ । ६ । ८ और १४ है ।

विशेषार्थ—यहा पर चतु कयायी अप्रमत्त और प्रमत्त संयतोंके प्रमाणका ज्ञान  
करनेके लिये जो अंकसंख्या वतलाई गई है, उसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य तिर्यचोंमें  
मानकयायका काल समझे कम है, उससे क्रोध, माया और लोभकयायका काल उत्तरो-  
त्तर विशेष अधिक होता है । (देखो भाग ३, पृ. ४२५) । तदनुसार यहां पर अप्रमत्त-  
संयत और प्रमत्तसंयतोंका अंकसंख्या द्वारा प्रमाण वतलाया गया है कि मानकयाय-  
वाले अप्रमत्तसंयत सबसे कम है, जिनका प्रमाण अंकसंख्यामें (२) दो वतलाया गया  
है । इनमें क्रोधकयायवाले अप्रमत्तसंयत विशेष अधिक होते हैं, जिनका प्रमाण अंक-  
संख्यामें (३) तीन वतलाया गया है । इनसे मायाकयायवाले अप्रमत्तसंयत विशेष  
अधिक होते हैं, जिनका प्रमाण अंकसंख्यामें (४) चार वतलाया गया है । इनसे लोभ-  
कयायवाले अप्रमत्तसंयत विशेष अधिक होते हैं, जिनका प्रमाण अंकसंख्यामें (७) सात  
वतलाया गया है । चूंकि अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयतोंका प्रमाण दुगुणा माना गया है,  
इसलिए यहाँ अंकसंख्यामें भी उनका प्रमाण कमशः दूना ४, ६, ८ और १४ वतलाया गया  
है । यह अंकसंख्या काल्पनिक है, और उसका अभिप्राय स्थूल रूपसे चारों कयायोंका

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा' ॥ २०३ ॥

को गुणगारो ? पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदोवमपढम-  
वग्गमूलाणि ।

सासणसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ २०४ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

सम्माभिच्छादिद्धी संखेज्जगुणा ॥ २०५ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

असंजदसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ २०६ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

मिच्छादिद्धी अणंतगुणा' ॥ २०७ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणे, सिद्धेहि वि अणंतगुणे, अणंतानि  
सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि ।

परस्पर आपेक्षिक प्रमाण वतलाभा मात्र है । इसी हीनाधिकताके लिए देखो भाग ३,  
पृ. ४३४ आदि ।

चारों कयायवाले जीवोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणित है ॥ २०३ ॥  
गुणकार क्या है ? पल्लोपमता असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

चारों कयायवाले जीवोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित  
है ॥ २०४ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

चारों कयायवाले जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यात-  
गुणित है ॥ २०५ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

चारों कयायवाले जीवोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यात-  
गुणित है ॥ २०६ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है ।

चारों कयायवाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणित  
है ॥ २०७ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणा  
प्रमाण गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

१ प्रतिशु ' सज्जामज्जदाखेज्जगुणा ' इति पाठः ।

२ अथ तु विशेषः मिय्याद्वयोऽनन्तगुणा । स. वि. १, ८.

असंजदस्मादिट्टि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजददृष्टाणे सम्मत्त-

प्पावहुअमोघं ॥ २०८ ॥

एदंस्सि जघा ओघमिह सम्मत्त-प्पावहुअं उतं तथा वचवं, विसेसाभावादो ।

एवं दोसु अद्दासु ॥ २०९ ॥

जघा पमत्तापमत्ताण सम्मत्त-प्पावहुअं परूविदं, तथा दोसु अद्दासु परूवेदवं ।  
णवरि लोभकस्सायस्स एवं तिसु अद्दासु चि वचवं, जाव सुहुमसांपराइओ चि लोभ-  
कस्सायउवलंभा । एवं सुत्ते किण्ण परूविदं ? परूविदमेव पवेसप्पावहुअसुत्तेण । तेणेव  
एतो अत्थो णव्वदि चि पुध ण परूविदो ।

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २१० ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २११ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

चारों कपायमाले जीवोमे असंयत्तसम्यग्दृष्टि, संयत्तासंयत, प्रमत्तसंयत और  
अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ २०८ ॥  
इन सूत्रोंक गुणस्थानोंका जिस प्रकार ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व  
कहा है, उसी प्रकार यहापर कहना चाहिए, क्योंकि, दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिष्टचिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें चारों कपाय-  
वाले जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ २०९ ॥

जिस प्रकारसे चारों कपायवाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी  
अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिष्टचिकरण, इन दो गुणस्थानोंमें  
कहना चाहिए । किन्तु विशेषता यह है कि लोभकपायका इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि  
तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है, ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि, सूक्ष्म-  
साम्पराय गुणस्थान तक लोभरूपायका सद्भाव पाया जाता है ।

शंका—यदि ऐसा है, तो इसी प्रकारसे सूत्रमें क्यों नहीं प्ररूपण किया ?

समाधान—प्रवेशसम्बन्धी अल्पबहुत्व सूत्रके द्वारा सूत्रमे उक्त वात प्ररूपित की  
हो गई है । और उसी प्रवेशसम्बन्धी अल्पबहुत्व सूत्रके द्वारा यह ऊपर कहा गया अर्थ  
जाना जाता है, इसलिए उसे यहांपर पृथक् नहीं कहा है ।

चारों कपायवाले उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २१० ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २११ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

अकसाईसु सव्वत्थोवा उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था ॥ २१२ ॥  
चउवणपरिमाणत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था संखेज्जगुणा ॥ २१३ ॥

अहुत्तरसदपरिमाणत्तादो ।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया  
चेव ॥ २१४ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ २१५ ॥

कुदो ? अणूणाधियओघरासिचादो ।

एवं कसायमगणा समत्ता ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु सव्व-  
त्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ २१६ ॥

अकपायी जीवोंमें उपशान्तकपायवीतरागछदुमत्त सबसे कम हैं ॥ २१२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चोपन है ।

अकपायी जीवोंमें उपशान्तकपायवीतरागछदुमत्तसे क्षीणकपायवीतरागछदुमत्त  
संख्यातगुणित हैं ॥ २१३ ॥

क्योंकि, उनका परिमाण एक सौ आठ है ।

अकपायी जीवोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दोनों ही प्रवेशकी  
अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २१४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अकपायी जीवोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ २१५ ॥  
क्योंकि, उनका प्रमाण ओघघरासिसे न कम है, न अधिक है ।

इस प्रकार कपायमार्गणा समाप्त हुई ।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादेसे मत्तज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें  
सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ २१६ ॥

कृदो ? पल्लिवेगमस्य अमरेज्जिदिभागपरिमाणत्वादे ।

**मिच्छादिद्वी अणंतगुणा, मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥२१७॥**

एतस्य मंत्रं मंत्रयो मीरटे- मदि-मुद-अण्णाणिमासणेहितो मिच्छादिद्वी अणंतगुणा । को गुणगारो ? सव्यजीवताभिस्म अमरेज्जिदिभागो । विभंगणाणिसासणेहितो तेसिं चैव मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? पदस्स असंखेज्जिदिभागो, असंखेज्जाओ मेडीओ, मेडीए अमरेज्जिदिभागमेचाओ । को पडिभागो ? वणंगुलस्स अमरेज्जिदिभागो, अमरेज्जाणि पदंगुलाणि ति । अण्णाहि विप्पडिमेहत्तादे ।

**आभिणिचोहिय-मुद-ओधिणाणीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवे-  
सणेण तुल्ला थोवा ॥ २१८ ॥**

गुणमेदं ।

**उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चैव ॥ २१९ ॥**

स्वयंकि, उक्ता परिमाण पल्लोपमके असंख्यातवें भागमात्र है ।

उक्त तीनों अज्ञानी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणित हैं, मिथ्यादृष्टि असंख्यात-  
गुणित हैं ॥ २१७ ॥

यहांपर इस प्रकार स्वार्थ सम्यग्च करना चाहिये- मल्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी सम्भारत मस्यउल्लियोने मल्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं । गुणकार क्या है? नरें जीवराशिका असंख्यातवां भाग गुणकार है । विभंगज्ञानी तासादन-मस्यउल्लियोसं उनके ही मिथ्यादृष्टि अर्थात् विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात-गुणित हैं । गुणकार क्या है? जगत्प्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगत्श्रेणीके प्रमत्त्यातवें भागमात्र असंख्यात जगत्श्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है? वनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है । यदि इस प्रकार स्वर्गा क्रमं न जिन जायगा, तो परस्पर विरोध प्राप्त होगा ।

**आभिनिचोधिक्रानानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणान्यातोंमें उपशामक प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २१८ ॥**

यह सूत्र सुगम है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें उपशान्तकपायवीतरागछुदुमत्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ २१९ ॥

१ मिथ्यादृष्टयोऽमल्येयगुणाः । ग. सि. १, ८.

२ मदिमु 'पद' इति पाठ ।

३ मरीशुवाणित्थानिण पडंत तोसापन्ना उपशामक । क. सि. १, ८.

पदं पि सुगमं ।

**खवा संखेज्जगुणा ॥ २२० ॥**

को गुणगारो ? दोष्णि रूवाणि ।

**खीणकसायवीदरागछुदुमत्था तेत्तिया चैव ॥ २२१ ॥**

सुगमेदं ।

**अपमत्तसंजदा अक्खवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २२२ ॥**

कुदो ? अण्णाहियओघरासिच्चादो ।

**पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २२३ ॥**

को गुणगारो ? दोष्णि रूवाणि ।

**संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ २२४ ॥**

यह सूत्र भी सुगम है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें उपशान्तकपायवीतरागछुदुमत्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२० ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें क्षपकोंसे क्षीणकपायवीतरागछुदुमत्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ २२१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें क्षीणकपायवीतरागछुदुमत्थोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२२ ॥

स्वयंकि, उक्ता प्रमाण ओघराशित्से न कम है, न अधिक है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यात-  
गुणित हैं ॥ २२३ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यात-  
गुणित हैं ॥ २२४ ॥

१ चत्वार क्षपकाः सत्येयगुणा । स. सि. १, ८.

२ अप्रमत्तमयथा सत्येयगुणा । क. सि. १, ८.

३ प्रमत्तमयथा सत्येयगुणा । ग. सि. १, ८.

४ सयतामयता (अ-) सत्येयगुणाः । क. सि. १, ८.



कुदो ? पल्लिदोवमस्म असंखेज्जदिभागपरिमाणत्तादो । को गुणगारो ? पल्लिदो-  
वमस्म असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदोवमपढमवगमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ २२५ ॥

कुदो ? पहाणीकयदेवअसंजदसम्मादिट्ठिरासित्तादो । को गुणगारो ? आवलियाए  
असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत-अपमतसंजदद्वहणे सम्मत-  
प्पावहुगमोधं ॥ २२६ ॥

जधा ओवम्हि एदेसिं सम्मतप्पावहुअं परूविदं, तथा परूवेदव्वमिदि वुत्तं होदि ।  
एवं तिसु अद्वासु ॥ २२७ ॥

सव्वथोवा उवसमा ॥ २२८ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २२९ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

क्योंकि, उक्तका परिमाण पल्लोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । गुणकार क्या  
है ? पल्लोपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूल-  
प्रमाण है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें संयतासंयतोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असं-  
ख्यातगुणित है ॥ २२५ ॥

क्योंकि, यहापर असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंकी राशि प्रधानतासे स्वीकार की गई  
है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत  
और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ २२६ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है,  
उसी प्रकार यहांपर भी प्ररूपण करना चाहिये, यह अर्थ कहा गया है ।

इसी प्रकार मति, श्रुत और अवधिज्ञानी जीवोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुण-  
स्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ २२७ ॥

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २२८ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२९ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

१ जमयतमप्यग्दृष्टय (अ) मल्लेयगुणा । स ति १, ८

मणपज्जवणाणीसु तिसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा  
॥ २३० ॥

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २३१ ॥

खवा संखेज्जगुणां ॥ २३२ ॥

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २२३ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अपमतसंजदा अम्बवा अणुवसमा संखेज्जगुणां ॥ २३४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जरूवाणि ।

पमतसंजदा संखेज्जगुणां ॥ २३५ ॥

को गुणगारो ? दोणि रूवाणि ।

पमत-अपमतसंजदद्वहणे सव्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २३६ ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव  
प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २३० ॥

उपशान्तकपायवीतरागछद्वस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २३१ ॥

उपशान्तकपायवीतरागछद्वस्योसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३२ ॥

क्षीणकपायवीतरागछद्वस्य पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २३३ ॥

ये सूत्र सुगम है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें क्षीणकपायवीतरागछद्वस्योसे अक्षपक और अनुपशामक  
अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात रूप गुणकार है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३५ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशामसम्यग्दृष्टि  
जीव सबसे कम हैं ॥ २३६ ॥

१ मन पर्ययज्ञानियु सर्वत स्तोकात्तत्वार उपशामका । स ति १, ८. तेषां सख्या १० । गो. जी. ६३०

२ चत्वार क्षपकाः सल्लेयगुणा । स ति १, ८ तेषां सख्या २० । गो जी ६३०

३ अप्रमत्तसंयताः सल्लेयगुणा । स ति १, ८

४ प्रमत्तमयता सल्लेयगुणाः । स ति १, ८

उपसर्गमर्दोऽत्रोद्विगणानां उपसर्गमर्दं नद्विगणानां वा उपसर्गमर्दत्वेण शोचानां जीवानामुत्सवार्थमे ।

स्वहयसम्माद्विही संखेज्जगुणा ॥ २३७ ॥

एतदयमस्यत्वेण मणपञ्जगणानिमुनिवर्गणं नद्विगणानामुत्सवार्थमे ।

वेदगसम्माद्विही संखेज्जगुणा ॥ २३८ ॥

गुणमर्दं ।

एवं तिसु अद्वासु ॥ २३९ ॥

सम्बन्धोवा उपसमा ॥ २४० ॥

स्ववा संखेज्जगुणा ॥ २४१ ॥

एतद्विगणानि मुत्तानि गुणमणि, नद्विगणानि पुरुषविदत्तादो ।

केवलगणानिसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ २४२ ॥

स्वयंकि, उपसर्गमर्दं उत्तरनेवाले, अथवा उपसर्गमर्दं उपसर्गमर्दं उत्तरनेवाले मन.पर्यय-  
जान्ती थोदुं जोउ उपसर्गमर्दं स्वयंके साय पाये जाते हैं ।

मनःपर्ययवानियोंमें प्रसक्तसंयत और अप्रसक्तसंयत गुणस्थानमें उपसर्गमर्दं स्वयंके-  
गोमे थायिस्वयंकेद्विही जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३७ ॥

स्वयंकि, उक्त गुणस्थानमें क्षयिकस्वयंके साय बहुतसे मन.पर्ययजान्ती  
मुत्तार पाये जाते हैं ।

मनःपर्ययवानियोंमें प्रसक्तसंयत और अप्रसक्तसंयत गुणस्थानमें क्षयिकस्वयं-  
केद्विहीमें वेदकस्वयंकेद्विही जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३८ ॥

या मूत्र सुगम है ।

इमी प्रकार मनःपर्ययवानियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन उपसर्गमर्दं गुणस्थानोंमें  
स्वयंकेद्विही अल्पाहुत्वं है ॥ २३९ ॥

मनःपर्ययवानियोंमें उपसर्गमर्दं जीव स्वसे कम है ॥ २४० ॥

उपसर्गमर्दं जीवोंमें क्षयिक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २४१ ॥

ये तीनों सूत्र सुगम हैं, स्वयंकि, वे बहुत चार प्रकरण किये जा चुके हैं ।

केवलगणानियोंमें सजोगिकेवली और अजोगिकेवली जिन प्रवेगकी अपेक्षा दोनों  
ही तुल्य और तावन्मात्र ही हैं ॥ २४२ ॥

१ य स्वयंकेद्विही 'अपत्तं' शोचिगण' रति पाठ ।

तुल्ला तत्तिया सदा हेउ-हेउमंतभावेण जोजेयव्वा । तं कथं ? जेण तुल्ला, तेण  
तत्तिया त्ति । केत्तिया ते ? अहुत्तरसयसेत्ता ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणां ॥ २४३ ॥

पुव्वकोडिकालसिंहि संचयं गदा सजोगिकेवलीणो एवाससयपवेसगेत्तितो मरेज्ज-  
गुणा, संखेज्जगुणेण ऋलेण मिलिदत्तादो ।

एव गणसगुणा समत्ता ।

संजमानुवादेण संजदेसु तिसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला  
शोवा ॥ २४४ ॥

कुदो ? चउवणपमाणात्तादो ।

उवसंतकसायवीदरागच्छुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २४५ ॥

सुगममर्दं ।

स्ववा संखेज्जगुणा ॥ २४६ ॥

तुल्य और तावन्मात्र, ये दोनों शब्द हेतु हेतुमद्रावसे सम्बन्धित क्रिया चारिण।  
शंका—नह कैसे ?

समाधान—चूंकि, सजोगिकेवली और अजोगिकेवली परस्पर तुल्य हैं, इनलिण  
वे तावन्मात्र अर्थात् पूर्वोक्त प्रमाण है ।

शंका—वे कितने हैं ?

समाधान—वे एक सौ आठ संख्याप्रमाण हैं ।

केवलगणानियोंमें सजोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित है ॥ २४३ ॥

पूर्वकोटीप्रमाण कालमें संचयको प्राप्त हुए सजोगिकेवली एक समयमें प्रवेग  
करनेवालोंकी अपेक्षा संख्यातगुणित है, स्वयंकि, वे संख्यातगुणित कालसे संचित  
हुए हैं ।

इस प्रकार शानमार्गणा समाप्त हुई ।

संयममार्गणके अनुवादेसे संयतोमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उप-  
सर्गमर्दं जीव प्रवेगकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २४४ ॥

स्वयंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

संयतोमें उपशान्तकपायवीतरागच्छमस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतोमें उपशान्तकपायवीतरागच्छमस्थोसे क्षयिक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २४६ ॥

१ केवलगणानि अजोगिकेवलिन्य सजोगिकेवलिनः स्वयंकेद्विही । य. ति १, ८

को गुणगारो ? दोषिण रूपाणि । किं कारणं ? जेण णाणवेदादिसव्ववियण्णेषु उवसमसेहिं चंडंतजीविहितो सवगसेहिं चंडंतजीवा दुगुणा ति आइरिओवदेसादो । एण-समएण तित्थयरा छ सवगसेहिं चंडंति । दस पत्तेयबुद्धा चंडंति, बोहियबुद्धा अहुत्तर-सयमेत्ता, सग्गच्छुआ तत्तिया चैव । उक्कस्सोगाहाणए दोषिण खवगसेहिं चंडंति, जहण्णोगाहाणए चत्तारि, मच्चिमोगाहाणए अह । पुरिसवेदेण अहुत्तरसयमेत्ता, णंडंसय-वेदेण दस, इत्थिवेदेण वीस । एदेसिमद्धमेत्ता उवसमसेहिं चंडंति ति धेतवन् ।

**स्त्रीणकसायवीदरागछुमुत्था तत्तिया चैव ॥ २४७ ॥**  
केत्तिया ? अहुत्तरसयमेत्ता । कुदो ? संजमसामणविवक्खादो ।

गुणकार स्या है ? दो रूप गुणकार है ।

शंका—क्षपकोका गुणकार दो होनेका कारण क्या है ?

समाधान—चूँकि, ज्ञान, वेद आदि सर्व विकल्पोंमें उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवोंसे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीव दुगुणे होते हैं, इस प्रकार आचार्योंका उपदेश पाया जाता है ।

एक समयमें एक साथ छह तीर्थंकर क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । दश प्रत्येकबुद्ध, एक सौ आठ बोधितबुद्ध और स्वर्गसे च्युत होकर आये हुए उतने ही जीव अर्थात् एक सौ आठ जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । उत्कृष्ट अवगाहनावाले दो जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । जबव्य अवगाहनावाले चार और ठीक मध्यम अवगाहनावाले आठ जीव एक साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । पुरुषवेदके उदयके साथ एक सौ आठ, नपुंसकवेदके उदयसे दश और स्त्रीवेदके उदयसे वीस जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । इन उपर्युक्त जीवोंके आधे प्रमाण जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

संयतोमं क्षीणरुणायवीतरागछुमस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४७ ॥

शंका—क्षीणरुणायवीतरागछुमस्य कितने होते हैं ?

समाधान—एक सौ आठ होते हैं, क्योंकि, यहांपर सयम-सामान्यकी विवक्षा की गई है ।

१ दो चैकुओमाए चउर जह्नाए मच्चिमाए उ । अह्विय मय खुउ मिच्चइ ओगाहाणइ तथा ॥ प्रवच डा ५०, ४७५

२ त्हांति खवा इमिस्समये नोहियबुद्धा य पुरिसवेदा य । उक्कस्सणहुत्तरसयपमा सगदो य बुद्धा ॥ पत्तेयबुद्धति यपरासिणडयमणोहिणपपुद्धा । दमक्कवमिदमयमण्डवामि जहाणमनो ॥ जेद्धावत्तहुमच्चिमओगाहाणा इ चारि अहेत । रुणव त्त्वति वपणा उवसमणा अद्धसेदमि ॥ गो जी. ३२९-५३१

**सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चैव ॥ २४८ ॥**  
सुबोज्जमेदं ।

**सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ २४९ ॥**

कुदो ? एणसमयादो संचयकालसमूहस्स संखेज्जगुणलुवलंभा ।

**अपमत्तसंजदा अक्खवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २५० ॥**

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । एत्थ ओषकारणं वित्ति यत्तव्वं ।

**पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २५१ ॥**

को गुणगारो ? दोषिण रूपाणि ।

**पमत्त-अपमत्तसंजदट्टाणे सब्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २५२ ॥**

कुदो ? अतोसुहुत्तसंचयादो ।

**खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २५३ ॥**

संयतोमे सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतोमे सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ २४९ ॥

क्योंकि, एक समयकी अपेक्षा संचयकालका समूह संख्यातगुणा पाया जाता है ।

संयतोमं सयोगिकेवली जिनोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५० ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । यहांपर राशिके ओघके समान होनेका कारण चिन्तवन कर कहना चाहिए । इसका कारण यह है कि दोनों स्थानोंपर संयम-सामान्य ही विवाश्रित है ( देखो सूत्र नं ८ ) ।

संयतोमे अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५१ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

संयतोमं प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २५२ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल अन्तर्बुद्धत है ।

संयतोमं प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे अधिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५३ ॥

कुदो ? पुव्वकोडिमंचयादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २५४ ॥

नञोपममियममत्तादो ।

एवं तिसु अद्वासु ॥ २५५ ॥

मन्वथोवा उवसमा ॥ २५६ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २५७ ॥

एदाणि तिण्णि नि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सामाहयच्छेदोवद्वावणसुद्धिसंजदेसु दोसु अद्वासु उवसमा एवे-  
सणेण तुल्ला शोवां ॥ २५८ ॥

खवा संखेज्जगुणां ॥ २५९ ॥

अप्पमत्तसंजदा अब्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणां ॥ २६० ॥

क्यांकि, उनका संचयकाल पूर्वकोटी वर्ष हे ।

संयतोमं प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानंमं शायिकसम्यग्दृष्टियोसे  
वेदकसम्यग्दृष्टि जीन गंन्यातगुणित हैं ॥ २५४ ॥

क्यांकि, वेदकसम्यग्दृष्टियोके श्रायोपशमिक सम्यन्त्व होता है ( जिसकी प्राप्ति  
सुलभ है ) ।

इसी प्रकार संयतोमं अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोमं नम्यक्त्वसम्बन्धी  
अल्पवहुत्व हैं ॥ २५५ ॥

उक्त गुणस्थानोमं उपशामक जीव मवसे कम है ॥ २५६ ॥

उपशामकोसे शपक जीन संख्यातगुणित हैं ॥ २५७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हे ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमं अपूर्वकरण और अनिष्टिकरण,  
इन दोनों गुणस्थानोमं उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २५८ ॥

उपशामकोमं शपक जीन संख्यातगुणित हैं ॥ २५९ ॥

शपकोसे अत्रापक और अतुपशामक अप्रमत्तसंयत मंख्यातगुणित हैं ॥ २६० ॥

१ सपना, एतेर सामायिकच्छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमं श्रायोपशमन्त्वित्युपस्था । स नि १, ८.

२ नह मन्वथोवा उवसो । म नि. १, ८.

३ उत्पत्तया मलोपनाः । म नि १, ८

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणां ॥ २६१ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदङ्गणे सव्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २६२ ॥

कुदो ? अंतोमुहुत्तसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २६३ ॥

पुव्वकोडिमंचयादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २६४ ॥

सथोवसमियसमत्तादो ।

एवं दोसु अद्वासु ॥ २६५ ॥

सव्वथोवा उवसमा ॥ २६६ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २६७ ॥

एदाणि तिण्णि नि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २६१ ॥

ये सूत्र सुगम हे ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमं प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुण-  
स्थानोमं उपशामसम्यग्दृष्टि जीन सवसे कम हैं ॥ २६२ ॥

क्यांकि, उनका संचयकाल अन्तर्मुहूर्त हे ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमं प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुण-  
स्थानोमं उपशामसम्यग्दृष्टियोसे शायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २६३ ॥

क्यांकि, उनका संचयकाल पूर्वकोटी वर्ष हे ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमं प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुण-  
स्थानोमं शायिकसम्यग्दृष्टियोसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २६४ ॥

क्यांकि, वेदकसम्यग्दृष्टियोके श्रायोपशमिक सम्यन्त्व होता है ( जिसकी प्राप्ति  
सुलभ है ) ।

इसी प्रकार उक्त जीवोका अपूर्वकरण और अनिष्टिकरण, इन दोनों गुणस्थानोमं  
सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व है ॥ २६५ ॥

उक्त जीवोमं उपशामक सवसे कम हैं ॥ २६६ ॥

उपशामकोमं शपक संख्यातगुणित हैं ॥ २६७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

१ प्रमत्ताः मत्थेयुणा । म नि १, ८.

परिहारशुद्धिसंज्ञदेसु सन्वथोवा अप्पमत्तसंज्ञदा' ॥ २६८ ॥  
सुगममेदं ।

पमत्तसंज्ञदा संखेज्जगुणां ॥ २६९ ॥  
को गुणगारो ? दो रूपाणि ।

पमत्त-अप्पमत्तसंज्ञदट्टणे सन्वथोवा खहयसम्मादिट्ठी ॥ २७० ॥  
कुदो ? खहयसम्तत्तस्स पउरं संभवाभावा ।  
वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २७१ ॥

कुदो ? खओवसमियसम्तत्तस्स पउरं संभवादो । एत्थ उवसमसम्मतं गत्थि,  
तीसं वासेण विणा परिहारशुद्धिसंज्ञमस्स संभवाभावा । ण च तेत्तियकालमुवसमसम्म-  
त्तस्सावट्टाणमत्थि, जेण परिहारशुद्धिसंज्ञमेण उवसमसम्मतस्सुवल्लो होज्ज ? ण च  
परिहारशुद्धिसंज्ञमछंदत्तस्स उवसमसेडीचउणहं दंसणमोहणीयस्सुवसामणं पि संभवह,  
जेषुवसमसेडिग्घि दोणं पि संजोगो होज्ज ।

परिहारशुद्धिसंज्ञतोंमें अप्रमत्तसंज्ञत जीव सबसे कम हैं ॥ २६८ ॥  
यह सूत्र सुगम है ।

परिहारशुद्धिसंज्ञतोंमें अप्रमत्तसंज्ञतोंसे प्रमत्तसंज्ञत संख्यातगुणित हैं ॥ २६९ ॥  
गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार हैं ।

परिहारशुद्धिसंज्ञतोंमें प्रमत्तसंज्ञत और अप्रमत्तसंज्ञत गुणस्थानमें क्षायिकसम्य-  
ग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७० ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वका प्रचुरतासे होना संभव नहीं है ।

परिहारशुद्धिसंज्ञतोंमें प्रमत्तसंज्ञत और अप्रमत्तसंज्ञत गुणस्थानमें क्षायिकसम्य-  
ग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २७१ ॥

क्योंकि, क्षायोपशमिकसम्यक्त्वका प्रचुरतासे होना संभव है । यहाँ परिहारशुद्धि-  
संज्ञतोंमें उपशमसम्यक्त्व नहीं होता है, क्योंकि, तीस वर्षके विना परिहारशुद्धिसंज्ञतसंज्ञका  
होना संभव नहीं है । और न उतने काल तक उपशमसम्यक्त्वका अवस्थान रहता  
है, जिससे कि परिहारशुद्धिसंज्ञतके साथ उपशमसम्यक्त्वकी उपलब्धि हो सके ?  
दूसरी बात यह है कि परिहारशुद्धिसंज्ञतको नहीं छोड़नेवाले जीवके उपशमश्रेणीपर  
चढ़नेके लिए दर्शनेमोहनीयकर्मका उपशमन होना भी संभव नहीं है, जिससे कि उपशम-  
श्रेणीमें उपशमसम्यक्त्व और परिहारशुद्धिसंज्ञत, इन दोनोंका भी संयोग हो सके ।

१ परिहातसंज्ञिसंज्ञतों अप्रमत्तसंज्ञत प्रमत्त सम्येयगुणा । म सि १, ८

सुहुमसांपराहयसुद्धिसंज्ञदेसु सुहुमसांपराहयउवसमा थोवा'  
॥ २७२ ॥

कुदो ? चउवणपमाणात्तादो ।

खवा संखेज्जगुणां ॥ २७३ ॥

को गुणगारो ? दोणिण रूपाणि ।

जथाक्खादविहारशुद्धिसंज्ञदेसु अकसाइभंगो ॥ २७४ ॥

जथा अकसाईणमपावहुगं उत्तं तथा जहाक्खादविहारशुद्धिसंज्ञदाणं पि कादव्व-  
मिदि उत्तं होदि ।

संज्ञदासंज्ञदेसु अप्पावहुअं गत्थि' ॥ २७५ ॥

एयपदत्तादो । एत्थ सम्मत्तप्पावहुअं उच्चदे । तं जहा-

संज्ञदासंज्ञदट्टणे सन्वथोवा खहयसम्मादिट्ठी ॥ २७६ ॥

कुदो ? संखेज्जपमाणात्तादो ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंज्ञतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक जीव अल्प  
हैं ॥ २७२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंज्ञतोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ २७३ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार हैं ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंज्ञतोंमें अल्पवहुत्व अकपायी जीवोंके समान हैं ॥ २७४ ॥

जिस प्रकार अकपायी जीवोंका अल्पवहुत्व कहा है, उसी प्रकार यथाख्यात-  
विहारशुद्धिसंज्ञतोंका भी अल्पवहुत्व करना चाहिए, यह अर्थ कहा गया है ।

संज्ञतासंज्ञत जीवोंमें अल्पवहुत्व नहीं है ॥ २७५ ॥

क्योंकि, संज्ञतासंज्ञत जीवोंके एक ही गुणस्थान होता है । यहाँपर सम्यक्त्व-  
सम्बन्धी अल्पवहुत्व कहते हैं । वह इस प्रकार है-

संज्ञतासंज्ञत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७६ ॥  
क्योंकि, उनका प्रमाण संख्यात ही है ।

१ सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंज्ञतोंमें उपशामकेभ्य क्षपका सम्येयगुणा । म सि १, ८

२ यथाख्यातविहारशुद्धिसंज्ञतोंमें उपशान्तगामेभ्य क्षीणन्याया मध्येयगुणा । अयोभिम्बलिमस्ताकत  
एव । सयोभिम्बलि मध्येयगुणा । म सि १, ८.

३ मयतामयानां नास्त्यल्पवहुत्वम् । म सि १, ८

उवसमसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ २७७ ॥

को गुणगारो ? पल्लोवमस्य अमंखेज्जदिभागो, अमंखेज्जाणि पल्लोवमपडम-  
रगमूलाणि ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ २७८ ॥

को गुणगारो ? आमलियाए अमंखेज्जदिभागो । कारणं जणिदूण वत्तब्बं ।

असंजदेसु सब्बथोवा सासणसम्मादिद्वी ॥ २७९ ॥

कुदो ? अमलियमंचयादो ।

सम्माभिच्छादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ २८० ॥

कुदो ? मंरोज्जावलियसंचयादो ।

असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ २८१ ॥

को गुणगारो ? आमलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? साभावियादो ।

मंयतामंयत गुणस्थानमं क्षायिकसम्यग्दृष्टियंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात-  
गुणित हैं ॥ २७७ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोवमका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो पल्लोवमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

मंयतामंयत गुणस्थानमं उपशमसम्यग्दृष्टियंसे वेदकमस्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित  
हैं ॥ २७८ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है । इसका कारण  
ज्ञानकर काना चादिए । (वेगो मूत्र नं २०) ।

अमंयतोमं मामादनसम्यग्दृष्टि जीव सवसे कम हैं ॥ २७९ ॥

स्व्यौकि, उनका संचयकाल छह आवलीमात्र है ।

अमंयतोमं मामादनसम्यग्दृष्टियंसे सम्यग्भिष्यद्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ २८० ॥

स्व्यौकि, उनका संचयकाल संख्यात आवलीप्रमाण है ।

अमंयतोमं मम्यग्भिष्यद्यादृष्टियंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ २८१ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है, स्व्यौकि, यह  
स्वाभाविक है ।

१ अमंयतो मतिं. रीोवा मामादनसम्यग्दृष्टि । म ति. १, ८

२ मम्यग्भिष्यद्यादृष्टि मंल्लोवगुणा । म ति १, ८

३ अमंयतसम्यग्दृष्टि मंज्जावैयगुणा । म ति. १, ८

मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ॥ २८२ ॥

को गुणगारो ? अमवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंतगुणि  
सब्बजीवरासिपडमरगमूलाणि । कुदो ? साभावियादो ।

असंजदसम्मादिद्विद्विणो सब्बथोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ २८३ ॥

कुदो ? अंतोसुहुत्तसंचयादो ।

खइयसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ २८४ ॥

कुदो ? सागरोवमसंचयादो । को गुणगारो ? आवलियाए असंरोज्जदिभागो  
कुदो ? साभावियादो ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ २८५ ॥

को गुणगारो ? आमलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? साभावियादो ।

एव सजममगणा समत्ता ।

अमंयतोमं असंयतसम्यग्दृष्टियंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ २८२ ॥  
गुणकार क्या है ? अमव्यसिद्धोसे अनन्तगुणित ओर सिद्धोसे भी अनन्तगुणित  
राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है, स्व्यौकि, यह  
स्वाभाविक है ।

अमंयतोमं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमं उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सवसे कम  
हैं ॥ २८३ ॥

स्व्यौकि, उनका संचयकाल अनंतसुहुत है ।

अमंयतोमं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमं उपशमसम्यग्दृष्टियंसे क्षायिकसम्य-  
ग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २८४ ॥

स्व्यौकि, उनका संचयकाल सागरोपम है । गुणकार क्या है ? आवलीका अस-  
ख्यातवां भाग गुणकार है, स्व्यौकि, यह स्वाभाविक है ।

अमंयतोमं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमं क्षायिकसम्यग्दृष्टियंसे वेदकसम्य-  
ग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २८५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, स्व्यौकि, यह  
स्वाभाविक है ।

इस प्रकार संयममार्गेणा समाप्त हुई ।

दंसणानुवादेण चक्खुदंसणीअक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि  
जाव खीणकसाथवीदरागछुट्टुमत्था ति ओथं ॥ २८६ ॥

जथा ओघमिह एदेसिमप्यावहुगं परुविदं तथा एत्थ वि परुवेद्वं, विसेसाभावा ।  
विसेसपरुवणहुमुत्तरसुत्तं भणदि-

णवरि चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २८७ ॥

को गुणगारो ? पदरस असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ, सेडीए<sup>१</sup>  
असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । कुदो ? साभावियादो ।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ २८८ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ २८९ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एव दसणमगणा समत्ता ।

दर्शनमार्गणके अनुवादसे चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे  
लेकर क्षीणकयाथवीतरागछुट्टु गुणस्थान तक अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ २८६ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानवर्ती जीवोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार  
यहांपर भी कहना चाहिए, क्योंकि, दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है । अब चक्षुदर्शनी  
जीवोंमें सम्भव विशेषताके प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेषता यह है कि चक्षुदर्शनी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि  
असंख्यातगुणित है ॥ २८७ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असंख्यात  
जगश्रेणिप्रमाण है । वे जगश्रेणिया भी जगश्रेणिके असंख्यातवै भागमात्र हैं । इसका  
कारण क्या है ? ऐसा स्वभावसे है ।

अवधिदर्शनी जीवोंका अल्पबहुत्व अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २८८ ॥

केवलदर्शनी जीवोंका अल्पबहुत्व केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २८९ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

१ दर्शनानुवादेन चक्षुदर्शनिनां मनोयोगिवत् । अचक्षुदर्शनिनां काययोगिवत् । स सि १, ८

२ अतिपु 'सेडीओ खगसेडी असंखेज्जदिभागो वेडीए' इति पाठ ।

३ अत्रविदर्शनिनामपिभ्रान्तिवत् । स मि १, ८ ४ केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिवत् । स सि १, ८

लेस्सानुवादेण किणहलेस्सिय-णीलेस्सिय-काउलेस्सिएसु सव्व-  
त्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ २९० ॥

सुगममेदं ।

सम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २९१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? साभावियादो ।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ २९३ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंतगणि  
सव्वजीवारासिपढवगममूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठिणो सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ २९४ ॥

लेश्यामार्गणके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीलेश्या और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें  
सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ २९० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालोमे सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि  
जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २९१ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि  
जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९२ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, यह  
स्वभावविक है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव  
अनन्तगुणित हैं ॥ २९३ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोसे अनन्तगुणित और सिद्धोसे भी अनन्तगुणित  
राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालोमे असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें शायिक-  
सम्यग्दृष्टि सबसे कम है ॥ २९४ ॥

कुदो ? मणुमक्रिह-णील्लेस्सियसंखेज्जइयमम्मादिट्ठिपरिगहादो ।

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९५ ॥

तो गुणगारो ? पल्लिदोवमस अंसंखेज्जिभागो । कुदो ? गेरइएसु किण्हलेस्सिएसु पल्लिदोवमस अंसंखेज्जिभागमेत्तउवसममम्मादिट्ठिणमुवलंभा ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९६ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए अंसंखेज्जिभागो । सेसं सुगमं ।

णवरि विसेसो, काउलेस्सिएसु असंजदसम्मादिट्ठिणाणे सब्ब-  
त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २९७ ॥

कुदो ? अंतोपुट्टसंचयादो ।

सइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९८ ॥

कुदो ? पडमपुट्टिहिं संचिदसइयसम्मादिट्ठिगहादो । को गुणगारो ? आन-  
लियाए अंसंखेज्जिभागो ।

क्योकि, यहाँ पर कृष्ण और नीललेख्यावाले संख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका ग्रहण किया गया है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेख्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अमंख्यातगुणित हैं ॥ २९५ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योकि, कृष्ण-  
लेख्यावाले नारतियोंमें पल्लोपमके असंख्यातवें भागमात्र उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका  
सञ्चान पाया जाता है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेख्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशम-  
सम्यग्दृष्टियोंमें नेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९६ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ  
सुगम है ।

केवल विधिपता यह है कि कापोतलेख्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें  
उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २९७ ॥

क्योकि, उनका संक्षयकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

कापोतलेख्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिक-  
सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९८ ॥

क्योकि, यहाँ पर प्रथम पृथिवीमें संचित क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका ग्रहण  
का गया है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९९ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए अंसंखेज्जिभागो ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु सब्बत्थोवा अपमत्तसंजदा ॥ ३०० ॥  
कुदो ? संखेज्जपरिमाणचादो ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणां ॥ ३०१ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ ३०२ ॥

को गुणगारो ? पल्लिदोवमस अंसंखेज्जिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदोवमपडम-  
वगमूलाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३०३ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जिभागो । कुदो ? सोहम्मीसाण-सणवकुमार-  
माहिंदराभिरिगहादो ।

कापोतलेख्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदक-  
सम्यग्दृष्टि जीव अमंख्यातगुणित हैं ॥ २९९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

तेजोलेख्या और पत्रलेख्यावालोंमें अप्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं ॥ ३०० ॥  
क्योकि, उनका परिमाण संख्यात है ।

तेजोलेख्या और पत्रलेख्यावालोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ ३०१ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

तेजोलेख्या और पत्रलेख्यावालोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यात-  
गुणित हैं ॥ ३०२ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

तेजोलेख्या और पत्रलेख्यावालोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव  
असंख्यातगुणित हैं ॥ ३०३ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योकि, यहाँ पर  
सौधर्म ईशान और सत्कुमार मोहेन्द्र कल्पसम्बन्धी देवराशिको ग्रहण किया गया है ।

१ तेजःपत्रलेख्यानां संयतं, स्तोका व्यसवा । स. सि. १, ८

२ प्रमत्ताः मत्स्यगुणाः । स. सि. १, ८

३ प्लवमितरेणो प्लेन्द्रियवत् । स. सि. १, ८.



सम्पामिच्छादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ३०४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ३०५ ॥

को गुणगारो ? आबलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुवोच्चं ।

मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ३०६ ॥

को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ, सेडीए असंखेज्जदिभागमेचाओ । को पडिभागो ? वणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदंगुलाणि ।

असंजदसम्मादिद्विसंजदासंजदपमत-अप्पमतसंजदद्वुणे सम्मत-  
प्पावहुअसोधं ॥ ३०७ ॥

जधा ओवाम्हि अप्पावहुअमेदेसि उत्तं सम्मतं पडि, तथा एत्थ सम्मतत्त्पावहुगं वत्तव्यमिदि वुत्तं होइ ।

तेजोलेश्या और पन्नलेश्यावालोमे सासादनसम्यग्दृष्टियोसि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३०४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

तेजोलेश्या और पन्नलेश्यावालोमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है ॥ ३०५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष स्वार्थ सुगम है ।

तेजोलेश्या और पन्नलेश्यावालोमें असंयतसम्यग्दृष्टियोसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३०६ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणिके असंख्यातवै भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? घनागुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरगुलप्रमाण है ।

तेजोलेश्या और पन्नलेश्यावालोमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमतसंयत और अप्रमतसंयत गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओषके समान है ॥३०७॥

जिस प्रकार ओषमें इन गुणस्थानोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहापर सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहना चाहिए, यह अर्थ कहा गया है ।

सुक्कलेस्सिएसु तिसु अद्दासु उवसमा पवेसणेण<sup>१</sup>, तुल्ला थोवां ॥ ३०८ ॥

सुगममेदं ।

उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३०९॥

कुदो ? चउवणपमाणात्तादो ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ ३१० ॥

अहुत्तरसदपरिमाणत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३११ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव ॥ ३१२ ॥

एदं पि सुगमं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ३१३ ॥

शुक्कलेश्यावालोमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प है ॥ ३०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्कलेश्यावालोमें उपशान्तकषायवीतरागछन्नस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३०९ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

शुक्कलेश्यावालोमें उपशान्तकषायवीतरागछन्नस्थोसि क्षपक जीव संख्यातगुणित है ॥ ३१० ॥

क्योंकि, उनका परिमाण एक सो आठ है ।

शुक्कलेश्यावालोमें क्षीणकषायवीतरागछन्नस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥३११॥ यह सूत्र सुगम है ।

शुक्कलेश्यावालोमें सयोगिकेवली प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥३१२॥ यह सूत्र भी सुगम है ।

शुक्कलेश्यावालोमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित है ॥३१३॥

<sup>१</sup> शुक्कलेश्याना सर्वत स्तोत्रा उपलभका । स मि १, ८

<sup>२</sup> क्षपका संखेयगुणा । स सि १, ८ <sup>३</sup> सयोगिकेवलिन संखेयगुणा । स मि १, ८

को गुणगारो ? ओत्रमिन्द्रो ।

अपमत्तमंजदा अस्ववा अणुवसमा संखेज्जगुणां ॥ ३१४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया ।

पमत्तमंजदा संखेज्जगुणां ॥ ३१५ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रुत्ताणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ ३१६ ॥

को गुणगारो ? पल्लोपमस्स अमंखेज्जदिभागो, अमंखेज्जाणि पल्लोवमपढम-  
गगमूलाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ३१७ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए अमंखेज्जदिभागो ।

सम्मागिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३१८ ॥

गुणकार क्या है ? ओत्रमें नतलाया गया गुणकार ही यहाँपर गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें ययोगिकेजली जिनोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत  
जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३१४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें अप्रमत्तसंयतोसे अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३१५ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३१६ ॥

गुणकार क्या है ? पन्दोपमका असंख्यातका भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके  
प्रसण्यात प्रथम गमूलप्रमाण है ।

शुक्कलेश्यावालोमें संयतासंयतोसे सासादनसम्यग्दष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ३१७ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातका भाग गुणकार है ।  
शुक्कलेश्यावालोमें सासादनसम्यग्दष्टियोसे सम्यग्मिथ्यादष्टि जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ ३१८ ॥

१ पत्तपणंता: सच्चैयुता: । म. नि. १, ८.

२ प्रवचनता सत्थेयुता: । म. नि. १, ८

३ सामान्यता: (अ) मत्थेयुता: । म. नि. १, ८.

४ सामान्यतमस्ययु: (अ) सत्थेयुता । म. नि. १, ८.

५ सम्मिथ्यादष्टय: सत्थेयुता । म. नि. १, ८.

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ३१९ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणां ॥ ३२० ॥

आरणच्चुरामिस्स पहाणत्तपरियप्पणादो ।

असंजदसम्मादिट्ठिणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ३२१ ॥  
ऊदो ? अंतोसुहुत्तमंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३२२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३२३ ॥

खओवसमियसम्मत्तादो ।

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें सम्यग्मिथ्यादष्टियोसे मिथ्यादष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ३१९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातका भाग गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें मिथ्यादष्टियोसे असंयतसम्यग्दष्टि जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ ३२० ॥

क्योंकि, यहाँपर आरण-अच्युतकल्पसम्बन्धी देवराशिकी प्रधानता विवक्षित है ।  
शुक्कलेश्यावालोमें असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें उपशामसम्यग्दष्टि जीव सत्रमे  
क्रम हैं ॥ ३२१ ॥

क्योंकि, उनका संख्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

शुक्कलेश्यावालोमें असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें उपशामसम्यग्दष्टियोसे धारिक-  
सम्यग्दष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३२२ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातका भाग गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें धारिकसम्यग्दष्टियोसे वेदक-  
सम्यग्दष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ३२३ ॥

क्योंकि, वेदकसम्यग्दष्टियोके शायोपशामिक सम्यक्त्व होता है ( जिसकी प्राप्ति  
सुलभ है ) ।

१ मिथ्यादष्टयोऽसत्थेयुता । म. नि. १, ८.

२ असंयतसम्यग्दष्टयोऽमंखेयुता (?) । म. नि. १, ८.

संजदासंजद-पमत-अप्पमतसंजदद्वुणे  
॥ ३२४ ॥

जधा ऐदिसिमोघमिह सम्मत्तप्पावहुगं बुत्तं, तथा वत्तव्वं ।

एवं तिसु अद्दासु ॥ ३२५ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ३२६ ॥

खवा संवेज्जगुणा ॥ ३२७ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एव लेस्सामग्गां<sup>१</sup> समत्ता ।

भविआणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छइही जाव अजोगिकेव्वलि  
त्ति ओघं ॥ ३२८ ॥

एत्थ ओघअप्पावहुअं अण्णाहियं वत्तव्वं ।

शुक्कलेइयावालोमे संयतासंयत, प्रमतसंयत और अप्रमतसंयत गुणस्थानों  
सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३२४ ॥

जिस प्रकार इन गुणस्थानोंका ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है,  
उसी प्रकार यहापर भी कहना चाहिए ।

इसी प्रकार शुक्कलेइयावालोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व-  
सम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ ३२५ ॥

उक्त गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ ३२६ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३२७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम ह ।

इस प्रकार लेख्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुण-  
स्थान तक जीवोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३२८ ॥

यहापर ओघसम्बन्धी अल्पबहुत्व हीनता और अधिकतासे रहित अर्थात्  
तत्प्रमाण ही कहना चाहिए ।

<sup>१</sup> थ-आप्तलो 'लेस्सामग्गा' इति पाठ ।

<sup>२</sup> भन्नाइवादेन भयानां नाम्मायवत् । म. सि १, ८

अभवसिद्धिएसु अप्पावहुअं णत्थि<sup>१</sup> ॥ ३२९ ॥  
कुदो ? एगपदत्तादो ।

एव भवियमग्गा समत्ता ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु ओधिणाणिभंगो ॥ ३३० ॥

जधा ओधिणाणीणमप्पावहुगं परुविदं, तथा एत्थ परुवेदव्वं । गवरि सजोगि-  
अजोगिपदाणि वि एत्थ अत्थि, सम्मत्तसामण्णे अहियारादो ।

खइयसम्मदिट्ठीसु तिसु अद्दासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा<sup>२</sup>  
॥ ३३१ ॥

तप्पाओगसंवेज्जपमाणत्तादो ।

उवसंतकसायवीदरागल्लुमत्था तत्तिया चेव<sup>३</sup> ॥ ३३२ ॥  
सुगममेदं ।

अभव्यसिद्धोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३२९ ॥

क्योंकि, उनके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अल्पबहुत्व अवधिज्ञानियोंके  
समान है ॥ ३३० ॥

जिस प्रकार ज्ञानमार्गणमें अवधिज्ञानियोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार  
यहांपर भी कहना चाहिए । केवल विशेषता यह है कि सयोगिकेवली और अयोगि-  
केवली, ये दो गुणस्थानपद यहांपर होते हैं, क्योंकि, यहांपर सम्यक्त्वसामान्यका  
अधिकार है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव  
प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३३१ ॥

क्योंकि, उनका तस्यायोग्य संख्यात प्रमाण है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें उपशान्तकपायवीतरागल्लुमत्थ जीव श्लोक्त प्रमाण ही  
है ॥ ३३२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

<sup>१</sup> अवय्याना नात्थयव्वहुत्वम् । म सि १, ८.

<sup>२</sup> सम्यक्त्वाद्युनादेन क्षायिणसम्यग्दृष्टिषु सर्वत स्तोत्राश्रित्वा उपशामका । म सि १, ८

<sup>३</sup> इतीयां प्रसक्तानां सामान्यवत् । म. सि १, ८.

स्वभा संखेज्जगुणा ॥ ३३३ ॥

स्त्रीणकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेष ॥ ३३४ ॥

सजोगिकेवली अजेगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेष ॥ ३३५ ॥

पद्दाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच संखेज्जगुणा ॥ ३३६ ॥

गुणगारो ओघमिद्धो, सड्यसम्मचरिहिदसजोगीणमभावा ।

अपमत्तसंजदा अमखा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ३३७ ॥

को गुणगारो ? तप्पाओगसंखेज्जगुणाणि ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३३८ ॥

को गुणगारो ? दो रूत्ताणि ।

धायिकसम्यग्दृष्टियोंमें उपशान्तकपायवीतरागछवस्थौसे क्षपक जीव संख्यात-  
गुणित हैं ॥ ३३३ ॥

श्रीणकसायवीतरागछवस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३३४ ॥

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और  
पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३३५ ॥

ये मूत्र सुगम हैं ।

सयोगिकेवली जिन संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ३३६ ॥

यागपर गुणकार ओघ कथित है, क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वसे रहित सयोगि-  
केवली नहीं पाये जाते हैं ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यात-  
गुणित हैं ॥ ३३७ ॥

गुणकार क्या है ? अप्रमत्तसंयतोंके योग्य संख्यातरूप गुणकार है ।

धायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ ३३८ ॥

गुणकार क्या है ? ये रूप गुणकार है ।

संजदासंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३३९ ॥

मणुसगदि मोत्तूण अणत्थ सड्यसम्मादिट्ठिसंजदासंजदाणमभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३४० ॥

को गुणगारो ? पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदोवमपडम-  
वगमूलणि ।

असंजदसम्मादिट्ठिसंजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदद्वारेण खड्य-  
सम्मत्तस्स भेदो णत्थि ॥ ३४१ ॥

एदस्स अहिप्पाओ-जेण सड्यसम्मत्तस्स एदसु गुणद्वारेणु भेदो णत्थि, तेण  
णत्थि सम्मत्तप्पावहुंगं, एयपयत्तादो । एसो अत्थो एदेण परूविदो हेदि ।

वेदगसम्मादिट्ठीसु सव्वत्थोवा अपमत्तसंजदा ॥ ३४२ ॥

कुदो ? तप्पाओगसंखेज्जपमाणत्तादो ।

धायिकसम्यग्दृष्टियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३३९ ॥  
क्योंकि, मणुप्यगतिको छोड़कर अन्य गतियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत  
जीवोंका अभाव है ।

धायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ३४० ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

धायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और  
अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यक्त्वका भेद नहीं है ॥ ३४१ ॥

इस सूत्रका अभिप्राय यह है कि इन असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चारों गुणस्थानोंमें  
क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है, इसलिए उनमें सम्यक्त्वसम्बन्धी भल्ल-  
बहुत्व नहीं है, क्योंकि, उन सबमें क्षायिकसम्यक्त्वरूप एक पद ही विवक्षित है । यह  
अर्थ इस सूत्रके द्वारा प्ररूपित किया गया है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं ॥ ३४२ ॥

क्योंकि, उनका तत्प्रायोग्य संख्यातरूप प्रमाण है ।

१ तत्त. संयतासंयतः सख्येयगुणा । स. नि. १, ८.

२ क्षायतसम्यग्दृष्टीसख्येयगुणा । स. नि. १, ८.

३ क्षायोपशामिकसम्यग्दृष्टि सुसंयत लोका अग्रमत्ताः । स. नि. १, ८.

पमतसंजदा संखेज्जगुणां ॥ ३४३ ॥

को गुणगरो ? दो रूपाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ ३४४ ॥

को गुणगरो ? फलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि फलिदोवमपढम-  
वग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ३४५ ॥

को गुणगरो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठी-संजदासंजद-यमत-अपमतसंजदद्वाने वेदग-  
समतस्स भेदो णत्थि ॥ ३४६ ॥

एत्थ भेदसदो अप्पावहुअपज्जाओ धेतव्वो, सदाणमणेयत्थत्तादो । वेदगसम्मत्सस्स  
भेदो अप्पावहुअं णत्थि ति उच्चं होदि ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोमं अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३४३ ॥  
गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोमं प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३४४ ॥  
गुणकार क्या है ? फल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो फल्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोमं संयतासंयतोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ३४५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असख्यातवा भाग गुणकार है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोमं असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त-  
संयत गुणस्थानोंमें वेदकसम्यक्त्वका भेद नहीं है ॥ ३४६ ॥

यथापर भेद शब्द अल्पमहत्त्वका पर्यायवाचक ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि,  
शब्दोंके अनेक अर्थ होते हैं । इस प्रकार इस सूत्र द्वारा यह अर्थ कहा गया है कि इन  
गुणस्थानोंमें वेदकसम्यक्त्वका भेद अर्थात् अल्पमहत्त्व नहीं है ।

१ नमरा महोरगुणा । म. नि. १, ८.

२ सततामयता (सं) मर्येयगुणा स. नि. १, ८

३ अप्रमत्तसम्यग्दृष्टयो-नसोरगुणा । म. नि. १, ८.

उवसमसम्मादिट्ठीसु तिसु अद्दासु उवसमा प्वेसणेण तुल्ला  
थोवां ॥ ३४७ ॥

उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३४८ ॥

अपमतसंजदा अणुवसमा संखेज्जगुणां ॥ ३४९ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

पमतसंजदा संखेज्जगुणां ॥ ३५० ॥

को गुणगरो ? दो रूपाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ ३५१ ॥

को गुणगरो ? फलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि फलिदोवमपढम-  
वग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ३५२ ॥

उपशामसम्यग्दृष्टियोमं अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव  
प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३४७ ॥

उपशान्तकपायवीतरागछन्नस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३४८ ॥

उपशान्तकपायवीतरागछन्नस्थोंसे अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ ३४९ ॥

ये सूत्र सुगम है ।

उपशामसम्यग्दृष्टियोमं अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित  
हैं ॥ ३५० ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

उपशामसम्यग्दृष्टियोमं प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ३५१ ॥

गुणकार क्या है ? फल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो फल्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

उपशामसम्यग्दृष्टियोमं संयतासंयतोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ३५२ ॥

१ अपेक्षामिरुम्यग्दृष्टीनां सर्वत स्तोकाश्रवार उपशामका । स. नि. १, ८

२ अप्रमत्ताः सल्येयगुणा । स. नि. १, ८

३ संयतामयता (अ-) सल्येयगुणा । स. नि. १, ८

५ असंयतसम्यग्दृष्टयो-जमल्येयगुणा । म. नि. १, ८

को गुणनामो ? आत्मलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदद्वुणो उव-  
समसम्मत्तस्स भेदो णत्थि ॥ ३५३ ॥

सुगममेदं ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मा(मिच्छादिट्ठि)-मिच्छादिट्ठिणं णत्थि अप्पा-  
वहुअं ॥ ३५४ ॥

कुरो ? एगपदत्तादो ।

एव नमत्तमगणा समत्ता ।

सणियाणुवादेण सणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसाय-  
वीदरागच्छुमत्था ति ओघं ॥ ३५५ ॥

जना ओघन्कि अप्पानहुगं परुविदं तथा एत्थ परूवेद्वं, सणित्तं पडि उह-  
यन्व भेदाभावा । विमेमपदुप्पायणहुमुचरसुत्तं भणदि-

गुणकार स्या ते ? आवच्छीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियामें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अग्रमत्त-  
संयत गुणस्थानमें उपशमसम्यक्त्वका अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सागादनसम्यग्दृष्टि, सम्यगभिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व  
नहीं है ॥ ३५४ ॥

स्यौकि, तीनों प्रकारके जीवोंके एक गुणस्थानरूप ही पद है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञिमार्गणाके अनुवादमें संज्ञियामें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय-  
नीनरागजमल्य गुणस्थान तक जीवोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३५५ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहाँ  
पर भी प्ररूपण करना चाहिए, स्यौकि, सखित्वकी अपेक्षा दोनों स्थानोंपर कोई भेद  
नहीं है । पर संज्ञियामें संभव विशेषके प्रतिपादनके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

१ शोभां गारुडवसुत्तम्, निपधे एहेत्थुत्पत्तानप्रदग्गात् । स. नि. १, ८.

२ मन्नाडुत्तमेत्त सन्निता च्चूर्ध्वीनिवत् । स. नि. १, ८.

णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३५६ ॥

ओघमिदि बुत्ते अणत्तगुणत्तं पत्तं, तणिरायणहं असंखेज्जगुणा इदि उत्तं । गुण-  
गारो पदस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ' सेडीओ, सेडीए असंखेज्जदि-  
भागसेत्ताओ ।

असणीसु णत्थि अप्पावहुअं ॥ ३५७ ॥  
कुरो ? एगपदत्तादो ।

एव सणिमगणा समत्ता ।

आहाराणुवादेण आहारएसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण  
तुल्ला शोवा' ॥ ३५८ ॥

चउवण्णपमाणात्तादो ।

उवसंतकसायवीदरागच्छुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३५९ ॥  
सुगममेदं ।

विशेषता यह है कि संज्ञियामें असंयतसम्यग्दृष्टियोंने मिथ्यादृष्टि जीव असं-  
ख्यातगुणित है ॥ ३५६ ॥

उपर्युक्त सूत्रमें 'ओघ' इस पदके कह देने पर असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे सजी  
मिथ्यादृष्टि जीवोंके अनन्तगुणितता प्राप्त होती थी, उसके निराकरणके लिए इस सूत्रमें  
'असंख्यातगुणित है' ऐसा पद कहा है । यहाँ पर गुणकार जगप्रतरका असंख्यातवां  
भाग है, जो जगश्रेणीके असंख्यातवां भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है ।

असंजी जीवोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३५७ ॥

स्यौकि, उनमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है ।

इस प्रकार संज्ञिमार्गणा समाप्त हुई ।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकामें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें  
उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प है ॥ ३५८ ॥

स्यौकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

आहारकामें उपशान्तकपायवीतरागच्छमस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३५९ ॥  
यह सूत्र सुगम है ।

१ प्रतिपु 'अणतो गुणत्त' इति पाठः ।

२ प्रतिपु 'असंखेज्जदि' इति पाठः ।

३ असाहिनां नाल्लय्यबहुत्वम् । स. नि. १, ८

४ आहाराणुत्तमेत्त सन्निता च्चूर्ध्वीनिवत् । स. नि. १, ८.

स्वा संखेज्जगुणा ॥ ३६० ॥

अहुत्तरसदप्रमाणत्वादे ।

खीणकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३६१ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव ॥ ३६२ ॥

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ३६३ ॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ३६४ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३६५ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ३६६ ॥

को गुणगारे ? पल्लिदोवमस्त असंखेज्जदिमागो ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३६७ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३६८ ॥

आहारकामे उपशान्तकषायवीतरागछुदुमत्थोसे क्षपक जीव संख्यातगुणित है ॥ ३६० ॥

क्योकि, उनका प्रमाण ए.रू.सौ आठ है ।

आहारकामे क्षीणकषायवीतरागछुदुमत्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारकामे सयोगिकेवली जिन श्रवशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३६२ ॥

सयोगिकेवली जिन संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित है ॥ ३६३ ॥

सयोगिकेवली जिनोसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यात-

गुणित है ॥ ३६४ ॥

अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित है ॥ ३६५ ॥

ये सूत्र सुगम है ।

आहारकामे प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित है ॥ ३६६ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमका असत्यातवा भाग गुणकार है ।

आहारकामे संयतासंयतोसे सामादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है ॥ ३६७ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोमे सम्यग्भिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित है ॥ ३६८ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३६९ ॥

मिच्छादिट्ठी अणतगुणा ॥ ३७० ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठिसंजदासंजद-पमत-अप्पमत्तसंजदद्वहणे सम्मत्त-प्पावहुअमोघं ॥ ३७१ ॥

एवं तिसु अद्वासु ॥ ३७२ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ३७३ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ ३७४ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अणाहारएसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली ॥ ३७५ ॥

कुदो ? सद्धिपमाणत्वादे ।

अजोगिकेवली संखेज्जगुणा ॥ ३७६ ॥

कुदो ? दुल्लज्जणछस्सदप्रमाणत्वादे ।

सम्यग्भिथ्यादृष्टियोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है ॥ ३६९ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टियोसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित है ॥ ३७० ॥

ये सूत्र सुगम है ।

आहारकामे असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत

गुणस्थानमे सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३७१ ॥

इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोमे सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व

ओघके समान है ॥ ३७२ ॥

उक्त गुणस्थानोमे उपशाराक जीव सबसे कम है ॥ ३७३ ॥

उपशामकोसे क्षपक जीव संख्यातगुणित है ॥ ३७४ ॥

ये सूत्र सुगम है ।

अनाहारकामे सयोगिकेवली जिन सबसे कम है ॥ ३७५ ॥

क्योकि, उनका प्रमाण साठ है ।

अनाहारकामे अयोगिकेवली जिन संख्यातगुणित है ॥ ३७६ ॥

क्योकि, उनका प्रमाण दोग कम छद् सो अर्थात् पांच सौ अठ्यानेच (५९८) है ।

१ अनाहारकामे संमत. स्तोत्रा सयोगचैवलिनः । स. सि. १. ८.

२ अयोगिकेवलिन संखेयगुणा । स. सि. २. ८.

सासगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणां ॥ ३७७ ॥

को गुणगारो ? पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदेवमपढम-  
पढमभूलाणि ।

असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणां ॥ ३७८ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए अमंखेज्जदिभागो ।

मिच्छादिद्वी अणंतगुणां ॥ ३७९ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिदिहं अणंतगुणो, सिद्धेदि वि अणंतगुणो, अणंतणि  
सब्बजीवमिपढमभूलाणि ।

असंजदसम्मादिद्विद्विगुणे सव्वथोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ ३८० ॥

ब्रह्मो ? मंखेज्जजीवपमाणत्तादो ।

अनाहारकोंमें अयोगिकेनली जिन्नोंसे सासादनसम्पद्यद्वि जीव अमंख्यातगुणित  
हैं ॥ ३७७ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमत्ता असंख्यातत्ता भाग गुणकार है, जो पल्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

अनाहारकोंमें मागादनसम्पद्यद्वियोंने अमंयतसम्पद्यद्वि जीव असंख्यातगुणित  
हैं ॥ ३७८ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीत्ता असंख्यातत्तां भाग गुणकार है ।

अनाहारकोंमें अमंयतसम्पद्यद्वियोंने मिथ्याद्वि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ ३७९ ॥  
गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धिसि अनन्तगुणित, सिद्धीसे भी अनन्तगुणित  
साथि गुणकार है, जो सर्व जीवसाथिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

अनाहारकोंमें अमंयतसम्पद्यद्वि गुणस्थानमें उपशमसम्पद्यद्वि जीव सर्वसे कम  
हैं ॥ ३८० ॥

पर्योकि, अनाहारक उपशमसम्पद्यद्वि जीवीत्ता प्रमाण संख्यात है ।

१ सासादनसम्पद्यद्वि जीवसंख्येयगुणां । स वि. १, ८.

२ अमंयतसम्पद्यद्वि जीवसंख्येयगुणां । स वि. १, ८

३ मिथ्याद्वियोजनत्तत्ताः । स वि. १, ८

खइयसम्मादिद्वी संखेज्जगुणां ॥ ३८१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जससया ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणां ॥ ३८२ ॥

को गुणगारो ? पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदेवमस्स  
पढमभूलाणि ।

( एत आहारसगणा समत्ता । )

एवमप्यपवहुगाणुगारो चि समत्तमणिओगदारं ।

अनाहारकोंमें असंयतसम्पद्यद्वि गुणस्थानमें उपशमसम्पद्यद्वियोंने क्षायिक-  
सम्पद्यद्वि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३८१ ॥

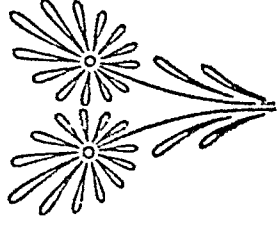
गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

अनाहारकोंमें अमंयतसम्पद्यद्वि गुणस्थानमें क्षायिकसम्पद्यद्वियोंने वेदकसम्प-  
द्यद्वि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३८२ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमत्ता असंख्यातत्तां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके  
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

( इस प्रकार आहारमार्शणा समाप्त हुई । )

इस प्रकार अल्पमहुत्तानुसम नामक अनुयोगद्वारा समाप्त हुआ ।







पुस्तक







पुस्तक



पद्य संख्या	पद्य	पद्य संख्या	पद्य	पद्य संख्या	पद्य
३६५	पमरमंजदा मंसंज्जगुणा ।	३४७	३७४	खवा संखेज्जगुणा ।	३४८
३६६	मंजदांमंजदा असंसिज्जगुणा ।	"	३७५	अणाहारएसु सव्वयोवा	"
३६७	मानणमम्मादिट्ठी असंसिज्जगुणा ।	"	"	मजोगिकेवली ।	"
३६८	मम्माभिच्छादिट्ठी संसेज्जगुणा ।	"	३७६	अजोगिकेवली संसेज्जगुणा ।	"
३६९	अंजदमम्मादिट्ठी असंसिज्जगुणा ।	"	३७७	सासणसम्मादिट्ठी असंसिज्जगुणा ।	३४९
३७०	भिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ।	३४८	३७८	असंजदसम्मादिट्ठी असंसिज्जगुणा ।	"
३७१	अंजदमम्मादिट्ठी-मंजदा-मंजद-पमर-अपपमचंसंजद-गुणे सम्मचपपानद्दमोघं ।	"	३७९	भिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ।	"
३७२	एवं तिसु अद्वासु ।	"	३८०	असंजदसम्मादिट्ठीगुणे सव्व-त्योवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	"
३७३	सव्वत्योवा उवसमा ।	"	३८१	सइयसम्मादिट्ठी संसेज्जगुणा ।	३५०
		"	३८२	वेदगसम्मादिट्ठी असंसिज्जगुणा ।	"

## २ अवतरण-गाथा-सूची

( भावप्ररूपणा )

क्रम संख्या	गाथा	पद्य	अन्यत्र कहा	क्रम संख्या	गाथा	पद्य	अन्यत्र कहा
१	अण्णिरुआरुआयो	१८६		९	णणणणाणं च तथा	१९१	
११	इगिनीस अट्ट तां णव	१९२		२	णामिणि धम्ममुचयारो	१८६	
१२	णकोत्तरपवट्टो	१९३		१४	देसे सओचसमिण	१९३	
१०	परं ठाणं तिण्णिण विय-	१९२		१३	भिच्छत्ते दस भगा	"	
५	ओदरओ उवसमिओ	१८७		८	लद्धीओ सम्मत्तं	१९१	
४	रावए य रीणमोहे	१८६	पररंडा वेदनारंड- गो जी. ६७.	३	सम्मचुण्णतीय वि	१८६	पदबंधा. वेदनारंड, गो. जी. ६६
६	गदि-लिंण-कसाया वि	१८९		७	सम्मत्तं चरित्तं दो	१९०	

## ३ न्यायोक्तियां

क्रम संख्या	न्याय	पद्य	क्रम संख्या	न्याय	पद्य
१	एगलोगणिदिट्ठाणमेगदेसो णाणुवट्टदि त्ति णायादो ।	२५९	३	कारणाणुसारिणा कल्लेण होदव्वमिदि णायादो ।	२५०
२	जहा उहेसो तथा णिहेसो ।	४, ९, २५, २७, ७१, १९४, २७०	४	समुदाएसु पयट्ठाणं तवेग-देसे वि पउत्तिदंसणादो ।	१९९

## ४ ग्रन्थोल्लेख

## १ चूलियासुत्त

१ तं कथं णव्वदे ? 'पंचिदिपसु उवसामंतो गम्भोवकंतिपसु उवसामेदि, गो सस्सुच्छिमेसु' त्ति चूलियासुत्तादो । ११८

## २ दव्व्याणिओगद्दार

१ पदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोसुत्तेण कालेणेत्ति दव्व्याणिओगद्दार-सुत्तादो णव्वदि । २५२

२ आणद-पाणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिपट्टि जाव असंजदसम्मादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, पलिदोवमसस असंखेज्जविभागो । पदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोसुत्तेण । अणुदिसादि जाव अवरइदविमाण-वासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, पलिदोवमसस असंखेज्जवि-भागो । पदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोसुत्तेणेत्ति पदेण दव्वसुत्तेण । २८७

## ३ पाहुडसुत्त ( कपायप्राभुत्त )

१. चट्ठण्हं कसायाणसुत्तसंतस्स छम्मासमेत्तस्सेव सिद्धीदो । ण पाहुड-सुत्तेण वियहिचारो, तस्स भिण्णोवदेसत्तादो । ११२

२ तं पि कुदो णव्वदे ? 'णियमा मणुगसवीए' इदि सुत्तादो । २५६

## ४ सूत्रपुस्तक

१. केसु वि सुत्तपोत्थएसु पुरित्सेवदस्संतं छम्मासा । १०६

## ५ परिभाषिक शब्दसूची

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
अकृपागतत्व	२२३	आगमद्रव्यान्तर	२
अच्युतशून्यस्थिति	१३७, १३८	आगमद्रव्यभाव	१८४
अचिन्ततद्व्यतिरिक्तद्रव्यान्तर	३	आगमद्रव्याल्पबहुत्व	२४२
अतिप्रसंग	२०६, २०९	आगमभावभाव	१८४
अद्यस्तनराशि	२४९, २६२	आगमभावान्तर	३
अनापित	४५	आगमभावाल्पबहुत्व	२४२
अनात्मभूतभाव	१८५	आदेश	१, २४३
अनात्मस्वरूप	२२५	आवली	७
अनादिपारिणामिक	२२५	आसादन	२४
अनुद्वयोपपत्तय	२०७	आहारककाल	२९८
अन्तदीपक	२०१, २००		१७४
अन्तर	३		
अन्तरानुगम	१	उच्छेद	३
अन्तर्मुहूर्त	९	उत्कीरणकाल	१०
अन्यथानुपपत्ति	२२३	उत्तरप्रतिपत्ति	३२
अपगतवेदत्व	२२२	उत्तानशय्या	४७
अपक्षिम	४४, ७४	उद्वेलनकाल	३४
अपूर्वाब्दा	५४	उद्वेलना	३३
अभिधान	१९४	उद्वेलनाकांडक	१०, २५
अर्थ	१९४	उपक्रमणकाल	२५५
अर्थयुद्गलपरिवर्तन	११	उपदेश	३२
अपित	६३	उपरिस्तराशि	२४९, २६२
अल्पान्तर	११७	उपशम	२००, २०२, २०३, २११, २२०
अवहारकाल	२४९	उपशमश्रेणी	११, १५१
अंशादिभाव	२०८	उपशमसम्पत्त्वाब्दा	१५, २५४
असंज्ञिस्थिति	१७२	उपशान्तकपायाब्दा	१९
असंयम	१८८	उपवासक	१२५, २६०
असंज्ञानस्थापनान्तर	२	उपशमकाब्दा	१५९, १६०
असंज्ञानस्थापनाभाव	१८४		
असिद्धता	१८८	ओष	१, २४३

( ३६ )

## परिभाषिक शब्दसूची

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
औद्यिकभाव	१८५, १९४	उ	
औपशमिकभाव	१८५, २०४	उहरकाल	४२, ४४, ४७, ५६
कपाटपर्याय	९०	त	
करण	११	तद्व्यतिरिक्तबहुत्व	२४२
कषाय	२२३	तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यभाव	१८४
कुर	४१	तीर्थकर	१९४, ३२३
कृतकर्णाय	१४, १५, १६, ९९,	तीव्र-मन्दभाव	१८७
	१०५, १३९, २३३	त्रसपर्यायस्थिति	८४, ८५
	१९०	त्रसस्थिति	६५, ८१
क्रोधोपशमनाब्दा	१९०	द	
क्षपक	१०५, १२४, २६०	दक्षिणप्रतिपत्ति	३२
क्षपकश्रेणी	१२, १०६	द्विचसपृथक्त्व	९८, १०३
क्षपकाब्दा	१५९, १६०	द्विव्यध्वनि	१९४
क्षय	१९८, २०२, २११, २२०	दीर्घान्तर	११७
क्षयिकभाव	१८५, २०५, २०६	दृष्टमार्ग	२२, ३८
क्षयिकसम्पत्त्वाब्दा	२५४	देवलोक	२८४
क्षयिकसंज्ञा	२००	देशघातिस्पर्धक	१९९
क्षयोपशमिक	२००, २११, २२०	देशान्त	२७७
क्षयोपशमिकभाव	१८५, १९८	देशसंयम	२०२
क्षुद्रभवग्रहण	४५, ५६	द्रव्यविष्कम्भसूची	२६३
		द्रव्यान्तर	३
		द्रव्याल्पबहुत्व	२४१
		द्रव्यालिंगी	५८, ६३, १४९
गुणकार	२४७, २५७, २६२, २७४	न	
गुणकाल	८९	नपुंसकवेदोपशमनाब्दा	१९०
गुणस्थानपरिपाटी	१३	नामभाव	१८३
गुणाब्दा	१५१	नामान्तर	१
गुणान्तरसंक्रान्ति	८९, १५४, १७१	नामाल्पबहुत्व	२४१
		निदर्शन	६, २५, ३२
		निर्न्तर	५६, २५७
		निर्जराभाव	१८७
		निर्माण	३५
		नोआगमअचित्तद्रव्यभाव	१८४
		नोआगमद्रव्यभाव	१८४
		नोआगमद्रव्यान्तर	२
		नोआगमभ्रव्यद्रव्यभाव	१८४
घनांगुल	३१७, ३३५		
चक्षुद्रशून्यस्थिति	१३७, १३९		
जीवधिपाकी	२२२		
ज्ञानकार्य	२२४		

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
नो आगमशासनान्तर	१८३	मासपुत्रान्तर	१७२
नो आगमशासनान्तर	३	मिथ्यात्व	६
नो आगममिश्रणभान	१८४	मिश्रान्तर	३
नो आगमप्रत्ययपरमुल	२४२	मुहूर्तपृथक्त्व	३२, ४५
नो आगमशासनपरमुल	२४२		
नो आगमसन्निचित्रभान	१८४	योग	२२६
नो द्विचित्रावरण	२३७	योगान्तरसंक्रान्ति	८९
परमार्थे	७		
परम्यानापरमुल	२८९	लेख्यान्तरसंक्रान्ति	१५३
परिपाटी	२०	लक्ष्याद्धा	१५१
पल्योपम	७, ९	लोपोपशामनाद्धा	१९०
परिष्कारिभूमा	१८५, २०७, १९६, २३०		
पुत्रलपरिचय	५७		
पुत्रनिष्पत्ति	२२३		
पुत्रलीपिकाती	२२६		
पुत्रनेत्रोपशामनात्रा	१९०		
पुत्रोद्देशपुत्र	४२, ५२, ७२		
प्रशरणदेश	२९३		
प्रसंगमुल	३१७, ३३५		
प्रतिभाष	२७०, २९०		
प्रत्यय	१५४		
प्रत्येकपुर	३२३		
गोभिलपुर	३२३	श्रेणी	१६६
अव्यय	१८८	पण्णोक्तगयोपशामनाद्धा	१९०
भा	१८६	पण्मास	२१
भाववर	२२२		
भुग	६३		
महायत	२७७	सचिन्तान्तर	३
मानोपशामनात्रा	१९०	सदुपसाम	२०७
मायोपशामनात्रा	१९०	सद्भावस्थापनाभाव	१८३
मासपुत्र	३२, ९३	सद्भावस्थापनान्तर	२
		सम्पूर्च्छिम	४१

( ३७ )

( ३८ )

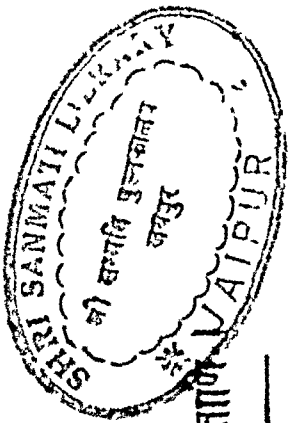
पारिभाषिक शब्दसूची

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
सम्यक्त्व	६	संचय	६
सम्यग्मिथ्यात्व	७	संचय जाल	२४४, २७३
सर्वत्रातित्व	१९८	संचय जालप्रतिभाषा	२७७
सर्वघातिस्पर्धक	१९९, २३७	संचय जालमाहात्म्य	२८४
सर्वघाती	१९९, २०२	संचयराशि	२५३
सर्वपरस्थानात्यवहुत्व	२८९	संयम	३०७
सागरोपम	६	संयमासंयम	६
सागरोपमपृथक्त्व	१०	स्त्रितुक्रसंक्रमण	२१०
सागरोपमशतपृथक्त्व	७२	स्थान	१८९
सातासातबंधपरवृत्ति	१३०, १४२	स्थापनान्तर	२
साधारणभाव	१९६	स्थापनाभाव	१८३
सान्तर	२५७	स्थापनात्यवहुत्व	२४१
साविपतिभाव	१९३	स्थावरस्थिति	८५
सासादनगुण	७	स्त्रीविदेशस्थिति	९६, ९८
सासादनपञ्चादागतमिथ्याद्धृष्टि	१०	स्त्रीविदेशोपशामनाद्धा	१९०
सासंयमसम्यक्त्व	१६	स्वस्थानात्यवहुत्व	२८९
सिद्धयत्काल	१०४		
सुद्धमाद्धा	१९		
सौचिकस्वरूप	२६७	हेतुहेतुमद्भाव	३२२

ह







### अंतरपरुवणासुताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	अंतराणुगमेण द्रुमिहो णिदेसो, ओथेण आदेसेण य ।	११	उक्कस्सेण अद्रुपोगलपरियद्धं देयुणं ।	१४
२	ओथेण मिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	१२	चद्रुण्हमुवसामाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच जहण्णेण एगसमयं ।	१७
३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	१३	उक्कस्सेण वासपुघत्तं ।	१८
४	उक्कस्सेण वे छागद्धिसागरोव-माणि देयुणाणि ।	१४	एगजीवं पडुच जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	"
५	सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा-दिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच जहण्णेण एगसमयं ।	१५	उक्कस्सेण अद्रुपोगलपरियद्धं देयुणं ।	१९
६	उक्कस्सेण पलिदेवमस्स असं-सेज्जदिभागो ।	१६	चद्रुण्हं सवग-अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच जहण्णेण एगसमयं ।	२०
७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलि-दोवमस्स असंसेज्जदिभागो, अंतो-मुहुत्तं ।	१७	उक्कस्सेण छम्मासं ।	२१
८	उक्कस्सेण पलिदेवमस्स असं-सेज्जदिभागो ।	१८	एगजीवं पडुच णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"
९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलि-दोवमस्स असंसेज्जदिभागो, अंतो-मुहुत्तं ।	१९	सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"
१०	उक्कस्सेण अद्रुपोगलपरियद्धं देयुणं ।	२०	एगजीवं पडुच णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"
११	असंजदवस्मादिद्वि-पडुडि जाव अप्पमत्तजंजदा चि अंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	२१	आदेसेण गदियाणुवादेण णिरय-गदीए णेरहएसु मिच्छादिद्वि-असं-जदसम्मादिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	२२

### ( २ ) अंतरपरुवणासुताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	२२	उक्कस्सेण पलिदेवमस्स असंसे-ज्जदिभागो ।	२९
२३	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देयुणाणि ।	२३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलि-दोवमस्स असंसेज्जदिभागो, अंतो-मुहुत्तं ।	"
२४	सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा-दिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	२४	उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वार्वास तेत्तीसं सागरोवमाणि देयुणाणि ।	"
२५	उक्कस्सेण पलिदेवमस्स असंसे-ज्जदिभागो ।	२५	तिरिक्खवदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	३१
२६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलि-दोवमस्स असंसेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ।	२६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	"
२७	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देयुणाणि ।	२६	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदेवमाणि देयुणाणि ।	३२
२८	पडमादि जाव सत्तमीए पुढयीए णेरहएसु मिच्छादिद्वि-असंजद-सम्मादिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	२७	सासणसम्मादिद्वि-पडुडि जाव संजदासंजदा चि ओवं ।	३३
२९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	२७	पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख-मिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	३७
३०	उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तारस वार्वास तेत्तीसं सागरोवमाणि देयुणाणि ।	३०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं ।	३८
३१	सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा-दिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच जहण्णेण एगसमयं ।	३१	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदेवमाणि देयुणाणि ।	"
३२	सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा-दिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच जहण्णेण एगसमयं ।	३२	सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा-दिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच जहण्णेण एगसमयं ।	३९



सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
६७	संजदासंजदपहुडि जाव अप्यमत्त-संजदाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	५१	८२	एदं गदिं पडुच्च अंतरं ।	५७
६८	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	"	८३	गुणं पडुच्च उभयदो वि गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
६९	उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ।	५२	८४	देवगदीए देसेसु मिच्छादिङ्घि-असंजदसम्मादिङ्घीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
७०	चटुण्हसुवसासगाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	५३	८५	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	"
७१	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"	८६	उक्कस्सेण एककत्तीसं सागरो-वमाणि देहणाणि ।	५८
७२	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	५४	८७	सासणसम्मादिङ्घि-सम्मासिच्छा-दिङ्घीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	५९
७३	उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ।	"	८८	उक्कस्सेण पलिदोवमसस असंखे-ज्जदिभागो ।	"
७४	चटुण्हं खवा अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	५५	८९	एगजीवं पडुच्च जहणेण पलिदो-वमसस असंखेज्जदिभागो, अंतो-मुहुत्तं ।	"
७५	उक्कस्सेण छम्मासं, वासपुधत्तं ।	"	९०	उक्कस्सेण एककत्तीसं सागरो-वमाणि देहणाणि ।	६०
७६	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	५६	९१	मवणवासिय-वाणवेतर-जोदिसिय-सोधम्मीसाणपहुडि जाव सदार-सहस्सारकूपवासियदेसेसु मिच्छा-दिङ्घि-असंजदसम्मादिङ्घीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणा-जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	६१
७७	सजोगिकेवली ओध ।	"	९२	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	"
७८	मणुमअपज्जत्ताणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	"			
७९	उक्कस्सेण पलिदोवमसस असंखे-ज्जदिभागो ।	"			
८०	एगजीवं पडुच्च जहणेण सुदा-भवग्गहणं ।	"			
८१	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज-योगलपरियट्टं ।	५७			

पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३८	५५	एदं गदिं पडुच्च अंतरं ।	४६
३९	५६	गुणं पडुच्च उभयदो वि गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
"	५७	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिङ्घीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणा-जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
४०	५८	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	४७
४१	५९	उक्कस्सेण तिणिण पलिदोवमाणि देहणाणि ।	"
४२	६०	सासणसम्मादिङ्घि-सम्मासिच्छा-दिङ्घीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	४८
"	६१	उक्कस्सेण पलिदोवमसस असंखे-ज्जदिभागो ।	"
४३	६२	एगजीवं पडुच्च जहणेण पलि-दोवमसस असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ।	"
"	६३	उक्कस्सेण तिणिण पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणग्गभहियाणि ।	४९
४४	६४	असंजदसम्मादिङ्घीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	५०
४५	६५	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	"
"	६६	उक्कस्सेण तिणिण पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणग्गभहियाणि ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
११४	पोगलयपरियङ् । पंचिदिय-पंचिदियपञ्जत्तएसु मि- च्छादिङ्गी ओधं ।	६८	१२५	याणि, सागरोवमसदपुधत्तं । चटुण्हं खवा अजोगिकेवली ओधं ।	७५
११५	सासणसम्मादिङ्गि-सम्माभिच्छा- दिङ्गीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जह- णणेण एगससयं ।	६९	१२६	सजोगिकेवली ओधं ।	७७
११६	उक्कस्सेण पलिदोवमसस असंखे- ज्जदिभागो ।	७०	१२७	पंचिदियअपञ्जत्ताणं वेइंदिय- अपञ्जत्ताणं भंगो ।	७७
११७	एगजीवं पडुच्च जहणणेण पलिदोवमसस असंखेज्जदिभागो, अंतोसुहुत्तं ।	७०	१२८	एदमिंदियं पडुच्च अंतरं ।	७७
११८	उक्कस्सेण सागरोवमसह- स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणवमहि- याणि सागरोवमसदपुधत्तं ।	७०	१२९	गुणं पडुच्च उभयदो वि गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	७८
११९	असंजदसम्मादिङ्गिपुहुडि जाव अप्पमत्तजंदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	७१	१३०	कायाणुधादेण पुढविक्काइय- आउक्काइय-तेउक्काइय-वाउक्काइय- वादर-सुहुम-पञ्जत्त-अपञ्जत्ताण- मंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	७८
१२०	एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतो- सुहुत्तं ।	७२	१३१	एगजीवं पडुच्च जहणणेण सुदा- भवग्गहणं ।	७८
१२१	उक्कस्सेण सागरोवमसह- स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणवमहि- याणि, सागरोवमसदपुधत्तं ।	७२	१३२	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- पोगलयपरियङ् ।	७८
१२२	चटुण्हसुवसामाणं गाणाजीवं पडि ओधं ।	७५	१३३	वणप्फदिक्काइय-गिगोदजीन- वादर-सुहुम-पञ्जत्त-अपञ्जत्ताण- मंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	७९
१२३	एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतो- सुहुत्तं ।	७५	१३४	एगजीवं पडुच्च जहणणेण सुदा- भवग्गहणं ।	७९
१२४	उक्कस्सेण सागरोवमसह- स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणवमहि- याणि, सागरोवमसदपुधत्तं ।	७५	१३५	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।	७९
			१३६	वादरवणप्फदिक्काइयपत्तेयसरीर- पञ्जत्त-अपञ्जत्ताणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणा-	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
९३	उक्कस्सेण मागोमं पलिदोवमं वे सत्तदम चोइम योलस अट्टारस सागरोवमाणि सादिरियाणि ।	६५	१०३	भवग्गहणं । उक्कस्सेण वे सागरोवमसह- स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणवम- हियाणि ।	६५
९४	मागणमम्मादिङ्गि-सम्माभिच्छा- दिङ्गीणं मत्थणोत्तं ।	६२	१०४	वादरेइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	६६
९५	आणद जाव गवरोपञ्जविमाण- वासियेदेवेषु मिच्छादिङ्गि-असं- जदमम्मादिङ्गीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	६२	१०५	एगजीवं पडुच्च जहणणेण सुदा- भवग्गहणं ।	६६
९६	एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतो- सुहुत्तं ।	६२	१०६	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।	६६
९७	उक्कस्सेण वीमं वानीसं तेनीसं चउरीसं पणवीसं छुच्चीसं सत्ता- वीसं अट्टानीसं उगत्तीसं तीसं एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देस्- णाणि ।	६३	१०७	एवं वादरेइंदियपञ्जत्त-अपञ्ज- त्ताणं ।	६७
९८	मानणमम्मादिङ्गि-सम्माभिच्छा- दिङ्गीणं सत्थाणमोत्तं ।	६४	१०८	सुहुमंइंदिय-सुहुमंइंदियपञ्जत्त- अपञ्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	६७
९९	अणुदिसादि जाव सव्वहृत्सिद्धि- रिमाणवासियेदेवेषु असंजद- सम्मादिङ्गीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ( गत्थि ) अंतरं, गिरंतरं ।	६४	१०९	एगजीवं पडुच्च जहणणेण सुदा- भवग्गहणं ।	६७
१००	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	६४	११०	उक्कस्सेण अंगुलसस असंखे- ज्जदिभागो, असंखेज्जामंखे- ज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पि- णीओ ।	६७
१०१	इंदियाणुधादेण एइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	६५	१११	वीइंदिय-तीइंदिय-चटुरिंदिय- तस्सेव पञ्जत्त-अपञ्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	६८
१०२	एगजीवं पडुच्च जहणणेण सुदा- भवग्गहणं ।	६५	११२	एगजीवं पडुच्च जहणणेण सुदा- भवग्गहणं ।	६८
			११३	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- पोगलयपरियङ् ।	६८

परिशिष्ट	( ७ )	( ८ )	अतरपरुखणामुत्तानि
सूत्र संख्या	सूत्र संख्या	सूत्र संख्या	सूत्र संख्या
जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	७९	गिरंतरं ।	८८
१३७ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण सुदा- भवग्गहणं ।	८०	१५७ चटुण्हमुवसामाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओघं ।	९१
१३८ उक्कस्सेण अहुहज्जयोगगल- परियटं ।	"	१५८ एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
१३९ तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ।	"	१५९ चटुण्हं खवाणमोघं ।	९२
१४० सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छा- दिट्ठीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओघं ।	"	१६० ओरालियमिस्सकायजोगीसु मि- च्छादिट्ठीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
१४१ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलि- दोयमस्स असरेज्जदिभागो, अंतोपडुत्तं ।	"	१६१ सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केव- चिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओघं ।	"
१४२ उक्कस्सेण वे सागरोवमसह- स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहि- याणि, वे सागरोवमसहस्साणि देयणाणि ।	८१	१६२ एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	९३
१४३ अमंजदसम्मादिट्ठिप्पडुडि जाव अप्पमतसंजदाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"	१६३ असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केव- चिंरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	"
१४४ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	८२	१६४ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"
१४५ उक्कस्सेण वे सागरोवमसह- स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहि- याणि, वे सागरोवमसहस्साणि देयणाणि ।	"	१६५ एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
१४६ चटुण्हमुवसामाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"	१६६ सजोगिकवलीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	९४
१४७ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असले- ज्जदिभागो ।	८३	१६७ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"
१४८ एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"	१६८ एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
१४९ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"	१६९ वेउन्नियत्रायजोगीसु चटुट्ठा-	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२०५	पटुच्च जहणेण एगसमयं ।	१०५	२१७	उक्कस्सेण अंतोसुद्धत्तं ।	११०
२०६	उक्कस्सेण वासं सादिरेयं ।	१०६	२१८	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था- णमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	"
२०७	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"	२१९	उक्कस्सेण वासपुघत्तं ।	"
२०८	णुंसयवेदएसु मिच्छादिद्वीण- मंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	१०६	२२०	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं ।	१११
२०९	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुद्धत्तं ।	१०७	२२१	अणियच्चिखवा सुद्धमखवा रणीणकसायवीदरागछदुमत्था अजोगिकेवली ओघं ।	"
२१०	उक्कस्सेण तेचीसं सागरोव- माणि देखणाणि ।	"	२२२	सजोगिकेवली ओघं ।	"
२११	सासणसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अणियच्चिउवसामिदो चि मूलोघं ।	"	२२३	कसायाणुवादेण कोधकसाह- माणकसाह-मायकसाह-लोह- कसाईसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव सुद्धमसांपराइयउवसमा खवा चि मणजोगिभंगो ।	"
२१२	दोण्हं खवाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	१०९	२२४	अक्कसाईसु उवसंतकसायवीद- रागछदुमत्थाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	११३
२१३	उक्कस्सेण वासपुघत्तं ।	"	२२५	उक्कस्सेण वासपुघत्तं ।	"
२१४	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"	२२६	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"
२१५	अवगद्वेदएसु अणियच्चिउव- सम-सुद्धमउवसमाणमंतरं केव- चिंरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च जहणेण एग- समयं ।	"	२२७	खीणकसायवीदरागछदुमत्था अजोगिकेवली ओघं ।	"
२१६	उक्कस्सेण वासपुघत्तं ।	"	२२८	सजोगिकेवली ओघं ।	"
२१७	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुद्धत्तं ।	११०	२२९	गाणाणुवादेण मदिअणाणि- सुदअणाणि—विभंगणाणीसु मिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिंरं	११०

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१८१	सामाणमम्मादिद्वि-मम्माभिच्छा- दिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च ओघं ।	१००	१९३	पुरिसवेदएसु मिच्छादिद्वी ओघं ।	१००
१८२	एगजीवं पडुच्च जहणेण पत्थिदोवमस असंसेज्जदि- भागो, अंतोसुद्धत्तं ।	१०१	१९४	सामाणमम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा- दिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	१०१
१८३	उक्कस्सेण पल्लिदोवमसद- पुघत्तं ।	"	१९५	उक्कस्सेण पल्लिदोवमस असंसेज्जदिभागो ।	"
१८४	अपमत्तजदाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"	१९६	एगजीवं पडुच्च जहणेण पल्लिदोवमस असंसेज्जदि- भागो, अंतोसुद्धत्तं ।	"
१८५	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुद्धत्तं ।	"	१९७	उक्कस्सेण सागरोवमसद- पुघत्तं ।	"
१८६	उक्कस्सेण पल्लिदोवमसद- पुघत्तं ।	"	१९८	असंजदसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अपमत्तजदाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	१०२
१८७	दोण्हं समाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	"	१९९	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुद्धत्तं ।	"
१८८	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुद्धत्तं ।	१०३	२००	उक्कस्सेण सागरोवमसद- पुघत्तं ।	१०३
१८९	उक्कस्सेण पल्लिदोवमसद- पुघत्तं ।	"	२०१	दोण्हं समाणमंतरं केव- चिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च ओघं ।	१०४
१९०	दोण्हं समाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	"	२०२	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुद्धत्तं ।	"
१९१	उक्कस्सेण वासपुघत्तं ।	"	२०३	उक्कस्सेण सागरोवमसद- पुघत्तं ।	"
१९२	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"	२०४	दोण्हं समाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	१००

सूत्र संख्या	सूत्र	श्रुत संख्या	सूत्र	श्रुत
२३०	कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं । ११४	२४१	चटुण्हसुवसामगणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । १२२	१२२
२३१	सातणसम्मादिट्ठीणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च ओघं ।	२४२	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"
२३२	एगजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं ।	२४३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
२३३	आभिण्णिवोहिय-सुद-ओहि- गाणीसु असंजदसम्मादिट्ठीण- मंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं ।	२४४	उक्कस्सेण छावट्ठिसागरो- वमाणि सादिरैयाणि ।	"
२३४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	२४५	चटुण्हं खवाणमोघं । गव्वरि विसेसो ओधिणाणीसु खवाणं वासपुधत्तं । १२३	१२३
२३५	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं अंतोमुहुत्तं ।	२४६	मणपज्जवणाणीसु पमत्त- अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं ।	"
२३६	संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं । ११६	२४७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
२३७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	२४८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
२३८	उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोव- माणि सादिरैयाणि ।	२४९	चटुण्हसुवसामगणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । १२५	१२५
२३९	पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं । ११९	२५०	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"
२४०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १२०	२५१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १२६	१२६
२४१	उक्कस्सेण तेचींमं सागरोवमाणि सादिरैयाणि ।	२५२	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं ।	"
		२५३	चटुण्हं खवाणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । १२७	१२७
		२५४	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	श्रुत संख्या	सूत्र	श्रुत
२५५	एगजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं गिरंतरं । १२७	२५५	एगजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं गिरंतरं । १२७	१२७
२५६	केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ।	२५६	केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ।	"
२५७	अजोगिकेवली ओघं ।	२५७	अजोगिकेवली ओघं ।	"
२५८	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्त- संजदप्पट्ठि जाव उवसंत- कसायवीदरागछटुमत्था चि मणपज्जवणाणिमंगो । १२८	२५८	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्त- संजदप्पट्ठि जाव उवसंत- कसायवीदरागछटुमत्था चि मणपज्जवणाणिमंगो । १२८	१२८
२५९	चटुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं ।	२५९	चटुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं ।	"
२६०	सजोगिकेवली ओघं ।	२६०	सजोगिकेवली ओघं ।	"
२६१	सामाहय-छेदोवट्ठावणसुद्धि- संजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाण- मंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं ।	२६१	सामाहय-छेदोवट्ठावणसुद्धि- संजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाण- मंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं ।	१२९
२६२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	२६२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
२६३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	२६३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	१२९
२६४	दोण्हसुवसामगणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	२६४	दोण्हसुवसामगणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	"
२६५	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	२६५	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"
२६६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	२६६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१३०
२६७	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं ।	२६७	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं ।	"
२६८	दोण्ह खवाणमोघं ।	२६८	दोण्ह खवाणमोघं ।	१३१
२६९	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-संजदाणमंतरं केवचिरं	२६९	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-संजदाणमंतरं केवचिरं	१३१
		२७०	उक्कस्सेण तेचींसं सागरोव- माणि देखणाणि । १३४	१३४
		२७१	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
		२७२	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सु- हुमसांपराइयउवसमाणमंतरं के- वचिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं । १३२	१३२
		२७३	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"
		२७४	एगजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं ।	"
		२७५	खवाणमोघं ।	"
		२७६	जहाकखादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइमंगो ।	"
		२७७	संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं । १३३	१३३
		२७८	असंजदेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं ।	"
		२७९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
		२८०	उक्कस्सेण तेचींसं सागरोव- माणि देखणाणि । १३४	१३४
		२८१	सातणसम्मादिट्ठि-सम्मादिट्ठा- दिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमोघं ।	"

पृष्ठ संख्या	पृष्ठ संख्या	पृष्ठ संख्या	पृष्ठ संख्या
२८२	दंगणशुवादेण चमसुदंमणीसु मिच्छादिद्वीणमोघं ।	२९४	ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ।
२८३	साणमस्मादिद्वि-सम्माभिच्छा- द्विणीमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओघं ।	२९५	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ।
२८४	एगजीवं पडुच्च जहणणेण पलिदोवमस्स अमंखेज्जदि- भागो, अंतोमुहुत्तं ।	२९६	लेसाणुवादेण किण्हलेस्सिय- गोल्लेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिद्वि-असंजदसम्मा- द्विणीमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।
२८५	उक्कस्सेण वे सागरोवममह- स्साणि देसणाणि ।	२९७	एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।
२८६	अंसदसम्मादिद्विपडुडि जाव अपमचगजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	२९८	उक्कस्सेण तेचीसं सत्तारस सच सागरोवमाणि देसणाणि ।
२८७	एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।	२९९	साणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा- द्विणीमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओघं ।
२८८	उक्कस्सेण वे नागरोवममह- स्साणि देसणाणि ।	३००	एगजीवं पडुच्च जहणणेण पलिदोवमस्स अंसंखेज्जदि- भागो, अंतोमुहुत्तं ।
२८९	चट्ठमुसमागणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओघं ।	३०१	उक्कस्सेण तेचीसं सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसणाणि ।
२९०	एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।	३०२	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिद्वि-अंसंजदसम्मा- द्विणीमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।
२९१	उक्कस्सेण वे सागरोवममह- स्साणि देसणाणि ।	३०३	एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।
२९२	चट्ठं रत्ताणमोघं ।	३०४	उक्कस्सेण वे अट्टारस सागरो- वमाणि सादियेयाणि ।
२९३	अचमसुदंमणीसु मिच्छादिद्वि- पडुडि जाव रीणरुसायवीद- रागळडुमत्था ओघं ।	३०५	साणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा- द्विणीमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओघं ।

पृष्ठ संख्या	पृष्ठ संख्या	पृष्ठ संख्या	पृष्ठ संख्या
३०५	साणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा- द्विणीमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओघं ।	३१५	संजदासंजद-पमत्तसंजदाण- मंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।
३०६	एगजीवं पडुच्च जहणणेण पलिदोवमस्स अंसंखेज्जदि- भागो, अंतोमुहुत्तं ।	३१६	अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।
३०७	उक्कस्सेण वे अट्टारस सागरो- वमाणि सादियेयाणि ।	३१७	एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।
३०८	संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्त- संजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	३१८	उक्कस्समंतोमुहुत्तं ।
३०९	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिद्वि- असंजदसम्मादिद्विणीमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	३१९	तिण्हमुवसामागणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च जहणणेण एग- समयं ।
३१०	एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।	३२०	उक्कस्सेण वासपुथत्तं ।
३११	उक्कस्सेण एक्कचीसं सागरो- वमाणि देसणाणि ।	३२१	एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।
३१२	साणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा- द्विणीमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओघं ।	३२२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।
३१३	एगजीवं पडुच्च जहणणेण पलिदोवमस्स अंसंखेज्जदि- भागो, अंतोमुहुत्तं ।	३२३	उवसंतकसायवीदरागळडुम- तथाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जह- णणेण एगसमयं ।
३१४	उक्कस्सेण एक्कचीसं सागरो- वमाणि देसणाणि ।	३२४	उक्कस्सेण वासपुथत्तं ।
३१५	उक्कस्सेण एक्कचीसं सागरो- वमाणि देसणाणि ।	३२५	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ।
३१६	चट्ठं खवा ओघं ।	३२६	चट्ठं खवा ओघं ।
३१७	सजोगिकिवली ओघं ।	३२७	सजोगिकिवली ओघं ।
३१८	भविआणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिद्विपडुडि जाव अब्जोगिकेवल्लि चि ओघं ।	३२८	भविआणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिद्विपडुडि जाव अब्जोगिकेवल्लि चि ओघं ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३५५	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरो- वमाणि सादियेयाणि ।	"	३७०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१६९
३५६	उवससम्मदिट्ठीसु असंजद- सम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिंरं	"	३७१	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
	कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	१६५	३७२	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था- णमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	"
३५७	उक्कस्सेण सत्त रादिदियाणि ।	"	३७३	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"
३५८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३७४	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
३५९	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	१६६	३७५	सासणसम्मादिट्ठी—सम्मा — मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	१७०
३६०	संजदासंजदाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	"	३७६	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असेय- ज्जदिसागो ।	"
३६१	उक्कस्सेण चोदस रादिदियाणि ।	"	३७७	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१७१
३६२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३७८	मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
३६३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	१६७	३७९	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीणमोधं ।	"
३६४	पमत्त—अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	"	३८०	सासणसम्मादिट्ठीप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था त्ति पुरिसेवदंभंगो ।	"
३६५	उक्कस्सेण पण्णारस रादि- दियाणि ।	"	३८१	चदुण्हं रवाणमोधं ।	१७२
३६६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३८२	असण्णीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
३६७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	१६८			
३६८	त्तिण्हसुवसागाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	"			
३६९	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३२९	अमयासिदियाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१५४	३४२	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरो- वमाणि सादियेयाणि ।	१५७
३३०	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"	३४३	चदुण्हसुवसागाणमंतरं केव- चिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	१६०
३३१	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मदिट्ठीणमंतरं केव- चिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१५५	३४४	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"
३३२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३४५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
३३३	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं ।	"	३४६	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरो- वमाणि सादियेयाणि ।	"
३३४	संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था ओधिणाणिभंगो ।	"	३४७	चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओधं ।	१६१
३३५	चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओधं ।	१५६	३४८	सजोगिकेवली ओधं ।	"
३३६	सजोगिकेवली ओधं ।	"	३४९	वेदरासम्मदिट्ठीसु असंजद- सम्मदिट्ठीणं सम्मादिट्ठीभंगो ।	१६२
३३७	सइयसम्मदिट्ठीसु असंजद- सम्मदिट्ठीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"	३५०	संजदासंजदाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
३३८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३५१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
३३९	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं ।	"	३५२	उक्कस्सेण छावडिसागरोवमाणि देखणाणि ।	"
३४०	संजदासंजद-पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१५७	३५३	पमत्त—अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१६३
३४१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१५४	३५४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१६४

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३८३	एराजीवं पटुच्च गलिय अंतरं, गिरंतरं ।	१७२	अंतोमुहुत्तं ।	१७५
३८४	आवागणुवाद्ग आहारएसु मिच्छादिद्वीणमोघं ।	१७३	ज्जदिभागो असखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ।	"
३८५	साणसम्मादिट्ठि-मम्माभिच्छा-दिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो केव-होदि, गाणाजीवं पटुच्च ओघं ।	१७४	चटुण्हमुवसामगणमंतरं केव-चिरं कालादो होदि, गाणा-जीवं पटुच्च ओघंभंगो ।	१७७
३८६	एराजीवं पटुच्च जहण्णेण वल्लदानमम्म असखेज्जदि-भागो, अंतोमुहुत्तं ।	"	अंतोमुहुत्तं ।	"
३८७	उक्कस्सेण अंगुलस्स असखे-ज्जदिभागो, अयंखेज्जासंखे-ज्जाओ ओसप्पिणि-उस्स-प्पिणीओ ।	"	उक्कस्सेण अंगुलस्स असखे-ज्जदिभागो असखेज्जासंखे-ज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पि-णीओ ।	"
३८८	असंजदमम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपमचसंजदणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पटुच्च गलिय अंतरं, गिरंतरं ।	१७४	चटुण्हं खवाणमोघं ।	१७८
३८९	एराजीवं पटुच्च जहण्णेण	१७९	सजोगिकेवली ओघं ।	"
			अणाहारा कम्मइयकायजोगि-भंगो ।	"
			गवरि विसेसा, अजोगि-केवली ओघं ।	१७९

### भावपरुवणासुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	भाणुगमेण दुग्धिहो गिदेसो, ओघेण आदेसेण य ।	१८३	भावो, परिणामिओ भावो ।	१९६
२	ओघेण मिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, ओदइओ भावो ।	१९४	सम्माभिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, सओवसमिओ भावो ।	१९८
३	सासणसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खइओ		असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खइओ	

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
६	वा सओवसमिओ वा भावो ।	१९९	वा भावो ।	२१०
७	असंजदो ।	२०१	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२११
८	संजदांसंजद-पमत्त-अप्पमत्त-संजदा त्ति को भावो, खओव-समिओ भावो ।	"	तिरिखखगदीए त्तिरिख-पंचि-दियतिरिख-पंचिदियपज्जत्त-च्छादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदा-संजदाणमोघं ।	२१२
९	चटुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति को भावो, खइओ भावो ।	२०४	गवरि विसेसो, पंचिदिय-तिरिखखजोणिणीसु असंजद-सम्मादिट्ठि त्ति को भावो, ओवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ।	२१२
१०	आदेसेण गइयाणुवादेण गिरय-गईए गेरइएसु मिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, ओदइओ भावो ।	२०६	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२१३
११	सासणसम्माइट्ठि त्ति को भावो, परिणामिओ भावो ।	२०७	मणुसगदीए मणुस-मणुसपजत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	"
१२	सम्माभिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो ।	२०८	देवगदीए देवेषु मिच्छादिट्ठि-प्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं ।	२१४
१३	असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खइओ वा सओवसमिओ वा भावो ।	"	भवणवासिय-वाणवेत्तर-जोदि-सियेदेवा देवीओ, सोधम्मसाण-कप्पवासियेदधीओ च मिच्छा-दिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी सम्मा-भिच्छादिट्ठी ओघं ।	"
१४	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२०९	असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा सओवसमिओ वा भावो ।	२१५
१५	एवं पढमाए पुढवीए गेरइयाणं ।	"	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२१५
१६	त्रिदियाए जाव सचमीए पुढवीए गेरइएसु मिच्छादिट्ठि-सासण-सम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठीण-मोघं ।	२१०	सओवसमिओ वा भावो ।	"
१७	असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खओवसमिओ		ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२१५
			सओवसमिओ वा खओवसमिओ	२१५



सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२८	भगवन्निमाणवासियदेवेसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव असंजदसम्मामिद्वि ति ओघं ।	२१५	४६	आभिणिघोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मामिद्विप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ।	२२५
२९	अशुदिसादि जाव सब्वहुसिद्धिनिमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मामिद्वि ति को भावो, ओघममिओ वा सहओ वा सओममिओ वा भावो ।	"	४७	मणपञ्चवणणीसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ।	"
३०	ओदइएण भोणेण पुणेण असंजदो । २१६	२१६	४८	केवलणणीसु सजोगिकेवली (अजोगिकेवली) ओघं ।	"
३१	इंदियाणुवादेण पंचदियपञ्जसएसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघं ।	"	४९	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ।	२२७
३२	कायणुवादेण तसकाइयत्तसकाइयपञ्जसएसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओघं ।	२१७	५०	सामाइयछेदेवद्वारणसुद्विसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियद्वि ति ओघं ।	"
३३	जोगाणुवादेण पंचमणजोगिपंचचिजोगि-कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि ति ओघं ।	२१८	५१	परिहारसुद्विसंजदेसु पमत्त-अपमत्तसंजदा ओघं ।	"
३४	ओरालियविस्तकायजोगीसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि ति ओघं ।	"	५२	सुहुमसांपराइयसुद्विसंजदेसु सुहुमसांपराइया उवसमा खवा ओघं ।	"
३५	अपंजदसम्मामिद्वि ति को भावो, सहओ वा सओममिओ वा भावो ।	२१९	५३	जहाक्खादविहारसुद्विसंजदेसु च-दुड्डाणी ओघं ।	२२८
३६	ओदइएण भोणेण पुणेण असंजदो । २१९	२१९	५४	संजदासंजदा ओघं ।	"
	सजोगिकेवलि ति को भावो, सओममिओ वा भावो ।	२२३	५५	असंजदेसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव असंजदसम्मामिद्वि ति ओघं ।	"
	ओदइएण भोणेण पुणेण असंजदो । २२३	२२३	५६	दंसणायुवादेण चक्खुदंसणिअचक्खुदंसणीसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागउदुमत्था ति ओघं ।	"
	सहओ भावो, सओममिओ भावो ।	२२३	५७	ओदइएण भोणेण पुणेण असंजदो । २२३	२२३
	सहओ भावो, सओममिओ भावो ।	२२३	५८	संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदा ति को भावो, सओममिओ भावो ।	"
	सहओ भावो, सओममिओ भावो ।	२२३	५९	सहयं सम्मत्तं ।	२२३

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
७०	चतुष्टयमुत्तमा चि को भावो,	८२	संज्ञदासंज्ञद-पमत्त-अप्यमत्त-	
७१	आत्ममिथो भावो ।	८३	संज्ञदा चि को भावो, स्वओव-	२३६
७२	सहयं सम्मत्तं ।	८४	समिथो भावो ।	२३६
७३	चतुष्टयं सत्ता मजोगिकेवली	८५	उवसमियं सम्मत्तं ।	२३६
७४	अजागिकेवल चि को भावो,	८६	चतुष्टयमुत्तमा चि को भावो,	२३७
७५	सहयो भावो ।	८७	उवसमिथो भावो ।	२३७
७६	सहयं सम्मत्तं ।	८८	उवममियं सम्मत्तं ।	२३७
७७	वेदयसम्मादिद्वीसु असंज्ञदसम्मा-	८९	सासणसम्मादिद्वी ओषं ।	२३७
७८	दिद्वि चि को भावो, सथोप-	९०	सम्माभिच्छादिद्वी ओषं ।	२३७
७९	समिथो भावो ।	९१	भिच्छादिद्वी ओषं ।	२३७
८०	सथोत्तमियं सम्मत्तं ।	९२	सणियाशुवादेण सण्णीसु भिच्छा-	२३७
८१	ओदइण भावेण पुणो असंज्ञदो । २३५	९३	दिद्विप्पहुडि जाव सीणकसाय-	२३७
		९४	वीदरागलुदुमत्था चि ओषं ।	२३७
		९५	असण्णि चि को भावो, ओदइओ	२३७
		९६	भावो ।	२३७
		९७	आदाराशुवादेण आहारएसु	२३७
		९८	भिच्छादिद्विप्पहुडि जाव सजोगि-	२३७
		९९	केवल चि ओषं ।	२३७
		१००	अणाहारणं कम्मसहयसंगो ।	२३७
		१०१	णवरि विसेसो, अजोगिकेवल	२३७
		१०२	चि को भावो, सहयो भावो ।	२३७

### अपावहुगपरुवणासुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	अपावहुआशुमेण दुविहो	२	ओषेण तिसु अद्दासु उवसमा	२४३
	गिद्विओ, ओषेण आदेसेण य । २४१		पवेसणेण तुल्ला थोत्ता ।	२४३

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३	उवसंतकसायवीदरागलुदुमत्था	२४५	त्थोत्ता उवससम्यम्मादिद्वी ।	२५८
४	तत्तिया चय ।	२४५	२२ खइयसम्मादिद्वी संसेज्जगुणा ।	२५८
५	खवा संसेज्जगुणा ।	२४६	२३ वेदगसम्मादिद्वी संसेज्जगुणा ।	२५९
६	सीणकसायवीदरागलुदुमत्था त-	२४६	२४ एवं तिसु वि अद्दासु ।	२६०
७	त्तिया चय ।	२४६	२५ सव्वत्थोत्ता उवसमा ।	२६०
८	सजोगिकेवली अजोगिकेवली	२४७	२६ खवा संसेज्जगुणा ।	२६१
९	पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया	२४७	२७ आदेसेण गदियाणुत्तादेण गिरय-	२६१
१०	चय ।	२४७	गदीए गेरइएसु सव्वत्थोत्ता	२६१
११	सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च	२४७	सासणसम्मादिद्वी ।	२६१
१२	संसेज्जगुणा ।	२४७	२८ सम्मामिच्छादिद्वी संसेज्जगुणा ।	२६२
१३	अपमत्तसंज्ञदा अवत्था अशुव-	२४७	२९ असंज्ञदसम्मादिद्वी असंसेज्ज-	२६२
१४	समा संसेज्जगुणा ।	२४७	गुणा ।	२६२
१५	पमत्तसंज्ञदा संसेज्जगुणा ।	२४८	३० भिच्छादिद्वी असंसेज्जगुणा ।	२६२
१६	संज्ञदासंज्ञदा असंसेज्जगुणा ।	२४८	३१ असंज्ञदसम्मादिद्विद्विद्विणे सव्व-	२६३
१७	सासणसम्मादिद्वी असंसेज्जगुणा ।	२४८	त्थोत्ता उवससम्मादिद्वी ।	२६३
१८	सम्माभिच्छादिद्वी संसेज्जगुणा ।	२५०	३२ खइयसम्मादिद्वी असंसेज्ज-	२६३
१९	असंज्ञदसम्मादिद्वी असंसेज्ज-	२५१	गुणा ।	२६४
२०	गुणा ।	२५१	३३ वेदगसम्मादिद्वी असंसेज्जगुणा ।	२६४
२१	भिच्छादिद्वी अणंतगुणा ।	२५२	३४ एवं पढमाए पुढवीए गेरइया ।	२६४
२२	असंज्ञदसम्मादिद्विद्विद्विणे सव्व-	२५२	३५ त्रिदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए	२६४
२३	त्थोत्ता उवससम्मादिद्वी ।	२५३	गेरइएसु सव्वत्थोत्ता सासण-	२६५
२४	सइयसम्मादिद्वी असंसेज्जगुणा ।	२५३	सम्मादिद्वी ।	२६५
२५	वेदगसम्मादिद्वी असंसेज्जगुणा ।	२५६	३६ सम्मामिच्छादिद्वी संसेज्जगुणा ।	२६५
२६	संज्ञदासंज्ञदद्विणे सव्वत्थोत्ता	२५६	३७ असंज्ञदसम्मादिद्वी असंसेज्ज-	२६६
२७	सइयसम्मादिद्वी ।	२५६	गुणा ।	२६६
२८	उवससम्मादिद्वी असंसेज्ज-	२५७	३८ भिच्छादिद्वी असंसेज्जगुणा ।	२६६
२९	गुणा ।	२५७	३९ असंज्ञदसम्मादिद्विद्विद्विणे सव्व-	२६७
३०	वेदगसम्मादिद्वी असंसेज्जगुणा ।	२५७	त्थोत्ता उवससम्मादिद्वी ।	२६७
३१	पमत्तापमत्तसंज्ञदद्विणे सव्व-	२५७	४० वेदगसम्मादिद्वी असंसेज्जगुणा ।	२६७

पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	पृष्ठ	( २३ )	पृष्ठ
४१	तिरिक्त्तगदीए	तिरिक्त्त-पंचि- दियतिरिक्त्त-पंचिदियपञ्जत- तिरिक्त्त-पंचिदियजोणिणिसु सञ्चत्योना संजदासंजदा ।	२६८	५३	मणुसगदीए मणुस-मणुसपञ्जत- मणुसिणीसु तिसु अद्वासु उव- समा पयसणेण तुल्ला थोवा ।	२७३
४२	सागणसम्मादिट्ठी	असंखेज्ज- गुणा ।	"	५४	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिया चेव ।	"
४३	सम्माभिच्छादिट्ठीणे	संखेज्ज- गुणा ।	"	५५	खवा संखेज्जगुणा ।	२७४
४४	असंजदसम्मादिट्ठी	असंखेज्ज- गुणा ।	"	५६	सीणकसायवीदरागछदुमत्था त- त्तिया चेव ।	"
४५	भिच्छादिट्ठी अणंतगुणा, मिच्छा- दिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	२६९	"	५७	सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला, तत्तिया चेव ।	"
४६	असंजदसम्मादिट्ठीणे	सञ्च- त्योना उवसमसम्मादिट्ठी ।	"	५८	सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ।	"
४७	सइयसम्मादिट्ठी	असंखेज्ज- गुणा ।	२७०	५९	अप्यमत्तसंजदा अक्त्तवा अणु- वसमा संखेज्जगुणा ।	२७५
४८	वेदगसम्मादिट्ठी	असंखेज्ज- गुणा ।	२७१	६०	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	"
४९	संजदासंजदद्वारेण	सञ्चत्योवा उवसमसम्माइत्ठी ।	"	६१	संजदासंजदा संखेज्जगुणा ।	"
५०	वेदगसम्मादिट्ठी	असंखेज्ज- गुणा ।	२७२	६२	सासणसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"
५१	गवरि विमयो, पंचिदिय- तिरिक्त्तजोणिणिसु	असंजद- सम्मादिट्ठिसंजदासंजदद्वारेण सञ्च- त्योवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	"	६३	सम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७६
५२	वेदगसम्मादिट्ठी	असंखेज्ज- गुणा ।	"	६४	असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"
				६५	भिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, भिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"
				६६	असंजदसम्मादिट्ठीणे सञ्च- त्योना उवसमसम्मादिट्ठी ।	"
				६७	सइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७७
				६८	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"
				६९	संजदासंजदद्वारेण सञ्चत्योवा सइयसम्मादिट्ठी ।	"
				७०	उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"

( २४ )	सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	पृष्ठ	अप्यावहुगपरूपासुत्ताणि	पृष्ठ
७१	वेदगसम्मादिट्ठी	संखेज्जगुणा ।	८९	२७७	सोहम्मीसाण जाव सदर-सह- स्सारकपवासासियदेवेषु जहा देवगहंभंगो ।	२८२
७२	पमत्त-अप्यमत्तसंजदद्वारेण	सञ्च- त्योवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	९०	२७८	आणद जाव गवरोवज्जविमाण- वासियदेवेषु सञ्चत्योवा	"
७३	खइयसम्मादिट्ठी	संखेज्जगुणा ।	९१	"	सासणसम्मादिट्ठी ।	३८३
७४	वेदगसम्मादिट्ठी	संखेज्जगुणा ।	९२	"	सम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्ज- गुणा ।	"
७५	गवरि विमयो, मणुसिणीसु	असंजद-संजदासंजद-पमत्तापमत्त- संजदद्वारेण सञ्चत्योवा खइय- सम्मादिट्ठी ।	९३	"	भिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	"
७६	उवसमसम्मादिट्ठी	संखेज्जगुणा ।	९४	"	असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"
७७	वेदगसम्मादिट्ठी	संखेज्जगुणा ।	९५	२७९	असंजदसम्मादिट्ठीणे सञ्च- त्योवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	२८४
७८	एवं तिसु अद्वासु ।	"	९६	"	सइयसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	"
७९	सञ्चत्योवा उवसमा ।	२७९	९७	२८०	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२८५
८०	खवा संखेज्जगुणा ।	"	९८	"	अणुदिसादि जाव अवराइद- विमाणवासियदेवेषु असंजद- सम्मादिट्ठीणे सञ्चत्योवा	"
८१	देवगदीए देवेषु सञ्चत्योवा	सासणसम्मादिट्ठी ।	९९	"	उवसमसम्मादिट्ठी ।	"
८२	सम्माभिच्छादिट्ठी	संखेज्जगुणा ।	१००	"	खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	"
८३	असंजदसम्मादिट्ठी	असंखेज्ज- गुणा ।	१०१	"	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"
८४	भिच्छादिट्ठी	असंखेज्जगुणा ।	१०२	"	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"
८५	असंजदसम्मादिट्ठीणे	सञ्च- त्योवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	१०३	"	सञ्चत्योवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	२८६
८६	खइयसम्मादिट्ठी	असंखेज्जगुणा ।	१०४	"	सइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"
८७	वेदगसम्मादिट्ठी	असंखेज्जगुणा ।	१०५	"	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	"
८८	भरणवासिय-चाणवंतर-जोदि- सियदेवा देवीओ सोधम्मीसाण- कपवासियदेवीओ च सत्ताए पुढवीए भंगो ।	"	१०६	"	इदियाणुचोदेण पंचिदिय-पंचि- दियपञ्जत्तएसु ओध । गवरि भिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	२८८

मूल शब्दा	मूल	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१०४ त्रयाणुपटय त्रयस्राह्य त्रय- स्राह्यपत्रतणु ओं । णनरि मिच्छादिह्री अर्धमिञ्जगुणा । २८९				मंजट--पमसापमत्संजदङ्गणे मम्मत्तपात्रहुअमोवं ।	२९३
१०५ जोगाणुपटय पंचमणजोगि- पचान्जिजोगि--कायजोगि-- ओगल्लियत्तयजोगीसु तीसु अद्रासु पयणेण तुल्ला थोवा । २९०				११९ एवं तिसु अद्रासु । १२० मन्वत्थोवा उवममा । १२१ खवा संरोज्जगुणा । १२२ ओरालियमिस्सकायजोगीसु सन्वत्थोवा मजोगिकेवली	"
१०६ उयंतकमायपीदरागछदुमत्था नेरिया चेत ।				१२३ असंजदसम्मादिह्री संरोज्ज- गुणा ।	"
१०७ वया संरोज्जगुणा ।				१२४ सासणसम्मादिह्री असंरोज्ज- गुणा ।	२९५
१०८ गीणकसायपीदरागछदुमत्था नेरिया चेत । २९१				१२५ मिच्छादिह्री अणंतगुणा ।	"
१०९ नजोगिहेत्तली पयणेण तत्तिया चेत् ।				१२६ अर्धमज्जममाहङ्गिह्णणे सन्व- त्थोवा सइयसम्मादिह्री ।	"
११० सजोगिकेवली अदं पडुच्च संरोज्जगुणा ।				१२७ वेदगसम्मादिह्री संरोज्जगुणा ।	"
१११ अपमत्तंजदा अमत्तना अणु- तगमा संरोज्जगुणा ।				१२८ वेज्जियत्तयजोगीसु देवगदि- भंगो ।	"
११२ पमत्तंजदा संरोज्जगुणा ।				१२९ वेज्जियमिस्सकायजोगीसु सन्वत्थोवा सासणसम्मादिह्री । २९६	"
११३ मंजटासजदा अर्धपेञ्जगुणा । २९२				१३० असंजदसम्मादिह्री संरोज्ज- गुणा ।	"
११४ सासणसम्मादिह्री असंरोज्ज- गुणा ।				१३१ मिच्छादिह्री असंरोज्जगुणा ।	"
११५ मम्मामिच्छादिह्री संरोज्ज- गुणा ।				१३२ असंजदसम्मादिह्रिह्णणे सन्व- त्थोवा उवससम्मादिह्री । २९७	"
११६ अर्धमज्जममादिह्री अर्धमंरोज्ज- गुणा ।				१३३ सइयसम्मादिह्री संरोज्जगुणा ।	"
११७ मिच्छादिह्री असंरोज्जगुणा, मिच्छादिह्री अणंतगुणा । २९३				१३४ वेदगसम्मादिह्री असंरोज्ज- गुणा ।	"
११८ अर्धमज्जममादिह्रि--संजदा--				१३५ आहारकायजोगि-आहारमिस्स-	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१५२	कायजोगीसु पमत्तंजदङ्गणे सन्वत्थोवा सइयसम्मादिह्री । २९७		१५२	मिच्छादिह्री असंरोज्जगुणा । ३०२	
१३६	वेदगसम्मादिह्री संरोज्जगुणा । २९८		१५३	असंजदसम्मादिह्रि-संजदासंजद- ङ्गणे सन्वत्थोवा खइयसम्मा- दिह्री ।	"
१३७	रुस्सइयकायजोगीसु सन्व- त्थोवा सजोगिकेवली ।	"	१५४	उवसससम्मादिह्री असंरोज्ज- गुणा । ३०३	
१३८	सासणसम्मादिह्री असंरोज्ज- गुणा ।	"	१५५	वेदगसम्मादिह्री असंरोज्ज- गुणा ।	"
१३९	असंजदसम्मादिह्री असंरोज्ज- गुणा । २९९		१५६	पमत्त-अप्यमत्तंजदङ्गणे सन्व- त्थोवा खइयसम्मादिह्री ।	"
१४०	मिच्छादिह्री अणंतगुणा ।	"	१५७	उवसससम्मादिह्री संरोज्जगुणा ।	"
१४१	असंजदसम्मादिह्रिह्णणे सन्व- त्थोवा उवससम्मादिह्री ।	"	१५८	वेदगसम्मादिह्री संरोज्ज- गुणा ।	"
१४२	सइयसम्मादिह्री संरोज्जगुणा ।	"	१५९	एवं दोसु अद्रासु ।	"
१४३	वेदगसम्मादिह्री असंरोज्ज- गुणा । ३००		१६०	सन्वत्थोवा उवसमा । ३०४	
१४४	वेदानुबोधेण इत्थिवदएसु दोसु वि अद्रासु उवससा पयसणेण तुल्ला थोवा ।	"	१६१	खवा संरोज्जगुणा ।	"
१४५	खवा संरोज्जगुणा । ३०१		१६२	पुरिसवेदएसु दोसु अद्रासु उवससा पयसणेण तुल्ला थोवा ।	"
१४६	अप्यमत्तंजदा अक्खवा अणुवसमा संरोज्जगुणा ।	"	१६३	खवा संरोज्जगुणा ।	"
१४७	पमत्तंजदा संरोज्जगुणा ।	"	१६४	अप्यमत्तंजदा अक्खवा अणुवसमा संरोज्जगुणा । ३०५	
१४८	संजदासंजदा असंरोज्जगुणा ।	"	१६५	पमत्तंजदा संरोज्जगुणा ।	"
१४९	सासणसम्मादिह्री असंरोज्ज- गुणा ।	"	१६६	संजदासंजदा असंरोज्जगुणा ।	"
१५०	सम्मामिच्छादिह्री संरोज्ज- गुणा । ३०२		१६७	सासणसम्मादिह्री असंरोज्ज- गुणा ।	"
१५१	असंजदसम्मादिह्री असंरोज्ज- गुणा ।	"	१६८	सम्मामिच्छादिह्री संरोज्ज- गुणा ।	"
			१६९	असंजदसम्मादिह्री असंरोज्ज- गुणा ।	"

पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या	परीशिष्ट	( २७ )	पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या
३०६	गुणा ।	३१०	गुणा ।	३१०					
१७०	मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ।	१८७	वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ।	३१०					
१७१	अंजदसम्मादिद्वि-संजदा- संजद-पमत्त-अपमत्तसंजदद्विगुणे सम्मतत्पावहुअमोघं ।	१८८	एवं दोसु अद्वासु ।	३१०					
१७२	एवं दोसु अद्वासु ।	१८९	सवत्थोभा उवसमा ।	३१०					
१७३	मज्जन्थोभा उवसमा ।	१९०	सवा सखेज्जगुणा ।	३१०					
१७४	सना संखेज्जगुणा ।	१९१	अवगदेदएसु दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३११					
१७५	णउंसयेदएसु दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	१९२	उवसंत्तकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ।	३११					
१७६	सवा संखेज्जगुणा ।	१९३	सवा संखेज्जगुणा ।	३११					
१७७	अपमत्तसंजदा अक्खवा अणु- वममा संखेज्जगुणा ।	१९४	खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ।	३११					
१७८	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	१९५	सजोगेक्खली अजोगेक्खली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ।	३११					
१७९	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ।	१९६	सजोगेक्खली अद्दं पडुच्च संखेज्जगुणा ।	३१२					
१८०	साणसम्मादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	१९७	कसायणुवादेण कोधकसाह- माणकसाह-मायकसाह-लोभ- कसाहसु दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३१२					
१८१	सम्माभिच्छादिद्वी संखेज्ज- गुणा ।	१९८	सवा संखेज्जगुणा ।	३१२					
१८२	असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	१९९	णवरि विमसा, लोभकसाहसु सुहुमंसापराहयउवसमा विसे- साहिया ।	३१३					
१८३	मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ।	२००	सवा संखेज्जगुणा ।	३१३					
१८४	असंजदसम्मादिद्वि-संजदा- संजदद्विगुणे ममत्तत्पावहुअ- मोघं ।	२०१	अपमत्तसंजदा अक्खवा अणु- वसमा संखेज्जगुणा ।	३१३					
१८५	पमत्त-अपमत्तसंजदद्विगुणे सव्व- त्थोभा सव्वयसम्मादिद्वी ।	२०२	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	३१३					

( २८ ) अप्पावहुगपरुक्खणासुत्ताणि

पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या
२०३	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ।	३१४	णीसु तिसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३१७
२०४	सासणसम्मादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	३१४	२१९ उवसंत्तकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ।	३१८
२०५	सम्माभिच्छादिद्वी संखेज्ज- गुणा ।	३१५	२२० सवा संखेज्जगुणा ।	३१८
२०६	असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	३१५	२२१ खीणकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिया चेव ।	३१८
२०७	मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ।	३१५	२२२ अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणु- वसमा संखेज्जगुणा ।	३१९
२०८	असंजदसम्मादिद्वि-संजदा- संजद-पमत्त-अपमत्तसंजद- द्विगुणे सम्मतत्पावहुअमोघं ।	३१५	२२३ पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	३१९
२०९	एवं दोसु अद्वासु ।	३१५	२२४ संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ।	३१९
२१०	सव्वत्थोभा उवसमा ।	३१५	२२५ असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	३१९
२११	सवा संखेज्जगुणा ।	३१५	२२६ असंजदसम्मादिद्वि-संजदा- संजद-पमत्त-अपमत्तसंजदद्विगुणे सम्मतत्पावहुअमोघं ।	३१९
२१२	अकसाहसु सव्वत्थोभा उवसंत्त- कसायवीदरागछदुमत्था ।	३१६	२२७ एवं तिसु अद्वासु ।	३१९
२१३	खीणकसायवीदरागछदुमत्था संखेज्जगुणा ।	३१६	२२८ सव्वत्थोभा उवसमा ।	३१९
२१४	सजोगेक्खली अजोगेक्खली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ।	३१६	२२९ सवा संखेज्जगुणा ।	३१९
२१५	सजोगेक्खली अद्दं पडुच्च संखेज्जगुणा	३१६	२३० मणपज्जवणणीसु तिसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३२०
२१६	णाणायुवादेण मदिअण्णाणि- सुदअण्णाणि-विभगण्णाणीसु सव्वत्थोभा सासणसम्मादिद्वी ।	३१७	२३१ उवसंत्तकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ।	३२०
२१७	मिच्छादिद्वी अणंतगुणा, मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ।	३१७	२३२ सवा संखेज्जगुणा ।	३२०
२१८	आभिणिमोहिय-सुद-ओधिणा-	३१७	२३३ खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ।	३२०
		३१७	२३४ अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणु- वसमा संखेज्जगुणा ।	३२०
		३१७	२३५ पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	३२०

पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२३६	पमत्त-अप्यमत्तमंजदद्वारेण सव्व- त्योवा उवसमममादिद्वी ।	३२०	त्योवा उवसमममादिद्वी ।	३२४
२३७	सहयमममाद्वी संखेज्जगुणा ।	३२१	सहयमममाद्वी संखेज्जगुणा ।	"
२३८	वेदगसममाद्वी संखेज्जगुणा ।	"	वेदगसममाद्वी संखेज्जगुणा ।	"
२३९	एवं तिसु अद्वासु ।	"	एवं तिसु अद्वासु ।	"
२४०	गव्वत्योवा उवसमा ।	"	गव्वत्योवा उवसमा ।	"
२४१	समा संखेज्जगुणा ।	"	समा संखेज्जगुणा ।	"
२४२	केवल्लणणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो पि तुल्ला तत्तिया चैव ।	"	केवल्लणणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो पि तुल्ला तत्तिया चैव ।	"
२४३	सजोगिकेवली अद्दं पडुच्च संखेज्जगुणा ।	३२२	सजोगिकेवली अद्दं पडुच्च संखेज्जगुणा ।	"
२४४	संजमाणुवादेण संजदेसु तिसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	"	संजमाणुवादेण संजदेसु तिसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	"
२४५	उमंतत्तमायवीदरागळुमुन्या तत्तिया चैव ।	"	उमंतत्तमायवीदरागळुमुन्या तत्तिया चैव ।	"
२४६	समा संखेज्जगुणा ।	"	समा संखेज्जगुणा ।	"
२४७	रीणत्तमायवीदरागळुमुन्या तत्तिया चैव ।	३२३	रीणत्तमायवीदरागळुमुन्या तत्तिया चैव ।	"
२४८	सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो नि तुल्ला तत्तिया चैव ।	३२४	सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो नि तुल्ला तत्तिया चैव ।	"
२४९	सजोगिकेवली अद्दं पडुच्च संखेज्जगुणा ।	"	सजोगिकेवली अद्दं पडुच्च संखेज्जगुणा ।	"
२५०	अप्यमत्तसंजदा अक्खवा अणुवममा संखेज्जगुणा ।	"	अप्यमत्तसंजदा अक्खवा अणुवममा संखेज्जगुणा ।	"
२५१	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	"	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	"
२५२	पमत्त-अप्यमत्तसंजदद्वारेण सव्व- हुमसांपराहयउवसमा थोवा ।	३२८	हुमसांपराहयउवसमा थोवा ।	३२८

पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२७३	खवा संखेज्जगुणा ।	३२८	दिद्वी असंखेज्जगुणा ।	३३१
२७४	जथावसादविहासुद्धिसंजदेसु अक्खसाइसंगो ।	"	२८८ ओधिदंसणी ओधिणाणिसंगो ।	"
२७५	संजदासंजदेसु अप्यावडुअं णत्थि ।	"	२८९ केवल्लदंसणी केवल्लणाणिसंगो ।	"
२७६	संजदासंजदद्वारेण सव्वत्योवा खइयसममादिद्वी ।	"	२९० लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिएसु णील्लेस्सिएसु- काउलेस्सिएसु	३३२
२७७	उवसमसममादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	३२९	२९१ सममाभिच्छादिद्वी संखेज्ज- गुणा ।	"
२७८	वेदगसममादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	"	२९२ असंजदसममादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	"
२७९	असंजदेसु सव्वत्योवा सासण- सममादिद्वी ।	"	२९३ मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ।	"
२८०	सममाभिच्छादिद्वी संखेज्ज- गुणा ।	"	२९४ असंजदसममादिद्विद्वारेण सव्व- त्योवा सहयसममादिद्वी ।	"
२८१	असंजदसममादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	"	२९५ उवसमसममादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	३३३
२८२	मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ।	३३०	२९६ वेदगसममादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	"
२८३	असंजदसममादिद्विद्वारेण सव्व- त्योवा उवसमसममादिद्वी ।	"	२९७ णवरि विसेसो, काउलेस्सिएसु असंजदसममादिद्विद्वारेण सव्व- त्योवा उवसमसममादिद्वी ।	"
२८४	सहयसममादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	"	२९८ सहयसममादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	"
२८५	वेदगसममादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	"	२९९ वेदगसममादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	३३४
२८६	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि- अक्खुदंसणीसु मिच्छादिद्वि- पण्हडि जाव सीणत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	३३१	३०० तेउलेस्सिएसु-पम्मलेस्सिएसु सव्वत्योवा अप्पमत्तसंजदा ।	"
२८७	णवरि चक्खुदंसणीसु मिच्छा- दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु		३०१ पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	"
			३०२ संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ।	"
			३०३ सासणसममादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	"